।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका-अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(द्वितीय भाग : भूमि खण्ड)

सम्पादक एवं टीकाकार
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2016
₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||
Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part II : Bhūmi Khaṇḍa)

Edited with Hindi Commentary by :
Acharya Shivprasad Dvivedi
(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM – Shivprasad Dvivedi

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

Published by :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers or Distributors*)
K 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Edition 2016
₹ 7500 (1-7 Part Complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Daryaganj
New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

Printed by :
A. K. Lithographer
Delhi

विषयानुक्रम

२. भूमिखण्ड

श्रीपरमात्मने नमः

श्रियै नमः

पद्ममहापुराण

द्वितीय भूमिखण्ड

पहला अध्याय

ऋषय ऊचुः

शृणु सूत महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद। सन्देहमागतं विद्वन्दारुणं बुद्धिनाशनम् ॥१॥
केचित्पठन्ति प्रह्लादं पुराणेषु द्विजोत्तमाः। पञ्चवर्षान्वितेनापि केशवः परितोषितः ॥२॥
देवासुरे कथं प्राप्ते हरिणा सह युध्यति। निहतो वासुदेवेन प्रविष्टो वैष्णवीं तनुम् ॥३॥

सूत उवाच

कश्यपेन पुरा ज्ञातं कृतं व्यासेन धीमता। ब्रह्मणा कथितं पूर्वं व्यासस्याग्रे स्वयंप्रभोः ॥४॥
तमेवं हि प्रवक्ष्यामि भवतामग्रतो द्विजाः। सन्देहकारणं जातं छिन्नं देवेन वेधसा॥५॥

व्यास उवाच

शृणु सूत महाभाग ब्रह्मण परिभाषितम्। प्रह्लादस्य यथा जन्म पुराणेऽप्यन्यथाश्रुतम्॥६॥
जातमात्रः सर्वसुखं वैष्णवं मार्गमाश्रितः। महाभागवतश्रेष्ठः प्रह्लादो देवपूजितः ॥७॥

ऋषियों का सूतजी से प्रह्लाद के चरित्र के विषय में प्रश्न और शिवशर्मा चरित का प्रारम्भ

ऋषियों ने कहा— हे सभी तात्त्विक अर्थों के ज्ञाता महाभाग सूतजी ! हे विद्वन् ! हमलोगों की बुद्धि को विनष्ट करने वाला भयङ्कर सन्देह हो गया है, उसे आप सुनें ॥१॥ कुछ पुराणों के ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रह्लाद कि विषय में बतलाते हैं कि पाँच वर्ष की ही अवस्था में वे भगवान् केशव को प्रसन्न कर लिये थे॥२॥ ऐसी स्थिति में देवासुर संग्राम में युद्ध करते हुए वे; भगवान् वासुदेव के द्वारा मारे जाकर विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गये यह कैसे सम्भव है ?॥३॥ **सूतजी ने कहा—** हे ब्राह्मणों ! जिसको सबसे पहले ब्रह्माजी ने स्वयं प्रभु व्यासजी के समक्ष कहा, कश्यप महर्षि ने जाना तथा बुद्धिमान् व्यासजी ने बनाया उसी पुराण को मैं आपलोगों के समक्ष कहूँगा, सन्देह का जो कारण हुआ उसको ब्रह्माजी ने विनष्ट कर दिया है॥४-५॥ **व्यासजी ने कहा—** हे महाभाग सूत ! प्रह्लाद का जन्म जैसा ब्रह्माजी ने बतलाया तथा पुराण में उसे दूसरी तरह से सुना गया है, उसे सुनो ॥६॥ देवताओं से पूजित, महाभागवतों में श्रेष्ठ, प्रह्लाद जन्म से ही सबों को सुख देने वाले वैष्णवमार्गानुयायी थे ॥७॥ वे अपने पुत्र के साथ विष्णु भगवान् के साथ

विष्णुना सह युद्धाय सपुत्रः सङ्गरं गतः। निहतो वासुदेवेन प्रविष्टो वैष्णवीं तनुम्॥८॥
सृष्टिभावं शृणुष्व त्वमस्यैव च महात्मनः। सङ्गरं प्राप्य पुत्राद्यैर्विष्णुना सह वीर्यवान्॥९॥
प्रविष्टो वैष्णवं तेजस्सम्प्राप्य स्वेन तेजसा। महाभागवतश्रेष्ठः प्रह्लादो देवपूजितः॥१०॥
पुराकल्पे महाभाग यथाजातः स वीर्यवान्। वृत्तान्तं तस्य वीरस्य प्रवक्ष्यामि समासतः॥११॥
पश्चिमे सागरस्यान्ते द्वारका नाम वै पुरी। सर्वर्द्धिसमायुक्ता सर्वसिद्धिसमन्विता॥१२॥
तस्यामास्तेसदा देवो योगज्ञो योगवित्तमः। शिवशर्मेतिविख्यातो वेदशास्त्रार्थकोविदः॥१३॥
तस्यापि पञ्चपुत्रास्तु बभूवुः शास्त्रकोविदः। यज्ञशर्मा वेदशर्मा धर्मशर्मा तथैव च॥१४॥
विष्णुशर्मा महाभागो नूनं तत्कर्मकोविदः। पञ्चमः सोमशर्मेति पितृभक्तिपरायणः॥१५॥
पितृभक्तिं बिना चैव धर्ममन्यं द्विजोत्तमाः। न विदन्ति महात्मानस्तद्भावेन तु भाविताः॥१६॥
तेषां तु भक्तिं संपश्यञ्छिवशर्माद्विजोत्तमः। चिन्तयामासमेधावी निष्कर्षिष्ये सुरोत्तमान्॥१७॥
पितृभक्तेषु यो भावो नैतेषां मनसि स्थितः। यथाजानाम्यहं चाथ करिष्येबुद्धिपूर्वकम्॥१८॥
विष्णोश्चैव प्रसादात्स सर्वसिद्धिर्बभूवह। सद्भावं चिन्तयामास अञ्जनार्थं द्विजोत्तमाः॥१९॥
उपायं ब्राह्मणश्रेष्ठस्तपसस्तेजसः किल। चकार सोऽप्युपायज्ञो मायया ब्रह्मवित्तमः॥२०॥
तेषामग्रे ततो व्याजं शिवशर्मा व्यदर्शयत्। महता ज्वररोगेण मृता माता विदर्शिता॥२१॥
तैस्तु दृष्टा मृता माता पितरं वाक्यमब्रुवन् ॥२२॥
यया वयं महाभाग गर्भोदरे प्रवर्द्धिताः। कलेवरं परित्यज्य स्वयमेव गताक्षयम्॥२३॥

युद्ध करने के लिए रणस्थल में गये और भगवान् विष्णु के द्वारा मारे जाकर भगवान् विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गये ॥८॥ देवताओं से पूजित महाभागवतों में श्रेष्ठ, पराक्रमी प्रह्लाद अपने पुत्रों आदि के साथ भगवान् विष्णु के साथ युद्ध करके अपने तेज से भगवान् विष्णु के तेज को प्राप्त करके उसमें प्रवेश कर गये। उसी महात्मा के जन्म की कथा सुनो ॥९-१०॥ पहले के कल्प में ये पराक्रमी महाभाग जैसे उत्पन्न हुए उसी वीर के वृतान्त को संक्षेप में मैं कहूँगा ॥११॥ पश्चिम समुद्र के अन्त में सभी प्रकार की ऋद्धियों से युक्त तथा सभी प्रकार की सिद्धियों वाली द्वारका नाम की नगरी है ॥१२॥ उस नगरी में योग के ज्ञाता, योगियों में श्रेष्ठ शिवशर्मा नामक वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण रहते थे ॥१३॥ उनके भी शास्त्रों के ज्ञाता पाँच पुत्र हुए। उनके नाम थे— १. यज्ञशर्मा, २. वेदशर्मा, ३. धर्मशर्मा और ४. विष्णुशर्मा ये सभी अपने कर्मों के ज्ञाता थे। पाँचवा अपने पिता की भक्ति में लगे रहने वाले पुत्र सोमशर्मा थे ॥१४-१५॥ ये पितृभक्ति को छोड़कर किसी दूसरे धर्म को नहीं जानते थे और सदा पितृभक्ति से भरे रहते थे ॥१६॥ मेधावी, ब्राह्मण श्रेष्ठ, महाभाग शिवशर्मा उन सबों की पितृभक्ति को देखते हुए सोचे कि मैं इन सबों की परीक्षा करूँगा ॥१७॥ पिता के भक्तों में जो भाव होना चाहिए वह भाव इन सबों के मन में है कि नहीं इस बात को कैसे जाना जा सकता है ? उसको मैं बुद्धिपूर्वक जानने का उपाय करूँगा ॥१८॥ भगवान् विष्णु की कृपा से उनको सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। हे ब्राह्मणों ! उन्होंने मोहित करने के लिए सद्भाव का चिन्तन किया ॥१९॥ वेदज्ञों में श्रेष्ठ वे ब्राह्मण श्रेष्ठ अपनी तपस्या तथा तेज के बल पर अपनी माया के द्वारा उपाय किये ॥२०॥ उन्होंने उन सबों के समक्ष दिखाया कि अत्यधिक ज्वर के कारण उन सबों की माता मर गयी ॥२१॥ उन पुत्रों ने देखा कि उनकी माता मर गयी है। उन सबों ने अपने पिता से कहा॥२२॥

अपहाय गता सेयं स्वर्गे तात किमुच्यते ॥२४॥
शिवशर्मोपरिभावं पुत्रं भक्तिपरायणम्। यज्ञशर्माणमाहूय इत्युवाच द्विजोत्तमः ॥२५॥

शिवशर्मोवाच

अनेनापिसुतीक्ष्णेन शस्त्रेणनिशितेन वै। विच्छिद्याङ्गानि सर्वाणि यत्र तत्र क्षिपस्व ह ॥२६॥
तत्कृतं तेन पुत्रेण यथादेशः श्रुतः पितुः। समायातः पुनः पश्चात्पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥
यथादिष्टं त्वया तात तत्सर्वं कृतवानहम्। समादिश ममान्यच्च कार्यकारणमद्य च ॥
तच्च सर्वं करिष्यामि दुर्जयं दुर्लभं पितः ॥२८॥
तमाज्ञाय महाभागं पितृभक्तं स च द्विजः। निश्चयं परमं ज्ञात्वा द्वितीयस्यविचिन्तयन् ॥२९॥
वेदशर्माणमाहूय गच्छ त्वं मम शासनात्।
स्त्रिया विना न शक्नोमि स्थातुं कन्दर्पमोहितः ॥३०॥
मायया दर्शिता नारी सर्वसौभाग्यसम्पदा। एनामानय वत्स त्वं ममार्थे कृतनिश्चयः ॥३१॥
एवमुक्तस्तथा प्राह करिष्ये तव सुप्रियम्। पितरं तं नमस्कृत्य तामुवाच गतस्ततः ॥३२॥
त्वां देव याचते तातः कामबाणप्रपीडितः। अतस्त्वं जरया युक्ते प्रसादसुमुखी भव ॥३३॥
भज त्वं चारुत्सर्वाङ्गि पितरं मम सुन्दरि। एवमाकर्णितं तस्य मायया वेदशर्मणा ॥३४॥

स्त्र्युवाच

जरया पीडितस्यापि नैवेच्छामि कदाचन। सश्लेष्ममुखरोगस्य व्याधिग्रस्तस्य साम्प्रतम् ॥३५॥
शिथिलस्यापि चार्तस्य तस्य वृद्धस्य सङ्गमम्।
भवन्तं रन्तुमिच्छामि करिष्ये तव सुप्रियम् ॥३६॥

हे महाभाग ! जिसने हमलोगों को अपने गर्भ में पाला, वह हमलोगों की माँ अपने शरीर का परित्याग करके चली गयी ॥२३॥ हे तारक ! वह शरीर का त्याग करके स्वर्ग चली गयी अब आपका क्या आदेश है?॥२४॥ द्विजश्रेष्ठ, शिवशर्मा ने अपने सबसे बड़े तथा भक्तिभाव सम्पन्न पुत्र यज्ञशर्मा को बुलाकर कहा॥२५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** तुम इस तीक्ष्ण तथा धारदार शस्त्र के द्वारा इसके सभी अङ्गों को काटकर जहाँ-तहाँ फेंक दो ॥२६॥ पिता की जैसी आज्ञा थी उस पुत्र ने वैसा ही किया और उसके बाद वह अपने पिता के पास आया और कहा ॥२७॥ हे पितः ! आपने जैसा आदेश दिया था वैसा मैंने कर दिया अब आप बतलाएँ कि मुझे क्या करना है ? हे पिताजी ! आप जो कहेंगे उस कठोर तथा दुर्लभ कार्य को भी मैं करूँगा ॥२८॥ वे ब्राह्मण जान गये कि यह मेरा पुत्र पितृभक्त है, इस तरह का निश्चय करके उन्होंने दूसरे पुत्र के विषय में विचार करते हुए वेदशर्मा को बुलाकर कहा— तुम उस नारी के पास जाओ कामार्त मैं स्त्री के बिना नहीं रह सकता हूँ ॥२९-३०॥ उन्होंने उसे सभी सौभाग्यों से सम्पन्न नारी को दिखाया और कहा— हे वत्स ! निश्चय करके तुम इसे मेरे लिए लाओ ॥३१॥ इस तरह से कहने पर वेदशर्मा ने कहा— मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा । पिता को नमस्कार करके उस स्त्री के पास जाकर उन्होंने कहा॥३२॥ हे देवि ! मेरे पिता काम के बाणों से पीड़ित हैं और आपको प्राप्त करना चाहते हैं । अतएव हे सुन्दरी ! आप मेरे वृद्ध पिता पर प्रसन्न हो जाइये ॥३३॥ हे सर्वाङ्ग सुन्दरि ! मेरे पिता को अपना लीजिये । इस तरह से उस माया ने वेदशर्मा की बातों को सुना ॥३४॥ **उस स्त्री ने कहा—** बुढ़ापे से

भवन्तं रूपसौभाग्यैर्गुणरत्नैरलङ्कृतम्। दिव्यलक्षणसम्पन्नं दिव्यरूपं महौजसम्॥३७॥
किं करिष्यसि तातेन वृद्धेन शृणु मानद। ममाङ्गभोगभावेन सर्वं प्राप्स्यसि दुर्लभम्॥३८॥
यद्यत्त्वमिच्छसे विप्र तद्ददामि न संशयः। एतद्वाक्यं महच्छ्रुत्वा अप्रियं पापसङ्कुलम्॥३९॥

वेदशर्मोवाच

अधर्मयुक्तं ते वाक्यमयुक्तं पापमिश्रितम्। नेदृशं मां वदेर्देवि पितृभक्तमनागसम्॥४०॥
पितुरर्थं समायातस्त्वामहं प्रार्थये शुभे। अन्यदेव न वक्तव्यं भज त्वं पितरं मम्॥४१॥
यद्यत्त्वमिच्छसे देवि त्रैलोक्ये सचराचरम्। तत्तद्दद्मि न सन्देहो देवराज्याधिकं शुभे॥४२॥

स्त्र्युवाच

एवं समर्थो दातुं मे पितुरर्थे यदा भवान्। तदा मे दर्शयाद्यैव सेन्द्रांस्त्वं समहेश्वरान्॥४३॥
दातुमेवं समर्थोऽसि दुर्लभं साम्प्रतं किल। किन्ते बलं महाभाग दर्शयस्व त्वमात्मनः॥४४॥

वेदशर्मोवाच

पश्य पश्य बलं देवि प्रभावं तपसो मम। मयाहूताः समायाता इन्द्राद्याः सुरसत्तमाः॥४५॥
वेदशर्माणमूचुस्ते किंकुर्मो हि द्विजोत्तम। यमेवमिच्छसे विप्रतं ददामो न संशयः॥४६॥

वेदशर्मोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे प्रसादसुमुखा यदि। ददतु विमलां भक्तिं पादयोः पितुरेव मे॥४७॥
एवमस्तु सुराः सर्वे यथा यातास्तथा गताः।
तमुवाच तथा दृष्ट्वा दृष्टं ते तपसो बलम्॥४८॥

पीड़ित तुम्हारे पिता को मैं कभी नहीं अपना सकती हूँ। वे इस समय रोगी हैं, उनके मुख से कफ निकलता रहता है ॥३५॥ बूढ़े, आर्त तथा कमजोर तुम्हारे पिता के साथ मैं सङ्गम नहीं कर सकती हूँ। मैं तो आपके साथ रमण करना चाहती हूँ। आपके मनोनुकूल मैं कार्यों को करूँगी ॥३६॥ आप रूपवान् सौभाग्य तथा गुण रूपी रत्नों से अलङ्कृत, दिव्यलक्षण से युक्त, दिव्य रूप वाले तथा महाओजस्वी हैं॥३७॥ हे मानद ! आप मेरी बात सुनें। उस बूढ़े पिता से आपको कौन सा लाभ है ? आप मेरे शरीर का भोग करें। मैं आपको दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करूँगी ॥३८॥ हे विप्र ! आप जो कुछ भी चाहेंगे वह मैं दूँगी। इस अत्यन्त एवं पाप युक्त, अप्रिय वाक्य को सुनकर ॥३९॥ **वेदशर्मा ने कहा—** हे देवि ! अधर्म युक्त, अनुचित, पापमिश्रित, इस तरह की बातें आप मुझसे न कहें मैं निर्दोष और अपने पिता का भक्त हूँ॥४०॥ हे शुभे ! मैं पिता के लिए आकर आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप दूसरी बात न करें। आप मेरे पिता को अपना लें ॥४१॥ हे देवि ! इस चराचरात्मक त्रैलोक्य में आप जो चाहेंगी वह मैं आपको दूँगा। यहाँ तक कि मैं देवताओं का राज्य भी आपको दूँगा ॥४२॥ **स्त्री ने कहा—** यदि आप अपने पिता के लिए इस तरह का कार्य करने में समर्थ हैं तो आप आज ही मुझे इन्द्र और महेश्वर का दर्शन कराइये॥४३॥ यदि आप इस तरह की दुर्लभ वस्तुएँ देने में समर्थ हैं तो अपना पराक्रम प्रदर्शित कीजिये॥४४॥ **वेदशर्मा ने कहा—** हे देवि ! मेरी तपस्या का प्रभाव आप देखें मेरे द्वारा आहूत इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता आ गये ॥४५॥ देवताओं ने वेदशर्मा से कहा— हे द्विज श्रेष्ठ ! आपके लिए हमलोग क्या करें ? आप जो चाहें उसे हमलोग देंगे ॥४६॥ **वेदशर्मा ने कहा—** यदि आप सभी देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे आपलोग पिता में निर्मल भक्ति प्रदान करें ॥४७॥ एवमस्तु ! कहकर वे देवता जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। यह देखकर उस माया ने कहा— मैंने आपकी तपस्या का बल देख लिया ॥४८॥ मुझे

देवैस्तु नास्ति मे कार्यं यदि दातुमिहेच्छसि। यन्मां नयसि गुर्वर्थं तत्कुरुष्व ममप्रियम् ॥
देहि त्वं स्वं शिरो विप्र स्वहस्तेन निकृत्य वै ॥४९॥

वेदशर्मोवाच

धन्योऽहमद्य सञ्जातो मुक्तश्चैव ऋणत्रयात्। स्वशिरो देवि दास्यामि गृह्यतां गृह्यतांशुभे ॥५०॥
शितेन तीक्ष्णधारेण शस्त्रेण द्विजसत्तमः। निकृत्य स्वं शिरश्चाथ ददौ तस्यै प्रहस्यच ॥
रुधिरेण प्लुतं सा च परिगृह्य गता मुनिम् ॥५१॥

स्त्र्युवाच

तवार्थे प्रेषितं विप्र पुत्रेण वेदशर्मणा। एतच्छिरः सङ्गृहाण निकृतं चात्मनात्मनः ॥५२॥
उत्तमाङ्गं प्रदत्तं मे पितृभक्तेन तेन ते। तवार्थे द्विजशार्दूल मामेवं परिभुङ्क्ष्व वै ॥५३॥
तस्य तैर्भ्रातृभिर्दृष्टं साहसं वेदशर्मणः। वेपिताङ्गत्वमापन्नास्ते बभूवुः परस्परम् ॥५४॥

मृता नो धर्मसाध्वी सा माता सत्यसमाधिना ।
अयमेव महाभागः पितुरर्थे मृतः शुभः ॥५५॥
धन्योऽयं धन्यतां प्राप्तः पितुरर्थे कृतंशुभम् ।
एवंसम्भाषितं तैस्तुभ्रातृभिःपुण्यचारिभिः॥५६॥
समाकर्ण्य द्विजो वाक्यं ज्ञात्वा भक्तिपरायणम् ।
निकृत्तं चशिरस्तेनपुत्रेण वेदशर्मणा ॥५७॥
धर्मशर्माणमाहाथ शिर एतत्प्रगृह्यताम् ॥५८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

देवताओं से कोई मतलब नहीं है यदि आप मुझे अपने पिता के लिए ले चल रहे हैं तो आप मेरा प्रिय कार्य कीजिये। आप अपने हाथ से अपना शिर काटकर मुझे प्रदान कीजिये ॥४९॥ **वेदशर्मा ने कहा—** हे देवि! हे शुभे !! मैं तो आज धन्य हो गया। मैं आज तीनों ऋणों से मुक्त हो गया। आप लीजिये। मैं अपना शिर दे रहा हूँ ॥५०॥ उन्होंने हँसते हुए तीक्ष्ण हथियार से अपना शिर काट कर प्रदान कर दिया। वह शिर खून से रङ्गा हुआ था। उसको लेकर वह शिवशर्मा के पास चली गयी ॥५१॥ **स्त्री ने कहा—** हे विप्र ! आपके लिए आपके पुत्र वेदशर्मा ने अपने हाथों अपना शिर काटकर भेजा है, इसे आप लें ॥५२॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपके पितृभक्त पुत्र ने आपके लिए अपना शिर मुझे प्रदान किया है अब आप मेरा यथेष्ट उपभोग करें ॥५३॥ वेदशर्मा के भाइयों ने वेदशर्मा के साहस को देखा और परस्पर में उनके अङ्ग काँपने लगे ॥५४॥ मेरी साध्वी धर्म की माता सत्य का पालन करती हुयी मर गयी और ये महात्मा (वेदशर्मा) भी पिता के लिए जान दे दिए ॥५५॥ ये धन्य हैं अब अधिक धन्य हो गये, पिता के लिए इन्होंने यह शुभ कार्य किया है। वे पवित्र आचरण करने वाले आपस में इस तरह की बातें करने लगे। ब्राह्मण (शिवशर्मा) ने उन सबों की बातों को सुना और यह जानकर कि पितृभक्त वेदशर्मा नामक पुत्र ने अपने शिर को स्वयं काटा है ॥५७॥ उन्होंने तृतीय पुत्र धर्मशर्मा से कहा— इस शिर को लो ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के शिवशर्मा चरित नामक प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

दूसरा अध्याय

सूत उवाच

तदादाय महात्माऽसौ निर्जगाम त्वरान्वितः। पितृभक्त्या तपोभिश्च सत्यार्जवबलेन सः॥१॥
धर्ममाकृष्टवांश्चैव धर्मशर्मा ततस्तदा। समाकृष्टस्तु वै धर्मस्तपसा तस्य धीमतः॥२॥
धर्मशर्माणमागत्य इदं वचनमब्रवीत्। कस्मात्त्वया समाहूतो धर्मशर्मन्समागतः॥
तन्मे कथय कार्यं त्वं तत्करोमि न संशयः ॥३॥

धर्मशर्मोवाच

यद्यस्ति गुरुश्रुश्रूषा यदिनिष्ठाऽचलं तपः। तेन सत्येन मे धर्म वेदशर्मा स जीवतु॥४॥

धर्म उवाच

दमशौचेन सत्येन तपसा तव सुव्रत। पितृभक्त्या तव भ्राता वेदशर्मा महाभुजः॥५॥
पुनरैव महात्माऽसौ जीवनं च लभिष्यति ॥६॥
तपसाऽनेन तुष्टोऽस्मिपितृभक्त्या महामते। वरं वरय भद्रं ते दुर्लभं धर्मवित्तमैः॥७॥
एवमाकर्णितं तेन सुवाक्यं धर्मशर्मणा। वैवस्वतं महात्मानं तमुवाच महायशाः॥८॥

देहि मे त्वचलां भक्तिं पितुः पादार्हणे पुनः।
धर्मे रतिं तथा मोक्षं सुप्रसन्नो यदा मम॥९॥

तमुवाच ततो धर्मो मत्प्रसादाद्भविष्यति। एवमुक्ते महावाक्ये वेदशर्मा तदोत्थितः॥१०॥
प्रसुप्तवन्महाप्राज्ञो धर्मशर्माणमब्रवीत्। क्वसादेवी गता भ्रातः क्व स ततो भवेदिति॥११॥
समासेन समाख्यातं यथा पित्रा नियोजितः। समाज्ञाय ततोहृष्टो धर्मशर्माणमब्रवीत्॥१२॥

शिवशर्मा के तृतीय पुत्र द्वारा मरे हुए वेदशर्मा को जिलाया जाना

सूतजी ने कहा— उस शिर को लेकर वे महात्मा (धर्मशर्मा) शीघ्र ही वहाँ से पितृभक्ति, तपस्या, सत्यभाषण तथा ऋजुता के बल से निकले ॥१॥ उसके बाद धर्मशर्मा ने धर्म को बुलाया। धर्मशर्मा की तपस्या से आकृष्ट धर्म ने ॥२॥ धर्मशर्मा से कहा— धर्मशर्मन्! आपने मुझे किसलिए बुलाया है ? मैं आ गया हूँ। आप अपना कार्य बतलाइये उसे निस्सन्देह मैं करूँगा ॥३॥ **धर्मशर्मा ने कहा—** हे धर्म ! यदि मुझमें गुरुजनों की शुश्रूष और अचला भक्ति है तथा तपस्या है तो उस सत्य के द्वारा धर्मशर्मा जीवित हो जायँ ॥४॥ **धर्म ने कहा—** हे सुव्रत ! तुम्हारे दम (इन्द्रियों को वश में करना) शौच (पावित्र्य पालन) सत्य भाषण, तपस्या तथा पितृभक्ति के द्वारा तुम्हारे महाभुज भाई वेदशर्मा पुनः जीवन को प्राप्त कर लेंगे ॥५-६॥ हे महामते ! मैं तुम्हारी तपस्या तथा पितृभक्ति से सन्तुष्ट हूँ। जिसे धर्मज्ञ पुरुष दुर्लभ मानते हैं, उस प्रकार का भी वरदान माँगों आपका कल्याण हो ॥७॥ उस वाक्य को धर्मशर्मा ने सुना और महायशस्वी, उन्होंने यमराज से कहा ॥८॥ यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने पिता के चरणों की सेवा में अचला भक्ति, धर्म में प्रेम तथा मोक्ष प्रदान करें ॥९॥ उसके बाद धर्म ने कहा मेरी कृपा से ऐसा ही होगा और ऐसा कहते ही वेदशर्मा जीवित हो गये ॥१०॥ जैसे वे सोये हुए हों वे धर्मशर्मा से कहे— हे भाई ! वे देवी कहाँ गयीं और हमारे पिता श्री कहाँ हैं ?॥११॥ उसके बाद संक्षेप में धर्मशर्मा ने पिता की सारी बातों को बतलाया तो वेदशर्मा ने धर्मशर्मा से कहा ॥१२॥ हे महाभाग ! मेरे शिर तथा जीवन के साथ आप उनके समक्ष

ममाद्यैव महाभाग शिरसा जीवितेन च । संमुखी भव वै भ्रातःकोऽन्योमेत्वादृशोभुवि ॥१३॥
भ्रातरं चैवमाभाष्य उत्सुकः पितरं प्रति । गमनाय मतिं चक्रे भ्रात्रा च धर्मशर्मणा ॥१४॥
द्वावेतौ तु गतौ तत्र पितरं दीप्तिसंयुतम् । ममाद्यैव महाभाग तपसा जीवितेन च ॥१५॥
वेदशर्मा समानीतस्तं पुत्रं प्रगृहाण भोः । शिवशर्मा ततोहृष्टो भक्तिं विज्ञाय तस्य च ॥१६॥
न किञ्चिदब्रवीत्तं तु पुनश्चिन्तामुपेयिवान् । पुरतो विनयेनापि वर्तमानं महामतिम् ॥१७॥
विष्णुशर्माणमाभाषीद्वत्स मे वचनं कुरु । इन्द्रलोकं व्रजस्वाद्य तस्मादानय चामृतम् ॥१९॥
अनया कान्तया सार्द्धं स्थातुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
सागराद्यत्समुत्पन्नममृतं व्याधिनाशनम् ॥२०॥
साधुनेच्छति मामेषा यथैनां तु लभाम्यहम् । तथाकुरुष्व शीघ्रत्वमन्यथान्यंप्रयास्यति ॥२१॥
वृद्धं ज्ञात्वाऽवमन्येत इयं बाला सुरूपिणी । अद्य देव्याऽनया सार्द्धं प्रियया भुवनत्रये॥२२॥
निर्दोषो व्याधिनिर्मुक्तो यथा तात भवाम्यहम् ।
तथाकुरुष्व मे वत्समद्भक्तोऽसि यदाभुवि ॥२३॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं पितुस्तस्य महात्मनः । विष्णुशर्मा तदोवाच पितरं दीप्ततेजसम् ॥२४॥
सर्वमेतत्करिष्यामि भवतः सुखमुत्तमम् । एवमाभाष्य धर्मात्मा विष्णुशर्मा महामतिः ॥२५॥
पितरं तं नमस्कृत्य पुनः कृत्वा प्रदक्षिणम् । बलेन महता सोऽपि तपसा नियमेन च ॥२६॥
अन्तरिक्षगतश्चासीद्गच्छमानस्य धीमतः । स महावायुवेगेन ऐन्द्रं सम्प्रति गच्दति ॥२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

चलें, मेरा आपके समान दूसरा कौन होगा ?॥१३॥ अपने भाई से इस प्रकार कहकर वेदशर्मा अपने भाई धर्मशर्मा के साथ, पिता के पास जाने के लिए तैयार हो गये ॥१४॥ वे दोनों प्रसन्नता पूर्वक पिता के पास गये तथा दो भाई पहले से ही शिवशर्मा के पास विद्यमान थे ॥१५॥ उसके बाद धमशर्मा ने कहा— हे महाभाग ! अपनी तपस्या तथा जीवन के द्वारा वेदशर्मा को जीवित किया है, आप अपने पुत्र को स्वीकार करें उसके बाद धर्मशर्मा की भक्ति को जानकर शिवशर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१६-१७॥ उन्होंने उन्हें (धर्मशर्मा को) कुछ नहीं कहा और सोचने लगे । उन्होंने नम्रता पूर्वक महाबुद्धिमान सामने विद्यमान विष्णुशर्मा से कहा पुत्र ! मेरी बात मानो आज तुम इन्द्रलोक में जाओ वहाँ से उस अमृत को लाओ जो व्याधि को विनष्ट करने वाला है तथा समुद्र से निकला था । इस समय मैं अपनी इस प्रियतमा के साथ जीवित रहना चाहता हूँ ॥१८-२०॥ यह मुझको अच्छी तरह नहीं चाहती है । इसको जैसे मैं अच्छी तरह से प्राप्त कर सकूँ वैसा तुम करो अन्यथा यह दूसरे के पास चली जायेगी ॥२१॥ यह सुन्दरी बाला मुझको बूढ़ा जानकर मेरा अपमान करेगी । आज इस प्रियतमा देवी के साथ मैं त्रैलोक्य में निर्दोष, व्याधि रहित हो जाऊँ यदि तुम मेरा भक्त हो तो ऐसा ही करो ॥२२-२३॥ अपने पिता के इस तरह के वाक्य को सुनकर विष्णुशर्मा ने तेज से देदीप्यमान अपने पिता से कहा ॥२४॥ मैं आपके उत्तम सुख के लिए इन समस्त कार्यों को करूँगा । इस तरह से महाबुद्धिमान धर्मात्मा विष्णुशर्मा ने यह कहकर पिता को नमस्कार करके, उनकी प्रदक्षिणा की, वे अपने महान् तपस्या के बल से अन्तरिक्ष में वायु के समान वेग से इन्द्रलोक में जाने लगे ॥२५-२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के शिवशर्मा चरित नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तीसरा अध्याय

सूत उवाच

प्रस्थितस्तेन मार्गेण प्रविष्टो गगनान्तरे। स दृष्टो देवदेवेन सहस्राक्षेण धीमता ॥१॥
उद्यमं तस्य वै ज्ञात्वा चक्रे विघ्नं सुराधिराट्।
मेनकां तामुवाचेदं गच्छत्वंममशासनात् ॥२॥
समाचरस्वास्य शीघ्रंगत्वा विघ्नं सुमध्यमे। अस्यैव विप्रवर्यस्य पुत्रस्य शिवशर्मणः ॥३॥
तथाकुरुष्व भद्रं ते यथानायाति मे गृहम्। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यंमेनका प्रस्थितात्वरात् ॥४॥

सूत उवाच

रूपौदार्यगुणोपेता सर्वालङ्कारभूषिता। नन्दनस्य वनस्यान्ते दोलायां समुपस्थिता॥५॥
सुस्वरेण प्रगायन्ती गीतंवीणास्वरोपमम्। तेनदृष्टा विशालाक्षी चतुराचारुलोचना॥६॥
व्यवसायं ततोज्ञात्वा तस्याविघ्नमनुत्तमम्। इन्द्रेण प्रेषिता चैषा न च भद्रकरा भवेत् ॥७॥
एवंज्ञात्वां जगामाथ सत्वरेण द्विजोत्तमः। तयादृष्टस्तथापृष्टः क्व यास्यसि महामते ॥८॥
विष्णुशर्मा तदोवाच मेनकां कामचारिणीम्। इन्द्रलोकं प्रयास्यामि पितुरर्थेत्वरान्वितः॥९॥
मेनका विष्णुशर्माणं प्रत्युवाच प्रियं पुनः। कामबाणैः प्रभिन्नाऽहं त्वामद्य शरणं गता॥१०॥
रक्षस्व द्विजशार्दूल यदि धर्ममिहेच्छसि। यावद्धि त्वं मयादृष्टः कामाकुलितचेतसा ॥११॥
कामानलेन सन्दग्धा तावदेव न संशयः। सम्भ्रान्ता कामसंतप्ता प्रसादसुमुखो भव ॥१२॥

विष्णुशर्मोवाच

चरित्रं देवदेवस्य विदितं मे वरानने। भवत्याश्च प्रजानामि नाहं चैतादृशः शुभे ॥१३॥

इन्द्रलोक जाते हुए शिवशर्मा के चतुर्थ पुत्र विष्णुशर्मा के मार्ग में मेनका द्वारा विघ्न

सूतजी ने कहा— विष्णुशर्मा प्रस्थान करके उसी मार्ग से आकाश में प्रवेश कर गये। उनको देवराज इन्द्र ने देख लिया ॥१॥ विष्णुशर्मा के प्रयास को देखकर इन्द्र ने विघ्न किया। उन्होंने मेनका से कहा— तुम मेरी आज्ञा से विष्णुशर्मा के पास जाओ ॥२॥ हे सुन्दरि ! शीघ्र जाकर शिवशर्मा के कार्य में तुम विघ्न उपस्थित करो ॥३॥ तुम ऐसा करो कि वह मेरे यहाँ आ न सके। इन्द्र की बातों को सुनकर मेनका ने शीघ्रता से प्रस्थान किया ॥४॥ **सूतजी ने कहा—** अत्यन्त सुन्दर गुणों तथा रूप से युक्त तथा सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत वह नन्दन वन में जाकर झूले पर बैठ गयी ॥५॥ वह वीणा के स्वर के समान सुन्दर स्वर में गाने लगी। विष्णुशर्मा ने उस चतुर तथा बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रों वाली को देखा ॥६॥ उसके विघ्न के अनुपम प्रयास को देखकर विष्णुशर्मा ने जान लिया कि इसको इन्द्र ने भेजा है, यह कल्याण कारिणी नहीं हो सकती है ॥७॥ इस बात को जानकर वे द्विजश्रेष्ठ शीघ्रता पूर्वक जा रहे थे। उनको देखकर मेनका ने पूछा हे महामते ! आप कहाँ जायेंगे ?॥८॥ इस पर विष्णु शर्मा ने स्वेच्छाभिचारिणी मेनका से कहा कि मैं अपने पिता के कार्य के लिए शीघ्रता पूर्वक इन्द्रलोक में जा रहा हूँ ॥९॥ मेनका ने विष्णुशर्मा से कहा कि मैं कामार्त हूँ और मैं आपकी शरणागता हूँ ॥१०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप धार्मिक हैं तो आप मेरी रक्षा करें। मैंने कामार्त हृदय से आपको देखा है ॥११॥ मैं काम से सन्तप्त हूँ अतएव

भवात्यास्तेजसा रूपैरन्येमुह्यन्ति शोभने । विश्वामित्रादयो देवि पुत्रोऽहं शिवशर्मणः ॥१४॥
योगसिद्धिं गतस्यापि तपःसिद्धस्यचाबले। कामादयो महादोषाआदावेवविनिर्ज्जिताः ॥१५॥

अन्यं भज विशालाक्षि इन्द्रलोकं व्रजाम्यहम् ।
एवमुक्त्वा जगामाथ त्वरितोद्विजसत्तमः ॥१६॥

निष्फला मेनका जाता पृष्टा देवेन वज्रिणा। विभीषां दर्शयामास नानारूपां पुनःपुनः ॥१७॥
यथाऽनलेनसन्दग्धास्तृणानांसञ्चयाद्विजाः । भस्मीभूताभवन्त्येव तथातास्ताविभीषिकाः ॥१८॥

विप्रस्य तेजसा तस्य पितृभक्तस्यसत्तमाः ।
प्रलयं गतास्तुघोरास्ता दारुणाभीषिका द्विजाः ॥१९॥

स विघ्नान्दर्शयामास सहस्राक्षः पुनः पुनः । तेजसाऽनाशयद्विप्रः स्वकीयेन महायशाः ॥२०॥
एवंविघ्नान्बहूंस्तस्य इन्द्रस्यापि महात्मनः। नाशयामास मेधावी तपसस्तेजसापिवा ॥२१॥

नष्टेषु तेषु विघ्नेषु दारुणेषु महत्सु च ।
ज्ञात्वा तस्य कृतान्विघ्नादारुणान्भीषणाकृतीन् ॥२२॥

अथ क्रुद्धो महातेजा विष्णुशर्माद्विजोत्तमः। इन्द्रं प्रतिमहाभागो रागरक्तान्तलोचनः ॥२३॥
इन्द्रलोकादहं चेन्द्रं पातयिष्यामि नान्यथा । निजधर्मे रतस्याद्य यो विघ्नं तु समाचरेत्॥२४॥

तस्य दण्डं प्रदास्यामि यो वै हन्यात्स हन्यते ।
एवमन्यं करिष्यामि देवानां पलाकं पुनः ॥२५॥

एवं समुद्यतो विप्र इन्द्रनाशाय सत्तमः । तावदेव समायतो देवेन्द्रः पाकशासनः ॥२६॥

निश्चित रूप से कामाग्नि से दग्ध हो जाऊँगी अतएव आप मुझपर कृपा कीजिये ॥१२॥ **विष्णुशर्मा ने कहा—** हे शुभे ! मैं इन्द्र का तथा तुम्हारा दोनों का चरित्र जानता हूँ मैं वैसा नहीं हूँ जैसा तुम समझती हो ॥१३॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे तेज तथा रूप से दूसरे विश्वामित्र आदि मोहित हो सकते हैं मैं मोहित नहीं हो सकता । अबले ! मैं योगी तथा तपः सिद्ध शिवशर्मा का पुत्र हूँ । मैंने काम आदि महान् दोषों को पहले ही जीत लिया है ॥१५॥ हे बड़े-बड़े नेत्रों वाली ! किसी दूसरे के पास जाओ मैं इन्द्रलोक जा रहा हूँ । इस तरह से कहकर वे द्विजश्रेष्ठ शीघ्रता से चले गये ॥१६॥ इन्द्र ने पूछकर जान लिया कि मेनका विफल हो गयी इसके बाद इन्द्र ने बार-बार भयानक वस्तुओं को दिखाया ॥१७॥ ब्राह्मणों ! जिसतरह अग्नि तृण समूह को भस्म कर देता है, उसी तरह से सारी विभीषिकाएँ विष्णुशर्मा के तेज से भस्म हो गयीं ॥१८॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! पितृभक्त विप्र विष्णुशर्मा के तेज से वे भयङ्कर विभीषिकाएँ (मायायें) नष्ट हो गयीं ॥१९॥ इन्द्र ने बार-बार विघ्नों को उपस्थित किया; किन्तु महायशस्वी ब्राह्मण ने अपने तेज से उन सबों को नष्ट कर दिया ॥२०॥ इस तरह से इन्द्र के भी बहूत से विघ्नों को उन मेधावी ने अपनी तपस्या के तेज से नष्ट कर दिया ॥२१॥ उस महान् तथा भयङ्कर विघ्नों के नष्ट हो जाने पर तथा उन भयङ्कर तथा कठोर विघ्नों के इन्द्र के द्वारा किया हुआ जानकर महातेजस्वी महाभाग विष्णुशर्मा क्रुद्ध हो गये और इन्द्र के प्रति उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं ॥२२-२३॥ अपने धर्म पर चलने वाले मेरे विषय में यदि इन्द्र ने अब विघ्न किया तो मैं इन्द्र को इन्द्रलोक से गिरा दूँगा ॥२४॥ मैं उसको दण्ड दूँगा; जो मारता है वह मारा ही जाता है और मैं देवताओं का दूसरा राजा बना दूँगा ॥२५॥ इस तरह से ज्यों ही वे ब्राह्मण तैयार हुए उसी समय

भोभोविप्र महाप्राज्ञ तपसा नियमेन च। दमेन सत्यशौचाभ्यां त्वत्समो नास्तिचापरः ॥२७॥
अनया पितृभक्त्या ते जितोऽहं दैवतैः सह ।
ममापराधं त्वं सर्वं क्षन्तुमर्हसिसत्तम ॥२८॥
वरं वरय भद्रं ते दुर्लभं च ददाम्यहम्। विष्णुशर्मा तदोवाच देवराजं तथागतम् ॥२९॥
विप्रतेजो महेन्द्रेन्द्र असह्यं देवदैवतैः। पितृभक्तस्य देवेश दुःसहं सर्वथा विभो॥३०॥
तेजोभङ्गोनकर्त्तव्यो ब्राह्मणानां महात्मनाम्। पुत्रपोत्रैः समस्तैस्तु ब्रह्मविष्णुहरान्पुनः ॥३१॥
नाशयन्ते न सन्देहो यदि रुष्टा द्विजोत्तमाः । नागच्छेद्यद्भवानद्य तदाराज्यमनुत्तमम् ॥३२॥
आत्मतपःप्रभावेण अन्यस्मै तु महात्मने । दातुकामस्तु सञ्जातो रोषपूर्णेन चक्षुषा ॥३३॥
भवानद्यसमायातो वरं दातुमिहेच्छसि। अमृतंदेहि देवेन्द्र पितृभक्तिं तथाऽचलाम् ॥३४॥
एवंविधं वरंदेहि यदितुष्टोऽसिशत्रुहन्। एवं ददानि पुण्यं ते वरं चामृतसंयुतम् ॥३५॥
एवमाभाष्य तं विप्रममृतं दत्तवान् स्वयम्। सकुम्भं दत्तवांस्तस्मै प्रीयमाणेन चात्मना ॥३६॥
अचला ते भवेद्विप्रभक्तिः पितरि सर्वदा। एवमाभाष्य तं विप्रं विसृज्य च सहस्रदृक् ॥३७॥
प्रसन्नोऽभूच्च तद्दृष्ट्वाविप्रतेजःसुदुःसहम्। विष्णुशर्मा ततो गत्वा पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥
तात इन्द्रात्समानीतममृतं व्याधिनाशनम्। अनेनापि महाभाग नीरुजो भव सर्वदा॥३९॥
अमृतेन त्वमद्यैवव परांतृप्तिमवाप्नुहि। एतद्वाक्यं महच्छ्रुत्वा शिवशर्मा सुतस्य हि ॥४०॥
सुतान्सर्वान्समाहूय प्रीयमाणेन चेतसा। पितृभक्ताः सुता यूयं मद्वाक्यपरिपालकाः ॥४१॥

वहाँ इन्द्र उपस्थित हो गये ॥२६॥ और कहे हे महाप्रज्ञ विप्र ! आपके समान तपस्या, नियम, दम, सत्य तथा शौच का पालन करने वाला दूसरा कोई नहीं है ॥२७॥ आपने पितृभक्ति के द्वारा सभी देवताओं और मुझको जीत लिया है। हे ब्राह्मण ! आप मेरे अपराधों को क्षमा करें ॥२८॥ आप वरदान माँगे मैं आपको दुर्लभ भी वरदान दूँगा । उसके बाद इन्द्र से विष्णुशर्मा ने कहा ॥२९॥ हे देवेन्द्र ! देवसमूह के लिए ब्राह्मण का तेज असहय होता है । हे विभो ! पितृभक्त ब्राह्मण का तेज तो असहय ही होता है ॥३०॥ महात्मा ब्राह्मणों के तेज को आपको भङ्ग नहीं करना चाहिए । यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ रुष्ट हो जायँ तो ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर को भी पुत्रों तथा पौत्रों के साथ विनष्ट कर देते हैं । यदि तुम नहीं आये होते तो क्रोध भरे नेत्रों वाला मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से दूसरे महापुरुष को तुम्हारा यह राज्य दे देना चाहता था । आज आप आ गये हैं और वरदान देना चाहते हैं तो हे देवेन्द्र ! मुझे अमृत दीजिये और पिता की भक्ति प्रदान कीजिये ॥३१-३४॥ हे शत्रुओं का नाश करने वाले इन्द्र ! यदि आप प्रसन्न हैं तो इसी प्रकार का वर दीजिये । इन्द्र ने ''अमृत के साथ इसी प्रकार का पवित्र वरदान देता हूँ'' इस तरह से कहकर स्वयं अमृत प्रदान किए । वे प्रेमपूर्वक घड़े के साथ अमृत प्रदान किए ॥३५-३६॥ आपकी अचल पितृभक्ति हो, इस तरह से कहकर इन्द्र ने विष्णुशर्मा को विदा किया ॥३७॥ ब्राह्मण के असहय तेज को देखकर इन्द्र प्रसन्न भी हुए उसके बाद विष्णुशर्मा जाकर अपने पिता से कहे ॥३८॥ पिताजी ! मैं इन्द्र से व्याधियों को विनष्ट करने वाले अमृत को लाया हूँ, हे महाभाग ! आप इसके द्वारा सदा निरोग रहें ॥३९॥ आप अमृत के द्वारा सर्वोत्कृष्ट तृप्ति को प्राप्त करें । अपने पुत्र के इस वाक्य को सुनकर शिवशर्मा ने अपने सभी पुत्रों! को प्रसन्नता पूर्वक बुलाकर कहा पुत्रों ! तुमलोग मेरी आज्ञा का पालन करने वाले पितृभक्त पुत्र हो ॥४०-४१॥

वरं वृणुध्वं सुप्रीताः पुत्रका दुर्लभं भुवि। एवमाभाषितं तस्य शुश्रुवुः सर्वसम्मताः ॥४२॥
ते सर्वे तु समालोच्च्य पितरं प्रत्यथाब्रुवन्। अस्माकं जीवतान्माता गता या यममन्दिरम् ॥४३॥
नीरुजा भवताद्देवी प्रसादात्तव सुव्रत। भवान्पिता इयं माता जन्मजन्मान्तरे पितः ॥
वयं सुता भवेमेति सर्वे पुण्यकृतस्तथा ॥४४॥

शिवशर्मोवाच

अद्यैवापि मृतामता भवतां पुत्रवत्सला। जीवमाना सुहृष्टा सा एष्यते नात्र संशयः ॥४५॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये ऋषिणा शिवशर्मणा। तेषां मातासमायाता प्रहृष्टा वाक्यमब्रवीत् ॥४६॥
एतदर्थं समुत्पन्नं सुवीर्यं तनयं सुतम्। नराः सत्पुत्रमिच्छन्ति कुलवंशप्रभावकम्॥४७॥
स्त्रियो लोके महाभागाः सपुण्याः पुण्यवत्सलाः ।
सुतमिच्छन्ति सर्वत्र पुण्याङ्गं पुण्यसाधकम् ॥४८॥
कुक्षिं यस्यागतो गर्भः सुपुण्यः परिवर्त्तते। पुण्यान्पुत्रान्प्रसूयते सा नारीपुण्यभागिनी ॥४९॥
कुलाचारं कुलाधारं पितृमातृप्रतारकम्। विनापुण्यैः कथंनारीसम्प्राप्नोति सुतोत्तमम् ॥५०॥
न जाने कीदृशैःपुण्यैरेषभर्त्ता सु पुण्यभाक् ।
सञ्जातोधर्मवीर्योऽपिधर्मात्माधर्मवत्सलः ॥५१॥
यस्यवीर्यान्मया प्राप्तायूयंपुत्रास्ततोऽधिकाः। एवंपुण्यप्रभावोऽयं भवन्तः पुण्यवत्सलाः ॥५२॥
ममपुत्रास्तुसञ्जाताः पितृभक्तिपरायणाः। अहोलोकेषु पुण्यैश्च सुपुत्रः परिलभ्यते॥५३॥
एकैकशोऽधिकाः पञ्च मयाप्राप्तामहाशयाः ।
यज्वानः पुण्यशीलाश्च तपस्तेजः पराक्रमाः ॥५४॥

तुम लोग संसार में दुर्लभ भी वरदान माँगो। उन सबों ने अपने पिता की सर्वसम्मत वाणी को सुना ॥४२॥ उन सबों ने पिता को देखकर कहा— हमलोगों की माता जो मर गयी है, वह जीवित हो जाय ॥४३॥ वह सुन्दर व्रतों वाली देवी आपकी कृपा से नीरोग हो जाय। हे पिताजी ! प्रत्येक जन्मों में हमलोगों के आप पिता हो, यहीं हमलोगों की माँ हो और हमलोग आपके पुण्यवान् पुत्र हों ॥४४॥ **शिवशर्मा ने कहा—** आपलोगों की पुत्रवत्सला मरी हुयी माता आज ही प्रसन्नता पूर्वक आयेगी इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥४५॥ ऋषि शिवशर्मा के इस तरह से कहते ही उन सबों की माता प्रसन्नता पूर्वक आकर कही ॥४६॥ लोग इसलिए कुल तथा वंश को प्रभावित करने वाले सुवीर्य सत्पुत्र को प्राप्त करना चाहतें है ॥४७॥ पवित्र और पुण्यवती वत्सला स्त्रियाँ भी पुण्य करने वाले पुण्य को अङ्गभूत पुत्र को प्राप्त करना चाहती हैं ॥४८॥ जिसके गर्भ में पवित्र गर्भ संचरण करता है और पुण्य के द्वारा जो उसको जन्म देती है वही नारी पुण्यवती होती है ॥४९॥ नारी पुण्य के बिना कुल के आधार स्वरूप तथा कुलानुरूप आचरण करने वाले उत्तम पुत्र को कैसे प्राप्त कर सकती है ?॥५०॥ न जाने किस प्रकार के पुण्य के प्रभाव से हमें इस प्रकार के धर्म पालक, धर्मवीर्य तथा धर्मात्मा पति प्राप्त हुए हैं ॥५१॥ जिस पति के वीर्य से मैंने उनसे भी अधिक प्रभावशाली तुम पुत्रों को प्राप्त किया। यह पुण्य का प्रभाव है कि तुमलोग पुण्य की रक्षा करने वाले हो॥५२॥ मेरे पुत्र पितृभक्ति परायण हुए। संसार में पुण्य के द्वारा ही सुपुत्र की प्राप्ति होती है ॥५३॥ मैंने एक से बढ़कर एक यज्ञ करने वाले, पुण्यशील तपस्वी, तेजस्वी तथा पराक्रमी पाँच पुत्रों को प्राप्त किया

एवं संवर्धितास्तेतु तया मात्रा पुनः पुनः । हर्षेण महताविष्टाः प्रणेमुर्मातरं सुताः ॥५५॥

पुत्रा ऊचुः

सुपुण्यैः प्राप्यते माता सन्माता सुपिता किल ।
भवतीपुण्यकृन्माता नोभाग्यैस्तुप्रवर्तिता ॥५६॥

यस्या गर्भोदरं प्राप्य सुपुण्यैश्च प्रवर्द्धिताः। जन्मजन्मनि त्वं माता पिता चैवभविष्यथः ॥५७॥

पितोवाच

शृणुध्वं मामकाः पुत्राः सुवरं पुण्यदायकम् ।
मयितुष्टे सुता भोगाननुभुञ्जन्तुचाक्षयान् ॥५८॥

पुत्रा ऊचुः

यदि तात प्रसन्नोऽसि वरं दातुमिहेच्छसि । अस्मान्प्रेषय गोलोकं वैष्णवं दाहवर्जितम् ॥५९॥

पितोवाच

गच्छध्वंवैष्णवंलोकंयूयंविगतकल्मषाः । मत्प्रसादात्तपोभिश्च पितृभक्त्याऽनया स्वया ॥६०॥
एवमुक्ते तु तेनापि सुवाक्ये ऋषिणा ततः । शङ्खचक्रगदापाणिर्गरुडारूढ आगतः ॥६१॥
सपुत्रं शिवशर्माणमित्युवाच पुनः पुनः। सपुत्रेण त्वयाद्यैवजितोभक्त्याऽस्मि वै द्विज ॥६२॥

पुत्रैः सार्द्धसमागच्छ चतुर्भिः पुण्यकारिभिः ।
अनया भार्यया सार्द्धं पुण्यया पतिकाम्यया ॥६३॥

शिवशर्मोवाच

अमी गच्छन्तु पुत्रा मे वैष्णवं लोकमुत्तमम्। कञ्चित्कालंतुनेष्यामि भूमौ वै भार्ययासह ॥६४॥
अनेनापि सुपुत्रेण अन्त्येन सोमशर्मणा । एवमुक्ते शुभे वाक्ये ऋषिणा सत्यभाषिणा ॥६५॥

है ॥५४॥ इस तरह से बार-बार माता से प्रोत्साहित किए जाने वाले वे सब पुत्र अत्यन्त हर्ष पूर्वक अपनी माता को प्रणाम किए ॥५५॥ **पुत्रों ने कहा—** बहुत अधिक पुण्य से ही सन्माता तथा सत्पिता की प्राप्ति होती है हमारे सौभाग्य के कारण हमलोगों को आप जैसी सन्माता प्राप्त हुयीं ॥५६॥ जिसके गर्भ में आकर हमलोग सुन्दर पुण्य के द्वारा बढ़े अनेक जन्मों तक आप ही दोनों हमसबों के माता-पिता हों ॥५७॥ **पिता ने कहा—** पुत्रों ! तुमलोग मेरे सुन्दर वरदान को सुनो । मेरे प्रसन्न हो जाने से तुमलोग अक्षय भोगों को भोगो ॥५८॥ **पुत्रों ने कहा—** हे तात ! यदि आप प्रसन्न हैं और हमलोगों को वरदान देना चाहते हैं तो हमलोगों को दाह रहित वैष्णव गोलोक में भेज दीजिये ॥५९॥ **पिता ने कहा—** तुमलोग निष्पाप हो मेरी कृपा तथा तपस्या से तथा अपनी पितृभक्ति के द्वारा वैष्णव लोक में चले जाओ ॥६०॥ इस तरह से उनके द्वारा सुन्दर वाक्य कहने पर वहाँ पर शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु आ गये॥६१॥ उन्होंने पुत्रों के साथ शिवशर्मा से बार-बार कहा हे द्विज ! पुत्रों के साथ आपके द्वारा मैं आज ही जीत लिया गया हूँ ॥६२॥ आप अपने पुण्यात्मा चारों पुत्रों तथा इस पवित्र पति को चाहने वाली पत्नी के साथ आइये॥६३॥ **शिवशर्मा ने कहा—** मेरे ये पुत्र उत्तम वैष्णव लोक में जायँ मैं अपनी पत्नी के साथ कुछ समय भूलोक में ही बिताऊँगा ॥६४॥ यह छोटा पुत्र सोमशर्मा भी मेरे साथ रहेगा । सत्यवक्ता ऋषि शिवशर्मा के ऐसा कहने पर श्रीभगवान् ने उन शिवशर्मा के पुत्रों से कहा तुमलोग दाह और प्रलय रहित

**तानुवाचाथ देवेशः सुपुत्राञ्छिवशर्मणः। गच्छन्तु मोक्षदं लोकं दाहप्रलयवर्जितम् ॥६६॥
एवमुक्ते ततो विप्राश्चत्वारः सत्यचेतसः। सर्वाभरणसौभाग्या विष्णुरूपा महौजसः ॥६७॥
हारकङ्कणाशोभाढ्या रत्नमालाभिशोभिताः। सूर्यतेजःप्रतीकाशास्तेजोज्वालाभिरावृताः ॥६८॥
प्रविष्टावैष्णवं कायं पश्यतः शिवशर्मणः। दीपं दीपा यथा यान्ति तद्वल्लीना महामते ॥६९॥
गतास्ते वैष्णवं धाम पितृभक्त्याद्विजोत्तमाः। प्रभावंतुप्रवक्ष्यामिसुसत्यं सोमशर्मणः ॥७०॥**

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे शिवशर्मोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

सूत उवाच

गतेषु तेषु गोलोकं वैष्णवं तमसः परम्। शिवशर्मा महाप्राज्ञः कनिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

ब्राह्मण उवाच

**सोमशर्मन्महाप्राज्ञ त्वं पितुर्भक्तितत्परः। अमृतस्य महाकुम्भं रक्ष दत्तं मयाऽधुना ॥२॥
तीर्थयात्रा प्रयास्यामि अनया भार्यया सह। एवमस्तु महाभाग करिष्ये रक्षणं शुभम् ॥३॥
कुम्भं दत्त्वा स मेधावी तस्य हस्ते महात्मनः ।
दशवर्षप्रमाणं तु तपस्तेपे निरन्तरम् ॥४॥**

वैष्णव लोक (वैकुण्ठ) में चले जाओ ॥६५-६६॥ इस तरह से कहते ही सत्यवक्ता चारो विप्र उसी क्षण विष्णु के समान रूप वाले हो गये ॥६७॥ उन सबों का वर्ण इन्द्र नीलमणि के समान हो गया शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए सभी भूषणों से भूषित, महाओजस्वी विष्णु स्वरूप, हार तथा कंकण से सुशोभित रत्नों की माला से सुशोभित सूर्य के समान तेज की ज्वाला से युक्त वे सब शिवशर्मा के सामने ही भगवान् विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गये और जिस तरह दीपक में दीपक मिल जाता है उसी तरह वे उनमें विलीन हो गये ॥६८-६९॥ पितृभक्ति के प्रभाव से वे सभी द्विजश्रेष्ठ भगवान् विष्णु के लोक में चले गये । अब मैं सोमशर्मा के प्रभाव को वर्णित करूँगा ॥७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के शिवशर्मोपाख्यान के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।
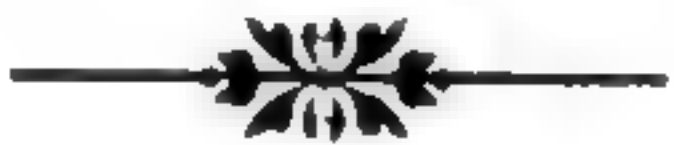
शिवशर्मा द्वारा अपने सबसे छोटे पुत्र के सत्त्व की परीक्षा

सूतजी ने कहा— प्रकृति मण्डल से ऊपर विद्यमान वैष्णव गोलोक में उन सबों के चले जाने के बाद महाप्राज्ञ शिवशर्मा ने अपने कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा से कहा ॥१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** महाभाग सोमशर्मन् ! तुम सदा पितृभक्ति में लगे रहते हो । मैं अमृत का कलश तुम्हे दे रहा हूँ, तुम इसकी रक्षा करो ॥२॥ मैं अपनी इस पत्नी के साथ तीर्थ यात्रा में जा रहा हूँ । **सोमशर्मा ने कहा—** महाभाग ! ठीक है, मैं रक्षा

कुम्भं रक्षति धर्मात्मा दिवारात्रमतन्द्रितः। पुनः स हि समायातः शिशर्मामहायशाः ॥५॥
मायां कृत्वा महाप्राज्ञो भार्यया सहितं सुतम् ।
कुष्ठरोगातुरो भूत्वातस्यभार्य्याच तादृशी ॥६॥
मांसपिण्डोपमौ जातौ द्वावेतौ माययाकृतौ। सन्निधिंतस्य धीरस्य विप्रस्यसोमशर्मणः॥७॥
समागतौ हि तौ दृष्ट्वा सर्वतो हि सुदुःखितौ ।
कृपया परयाविष्टःसोमशर्मा महायशाः ॥८॥
तयोः पादौ नमस्कृत्य भक्तया नमितकन्धरः ।
भवादृशौनपश्यामि तपसाभिसमन्वितम् ॥९॥
गुणव्रातैः सुपुण्यैश्च किमिदं वर्तितं त्वयि। दासवद्देवताः सर्वा वर्तन्ते सर्वदा तव॥१०॥
आदेशं प्राप्य विप्रेन्द्र आकृष्टास्तेजसा तव । तवाङ्गे केन पापेन गदोऽयं वेदनान्वितः ॥११॥
सञ्जातो ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तन्मे कथय कारणम् ।
इयं पुण्यवती माता महापुण्या पतिव्रतम् ॥१२॥
या हि भर्तृप्रसादेन त्रैलोक्यं कर्तुमिच्छति। सा कथंदुःखमाप्नोति किंनास्तितपसःफलम्॥१३॥
रागद्वेषौ परित्यज्य विविधेनापि कर्मणा। या च शुश्रूषते कान्तं देववद् गुरुवत्सला॥१४॥
सा कथं दुःखमाप्नोति कुष्ठरोगं सुदुःखदम् ॥१५॥

शिवशर्मोवाच

मा शुचस्त्वं महाभाग भुज्यते कर्मजं फलम् ।
नरेण कर्मयुक्तेन पापपुण्यमयेन हि ॥१६॥

करूँगा ॥३॥ सोम शर्मा के हाथ में कुम्भ को देकर मेधावी शिवशर्मा दश वर्षों तक लगातार तपस्या करते रहे ॥४॥ सोमशर्मा बड़ी ही सावधानी से उस कलश की रक्षा करते थे। उसके बाद महायशस्वी शिवशर्मा फिर आये ॥५॥ माया के प्रयोग के द्वारा शिवशर्मा ने अपने को तथा अपनी पत्नी को कुष्ठी के रूप में सोमशर्मा को दिखाया ॥६॥ सोमशर्मा के सन्निकट में वे दोनों माया के द्वारा मासंपिण्ड के समान दिखते थे॥७॥ हर प्रकार से अत्यन्त दुःखी उन दोनों को आये हुए देखकर सोमशर्मा को अत्यन्त कष्ट हुआ ॥८॥ सोमशर्मा ने उन दोनों के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा आपके समान दूसरा कोई तपस्वी नहीं है ॥९॥ सुन्दर पुण्य और गुण समूह से युक्त आपको यह क्या हो गया ? आपके तेज से आकृष्ट होने के कारण सभी देवता आपके आदेश को प्राप्त करके दास के समान बने रहते हैं। किस पाप के कारण यह दुःखद रोग आपके शरीर में हो गया ?॥१०-११॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप इसका कारण मुझे बतलाये। ये महापुण्यवती मेरी माता पतिव्रता हैं ॥१२॥ जो अपने पति की कृपा से त्रैलोक्य की सृष्टि कर सकती हैं, वे कैसे दुःखी हो गयीं ? क्या तपस्या का कोई फल नहीं होता है ?॥१३॥ ये गुरुवत्सला है राग और द्वेष का परित्याग करके अपने पति की देवता के समान अपने अनेक प्रकार के कर्मों से सेवा करती हैं ॥१४॥ वे इस दुष्ट रोग के कारण कैसे दुःख प्राप्त कर रही हैं ॥१५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** हे महाभाग ! शोक मत करो कर्मों का फल भोगना ही पड़ता हैं। मनुष्यों के कर्म तो पाप तथा पुण्यमय होते ही हैं ॥१६॥

शोधनं च कुरुष्व त्वमुभयो रोगयुक्तयोः। शुश्रूषणं महाभाग यदि पुण्यमिहेच्छसि ॥१७॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये सोमशर्मा महायशाः। शुश्रूषां वा करिष्यामि युवयोःपुण्ययुक्तयोः ॥१८॥
मयापापेन दुष्टेन कृपणेन द्विजोत्तम। किं कर्तव्यमिहाद्यैव यो गुरुं नहि पूजयेत् ॥१९॥
एवमाभाष्य दुःखाद्वा तयोर्दुःखेन दुःखितः। श्लेष्ममूत्रपुरीषं च उभयोः पर्यशोधयत् ॥२०॥
पादप्रक्षालनं चक्रे अङ्गसंवाहनं तथा। स्नानस्थानादिकंसोऽपितयोर्भक्त्यान्वितःस्वयम् ॥२१॥

द्वावेतौ हि गुरू विप्रः सोमशर्मा महायशाः।
तीर्थं नयतिधर्मात्मास्कन्धमाराप्यसत्तमः ॥२२॥
द्वावेतौ हि स्वहस्तेन स्नापयित्वा तु मङ्गलैः।
सुमन्त्रैर्वेदविच्चैव स्नानस्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

तर्पणं च पितृणां तु देवतानां तु पूजनम्। द्वाभ्यामपि च धर्मात्मा सकारयतिनित्यशः ॥२४॥
स्वयं होमं ददात्यग्नौ पचत्यन्नमनुत्तमम्। संज्ञापयति सुप्रीतौ द्वावेतौ च महागुरु ॥२५॥
शय्यासने च तौ विप्रःप्रस्वापयति नित्यशः। वस्त्रपुष्पादिकं सर्वं ताभ्यांनित्यंप्रयच्छति ॥२६॥
ताम्बूलं बहुगन्धाढ्यमुभयोरर्पयेत्सतु। सोमशर्मा महाभागस्ताभ्यामपि च पूरयेत् ॥२७॥
मूलं पयः सुभक्ष्याद्यं नित्यमेव ददात्यसौ। तयोस्तु वाञ्छितं नित्यंसोमशर्मामहायशाः ॥२८॥
अनेन क्रमयोगेन नित्यमेव प्रसादयेत्। सोमशर्मा सुधर्मात्मा पितरौ परिपूजयेत् ॥२९॥
सोमशर्माणमाहूय पिता कुत्सति निष्ठुरः। निन्दितैर्निष्ठुरैर्वाक्यैस्ताडयेन्मुष्टिभिस्तदा ॥३०॥
कृतकार्ये कृते पुण्ये नित्यमेव सुते पुनः। न कृतं शोभनं मह्यं त्वयैव कुलपांसन ॥३१॥
एवं नानाविधैर्वाक्यैर्निष्ठुरैर्दुःखदायकैः। अताडयद्दण्डघातैः शिवशर्मा सदातुरः ॥३२॥

यदि तुम पुण्य प्राप्त करना चाहते हो तो इसे साफ करो तथा हमदोनों रोगियों की सेवा करो ॥१७॥ इस तरह से शुभ वाक्य कहने पर महायशा सोमशर्मा ने कहा— आप दोनों पुण्यवानों की सेवा मैं करूँगा॥१८॥ हे द्विजोत्तम ! अपने गुरुजनों की सेवा नहीं करने वाले मुझ जैसे दुष्ट पापी के लिए क्या कर्तव्य हो सकता है ?॥१९॥ इस तरह से कहकर उन दोनों के दुःख से दुःखी सोमशर्मा उन दोनों के कफ मूत्र तथा मल की सफाई करते थे ॥२०॥ वे उन दोनों के पैर धोते थे और शरीर दबाते थे। वे अपने हाथों से ही उन दोनों को स्नान कराते थे और बैठाते थे ॥२१॥ महायशा सोमशर्मा उन दोनों को अपने कन्धे पर बैठाकर तीर्थ में ले जाते थे ॥२२॥ वेदों के ज्ञाता सोमशर्मा विधि पूर्वक स्नान के मङ्गलमय मन्त्रों से अपने हाथों से स्नान कराकर प्रतिदिन उनके ही हाथों से पितरों का तर्पण और देवताओं का पूजन कराते थे ॥२३-२४॥ वे स्वयं अग्नि में होम करते थे और उत्तमोत्तम अन्न पकाकर उनको अत्यन्त प्रसन्नता से भोजन कराते थे। वे प्रतिदिन उन दोनों को शय्या तथा आसन पर सुलाते थे तथा उन्हें नित्य ही वस्त्र एवं पुष्प प्रदान करते थे ॥२५-२६॥ महाभाग सोमशर्मा उन दोनों को अत्यन्त सुगन्धित ताम्बूल प्रदान करते थे ॥२७॥ महायशा सोमशर्मा प्रतिदिन उनदोनों को अभिप्रेत मूल तथा दुग्ध प्रदान करते थे ॥२८॥ धर्मात्मा सोमशर्मा नित्य ही इसी क्रम से उनको प्रसन्न रखते थे और उनकी पूजा करते थे ॥२९॥ निष्ठुर पिता सोमशर्मा को बुलाकर उन्हें डाँटते थे, निष्ठुर वाक्यों से निन्दा करते थे तथा छड़ी से पीटते भी थे ॥३०॥ कार्यों को सम्पन्न कर लेने पर भी वे अपने पुत्र से कहते थे अरे कुलपांसन (कुल को विनष्ट करने वाले) तुमने मेरी सेवा नहीं

एवं कृतेऽपि धर्मात्मा नैव कुप्यति कर्हिचित् ।
मनसा वचसा चैव कर्मणा त्रिविधेन च ॥३३॥
सन्तुष्टः सर्वदा सोऽपि पितरं परिपूजयेत्। तद्वत्स सोमशर्मा वै मातरं च दिनेदिने ॥३४॥
यज्ज्ञात्वा शिवशर्मा च चरितं स्वीयमीक्षते। अमृतं मत्कृते चापिआनीतं विष्णुशर्मणा॥३५॥
पुण्ययुक्तः स धर्मात्मा पितृभक्तिपरः सदा। एवं बहुतिथे काले शतशश्चेव गते सति ॥३६॥
शिवशर्माऽपि तस्यैव भक्तिं दृष्ट्वा विचिन्त्यवै ।
मया वैपूर्वमित्युक्तं सुपुत्रं यज्ञसंज्ञकम् ॥३७॥
मातृखण्डानिमान्पुत्र यत्र तत्र क्षिपस्व हि । मद्वाक्यं पालितं तेन कृता मातरि नोकृपा ॥३८॥
एतत्स्वल्पतरं दुःखं निर्जीवे घातमिच्छतः । साहसं तु कृतं तेन पुत्रेणवेद शर्मणा ॥३९॥
अस्याधिकमहं मन्ये यतोऽयं चलते न च । निमेषमात्रमेवापि साहसं कारयेत्पुनः ॥४०॥
अपरं सत्यसम्पन्नं प्रभावं तपसः पुनः । नित्यं समाराधनेऽपि अधिकं चास्य दृश्यते॥४१॥
तस्मादस्य परीक्षा च समये तपसः कृता। भक्तिभावात्तथा सत्यान्नैव पुत्रः प्रणश्यति॥४२॥
मायया च निजाङ्गेऽपि कुष्ठरोगो निदर्शितः ।
श्लेष्ममूत्रमलानां च घृणां नैव करोतिच ॥४३॥
व्रणान्विशोधयेन्नित्यं स्वहस्तेन महायशाः । पादसंवाहनं दद्याच्छौचं चैव महामतिः ॥४४॥
दुःसहं वचनं मह्यं दारुणं सहते सदा। भर्त्सने ताडने चैव सदाभीष्टप्रवाचकः ॥४५॥
एवं दुःखसमाचारो मम पुत्रो महामतिः । दुःखानां सागरं मन्ये बहुक्लेशैस्तु क्लेशितः ॥४६॥
अपनेष्याम्यहं दुःखं विष्णोश्चैव प्रसादतः। विचार्य मनसा विप्रः शिवशर्मा महामतिः ॥४७॥

की ॥३१॥ सदा आतुर (रोगी) बने हुए शिवशर्मा इस प्रकार के दुःखद तथा निष्ठुर वाक्यों के द्वारा तथा दण्डे के प्रहार से भी सोमशर्मा को पीटते थे ॥३२॥ सोमशर्मा सदा सन्तुष्ट रहकर माता-पिता की सेवा करते थे ॥३३॥ उसको जानकर शिवशर्मा विचार करते थे कि विष्णुशर्मा मेरे लिए अमृत लाये ॥३४॥ वे धर्मात्मा सदा पितृभक्ति सम्पन्न रहते थे । इस तरह से बहुत दिन बीत जाने पर ॥३५॥ शिवशर्मा भी उसकी भक्ति को देखकर तथा विचार करते थे कि मैंने अपने सुपुत्र यज्ञशर्मा से कहा कि पुत्र तुम अपनी माता के टुकड़ों को जहाँ तहाँ फेंक दो और उसने मेरी आज्ञा का पालन किया । अपनी माता पर कृपा नहीं किया॥३८॥ निर्जीव को काटने में तो स्वल्प दुःख होता है किन्तु वेदशर्मा ने तो साहसिक कर्म किया॥३९॥ मैं इसकी भक्ति अधिक मानता हूँ क्योंकि यह क्षणभर भी अपनी भक्ति से विचिलित नहीं होता है और साहस करता है ॥४०॥ इसका सत्त्व सम्पन्न दूसरा प्रभाव है कि इसकी मेरी आराधना में भक्ति प्रतिदिन बढ़ती ही है ॥४१॥ अतएव इसकी परीक्षा मैंने तपस्या के समय की, किन्तु यह पुत्र भक्तिभाव से तथा सत्य से विचलित नहीं हुआ ॥४२॥ मैंने माया से अपने अङ्गों में कुष्ठ रोग भी दिखलाया किन्तु इसने कफ, मल, मूत्र से घृणा नहीं की ॥४३॥ इस महायशस्वी तथा महाबुद्धिमान् ने अपने ही हाथ से घावों की सफाई भी की और अङ्गों को दाबाने का काम भी किया । पावित्र्य भी बनाये रखा ॥४४॥ मेरे कठोर और दुःसह वाक्यों को भी यह वर्दास्त करता है। निन्दा करने तथा मारने पर भी हमेशा अनुकूल ही वोलता है॥४५॥ इस तरह से यह मेरा पुत्र सदा दुःखी ही रहा । मैंने इसे अनेक प्रकार का कष्ट दिया यह तो मानो

पुनर्मायां चकाराथ कुम्भदपहतं पयः। पश्चातं च समाहूय सोमशर्माणमब्रवीत् ॥४८॥
तव हस्ते मयादत्तममृतं व्याधिनाशनम् । तन्मे शीघ्रं प्रयच्छस्व यथा पानं करोम्यहम् ॥४९॥
येन नीरुग्भवाम्यद्य प्रसादाद्विष्णुशर्मणः । एवमुक्ते तदा वाक्ये ऋषिणा शिवशर्मणा ॥५०॥
समुत्थाय त्वरायुक्तः सामशर्मा कमण्डलुम्। तं च रिक्तं ततो दृष्ट्वाह्यमृतेनविनाकृतम् ॥५१॥
कस्यपापस्य वै कर्म केन मे विप्रियं कृतम् ।
इतिचिन्तापरो भूत्वा सोमशर्मासुदुःखितः ॥५२॥
पितुरग्रे च वृत्तान्तं कथयिष्याम्यहं यदा । ततः कोपं प्रयास्येत गुरुर्मेव्याधिपीडितः॥५३॥
सुचिरं चिन्तयित्वा तु सोमशर्मा महामतिः । यदि मे सत्यमस्तीति गुरुशूश्रूषणं यदि॥५४॥
तपस्तप्तं मयापूर्वं निर्व्यलीकेन चेतसा । दमशौचादिभिः सत्यं धर्ममेव प्रपालितम् ॥५५॥
तदा घटोऽमृतयुतो भवत्वेष न संशयः। यावदेव महाभागश्चिन्तयित्वा विलोकयेत् ॥५६॥
तावच्चामृतपूर्णस्तु पुनरेवाभवद्घटः। तं दृष्ट्वा हर्षसंयुक्तः सोमशर्मा महायशः ॥५७॥
गत्वागुरुं नमस्कृत्य कुम्भमादाय सत्वरम्। गृहाण त्वं पितश्चेमं पयःकुम्भं समागतम्॥५८॥
पानं कुरु महाभाग गदान्मुक्तो भवाचिरम् । एतद्वाक्यं महापुण्यं सत्यधर्मार्थकं पुनः ॥५९॥
शिवशर्मा सुतस्यापि श्रुत्वा च मधुराक्षरम्। हर्षेण महताविष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥६०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे शिवशर्मोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

क्लेशों के सागर में ही पड़ा रहा ॥४६॥ मैं भगवान् विष्णु की कृपा से इसके क्लेशों को दूर करूँगा। महाबुद्धिमान् शिवशर्मा ने मन से विचार करके फिर माया के द्वारा कलश के अमृत का अपहरण कर लिया, उसके बाद सोमशर्मा को बुलाकर कहा ॥४७-४८॥ तुम्हें मैंने व्याधि विनाशक अमृत को दिया था, उसे तुम शीघ्र लाकर मुझे दो जिससे मैं उसका पान कर सकूँ ॥४९॥ जिससे कि मैं विष्णुशर्मा की कृपा से निरोग हो जाऊँ । इसतरह से ऋषि शिवशर्मा के कहने पर सोमशर्मा ने शीघ्रता से उस कमण्डलु को उठाकर देखा तो उसमें अमृत था ही नहीं ॥५०-५१॥ यह कार्य किस पापी ने किया है ? किसने मेरा अपकार किया है ? यह सोचकर सोमशर्मा अत्यन्त दुःखी हो गये ॥५२॥ यदि मैं इस बात को पिताजी को बतलाऊँ तो व्याधिग्रस्त पिता क्रोध करेंगे ॥५३॥ देरतक विचार करके महाज्ञानी सोमशर्मा ने कहा— यदि मैंने सत्य का पालन किया है, गुरुजनों की सेवा की है, निष्कपट भाव से यदि मैंने पहले तपस्या की है, दम तथा शौच आदि के द्वारा मैंने यदि धर्म का पालन किया है तो निःसन्देह रूप से यह कलश अमृत से भर जाय । इस तरह से सोचकर जब उन्होंने देखा तो वह कलश अमृत से भर गया था । उसको देखकर सोमशर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५४-५७॥ वे कलश लेकर शीघ्र अपने पिता के पास गये और कहे पिताजी! इसे लीजिये मैंने अमृत का कलश ला दिया ॥५८॥ हे महाभाग ! इसे पीकर आप नीरोग हो जायँ । शिवशर्मा अपने पुत्र के इस वाक्य को सुनकर मधुर शब्दों में कहें यह वाक्य सत्य, धर्म तथा अर्थ युक्त है ॥५९-६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के शिवशर्मोपाख्यान के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पाँचवा अध्याय

शिवशर्मोवाच

तपसा दमशौचाभ्यांगुरुशुश्रूषया तथा। भक्त्या भावेन तुष्टोस्मि तवाद्य च सुपुत्रक ॥१॥
त्यजामि वैकृतं रूपमतः सुखमवाप्नुहि। एवमुक्त्वा सुतं विप्रो दर्शयामास तां तनुम् ॥२॥
यथापूर्वं स्थितौ तौ तु तथा स दृष्टवान्गुरू। दीप्तिमन्तौ महात्मानौ सूर्यविम्बोपमावुभौ ॥३॥
ननाम पादौ सद्भक्त्या उभयोस्तु महात्मनोः ।
ततः सुतं समामन्त्र्य हर्षेणमहतान्वितः ॥४॥
विष्णोः प्रसादाद्धर्मात्माभार्यया सहकेशवम् ।
जगामनिजपुण्यैश्च योगाभ्यासेनसत्तमः ॥५॥
प्रविष्टो वैष्णवं धाम स मुनिर्दुर्लभं पदम् । न त्वन्यैः प्राप्यते पुण्यैस्तपोभिर्मुक्तिदं पदम् ॥६॥
विष्णोस्तु चिन्तनैर्न्यासध्यानज्ञानैः स्तवैस्तथा ।
न दानैस्तीर्थयात्राभिर्दृश्यते मधुसूदनः ॥७॥
समाधिज्ञानयोगेन दृश्यन्ते परमंपदम्। महायोगैर्यथाविप्रः प्रविष्टो वैष्णवीं तनुम् ॥८॥

सूत उवाच

ततस्तत्र तपस्तेपे सोमशर्मा महामतिः। अश्मलोष्टसमं मेने काञ्चनं भूषणं पुनः ॥९॥
जिताहारःसधर्मात्मानिद्रयापरिवर्जितः । स सर्वान्विषयांस्त्यक्त्वाएकान्तमपिसेवेते ॥१०॥
योगासनसमारूढो निराशो निष्परिग्रहः। तस्य वेला सुसम्प्राप्ता मृत्युकालस्य वै तदा ॥११॥

दैत्य के भय से मरे हुए सोमशर्मा का प्रह्लाद के रूप में जन्म

शिवशर्मा ने कहा— हे पुत्र ! आज मैं तुम्हारे भक्ति भाव, तपस्या, शौच, दम तथा गुरुशुश्रूषा से सन्तुष्ट हूँ ॥१॥ मैं अपने विकृत रूप का परित्याग कर देता हूँ तुम सुखी हो जाओ । इस तरह से कहकर शिवशर्मा ने अपने पूर्व शरीर को दिखाया ॥२॥ सोमशर्मा ने देखा कि उनके माता-पिता पहले के ही समान है । उनका शरीर सूर्य विम्ब के समान दीप्ति युक्त है ॥३॥ सोमशर्मा ने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया और शिवशर्मा ने प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्र को उपदेश दिया ॥४॥ वे श्रेष्ठ ब्राह्मण योगाभ्यास के कारण तथा अपने पुण्यों के द्वारा भगवान् की कृपा से भगवान् केशव के धाम में अपनी पत्नी के साथ चले गये ॥५॥ वे मुनियों को भी दुर्लभ वैकुण्ठ में चले गये । दूसरे पुण्यों तथा तपस्याओं से उस मुक्तिप्रद पद की प्राप्ति नहीं होती है ॥६॥ उस पद की प्राप्ति तो भगवान् विष्णु के चिन्तन न्यास (शरणागति) ध्यान तथा स्तोत्र पाठ से ही होती है । दान तथा तीर्थयात्रा से भगवान् मधुसूदन का दर्शन नहीं होता है ॥७॥ समाधि तथा ज्ञानयोग आदि महायोगों के द्वारा ही परमपद का साक्षात्कार होता है । जैसा कि शिवशर्मा भगवान् विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गये ॥८॥ **सूतजी ने कहा—** उसके बाद वहाँ सोमशर्मा तपस्या करते रहे । वे सुवर्ण के भूषणों को पत्थर और ढेले के समान तुच्छ मानते थे ॥९॥ वे आहार पर विजय प्राप्त कर लिए थे तथा सोते भी नहीं थे । वे सभी विषयों का परित्याग करके एकान्त का सेवन करते थे ॥१०॥ आशा तथा परिग्रह रहित होकर योगारूढ़ वे रहते थे । जब उनकी मृत्यु की बेला आयी तो उन ब्राह्मण के

आगता दानवा विप्रं सोमशर्माणमन्तिके। मृत्युकाले तु सम्प्राप्ते प्राणयात्रा प्रवर्तिनः ॥१२॥
शालग्रामे महाक्षेत्रे ऋषीणां मानवर्द्धने। केचिद्वदन्ति वै दैत्याः केचिद्वदन्ति दानवाः ॥१३॥
एवंविधो महाशब्दः कर्णरन्ध्रं गतस्तदा। तस्यैव विप्रवर्यस्य सुचिरात्सोमशर्मणः ॥१४॥
ज्ञानध्यानविलग्नस्य प्रविष्टं दैत्यजं भयम्। तेन ध्यानेन तस्यापि दैत्यभीत्यैव वै तदा ॥१५॥
सत्वरं चैव तत्प्राणा गतास्तस्य महात्मनः। दैत्यभयेन संयुक्तः स हि मृत्युवशंगतः ॥१६॥
तस्माद्दैत्यगृहेजातो हिरण्यकशिपोः सुतः। देवासुरे महायुद्धे निहतश्चक्रपाणिना ॥१७॥
युद्ध्यमानेन तेनापि प्रह्लादेन महात्मना। सुदृष्टं वासुदेवत्वं विश्वरूपसमन्वितम् ॥१८॥
योगाभ्यासेन पूर्वेण ज्ञानमासीन्महात्मनः। सस्मार पूर्वकं सर्वं चरितं शिवशर्मणः ॥१९॥
प्रागहं सोमशर्माख्यः प्रविष्टो दानवीं तनुम्। अस्मात्कायात्कदापुण्यंकेवलं धाम उत्तमम् ॥२०॥
प्रयास्यामि महापुण्यैर्ज्ञानाख्यै मोक्षदायकैः। संमरे म्रियमाणेन प्रह्लादेन महात्मना ॥२१॥
एवं चिन्ता कृता पूर्वं श्रूयतां द्विजसत्तमाः। एवं तु च समाख्यातं सर्वसन्देहनाशनम् ॥२२॥

सूत उवाच

प्रह्लादे निहते सङ्ख्ये देवदेवेन चक्रिणा। रुरुदे कमला सा तु हतपुत्रा च कामिनी ॥२३॥
प्रह्लादस्य तु या माता हिरण्यकशिपोः प्रिया।
प्रह्लादस्य महाशोकैर्दिवारात्रौ प्रशोचति ॥२४॥
पतिव्रता महाभागा कमलानाम तत्प्रिया। रोदमानां दिवारात्रौ नारदस्तामुवाचह ॥२५॥
माशुचस्त्वं महाभागे पुत्रार्थं पुण्यभागिनि। निहतो वासुदेवेन तव पुत्रः समेष्यति ॥२६॥

सन्निकट दानव आ गये। मृत्यु के समय वे प्राण यात्रा कराने वाले थे ॥११-१२॥ उस समय वे ऋषियों का मान बढ़ाने वाले शालग्राम नामक महाक्षेत्र में थे। कुछ लोग उन सबों को दैत्य कहते थे और कुछ लोग दानव ॥१३॥ इस प्रकार का भयङ्कर शब्द सोमशर्मा को सुनायी पड़ा। यह केवल सोमशर्मा को ही सुनायी पड़ा ॥१४॥ ज्ञान तथा ध्यान में लगे हुए उनको दैत्यों का भय हो गया। उस ध्यान से उनके दैत्य के भय से ही प्राण शीघ्र निकल गये। दैत्य के भय से ही उनकी मृत्यु हुयी ॥१५-१६॥ उसके कारण दैत्य के घर में हिरण्यकशिपु के पुत्र के रूप में उनका जन्म हुआ। उनका देवासुर सङ्ग्राम के समय भगवान् ने वध किया ॥१७॥ उनके द्वारा मारे जाते समय महात्मा प्रह्लाद ने भगवान् के विश्वरूप से युक्त वासुदे वत्व का साक्षात्कार किया ॥१८॥ पूर्वजन्म के योगाभ्यास के कारण उनको ज्ञान था। शिवशर्मा के पूर्वकालिक सम्पूर्ण चरित्र उनको याद थी ॥१९॥ वे सोचते थे पहले मैं सोमशर्मा था उसके बाद में दानव शरीर में प्रवेश कर गया न जाने कब मैं इस शरीर से निकलकर केवल पुण्य धाम में मोक्ष प्रदान करने वाले महापुण्यों के द्वारा जाऊँगा ? हे ब्राह्मणों ! युद्ध में मरते समय प्रह्लाद ने ऐसा ही सोचा। इस तरह से मैंने सभी सन्देहों को विनष्ट करने वाले प्रसङ्ग को आपलोगों को बतलाया ॥२०-२२॥ **सूतजी ने कहा**—इस तरह से भगवान् के द्वारा प्रह्लाद के मारे जाने पर उनकी माता कमला रुदन करने लगी ॥२३॥ वह प्रह्लाद की माता थी और हिरण्यकशिपु की पत्नी थी। वह प्रह्लाद के शोक के कारण रात-दिन रोती थी ॥२४॥ कमला नाम की हिरण्यकशिपु की पत्नी पतिव्रता थी उसको रोते हुए देखकर नारदजी उसके पास आये और कहे ॥२५॥ हे महाभागे ! तुम शोक न करो। वासुदेव के द्वारा मारा गया तुम्हारा पुत्र आयेगा ॥२६॥ वह

भूयः स्वलक्षणोपेतस्तवसुतश्च महामतिः। प्रह्लादेति च वै नाम पुनरस्य भविष्यति ॥२७॥
बिहीनश्चासुरैर्भावैर्देवत्वेन समन्वितः। इन्द्रत्वेमोदते भद्रे सर्वदेवैर्नमस्कृतः॥२८॥
सुखी भव महाभागे तेन पुत्रेण वै सदा। न प्रकाश्या त्वया देवि सुवार्तेयं च कस्यचित् ॥२९॥
वक्तव्यं ज्ञानभावैस्तत्सुगोप्यं कुरु त्वं सदा। एवमुक्त्वा गतो विप्रो नारदो मुनिसत्तमः ॥३०॥
कमलायाश्चोदरे तु जन्मास्यानुत्तमं पुनः। प्रह्लादेति च वै नाम तस्याख्यानं महात्मनः ॥३१॥
बाल्यं भावं गतो विप्राः कृष्णमेव व्यचिन्तयत्।
नरसिंहप्रसादेन देवराजोऽभवद्दिवि ॥३२॥
देवत्वं लभ्य चैवासावैन्द्रंपदमनुत्तमम्। मोक्षं यास्यति ज्ञानात्मा वैष्णवं धामचोत्तमम्॥३३॥
असङ्ख्याता महाभागाः सृष्टेर्भावा ह्यनेकशः।
मोह एवं न कर्त्तव्यो ज्ञानमद्भिर्महात्मभिः ॥३४॥
एतद्वः सर्वमाख्यातं यथापृष्टं द्विजोत्तमाः। अन्यं पृच्छत वै प्रश्नं सन्देहं वो भिनद्म्यहम्॥३५॥
विजयं देवतानां तु दानवानां महत्क्षयम्। कृतं हि देवेदेवेन स्थापितं भुवनत्रयम् ॥३६॥

ऋषय ऊचुः

इन्द्रत्वं कस्य सञ्जातं देवानां शब्दधारकम्। केन दत्तं त्वमाचक्ष्व विस्तराद् द्विजसत्तम ॥३७॥

सूत उवाच

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि इन्द्रत्वे येन सत्तमः। प्राप्त एष महाभागो यथा पुण्यतमेन च ॥३८॥
हतेषु तेषु दैत्येषु समस्तेषु महाहवे। अतिनष्टेषुपापेषु गोविन्देन महात्मना ॥३९॥
ततोदेवाः सगन्यर्वा नागा विद्याधरास्तथा। सम्प्रोचुर्माधवं सर्वे वद्धप्राञ्जलयस्ततः॥४०॥

महामति अपने लक्षणों से युक्त है और उसका पुनः नाम प्रह्लाद ही होगा ॥२७॥ उसका आसुर भाव समाप्त हो जायेगा, उसमें देवत्व होगा हे भद्रे ! इस समय वह इन्द्रत्व को प्राप्त किए हुए है ॥२८॥ हे महाभागे! उस पुत्र के द्वारा तुम सदा सुखी होओगी । इस बात को किसी से कहना मत ॥२९॥ इसे ज्ञानियों को बतलाना इस बात को अच्छी तरह से गुप्त रखना । इस तरह से कहकर मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी चले गये॥३०॥ उन्होंने बतलाया कि कमला के गर्भ से उसका उत्तम जन्म होगा और उसका नाम प्रह्लाद होगा॥३१॥ हे ब्राह्मणों ! बालभाव से युक्त प्रह्लाद निरन्तर श्रीभगवान् का ही चिन्तन करते थे । वे भगवान् नरसिंह की कृपा से देवलोक में इन्द्र बन गये ॥३२॥ देवत्व तथा इन्द्र पद को प्राप्त करके ज्ञानी प्रह्लाद मुक्त होकर वैष्णव धाम में चले जायेंगे ॥३३॥ महाभागों ! सृष्टि के भाव असंख्य और अनेक प्रकार के हैं, अतएव ज्ञानी महात्माओं को मोह में नहीं पड़ना चाहिए ॥३४॥ द्विजश्रेष्ठों ! आपलोगों ने जो पूछा था उन सारी बातों को मैंने कह दिया आपलोग दूसरा प्रश्न करें मैं उसे दूर करूँगा ॥३५॥ श्रीभगवान् ने देवताओं को विजय दिलाया और दैत्यों का महान् विनाश किया तथा त्रैलोक्य की रक्षा की ॥३६॥ **ऋषियों ने कहा—** देवताओं में किसका इन्द्रत्व होता है, उसको किसने प्रदान किया इन सारी बातों को आप विस्तार से बतलायें ॥३७॥ **सूतजी ने कहा—** मैं विस्तार पूर्वक बतलाता हूँ कि किसको इन्द्रत्व की प्राप्ति हुयी और श्रेष्ठ पुण्य के द्वारा इन महाभाग ने प्राप्त किया ॥३८॥ महायुद्ध में महात्मा गोविन्द के द्वारा दैत्यों के मारे जाने पर तथा पापों का विनाश हो जाने पर ॥३९॥ देवता, गन्धर्व, नाग, विद्याधर ये सव हाथ

भगवन्देवदेवेश हृषीकेशनमोऽस्तुते । विज्ञापयामहे त्वां वै तत्सर्वमवधार्यताम् ॥४१॥
शास्ता गोप्ता च पुण्यात्मा अस्माकं कुरु केशव ।
राजानं पुण्यधर्माणं त्वमिन्द्रं लोकशासनम् ॥४२॥
त्रैलोक्यस्य प्रजा देव यमाश्रित्य सुखं लभेत् ॥४३॥

वासुदेव उवाच

ममलोके महाभागा वैष्णवेन समन्वितः । तेजसा ब्राह्मणश्रेष्ठश्चिरकालंनिवासितः ॥४४॥
तस्य कालः प्रपूर्णश्च मम लोके महात्मनः। वसतस्तस्य विप्रस्य मद्भक्तस्य सुरोत्तमाः ॥४५॥
तेजसा वैष्णवेनैव भवतां पालको हि सः । भविष्यति स धर्मात्मा स च धर्मानुरञ्जकः ॥४६॥
पालको धारकश्चैव स च ब्राह्मणसत्तमः । भविष्यति स धर्मात्मा भवतां त्राणकारणात्॥४७॥
अदित्यास्तनयश्चैव सुव्रताख्यो महामनाः । महाबलो महावीर्यः स व इन्द्रो भविष्यति ॥४८॥

सूत उवाच

एवं वरान्स देवेशो दत्त्वा देवेभ्य उत्तमान्। देवा विजयिनः सर्वे विष्णुना सहसत्तमाः ॥४९॥
कश्यपं पितरं द्रष्टुं मातरं च ततो गताः । प्रणेमुस्ते महात्मानावुभावेतौ सुखासनौ ॥५०॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे हर्षेण महतान्विताः। युवयोश्च प्रसादेन देवत्वं हि गता वयम् ॥
हर्षेण महताविष्टो देवान्वाक्यमुवाच सः ॥५१॥

कश्यप उवाच

यूयं वै सत्यधर्मेण वर्तमानाः सदैव हि । आवयोश्च प्रसादेन तपसश्च प्रभावतः ॥५२॥
प्राप्तवन्तो भवन्तस्तु देवत्वं चाक्षयं पदम्। वरमेव ददाम्येष बहुप्रीतिसमन्वितः ॥५३॥

जोड़कर भगवान् माधव से कहे ॥४०॥ हे देवदेवेश भगवन हृषीकेश ! आपको नमस्कार है, हम जो आपसे प्रार्थना करते हैं, उसे आप सुनो ॥४१॥ हे केशव ! आप हमारे लिए किसको प्रशासक और रक्षक बनाइये। आप किसी पुण्य धर्मा पुरुष को प्रशासक इन्द्र बनायें ॥४२॥ हे देव ! जिसकी छत्रछाया में त्रैलोक्य की प्रजा सुख को प्राप्त करे ॥४३॥ **वासुदेव ने कहा—** महाभागों ! मेरे लोक में वैष्णव तेज से युक्त जिस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने निवास किया है उस महात्मा का मेरे लोक में समय पूरा हो चुका है । देवताओं वह विप्र मेरा भक्त है ॥४४-४५॥ वह वैष्णव तेज से युक्त है वही आपलोगों का पालक होगा । वह धर्मात्मा और धर्मानुरञ्जक है ॥४६॥ वह धर्मात्मा ब्राह्मण श्रेष्ठ रक्षा करने के कारण आपलोगों का पालक और धारक होगा ॥४७॥ वह अदिति का सुव्रत नामक पुत्र महाबलवान् और महापराक्रमी है । वही आपलोगों का इन्द्र होगा ॥४८॥ **सूतजी ने कहा—** देवेश भगवान् विष्णु इस प्रकार से देवताओं को उत्तम वर प्रदान करने के बाद सभी विजयी श्रेष्ठ देवता, भगवान् विष्णु के साथ अपने पिता कश्यप महर्षि और माता आदिति का दर्शन करने के लिए गये । वे सुख पूर्वक बैठे हुए महात्मा कश्यप और अदिति को प्रणाम किए ॥४९-५०॥ महान् हर्ष से युक्त देवताओं ने हाथ जोड़कर कहा— आपलोगों की ही कृपा से हमलोग देवता हुए हैं, यह सुनकर अत्यधिक हर्ष के साथ उन्होंने देवताओं से कहा ॥५१॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** तुमलोग सदा सत्य एवं धर्म का पालन करते हो, हमदोनों की कृपा से तथा अपनी तपस्या के प्रभाव से तुमलोग देवत्व और अक्षय पद को प्राप्त किये हो; मैं अत्यन्त प्रसन्नता से यह वरदान देता हूँ कि तुमलोग अजर (वार्द्धक्य

अमरा निर्जराश्चैव अक्षयाश्च भविष्यथ। सर्वकामसमृद्धार्थाः सर्वसिद्धिसमन्विताः ॥५४॥
देवा नागाश्च गन्धर्वा मत्प्रसादान्महासुराः ॥५५॥

विष्णुरुवाच

वरं वरय भद्रंते देवमातर्यशस्विनि। मनसा चेप्सितं सर्वं तत्ते दद्मि सुनिश्चितम् ॥५६॥
पूर्वं पुत्रवती भूता प्रसादात्तव माधव । अमरा निर्जराः सर्व अक्षयाः पुण्यवत्सलाः ॥
अमी पुत्रा मया लब्धाः श्रूयतां मधुसूदन ॥५७॥
सुतरां त्वं च गोविन्द सर्वकामसमृद्धिदः । मम गर्भे ऽऽसंश्चैवभवांश्च मम नन्दनः ॥५८॥
त्वया पुत्रेण नित्यं च यथानन्दामि केशव। एवं महोदयं नाथ पूरयस्व मनोरथम् ॥५९॥

वासुदेव उवाच

भवत्या देवकार्यार्थं गन्तव्यं मानुषं वपुः। तदाहं तव गर्भे वै वासं यास्यामि निश्चितम् ॥६०॥
युगे द्वादशके प्राप्ते भूभारहरणाय वै । जमदग्निसुतो देवि रामो नाम द्विजोत्तमः ॥६१॥
प्रतापी तेजसा युक्तः सर्वक्षत्रवधाय च । तव पुत्रो भविष्यामि सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥६२॥
सप्तविंशतिके प्राप्ते त्रेताख्ये तु तथा युगे । रामो नाम भविष्यामि तव पुत्रः पतिव्रते ॥६३॥
पुनः पुत्रो भविष्यामि तवैव शृणु पुण्यधेः । अष्टाविंशतिके प्राप्ते द्वापरान्ते युगे तदा ॥६४॥
सर्वदैत्यविनाशार्थे भूभारहरणाय च। वासुदेवाख्यस्ते पुत्रो भविष्यामि न संशयः ॥६५॥
इदानीं कुरु कल्याणि मद्वाक्यं धर्मसंयुतम्। सर्वलक्षणसम्पन्नं सत्यधर्मसमन्वितम् ॥६६॥
सर्वज्ञं सर्वदन्देवि पुत्रमुत्पाद्य सुन्दरम् ।
इन्द्रत्वं तस्य दास्यामि इन्द्रः सोऽपि भविष्यति ॥६७॥

रहित) अमर (मृत्यु रहित) तथा अक्षय (क्षय रहित) होओगे तुमलोगों की सारी कामनाएँ पूरी होंगी तथा तुमलोग सभी सिद्धियों से सम्पन्न होओगे ॥५२-५४॥ महादेवों ! हमारी कृपा से देवता, नाग और गन्धर्व ये सभी ऐसे होंगे ॥५५॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— यशस्विनी देव मात: आपका कल्याण हो । आप वर माँगे । आपको जो अभिप्रेत हो वह मैं दूँगा ॥५६॥ **अदिति ने कहा**— हे माधव ! आपकी कृपा से मैं पहले पुत्रवती हुयी । सभी देवता अजर, अमर अक्षय और धर्मवत्सल हैं । मैंने इन पुत्रों को प्राप्त किया । हे मधुसूदन ! आप सुनें ॥५७॥ हे गोविन्द ! आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आप मेरे गर्भ में निवास करके मेरे पुत्र हों ॥५८॥ केशव जिससे कि मैं आज जैसे पुत्र से सदा प्रसन्न रहूँ । हे नाथ ! आप मेरे इसी मनोरथ को पूरा करें ॥५९॥ **वासुदेव ने कहा**— आप देवताओं का कार्य करने के लिए जब मनुष्य शरीर धारण करेंगी उस समय मैं निश्चित रूप से आपके गर्भ में निवास करूँगा ॥६०॥ हे देवि ! बारहवें युग में पृथिवी का भार दूर करने के लिए तथा सभी क्षत्रियों का वध करने के लिए मैं आपका तथा महर्षि जमदग्नि का तेजस्वी और प्रतापी राम (परशुराम) नामक सभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण पुत्र होऊँगा॥६१-६२॥ हे पतिव्रते ! मैं सताइसवें त्रेतायुग में आपका श्रीराम नाम का पुत्र होऊँगा ॥६३॥ हे पुण्यवति ! फिर मैं अठाइसवें द्वापर के अन्त में सभी दैत्यों का विनाश करने के लिए पृथिवी का भार दूर करने के लिए आपका वासुदेव नामक पुत्र होऊँगा, इसमें कोई संशय नहीं है ॥६४-६५॥ हे कल्याणि ! आप इस समय मेरी धर्मयुक्त वाक्य बात मानें । सभी शुभ लक्षणों से युक्त सत्य धर्म से युक्त, सर्वज्ञ तथा

एवं सम्भाषितं श्रुत्वा महाहर्षसमन्विता। देवदेवप्रसादेन इन्द्रः पुत्रो भविष्यति॥६८॥
एवमस्तु महाभाग तव वाक्यं करोम्यहम्। ततस्ता देवताः सर्वा जग्मुः स्वस्थानमेवहि॥६९॥
हरिणा सह ते सर्वे निरातङ्का मुदान्विताः ॥७०॥

सूत उवाच

अदितिः कश्यपं प्राह ऋतुं प्राप्य मनस्विनी ।
भगवन्दीयतां पुत्रः सुरेन्द्रपदभोजकः ॥७१॥
चिन्तयित्वा क्षणं विप्रस्तामुवपाचमनस्विनीम् ।
एवमस्तु महाभागे तव पुत्रोभविष्यति ॥७२॥

त्रैलोक्यस्यापिकर्ता स यज्ञभोक्तास एवच। तस्याःशिरसि संन्यस्यस्वहस्तं च द्विजोत्तमाः ॥७३॥
तपश्चचार तेजस्वी सत्यधर्मसमन्वितः। सुव्रतो नाम तेजस्वी विष्णुलोके वसेत्सदा ॥७४॥

तस्य पुण्यक्षये जाते विष्णुलोकाद्द्विजोत्तमाः ।
पतनं कर्मवशतस्ततस्तस्य द्विजोत्तमाः ॥७५॥

पुण्यगर्भं गतो विप्र अदित्यास्तु महातपाः। इन्द्रत्वं भोक्तुकामार्थं सत्यपुण्येन कर्मणा॥७६॥
गर्भं दधार सा देवी पुण्येन तपसा किल। तपस्तेपे निरालस्या वनवासं गता सती ॥७७॥
दिव्यं वर्षशतं यातं तपन्त्यां देवमातरि। तपन्त्यथ तपस्तीव्रं दुष्करं देवतासुरैः ॥७८॥
ततः सा तपसा तेन तेजसा च प्रभान्विता। सूर्यतेजः प्रतीकाशा द्वितीय इव भास्करः ॥७९॥

शुशुभे सा यथा दीप्ता परमं ध्यानमास्थिता ।
रूपेणाधिकतां याता तपसस्तेजसा तदा ॥८०॥

सबकुछ प्रदान करने वाले सुन्दर पुत्र को आप उत्पन्न करें ! मैं उसको इन्द्रत्व प्रदान करूँगा, वह इन्द्र होगा॥६६-६७॥ इस प्रकार की बातें सुनकर अत्यन्त हर्ष से युक्त तथा यह सोचकर कि भगवान् की कृपा से मेरा पुत्र इन्द्र होगा अदिति ने कहा ऐसा ही हो । मैं आपकी बात मानती हूँ । उसके बाद वे सभी देवता प्रसन्नता पूर्वक श्रीहरि के साथ निर्भय होकर अपने स्थान पर चले गये ॥६८-७०॥ **सूतजी ने कहा—** उसके बाद ऋतुमति होने पर मनस्विनी अदिति ने महर्षि कश्यप से कहा— भगवन् आप मुझे इन्द्र का पद भोग करने वाला पुत्र ऐसा ही होग ॥७१॥ क्षणभर विचार करके महर्षि ने कहा— महाभागे ! तुम्हारा पुत्र ऐसा ही होगा ॥७२॥ अदिति के शिर पर हाथ रखकर महर्षि ने कहा— वह त्रैलोक्य का कर्ता और यज्ञभाग का भोक्ता होगा ॥७३॥ सुव्रत नामक तेजस्वी ब्राह्मण विष्णुलोक में रहते हुए सदा तपस्या करते रहते थे और सत्य धर्म का पालन करते थे ॥७४॥ हे ब्राह्मणों ! जब उनके पुण्य का क्षय हो गया तो उनका कर्मवशात् विष्णुलोक से पतन हुआ ॥७५॥ महातपस्वी सत्य तथा पुण्यकर्म के कारण वे ब्राह्मण इन्द्रत्व का भोग करने के लिए अदिति के गर्भ में चले गये ॥७६॥ अपनी पवित्र तपस्या के द्वारा देवी अदिति ने गर्भ धारण किया, वे आलस्य का त्याग करके वन मे रहकर तपस्या करती थीं ॥७७॥ देवमाता अदिति की तपस्या करते हुए देवताओं के सौ वर्ष बीत गये वह देवता तथा असुरों की अपेक्षा तीव्र और कठोर तपस्या कर रही थीं ॥७८॥ उसके वह तपस्या और तेज के कारण दूसरे सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न हो गयीं ॥७९॥ ध्यान मग्न वह अत्यन्त प्रदीप्त होकर सुशोभित हो रही थी उस समय वह तपस्या

तपोध्यानपरा सा च वायुभक्षा तपस्विनी। अधिकं शुशुभे देवी दक्षस्य तनया तदा ॥८१॥
सिद्धाश्च ऋषयः सर्वे देवाश्चापि महौजसः। स्तुवन्ति तां महाभागां रक्षन्ति च सुतत्पराः ॥८२॥
पूर्णे वर्षशते तस्या विष्णुस्तत्र समागतः। तामुवाच महाभागामदितिं तपसान्विताम् ॥८३॥
देवि गर्भः सुसम्पूर्णः सूतिकालः प्रवर्तते। तवैव तपसा पुष्टस्तेजसा च प्रवर्द्धितः ॥८४॥
अद्यैव गर्भमेतं त्वं मुञ्च मुञ्च यशस्विनि। एवमाभाष्य देवेशः स जगाम स्वकं गृहम् ॥८५॥
असूत पुत्रं सा देवी काले प्राप्ते महोदये। सा पुत्रं दीप्तिसंयुक्तं द्वितीयमिव भास्करम् ॥८६॥
सुभगं चारुसर्वाङ्गं सर्वलक्षणसंयुतम्। चतुर्बाहुं महाकायं लोकपालं सुरेश्वरम् ॥८७॥
तेजोज्वालासमाकीर्णं चक्रपद्मसुहस्तकम्। चन्द्रबिम्बानुकारेण वदनेन महागतिः ॥८८॥
राजमानं महाप्राज्ञं तेजसा वैष्णवेन च। अन्यैश्च लक्षणैर्दिव्यैर्दिव्यभावैरलङ्कृतम् ॥८९॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं चन्द्रास्यं कमलेक्षणम्। आजग्मुस्ते त्रयो देवा ऋषयो वेदपारगाः ॥९०॥
गन्धर्वाश्च ततो नागाः सिद्धाविद्याधरास्तथा। ऋषयः सप्त ते दिव्याःपूर्वापरमहौजसः ॥९१॥
अन्ये च मुनयः पुण्याः पुण्यमङ्गलदायिनः। आजग्मुस्ते महात्मनो हर्षनिर्भरमानसाः ॥९२॥
तस्मिञ्जाते महाभागे भगवन्तो महौजसि। आजग्मुर्देवताः सर्वे पर्वतास्तु तपस्विनः ॥९३॥
क्षीराद्याः सागराः सर्वे नद्यश्चैव तथामलाः। प्रीतिमन्तस्ततःसर्वे ये चान्ये हि चराचरः ॥९४॥
मङ्गलैस्तु महोत्साहं चक्रुः सर्वे सुरेश्वराः। ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा गन्धर्वा ललितं जगुः ॥९५॥
वेदमन्त्रैस्ततो देवा ब्राह्मणा वेदपारगाः। स्तुवन्ति तं महात्मानं सुतं वै कश्यपस्य च ॥९६॥

के तेज से अधिक रूपवती हो गयी। तपस्या तथा ध्यान में लगी हुयी वह तपस्विनी वायु पीकर रहती थी। उसके कारण वह दक्षपुत्री अधिक सुशोभित हुयी ॥८१॥ सिद्धगण, ऋषिगण तथा महातेजस्वी देवगण भी उसकी अत्यन्त तत्परता पूर्वक स्तुति और रक्षा करते थे ॥८२॥ सौ वर्ष पूरा हो जाने पर वहाँ भगवान् विष्णु आये और उस तपस्विनी महाभागा अदिति से कहे ॥८३॥ हे देवि ! गर्भ पूरा हो गया है, प्रसव की बेला आ गयी है, वह तुम्हारी ही तपस्या और तेज से पुष्ट होकर बढ़ गया है ॥८४॥ उसके बाद सुन्दर समय आने पर अदिति देवी ने दूसरे सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया ॥८६॥ वह बालक सुन्दर था, उसके सभी अङ्ग सुन्दर थे, सभी शुभ लक्षणों से युक्त उसकी चार भुजायें थीं उसका शरीर विशाल था, इस प्रकार के देवराज लोकपाल को उसने जन्म दिया ॥८७॥ उसकी तेज की ज्वाला फैल रही थी, एवं उसके हाथ में चक्र और पद्म विद्यमान थे। उसका मुख चन्द्रमा के समान मनोहर था ॥८८॥ वह महाप्राज्ञ वैष्णव तेज से सुशोभित हो रहा था। वह दूसरे दिव्य लक्षणों एवं दिव्य भावों से अलङ्कृत था॥८९॥ वह सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न था, उसका मुख चन्द्रमा के समान और नेत्र कमल के समान थे। उस समय तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर) देवता और वेदपारङ्गत ऋषिगण वहाँ आये ॥९०॥ उसके बाद गन्धर्व, नाग, सिद्ध विद्याधर और एक से बढ़कर एक महाओजस्वी दिव्य सप्तर्षिगण एवं दूसरे पुण्य तथा पुण्यमङ्गल प्रदान करने वाले मुनिगण भी आये, वे सबके सब प्रसन्न थे ॥९१-९२॥ उस महाओजस्वी के उत्पन्न होने पर ऐश्वर्य सम्पन्न देवता, सभी पर्वत, तपस्वीगण क्षीरार्णव आदि सागर तथा निर्मल नदियाँ प्रसन्न थीं तथा दूसरे चराचर भी प्रसन्न थे ॥९३-९४॥ सभी सुरेश्वरों ने मङ्गलों के द्वारा महान् उत्साह प्रदर्शित किया अप्सराओं ने नृत्य किया और गन्धर्वों ने ललित गीत गाया ॥९५॥ उसके बाद वेदपारङ्गत

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वेदाश्चैव समागताः। अङ्गोपाङ्गैश्च संयुक्तास्तस्मिञ्जाते महौजसि ॥९७॥
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि पुण्ययुक्तानि सत्तम। समागतानि तत्रैव तस्मिञ्जाते महौजसि ॥९८॥
मङ्गलं चक्रिरे सर्वे गीतपुण्यैर्महोत्सवैः। हर्षेण निर्भराः सर्वे पूजयन्तो महौजसः ॥९९॥
ब्राह्माद्याश्च त्रयो देवाः कश्यपोऽथ बृहस्पतिः।
चरि नामकर्माणितस्यैवहिमहामनाः ॥१००॥
वसुदत्तेति विख्यातो वसुदेति पुनस्तव। आखण्डलेति तन्नाम मरुत्वान्नाम ते पुनः॥१०१॥
मघवांश्च बिडौजास्त्वं पाकशासन इत्यपि। शक्रश्चैव हि विख्यात इन्द्रश्चैवेति ते सुतः॥१०२॥
इत्येतानि च नामानि तस्यैव च महात्मनः। चक्रुश्च देवताः सर्वाः सन्तुष्टाहृष्टमानसाः॥१०३॥
स्नानं तु कारयामासुः संस्काराणि महासुरः।
विश्वकर्माणमाहूय ददुराभरणानि च ॥१०४॥
तानि पुण्यानि दिव्यानि तस्मैते तु महात्मने। जातेस्मिन्महाभागे देवराजे महात्मनि ॥१०५॥
एवं मुदं ततः प्रापुः सर्वे देवा महौजसः। पुण्ये तिथौ तथा ऋक्षे सुमुहूर्ते महात्मभिः ॥१०६॥
इन्द्रत्वे स्थापितो देवैरभिषिक्तः सुमङ्गलैः। प्राप्तमैन्द्रं पदं तेन प्रसादात्तस्य चक्रिणः ॥१०७॥
तपश्चकार तेजस्वी वसुदत्तः सुरेश्वरः। उग्रेण तेजसा युक्तो वज्रपाशाङ्कुशायुधः ॥१०८॥

सूत उवाच

उग्रं समस्तं तपसः प्रभावं विलोक्य शुक्रो निजगाद गाथाम्।
लोकेषु वाऽन्यो न भविष्यति यथा हि चायं च सुदर्शनीयः ॥१०९॥

ब्राह्मणों ने वेद के मन्त्रों से कश्यप महर्षि के उस पुत्र की स्तुति की ॥९६॥ उस महाओजस्वी के जन्म होने पर साङ्गोपाङ्ग वेद तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आये ॥९७॥ उस महाओजस्वी के जन्म के अवसर पर त्रैलोक्य में जितने भी पुण्य युक्त जीव थे वे सब आये ॥९८॥ उन सबों ने पवित्र गीतों और महोत्सवों के द्वारा उस महाओजस्वी की पूजा करते हुए हर्षित होकर मङ्गल किया ॥९९॥ उस महात्मा का ब्रह्मा आदि तीनों देवता, महर्षि कश्यप और बृहस्पति ने नामकरण संस्कार किया ॥१००॥ उनलोगों ने कहा वसुदत्ता, वसुदा, आखण्डल, मरुत्वान्, मधवा, विडौजा, पाकशासन, शक्र तथा इन्द्र ये सभी पुत्र के नाम हैं॥१०१-१०२॥ उसके ही इन सब नामों को सुनकर सभी देवता सतुष्ट एवं प्रसन्न होकर नाम रखे॥१०३॥ बड़े-बड़े देवताओं ने उस बालक को स्नान करवाकर उसके संस्कारों को कराया। विश्वकर्मा को बुलाकर आभूषणों को प्रदान किया ॥१०४॥ उस महात्मा देवराज के उत्पन्न होने पर विभिन्न प्रकार के पवित्र आमरणों को प्रदान किया ॥१०५॥ इस तरह पुण्य तिथि और पवित्र नक्षत्र में सभी देवताओं और महात्माओं ने आनन्द का अनुभव किया ॥१०६॥ देवताओं ने उसको इन्द्र के पद पर अभिषिक्त किया उसने चक्रधारी भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र के पद को प्राप्त किया ॥१०७॥ उग्र तेज से युक्त, वज्र, पाश तथा अङ्कुश नामक आयुधों वाला वसुदत्त नामक सुरेश्वर ने तपस्या की ॥१०८॥ उसकी तपस्या के समस्त उग्र प्रभाव को देखकर शुक्र ने गाथा गाया यह जितना सुन्दर दर्शनीय है, उतना सुन्दर दूसरा कोई नहीं

विष्णोः प्रसादान्नपरो महात्मा सम्प्राप्तमैश्वर्यमिहैव दिव्यम् ।
अनेन तुल्यो न भविष्यतीति लोकेषु चान्यस्तपसोग्रवीर्यः ॥११०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे देवासुरे इन्द्राभिषेको नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

सूत उवाच

कश्यपस्य च भार्याऽन्या दनुर्नाम तपस्विनी ।
पुत्रशोकेनसन्तप्तासम्प्राप्तादितिमन्दिम् ॥१॥

रोदमाना प्रणम्यैव पादपद्मयुगं तदा । दुःखेन महता प्राप्ता दितिस्तां प्रत्यबोधयत् ॥२॥

दितिरुवाच

तवैव हि महाभागे किमिदं रोदकारणम् । पुत्रिण्यश्चैकपुत्रेण लोके नार्यो भवन्ति वै ॥३॥
भवती शतपुत्राणां गुणिनामपि भामिनि । माता त्वमसि कल्याणि शुम्भादीनांमहात्मनाम् ॥४॥
कस्माद्दुःखं त्वया प्राप्तमेतन्मे कारणं वद । हिरण्यकशिपू राजा हिरण्याक्षो महाबलः ॥५॥
यस्याः पुत्रौ महात्मानौ महाबलपराक्रमौ। कस्माद्दुःखं महज्जातं तस्माच्चैव सखे वद ॥६॥

आख्याहि कारणं सर्वं यस्माद्रोदिषि साम्प्रतम् ।
एवभाष्यतांदेवींविरराम मनस्विनी ॥७॥

होगा ॥१०९॥ इसके समान विष्णु की कृपा से दूसरा कोई भी महात्मा इस तरह का दिव्य ऐश्वर्य नहीं प्राप्त किया और न तो कोई दूसरा इस तरह की तपस्या के उग्र पराक्रम वाला होगा ॥११०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के देवताओं तथा असुरों द्वारा इन्द्र के अभिषेक नामक पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

इन्द्र के स्वाराज्य ऐश्वर्य को देखकर दनु का दुःखी होना

सूतजी ने कहा— महर्षि कश्यप की दूसरी दनु नाम की तपस्विनी पत्नी थी । वह पुत्र शोक से सन्तप्त होकर दिति के घर आयी ॥१॥ अत्यन्त दुःखी होकर रोती हुयी उसने दिति के दोनों चरण कमलों में प्रणम किया और दिति ने उससे कहा ॥२॥ **दिति ने कहा—** महाभागे ! तुम्हारे रोने का कारण क्या है? नारियाँ तो एक पुत्र के द्वारा भी पुत्रवती होती हैं ॥३॥ और तुम तो सौ गुनी पुत्रों की माता हो । हे कल्याणि ! तुम तो शुम्भ आदि की माता हो ॥४॥ तुमको दुःख क्यों हुआ ? मुझे इस बात को बतलाओ। जिसके हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक महाबलवान् पुत्र हैं । वे महाबल और पराक्रम से युक्त हैं । तुमको क्यों दुःख हुआ सखि उसे तुम बतलाओ ॥५-६॥ जिसके कारण तुम रो रही हो उसका सारा कारण बतलाओ । इस तरह से दनु को कहकर दिति चुप हो गयी ॥७॥ **दनु ने कहा—** महाभागे ! देखो । हमारी

दनुरुवाच

पश्य पश्य महाभागे सपत्न्याश्च मनोरथम्। परिपूर्णं कृतं तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥८॥
यथापूर्वं वरो दत्तो ह्यदित्यै देवि विष्णुना। तथेदानीं च पुत्राय तस्या दत्तोधरो महान् ॥९॥
कश्यपाद्विश्रुतो जातस्त्रैलोक्यपालकः सुतः। इन्द्रत्वं तस्य वै दत्तं तव पुत्राद्विहृत्य च ॥१०॥
मनोरथैस्तु सम्पूर्णा अदितिः सुखवर्द्धिनी। कनीयान्वसुदत्तश्च तस्याः पुत्रश्च सम्प्रति ॥११॥
ऐन्द्रं पदं सुदुष्प्राप्यं देवैः सार्द्धं भुनक्ति च ॥१२॥

दितिरुवाच

कस्मात्पदात्परिभ्रष्टो मम पुत्रो महामतिः। अन्ये च दानवादैत्यास्तेजोभ्रष्टाःकथंसखे॥१३॥
तस्य त्वं कारणं ब्रूहि विस्तरेण यशस्विनि। तामाभाष्य दितिर्वाक्यं विरराम सुदुःखिता ॥१४॥

दनुरुवाच

देवाश्च दानवाः सर्वे सक्रोधाः सङ्गरं गताः। तत्र युद्धं महज्जातं दैत्यसंक्षयकारकम् ॥१५॥
देवैश्च विष्णुना युद्धे मम पुत्रा निपातिताः। तथैव तव पुत्रास्ते देवदेवेन चक्रिणा ॥१६॥
वने गतान्यथा सिंहो द्रावयेत्स्वेन तेजसा। तथाते मामकाः पुत्रा निहताः शङ्खपाणिना ॥१७॥
कालनेमिमुखं सैन्यं दुर्जयं ससुरासुरैः। नाशितं मर्दितं सर्वं द्रावितं विकलीकृतम् ॥१८॥
स्वैरर्चिभिर्यथा वह्निस्तृणानि ज्वालयेद्वने। तथा दैत्यगणान्सर्वान्निर्दहत्येव केशवः ॥१९॥
मम पुत्रा मृता देवि बहुशस्तव नन्दनाः। वह्निंप्राप्य यथा सर्वे शलभा यान्ति संक्षयम्॥२०॥
तथा ते दानवाः सर्वे हरिं प्राप्य क्षयं गताः।
एवमेतं हि वृत्तान्तं दितिः शुश्रावदारुणम् ॥२१॥

सौत अदिति के सारे मनोरथ को विष्णु ने पूरा कर दिया ॥८॥ हे देवि ! विष्णु ने अदिति को पहले जो वरदान दिया था, उसी तरह से उसके पुत्र को महान् वरदान प्रदान कर दिया ॥९॥ महर्षि के प्रख्यात पुत्र के रूप में उत्पन्न त्रैलोक्य का पालन करने वाला पुत्र हुआ। तुम्हारे पुत्र से छिनकर उसको विष्णु ने उसे इन्द्रत्व प्रदान किया ॥१०॥ सुखों को बढ़ाने वाली अदिति के मनोरथ पूरे हो गये और इस समय उसका छोटा पुत्र भी अत्यन्त दुष्प्रप्य देवताओं के साथ ऐन्द्र पद का भोग करता है ॥११-१२॥ **दिति ने कहा—** सखि ! मेरा पुत्र किस पद से भ्रष्ट हो गया तथा दानव एवं दैत्य तेजो भ्रष्ट कैसे हो गये ?॥१३॥ हे यशस्विनि ! उसका कारण तुम विस्तार पूर्वक बतलाओ, इसतरह से दनु से कहकर दुःखी दिति चुप हो गयी ॥१४॥ **दनु ने कहा—** देवता और दानव क्रोध करके युद्ध करने गये। उस समय दैत्यों का विनाश करने वाला भयङ्कर युद्ध हुआ ॥१५॥ देवताओं ने मेरे पुत्रों को विष्णु से मरवा दिया। उसी तरह से तुम्हारे पुत्रों को भी विष्णु ने मार दिया ॥१६॥ जैसे वन में गये हुए को सिंह भगा देता है उसी तरह मेरे और तुम्हारे पुत्रों को विष्णु ने मार दिया ॥१७॥ देवताओं और असुरों के लिए दुर्जय कालनेमि की सेना को उन्होंने नष्ट कर दिया, मर्दित कर दिया और विकल बनाकर भगा दिया ॥१८॥ जिस तरह अग्नि अपनी चिनगारियों से वन में तृणों को जला देती है, उसी तरह विष्णु भी सभी दैत्यों को भस्म कर देते हैं ॥१९॥ हे देवि ! मेरे अनेक प्रिय पुत्र उस युद्ध में मर गये। जैसे अग्नि में पड़कर कीड़ों का नाश हो जाता है॥२०॥ उसी प्रकार वे दानव भी श्रीहरि के समक्ष जाकर विनष्ट हो गये। इस प्रकार से इस दारुण वृतान्त

दितिरुवाच

वज्रपातोपमं भद्रे वदस्येव कथं मम। एवमाभाष्य तां देवी मूर्च्छिता निपपातह ॥२२॥
हाहाकष्टमिदं जातं बहुदुःखं प्रतापकम्। रुरोद करुणं साऽथपुत्रशोकसुपीडिता ॥२३॥
तां दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठ उवाच वचनं शुभम् ।
मा रोदिषि च भद्रं ते नैव शोचन्ति त्वद्विधाः ॥२४॥
सत्ववन्तो महाभागे लोभमोहेन वर्जिताः। कस्य पुत्रा हि संसारे कस्य देवीसुबान्धवाः ॥२५॥
नास्ति कस्येह केनापि तत्सर्वं श्रूयतां प्रिये। दक्षस्यापि सुता यूयं सुन्दर्यश्चैव मामकाः ॥२६॥
भवतीनामहं भर्ता कामनापूरकः शुभे। योजकः पालकश्चैव रक्षकोऽस्मि वरानने ॥२७॥
कस्माद्वैरं कृतं क्रूरैरसुरैरजितात्मभिः। तव पुत्रा महाभागे सत्यधर्मविवर्जिताः ॥२८॥
तेन दोषेण ते सर्वे तव दोषेण वैशुभे। निहता वासुदेवेन दैवतैस्तु निपातिताः ॥२९॥
तस्माच्छोको न कर्तव्यः सत्यमोक्षविनाशनः ।
शोको हि नाशयेत्पुण्यं क्षयात्पुण्यस्य नश्यति ॥३०॥
तस्माच्छोकं परित्यज विघ्नरूपं वरानने। आत्मदोषप्रभावेन दानवा मरणं गताः॥३१॥
देवा निमित्तभूताश्च नाशिताः स्वेन कर्मणा। एवं ज्ञात्वा महाभागे समागच्छ सुखंप्रति ॥३२॥
एवमुक्त्वा महायोगी तां प्रियां दुःखभागिनीम् ।
विषादाच्च निवृत्तोऽसौ विरराम महामतिः ॥३३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे देवासुरे दितिविलापो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

को दिति ने सुना ॥२१॥ **दिति ने कहा—** हे देवि ! वज्रपात के समान इस वृत्तान्त को तुम मुझे क्यों बतला रही हो ? इस तरह से देवी दिति मूर्छित होकर गिर पड़ी ॥२२॥ हाय-हाय यह तो बहुत अधिक कष्ट प्रद सन्तापकारक समाचार है, इस तरह से कहकर पुत्रशोक से सन्तप्त वह करुण विलाप की ॥२३॥ उसको देखकर मुनिश्रेष्ठ कश्यप ने कहा— रोओ मत तुम्हारा कल्याण हो, तुम जैसी नारियाँ इतना शोक नहीं करती हैं ॥२४॥ महाभागे ! जो सत्वगुण सम्पन्न होते हैं वे लोभ एवं मोह से रहित होते हैं । हे देवि! संसार मे किसके कौन पुत्र और किसके कौन सुबान्धव हैं ? इस संसार में कोई भी किसी का और किसी से भी नहीं है । इन सारी बातों को तुम्हें बतलाता हूँ । तुमलोग दक्ष की पुत्रियाँ हो, और मेरी पत्नियाँ हो॥२५-२६॥ शुभे ! मैं तुमलोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला पति हूँ । हे सुन्दरि ! मैं तुमलोगों का योजक, पालक और रक्षक हूँ ॥२७॥ हे महाभागे ! तुम्हारे क्रूर तथा सत्यधर्म से रहित पुत्रों ने किससे वैर किया ?॥२८॥ उसी वैर के दोष से तथा तुम्हारे दोष के कारण वे सब वासुदेव के द्वारा मारे गये और देवताओं ने उन सबों को गिरा दिया ॥२९॥ अतएव सत्य तथा मोक्ष को विनष्ट करने वाले शोक को नहीं करना चाहिए । शोक पुण्य का नाश करता है और पुण्य का नाश होने से मनुष्य का विनाश हो जाता है ॥३०॥ अतएव हे सुन्दरि ! विघ्न रूपी शोक को त्याग दो । दानव अपने ही दोष के कारण मारे गये ॥३१॥ वे तो अपने कर्म के द्वारा मरे, देवता तो निमित्त मात्र हैं हे महाभागे ! इस बात को जानकर सुखी हो जाओ ॥३२॥ महायोगी कश्यप इस प्रकार से दुःखिनी दिति को कहकर विषाद रहित हो गये और चुप लगा गये ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के देवासुर संग्राम के दिति विलाप नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

सातवाँ अध्याय

दितिरुवाच

सत्यमुक्तं त्वया नाथ सर्वमेव न संशयः । भर्तृस्नेहं परित्यज्य गता सा पत्यजं द्विज ॥१॥
अभिमानेन दुःखेन मानभङ्गेन सत्तम ।
महादुःखेन सन्तप्ता करिष्ये प्राणमोचनम् ॥२॥

कश्यप उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि यथाशान्तिर्भविष्यति। न कः कस्य भवेत्पुत्रो नमाता नपिता शुभे ॥३॥
न भ्राता बान्धवः कस्य न च स्वजनबान्धवाः ।
एवं संसारसम्बन्धो मायामोहसमन्वितः ॥४॥
स्वयमेव पिता देवि स्वयं माताऽथ बान्धवाः ।
स्वयं स्वजनवर्गश्च स्वयंधर्मः सनातनः ॥५॥
आचारेण नरो देवि सुखित्वमुपजायते । अनाचारेण पापेन नाशं याति तथा ध्रुवम् ॥६॥
क्रूरयोनिं प्रयात्येवं नरो देवि न संशयः। कर्मणा सत्यहीनेन महापापेन मोहितः ॥७॥
रिपुत्वे वर्त्तते मर्त्यः प्राणिनां नित्यसंस्थितः। रिपवस्तस्य वर्तन्ते यत्र तत्र न संशयः ॥८॥
मैत्रेण वर्तते मर्त्यो यदा लोके प्रिये शुभे। तदा तस्य भवन्त्येव मित्राःसर्वत्र भामिनि ॥९॥
कृषिकारो यदा देवि च्छन्नं बीजं सुसंस्थितम् ।
यादृशं तु भवत्येव तादृशं फलमश्नुते ॥१०॥
तथा तव च पुत्रैश्च साधुभिः स्पर्धितं सह । कर्मणस्तस्यतत्प्राप्तं फलं भुङ्क्ष्वसुसंस्थितम् ॥११॥

कश्यप महर्षि द्वारा दिति को ज्ञानोपदेश

दिति ने कहा— हे नाथ ! आप ने सत्य ही कहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है । वह पति के स्नेह का परित्याग करके प्रजापति के पास गयी ॥१॥ और कही मैं अभिमान, दुःख, मानभङ्ग, एवं महादुःख के कारण अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी ॥२॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** मैं उस बात को बतलाता हूँ जिससे कि तुमको शान्ति मिलेगी कौन किसका पुत्र नहीं होता है ? कौन किसका माता नहीं होती ? और कौन किसका पिता नहीं होता है ?॥३॥ कौन किसका भाई, बान्धव तथा स्वजनों का बान्धव नहीं होता है? इस तरह संसार का संबन्ध माया और मोह से युक्त होता है ॥४॥ हे देवि ! पिता, माता, बान्धव तथा स्वजन वर्ग स्वयं सनातन धर्म होता है ॥५॥ हे देवि ! सदाचार के द्वारा ही मनुष्य सुखी होता है, तथा वह अनाचार एवं पाप के द्वारा विनष्ट हो जाता है, यह निश्चित है ॥६॥ हे देवि ! इस तरह से सत्यहीन कर्म तथा पाप से मोहित मनुष्य क्रूर योनि में चला जाता है ॥७॥ जो मनुष्य प्राणियों से शत्रुता करता है उसको सर्वत्र शत्रु ही मिलते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥८॥ हे प्रिये ! जो संसार में मैत्री के भाव से रहता है तो उस स्थिति में संसार में उसको सर्वत्र मित्र ही मिलते हैं ॥९॥ हे देवि ! जिस तरह किसान का छिपा हुआ बीज जैसा होता है, उसी तरह का उसको फल मिलता है ॥१०॥ तुम्हारे पुत्रों ने सज्जन देवताओं से स्पर्धा की उसी का फल उनको मिला कि वे मारे गये ॥११॥ हे महाभागे ! तुम्हारे पुत्र तपस्या और शान्ति

तव पुत्रा महाभागे तपःशान्तिविवर्जिताः । तेन पापेन ते सर्वे पतिता वै महत्पदात् ॥१२॥
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ मुञ्च दुःखं सुखंतथा ।
कस्य पुत्राश्च मित्राणि कस्य स्वजनबान्धवाः ॥१३॥
आत्मकर्मानुसारेण सुखं जीवन्ति जन्तवः। परार्थे चिन्तनं देवि तत्त्वज्ञानेन पण्डिताः॥१४॥
न कुर्वन्ति महात्मानो व्यर्थमेव न संशयः। पञ्चभूतात्मकं कायं केवलं सन्धिजर्जरम् ॥१५॥
आत्मा मित्रं कृतं तेन सर्वं देवि सुखाशय। आत्मा नाम महापुण्यः सर्वगः सर्वदर्शकः॥१६॥
सर्वसिद्धिस्तु सर्वात्मा सात्त्विकःसर्वसिद्धिदः ।
एवंसर्वमयो देवि भ्रमत्येको निरञ्जनः ॥१७॥
भ्रमता निर्जने येन मूर्तिमन्तो द्विजोत्तमाः। चत्वारो दर्शिताः पुण्यामूर्तिमन्तो महौजसः॥१८॥
पञ्चमः श्वसनश्चैव पूर्वाणां मित्रमेव च। अथो आत्मा समायातो ज्ञानसाहाय्यमेव वा॥१९॥
स तान्दृष्ट्वा महात्मा वै ज्ञानमात्मा समब्रवीत् ।
ज्ञान पश्य अमी पञ्चमन्त्रयन्तः परस्परम् ॥२०॥
एतान्गत्वा ब्रवीहि त्वं यूयं क इति पृच्छ ह ।
ज्ञानं वाक्यं परं श्रुत्वा सार्थतस्यमहात्मनः ॥२१॥
तदाऽऽहात्मानमाराध्यमेतैःकिंते प्रयोजनम्। तत्त्वतो ब्रूहि मे देव सदाशुद्धोऽसि सर्वदा ॥२२॥

आत्मोवाच

एते पञ्च महाभागा रूपवन्तो मनस्विनः। गत्वा सन्दर्शयाम्येनानाभाष्ये ज्ञान श्रूयताम्॥२३॥
भव्यानेतान्प्रवक्ष्यामि पञ्चमीं गतिमागतान्। दूतत्वं गच्छ भो ज्ञान कुशलो दूतकर्मणि॥२४॥

से रहित हैं उसी पाप के कारण वे महान् पद से पतित हो गये ॥१२॥ इस बात को जानकर तुम सुख और दुःख दोनों का परित्याग कर दो । पुत्र, मित्र तथा बान्धव किसी के नहीं होते हैं ॥१३॥ अपने ही कर्मों के अनुसार सुख और दुःख की प्राप्ति होती है, पण्डितजन तत्त्वज्ञान के द्वारा दूसरे के लिए व्यर्थ की चिन्ता नहीं करते हैं । यह शरीर पञ्चभूतों से बना है और इसके सभी जोड़ अत्यन्त कमजोर हैं ॥१४-१५॥ उसने सुख की प्राप्ति की आशा से आत्मा को मित्र बना लिया है । आत्मा महापुण्यवान् सर्वत्र जाने वाला और सबकुछ जानने वाला है ॥१६॥ आत्मा सबों की आत्मा, सभी सिद्धियों वाला तथा सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला है हे देवि ! सर्वमय वह अकेले भ्रमण करता है ॥१७॥ निर्जन स्थान में भ्रमण करते हुए उसने चार मूर्तिमान द्विजोत्त्मों को देखा जो मूर्तिमान महौजस थे ॥१८॥ पाँचवाँ वायु था जो पूर्वोक्त चारों का मित्र था । उसके बाद ज्ञान की सहायता से आया ॥१९॥ उसने (आत्मा ने) उन सबों को देखकर ज्ञान से कहा ज्ञान देखो ये पाञ्चों आपस में मन्त्रणा कर रहे हैं ॥२०॥ इन सबों के पास जाकर कि तुमलोग कौन हो ? ज्ञान आत्मा की सार्थक बातों को सुनकर कहा इन सबों से बातें करने से आपका क्या लाभ है ? हे देव! आप तो सदा शुद्ध रहते हैं, आप वास्तविक बात बतलायें ॥२१-२२॥ **आत्मा ने कहा—** हे ज्ञान ! सुनो ये पाँचो महाभाग रूपवान औन मनस्वी हैं, जाकर इन सबों को मैं देखूँगा और इन सबों से बातें करूँगा॥२३॥ पाञ्चवीं गति को प्राप्त इन भव्यों से मैं बाते करूँगा । हे ज्ञान ! तुम दूत बनकर जाओ, तुम

ज्ञानमुवाच

त्वमात्मञ्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
एतेषां सङ्गतिस्तात कार्या नैव त्वया कदा ॥२५॥

पञ्चानामपि शुद्धात्मन्न कार्यं शुभमिच्छता। भवतः सङ्गतिं मोह इच्छत्येष महामते ॥२६॥

आत्मोवाच

एतेषां सङ्गतिं ज्ञान कस्माद्वारयते भवान्। तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि याथातथ्येन पण्डित ॥२७॥

ज्ञानमुवाच

एतेषां सङ्गमात्रात्तु महद्दुःखं भविष्यति। दुःखमूलाहि पञ्चैव शोकसन्तापकारकाः ॥२८॥
एवमस्तु महाप्राज्ञ करिष्ये वचनं तव। ज्ञानमाभाष्य सह्यात्मा ध्यानेन सह सङ्गतः ॥२९॥

कश्यप उवाच

ततः पञ्चैव ते तत्राद्राक्षुरात्मानमेव तम्। बुद्धिमूचुः समाहूय सङ्गच्छात्मानमेवहि ॥३०॥
दूतत्वं कुरु कल्याणि अस्माकमात्मना सह। पञ्चतत्त्वा महात्मानो विश्वस्यधारकाःशुभाः ॥३१॥
भवत्या मैत्रिमिच्छन्ति इत्याभाष्य महामतिम्। गत्वाबुद्धे त्वया कार्यं कर्तव्यं न इतो व्रज ॥३२॥
एवमस्तु महाभागा करिष्ये कार्यमुत्तमम्। एवमाभाषितं तेषां गत्वाऽऽहात्मानमेव तम् ॥३३॥
अहं बुद्धि महाभाग भवन्तं समुपागता। दूतत्वे महतां पार्श्वत्तिषां त्वं वचनं शृणु ॥३४॥

भवन्मैत्रीं समिच्छन्ति अक्षयां पञ्च आत्मकाः ।
कुरुमैत्रीं महाप्राज्ञ जहि ध्यानं सुदूरतः ॥३५॥

दूत कर्म में कुशल हो ॥२४॥ **ज्ञान ने कहा**— हे आत्मन् ! आप सुनें मैं सत्य कह रहा हूँ । आपको इन सबों की सङ्गति कभी नहीं करनी चाहिए ॥२५॥ हे शुद्धात्मन् ! कल्याण चाहने वाले को इन पाञ्चों की सङ्गति नहीं करनी चाहिए । हे महामते ! यह मोह आपकी सङ्गति करना चाहता है ॥२६॥ **आत्मा ने कहा**— ज्ञान तुम इन सबों की सङ्गति से क्यों रोकते हो तुम पण्डित हो, इसका ठीक-ठीक कारण बतलाओ ॥२७॥ **ज्ञान ने कहा**— इन सबों के सङ्ग मात्र से अत्यधिक दुःख होगा । ये पाञ्चों दुःख के मूल हैं और शोक तथा सन्ताप को देने वाले हैं ॥२८॥ ठीक है महाप्राज्ञ मैं आपकी बात मानता हूँ । इस तरह से ज्ञान को कहकर आत्माध्यान के साथ लग गया ॥२९॥ **कश्यप महर्षि ने कहा**— उसके बाद वे पाञ्चों वहाँ पर आत्मा को देखे । उन सबों ने बुद्धि को बुलाकर कहा जाकर आत्मा से मिलो ॥३०॥ उन सबों ने कहा— हे कल्याणि ! तुम हमलोगों की आत्मा के साथ दूतता का कार्य करो और आत्मा से कहो कि ये पाञ्चों तत्त्व कल्याणकारी तथा विश्व का धारण करने वाले हैं ॥३१॥ उन महामति से कहना कि ये तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहते हैं । हे बुद्धि ! तुम यहाँ से जाओ और हमलोगों का कार्य करो ॥३२॥ बुद्धि ने कहा कि हे महाभागों ! ठीक है मैं आपलोगों का कार्य करूँगी । इस तरह से कहकर वह आत्मा के पास गयी ॥३३॥ और कही हे महाभाग ! मेरा नाम बुद्धि है । मैं आपके पास महापुरुषों का दूत बनकर आयी हूँ । आप उन लोगों की बातों को सुनें ॥३४॥ ये पाँचों आपके साथ मित्रता करना चाहते हैं, हे महाप्राज्ञ! आप इन सबों से मित्रता कर लें और ध्यान का त्याग कर दें ॥३५॥ **ध्यान ने कहा**— हे महात्मन् ! इन

ध्यानमुवाच

न कर्त्तव्यस्त्वया चात्मन्नेतेषां वै समागमः। एषां संसर्गमात्रेण महद्दुःखं भविष्यति ॥३६॥
मया ज्ञानेन हीनस्त्वं कथं कर्म करिष्यसि। एवमेव न कर्त्तव्यस्तेषां चैव समागमः ॥३७॥
गर्भवासं नयिष्यन्ति भवन्तं नान्यथा विभो। ज्ञानेनैव मयाहीनो अज्ञानंयास्यसि ध्रुवम् ॥३८॥
एवमुक्त्वा तमात्मानं विरराम महामतिम्। तास्तामागतां बुद्धिमात्माप्रोवाचनिश्चितः ॥३९॥
ज्ञानध्यानौ महात्मानौ मन्त्रिणौ मम शोभनौ। तत्र यानं न मे युक्तंतद्बुद्धे किंकरोम्यहम् ॥४०॥
एवंश्रुत्वा ततोबुद्धिस्तेषां पार्श्वे यशस्विनी। समाचष्ट समग्रं तत्कथनं ज्ञानध्यानयोः ॥४१॥
ततस्ते पञ्चकाः सर्वे आत्मानं प्रतिजग्मिरे। मैत्रीमेव प्रतीच्छामो भवतो नित्यमेव हि ॥४२॥

यस्माच्छुद्धोऽसि लोकेश तस्मात्त्वां समुपागताः।
स्वयमेव विचार्यैव उत्तरं नःप्रदीयताम् ॥४३॥

आत्मोवाच

यूयं पञ्चैव सम्प्राप्ता मम मैत्रं समिच्छथ। स्वीयं गुणं प्रभावं च कथयन्तु ममाग्रतः ॥४४॥

भूमिरुवाच

सर्वकार्यस्य संस्थानं चर्ममांससमन्वितम्। अस्थिमूलदृढत्वं मे नखलोमसमन्वितम् ॥४५॥
प्रभावो हि महाप्राज्ञ कायमध्ये ममैव हि। नासिकागमनो गन्धस्स मे भृत्यो महामनाः ॥४६॥

आकाश उवाच

अहमाकाशकः प्राप्तो मम काये प्रभावकम्।
श्रूयतामभिधास्यामि परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥४७॥

बाह्यान्तरावकाशश्च शून्यस्थाने वसाम्यहम्। तत्रामात्यौ तु कर्णौ मे श्रवणार्थं प्रतिष्ठितौ॥४८॥

सबों के साथ आपको सङ्गति नहीं करनी चाहिए। इन सबों के संबन्ध मात्र से अत्यन्त कष्ट होगा ॥३६॥ मुझसे तथा ज्ञान से रहित होकर आप कोई भी काम कैसे करेंगे ? इसीलिए इन सबों के साथ आपको समागम नहीं करना चाहिए ॥३७॥ संबन्ध के बिना ये आपको गर्भ में नहीं ले जा सकते हैं। मुझ ज्ञान से रहित आप अज्ञानी बन जायेंगे ॥३८॥ इस तरह महाज्ञानी आत्मा को कहकर ज्ञान चुप हो गया। उसके बाद आयी हुयी बुद्धि को आत्मा ने कहा ॥३९॥ हे बुद्धे ! ज्ञान और ध्यान ये दोनों महात्मा मेरे सुन्दर मंत्री हैं। वहाँ जाना मेरा उचित नहीं है, मैं क्या करूँ ॥४०॥ इस बात को सुनकर बुद्धि ने उन पाञ्चों के पास जाकर ज्ञान और ध्यान की सारी बातों को सुना दिया ॥४१॥ उसके पश्चात् वे पाँचो आत्मा के पास गये और कहे कि हमलोग सदैव आपकी मित्रता चाहते हैं ॥४२॥ हे लोकेश ! आप शुद्ध हैं इसीलिए हमलोग आपके पास आये हैं। हमलोग स्वयं विचार करके आये हैं; आप उत्तर दे ॥४३॥ **आत्मा ने कहा**— आपलोग पाँचो स्वयं आये हैं और हमारी मित्रता चाहते हैं, आपलोग अपने गुण एवं प्रभाव को बतलायें॥४४॥ **भूमि ने कहा**— हे महाप्राज्ञ ! सभी कार्यों का आश्रय, चर्म एवं मांस से युक्त नख एवं लोम से युक्त अस्थि के कारण भूत दृढता यह मेरा शरीर में प्रभाव है। नासिका तक जाने वाला गन्ध मेरा महामनस्वी भृत्य है ॥४५-४६॥ **आकाश ने कहा**— मैं आकाश हूँ। शरीर में होने वाले परब्रह्मस्वरूप अपने प्रभाव को बतलाता हूँ। आभ्यन्तर और बाह्य अवकास ही मेरा प्रभाव है। मैं शून्य स्थान में रहता

वायुरुवाच

पञ्चरूपेण तिष्ठामि करोम्येवं शुभाशुभम्। चर्मकायेस्थितोऽमात्यः स्पर्शः संश्रयते गुणम्।।४९।।

तेज उवाच

काये संस्थः सदानित्यं पाकयोगं करोम्यहम्।
सबाह्याभ्यन्तरं सर्वं द्रव्याद्रव्यंप्रदर्शये ।।५०।।

तत्र नेत्रावमात्यौमे द्रव्यलब्धिप्रसाधकौ। एवं मयात्मव्यापारस्तवाग्रे कथितः परः।।५१।।

आप ऊचुः

शुक्रं मज्जा तथा लाला एवं त्वक्संन्धिसंस्थितम्।
रुधिरं प्रेषयामो वै कायमध्ये स्थिता वयम् ।।५२।।

सुपोषयामोऽहर्निशममृतेन कलेवरम्। एवम्मयस्सुव्यापारः कायपत्तनके प्रिये ।।५३।।
अमात्यं रसनां विद्धि रसास्वादकरीं पराम् ।।५४।।

नासिकोवाच

सुगन्धेन परांपुष्टिं कायस्यापि करोम्यहम्। दुर्गन्धं तु परित्यज्य काये गन्धं प्रदर्शये।।५५।।
बुद्धियुक्ता महाभागतस्याभावेनभाविता। स्वामिकार्याय कायेऽस्मिन्नहं तिष्ठामि निश्चला।।
गन्धं मम गुणं विद्धि द्विविधं यत्प्रवर्तितम् ।।५६।।

श्रवणे ऊचतुः

कार्याकार्यादिकं शब्दं लोकैरुक्तं शुभाशुभम्।
शृणुयावःस्वकायस्थौ सत्यासत्ये प्रियाप्रिये ।।५७।।
शब्दो ह्यस्मद्गुणः प्रोक्तो व्यापारोऽपि तथैव हि।
योजयावो न सन्देहो यदा बुद्धिः प्रपूरयेत् ।।५८।।

हूँ। ये दोनों कान मेरे मंत्री हैं तथा सुनने का काम करते हैं ।।४७-४८।। **वायु ने कहा**— मैं शरीर में पाँच रूपों (प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान) से रहता हूँ। चर्म ही मेरा मन्त्री है और वह स्पर्श नामक गुण का ग्रहण करता है ।।४९।। **तेज ने कहा**— मैं शरीर के भीतर रहकर पकाने का काम करता हूँ। वह पाक रूपी कार्य भीतर और बाहर सभी द्रव्यों तथा अद्रव्यों में दिखता है। ये दोनों नेत्र मेरे मन्त्री है। इन सबों के द्वारा ही द्रव्यों की प्राप्ति होती है। इस तरह से मैंने अपना व्यापार आपके समक्ष बतलाया ।।५०-५१।। **जलों ने कहा**— हमलोग शरीर में शुक्र, मज्जा, लार जो चमड़े की सन्धि स्थल में रहता है, उसको तथा खून को भेजने का काम करते हैं ।।५२।। हमलोग रात-दिन शरीर का अमृत से पोषण करते हैं। इसी तरह का प्रिय शरीर में जलों का व्यापार होता है। हमारी मंत्रिणी रसना (जीभ) है और सदा रसास्वादन करने का काम करती है ।।५३-५४।। **नासिका ने कहा**— मैं दुर्गन्धि का परित्याग करके सुगन्ध के द्वारा शरीर को अत्यधिक पुष्ट बनाती हूँ। हे महाभाग! बुद्धि के साथ मैं उसी के भाव से भावित रहती हूँ। मैं अपने स्वामी का कार्य करने के लिए शरीर के भीतर निश्चल होकर रहती हूँ। दोनों प्रकार का गन्ध (सुगन्ध एवं दुर्गन्ध) मेरा गुण है जिसका मैं प्रवर्तन करती हूँ ।।५५-५६।। **दोनों कानों ने कहा**— संसारी जीवों द्वारा कार्य तथा अकार्य आदि जो शुभ तथा अशुभ रूप होते हैं अपने शरीर में रहकर सत्य तथा असत्य, प्रिय

त्वगुवाच

पञ्चरूपात्मको वायुः शरीरेऽस्मिन्व्यवस्थितः ।
सबाह्याभ्यन्तरं चेष्टां तेषां जानामि तत्त्वतः ॥५९॥

शीतोष्णमातपं वर्षं वायोः स्फुरणमेव च। सर्वं जानामि संस्पर्शादङ्गश्लेषादिकं नृणाम्॥६०॥
स्पर्श एव गुणो मह्यमेतत्सत्यं वदाम्यहम्। एवं हि ते समाख्यातो मया व्यापार एवहि ॥६१॥

नेत्रे ऊचतुः

संसारे यानि रूपाणि भव्याभव्यानि सत्तम। यदाप्रेरयते बुद्धिस्तदा पश्याव नान्यथा॥६२॥
वसावः कायमध्ये वै रूपं गुणमिहावयोः। एवं व्यापारसम्बन्धः कायमध्ये महामते ॥६३॥

जिह्वोवाच

बुद्धियुक्ता अहं तात रसभेदान्विचारये। क्षारमम्लादिकं सर्वं नीरसं स्वादु चिन्तये ॥६४॥
व्यापारेण हानेनापि नित्युयक्ता वसाम्यहम्। इन्द्रियाणां हि सर्वेषां बुद्धिरेषा प्रणायिका ॥६५॥
एवं पञ्च समायातानीन्द्रियाणि प्रिये शृणु। स्वीयानि यानि कर्माणि कथयन्ति पुनः पुनः ॥६६॥
अथ बुद्धिः समायाता तमुवाच महामतिम्। मद्विहीनो यदा कायस्तदानश्यति नान्यथा ॥६७॥
तस्मात्त्वं मां समास्थाय वर्त्तयस्व महामते। अथ कर्म समायातमात्मानमिदमब्रवीत् ॥६८॥
अहं कर्म महाप्राज्ञ तव पार्श्वं समागतम्। त्वां प्रेषयाम्यहं तेन पथा येनेह गच्छसि ॥६९॥
एवमाकर्ण्य तत्सर्वमात्मा प्रोवाच तान्प्रति। यूयं पञ्चात्मकैर्युक्ताः सर्वसाधारणाःकिल॥७०॥
कस्मान्नैत्र समिच्छन्ति तत्र पञ्चात्मकं प्रति। ब्रुवन्तु कारणं सर्वे ममाग्रे सर्वमेव तत्॥७१॥

एवं अप्रिय रूप से उन शब्दों को हमदोनों सुनते हैं ॥५७॥ यही हमदोनों का गुण कहा गया है और जब बुद्धि उसे पूर्ण करना चाहे तो वैसा ही हम व्यापार भी करते हैं ॥५८॥ **त्वगिन्द्रिय ने कहा**— इस शरीर में पाँच रूपों वाला वायु स्थित है उन सबों की बाह्य और आभ्यन्तर चेष्टा को मैं जानती हूँ ॥५९॥ मैं स्पर्श के द्वारा शीत, उष्ण, आतप (धूप) और वर्षा, तथा वायु का चलना इन सबों को मैं जानती हूँ तथा मनुष्यों के अङ्गों के श्लेष (सटना) आदि को जानती हूँ ॥६०॥ मेरा स्पर्श नामक गुण है, यह मैं सत्य कहती हूँ। इस प्रकार से मैंने आपको अपना व्यापार बतलाया ॥६१॥ **दोनों आँखों ने कहा**— हे श्रेष्ठ ! जब बुद्धि प्रेरित करती है तब हम दोनों संसार के जितने भी भव्य तथा अभव्य (अच्छे तथा बुरे) रूप हैं उन सबों को देखते है, बुद्धि की प्रेरणा के विना नहीं ॥६२॥ हम दोनों शरीर में ही रहते हैं, हम दोनों का गुण रूप है। हे महामते ! शरीर में हमदोनों का ऐसा ही व्यापार है ॥६२-६३॥ **जिह्वा ने कहा**— हे तात ! मैं बुद्धि के साथ रस के भेदों का विचार करती हूँ । मैं क्षार, अम्ल (खट्टा) आदि सभी रसों का तथा स्वादिष्ट एवं नीरस का चिन्तन करती हूँ । मैं इसी व्यापार से युक्त होकर शरीर में रहती हूँ । बुद्धि ही सभी इन्द्रियों को प्रेरित करती है ॥६४-६५॥ पाञ्चों इन्द्रियों ने आकर बुद्धि से कहा प्रिये ! सुनो उन सबों ने जो अपने कर्म को सुनाया । उसके बाद बुद्धि ने आकर आत्मा से कहा जब शरीर ज्ञान रहित हो जाता है तो वह निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ॥६६-६७॥ अतएव आप मुझको अपनाकर कार्यों को करें । उसके बाद कर्म आया और अपने विषय में कहा ॥६८॥ हे महाप्राज्ञ ! मैं कर्म हूँ आप जिस मार्ग से चलते हो मैं उसी मार्ग से आपको इस संसार में प्रेषित करता हूँ ॥६९॥ उस सारी बातों को सुनकर आत्मा ने कहा तुमलोग सभी

पञ्चात्मकाः ऊचुः

अस्मत्सङ्गप्रसङ्गेन पिण्डमेव प्रजायते। तस्मिन्पिण्डे महाबुद्धे भवान्वसति सुव्रतः ॥७२॥
तिष्ठामो हि वयं सर्वे प्रसादात्तव तत्रा हि । एतस्मात्कारणान्मैत्रमिच्छामस्तव नित्यशः ॥७३॥

आत्मोवाच

एवमस्तु महाभागा भवतां प्रियमेव च । करिष्ये नात्र सन्देहो मैत्रं हि प्रीतिकारणात् ॥७४॥
वार्यमाणो महाभागो ज्ञानेनापि महात्मना। ध्यानेन च महात्माऽसौ तेषां सङ्गमिमागतः ॥७५॥
स तैः प्रमोहितस्तत्र रागद्वेषदिभिस्तदा । पञ्चतत्त्वसमायुक्तः कायित्वङ्गतवान्प्रभुः ॥७६॥
यदागर्भसमायातो विष्ठामूत्रसमाकुले । दुर्गन्धे पिच्छिलावर्ते पतितस्तैः स संयुतः ॥७७॥
अङ्गेन व्याकुलीभूतः पञ्चात्मकानुवाच सः । भो भोः पञ्चात्मकाःसर्वेशृणुध्वं वचनं मम ॥७८॥
भवतां सप्रसङ्गेन महादुःखेन मोहितः। नत्वस्मिन्पिच्छिले घोरे पतितो हि महाभये ॥७९॥

पञ्चात्मका ऊचुः

तावत्संस्थीयतां राजन्यावद्गर्भः प्रपूरयेत्। पश्चान्निर्गमनं ते वै भविष्यति न संशयः॥८०॥
अस्माकं हि भवान्स्वामी कायदेशे व्यवस्थितः ।
राज्यमेव प्रकर्तव्यं सुखभोक्ता भविष्यति ॥८१॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा आत्मा दुःखेनपीडितः। गन्तुमिच्छन्नसौतस्मात्पलायनपरोऽभवत् ॥८२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे देवासुरे शरीरकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पञ्चात्मक (पञ्चभूतात्मक) हो और सबों के लिए साधारण हो ॥७०॥ इस पञ्चात्मक के प्रति तुमलोग मित्रता क्यों चाहते हो ? । मेरे सामने उसका कारण बतलाओ ॥७१॥ **पञ्चात्मकों ने कहा—** हमलोगों के सङ्ग से शरीर ही उत्पन्न होता है । हे महाबुद्धिमान् सुव्रत ! उसी पिण्ड (शरीर) में आप रहते हैं ॥७२॥ आपकी ही कृपा से हमलोग उस शरीर में रहते हैं । इसी कारण से हमलोग सदैव आपसे मित्रता चाहते हैं ॥७३॥ **आत्मा ने कहा—** हे महाभागों ! ठीक है मैं निश्चित रूप से आपलोगों का प्रिय कार्य करूँगा । मित्रता ही प्रेम का कारण है ॥७४॥ ज्ञान तथा ध्यान से रोके जाने पर भी आत्मा उन सबों के सङ्ग में आ गया॥७५॥ उस शरीर में उन सबों से मोहित होकर आत्मा पञ्च तत्त्व से युक्त शरीर बन गया ॥७६॥ उन सबों के साथ जब वह मल, मूत्र से भरे हुए दुर्गन्ध भरे गर्भ से आया ॥७७॥ अङ्गों से व्याकुल होकर वह पञ्चात्मकों से कहा— ऐ पञ्चात्मकों मेरी बात तुमलोग सुनो ॥७८॥ आपलोगों के सम्बन्ध से महादुःख से मोहित होकर इस भयङ्कर पिच्छिल गर्त में मैं गिर पड़ा हूँ ॥७९॥ **पञ्चात्मकों ने कहा—** हे राजन्! आप इस गर्भ में तब तक रहें जब तक गर्भ पूरा नहीं होता है । उसके बाद आप निश्चित रूप से इससे बाहर निकलेगें ॥८०॥ इस शरीर में आप हमलोगों के स्वामी है । इसी प्रकार से राज्य करना चाहिए । आप सुख को भोगने वाले होंगे॥८१॥ उन सबों की उस वाणी को सुनकर दुःख से पीड़ित आत्मा उससे भागकर निकल जाना चाहा ॥८२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के देवासुर शरीर कथन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

आठवाँ अध्याया

कश्यप उवाच

स गर्भे व्याकुलो जातः खिद्यमानो दिने दिने ।
दुःखाक्रान्तो हि धर्मात्मा सर्वपीडाभिपीडितः ॥१॥
अधोमुखस्तु गर्भस्थो मोहजालेन बन्धितः। आधिव्याधिसमाक्रान्तो हाहाभूतो विचेतनः ॥
दुःखेन महताविष्टो ज्ञानमोहप्रपीडितः ॥२॥

आत्मोवाच

तव वाक्यं महाप्राज्ञ न कृतं तु मया तदा। ध्यानेन वार्यमाणोऽपि पतितो गर्भसङ्कटे ॥३॥
तस्माद्रक्ष महाप्राज्ञ गर्भवासात्सुदारुणात् ॥४॥

ज्ञानमुवाच

मया त्वं वारितो ह्यात्मन्कृतं वाक्यं न चैव मे ।
पञ्चात्मवैर्महाक्रूरैः पातितो गर्भसङ्कटे ॥५॥
इदानीं गच्छ त्वं ध्यानं तस्मात्सम्प्राप्स्यसे सुखम् ।
गर्भवासाद्भविष्यस्ते मोक्ष एव न संशयः ॥६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा ज्ञानस्य तत्त्वताम् ।
ध्यानमाहूय प्रोवाच श्रूयतां वचनं मम ॥७॥
त्वामहं शरणं प्राप्तो ध्यान मां रक्ष नित्यशः ।
एवमस्तु महाप्राज्ञ ध्यानमाह महामतिम् ॥८॥
एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा आत्मा वै ध्यानमागतः ।
ध्यानेन हि समं गर्भे संस्थितो मोह वर्जितः ॥९॥

देह के दुःख से उद्विग्न आत्मा का वैराग्य के साथ समागम

कश्यप महर्षि ने कहा— वह प्रतिदिन खिन्न होता हुआ गर्भ में व्याकुल हो गया । वह धर्मात्मा सभी पीड़ाओं से पीड़ित होता हुआ दुःखी था ॥१॥ गर्भ में उसका मुख नीचे था, अज्ञान जल से बँधा था । अधिव्याधि से ग्रस्त वह हाय-हाय करके बेहोश हो जाता था । वह अज्ञान तथा मोह से पीड़ित था ॥२॥ **आत्मा ने कहा—** हे महाप्राज्ञ ! ध्यान के द्वारा रोके जाने पर भी मैं आपकी बात नहीं माना और गर्भ के सङ्कट में गिर पड़ा ॥३॥ अतएव हे महाप्राज्ञ ! आप हमारी रक्षा इस भयङ्कर गर्भवास से करें ॥४॥ **ज्ञान ने कहा—** हे आत्मन् ! मैंने आपको रोका; किन्तु आप माने नहीं । इन महाक्रूर पञ्चात्मको ने आपको गर्भ सङ्कट में डाल दिया ॥५॥ इस समय तुम ध्यान के पास जाओ; उसीसे सुख पाओगे । इस तरह से आपका गर्भवास से मोक्ष होगा ॥६॥ ज्ञान की उस बात को सुनकर उसकी तात्विकता को जानकर आत्मा ने ध्यान को बुलाकर कहा कि आप मेरी बात सुनें ॥७॥ हे ध्यान ! मैं आपकी शरण में आया हूँ । आप हमारी रक्षा करें । ध्यान ने कहा ठीक है महाप्राज्ञ ॥८॥ इस बात को सुनकर आत्मा ध्यान के पास आया और मोह से रहित होकर गर्भ में रहा ॥९॥ आत्मा जब ध्यान के पास चला गया तो वह गर्भ के भय को भूल गया, ज्ञान

यदा ध्यानं गतो ह्यात्मा विस्मृतं गर्भजं भयम् ।
स द्वाभ्यां सहितस्तत्र आत्मा मोहंविना कृतः ॥१०॥
चिन्तयन्नेव वै नित्यमात्मकं सुखमेव हि। इतो निष्क्रान्तमात्रस्तु त्यजे पञ्चात्मकं वपुः॥११॥
एवंचिन्तयते नित्यं गर्भवासगतः प्रभुः। सूतिकाले तु सम्प्राप्ते प्राजापत्ये वरानने॥१२॥
वायुना चलितो गर्भः प्राणेनापि बलीयसा। योनिर्विकासमायाति चतुर्विंशाङ्गुलं तदा॥१३॥
पञ्चविंशाङ्गुलो गर्भस्तेन पीडा विजायते। एवं सम्पीड्यमानस्तु मूर्च्छयामूर्च्छितः प्रिये॥१४॥
पतितो भूमिभागे तु ज्ञानध्यानसमन्वितः। प्राजापत्येन दिव्येन वायुना स पृथक्कृतः॥१५॥
भूमिसंस्पर्शमात्रेण ज्ञानध्याने तु विस्मृते। संसारबन्धसन्दिग्ध आत्माप्रियतया स्थितः॥१६॥
गुणदोषसमाक्रान्तो महामोहसमन्वितः। स्नानपानादिकंसर्वमिच्छत्येव दिने दिने॥१७॥
एवंसम्पुष्यमाणस्तुआत्मापञ्चात्मकैः सह। व्याप्यते हीन्द्रियैः सर्वैर्विषयैः पापकारिभिः॥१८॥
वान्धवानां समोहेन भार्यादीनां तथैव च। आकुलव्याकुलो देवि जायते च दिने दिने॥१९॥
महामोहेन सन्दिग्धो मोहजालगतः प्रभुः। कैवर्तेन यथा बद्धः शकुलो जालबन्धनैः॥२०॥
चलितुं नैव शक्तोऽस्ति तथात्मासीत्प्रबन्धितः ।
मोहजालैस्तु तैःसर्वैर्दृढबन्धैस्तु बन्धितः ॥२१॥
एवमादिप्रपञ्चेन व्याप्तोऽसौव्यापकेन हि। ज्ञानविज्ञानविभ्रष्टो रागद्वेषादिभिरिह॥२२॥
कामेन पीड्यमानस्तु क्रोधेनैव तथैव च। प्रकृत्याकर्मणा बद्धो महामूढो व्यजायत॥२३॥
एवं मूढो यदात्माऽसौ कामक्रोधवशं गतः। लोभरागादिभिः सर्वैर्व्यापृतस्तैर्दुरात्मभिः॥२४॥

और ध्यान दोनों से आत्मा मोह से रहित हो गया ॥१०॥ वह सदा आत्म सुख का चिन्तन करता था और सोचता था कि इस गर्भ से निकलते ही मैं इस पञ्चात्मक शरीर का परित्याग कर दूँगा ॥११॥ वह गर्भवास के समय सदा इस प्रकार से सोचता था । हे सुन्दरि ! प्राजापत्य सूतिकाल (जन्म की बेला) आने पर बलवान् प्राणवायु के द्वारा वह प्रेरित हो गया । उस समय योनि चौबीस अंगुल फैल जाती है ॥१२-१३॥ गर्भ पच्चीस अङ्गुल का होता है, उसके कारण उसको कष्ट होता है । इस तरह से पीड़ित होने के कारण वह मूर्छा के द्वारा मूर्छित हो गया ॥१४॥ वह पृथिवी पर ज्ञान और ध्यान के साथ गिरता है । उस समय प्राजापत्य नामक वायु ज्ञान और ध्यान को उससे अलग कर देती है ॥१५॥ भूमि का स्पर्श होते ही, उसके ज्ञान और ध्यान भूल जाते हैं । संसार के सम्बन्ध से बद्ध वह आत्मा प्रिय रूप से स्थित हो जाता है॥१६॥ वह गुण एवं दोष से आक्रान्त होकर महामोह से युक्त हो जाता है तथा प्रतिदिन स्नान पान आदि को प्राप्त करना चाहता है ॥१७॥ इस तरह पुष्ट होता हुआ आत्मा पञ्चात्मकों के साथ पापकारी सभी इन्द्रियों और विषयों से व्याप्त हो जाता है ॥१८॥ हे देवि ! वह प्रतिदिन, बान्धवों तथा पत्नी आदि के मोह के द्वारा आकुल-व्याकुल होता रहता है ॥१९॥ मोहजाल में पड़कर महामोह से युक्त वह उसी तरह से हिलडुल नहीं पाता है जिस तरह केवट के जाल में बन्धा हुआ शकुल (नौका) वह सम्पूर्ण मोह जाल में अच्छी तरह से बन्धा हुआ उससे बाहर नहीं निकल पाता है ॥२०-२१॥ इस तरह से व्यापक प्रपञ्च से व्याप्त वह ज्ञान-विज्ञान से भ्रष्ट हो जाता है, रागद्वेष आदि उसे मार डालते हैं ॥२२॥ काम तथा क्रोध उसको अत्यन्त पीड़ित करते हैं । वह (आत्मा) स्वभावतः कर्म से बद्ध होकर महा अज्ञानी हो गया ॥२३॥ इस तरह से

इयं भार्या ह्ययं पुत्र इदं मित्रमिदं गृहम् । एवं संसारजालेन महामोहेन बन्धितः ॥२५॥
पुत्रशोकादिभिर्दुःखैर्विविधैराकुलस्तदा । जरया व्याधिभिश्चैव सङ्ग्रस्तश्चाधिभिस्तथा॥२६॥
एवमात्मा सम्प्रतप्तो दुःखमोहैः सुदारुणैः । अभिमानैर्मानभङ्गैर्नानादुःखैश्च खण्डितः॥२७॥
वृद्धत्वेन तथा देवि शबलत्वेन पीडितः । दुःखं चिन्तयते नित्यं हाहाभूतो विचेतनः ॥२८॥
रात्रौ स्वप्नान्प्रपश्येत दिवा चैतन्यवर्जितः। वैकल्येन तथाङ्गानां व्याप्तो देवि दिने दिने ॥२९॥
संसारे भ्रममाणेन वैराग्यं तत्र दर्शितम्। निःशङ्कं बन्धुहीनं च प्रशान्तं तुष्टमेव च ॥३०॥
तमुवाच तदात्मा वै कालक्रोधविवर्जितम्। को भवान्नग्नरूपेण कथं मित्रैर्न लज्जसे ॥३१॥

यत्र लोकाः स्त्रियो वृद्धा युवत्यो मातरस्तथा ।
एतासां हि गतो मध्ये न बिभेषि ह्यनावृतः ॥३२॥

वीतराग उवाच

को ह्यत्र नग्नो दृश्येत न नग्नोऽस्मीति वै कदा ।
सुसम्बद्धस्त्वमेवापि परिधानसमन्वितः ॥३३॥
न नग्नोऽस्मि कदा दिव्या भवान्नग्नः प्रदृश्यते ।
इन्द्रियार्थवशे वर्ती मर्यादा परिवर्जितः ॥३४॥

आत्मोवाच

पुरुषस्य का हि मर्यादा तामाचक्ष्व च सुव्रत ।
विस्तरेण महाप्राज्ञ यदि जानासि निश्चितम् ॥३५॥

कश्यप उवाच

वीतरागो महाप्राज्ञस्तमुवाच महामतिः ॥३६॥

अज्ञानी आत्मा जब काम और क्रोध के अधीन हो गया तब वह लोभ तथा मोह आदि दुष्टों से संवद्ध हो गया ॥२४॥ यह पत्नी है, यह पुत्र है, यह मित्र है, यह मेरा घर है इस तरह से सोचते हुए संसार जाल रूपी महामोह में बंध जाता है ॥२५॥ उस समय पुत्र शोक आदि अनेक प्रकार के दु:खों से व्याकुल वह बुढ़ापा आधि तथा व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है ॥२६॥ इस प्रकार से कठिन दु:खों तथा मोहों से संतप्त होता है तथा अभिमान, मानभङ्ग आदि अनेक प्रकार के दु:खों से खण्डित होता है ॥२७॥ हे देवि ! वह वार्द्धक्य एवं शवलता (मिश्रण) के कारण पीड़ित होकर हाय-हाय करता हुआ बेहोश हो जाता है और सदा दुख की ही चिन्ता करता है ॥२८॥ वह रात्रि में स्वप्न देखता है और दिन में ज्ञान शून्य रहता है । हे देवि! वह प्रतिदिन अङ्गों की विकलता से व्याप्त रहता है ॥२९॥ संसार में भ्रमण करने वाले नि:शङ्क, बन्धुहीन, प्रशान्त तथा सन्तुष्ट आचार्य उसको वैराग्य का जब उपदेश दिए तो आत्मा ने काम क्रोध से रहित उनसे पूछा कि आप नंगे हैं, आपको मित्रों से लज्जा क्यों नहीं लगती है ?॥३०-३१॥ जहाँ पर लोग, स्त्रियाँ, वृद्ध, युवती तथा माताएँ रहती हैं, उन सबों के बीच में नङ्गा रहकर आप भयभीत नहीं होते हैं ?॥३२॥ **वीतराग (आचार्य) ने कहा—** यहाँ पर नङ्गे को कौन देखता है ? और मैं कब नङ्गा नहीं रहता हूँ ? परिधानों को धारण किए हुए तुम अच्छी तरह से बँधे हो ॥३३॥ हे दिव्य ! मैं कब नग्न नहीं हूँ आप ही नग्न दिखायी देते हैं । इन्द्रियों के वश में रहने वाले तुम मर्यादा से रहित हो ॥३४॥ **आत्मा ने कहा—**

वीतराग उवाच

सुस्थैर्यं भजते चित्तं सुखदुखेषु नित्यशः । क्लेशितं सर्वभावैश्च तेषु तेषु परित्यजेत् ॥३७॥

अथ लज्जां प्रवक्ष्यामि मनो याऽनिर्विशत्यलम् ।
मयाऽद्यैव न कर्तव्यं नग्नः स्थानविवर्जितः ॥३८॥
पश्चात्तापे सुसंलीनः सा लज्जापरिकथ्यते ।
कस्य लज्जा प्रकर्तव्या द्वितीयो नास्ति सर्वदा ॥३९॥

एकश्चपुरुषो दिव्यःकस्य किंचिन्न नाशयेत्। अथलोकान्प्रवक्ष्यामि ये त्वया परिकीर्तिताः ॥४०॥

यथाकुलालकश्चक्रे मृत्पिण्डञ्च निधापयेत् । भ्रामयित्वा तु सूत्रेण नानाभेदान्प्रकाशयेत्॥४१॥

भाण्डानां तु सहस्राणि स्वेच्छया मतिसंस्थितः ।
तथायं सृजते धाता नानारूपाणि नान्यथा ॥४२॥

पश्चाद्विनाशमयान्ति येन केनापि हेतुना। सर्वदेव स्थिता ये च ये लोकाश्च सनातनाः ॥४३॥

तेषां लज्जा प्रकर्तव्या नावर्तन्ते हि ते भुवि ।
आकाशावायुतेजांसि पृथ्वी चापश्च पञ्चमः ॥४४॥
अमी लोकाः प्रकाशन्ते ये च सर्वत्र संस्थिताः ।
सत्त्वानामङ्गदेशेषु पञ्चैतेषु सुसंस्थिताः ॥४५॥

सर्वत्रैव च वर्तन्ते कस्य लज्जा विधीयते। स्त्रीणां रूपं प्रवक्ष्यामि श्रूयतां तात साम्प्रतम् ॥४६॥

यथा घटसहस्रेषु सोदकेषु विराजते। एकश्चन्द्रो हि सर्वत्र भवांस्तद्वद्विराजते॥४७॥

गते जन्तुसहस्रेषु मोहं चक्रे महात्मवान्। स्थावरेषु च सर्वेषु जङ्गमेषु तथा भवान्॥४८॥

हे सुव्रत ! यदि आप जानते हैं तो आप विस्तार पूर्वक बतलाइये कि पुरुष की मर्यादा क्या है ?॥३५॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** उस समय महाप्राज्ञ वीतराग ने कहा ॥३६॥ **वीतराग ने कहा—** विभिन्न सुख दुःखों में चित्त स्थिरता को नहीं प्राप्त करता है । सभी भावों में कष्ट का अनुभव करने वाले चित्त का परित्याग कर देना चाहिए ॥३७॥ अब मैं लज्जा को बतलाता हूँ । जो मन में हीं प्रवेश करता है, मुझको आज ऐसा नहीं करना चाहिए जो स्थान रहित नग्न पश्चात्ताप करता है उसी को लज्जा कहते हैं । जब दूसरा कोई है ही नहीं तो किससे लज्जा की जाय ॥३८-३९॥ दिव्य पुरुष एक है वह किसी को किसी भी वस्तु का नाश नहीं होने देता है । जिन सबों को तुमने कहा है उन लोकों (लोगों) को कहता हूँ ॥४०॥ जिस तरह कुम्हार चाक पर मिट्टी के पिण्ड को रखता है । उसको सूत्र से घुमाकर उसका अनेक भेद (कलश, शराब, उदञ्चन आदि) बना देता है वह अपनी बुद्धि के अनुसार हजारो पात्रों को बना देता है । उसी प्रकार से परमात्मा सृष्टि करता है ॥४१-४२॥ उसके बाद वे सभी प्रकार किसी-न-किसी कारण से विनष्ट हो जाते हैं । जो सर्वदा रहते हैं जो सनातन लोक हैं, उन सबों से लज्जा करनी चाहिए किन्तु वे भूमि पर आते नहीं है । आकाश, वायु, तेज, पृथिवी और जल ॥४३-४४॥ जो सर्वत्र विद्यमान रहते हैं वे लोक में प्रकाशित होते हैं, वे जीवों के अङ्गों में तथा इन पाञ्चों में स्थित रहते हैं ॥४५॥ ये सर्वत्र रहते है, इनसे किसको लज्जा होती है । हे तात ! इस समय मैं स्त्रियों का रूप बतलाता हूँ उसे सुनें ॥४६॥ जिस तरह एक ही चन्द्रमा हजारो घड़ों में प्रतिबिम्बित होता है, वही सर्वत्र रहता है उसी तरह आप हजारो जीवों में स्थावरों

योनिद्वारेण पापेन मायामोहमयेन वै। कुचाभ्यां च नितम्बाभ्यां वयसा च विराजते ॥४९॥
हृन्मांसस्याधिकावृद्धिर्दृष्टा चात्र न संशयः । पतनाय च लोकानां मोहरूपं विदर्शितम् ॥५०॥
न भवत्येव सा नारी या त्वया परिकीर्तिता ।
लीलया कुरुते धाता विनोदाय सदात्मनः ॥५१॥
यथानार्यास्तथापुंसो जीवः सर्वत्रसंस्थितः । कुचयोनिविहीना ये जीवन्मुक्ताःसदैव हि ॥५२॥
नरस्तु पुरुषः प्रोक्तो नारी प्रकृतिरुच्यते । रमते तेन वै सार्द्धं न मुक्ता हि कदाचन ॥५३॥
भवान्प्रकृतिसंयुक्तः पुरुषेषु प्रदृश्यते। कः कस्य कुरुते लज्जामेवं ज्ञात्वा सुखं व्रज ॥५४॥
वृद्धां स्त्रियं प्रवक्ष्यामि सदा वृद्धां वरानन। त्वचाजर्जरतां याता या स्वाङ्गे वै वरानना ॥५५॥
श्वेतैश्चैव तथा केशैः पलितैश्च समाकुला । बलहीनाथ दीनापि व्यापिता बलिना तदा ॥५६॥
नेयं वृद्धा भवेन्नारी परं वृद्धा च कथ्यते । एतस्या लक्षणं प्रोक्तं युवतीं च वदाम्यहम् ॥५७॥
ज्ञानेन वर्द्धते नित्यं जीवपार्श्वे समाश्रिता । सुमतिर्नाम सम्प्रोक्ता सा वृद्धा युवतीतिच ॥५८॥
नारी पुरुषलोकेषु सर्वदेव प्रतिष्ठिता । लज्जा तस्याः प्रकर्तव्या अन्यच्चैव वदाम्यहम् ॥५९॥
मातरं वै प्रवक्ष्यामि या त्वया परिकीर्तिता । प्राणिनामङ्गदेशेषु सदैव चेतना स्थिता ॥६०॥
परज्ञानप्रदा या च सा प्रज्ञा परिकथ्यते । प्रज्ञा माता समाख्याता प्राणिनां पालनाय सा ॥६१॥
संस्थिता सर्वलोकेषु पोषणाय हिताय वा । सुमतिर्नाम या प्रोक्ता सा माता परिकथ्यते ॥६२॥

और जङ्गमों में जाकर उन सबों के साथ मोह किये ॥४७-४८॥ आप पापमय तथा मायामोह मय योनि द्वार, दोनो स्तन, दोनों नितम्ब तथा जवानी से मोहित होते हैं उन सबों में हृदय के मांस की अधिक वृद्धि होती है। वह संसारियों के पतन का साधन है, उसे मोह (अज्ञान) स्वरूप बतलाया गया है ॥४९-५०॥ जिसको तुम नारी कहते हो वह नारी नहीं है उसको तो ब्रह्मा अपने मनोविनोद के लिए बनाते हैं ॥५१॥ नारी तथा पुरुष दोनों का जीव एक समान सर्वत्र रहता है । जो मनुष्य स्तन तथा योनि के संबन्ध से रहित है वे जीवन्मुक्त हैं ॥५२॥ पुरुष को नर कहा गया है और प्रकृति को नारी कहा जाता है । मुक्त जीव उसके साथ कभी भी रमण नहीं करते हैं ॥५३॥ पुरुषों में आप प्रकृति से युक्त दिखते हैं । कौन किससे लज्जा करता है ? इस बात को जानकर तुम सुखी हो जाओ ॥५४॥ अब मैं वृद्धा नारी को बतलाता हूँ । जो सदा वृद्ध होती है जो अपने अङ्गो में सुन्दरी होती है केवल उसके चमड़े जर्जर हो जाते हैं ॥५५॥ उस समय उसके केश उजले हो जाते हैं, वह पलित से व्याकुल हो जाती है, वह बलहीन तथा दीनता से युक्त हो जाती है ॥५६॥ वह नारी वृद्धा नहीं होती है किन्तु वृद्ध कही जाती है । इसका लक्षण मैंने बतलाया । अब मैं युवती का वर्णन करता हूँ ॥५७॥ जीव के सन्निकट में रहने वाली जो सुमति नाम की नारी है वह ज्ञान के द्वारा नित्य ही बढ़ती रहती है । वह वृद्धा और युवती भी है ॥५८॥ पुरुष लोकों में नारी सर्वदा प्रतिष्ठित है, उसी से लज्जा करनी चाहिए, मैं दूसरी भी बातें बतलाता हूँ ॥५९॥ जिसको तुमने माता कहा है वह कौन है उसे मैं बतलाता हूँ । प्राणियों के अङ्गों में जो हमेशा चेतना बनी रहती है जो परमात्मज्ञान को प्रदान करने वाली है, उसी को प्रज्ञा कहते हैं । वह प्रज्ञा ही माता है, क्योंकि वह प्राणियों का पालन करती है॥६०-६१॥ जो सभी लोकों में प्राणियों का पोषण तथा कल्याण करने के लिए स्थित है, जिसको सुमति कहते हैं, वह माता कहलाती है ॥६२॥ संसार के द्वार पर जाने के जो नित्य मार्ग है उन अनेक प्रकार के

संसारद्वारमार्गाणि यानि रूपाणि नित्यशः । भवन्ति मातरो ह्येषा बहुदुःखप्रदर्शिकाः ॥
मातृरूपं समाख्यातमन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥६३॥

आत्मोवाच

भवान्को हि समायातो मम सन्तापनाशकः। विस्तरेण समाख्याहि स्वरूपमात्मनः स्वयम् ॥६४॥

वीतराम उवाच

यस्मात्त्कामा निवर्तन्ते निराशाः सर्व एव ते ।
यं दुष्टत्वान्न पश्यन्ति कर्माण्येतानि नान्यथा ॥६५॥
यत्समीपं हि नायाति आशा चैव कदाचन। क्रोधोलोभस्तथा मोहो यद्भयात्प्रलयं गता॥६६॥
वीतरागोऽस्मि भद्रं ते विवेको मम बान्धवः ॥६७॥

आत्मोवाच

कीदृशोऽसौ तव भ्राता विवेको नाम नामतः ।
तस्य त्वं लक्षणं ब्रूहि भ्रातुरात्मन एव च ॥६८॥

वीतराग उवाच

तस्यैव लक्षणं रूपं न वदामि तवाग्रतः। भ्रातुस्तस्य महाभाग आह्वानं च करोम्यहम् ॥६९॥
भोभो विवेक मे भ्रातरावयोस्त्वं वचः शृणु ।
एह्येहि सुमहाभाग मम स्नेहान्महामते ॥७०॥

कश्यप उवाच

शान्तिक्षमाभ्यां संयुक्तो भार्याभ्यां च समागतः ।
सर्वदृक्सर्वगो व्यापी सर्वतत्त्वपरायणः ॥७१॥
सन्देहानाञ्च सर्वेषां यो रिपुर्ज्ञानवत्सलः । धारणाधीश्च द्वे पुत्र्यौ तस्यैव हि महात्मनः ॥७२॥
तस्य योगः सुतो ज्येष्ठो मोक्षो यस्यमहागुरुः ।
निर्मलो निरहङ्कारो निराशो निष्परिग्रहः ॥७३॥

दुःखों को प्रदर्शित करने वाली माताएँ हैं । इस तरह से मैंने माता के रूप को बतलाया अव मैं तुमको कौन सी दूसरी बात बतलाऊँ ॥६३॥ **आत्मा ने कहा**— मेरे सन्ताप को नष्ट करने वाले आप कौन हैं । आप अपना स्वरूप विस्तार से बतलाएँ ॥६४॥ **वीतराग ने कहा**— जिसके द्वारा सारी कामनाएँ निवृत्त हो जाती हैं, तथा जिसके कारण तुमको किसी से कोई आशा नहीं रह जाती है, ये दुष्ट कर्म जिसको देखते नहीं हैं॥६५॥ जिसके पास कभी भी आशा नहीं आती है जिसके भय से क्रोध, लोभ और मोह विनष्ट हो जाते हैं, वही मैं वीतराग हूँ । विवेक ही हमारा बन्धु है ॥६६-६७॥ **आत्मा ने कहा**— वह तुम्हारा भाई विवेक कैसा है ? तुम अपने भाई का लक्षण बतलाओ ॥६८॥ **वीतराग ने कहा**— तुम्हारे सामने उस विवेक का लक्षण और रूप नहीं बतलाता हूँ, मैं अपने भाई को तुम्हारे सामने बुला देता हूँ ॥६९॥ ऐ मेरे भाई विवेक! हम दोनों की बात सुनो हे महामते ! मुझमें प्रेम होने के कारण तुम आ जाओ ॥७०॥ **कश्यप महर्षि ने कहा**— उसके बाद सद्गुण रूपी रत्नों से अलङ्कृत विवेक अपनो शान्ति और क्षमा नामक दो पत्नियों के साथ आया । वह समस्त तत्त्वों का ज्ञाता, सवकुछ जानने वाला, सर्वत्र जाने वाला व्यापक,

सर्ववेलाप्रसन्नात्मा गतद्वन्दो महामतिः। सविवेकः समायातो गुणरत्नैर्विभूषितः ॥७४॥
यस्यामात्यौ महात्मानौ धर्मसत्यौ महामती। क्षमाशान्तिसमायुक्तः सविवेकः समागतः ॥७५॥
वीतरागमुवाचेदमाहूतोऽहं समागतः। तद्भ्रातः कारणं सर्वं कथ्यतां हि ममाग्रतः ॥
यमाश्रित्य त्वयाद्यैव कृतमाह्वानमेव मे ॥७६॥

वीतराग उवाच

पुमान्स्थितो यः पुरतो महापाशैर्नियन्त्रितः। मोहस्य बाणैः सम्भ्रान्तः संसारस्य च बन्धनैः ॥७७॥
सर्वस्य व्यापकः स्वामी अयामात्मा ममैव च ।
पञ्चतत्त्वैःसमाविष्टो ज्ञानध्यानविवर्जितः ॥७८॥
पृच्छतामेनमात्मानं भवांस्तत्त्वेषु पण्डितः। वीतरागवचःश्रुत्वा विवेको वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥

विवेक उवाच

सुखेनस्थीयते देव भवता विश्वनायक। आगते त्वयि संसारे किं किं भुक्तं सुखं स्वयम् ॥८०॥

आत्मोवाच

गर्भवासो महद्दुःखमसह्यं दारुणं मया। भुक्तमेव महाप्राज्ञ ज्ञानहीनेन वै सदा ॥८१॥
देहेऽपि ज्ञानविभ्रष्टः सोऽहं जातो ह्यनेकधा ।
बाल्यावस्था गतेनाथ कृत्याकृत्यं कृतं मया ॥८२॥
तारुण्येन कृता क्रीडा भुक्ता भार्याह्यनेकशः ।
वार्धकं प्राप्य संतप्तः पुत्रशोकादिभिस्तथा ॥८३॥
भार्यादीनां वियोगैस्तु दग्धोऽस्म्यहमहर्निशम् ।
दुखैरनेकसंवर्णैः संतप्तोऽस्मि दिने दिने ॥८४॥

सभी सन्देहों का शत्रु, ज्ञान का मित्र, विवेक वहाँ आया। उसकी दो पुत्रियाँ हैं, धारणा और धी। योग उसका ज्येष्ठ पुत्र है। मोक्ष उसका महागुरु (परमाचार्य) है। वह निर्मल, अहंकार रहित, निराश और परिग्रह रहित है। सदा प्रसन्न रहने वाला, द्रन्द्व रहित और महाज्ञानी विवेक वहाँ आया ॥७१-७४॥ उसके महाबुद्धिमान् दो महामात्य हैं धर्म और सत्य। वहाँ क्षमा और शान्ति के साथ विवेक आया ॥७५॥ उसने वीतराग से कहा भाई आपने मुझे बुलाया और मैं आ गया। आप मुझे बुलाने का कारण बतलाइये। जिसके कारण आपने मुझे बुलाया है ॥७६॥ **वीतराग ने कहा—** मोह के बाणों तथा संसार के बन्धनों से मोहित एवं महापाशों में बन्धा हुआ यह पुरुष जो तुम्हारे सामने हैं ॥७७॥ सबों में व्यापक रहने वाला स्वामी, तथा मेरी ही आत्मा है। यह पञ्च तत्त्वों से समाविष्ट है और ज्ञान तथा ध्यान से रहित है ॥७८॥ आप तो तत्त्वों के ज्ञाता हैं, इस आत्मा से ही आप पूछिये। वीतराग की बातें सुनकर विवेक ने आत्मा से कहा ॥७९॥ हे विश्व के नायक देव ! आप सुख पूर्वक हैं न ? इस संसार में आकर आपने कौन-कौन सा सुख भोगा?॥८०॥ **आत्मा ने कहा—** हे महाप्राज्ञ ! संसार में मैं ज्ञानहीन होकर सदा गर्भवास रूप भयङ्कर दुःख को भोगा॥८१॥ देह में भी मैं अनेक प्रकार से ज्ञान रहित हो गया। बाल्यावस्था में मैंने पाप-पुण्य रूप कर्मों को किया॥८२॥ युवावस्था में मैंने क्रीडा की और अनेक स्त्रियों का भोग किया। वृद्धावस्था में मैं पुत्रशोक आदि के द्वारा संतप्त हुआ ॥८३॥ पत्नी आदि के वियोग में रात-दिन सन्तप्त रहता हूँ। प्रतिदिन मैं अनेक प्रकार के

दिवारात्रौ महाप्राज्ञ न विन्दामि सुखं क्वचित् ।
एवं दुःखै सुसंतप्तः किं करोमि महामते ॥८५॥
तमुपायं वदस्वैव सुखं विन्दामि येन वै। अस्मात्संसारजालौघान्मोचयाद्य सुबन्धनात्॥८६॥

विवेक उवाच

भवाञ्छुद्धोऽसि निर्द्वन्द्वो ह्यपापोऽसि जगत्पते ।
एनं गच्छ महात्मानं वीतरागं सुखप्रदम् ॥८७॥
निःसंशयं त्वया दृष्टं नग्नमाचारवर्जितम्। सुखप्रदर्शको ह्येष सर्वसन्तापनाशकः॥८८॥
एवमाकर्ण्य शुद्धात्मा वीतरागं गतः पुनः। तमुवाच श्वसन्दीनः श्रूयतां वचनं मम॥८९॥
सुखंविन्दामि येनाहं तं मार्गं मम दर्शय। एवमस्तु महाप्राज्ञ करिष्ये वचनं तव॥९०॥
पुनर्गच्छ विवेकं हि सुखवार्ता कृता त्वया। सुखमार्गस्य वै वक्ता तव चैष भविष्यति॥९१॥
वीतरागेण पुण्येन प्रेषितो गतवान्प्रभुः। तमुवाच महात्मानं विवेकं शुद्धसत्तमम्॥९२॥
सुखं मे दर्शय त्वं हि वीतरागेण प्रेषितः। भवच्छरणमापन्नो रक्ष संसारदारुणात्॥९३॥

विवेक उवाच

ज्ञानं गच्छ महाप्राज्ञ स ते सर्वं वदिष्यति ।
आत्मा तथोक्तःसम्प्राप्तो यत्र ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ॥९४॥
भोभो ज्ञान महातेजः सर्वभावप्रदर्शक। शरणं त्वामहं प्राप्तः सुखमार्गं प्रदर्शय ॥९५॥

ज्ञानमुवाच

भृत्योऽहं तव लोकेश त्वं मां वेत्सि न सुव्रत ।
मयाध्यानेन वै पूर्वं वारितस्त्वं पुनः पुनः ॥९६॥

दुःखों से संतप्त होता रहता हूँ ॥८४॥ हे महाप्राज्ञ ! दिन और रात में कभी भी मुझे सुख नहीं मिलता है। इस तरह से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ क्या करूँ ?॥८५॥ आप मुझे इस उपाय को बतलायें जिससे कि मुझे सुख मिले । आज आप मुझे इस संसार के जाल से मुक्त करें ॥८६॥ **विवेक ने कहा**— हे जगत् पते ! आप शुद्ध, निर्द्वन्द्व और निष्पाप हैं । आप सुख प्रदान करने वाले इन महात्मा वीतराग की शरण में जायँ॥८७॥ आपने संशय रहित, नग्न और आचार रहित जिनको देखा है, वे सुख को प्रदान करने वाले और समस्त सन्तापों को नष्ट करने वाले हैं ॥८८॥ इस बात को सुनकर वह शुद्ध आत्मा वीतराग के पास फिर गया । और दीर्घश्वास लेते हुए दीन होकर कहा ॥८९॥ मुझे आप उस मार्ग को बतलाइये जिससे मुझे सुख मिले । **वीतराग ने कहा**— ठीक है । मैं ऐसा ही करूँगा ॥९०॥ तुम फिर विवेक के पास जाओ । तुमने सुख की बात की है । विवेक ही सुख के मार्ग का उपदेश करेगा ॥९१॥ पवित्र वीतराग के द्वारा भेजे जाने पर आत्मा विवेक के पास जाकर शुद्ध तथा श्रेष्ठ विवेक से कहा ॥९२॥ मुझे वीतराग ने भेजा है, आप मुझे सुख का उपाय बतलाएँ । मैं आपकी शरण में आया हूँ इस भयङ्कर संसार से आप मेरी रक्षा करें॥९३॥ **विवेक ने कहा**— हे महाप्राज्ञ ! आप ज्ञान के पास जायें वह आपको सबकुछ बतलायेगा । विवेक के इस तरह से कहने पर आत्मा ज्ञान के पास गया ॥९४॥ और कहा; हे महातेजस्वी ज्ञान ! आप सभी भावों को बतलाने वाले हैं मैं आपकी शरण में आया हूँ आप मुझे सुख के मार्ग को बतलायें ॥९५॥

पञ्चात्मकानां सङ्गेन आपदं प्राप्तवान्भवान्। ध्यानं गच्छ महाप्राज्ञ स ते दाता सुखस्य च ॥९७॥
ज्ञानेन प्रेषितो ह्यात्मा ध्यानमाश्रित्य संस्थितः ।
सुखमत्यन्तसिद्धं च ध्यानं मेदर्शयस्व ह ॥९८॥
भवच्छरणमायातं मामेव परिरक्षय। एवं सम्भाषितं तस्य ध्यानमाकर्ण्य तद्वचः ॥९९॥
समुवाच पुनश्चापि तमात्मानं प्रहृष्टवान्। नैव त्याज्योऽस्म्यहं तात सर्वकर्मसुनिश्चितः ॥१००॥
त्वयैव वीतरागेण विवेकेन सदैव हि। ध्यानयुक्तो भवस्वत्वमात्मानमवलोकय॥१०१॥
आत्मवांस्त्वं स्थिरो भूत्वा निरातङ्को विकल्पतः ।
यथादीपो निवातस्थःकज्जलं वमते स्थिरः ॥१०२॥
तथादोषान्प्रज्वलित्वा निर्वाणं हि प्रयास्यति। एकान्तस्थो निराहारो मिताशी भव सर्वदा ॥१०३॥
निर्द्वन्द्वः शब्दसंहीनो निश्चलो ह्यासने स्थितः ।
आत्मानमात्मनाध्यायन्ममैवस्थिरबुद्धिना ॥१०४॥
प्राप्स्यसे परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डेऽध्यात्मवर्णनेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

ज्ञान ने कहा— हे सुव्रत ! मैं आपका भृत्य हूँ, आप मुझे नहीं जानते हैं मैंने और ध्यान ने आपको पहले बार-बार रोका ॥९६॥ पञ्चात्मकों के सङ्ग के कारण आपने कष्ट भोगा । आप ध्यान के पास जायँ वह आपको सुख प्रदान करेगा ॥९७॥ ज्ञान के द्वारा भेजे गये आत्मा ध्यान को अपना आश्रय बनाया और कहा हे ध्यान ! अत्यन्त सिद्ध सुख मुझे आप बतलायें ॥९८॥ मैं आपकी शरण में आया हूँ आप मेरी रक्षा करें। ध्यान ने आत्मा के इस तरह के वचनों को सुना ॥९९॥ और प्रसन्न होकर उस आत्मा से कहा— हे तात! आप मुझे किसी भी कार्य में त्यागें नहीं ॥१००॥ तुम सदा वीतराग, और विवेक के द्वारा ध्यान युक्त होकर अपनी आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करो ॥१०१॥ स्थिर होकर आत्मवान् तुम आतङ्क और विकल्प से रहित हो जाओ । जिस तरह वायु रहित स्थान में स्थित दीपक कज्जल का परित्याग कर देता है ॥१०२॥ उसी तरह से तुम दोषों को जलाकर मुक्ति को प्राप्त कर लोगे । तुम सदैव एकान्त में निराहार रहकर अल्पभोजी बनो ॥१०३॥ द्वन्द्व रहित, शब्दज्ञान से रहित, निश्चल आसन से बैठो । अपनी आत्मा का अपने से मुझ ध्यान के द्वारा चिन्तन करते हुए भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लोगो ॥१०४-१०५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के अध्यात्मक वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

नवाँ अध्याय

एवं सम्बोधितस्तत्र आत्मा ध्यानादिकैस्तदा। मुक्तकामः स तत्कार्यं पञ्चात्मकं स बुद्धिमान् ॥१॥
निमित्तान्येव पश्यन्वै प्राप्य तांस्तान्प्रयाति सः ।
विहाय कायं निर्लक्ष्यं पतितं नैव पश्यति ॥२॥
सहवर्द्धितयोर्नास्ति सम्बन्धः प्राणदेहयोः। धनपुत्रकलत्रैश्च सम्बन्धः केन हेतुना॥३॥
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ क्लैब्यं मा भज सुप्रिये ।
अयमेव परं ब्रह्म अयमेव सनातनः ॥४॥
अयमात्मस्वरूपेण दैत्यदेवेषु संस्थितः। अयं ब्रह्मा ह्ययं रुद्रो ह्ययं विष्णुः सनातनः॥५॥
अयं सृजति विश्वानि अयं पालयते प्रजाः। संहरत्येष धर्मात्मा धर्मरूपी जनार्दनः ॥६॥
अनेनोत्पादिता देवा दानवाश्चैव सुप्रिये। देवाश्चाधर्मनिर्मुक्ता धर्महीनाः सुतास्तव ॥७॥
धर्मोऽयं माधवस्याङ्गं सर्वदेवैश्च पालितम्। धर्मं च चिन्तयेद्देवि धर्मं चैव तु पालयेत् ॥८॥
तस्य विष्णुः स धर्मात्मा सर्वदैव प्रसादवान्। धर्मेण वर्तिता देवाः सत्येन तपसा किल ॥९॥
येषां विष्णुः प्रसन्नो वै धर्मस्तैरिह पालितः। विष्णोः कायमिदं धर्मं सत्यं हृदयमेवच॥१०॥
यस्तौ पालयते नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति ।
दूषयेद्यः सत्यधर्मौ पापमेव प्रपालयेत् ॥११॥
तस्य विष्णुः प्रकुप्येत नाशयेदति वीर्यवान्। वैष्णवैः पालितं धर्मं तपःसत्येनसंस्थितैः ॥१२॥

ध्यान को अपनाने से आत्मा के देह के बन्धन से मुक्तिपूर्वक स्वरूप ज्ञान का वर्णन

कश्यप महर्षि ने कहा— इस तरह से ध्यान आदि के द्वारा बोधित किए जाने पर वह बुद्धिमान आत्मा पञ्चात्मक उस कार्य (शरीर) को त्यागने की इच्छा से विभिन्न प्रकार के शकुनों को प्राप्त करके गिरे (छुटे) हुए निर्लक्ष्य शरीर को नहीं देखता था ॥१-२॥ जब एक साथ बढ़े हुए प्राण तथा शरीर से सम्बन्ध नहीं है तो फिर धन, पुत्र तथा कलत्र (पत्नी) का सम्बन्ध किस कारण होगा ॥३॥ हे प्रिये ! इस बात को जानकर तुम शान्त हो जाओ विकलता को त्यागो । यही (आत्मा) ही परब्रह्म है, यही सनातन है ॥४॥ यही आत्मा रूप से देवताओं और दैत्यों के शरीर में स्थित रहता है । यही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र है ॥५॥ यही विश्व की सृष्टि करता है और यही प्रजाओं का पालन करता है । यह धर्म रूपी जनार्दन ही संसार करते हैं॥६॥ हे प्रिये ! इन दोनों ने ही देवताओं और दानवों को उत्पन्न किया है । देवता धर्म से रहित हैं तथा तुम्हारे पुत्र धर्म से हीन है ॥७॥ धर्म भगवान् माधव का अङ्ग है, सभी देवता उसका पालन करते हैं । हे देवि ! धर्म का ही चिन्तन और पालन करना चाहिए ॥८॥ जो ऐसा करता है उस पर भगवान् विष्णु सदा कृपा करते हैं । देवता धर्म, सत्य तथा तपस्या का व्यवहार करते हैं ॥९॥ जिन पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वे ही इस लोक में धर्म का पालन करते हैं । यह धर्म भगवान् विष्णु का शरीर है और सत्य उनका हृदय है ॥१०॥ जो उन दोनों का पालन करता है उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । जो सत्य एवं धर्म को दूषित करता है वह पाप की ही रक्षा करता है ॥११॥ उस पर अत्यन्त पराक्रमी विष्णु क्रुद्ध हो जाते हैं और उसका नाश कर देते हैं । तपस्या और सत्य पर स्थित वैष्णवजन धर्म का पालन करते हैं ॥१२॥

तेषां प्रसन्नो धर्मात्मा रक्षामेव करोति च। तव पुत्रा दनोः पुत्राः सैंहिकेयास्तथैव च॥१३॥
अधर्मेणापि पापेन वर्तिताः पापचेतसः। सूदिता वासुदेवेन समरे चक्रपाणिना॥१४॥
योऽसावात्मा मया प्रोक्तः पूर्वमेव तवाग्रतः। सोऽयंविष्णुर्नसन्देहोधर्मात्मा सर्वपालकः॥१५॥
दैत्यकायेषु यः स्वस्थः पापमेव समास्थितः।
जघ्निवान्दानवान्देवि स च क्रुद्धो महामतिः॥१६॥
सबाह्याभ्यन्तरे भूत्वा तव पुत्रा निपातिताः। येन चोत्पादिता देवि तेनैव विनिपातिताः॥१७॥
नैषां मोहस्तु कर्तव्यो भवत्या वचनं शृणु। पापेन वर्तते योऽसौ स एव निधनं व्रजेत्॥१८॥
तस्मान्मोहं परित्यज्य सदा धर्मं समाश्रय ॥१९॥

दितिरुवाच

एवमस्तु महाभाग करिष्ये वचनं तव। कश्यपं च मुनिश्रेष्ठमेवमाभाष्य दुःखिता॥२०॥
सम्बोधिता सा मुनिना दुःखं सन्त्यज्य संस्थिता॥२१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे देवासुरे दितिसम्बोधनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दशवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

ततस्ते दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपूत्तराः। युद्धाद्भग्नास्तु किं चक्रुर्व्यवसायं महामते॥१॥

उन सबों के ऊपर धर्मात्मा भगवान् प्रसन्न होकर उन सबों की रक्षा करते हैं तुम्हारे, दनु तथा सिंहिका के पुत्र पापी हैं, अधर्म करते रहते हैं। इसीलिए चक्रपाणि मधुसूदन ने उन सबों को युद्ध में मारा॥१३-१४॥ जिन्हें तुम्हे पहले आत्मा कहा है, वे धर्मात्मा तथा सबों का पालन करने वाले भगवान् विष्णु ही हैं॥१५॥ जो आत्मा दैत्यों के शरीर में पाप रूप से स्थित हैं। वे महाबुद्धिमान क्रुद्ध होकर दैत्यों को मार दिए॥१६॥ वे बाहर भीतर रहकर तुम्हारे पुत्रों को मार दिए। हे देवि! जिन्होंने उन्हें उत्पन्न किया उन्होंने ही उन सबों को मार दिया॥१७॥ तुम मेरी बात को सुनो! इन सबों का मोह तुम्हें नहीं करना चाहिए जो पाप करते है, वह मरता है॥१८॥ अतएव मोह को छोड़कर सदा धर्म करो॥१९॥ **दिति ने कहा—** ठीक हैं महाभाग! मैं आपके वचन का पालन करूँगी। दुखिता दिति ने मुनियों में श्रेष्ठ कश्यप महर्षि को इस प्रकार से कहकर॥२०॥ मुनि के द्वारा संबोधित होकर दुःख को त्याग कर स्थिर हो गयी॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड दिति सम्बोधन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥९॥

हिरण्यकशिपु आदि दैत्यों का अपने पिता के समक्ष अपने कष्ट को बतलाना

ऋषियों ने कहा— हे महामते! युद्ध से भ्रष्ट होकर वे हिरण्यकशिपु आदि दानव क्या किए?॥१॥

विस्तरेणापि नो ब्रूहि तेषां वृत्तमनुत्तमम् । श्रोतुमिच्छामहे सर्वं त्वत्तो वै साम्प्रतं द्विज ॥२॥

सूत उवाच

भग्ना रणात्तु ते सर्वे बलहीनास्तु वै तदा। गतदर्पाः सुदुःखार्ता दैत्यास्ते पितरं गताः ॥३॥
भक्त्या प्रणम्य ते सर्वे समूचुः कश्यपं तदा ॥४॥

दानवा ऊचुः

भवद्वीर्यात्समुत्पत्तिरस्माकं द्विजसत्तम। देवतानां महाभाग दानवानां तथैव च ॥५॥
वयं तु दानवाः सर्वे बलवीर्यपराक्रमाः । उपायज्ञाः सुधीराश्च उद्यमेन समन्विताः ॥६॥
वयं तु बहवस्तात देवास्त्वल्पास्तथैव च। कथं जयन्ति ते सर्वे वयं भग्ना महाहवात् ॥
तत्किं वै कारणं तात बलतेजः समन्विताः ॥७॥
मत्तनागसहस्राणामेकैकस्य महामते ॥८॥
बलमस्ति च दैत्यस्य नास्ति देवेषु तादृशम्। जयश्च दृश्यते तात देवेष्वेव महाहवे ॥
तत्सर्वं कथयस्वैव संशयं छेत्तुमर्हसि ॥९॥

कश्यप उवाच

शृणुध्वं पुत्रकाः सर्वे जयस्यापि च कारणम् ।
यस्माद्धि देवताः सर्वे समरे जयिनोऽभवन् ॥१०॥

वीर्यनिर्वापकस्तातो माता क्षेत्रमिदं सदा । धारणे पालने चैव पोषणे च यथैव हि ॥११॥
किं कुर्याद्विषमार्थे तु पिता पुत्रे च वै तथा। अत्र प्रधानं कर्मैव मामेव बुद्धिराश्रिता ॥१२॥
द्वैविध्यं कर्मसम्बन्धं पापपुण्यसमुद्भवम्। सत्यमेव समाश्रित्य क्रियते धर्म उत्तमः॥१३॥
तपोध्यानसमायुक्तं तारणाय हि तं सुताः । पातकं पतनायोक्तं सर्वदैव न संशयः॥१४॥

उन सबों का अनुत्तम वृत्तान्त आप विस्तार पूर्वक बतलाएँ । हे द्विज ! उसको इस समय हमलोग आपसे सुनना चाहते हैं । **सूतजी ने कहा—** उस समय युद्ध में मग्न होकर बलहीन, दर्पहीन तथा दुखार्त दैत्य अपने पिता के पास गये ॥३॥ भक्ति पूर्वक उनको प्रणाम करके वे सब महर्षि कश्यप से कहे ॥४॥ **दानवों ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके वीर्य से ही हमलोगों की तथा देवताओं की तथा दानवों की उत्पत्ति हुयी है॥५॥ हम (दैत्य) तथा दानव बल, वीर्य और पराक्रम से युक्त उपायों को जानने वाले, धैर्यवान् और प्रयासशील हैं ॥६॥ हे तात ! हमलोग बहुत हैं और देवताओं की संख्या कम है । इस महासमर में हमलोग क्यों पराजित हो गये और देवता विजयी हो गये ॥७॥ हे तात ! क्या कारण है ? हम बल और तेज से युक्त हैं हममें से एक-एक हजारों मदमत्त हाथी के बल से युक्त हैं ॥७-८॥ दैत्यों में जैसा बल है वैसा बल देवताओं में नहीं है । किन्तु हे तात ! युद्ध में देवताओं की ही विजय होती हैं । इन सारी बातों को बतलाकर आप हमलोगों के संदेह को दूर करें ॥९॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** पुत्रों ! तुमलोग उसका कारण सुनो, जिसके कारण सभी देवता युद्ध में विजयी हो गये ॥१०॥ पिता तो वीर्य का निर्वाप करता है और उसको धारण, पोषण और पालन करने वाली माता क्षेत्र के समान है ॥११॥ उसमें होने वाली विषमता के विषय में पिता क्या करें ? मेरे विचारानुसार इसमें कारण कर्म ही है ॥१२॥ कर्म का सम्बन्ध दो प्रकार का है पुण्यरूप से तथा पाप रूप से । सत्य को अपनाकर किया जाने वाला धर्म उत्तम है ॥१३॥

बलेन परिवारेण आभिजात्येन पुत्रकाः । पुण्यहीनस्य पुंसो वै तद्बलं विकलायते ॥१५॥
उन्नता गिरिदुर्गेषु वृक्षाः सन्ति सुपुत्रकाः । पतन्ति वातवेगेन समूलास्तु घनास्तथा ॥१६॥
सत्यधर्मविहीनास्ते तथा यान्ति यमक्षयम् । साधारणः प्राणिनां च धर्म एष सुपुत्रकाः ॥१७॥
येन सन्तरते जन्तुरिह चैव परत्र च । तद्युष्माभिः परित्यक्तं सत्यं धर्मसमन्वितम् ॥१८॥
अधर्ममास्थितं पुत्रा युष्माभिः सत्यवर्जितैः । सत्यधर्मतपोभ्रष्टाः पतिता दुःखसागरे ॥१९॥
देवाश्च सत्यसम्पन्नाः श्रेयसा च समन्विताः । तपःशान्तिदमोपेताःसुपुण्याःपापवर्जिताः ॥२०॥
यत्र सत्यं च धर्मश्च तपः पुण्यं तथैव च । यत्र विष्णुर्हृषीकेशो जयस्तत्र प्रदृश्यते ॥२१॥
तेषां सहायः सम्भूतो वासुदेवः सनातनः । तस्माज्जयन्ति ते देवाः सत्यधर्मसमन्विताः ॥२२॥
सहायेन बलेनैव पौरूषेण तथैव च । भवन्तः किल वै पुत्रास्तपःसत्यविवर्जिताः ॥२३॥
यस्य विष्णुः सहायश्च तपश्चैव बलं तथा । तस्यैव च जयो दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥२४॥
यूयं धर्मविहीनास्तु तपःसत्यविवर्जिताः । ऐन्द्रं पदं बलेनैव प्राप्तवन्तश्च पूर्वतः ॥२५॥
तपो विना महाप्राज्ञा धर्मेण यशसा विना । बलदर्पगुणैः पुत्रा न प्राप्यं मैन्द्रकं पदम् ॥२६॥
प्राप्याप्यैन्द्रं पदं पुत्रास्ततोभ्रष्टा भवन्ति हि । तस्माद्यूयं प्रकुर्वन्तु तपःपुत्राः शमन्विताः ॥२७॥
अविरोधेन संयुक्ता ज्ञानध्यानसमन्विताः । वैरं चैव न कर्तव्यं केशवेन समं कदा ॥२८॥
एवं विधा यदा पुत्रा यूयं धन्या भविष्यथ । परां सिद्धिं तदा सर्वे प्रयास्यथ नसंशयः ॥२९॥
एवं सम्भाषितास्ते तु कश्यपेन महात्मन । समाकर्ण्य पितुर्वाक्यं दानवास्ते महौजसः ॥३०॥

पुत्रों, तपस्या और ध्यान से युक्त धर्म तारने वाला होता है । पाप को सदा पतन का कारण बतलाया गया है ॥१४॥ बल, परिवार तथा अभिजात्य (सद्वंश) के द्वारा पापी पुरुष का विकल (कमजोर) हो जाता है॥१५॥ हे पुत्रों ! पर्वत की कन्दराओं में बहुत बड़े और घने वृक्ष होते हैं किन्तु वे वायु के वेग से गिर पड़ते हैं ॥१६॥ उसी तरह सत्य एवं धर्म से रहित पुरुष मारे जाते हैं । हे पुत्रों ! प्राणियों के लिए धर्म साधारण है ॥१७॥ उसी के द्वारा जीव लोक और परलोक में संसार को पार कर जाते हैं । तुमलोगों ने सत्य एवं धर्म का परित्याग कर दिया है ॥१८॥ पुत्रों सत्य से रहित तुमलोग ने अधर्म को अपना लिया है । सत्य, धर्म और तपस्या से रहित होने के कारण तुमलोग दुःख के समुद्र में गिर पड़े हो ॥१९॥ सत्य का पालन करने वाले देवता को कल्याण प्राप्त हैं । पाप से रहित वे तपस्या, शान्ति तथा दम से युक्त होने के कारण पुण्यवान् हैं ॥२०॥ जहाँ पर सत्य, धर्म, पुण्य तथा भगवान् हृषीकेश विष्णु हैं वहीं पर विजय होती है ॥२१॥ चूँकि भगवान् वासुदेव देवताओं के सहायक हैं इसीलिए सत्य तथा धर्म से युक्त देवता विजयी होते हैं ॥२२॥ पुत्रों सहायक, बल तथा पौरुष से युक्त होने पर भी तुमलोग तप और सत्य से रहित हो ॥२३॥ धर्म के जानकारों का कहना है कि जिसके सहायक विष्णु हैं और तपस्या ही बल है, उसी की विजय देखी जाती है ॥२४॥ तुमलोग धर्म विहीन हो, तपस्या और सत्य से रहित हो, पहले से ही बल के द्वार ऐन्द्रपद प्राप्त किए हो ॥२५॥ हे महाप्रज्ञ पुत्रों ! तप, धर्म और यश के बिना केवल बल और दर्प के गुणों से ऐन्द्र पद को नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥२६॥ यदि ऐन्द्र पद मिल भी जाय तो उससे पतन हो जाता है । अतएव पुत्रों तुमलोग शान्ति पूर्वक तप करो ॥२७॥ किसी से विरोध न करके ज्ञान तथा ध्यान से युक्त होकर कभी भी केशव से तुमलोगों को वैर नहीं करना चाहिए ॥२८॥ पुत्रों ! जब

प्रणम्य कश्यपं भक्त्या समुत्थाय त्वरान्विताः ।
सुमन्त्रं चक्रिरे दैत्याः परस्परसमाहिताः ॥३१॥

हिरण्यकशिपू राजा तानुवाचाथ दानवान्। तपश्चैव करिष्यामो दुष्करं सर्वदायकम् ॥३२॥
हिरण्याक्षस्तदोवाच करिष्ये दारुणं तपः । ततो बलेन त्रैलोक्यं ग्रहीष्ये नात्र संशयः ॥३३॥
रणे निर्जित्य गोविन्दं तमिमं पापचेतसम् । व्यापाद्य देवताः सर्वाःपदमैन्द्रं व्रजाम्यहम्॥३४॥

बलिरुवाच

एवं न युज्यते कर्तुं युष्माभिर्दितिजेश्वराः। विष्णुना सह यद्वैरं तद्वैरं नाशकारणम्॥३५॥
दानधर्मैस्तथापुण्यैस्तपोभिर्यज्ञयाजनैः । तमाराध्य हृषीकेशं सुखं गच्छन्ति मानवाः ॥३६॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

अहमेवं न करिष्ये हरेराधनं कदा। स्वभावं तु परित्यज्य शत्रुसेवा प्रचर्यते॥३७॥
मरणादधिकं तं तु मानयन्ति हि पण्डिताः ।
विष्णोः सेवा न वै कार्या मया चान्यैश्च दानवैः ॥३८॥

तुमवाच महात्मानं बलिः पितामहं पुनः। धर्मशास्त्रेषु यद्दृष्टं मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥३९॥
राजनीतियुतं मन्त्रं शत्रोश्चैव प्रधानतः। हीनमात्मानमाज्ञाय रिपुं तं बलिनं तथा ॥४०॥
तस्य पार्श्वे प्रगत्वेव जयकालं प्रतीक्षयेत्। दीपच्छायां समाश्रित्य तमो वसति सर्वदा॥४१॥
स्नेहं दशागतं प्रेक्ष्य दीपस्यापि महाबलम् । स्नेहं कृत्वा सुरैः सार्द्धधर्मभावैःसुरद्विषः ॥४२॥
पूर्वमुक्तं सुमन्त्रं तु मुनिना कश्यपेन हि । तेन मन्त्रेण राजेन्द्र कुरु कार्यं स्वमात्मवान् ॥४३॥

तुमलोग इस प्रकार से धन्य हो जाओगे तो तुमलोग निश्चित रूप से सर्वोत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लोगे॥२९॥ इस तरह महात्मा कश्यप के द्वारा कहे जाने पर उनकी बातों को सुनकर वे महाओजस्वी दानव महर्षि को प्रणाम करके शीघ्रता पूर्वक वहाँ से उठकर एकत्रित होकर आपस में विचार किए ॥३०-३१॥ राजा हिरण्यकशिपु ने उन सबों से कहा— हम सबकुछ प्रदान करने वाली दुष्कर तपस्या ही करेंगे ॥३२॥ उसके बाद हिरण्याक्ष ने कहा— यह निश्चित है कि मैं भयङ्कर तपस्या करूँगा और उसके बाद मैं बलपूर्वक त्रैलोक्य को अपने वश में कर लूँगा ॥३३॥ युद्ध में पापी केशव को जीतकर तथा सभी देवताओं को मारकर ऐन्द्र पद को मैं प्राप्त कर लूँगा ॥३४॥ **बलि ने कहा**— हे दैत्यों ! ऐसा करना उचित नहीं है । विष्णु से वैर करना तो विनाशकारी है ॥३५॥ दान, धर्म, पुण्य तथा तपस्या तथा यज्ञों के द्वारा विष्णु की आराधना करके मनुष्य सुख को प्राप्त करते हैं ॥३६॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा**— मैं अपने स्वभाव का परित्याग करके शत्रु की सेवा नहीं कर सकता अतएव मैं विष्णु की आराधना नहीं कर सकता हूँ ॥३७॥ पण्डितजन बतलाते हैं कि शुत्र की सेवा मरण से भी अधिक कष्टप्रद होती है अतएव मैं अथवा किसी भी दैत्य को विष्णु की सेवा नहीं करनी चाहिए ॥३८॥ बलि ने अपने पितामह हिरण्यकशिपु से कहा— शास्त्रज्ञ मुनियों ने धर्मशास्त्रों में देखा है कि राजनीति युक्त मन्त्र यह है कि शत्रुओं को बलवान् रूप से तथा अपने को कमजोर जानकर उस बलवान् शत्रु के पास जाकर अपने विजय के समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए । ठीक उसी तरह जैसे तमस (अन्धकार) दीप की छाया को ही अपनाकर वहाँ रहता है ॥३९-४१॥ किन्तु जब दीपक का बलरूपी तेल समाप्त हो जाता है, उस समय अन्धकार वेगपूर्वक बढ़ जाता है ॥४२॥ उसी तरह कपट पूर्वक शत्रु

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राह दैत्यः प्रतापवान्। पौत्र नैवं करिष्येऽहं मानभङ्गं तथात्मनः ॥४४॥
अन्ये च बान्धवाः सर्वे तमूचुर्नयपण्डितम्। बलिनोक्तं च यत्पुण्यं देवतानां प्रियङ्करम् ॥४५॥
शक्रमानकरं प्रोक्तं दानवानां भयङ्करम्। करिष्यामो वयं सर्वे तप एवमनुत्तमम् ॥४६॥
तपसा निर्जित्य देवान्हरिष्यामः स्वकं पदम्। एवमामन्त्र्य ते सर्वे निराकृत्य बलिं तदा ॥४७॥
विष्णोः सार्द्धं महावैरं हृदि कृत्वा महासुराः ।
तपश्चक्रुस्ततः सर्वे गिरिदुर्गेषु सानुषु ॥४८॥
एवं ते दानवाः सर्वे त्यक्तरागाः सुनिश्चिताः ।
कामक्रोधविहीनाश्च निराहारा जितक्लमाः ॥४९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे दैत्यतपश्चर्यावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सर्वज्ञेन त्वया प्रोक्तं दैत्यदानवसङ्गरम्। इदानीं श्रोतुमिच्छामः सुव्रतस्य महात्मनः ॥१॥
कस्य पुत्रो महाप्राज्ञः कस्य गोत्रसमुद्भवः । कि तपस्तस विप्रस्य कथमाराधितो हरिः ॥२॥

के बल को देखकर उसको प्रसन्न करना चाहिए । हे राजेन्द्र ! मुनि कश्यप ने इसीलिए सुन्दर मन्त्र बतलाया है । हे देवशत्रो ! उनके कथनानुसार ही आप कार्य करें ॥४३-४४॥ बलि की उस बात को सुनकर हिरण्यकशिपु ने कहा— हे पौत्र ! मैं इस तरह से अपना मानभङ्ग नहीं कर सकता हूँ ॥४५॥ दूसरे असुरों ने उस बलि को नीति का पण्डित कहा और बलि ने जो कहा है वह तो देवताओं को प्रसन्न करने वाला है ॥४६॥ उसे तो इन्द्र को सम्मान देने वाला कहा गया है, वह दानवों के लिए भयङ्कर है । हम सबलोग सर्वोत्तम तपस्या ही करेंगे ॥४७॥ तपस्या के द्वारा देवताओं को हराकर अपना पद प्राप्त कर लेंगे । इस तरह से विचार करके दानवों ने बलि का निरादर कर दिया ॥४८॥ उन बड़े-बड़े असुरों ने अपने हृदय में विष्णु के साथ महान् वैर किया । उसके बाद वे सभी पर्वत की कन्दराओं तथा पर्वत के शिखरों पर जाकर तपस्या करने लगे । इस तरह से सभी दैत्य अपना दृढ़ निश्चय करके राग का परित्याग कर दिया । वे काम तथा क्रोध से विहीन हो गये श्रान्ति पर विजय प्राप्त करके निराहार रहने लगे ॥४९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के दैत्यों की तपस्या वर्णन नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

सुव्रत चरित्र का वर्णन

ऋषियों ने कहा— आप सर्वज्ञ हैं, आपने दैत्य दानव युद्ध कार वर्णन किया है । अब हमलोग महात्मा सुव्रत के विषय में सुनना चाहते हैं ॥१॥ वे महाप्राज्ञ किसके पुत्र थे ? वे किस गोत्र में उत्पन्न हुए

सूत उवाच

कथा प्रज्ञाप्रभावेन पूर्वमेव यथा श्रुतम्। तथा विप्राः प्रवक्ष्यामि सुव्रतस्य महात्मनः ॥३॥
चरितं पावनं दिव्यं वैष्णवं श्रेय आवहम्। भवतामग्रतः सर्वं विष्णोश्चैव प्रसादतः ॥४॥
पूर्वकल्प महाभागाः सुक्षेत्रे पापनाशने। रेवातीरे सुपुण्ये च तीर्थे वामनसंज्ञके ॥५॥
कौशिकस्य कुले जातः सोमशर्मा द्विजोत्तमः ।
स तु पुत्रविहीनस्तु बहुदुःखसमन्वितः ॥६॥
दारिद्र्येण स दुःखेन सर्वदैव प्रपीडितः। पुत्रोपायं धनस्यापि दिवारात्रौ प्रचिन्तयेत् ॥७॥
एकदा तु प्रिया तस्य सुमना नाम सुव्रता। भर्तारं चिन्तयोपेतमधोमुखमलक्षयत् ॥८॥
समालोक्य तदा कान्तं तमुवाच तपस्विनी। दुःखजालैरसङ्ख्यैस्तु तवचित्तं प्रधर्षितम् ॥९॥
व्यामोहेन प्रमूढोऽसि त्यज चिन्तां महामते। मम दुःखं समाचक्ष्व स्वस्थो भव सुखं व्रज ॥१०॥
नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि। यश्चिन्तां त्यज्य वर्तेत स सुखेन प्रमोदते ॥११॥
चिन्तायाः कारणं विप्र कथयस्व ममाग्रतः। प्रियावाक्यं समाकार्ण्य सोमशर्माब्रवीत्प्रियाम् ॥१२॥

सोमशर्मोवाच

इच्छया चिन्तितं भद्रे चिन्तादुःखस्य कारणम् ।
तत्सर्वं तु प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ॥१३॥
न जाने केन पापेन धनहीनोऽस्मि सुव्रते। तथा पुत्रविहीनश्च एतद्दुःखस्य कारणम् ॥१४॥

सुमनोवाच

श्रूयतामभिधास्यामि सर्वसन्देहनाशनम्। स्वरूपमुपदेशस्य सर्वविज्ञानदर्शनम् ॥१५॥

थे ? उन्होंने कौन सी तपस्या की ? और श्रीहरि की आराधना उन्होंने कैसे की ?॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे विप्रों ! उन महाप्रज्ञ की कथा जैसी मैंने सुनी है, उसी तरह से मैं कह रहा हूँ ॥३॥ भगवान् विष्णु की कृपा से मैं आपलोगों के संमक्ष कल्याणप्रद पवित्र तथा दिव्य वैष्णव चरित को कह रहा हूँ ॥४॥ महाभागों! पहले के कल्प में रेवा नदी (नर्मदा नदी) के तट पर पाप विनाशक, सुन्दर तथा पवित्र वामन क्षेत्र में ॥५॥ कौशिक वंश में सोमशर्मा नामक द्विजश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। वे पुत्रहीन होने के कारण अत्यन्त दुःखी थे ॥६॥ वे सदैव दारिद्रय जन्य दुःख से पीड़ित रहते थे। वे रात-दिन पुत्र तथा धन दोनों की प्राप्ति के उपाय का चिन्तन करते रहते थे। एक बार उनकी सुमना नाम की पत्नी ने अपने पति को नीचे मुख किए हुए तथा चिन्तित देखा ॥८॥ अपने पति को देखकर उस तपस्विनी ने उनसे कहा असंख्य दुःख समूह से आपका चित्त दुःखी है ॥९॥ आप अत्यधिक मोह से ग्रस्त हैं। हे महामते ! आप चिन्ता छोड़िये। मुझे अपना कष्ट बतलाइये। और स्वस्थ होकर सुखी हो जाइये ॥१०॥ चिन्ता के समान शरीर को सुखाने वाला कोई दूसरा कष्ट नहीं है। जो निश्चिन्त होकर कार्य करता है वह सुख से प्रसन्न रहता है ॥११॥ आप अपनी चिन्ता का कारण मुझे बतलायें पत्नी की बातें सुनकर सोमशर्मा ने उससे कहा ॥१२॥ **सोमशर्मा ने कहा—** भद्रे ! अपनी इच्छा से चिन्तित अपने दुःख के कारण भूत चिन्ता को बतलाता हूँ; उसे सुनकर तुम निश्चय करो॥१३॥ हे सुव्रते ! न जाने किस पाप के कारण मैं धनहीन और पुत्रहीन हूँ, यही मेरे दुःख का कारण है ॥१४॥ **सुमना ने कहा—** मैं सभी विज्ञानों को प्रदान करने वाले उपदेश के स्वरूप को बतलाती हूँ।

लोभः पापस्य बीजं हि मोहो मूलं च तस्य हि ।
असत्यं तस्य वै स्कन्धो माया शाखासुविस्तरा ॥१६॥
दम्भकौटिल्यपत्राणि कुबुद्ध्या पुष्पितः सदा ।
अनृतं तस्य सौगन्ध्यं फलमज्ञानमेव च ॥१७॥

छद्मपाखण्डचौर्येर्ष्याःक्रूराःकूटाश्चपापिनः । पक्षिणो मोहवृक्षस्य मायाशाखासमाश्रिताः ॥१८॥
अज्ञानं सुफलं तस्य रसोऽधर्मःफलस्य हि। तृष्णोदकेन संवृद्धाऽश्रद्धा तस्य द्रवः प्रिय ॥१९॥
अधर्मस्तु रसस्तस्य उत्कटो मधुरायते। यादृशैश्च फलैश्चैव सुफलो लोभपादपः ॥२०॥
अस्य च्छायां समाश्रित्य यो नरःपरितुष्यते। फलानि तस्य चाश्नाति सुपक्वानि दिने दिने॥२१॥
फलानां तु रसेनापि अधर्मेण तु पालितः। स सन्तुष्टो भवेन्मर्त्यःपतनायाभिगच्छति ॥२२॥

तस्माच्चिन्तांपरित्यज्य पुमाँल्लोभं न कारयेत् ।
धनपुत्रकलत्राणां चिन्तामेकां न कारयेत् ॥२३॥
यो हि विद्वान्भवेत्कान्त मूर्खाणां पथमेति हि ।
मूर्खश्चिन्तयते नित्यं कथमर्थ ममैव हि ॥२४॥

सुभार्यामिह विन्दामि कथं पुत्रानहं लभे। एवं चिन्तयते नित्यं दिवारात्रौ विमोहितः ॥२५॥
क्षणमेकं प्रपश्येत चिन्तामध्ये महत्सुखम्। पुनश्चैतन्यमायाति महादुःखेन पीड्यते॥२६॥
चिन्तामोहौ परित्यज्य अनुवर्तस्व च द्विज। संसारेनास्ति सम्बन्धःकेन सार्धं महामते॥२७॥
मित्राणि बान्धवाःपुत्राःपितृमातृसभृत्यकाः। सम्बन्धिनो भवन्त्येव कलत्राणि तथैव च॥२८॥

वह समस्त सन्देहों को विनष्ट करने वाला है उसे आप सुनें ॥१५॥ पाप वृक्ष का कारण लोभ है, लोभ का कारण मोह है, मिथ्या भाषण ही उसकी मुख्य शाखा है, माया ही उसकी शाखाओं का विस्तार है ॥१६॥ दम्भ और कुटिलता ही उस पाप वृक्ष के पत्ते हैं, वह कुबुद्धि के द्वारा सदा पुष्पित रहता है । अनृत ही उसकी सुगन्धि है और अज्ञान ही उसका फल है ॥१७॥ कपट, पाखण्ड, चोरी, इर्ष्या ये सभी उस पाप वृक्ष पर रहने वाले क्रूर तथा पापी पक्षी हैं । उस मोह वृक्ष की छाया माया है ॥१८॥ उसका सुन्दर दिखने वाला अज्ञान ही फल है, अधर्म ही उस फल का रस है । वह वृक्ष तृष्णा रूपी जल को पाकर बढ़ता है और श्रद्धा ही उसका प्रिय द्रव है ॥१९॥ उसका अधर्म रूपी उत्कट रस ही मधुर लगता है । उसी के कारण लोभ रूपी वृक्ष सुन्दर फल वाला लगता है ॥२०॥ उसकी छाया को अपना कर जो व्यक्ति सुख का अनुभव करता है, उसके परिणत फलों का वह प्रतिदिन भोग करता है ॥२१॥ उसके फलों के अधर्म रूपी रस के द्वारा पलने और सन्तुष्ट रहने वाले मनुष्य का पतन हो जाता है ॥२२॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह चिन्ता को छोड़ दे, और लोभ न करे । धन, पुत्र और पत्नी इन सबों में से किसी की भी चिन्ता न करे ॥२३॥ हे कान्त ! जो विद्वान मूर्खों के मार्ग को अपना लेता है वह मूर्ख ही सोचता है कि किस प्रकार से मुझे धन मिले ॥२४॥ मैं कैसे सुन्दर पत्नी प्राप्त करूँ ? और कैसे पुत्रों को प्राप्त करूँ ? अत्यन्त मोहित होकर रात-दिन चिन्ता करता रहता है ॥२५॥ चिन्ता में पड़ा हुआ वह एक क्षण तक महान् सुख का अनुभव करता है । उसके बाद जब चैतन्य होता है तो बहुत अधिक कष्ट से पीड़ित हो जाता है॥२६॥ हे द्विज ! आप चिन्ता और मोह का परित्याग करें संसार में किसके साथ सम्बन्ध नहीं है?॥२७॥

सोमशर्मोवाच

सम्बन्धःकीदृशो भद्रे तथा विस्तरतो वद। येन सम्बन्धिनःसर्वे धनपुत्रादिबान्धवाः ॥२९॥

सुमनोवाच

ऋणसम्बन्धिनः केचित्केचिन्न्यासापहारकाः। लाभप्रदा भवन्त्येके उदासीनास्तथापरे ॥३०॥
भेदैश्चतुर्भिर्जायन्ते पुत्रमित्रस्त्रियस्तथा। भार्यापिता च माताच भृत्याःस्वजनबान्धवाः ॥३१॥
स्वेनस्वेन हि जायन्ते सम्बन्धेन महीतले। न्यासापहारभावेन यस्य येन कृतंभुवि ॥३२॥
न्यासस्वामी भवेत्पुत्रो गुणवान्रूपवान्भुवि। येनैवापहृतंन्यासं तस्य गेहे न संशयः॥३३॥
न्यासापहरणाद्दुःखं स दत्त्वादारुणं गतः। न्यासस्वामी सुपुत्रोऽभून्न्यासापहारकस्य च ॥३४॥
गुणवान्रूपवांश्चैव सर्वलक्षणसंयुतः। भक्तिं तु दर्शयंस्तस्य पुत्रो भूत्वा दिने दिने॥३५॥
प्रियवाङ्मधुरो रोगी बहुस्नेहं विदर्शयन्। स्वीयं द्रव्यं समुद्गृह्य प्रीतिमुत्पाद्य चोत्तमाम्॥३६॥
यथा येन प्रदत्तंस्यान्नयासस्य हरणात्पुरा। दुःखमेव महाभाग दारुणं प्राणनाशनम् ॥३७॥
तादृशं तस्य सौहृद्यात्पुत्रो भूत्वा महागुणैः। अल्पायुश्च तथा भूत्वा मरणं चोपगच्छति॥३८॥
दुःखं दत्त्वा प्रयात्येवं भूत्वा भूत्वा पुनःपुनः। यदा हा पुत्र पुत्रेति प्रलापं हि करोति सः ॥३९॥
तदाहास्यं करोत्येव कस्य पुत्रो हि कःपिता।
अनेनापहृतं न्यासं मदीयस्योपकारणम् ॥४०॥
द्रव्यापहरणेनापि न मे प्राणा गताः किल। दुःखेन महता चैव असह्येन च वै पुरा ॥४१॥

मित्र, बान्धव, पुत्र, माता-पिता, भृत्य तथा पत्नी ये सभी सम्बन्धी तो हैं हीं ॥२८॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे भद्रे ! सम्बन्ध कैसा है, इस बात को विस्तार से कहो, जिस सम्बन्ध के कारण धन, पुत्र, इत्यादि सभी बान्धव हैं ॥२९॥ **सुमना ने कहा—** कुछ तो ऋण के सम्बन्धी हैं। कुछ न्यास का अपहरण करने वाले सम्बन्धी हैं। कुछ लाभ देने वाले सम्बन्धी हैं और कुछ उदासीन सम्बन्धी हैं ॥३०॥ पुत्र, मित्र, स्त्रियाँ, पत्नी, पिता, माता, भृत्य, स्वजन और बान्धव ये सभी चार-चार प्रकार के होते हैं ॥३१॥ ये सबके सब अपने-अपने संबन्ध के कारण होते हैं। संसार में जिसने जिसका न्यास (धरोहर) हड़प लिया है ॥३२॥ संसार में वह न्यास का स्वामी गुणवान् और रूपवान् पुत्र होकर उसके घर में उत्पन्न होता है। जिसने न्यास का अपहरण किया है ॥३३॥ न्यास का अपहरण करने के कारण उसको भयङ्कर दुःख देकर वह चला जाता है। न्यास का अपहरण करने वाले का न्यास स्वामी सुपुत्र होता है ॥३४॥ सभी लक्षण से सम्पन्न रूपवान् तथा गुणवान् पुत्र होकर अपने पिता में अपनी भक्ति को प्रतिदिन दिखलाता है ॥३५॥ वह प्रिय तथा मधुर बोलता है, रोगी रहता है, इस तरह से बहुत अधिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए अपने द्रव्य को लेकर तथा उत्तम प्रेम उत्पन्न करके ॥३६॥ न्यास को हड़पने से पहले जिसके द्वारा प्राणापहारी दुःख पाये रहता है, उसका पुत्र होकर अपने गुणों से सौहार्द को उत्पन्न करके अल्पायु होकर मर जाता है ॥३७-३८॥ इस तरह से वह बार-बार पुत्र होकर और दुःख देकर मर जाता है। और वह न्यास को बार-बार हाय-हाय पुत्र कहकर रोता है ॥३९॥ उस समय वह न्यास स्वामी को देखकर हँसता है, अतएव कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता है। न्यास स्वामी कहता है इसने ही मेरा न्यास हड़प लिया है ॥४०॥ वह सोचता है कि इसके द्वारा न्यास के हड़प लिए जाने पर भी असहय महान् दुःख के कारण मेरे प्राण नहीं

तथा दुःखं प्रदत्त्वाऽहं द्रव्यमुद्गृह्य चोत्तमम् ।
गन्तास्मि सुभृशं चाद्य कस्याहं सुत ईदृशः ॥४२॥
न चैष मे पितापुत्रःपूर्वमेव न कस्यचित्। पिशाचत्वं मया दत्तमस्यैवेति दुरात्मनः ॥४३॥
एवमुक्त्वा प्रयात्येवं तं प्रहस्य पुनः पुनः। प्रयात्यनेन मार्गेण दुःखं दत्वा सुदारुणम् ॥४४॥
एवं न्यासं समुद्धर्तुःपुत्राःकान्ता भवन्ति वै। संसारे दुःखबहुला दृश्यन्ते यत्र यत्र च ॥४५॥
ऋणसम्बन्धिनः पुत्रान्प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः ॥४६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे सुव्रतोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

सुमनोवाच

ऋणसम्बन्धिनं पुत्रं प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः। ऋणं यस्य गृहीत्वा यःप्रयाति मरणं किल ॥१॥
अर्थदाता सुतो भूत्वा भ्राता चाथ पिताप्रिया ।
मित्ररूपेण वर्तेत अतिदुष्टःसदैव सः ॥२॥
गुणं नैवप्रपश्येत सक्रूरो निष्ठुरा कृतिः । जल्पते निष्ठुरं वाक्यं सदैव स्वजनेषु च ॥३॥
मिष्टं मिष्टं समश्नाति भोगान्भुङ्क्ते च नित्यशः। द्यूतकर्मरतो नित्यं कुत्सते च दिने दिने ॥४॥
गृहद्रव्यं वलाद्भुङ्क्ते वार्यमणः सकुप्यति । पितंरमातंरचैव कुत्सते च दिने दिने ॥५॥

निकले ॥४१॥ उसी तरह का दुःख देकर तथा उत्तम द्रव्य लेकर आज मैं जा रहा हूँ। मैं किसका पुत्र हूँ?॥४२॥ न तो यह मेरा पिता है और न तो किसी का पुत्र पहले था। मैंने इस दुष्ट को पिशाचत्व प्रदान कर दिया है ॥४३॥ इस तरह से कहकर वह अट्टहास करके बार-बार चला जाता है। इस मार्ग से वह भयङ्कर दुःख देकर चला जाता है ॥४४॥ इस तरह न्यासापहारी के सुन्दर पुत्र होते हैं। वे संसार में यत्र-तत्र बहुल देखे जाते हैं ॥४५॥ आपके समक्ष मैं ऋण संबन्धी पुत्रों का वर्णन करूँगी ॥४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड का सुव्रतोपाख्यान नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

ऋण सम्बन्धी पुत्र का लक्षण

सुमना ने कहा— अब मैं आपके समक्ष ऋण सम्बन्धी पुत्रों का वर्णन करूँगी। जो जिसका ऋण लेकर मर जाता है ॥१॥ धन देने वाला उसका पुत्र, भाई, पिता, पत्नी अथवा मित्र रूप से उत्पन्न होता है और अत्यन्त दुष्टता का व्यवहार करता है ॥२॥ वह क्रूर तथा निष्ठुर बुद्धि वाला व्यक्ति उसके गुण को कभी नहीं देखता है, वह अपने लोगों के प्रति अत्यन्त निष्ठुर वाक्यों को बोलता है ॥३॥ वह नित्य ही अच्छी वस्तुएँ खाता है और नित्य ही जूआ खेलता है और चोरी करता है ॥४॥ वह बलपूर्वक घर के द्रव्य

द्रावकस्त्रासकश्चैव बहुनिष्ठुरजल्पकः । एवंभुक्त्वाऽथ तद्द्रव्यं सुखेन परितिष्ठति॥६॥
जातकर्मादिभिर्बाल्ये द्रव्यं गृह्णाति दारुणः । पुनर्विवाहसम्बन्धान्नानाभेदैरनेकधा ॥७॥
एवं सञ्जायते द्रव्यमेवमेतद्ददात्यपि । गृहक्षेत्रादिकं सर्व ममैव हि न संशयः ॥८॥
पितरं मातरं चैव हिनस्त्येव दिने दिने । भुसुण्डैर्मुसलैश्चैव सर्वघातैःसुदारुणैः ॥९॥
मृते तु तस्मिन्पितरि मातर्येवातिनिष्ठुरः। निःस्नेहो निष्ठुरश्चैव जायते नात्र संशयः ॥१०॥
श्राद्धकर्माणि दानानि न करोति कदैव सः। एवंविधाश्च वै पुत्राःप्रभवन्ति महीतले॥११॥
रिपुं पुत्रं प्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजपुङ्गव। बाल्ये वयसि सम्प्राप्ते रिपुत्वे वर्तते सदा॥१२॥
पितरं मातरं चैव क्रीडमानो हि ताडयेत् । ताडयित्वा प्रयात्येव प्रहस्यैव पुनःपुनः ॥१३॥
पुनरायाति सन्त्रस्तः पितरं मातरं प्रति। सक्रोधो वर्तते नित्यं कुत्सते च पुनःपुनः ॥१४॥
एवं स वर्तते नित्यं वैरकर्मणि सर्वदा। पितरं मारयित्वा च मातरं च ततःपुनः ॥१५॥
प्रयात्येवं स दुष्टात्मा पूर्ववैरानुभावतः। अथातःसम्प्रवक्ष्यामि यस्माल्लभ्यं भवेत्प्रियम् ॥१६॥
जातमात्रः प्रियं कुर्याद् बाल्ये लालनक्रीडनैः ।
वयःप्राप्य प्रियंकुर्यान्मातापित्रोरनन्तरम् ॥१७॥
भक्त्या सन्तोषयेन्नित्यं तावुभौ परितोषयेत् । स्नेहेन वचसा चैव प्रियसम्भाषणेन च ॥१८॥
मृते गुरौ समाज्ञाय स्नेहेन रुदते पुनः । श्राद्धकर्माणि सर्वाणि पिण्डदानादिकांक्रियाम् ॥१९॥
करोत्येव सुदुःखार्तस्तेभ्यो यात्रां प्रयच्छति । ऋणत्रयान्वितःस्नेहाद्भुञ्जापयति नित्यशः ॥२०॥

का उपभोग करता है, और रोकने पर क्रोध करता है ॥५॥ वह घर के लोगों को खदेड़ देता है, डराता है और निष्ठुर बोलता है । इस तरह वह उस द्रव्य का भोग करके सुखपूर्वक पड़ा रहता है ॥६॥ बाल्यावस्था में वह जातकर्म इत्यादि के द्वारा द्रव्य को ले लेता है । उसके बाद वह विवाह के समय अनेक प्रकार से द्रव्य को लेता है ॥७॥ इससे तरह-तरह का जो द्रव्य होता है तो उसको वह देता भी है और कहता है कि गृह, खेत इत्यादि सबकुछ मेरा ही है ।८॥ वह अपने पिता-माता को भुसुण्ड, मुसल इत्यादि के भयङ्कर प्रहार से दुःख देता है ॥९॥ माता-पिता के मर जाने पर अत्यन्त निष्ठुर वह उन लोगों के प्रति स्नेह हीन और निष्ठुर बना रहता है ॥१०॥ वह माता-पिता का कभी न तो श्राद्ध करता है और न तो उन लोगों के निमित्त कभी दान करता है । इस प्रकार के पृथिवी पर ऋण सम्बन्धी पुत्र होते हैं ॥११॥ हे द्विजपुंगव ! मैं आपके समक्ष शत्रु पुत्र का वर्णन करती हूँ । वह वाल्यावस्था में ही शत्रु बन जाता है ॥१२॥ वह खेलते समय भी अपने माता-पिता को मारता रहता है, वह मारकर बार-बार हँसता हुआ भाग जाता है ॥१३॥ उसके बाद भयभीत होकर वह फिर माता-पिता के पास आता है । वह अपनी माता-पिता के प्रति सदा क्रोध करता है और उनकी निन्दा करता है ॥१४॥ इस तरह से वह अपने माता-पिता से सदा वैर करता है और अपने माता-पिता को मारकर ॥१५॥ वह दुष्ट पूर्वकालिक वैर के प्रभाव से भाग जाता है । अब मैं आपको उस पुत्र को बतलाती हूँ जिससे माता-पिता को प्रेम मिलता है ॥१६॥ ऐसा पुत्र उत्पन्न होते ही अपनी क्रीडा तथा लालन-पालन से माता-पिता को प्रसन्न करता है । उसके बाद युवक होकर वह माता-पिता के प्रिय कार्यों को करता है ॥१७॥ वह अपनी भक्ति के द्वारा माता-पिता को सन्तुष्ट करता है और उनका पालन करता है । वह माता-पिता को स्नेहभरी वाणी तथा प्रिय सम्भाषण से प्रसन्न रखता है ॥१८॥ माता-पिता के

यस्माल्लभ्यं भवेत्कान्त प्रयच्छति न संशयः ।
पुत्रोभूत्वा महाप्राज्ञ अनेन विधिना किल ॥२१॥
उदासीनं प्रवक्ष्यामि तवाग्रे प्रियसाम्प्रतम्। उदासीनेन भावेन सदैव परिवर्तते॥२२॥
ददाति नैवागृह्णति न च कुष्यति तुष्यति। नो वा ददाति सन्त्यज्य उदासीनो द्विजोत्तम ॥२३॥
तवाग्रे कथितं सर्वं पुत्राणां गतिरीदृशी । यथापुत्रस्तथाभार्या पितामाताऽथ बान्धवाः ॥२४॥
भृत्याश्चान्ये समाख्याताः पशवस्तुरगास्तथा। गजा महिष्योदासाश्च ऋणसम्बन्धिनस्त्वमी ॥२५॥
गृहीतं न ऋणं तेन आवाभ्यां तु न कस्यचित् ।
न्यासमेवं न कस्यापि कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥२६॥
धारयामो न कस्यापि ऋणं कान्तश्रृणुष्व हि ।
न वैरमस्ति केनापि पूर्वजन्मनि वैकृतम् ॥२७॥
आवाभ्यां हि न विप्रेन्द्र न त्यक्तं हि तथापते ।
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ त्यज चिन्तामनर्थकीम् ॥२८॥
कस्य पुत्राः प्रिया भार्या कस्य स्वजनबान्धवाः ।
हृतं न चैव कस्यापि नैव दत्तं त्वया पुनः ॥२९॥
कथं हि धनमायाति विस्मयं व्रज मा धव। प्राप्तव्यमेव यत्रैव भवेद् द्रव्यं द्विजोत्तम ॥३०॥
अनायासेन हस्ते हि तस्यैव परिजायते। यत्नेन महता चैव द्रव्यं रक्षति मानवः ॥३१॥
व्रजमानो व्रजत्येव धनं तत्रैव तिष्ठति। एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ जहि चिन्तामनर्थकीम् ॥३२॥

मर जाने पर स्नेह के कारण रोता है । श्राद्धकर्मों को तथा पिण्डदान आदि क्रियाओं को करता है । अत्यन्त दुःखी होकर वह माता-पिता की अन्तिम यात्रा कराता है । तीनो ऋणों के कारण वह नित्य ही स्नेह पूर्वक पाठ कराता है ॥१९-२०॥ हे कान्त ! जिससे प्रेम प्राप्त करना होता है, वह पुत्र इसी प्रकार का आचरण करता है ॥२१॥ हे प्रिय ! इस समय मैं आपके समक्ष उदासीन पुत्र का वर्णन करती हूँ । वह पुत्र सदा उदासीन भाव से व्यवहार करता है ॥२२॥ हे द्विजोत्तम ! वह न लेता है, न क्रोध करता है और न सन्तुष्ट रहता है । वह माता-पिता से बातें भी नहीं करता है, उदासीन वह माता-पिता को त्याग देता है ॥२३॥ मैंने आपके समक्ष बतलायी कि पुत्रों की गति इसी प्रकार की होती है । पुत्र के ही समान पत्नी, पिता, माता और बन्धु भी शत्रु, मित्र तथा उदासीन होते हैं ॥२४॥ भृत्य, पशु, घोड़े, हाथी, भैंस तथा दास ये सभी ऋण संबन्धी होते हैं ॥२५॥ हे कान्त ! हमदोनों ने पूर्वजन्म में न तो किसी से ऋण लिया और न तो किसी के धरोहर को रख लिया है ॥२६॥ हे कान्त ! हमदोनों किसी का ऋण धारण भी नहीं किए और न तो हमदोनों ने पूर्वजन्म में किसी से वैर किया है ॥२७॥ हमदोनों ने किसी का परित्याग भी नहीं किया है; इन सारी बातों को जानकर आप शान्त हो जायँ और अनर्थकारिणी चिन्ता का परित्याग कर दें ॥२८॥ कौन किसका पुत्र है ? कौन प्रिया पत्नी है ? कौन किसके स्वजन बान्धव हैं ? आपने पूर्वजन्म में न तो किसी का कुछ हरण किया है और न तो किसी को कुछ दिया है ॥२९॥ हे पतिदेव ! आप विस्मय न करें कि धन कैसे आता है ? हे द्विजोत्तम ! जहाँ धन मिलना होता है, वहाँ मिल ही जाता है ॥३०॥ उसके हाथ में धन अनायास आ जाता है, और मनुष्य उसकी रक्षा सप्रयास करता है ॥३१॥ वह (धनी) संसार

कस्य पुत्राःप्रिया भार्या कस्य स्वजनबान्धवाः ।
कः कस्य नास्ति संसारे असमबन्धाद् द्विजोत्तम ॥३३॥

महामोहेन संमूढा मानवाःपापचेतसः । इदं गृहमयं पुत्र इमा नार्यो ममैव हि ॥३४॥
अनृतं दृश्यते कान्त संसारस्य हि बन्धनम् । एवं सम्बोधितो देव्या भार्यया प्रियया तदा ॥३५॥
पुनः प्राह प्रियां भार्यां सुमनां ज्ञानवादिनीम् ॥३६॥

सोमशर्मोवाच

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे सर्वसन्देहनाशनम् । तथापि वंशमिच्छन्ति साधवःसत्यपण्डिताः ॥३७॥
यथापुत्रस्य मे चिन्ता धनस्य च तथाप्रिये । येनकेनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयाम्यहम् ॥३८॥

सुमनोवाच

पुत्रेण लोकाञ्जयति पुत्रस्तारयते कुलम् । सत्पुत्रेण महाभाग पिता माता च जन्तवः ॥३९॥
एकः पुत्रो वरोविद्वान्बहुभिर्निर्गुणैस्तु किम् । एकस्तारयते वंशमन्ये सन्तापकारकाः ॥४०॥
पूर्वमेव मयाप्रोक्तमन्ये सम्बन्धगामिनः । पुण्येन प्राप्यते पुत्रः पुण्येन प्राप्यते कुलम् ॥४१॥
सुगर्भःप्राप्यते पुण्यैस्तस्मात्पुण्यं समाचर । जातस्य मृतिरेवास्ति जन्मएव मृतस्य च ॥४२॥
सुजन्म प्राप्यते पुण्यैर्मरणं तु तथैव च । सुखं धनं च यःकान्त भुज्यते पुण्यकर्मभिः ॥४३॥

सोमशर्मोवाच

पुण्यस्याचरणं ब्रूहि तथाजन्मान्यपि प्रिये । सुपुण्यःकीदृशो भद्रे वद पुण्यस्य लक्षणम् ॥४४॥

से चला जाता है, किन्तु उसका धन वहीं पड़ा रह जाता है । इसी तरह से आप जानकर शान्त हो जायँ अनर्थकारिणी चिन्ता को नष्ट कर दें ॥३२॥ हे द्विजोत्तम ! किसके पुत्र, प्रिया पत्नी, और बान्धव स्वजन होते हैं ? सम्बन्ध के अभाव के कारण संसार में कौन किसका नहीं है ?॥३३॥ पापी मनुष्य यह सोचकर महाअज्ञानी बने रहते हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है तथा ये मरी पत्नियाँ हैं ॥३४॥ हे कान्त ! यह संसार का बन्धन झूठा है । इस तरह से प्रिय पत्नी सुमना के द्वारा समझाये जाने पर सोमशर्मा ने ज्ञानी तथा प्रिया पत्नी सुमना से पुनः पूछा ॥३५-३६॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे प्रिये ! तुमने सभी सन्देहों को विनष्ट करने वालीं बातों को कहा है, फिर भी सज्जन एवं पण्डितजन पुत्र को प्राप्त करना चाहते हैं, यह भी सत्य है ॥३७॥ हे प्रिये ! मुझे धन और पुत्र की चिन्ता हैं । मैं चाहता हूँ कि किसी भी उपाय से मैं पुत्र प्राप्त करूँ ॥३८॥ **सुमना ने कहा—** हे महाभाग ! सत्पुत्र के द्वारा माता-पिता लोकों को जीत लेते हैं । सत्पुत्र वंश का उद्धार कर देता है ॥३९॥ एक ही विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है, अनेक निर्गुण पुत्रों से कौन सा लाभ है ? एक ही पुत्र वंश को तार देता है और अनेक पुत्र तो सन्ताप कारक ही होते हैं ॥४०॥ पहले मैं कह चुकी हूँ कि दूसरे पुत्र तो संबन्ध के भागी होते हैं पुत्र तो पुण्य के द्वारा प्राप्त होता है और पुण्य के द्वारा ही सद्वंश की प्राप्ति होती है ॥४१॥ सुन्दर गर्भ की प्राप्ति पुण्य से ही होती है अतएव आप पुण्य करें । जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और मरे हुए का जन्म भी अवश्यम्भावी है ॥४२॥ सुन्दर जन्म और सुन्दर मृत्यु की प्राप्ति पुण्य से होती है । हे कान्त ! पुण्यकर्मों के द्वारा ही सुख एवं धन की प्राप्ति होती है ॥४३॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे त्रिये ! मुझे पुण्य का आचरण बतलाओ तथा जन्मों को बतलाओ । हे कल्याणि ! सुपुण्य कैसा होता है ? मुझे पुण्य का लक्षण बतलाओ ॥४४॥ **सुमना ने**

सुमनोवाच

आदौ पुण्यं प्रवक्ष्यामि यथापुण्यं श्रुतं मया। पुरुषो वाथ वा नारी यथानित्यं च वर्तते ॥४५॥
यथापुण्यैः समाप्नोति कीर्तिं पुत्रान्प्रियान्धनम् ।
पुण्यस्य लक्षणं कान्त सर्वमेव वदाम्यहम् ॥४६॥
ब्रह्मचर्येण सत्येन मखपञ्चकवर्तनैः। दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ ॥४७॥
अहिंसया सुशक्त्या च अस्तयेनापि वर्तनैः। एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेवं प्रपूरयेत्॥४८॥
सम्पूर्णो जयते धर्मो ग्रासैर्भोगो यथोदरे। धर्मं सृजति धर्मात्मा त्रिविधेनैव कर्मणा ॥४९॥
तस्य धर्मः प्रसन्नात्मा पुण्यमेवं तु प्रापयेत्। यं यं चिन्तयते प्राज्ञस्तं तं प्राप्नोति दुर्लभम्॥५०॥

सोमशर्मोवाच

कीदृङ्मूर्तिस्तु धर्मस्य कान्यङ्गानि च भामिनि ।
प्रीत्या कथय मे कान्ते श्रोतुं श्रद्धा प्रवर्तते ॥५१॥

सुमनोवाच

लोके धर्मस्य वै मूर्तिः कैर्दृष्टा न द्विजोत्तम। अदृश्यवर्ष्मा सत्यात्मा न दृष्टो देवदानवैः ॥५२॥
अत्रिवंशे समुत्पन्नो अनसूयात्मजो द्विजः। तेनदृष्टो महाधर्मो दत्तात्रेयेण वै सदा ॥५३॥
द्वावेतौ तु महात्मानो कुर्वाणौ तप उत्तमम्। धर्मेण वर्तमानौ तौ तपसा च बलेन च ॥५४॥
रुद्राधिकेन रूपेण प्रशस्तेन भविष्यतः। दशवर्षसहस्रं तौ यावत्तु धनसंस्थितौ ॥५५॥
वायुभक्षौ निराहारौ सञ्जातौ शुभदर्शनौ। दशवर्षसहस्रं तु तावत्कालं तपोऽर्जितम्॥५६॥
सुसाध्यमानयोश्चैव तत्र धर्मःप्रदृश्यते। पञ्चाग्निःसाध्यते द्वाभ्यां तावत्कालं द्विजोत्तम ॥५७॥

कहा— जैसा कि मैंने सुना है, सर्वप्रथम मैं उस पुण्य को बतलाती हूँ। पुरुष अथवा स्त्री नित्य ही पुण्य करते हैं उस सुपुण्य के द्वारा वे प्रिय पुत्रों तथा धन को प्राप्त करते हैं। हे कान्त ! मैं पुण्य का सम्पूर्ण लक्षण बतलाती हूँ ॥४५-४६॥ हे प्रियतम ! ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान, दान, नियम का पालन, क्षमा, शौच, शक्ति के अनुसार अहिंसा का पालन और अस्तेय (चोरी न करना) इन दश अङ्गों के द्वारा धर्म की पूर्ति करे ॥४७-४८॥ जैसे ग्रासों से पेट भर जाता है उसी तरह इन अङ्गों से धर्म सम्पूर्ण होता है। धार्मिक पुरुष तीन प्रकार के कर्मों से धर्मार्जन करता है ॥४९॥ उसका धर्म प्रसन्न होकर उसे पुण्य प्रदान करता है और वह प्राज्ञ पुरुष जो-जो भी सोचता है, उन समस्त दुर्लभ वस्तुओं को भी प्राप्त करता है। **सोमशर्मा ने कहा—** हे भामिनी ! धर्म की मूर्ति कैसी होती है ? उसके कौन-कौन से अङ्ग हैं ? हे कान्ते ! इसे प्रेम पूर्वक बतलाओं उसे सुनने में श्रद्धा बढ़ रही है ॥५१॥ **सुमना ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! संसार में किसी ने भी धर्म को नहीं देखा है। धर्म का शरीर अदृश्य है वे सत्य स्वरूप हैं। उन्हें देवों तथा दानवों ने भी नहीं देखा है ॥५२॥ वे द्विज हैं, अग्नि के वंश में उत्पन्न अनसूया के पुत्र हैं। भगवान् दत्तात्रेय ने उनका साक्षात्कार किया है ॥५३॥ दत्तात्रेय और दुर्वासा ये दोनों महापुरुष उत्तम तप कर रहे थे, वे धर्म का पालन तपस्या और बल के द्वारा कर रहे थे ॥५४॥ उनदोनों का रूप इन्द्र से भी अधिक प्रशस्त था। वे दश हजार वर्ष तक वन में रहे ॥५५॥ वायु पीकर, निराहार रहते थे। इनका दर्शन अत्यन्त मनोहर था। इन लोगों ने दश हजार वर्ष तक तप का अर्जन किया ॥५६॥ वे दोनों अच्छी तरह से साधन

त्रिकालं साधितं तावन्निराहारं कृतं तथा । जलमध्ये स्थितौ तावद्दत्तात्रेयो यतिस्तथा॥५८॥
दुर्वासास्तु मुनिश्रेष्ठस्तपसाचैव कर्षितः। धर्मं प्रति सधर्मात्मा चुक्रोध मुनिपुङ्गवः ॥५९॥
क्रुद्धेसति महाभाग तस्मिन्मुनिवरे तदा। अथधर्म समायातः स्वरूपेण च वै तदा ॥६०॥
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तस्तपोभिश्च सबुद्धिमान्। सत्यं ब्राह्मणरूपेण ब्रह्मचर्यं तथैव च॥६१॥
तपस्तु द्विजवर्योऽस्ति दमः प्राज्ञो द्विजोत्तमः। नियमस्तु महाप्राज्ञो दानमेवतथैवच ॥६२॥

अग्निहोत्रिस्वरूपेणह्यात्रेयं हिसमागताः ।
क्षमा शान्तिस्तथा लज्जा चाहिंसा च ह्यकल्पना ॥६३॥

एताःसर्वाःसमायाताःस्त्रीरूपास्तु द्विजोत्तम। बुद्धिःप्रज्ञा दया श्रद्धा मेधासत्कृति शान्तयः ॥६४॥
पञ्चयज्ञास्तथापुण्याःसाङ्गावेदास्तु ते तदा। स्व स्वरूपधराश्चैव ते सर्वे सिद्धिमागताः ॥६५॥
अग्न्याधानादयःपुण्या अश्वमेधादयस्तथा। रूपलावण्यसंयुक्ताः सर्वाभरणभूषिताः ॥६६॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः । किरीटकुण्डलोपेता दिव्याभरणभूषिताः ॥६७॥
दीप्तिमन्तःसुरूपास्ते तेजोज्वालाभिरावृताः । एवं धर्मःसमायातः परिवारसमन्वितः॥६८॥
यत्र तिष्ठति दुर्वासाः क्रोधनःकालवत्तथा ॥६९॥

धर्म उवाच

कस्मात्कोपः कृतो विप्र भवांस्तपस्समन्वितः ।
क्रोधो हि नाशयेच्छ्रेयस्तप एवनसंशयः ॥७०॥

सर्वनाशकरन्तस्मात्क्रोधं तत्र विवर्जयेत्। स्वस्थो भव द्विजश्रेष्ठ उत्कृष्टं तपसःफलम्॥७१॥

करते थे । वहाँ पर धर्म दिखायी दिया । उतने समय तक उन दोनों के द्वारा पञ्चाग्नि का सेवन किया गया॥५७॥ वे तीनों बेला में जल में स्थित रहकर निराहार रहते थे । उतने समय तक यति दत्तात्रेय और दुर्वासा रहे ॥५८॥ तपस्या के कारण मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अत्यन्त कृश हो गये । उन्होंने धर्म पर क्रोध किया॥५९॥ मुनि के क्रुद्ध हो जाने पर धर्म स्वरूपतः दुर्वासा महर्षि के पास आये ॥६०॥ बुद्धिमान् धर्म के साथ ब्रह्मचर्य आदि थे । सत्य ब्राह्मण रूप में थे ब्रह्मचर्य भी वैसे ही थे तप श्रेष्ठ ब्राह्मण के रूप में था, प्राज्ञ दम द्विजश्रेष्ठ के रूप में था । महाप्राज्ञ नियम और दान भी उसी रूप में थे ॥६१-६२॥ ये सब अग्निहोत्री के रूप में महर्षि दुर्वासा के पास आये । क्षमा, शान्ति, लज्जा, अहिंसा, अकल्पना, बुद्धि, प्रज्ञा, दय, श्रद्धा, मेधा, सत्कृति तथा शान्ति ये सबके सब स्त्री रूप में थे ॥६३-६४॥ पवित्र पञ्चमहायज्ञ, साङ्गवेद वे अपना रूप धारण करके सिद्धि के पास आये ॥६५॥ पवित्र अग्न्याधान आदि तथा अश्वमेघ आदि यज्ञ भी रूप एवं लावण्य से सम्पन्न होकर तथा दिव्य अलङ्कारों से अलंकृत होकर आये ॥६६॥ सुन्दर रूप वाले वे दीप्ति से युक्त तथा तेज की ज्वाला से आवृत थे । इस तरह धर्म अपने परिवार के साथ महर्षि दुर्वासा के पास आया ॥६७-६८॥ **धर्म ने कहा—** हे विप्र ! आप क्रोध क्यों किए ? आप तो तपस्वी हैं । क्रोध तो पुण्य का नाश कर देता है । वह तप का नाश करता है ॥६९॥ चूँकि यह सबकुछ नाश करने वाला है अतएव क्रोध का त्याग कर देना चाहिए । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप स्वस्थ हो जायँ । तप का उत्कृष्ट फल यही है ॥७०॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** आप कौन हैं जो इन द्विजश्रेष्ठों के साथ आये हैं ? ये सभी सुन्दर रूप वाली तथा समलंकृत नारियाँ कौन हैं ?॥७१॥ हे महामते ! इस बात को आप

दुर्वासा उवाच

भवान्को हि समायात एतैर्द्विजवरैः सह। एतानार्यःप्रतिष्ठन्ति सुरूपाःसमलङ्कृताः ॥
कथयस्व ममाग्रे त्वं विस्तरेण महामते ॥७२॥

धर्मउवाच

अयं ब्राह्मणरूपेण सर्वतेजःसमन्वितः। दण्डहस्तःसुप्रसन्नःकमण्डलुधरस्तथा ॥७३॥
तवाग्रे ब्रह्मचर्याख्यस्सोऽयं पश्य समागतः। अन्यं पश्यत्वमेवं च दीप्तिमन्तं द्विजोमम् ॥७४॥
कपिलं पिङ्गलाक्षं च सत्यमेनं द्विजोत्तम। तादृशं पश्यधर्मात्मन्वैश्वदेवसमप्रभम् ॥७५॥
यत्तपो हि त्वया विप्र सर्वदेवसमाश्रितम्। एतं पश्य महाभाग तव पार्श्वे समागतम्॥७६॥
प्रसन्नवाग्दीप्तियुक्तः सर्वजीवदयापरः। दम एष तथाऽऽयातो यःपोषयति सर्वदा ॥७७॥
जटिलः कर्कशःपिङ्गो ह्यतितीव्रो महाप्रभुः। नाशको हि स पापानां खड्गहस्तो द्विजोत्तम ॥७८॥
अभिशान्तो महापुण्यो नित्यक्रियासमन्वितः। नियमस्तु समायातस्तव पार्श्वे द्विजोत्तम ॥७९॥
अनिर्मुक्तो महादीप्तःशुद्धस्फटिकसंनिभः । पयःकमण्डलुकरो दन्तकाष्ठधरो द्विजः ॥८०॥
शौच एष समायातो भवतःसन्निधाविह। अतिसाध्वी महाभागा सत्यभूषणभूषिता ॥८१॥
सर्वभूषणशोभाङ्गी शुश्रूषेयं समागता। अतिधीरा प्रसन्नाङ्गी गौरी प्रहसिताननाा ॥८२॥
पद्महस्ता इयं धात्री पद्मनेत्रा सुपद्मिनी। दिव्यैराभरणैर्युक्ता क्षमाप्राप्ता द्विजोत्तम॥८३॥
अतिशान्ता सुप्रतिष्ठा बहुमङ्गलसंयुता । दिव्यरत्नकृताशोभा दिव्याभरणभूषिता ॥८४॥
तवशान्तिर्महाप्राज्ञ ज्ञानरूपा समागता। परोपकारकरणा बहुसत्यसमाकुला ॥८५॥
मितभाषा सदैवासौ अकल्पा ते समागता । प्रसन्ना सा क्षमायुक्ता सर्वाभरणभूषिता॥८६॥

विस्तार के साथ बतलायें ॥७२॥ **धर्म ने कहा—** यह सभी तेजों से युक्त ब्राह्मण के रूप में और हाथ में दण्ड लिए हुए तथा कमण्डलु धारण किए हुए प्रसन्न; आपके सामने ब्रह्मचर्य आये हुए हैं आप इन्हें देखें। इसी तरह आप दूसरे दीप्तिमान् द्विजोत्तम को देखें ॥७३-७४॥ कपिल वर्ण के तथा पीले नेत्र वाले ये सत्य हैं । हे धर्मात्मन् ! इसी प्रकार के विश्वेदेव को आप देखें ॥७५॥ हे महाभाग ! सभी देवों से अपनाये गये धर्म को आप देखें यह मैं आपके पास आया हूँ ॥७६॥ प्रसन्न कान्तिसम्पन्न जो सभी जीवों पर दया करके उनका सर्वदा पोषण करते हैं वह ये दम है । और आपके पास आये हैं ॥७७॥ हे द्विजोत्तम ! कर्कश पीली जटा धारण करने वाले, अत्यन्त तीव्र महाप्रभु पापों के नाशक, हाथ में खड्ग धारण किए हुए, अत्यन्त शान्त, महापुण्य स्वरूप, नित्य ही क्रियाओं से युक्त रहने वाले नियम आपके पास आये हैं ॥७८-७९॥ ये अनिर्मुक्त, महादीप्ति सम्पन्न, शुद्धस्फटिककान्ति के समान, हाथ में जल का कमण्डलु लिए हुए, दतौन लिए हुए द्विज शौच आपके पास आये हुए हैं । अत्यन्त साध्वी, महाभागा, सत्यरूपी भूषण से भूषित तथा जिनके समस्त अङ्ग भूषणों से अलंकृत हैं ये शुश्रूषा देवी हैं । अत्यन्त धैर्य सम्पन्न मुस्कुराती हुयी, ये सुन्दर शरीर वाली गौरी देवी हैं ॥८०-८२॥ हे द्विजोत्तम ! हाथ में कमल ली हुयी कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, पद्मिनी नायिका तथा दिव्य अलङ्कारों से सुशोभित क्षमा देवी आयी हैं ॥८३॥ ये अत्यन्त शान्त सुप्रतिष्ठा देवी हैं, अनेक प्रकार के मङ्गलों से युक्त दिव्य रत्नों से सुशोभित दिव्य आभरणों से भूषित ये आपकी ज्ञान स्वरूपिणी शान्तिदेवी आयी हैं । परोपकार करने वाली, सीमित बोलने वाली ये अकल्पना देवी

पद्मासना सुरूपा सा श्यामवर्णा यशस्विनी। अहिंसेयं महाभागा भवन्तं तु समागता ॥८७॥
तप्तकाञ्चनवर्णाङ्गी रक्ताम्बरविलासिनी। सुप्रसन्ना सुमन्त्रा च यत्र तत्र न पश्यति ॥८८॥
ज्ञानभावसमाक्रान्ता पुण्यहस्ता तपस्विनी। मुक्ताभरणशोभाढ्या निर्मला चारुहासिनी॥८९॥
इयं श्रद्धा महाभाग पश्य पश्य समागता। बहुबुद्धिसमाक्रान्ता बहुज्ञानसमाकुला ॥९०॥
सुभोगासक्तरूपा सा सुस्थिता चारुमङ्गला। सर्वेष्टध्यानसंयुक्ता लोकमाता यशस्विनी॥९१॥
सर्वाभरणशोभाढ्या पीनश्रोणिपयोधरा। गौरवर्णा समायाता माल्यवस्त्रविभूषिता ॥९२॥
इयं मेधा महाप्राज्ञ तवैव परिसंस्थिता। हंसचन्द्रप्रतीकाशा मुक्ताहारविलम्बिनी॥९३॥
सर्वाभरणसम्भूषा सुप्रसन्ना मनस्विनी। श्वेतवस्त्रेण संवीता शतपत्रं शयेकृतम्॥९४॥
पुस्तककरा पङ्कजस्था राजमाना सदैव हि। एषा प्रज्ञा महाभाग भाग्यवन्तं समागता॥९५॥
लाक्षारससमावर्णा सुप्रसन्ना सदैव हि। पीतपुष्पकृतामाला हारकेयूरभूषणा॥९६॥
मुद्रिकाकङ्कणोपेता कर्णकुण्डलमण्डिता। पीतेन वाससा देवी सदैव परिराजते ॥९७॥
त्रैलोक्यस्योपकाराय पोषणायाद्वितीयका। यस्याः शीलं द्विजश्रेष्ठसदैवपरिकीर्तितम् ॥९८॥
सेयं दया सुसम्प्राप्ता तव पार्श्वे द्विजोत्तम। इयं वृद्धा महाप्राज्ञ भावभार्या तपस्विनी॥९९॥
मम माता द्विजश्रेष्ठ धर्मोऽहं तव सुव्रत। इति ज्ञात्वा शमं गच्छ मामेवं परिपालय ॥१००॥

दुर्वासा उवाच

यदि धर्मः समायातो मत्समीपं तु साम्प्रतम्। एतन्मे कारणं ब्रूहि किं ते धर्म करोम्यहम्॥१०१॥

आपके पास आयी हैं। क्षमा से युक्त तथा समस्त अलङ्कारों से अलंकृत ये क्षमा देवी आयी हैं ॥८५-८६॥ हाथ में कमल धारण की हुयी, सुन्दर श्याम वर्ण की यशस्विनी महाभागा अहिंसा आपके पास आयी हैं॥८७॥ तप्तकाञ्चन के समान गौराङ्गी, लाल वस्त्र धारण की हुयी प्रसन्न तथा सुन्दर मन्त्र प्रदान करने वाली, जो इधर-उधर नहीं देखती हैं ऐसी ज्ञानवती पवित्र हाथ वाली तपस्विनि तथा मोतियों के आभरण से सुशोभित, निर्मल तथा मधुर मुस्कान युक्त ये श्रद्धा देवी आयी हैं, इन्हें आप देखें। अनेक प्रकार की बुद्धियों और ज्ञानों से सम्पन्न, सुन्दर भोग में आसक्त रहने वाली मनोहर मङ्गल करने वाली, समस्त अभिप्रेत पदार्थों के ध्यान से युक्त, यशस्विनी ये लोकमाता हैं ॥८८-९१॥ ये सभी अलङ्कारों से अलंकृत तथा विशाल श्रोणिप्रदेश तथा स्तनों वाली गौरवर्णा, माला तथा वस्त्र से सुशोभित हे महाप्राज्ञ! आपके सन्निकट में विद्यमान मेधा देवी हैं। हंस तथा चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण वाली मोती के हार से सुशोभित सभी भूषणों से भूषित प्रसन्न तथा मनस्विनी श्वेत वस्त्र को धारण की हुयी, अपने हाथ में शतदल कमल तथा पुस्तक ली हुयी, कमल के आसन पर स्थित, सदैव सुशोभित रहने वाली हे महाभाग! ये प्रज्ञा देवी आयी हैं, आप भाग्यवान् हैं ॥९२-९५॥ लाक्षारस (महावर) के समान वर्ण वाली, सदा प्रसन्न रहने वाली, पीले पुष्पों की माला को धारण की हुयी हार और केयूर धारण की हुयी मुद्रिका, कङ्गन से युक्त, कानों में कुण्डल धारण की हुयी, जो सदा पीले वस्त्र से सुशोभित होती हैं, जिनका त्रैलोक्य का उपकार करना और पोषण करना रूप अद्वितीय शील प्रख्यात है, वे यही दया देवी हैं और आपके पास आयी हैं। हे महाभाग! ये भाव की पत्नी तथा वृद्धा मेरी माता हैं और मैं स्वयम् आपका धर्म हूँ। इन बातों को जानकर आप शान्त हो जायँ और मेरा पालन करें ॥९६-१००॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** यदि आप मेरे पास धर्म आये हैं तो

धर्म उवाच

कस्मात्क्रुद्धोऽसि विप्रेन्द्र किमेतैर्विप्रियं कृतम् ।
तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि दुर्वासो यदि मन्यसे ॥१०२॥

दुर्वासा उवाच

येनाहं कुपितो देव तदिदं कारणं शृणु । दमशौचैः सुसंक्लेशैः शोधितं कायमात्मनः॥१०३॥
लक्षवर्षप्रमाणं वै तपश्चर्या मया कृता । एवं पश्यसि मामेव दया ते न प्रवर्तते ॥१०४॥
तस्मात्क्रुद्धोऽस्मि तेऽद्यैव शापमेवं ददाम्यहम् ।
एवं श्रुत्वा तदा तस्य तमुवाच महामतिः ॥१०५॥

धर्म उवाच

मयि नष्टे महाप्राज्ञ लोको नाशं समेष्यति। दुःखमूलमहं तात निकर्षामि भृशं द्विज ॥१०६॥
सौख्यं पश्चादहं दद्मि यदि सत्यं न मुञ्चति। पापोऽयं सुखमूलस्तु पुण्यं दुःखेन लभ्यते ॥१०७॥
पुण्यमेव प्रकुर्वाणः प्राणीप्राणान्विमुञ्चति । महत्सौख्यं ददाम्येवं परत्र च न संशयः ॥१०८॥

दुर्वासा उवाच

सुखं येनाप्यते तेन परं दुःखं प्रपद्यते। तत्तुमर्त्यः परित्यज्य अन्येनापि प्रभुज्यते॥१०९॥
तत्सुखं को विजानाति निश्चयं नैव पश्यति। तच्छ्रेयो नैव पश्यामि अन्याय्यं हि कृतं तव॥११०॥
येन कायेन क्रियते भुज्यते नैव तत्सुखम्। अन्येन क्रियते क्लेशमन्येनापि प्रभुज्यते ॥१११॥
तत्सुखं को विजानाति चान्यायं धर्ममेव वा । अन्येन क्रियते क्लेशमन्येनापि सुखं पुनः ॥११२॥
भुनक्ति पुरुषो धर्म तत्सर्वं श्रेयसायुतम् । पुण्यं चैव अनेनापि अनेन फलमश्नुते॥११३॥

आप बतलाएँ कि मैं आपके लिए क्या करूँ ?॥१०१॥ **धर्म ने कहा—** हे विप्रेन्द्र ! यह बतलायें कि आप क्यों क्रुद्ध हैं ? इन सबों ने आपका क्या बिगाड़ा है ? यदि आप चाहें तो इसका कारण मुझे बतलायें॥१०२॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** हे देव ! आप उस कारण को सुनें जिसके कारण मैं क्रुद्ध हूँ । मैंने अत्यन्त क्लेश पूर्वक दम तथा शौच के द्वारा अपने शरीर का शोधन किया ॥१०३॥ मैंने एक लाख वर्ष तक तपस्या की इस तरह से मुझे देखकर भी आपको दया नहीं आयी ॥१०४॥ इसीलिए मैं क्रुद्ध हूँ और आज मैं आपको शाप देता हूँ । महर्षि की बात सुनकर धर्म ने उनसे कहा ॥१०५॥ **धर्म ने कहा—** हे द्विज ! मेरे नष्ट हो जाने पर संसार का नाश हो जायेगा, इसीलिए मैं दुःख देकर खूब निखारता हूँ ॥१०६॥ यदि वह सत्य का परित्याग नहीं करता है तो मैं बाद में उसे सुख देता हूँ । पाप का मूल सुख है और पुण्य की प्राप्ति दुःख से होती है ॥१०७॥ इस तरह पुण्य करता हुआ जो प्राणी भी अपने प्राणों का परित्याग कर देता है उसको मैं परलोक में अत्यन्त सुख प्रदान करता हूँ ॥१०८॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** जिसके द्वारा सुख मिलता है, उसके द्वारा अत्यन्त दुःख की प्राप्ति होती है । इसीलिए मनुष्य उसका परित्याग करके दूसरे का भोग करता है ॥१०९॥ उस सुख को कौन जानता है उसका निश्चय तो ज्ञात नहीं होता है उस कल्याण को मैं नहीं जानता हूँ अतएव यह आपने अन्याय किया है ॥११०॥ जिस शरीर से तप किया जाता है वह शरीर तो उसका सुख भोग करता नहीं है । दूसरा शरीर क्लेश उठाता है और दूसरा सुख भोगता है ॥१११॥ उस सुख को कौन जानता है ? दूसरे कोई कष्ट उठाये और दूसरा सुख भोगें यह

क्रियमाणं पुनःपुण्यमन्येन परिभुज्यते। तत्सर्वंहि सुखंप्रोक्तं यत्तथा यस्य लक्षणम् ॥११४॥
धर्मशास्त्रोदितं चैव कृतं सर्वत्र नान्यथा। येन कायेन कुर्वन्ति तेन दुःखं सहन्ति ते ॥११५॥
परत्र तेन भुञ्जन्ति अनेनापि तथैव च। इति ज्ञात्वा स धर्मात्मा भवान्समवलोकयेत् ॥११६॥
यथाचौरा महापापाः स्वकायेन सहन्ति ते। दुःखेन दारुणं तीव्रं तथासुखं कथं न हि ॥११७॥

धर्म उवाच

येन कायेन पापाश्च सञ्चरन्ति हि पातकम्। तेन पीडां सहन्त्येव पातकस्य हि तत्फलम् ॥११८॥
दण्डमेकं परंदृष्टं धर्मशास्त्रेषु पण्डितैः। तं धर्मपूर्वकं विद्धि एतैर्न्यायैस्त्वमेव हि ॥११९॥

दुर्वासा उवाच

एवं न्यायं न मन्येऽहं तथैव शृणु धर्मराट्। शापत्रयं प्रदास्यामि क्रुद्धोऽहं तव नान्यथा ॥१२०॥

धर्म उवाच

यदाक्रुद्धो महाप्राज्ञ मामेव हि क्षमस्व च। नैवं क्षमसि विप्रेन्द्र दासीपुत्रं हि मां कुरु ॥१२१॥
राजाहं तु प्रकर्तव्यश्चाण्डालश्च महामुने। प्रसाद सुमुखोविप्र प्रणतस्य सदैव हि ॥१२२॥
दुर्वासाश्च ततःक्रुद्धो धर्मचैव शशाप ह ॥१२३॥

दुर्वासा उवाच

राजा भवत्वं धर्माद्य दासीपुत्रश्च नान्यथा।
गच्छचाण्डालयोनिं च धर्म त्वं स्वेच्छया व्रज ॥१२४॥

एवं शापत्रयंदत्त्वा गतोऽसौ द्विजसत्तमः। अनेनापि प्रसङ्गेन दृष्टो धर्मः पुरा किल ॥१२५॥

अन्याय है या धर्म ॥११२॥ हे धर्म ! कल्याण से युक्त उस सुख को पुरुष भोगता है। पुण्य भी इसी के द्वारा फल होता है और यही फल प्राप्त करता है ॥११३॥ फिर किये गये पुण्य को दूसरा भोगता है, जिसका जो लक्षण है वह सबकुछ सुख कहा गया है ॥११४॥ जिस शरीर के द्वारा धर्मशास्त्रोक्त नियमों का पालन करके लोग दुःख सहते हैं ॥११५॥ परलोक में उसी शरीर से और दूसरे शरीर से भी लोग सुख भोग करते है इसी बात को जानकर उस धर्मात्मा को आप देखें ॥११६॥ जिस तरह महापापी चोर जिस शरीर से भयङ्कर दुःख सहते हैं, उसी तरह वे उसी शरीर से सुख भोग क्यों नहीं करते हैं ॥११७॥ **धर्म ने कहा—** पापी जीव जिस शरीर से पाप करते हैं वे उसी शरीर से पापजन्य पीड़ा को भी सहते हैं, क्योंकि वह पाप का फल होता है ॥११८॥ पण्डितों ने धर्मशास्त्रों में एक दण्ड को कहा है। उसको तुम धर्मपूर्वक इन न्यायों से तुम ही जानो ॥११९॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** हे धर्मराज ! आप सुनें मैं इन न्यायों को नहीं मानता हूँ। मैं तुम पर क्रुद्ध हूँ इसलिए मैं तुमको तीन शाप दूँगा, इसमें कोई फेर बदल सम्भव नहीं है ॥१२०॥ **धर्म ने कहा—** हे विप्रश्रेष्ठ ! यदि आप क्रुद्ध हैं तो मुझको क्षमा कर दें, यदि क्षमा नहीं करते हैं तो मुझको दासीपुत्र बना दें ॥१२१॥ मुझको राजा अथवा चाण्डाल न बनायें। हे विप्र! शरणागत जीवों पर तो आप सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१२२॥ उसके बाद क्रुद्ध दुर्वासा ने धर्मराज को शाप दे दिया ॥१२३॥ **दुर्वासा ने कहा—** हे धर्म ! तुम राजा होओ, दासीपुत्र होओ और उसके बाद चाण्डाल हो जाओ। अब यहाँ से जाओ ॥१२४॥ इस तरह से शाप देकर महर्षि दुर्वासा चले गये। इस प्रसङ्ग में भी धर्म का साक्षात्कार हुआ ॥१२५॥ **सोमशर्मा ने कहा—** उन महात्मा के शाप के कारण धर्म कैसे उत्पन्न

सोमशर्मोवाच

धर्मस्तु कीदृशो जातस्तेन शप्तो महात्मना। तद्रूपं तस्य मे ब्रूहि यदि जानासि भामिनि॥१२६॥

सुमनोवाच

भरतानां कुलेजातो धर्मो भूत्वा युधिष्ठिरः। विदुरो दासीपुत्रस्तु अन्यं चैव वदाम्यहम्॥१२७॥

यदा राजाहरिश्चन्द्रो विश्वामित्रेण कर्षितः।
तदा चाण्डालतां प्राप्तः स हि धर्मो महामतिः॥१२८॥

एवं कर्मफलं भुक्तं धर्मेणापि महात्मना। दुर्वाससो हि शापाद्वै सत्यमुक्तं तवाग्रतः॥१२९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे सोमशर्माख्याने सोमशर्मासुमनासंवादे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

सोमशर्मोवाच

लक्षणं ब्रह्मचर्यस्य तन्मे विस्तरतो वद। कीदृशं ब्रह्मचर्यं च यदि जानासि भामिनि॥१॥

सुमनोवाच

नित्यं सत्ये रतिर्यस्य पुण्यात्मा तुष्टतां व्रजेत्।
ऋतौ प्राप्ते व्रजेन्नारीं स्त्रियं दोषविवर्जितः॥२॥

स्वकुलस्य सदाचारं कदा नैव विमुञ्चति। एतदेव समाख्यातं गृहस्थस्य द्विजोत्तम॥३॥

हुए ? यदि तुम जानती हो तो मुझे उसको बतलाओ॥१२६॥ **सुमना ने कहा—** उसके बाद धर्म युधिष्ठिर होकर भरत कुल में उत्पन्न हुए और दासी पुत्र वे विदुर होकर हुए, अन्य भी मैं बतला रही हूँ॥१२७॥ जब विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को कष्ट दिया उस समय महाबुद्धिमान् धर्म चाण्डाल बन गये॥१२८॥ इस तरह से धर्म ने भी महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण अपने कर्मों का फल भोगा यह मैंने आपके समक्ष सत्य कहा है॥१२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के सोमशर्मोपाख्यान के अन्तर्गत सोमशर्मा एवं सुमना संवाद नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥१२॥

ब्रह्मचर्य आदि के लक्षण का वर्णन

सोमशर्मा ने कहा— हे भामिनी ! यदि जानती हो तो बतलाओ कि ब्रह्मचर्य कैसा होता है ? उसका लक्षण विस्तार पूर्वक बतलाओ॥१॥ **सुमना ने कहा—** जो सदा सत्य से प्रेम करता है, वह धर्मात्मा सन्तुष्ट रहता है। दोष रहित वह ऋतु काल में अपनी पत्नी से समागम करता है॥२॥ वह अपने वंश के आचार को कभी भी नहीं त्यागता है। हे द्विजोत्तम ! गृहस्थ के लिए यही ब्रह्मचर्य कहा गया है॥३॥ मैंने

ब्रह्मचर्यं मया प्रोक्तं गृहिणामुत्तमं किल। यतीनां तु प्रवक्ष्यामि तन्मया गदितं शृणु॥४॥
दमसत्यसमायुक्तःपापाद्भीतस्तु सर्वदा। भार्यासङ्गं वर्जयित्वा ध्यानज्ञानप्रतिष्ठितः॥५॥
यतीनां ब्रह्मचर्यं च समाख्यातं तवाग्रतः। तप एव प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतःशृणु॥६॥
आचारेण प्रवर्तेत कामक्रोधविवर्जितः। प्राणिनामुपकाराय संस्थित उद्यमावृतः॥७॥
तप एवं समाख्यातं सत्यमेवं वदाम्यहम्। परद्रव्येष्वलोलुप्त्वं परस्त्रीषु तथैव च॥८॥
दृष्ट्वा मतिर्न यस्य स्यात्ससत्यः परिकीर्तितः।
दानमेव प्रबक्ष्यामि येन जीवन्ति मानवाः॥९॥
आत्मसौख्यं प्रतीच्छेद्यः स इहैव परत्र वा। अन्नस्यापि महादानं सुखस्यैव ध्रुवस्य वा॥१०॥
ग्रासमात्रं तथादेयं क्षुधार्ताय न संशयः। दत्ते सति महत्पुण्यममृतं सोऽश्नुते सदा॥११॥
दिने दिने प्रदातव्यं यथाविभव सम्भवम्। तृणं शय्यां च वचनं गृहच्छायां सुशीतलाम्॥१२॥
भूमिमपस्तया चान्नं प्रियवाक्यमनुत्तमम्। आसनं वचनालापं कौटिल्येन विवर्जितम्॥१३॥
आत्मनो जीवनार्थाय नित्यमेव करोति यः। देवान्पितृन्समभ्यर्च्य एवं दानं ददाति यः॥१४॥
इहैव मोदतेऽसौ वै परत्र हि तथैव च। अबन्ध्यं दिवसं यो वै दानाध्ययनकर्मभिः॥१५॥
प्रकुर्यान्मानुषो भूत्वा सदेवो नात्रसंशयः। नियमं च प्रवक्ष्यामि धर्मसाधनमुत्तमम्॥१६॥
देवानां ब्राह्मणानां च पूजास्वभिरतो हि यः। नित्यं नियमसंयुक्तो दानव्रतेषु सुव्रत॥१७॥
उपकारेषु पुण्येषु नियमोऽयं प्रकीर्तितः। क्षमारूपं प्रवक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तम॥१८॥
पराक्रोशंहि संश्रुत्य ताडिते सति केनचित्। क्रोधं न चैव गच्छेत्तु ताडितो न हि ताडयेत्॥१९॥

गृहस्थों का उत्तम ब्रह्मचर्य बतलाया। अब मैं यतियों (संन्यासियों) का ब्रह्मचर्य बतलाती हूँ। उसे आप सुनें॥४॥ जो सदा दम और सत्य का पालन करता है, सदा पाप से डरता है, जो पत्नी का सङ्ग छोड़कर सदा ज्ञान और ध्यान में स्थित रहता है॥५॥ यह मैंने आपके समक्ष सन्यासियों का ब्रह्मचर्य बतल्गया। अब मैं तप का स्वरूप बतलाती हूँ। उसे आप सुनें॥६॥ तपस्वी आचार का पालन करे, काम और क्रोध से रहित रहे। प्राणियों का उपकार करने के लिए सदा तैयार रहे॥७॥ इस तरह से मैंने तप को बतलाया अब मैं सत्य को बतलाती हूँ। दूसरे की सम्पत्ति का लोभ न करे तथा दूसरे की स्त्री का लोभ न करे॥८॥ इन सबों को देखकर बुद्धि का विकृत नहीं होना ही सत्य है। अब मैं उस दान को बतलाती हूँ, जिससे कि मनुष्य जीवित रहते हैं॥९॥ अपने सुख की परवाह न करके इस लोक में ही अथवा परलोक में अन्न का महादान निश्चित सुख का साधन होता है॥१०॥ भूखे को एक ग्रास भी अवश्य देना चाहिए। उसको देने से महान् पुण्य होता है, अन्न देने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है॥११॥ अपने विभव के अनुसार जितना सम्भव हो सके प्रतिदिन, तृण, शय्या, मधुरवाणी और शीतल गृह की छाया का दान करना चाहिए॥१२॥ भूमि, जल, अन्न, उत्तम प्रिय वाक्य, आसन तथा कुटिलता रहित वाणी इन सबों का जो देवता और पितरों की अर्चना करके आत्मोज्जीवन के लिए दान करता है॥१३-१४॥ वह इस लोक में ही आनन्दानुभव करता है तथा परलोक में भी जो मनुष्य होकर प्रतिदिन दान और अध्ययन करता है, वह निश्चित रूप से देवता है। मैं धर्म के उत्तम साधन को बतलाती हूँ। मनुष्य देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करता है, हे सुव्रत दान तथा व्रत में सदा नियम का पालन करता है॥१५-१७॥ तथा जो पवित्र उपकारों

सहिष्णुःस्यात्सधर्मात्मा न हि रागं प्रयाति च ।
समश्नातिपरंसौख्यमिह चामुत्रवापि च ॥२०॥

एवंक्षमा समाख्याता शौचमेवं वदाम्यहम् । सबाह्याभ्यन्तरे यो वै शुद्धो रागविवर्जितः ॥२१॥
स्नानाचमनकैरेव व्यवहारेण वर्तते । शौचमेवं समाख्यातमहिंसां तु वदाम्यहम् ॥२२॥
तृणमपि विनाकार्यं छेत्तव्यं न विजानता । अहिंसानिरतो भूयाद्यथात्मनि तथापरे ॥२३॥
शान्तिमेव प्रवक्ष्यामि शान्त्या सुखंसमश्नुते । शान्तिरेव प्रकर्तव्या क्लेशान्नैव परित्यजेत् ॥२४॥
भूतवैरं विसृज्यैव मन एवं प्रकारयेत् । एवंशान्तिः समाख्याता अस्तेयं तु वदाम्यहम् ॥२५॥
परस्वंनैव हर्तव्यं परजाया तथैव च । मनोभिर्वचनैःकायैर्मन एवं प्रकारयेत् ॥२६॥
दममेव प्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम । दमनादिन्द्रियाणां वै मनसोऽपि विकारिणः ॥२७॥
औद्धत्यं नाशयेत्तेषां सचैतन्यो वशी तदा । शुश्रूषां तु प्रवक्ष्यामि धर्मशास्त्रेषु यादृशी॥२८॥
पूर्वाचार्यैर्यथाप्रोक्ता तामेवं प्रवदाम्यहम् । वाचा देहेन मनसा गुरुकार्यं प्रसाधयेत्॥२९॥
जायतेऽनुग्रहो यत्र शुश्रूषा सा निगद्यते । साङ्गोधर्मःसमाख्यातस्तवाग्रे द्विजसत्तम ॥३०॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि श्रोतुमिच्छसि यत्पते । ईदृशे चापि धर्मे तु वर्तते यो नरःसदा ॥३१॥
संसारे तस्य सम्भूतिःपुनरेवं न जायते । स्वर्गं गच्छति धर्मेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३२॥

को करता है, उसी को नियम कहते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! आप सुनें मैं क्षमा का स्वरूप बतलाती हूँ ॥१८॥ किसी के द्वारा मारे जाने पर और दूसरे की डाँट को सुनकर भी जो न तो क्रोध करता है और न मारने पर मरता है । वह सहिष्णु धर्मात्मा किसी से राग नहीं करता है । वह इस लोक और परलोक में सुख का भोग करता है ॥१९-२०॥ इस तरह क्षमा का वर्णन किया गया अब मैं शौच (पावित्र्य) का वर्णन करती हूँ जो पाप रहित, शुद्ध पुरुष स्नान और आचमन के व्यवहार से अपनी बाह्याभ्यन्तर शुद्धि करता है इसे ही शौच कहते हैं; अब मैं अहिंसा को बतलाती हूँ ॥२१-२२॥ ज्ञानी व्यक्ति को निष्प्रयोजन तृण को भी नहीं तोड़ना चाहिए । उसे अपने ही समान दूसरों के प्रति अहिंसा का पालन करना चाहिए ॥२३॥ अब मैं शान्ति को बतलाती हूँ । शान्ति के द्वारा मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है । शान्ति का ही पालन करना चाहिए क्लेश के कारण उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥२४॥ सभी जीवों के प्रति वैर का त्याग करके उसके अनुकूल मन बना ले वही शान्त है । इस तरह से शान्ति का वर्णन किया गया मैं अस्तेय का वर्णन करूँगी ॥२५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! दूसरे की सम्पति और दूसरे की पत्नी का मन, वचन और शरीर से अपहरण न करना ही अस्तेय है ॥२६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपके समक्ष दम को बतलाती हूँ विकारशील, मन तथा इन्द्रियों का दमन करने से इन सबों की उद्धतता विनष्ट हो जाती है, इस प्रकार का जीव वशी (जितेन्द्रिय) होता है अब मैं शुश्रूषा को बतलाऊँगी ॥२७-२८॥ पूर्वाचार्यों ने जैसा बतलाया है उसी प्रकार से मैं शुश्रूषा को बतलाती हूँ । वाणी, शरीर और मन से गुरुजनों के कार्यो को करना चाहिए ॥२९॥ जिसके कारण गुरुजन अनुग्रह करते हैं उसी को शुश्रूषा कहते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने आपके समक्ष साङ्गधर्म का वर्णन किया ॥३०॥ हे पतिदेव ! आप जो सुनना चाहें उसका भी वर्णन मैं करूँगी । जो मनुष्य इस प्रकार के धर्म का पालन करता है ॥३१॥ वह पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता है । वह अपने धर्म के द्वारा स्वर्ग में चला जाता है, यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥३२॥ हे महाप्राज्ञ ! इसी तरह जानकर आप धर्म का पालन करें । धर्म के द्वारा

एवंज्ञात्वा महाप्राज्ञ धर्ममेव व्रजस्व हि। सर्वं हि प्राप्यते कान्त यदसाध्यं महीतले ॥३३॥
धर्मप्रसादतस्तस्मात्कुरुवाक्यं ममैव हि। भार्यायास्तुवचःश्रुत्वा सोमशर्मा सुबुद्धिमान् ॥३४॥
पुनःप्रोवाच तां भार्यां सुमनां धर्मवादिनीम् ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रेसुमनोपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

सोमशर्मोवाच

एवं विधं महापुण्यं धर्मव्याख्यानमुत्तमम्। कथं जानासि भद्रे त्वं कस्माच्चैव त्वया श्रुतम्॥१॥

सुमनोवाच

भार्गवाणां कुले जातःपिता मम महामते। च्यवनो नाम विख्यातः सर्वज्ञानविशारदः ॥२॥
तस्याहं प्रियकन्या वै प्राणादपि च वल्लभा।
यत्र यत्र व्रजत्येष तीर्थारामेषु सुव्रत ॥३॥
सभासु च मुनीनां तु देवतायतनेषु च। तेन सार्द्धं व्रजाम्येका क्रीडमाना सदैव हि ॥४॥
कौशिकान्वयसम्भूतो वेदशर्मा महामतिः। पितुर्ममसखा दैवादटमानःसमागतः ॥५॥
दुःखेन महताविष्टश्चिन्तयानो मुहुर्मुहुः। समागतं महात्मानं तमुवाच पिता मम ॥६॥
भवन्तं दुःखसन्तप्तमिति जानामि सुव्रत। कस्माद्दुःखीभवाञ्जातस्तस्मात्त्वं कारणं वद॥७॥
एतद्वाक्यं ततःश्रुत्वा च्यवनस्य महात्मनः। तमुवाच महात्मानं पितरं मम सुव्रत ॥८॥

पृथिवी की असाध्य वस्तुएँ भी धर्म की कृपा से ही प्राप्त हो जाती हैं, अतएव आप मेरी बात को मानें। पत्नी की वाणी को सुनकर बुद्धिमान् सोमशर्मा ने पुनः सुमना से कहा ॥३३-३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्यान के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

सुमना द्वारा अपने वृतान्त का वर्णन

सोमशर्मा ने कहा— हे भद्रे! इस प्रकार की धर्म की उत्तम व्याख्या तुम कैसे जानती हो? और तुमने इसे किससे सुना है?॥१॥ **सुमना ने कहा**— समस्त विज्ञानों में निपुण मेरे पिता च्यवन उत्पन्न हुए॥२॥ मैं उनकी प्राणप्रिया पुत्री हूँ। हे सुव्रत! वे जहाँ-जहाँ तीर्थों में, मुनियों की सभाओं में तथा मन्दिर में जाते थे, मैं अकेली उनके साथ खेलती हुयी जाती थी ॥३-४॥ भग्यवशात् कौशिक वंश में उत्पन्न मेरे पिता के मित्र महाबुद्धिमान् वेदशर्मा आये ॥५॥ वे अत्यन्त दुःखी तथा बार-बार चिन्ता करते थे। उन आये हुए महात्मा से मेरे पिता ने कहा ॥६॥ हे सुव्रत! मुझे लगता है कि आप अत्यन्त दुखी हैं। आप किस कारण से दुःखी है, यह मुझे बतलाइये ॥७॥ हे सुव्रत! मेरे पिता च्यवन के वाक्य को सुनकर वेदशर्मा

वेदशर्मा महाप्राज्ञःसर्वदुःखस्य कारणम्। मम भार्या महासाध्वी पातिव्रत्यपरायणा ॥९॥
अपुत्रा सा हि सञ्जाता मम वंशो न विद्यते ।
एतत्ते कारणं प्रोक्तं प्रश्रितोऽस्मियतस्त्वया ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तःकश्चित्सिद्धःसमागतः। ममपित्रा तथातेन ह्युत्थाय वेदशर्मणा ॥११॥
द्वाभ्यामपि च सिद्धोऽसौ पूजितो भक्तिपूर्वकः ।
उपहारैस्सभोज्यान्नैर्वचनैर्मधुराक्षरैः ॥१२॥
द्वाम्यामन्तर्गतं पृष्टं पूर्वोक्तं च यथात्वया। उभौ तौ प्राह धर्मात्मा सखायं पितरं मम ॥१३॥
धर्मस्य कारणं सर्वं मयोक्तं ते तथा किल। धर्मेण प्राप्यते पुत्रो धनं धान्यं तथास्त्रियः ॥१४॥
ततस्तेन कृतोधर्मःसम्पूर्णं वेदशर्मणा । तस्माद्धर्मात्सुसञ्जातं महत्सौख्यं सपुत्रकम् ॥१५॥
तेन सङ्गप्रसङ्गेन ममैषमतिनिश्चयः। यथाकान्त तवप्रोक्तं मयैव च परंशुभम् ॥१६॥
तस्माच्छ्रुतं महासिद्धात्सर्वसन्देहनाशनम् । विप्रधर्मं समाश्रित्य अनुवर्त्तस्व सर्वदा॥१७॥

सोमशर्मोवाच

धर्मेण कीदृशो मृत्युर्जन्मचैव वदस्व मे । उभयोर्लक्षणं कान्ते तत्सर्वं हि वदस्व मे ॥१८॥

सुमनोवाच

सत्यं शौचं क्षमा शान्तितीर्थपुण्यादिकैस्तथ। धर्मश्च पातिलो येन तस्य मृत्युं वदाम्यहम् ॥१९॥
रोगो न जायते तस्य न च पीडाकेलेचवरे। न श्रमो वै न च ग्लानिर्नच स्वेदो भ्रमस्तथा ॥२०॥
दिव्यरूपं धरा भूत्वा गन्धर्वा ब्राह्मणास्तथा ।
वेदपाठसमायुक्ता गीतज्ञानविशारदाः ॥२१॥

ने मेरे पिता से कहा मेरी पत्नी पतिव्रता है और महासाध्वी है । वह पुत्र रहित है, मेरा कोई वंश नहीं है, यह मैंने आपको कारण बतला दिया है । मैं आपके अश्रित हूँ ॥८-१०॥ उसी समय कोई सिद्ध वहाँ आये तो मेरे पिता तथा वेदशर्मा खड़े होकर उनदोनो ने उस सिद्ध की भक्तिपूर्वक उपहारों, सुन्दर भोजन तथा मधुर वाणी से पूजा की ॥११-१२॥ उन दोनों के बीच में समागत उन सिद्ध से आपके ही समान पूछे जाने पर उस सिद्ध ने मेरे पिता से कहा ॥१३॥ धर्म के समस्त कारणों को उसी तरह से बतलाया जैसे मैंने आप से कहा है । धर्म से ही पुत्र, धन, धान्य तथा स्त्रियों की प्राप्ति होती है ॥१४॥ उसके पश्चात् वेदशर्मा ने सम्पूर्ण धर्म का अनुष्ठान किया । उस धर्म के कारण वेदशर्मा ने पुत्र तथा महान् सुख को प्राप्त किया । उस सङ्ग के प्रसङ्ग से मेरी बुद्धि का यह निश्चय है कि हे कान्त ! मैंने जैसा कहा है, वह अत्यन्त कल्याणकारी है ॥१६॥ मैंने इसे उस महासिद्ध से धर्म को सुना है अतः हे विप्र ! धर्म के अनुसार आप धर्म का अनुसरण करें ॥१७॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे कान्ते ! तुम विस्तार पूर्वक सारी बातें बतलाओ की धर्म से जन्म तथा मृत्यु कैसे होते हैं ॥१८॥ **सुमना ने कहा—** जो सत्य, शौच, क्षमा, शान्ति तथा तीर्थ यात्रा इत्यादि पुण्यों के द्वारा धर्म का पालन करता है, उसकी होने वाली मृत्यु को मैं बतलाती हूँ ॥१९॥ उसको न तो कोई रोग होता है, न शरीर में पीड़ा होती है, न थकान होती है, न तो ग्लानि होती है, न पसीना होता है और न भ्रम होता है ॥२०॥ उसके पास दिव्य रूप धारण करके वेदपाठ करते हुए गीतज्ञान के विषय में प्रवीण गन्धर्व तथा ब्राह्मण आते हैं, उसकी अत्यधिक स्तुति करते हैं । वह स्वस्थ पुरुष आसन पर बैठकर

तस्य पार्श्वं समायान्ति स्तुतिं कुर्वन्ति चातुलाम् ।
स्वस्थो हि आसने युक्तो देवपूजारतःकिल ॥२२॥
तीर्थं च लभते प्राज्ञःस्नानार्थं धर्मतत्परः। अग्न्यगारे च गोस्थाने देवतायतनेषु च॥२३॥
अरामे च तडागे च यत्राश्वत्थो बटस्तथा। ब्रह्मवृक्षं समाश्रित्य श्रीवृक्षं च तथापुनः ॥२४॥
अश्वस्थानं समाश्रित्य गजस्थानगतो नरः । अशोकं चूतवृक्षं च समाश्रित्य यदास्थितः ॥२५॥
सन्निधौ ब्राह्मणानां च राजवेश्मगतोऽथवा । रणभूमिं समाश्रित्य पूर्वं यत्र मृतोभवेत् ॥२६॥
मृत्युस्थानानि पुण्यानि केवलं धर्मकारणम्। गोगृहं तु सुसम्प्राप्य तथाचामरकण्टकम्॥२७॥
शुद्धधर्मकरो नित्यं धर्मतो धर्मवत्सलः। एवंस्थानं समाप्नोति यदामृत्युं समाश्रितः ॥२८॥
मातरं पश्यते पुण्यं पितरं च नरोत्तमः। भ्रातरं श्रेयसायुक्तमन्यं स्वजनबान्धबम् ॥२९॥
वन्दिभिस्तु तथा पुण्यःस्तूयमानं पुनःपुनः। पापिष्ठं नैव पश्येत मातापित्रादिकं पुनः ॥३०॥
गीतं गायन्ति गन्धर्वाः स्तुवन्तिस्तावकाःस्तवैः ।
मन्त्रपाठैस्तथाविप्रा मातास्नेहेन पूजयेत् ॥३१॥
पिता स्वजनवर्गाश्च धर्मात्मानं महामतिम्। एवं दूताःसमाख्याताःपुण्यस्थानानि ते विभो॥३२॥
प्रत्यक्षान्पश्यते दूतान्हास्यस्नेह समाविलान् । न च स्वप्नेन मोहेन क्लेदयुक्तेन नैव च ॥३३॥
धर्मराजो महाप्राज्ञो भवन्तं तु समाह्वयेत्। एह्येहित्वं महाभाग यत्रधर्मःस तिष्ठति ॥३४॥
तस्य मोहो न च भ्रान्तिर्नग्लानिः स्मृतिविभ्रमः ।
जायते नात्र सन्देहः प्रसन्नात्मा स तिष्ठति ॥३५॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः स्मरन्देवं जनार्दनम् । तैः सार्द्धं तु प्रयात्येवं सन्तुष्टो हृष्टमानसः॥३६॥
एकत्वं जायते तत्र त्यजतः स्वं कलेवरम् । दशमद्वारमाश्रित्य आत्मा तस्य स गच्छति ॥३७॥

देवताओं की पूजा करता है ॥२१-२२॥ धार्मिक पुरुष प्रातःकाल तीर्थ में स्नान करता है, वह यज्ञशाला, गोशाला, मन्दिर, उद्यान, सरोवर, पिप्पल अथवा वटवृक्ष का या विल्ववृक्ष का सहारा लेकर घुड़शाल अथवा हस्तिशाला में अशोक अथवा आम्रवृक्ष का सहारा लेकर तथा राजा के घर में ब्राह्मणों के सन्निकट या रणभूमि में जहाँ पहले मरा रहता है, वहीं मरता है ॥२३-२६॥ इन पवित्र स्थानों में मृत्यु का कारण केवल धर्म ही होता है । गोशाला में अथवा अमरकण्टक में मृत्यु के समय तो वहीं व्यक्ति जाता है जो सदा शुद्ध धर्म का पालन करने वाला होता है ॥२७-२८॥ वह उस समय माता, पिता तथा कल्याणकारी वान्धवों को देखता है ॥२९॥ वन्दी जन उसकी स्तुति बार-बार करते हैं, उस समय वह पापी माता-पिता इत्यादि को नहीं देखता है ॥३०॥ उस समय गन्धर्व गीत गाते हैं, स्तुति करने वाले स्तुति करते हैं, ब्राह्मण मन्त्र पाठ करते हैं, माता स्नेह पूर्वक उसकी पूजा करती है ॥३१॥ पिता तथा स्वजन उस महाज्ञानी धर्मात्मा के दूत बतलाये गये हैं, तथा उसके मृत्यु के पुण्य स्थान बतलाये गये हैं । स्वप्न मोह, अथवा क्लेश से नहीं अपितु वह मृत्यु के समय प्रत्यक्षतः हास्य तथा स्नेह से युक्त दूतों को देखता है ॥३२-३३॥ उस धर्मात्मा को धर्मराज कहते हैं— आओ-आओ और वह धर्मराज के सन्निकट जाकर ठहर जाता है ॥३४॥ उस समय उंसको न तो मोह होता है, न भ्रम होता है, न ग्लानि होती है, और न तो स्मृति विभ्रम होता है, निःसन्देह वह प्रसन्न रहता है ॥३५॥ वह ज्ञान विज्ञान से युक्त श्रीभगवान् का स्मरण करते हुए उन सबों के

शिविका तस्य चायाति हंसयानं मनोहरम् । विमानमेव चायाति हयो वा गज उत्तमः ॥३८॥
छत्रेण ध्रियमाणेन चामरैर्व्यजनैस्तथा । वीज्यमानः स पुण्यात्मा पुण्यैरेवं समन्ततः ॥३९॥
गीयमानस्तु धर्मात्मा स्तूयमानस्तु पण्डितैः । वन्दिभिश्चारणैर्दिव्यैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥४०॥
साधुभिः स्तूयमानस्तु सर्वसौख्यसमन्वितः । यथा दानप्रभावेण फलमाप्नोति तत्र सः ॥४१॥
आरामवाटिकामध्ये स प्रयाति सुखेन वै । अप्सरोभिः समाकीर्णो दिव्याभिर्मङ्गलैर्युतः ॥४२॥
देवैः संस्तूयमानस्तु धर्मराजं प्रपश्यति । देवाश्च धर्मसंयुक्ता जग्मुः संमुखमेव तम् ॥४३॥
एह्येहि वै महाभाग भुङ्क्ष्व भोगान्मनोऽनुगान् ।
एवं स पश्यते धर्मं सौम्यरूपं महामतिम् ॥४४॥
स्वस्य पुण्यप्रभावेण भुङ्क्ते च स्वर्गमेव सः। भोगक्षयात्स धर्मात्मा पुनर्जन्मप्रयातिवै ॥४५॥
निजधर्मप्रसादात्स कुलं पुण्यं प्रयाति वै। ब्राह्मणस्य सुपुण्यस्य क्षत्रियस्य तथैव च ॥४६॥
धनाढ्यस्य सुपुण्यस्य वैश्यस्यैव महामते । धर्मेण मोदते तत्र पुनः पुण्यं करोति सः ॥४७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

साथ प्रसन्नता पूर्वक जाता है ॥३६॥ अपने शरीर का त्याग करते समय अकेला दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) से निकलकर आत्मा जाता है ॥३७॥ वहाँ पर शिविका आती है मनोहर हंस विमान आता है अथवा उसको जाने के लिए उत्तम घोड़ा या हाथी आता है ॥३८॥ दूसरे जीव उसका छत्र धारण करते हैं, चमर और व्यजन झलते हैं । इस तरह उस पूण्यात्मा को हर ओर से व्यजन किया जाता है ॥३९॥ सम्पूर्ण सौख्यों से युक्त लोग उसका यशोगान करते हैं, पण्डितजन स्तुति करते हैं । बन्दीजन, चारण, दिव्य, वेद पारङ्गत ब्राह्मण तथा साधुजन उसकी स्तुति करते हैं । वह अपने दान के प्रभाव के अनुसार फल प्राप्त करता है॥३९-४१॥ वह उद्यानों और बाटिकाओं में सुखपूर्वक जाता है । दिव्य अप्सराएँ उसका मङ्गलगान करती हैं ॥४२॥ जिस समय वह धर्मराज का दर्शन करता है उस समय देवता उसकी स्तुति करते हैं, धार्मिक देवता उसके सामने जाते हैं ॥४३॥ धर्मराज उससे कहते हैं— महाभाग आइये ! अपने मनोनुकूल भोगों को भोग कीजिए, इस तरह से वह सौम्य रूप वाले महाज्ञानी धर्मराज का दर्शन करता है ॥४४॥ वह अपने पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग का भोग करता है । भोग का क्षय हो जाने पर उसका पुनर्जन्म होता है ॥४५॥ अपने धर्म की कृपा से पवित्र ब्राह्मण या क्षत्रिय या धनाढ्य पुण्यात्मा वैश्य के वंश में जन्म लेता है । वहाँ भी वह धर्म के कारण आनन्दित रहता है और फिर पुण्य करता है ॥४६-४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्यान के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

सोमशर्मोवाच

पापिनां मरणं भद्रे कीदृशैर्लक्षणैर्युतम्। तनमेत्त्वं विस्तराद् ब्रूहि यदि जानासि भामिनि॥१॥

सुमनोवाच

श्रूयतामभिधास्यामि तस्मात्सिद्धाच्छुतं मया। पापिनां मरणे कान्त यादृशं लिङ्गमेव च॥२॥
महापातकिनांचैव स्थानं चेष्टंवदाम्यहम्। विष्मूत्रामेध्यसंयुक्तां भूमिं पापसमन्वितम् ॥३॥
सतां प्राप्य सुदुष्टात्मा प्राणान्दुःखेन मुञ्चति। चाण्डालभूमिं सम्प्राप्य मरणं याति दुःस्थितः ॥४॥
गर्दभाचरितां भूमिं वेश्यागेहं समाश्रितः। चर्मकारगृहं गत्वा निधनायोपगच्छति॥५॥
अस्थिवर्मनखैःपूर्णमाश्रितंपापकिल्विषैः। तां प्राप्यच स दुष्टात्मामृत्युंयाति सुनिश्चितम्॥६॥
अन्यांपापसमाचांराप्राप्य मृत्युं सगच्छति। अथचेष्टां प्रवक्ष्यामि दूतानां तु तमिच्छताम्॥७॥
भैरवान्दारुणान्घोरानतिकृष्णान्महोदरान्। पिङ्गाक्षान्पीतनीलांश्च अतिश्वेतान्महोदरान् ॥८॥
अत्युच्चान्विकरालांश्चशुष्कमांसवसोपमान्। रौद्रदंष्ट्रवान्करालांश्चसिंहास्यान्सर्पहस्तकान् ॥९॥
स तान्दृष्ट्वा प्रकम्पेत खिद्यते च मुहुर्मुहुः। शिवासंनादवद्धोरान्महारावान्महामते ॥१०॥
मुञ्चन्ति दूतकाः सर्वे कर्णमूले तु तस्य हि। गलेपाशैः प्रबद्ध्वा ते कटिं बद्धवातथादरे॥११॥
समाघृष्य निपात्येत हाहेति वदते मुहुः। म्रियमाणस्य या चेष्टा तामेवं प्रवदाम्यहम्॥१२॥
परद्रव्यापहरणं परभार्याविडम्बनम्। ऋणं परस्य सर्वस्वं गृहीतं यत्तु पापिभिः ॥१३॥

पापियों की मृत्यु का लक्षण

सोमशर्मा ने कहा— हे भद्रे ! पापियों की मृत्यु का लक्षण कैसा होता है ? यदि जानती हो तो उसे तुम मुझे विस्तार से बतलाओ ॥१॥ **सुमना ने कहा—** हे कान्त ! सुनिये पापियों की मृत्यु के समय जैसा चिह्न होता है उसे मैं वैसे ही बतला रही हूँ, जैसा कि मैंने उस सिद्ध से सुना था ॥२॥ पापियों की मृत्यु के समय की जो भूमि और चेष्टाएँ होती हैं, वह मल-मूत्र इत्यादि अपवित्र वस्तुओं से युक्त तथा अपवित्र होती है ॥३॥ सज्जनों के सन्निकट में आकर दुष्ट व्यक्ति बड़े ही कष्ट से अपने प्राणों का परित्याग करता है। चाण्डाल भूमि में जाकर पापी मरता है ॥४॥ गधों के चरने के स्थान, वेश्या के घर अथवा हरिजन के घर जाकर वह मरता है ॥५॥ वह दुष्ट हड्डी, चमड़ा तथा नख से भरे स्थान में जाकर मरता है ॥६॥ वह दूसरे भी पापपूर्ण स्थान में जाकर मरता है। अब मैं पापियों की मृत्यु के समय उसको ले जाने की इच्छा वाले यमदूतों की चेष्टा को कहती हूँ ॥७॥ उन सबों का आकार भयङ्कर, कठोर, घोर, अत्यन्त काले, विशाल पेट वाले, पीली आँख वाले, अत्यन्त पीला, नीला और श्वेत आकार वाले, अत्यन्त लम्बे, विकराल सूखे मांस और वसा के समान, भयङ्कर दाँत वाले, सिंह के समान मुख वाले तथा हाथ में सांप लिए रहने वाले होते हैं ॥८-९॥ वह पापी उन सबों को देखकर काँपने लगता हैं बार-बार दुःखी हो जाता है। वे उस पापी के कान में स्यारिन के समान भयङ्कर ध्वनि करते हैं वे उसके गले में और कमर तथा पेट में पाश बाँधकर उसे घसीट कर गिरा देते हैं। वह हाय-हाय बार-बार चिल्लाता है। अब मैं मरने वाले की जो चेष्टा होती है, उसे बतलाती हूँ ॥१०-११॥ दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण, दूसरी की पत्नी को ठगना, दूसरे

पुनर्नैव प्रदत्तं हि लोभास्वादविमोहतः। अन्यदेवं महापापं कुप्रतिग्रहमव च ॥१४॥
कण्ठमायान्ति ते सर्वे म्रियमाणस्य तस्य च। यानि कानि च पापानि पूर्वमेवकृतानि च ॥१५॥
आयान्ति कण्ठमूलं ते महापापस्य नान्यथा। दुःखमुत्पादयन्त्येते कफबन्धेन दारुणम् ॥१६॥
पीडाभिर्दारुणाभिस्तु कण्ठो घुरधुरायते। रोदते कम्पतेऽत्यर्थं मातरं पितरं पुनः ॥१७॥
स्मरते भ्रातरं तत्र भार्यापुत्रान्पुनः पुनः। पुनर्विस्मरणं याति महापापेन मोहितः ॥१८॥
तस्य प्राणा न गच्छन्ति बहुपीडासमाकुलाः। पतने कम्पते चैव मूर्च्छते च पुनः पुनः ॥१९॥
एवं पीडासमायुक्तो दुःखं भुङ्क्तेऽतिमोहितः। तस्यप्राणासुदुःखेन महाकष्टैः प्रचालिताः ॥२०॥
अपानमार्गामाश्रित्य शृणु कान्त प्रयान्ति ते। एवं प्राणी महामुग्धो लोभमोहसमन्वितः॥२१॥
नीयते यमदूतैस्तु तस्य दुःखं वदाम्यहम् ॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने पापमरणविवक्षानाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

सुमनोवाच

अङ्गारसञ्चये मार्गे घृष्यमाणो हि नीयते। दह्यमानः स दुष्टात्मा चेष्टमानः पुनः पुनः॥१॥
यत्रातपो महातीव्रो द्वादशादित्यतापितः। नीयते तेन मार्गेण सन्तप्तः सूर्यरश्मिभिः ॥२॥

से ऋण लेकर उसे हड़प जाना, और उसे भोग तथा आस्वाद के मोह के कारण नहीं लौटाना, इसी तरह के दूसरे पाप तथा निन्दित दान लेना ये सब-के-सब मरने वाले के कण्ठ में आ जाते हैं । तथा पहले से किये गये जो पाप रहते हैं वे भी उस पापी के कण्ठ में आ जाते हैं और उसके गले में कफ उत्पन्न करके भयङ्कर कष्ट देते हैं ॥१२-१६॥ अत्यन्त भयङ्कर पीड़ा के कारण उसका गला घरघराने लगता है । वह रोता है, अत्यन्त काँपने लगता है । अपने माता-पिता का स्मरण करता है, बार-बार अपने भाई, पत्नी और पुत्रों को याद करता है । उसके बाद महापाप के कारण वह सब कुछ भूल जाता है ॥१७-१९॥ अत्यधिक पीड़ा के कारण उसके प्राण जल्दी नहीं निकलते हैं । वह बार-बार गिरता है, काँपता है और मूर्छित हो जाता है॥१९॥ इस तरह अत्यन्त मोहित होकर वह पीड़ा के कारण दुःख भोगता है । इस तरह उसके प्राण भयङ्कर कष्ट से गुदा मार्ग से निकलते हैं । इस तरह से वह प्राणी लोभ तथा मोह से अत्यन्त मोहित होकर परलोक में जाता है । यमदूत उसे ले जाते हैं उसको होने वाले दुःख को मैं वतला रही हूँ ॥२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्यान नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

मृत्यु के पश्चात् पापियों को प्राप्त होने वाली अनेक प्रकार की योनियों का वर्णन

सुमना ने कहा— यमदूत उसे अङ्गार पर घसीटते हुए ले जाते हैं । वह दुष्ट जलता रहता है, छटपटाता है, द्वादश आदित्यों के संताप से संतप्त होता हुआ वह उसी मार्ग से ले जाया जाता है ॥१-२॥

पर्वतेष्वेव दुर्गेषु छायाहीनेषु दुर्मतिः। नीयते तेन मार्गेण क्षुधातृष्णाप्रपीडितः ॥३॥
स दूतैर्हन्यमानस्तु गदाखड्गैः परश्वधैः। कशाभिस्ताड्यमानस्तु निन्द्यमानस्तु दूतकैः॥४॥
ततः शीतमये मार्गे वायुना सेव्यते पुनः। तेनशीतेन दुःखी स भूत्वा याति न संशयः ॥५॥
आकृष्यमाणो दूतैस्तु नानादुर्गेषु नीयते। एवं पापी स दुष्टात्मा देवब्राह्मणनिन्दकः॥६॥
सर्वपापसमाचारो नीयते यमकिङ्करैः। यमं पश्यति दुष्टात्मा कृष्णाञ्जनचयोपमम् ॥७॥
तमुग्रं दारुणं भीमं भीमदूतैः समावृतम् । सर्वव्याधिसमाकीर्णं चित्रगुप्तसमन्वितम् ॥८॥
आरूढं महिषं देवं धर्मराजं द्विजोत्तम। दंष्ट्राकरालमत्युग्रं तस्यास्यं कालसंनिभम् ॥९॥
पीतवासं गदाहस्तं रक्तगन्धानुलेपनम् । रक्तमाल्यकृताभूषं गदाहस्तं भयङ्करम् ॥१०॥
एवं विधं महाकायं यमं पश्यति दुर्मतिः । तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सर्वधर्मबहिष्कृतम्॥११॥
यमः पश्यति तं दुष्टं पापिष्ठं धर्मकण्टकम्। शासयेत्तु महादुःखै पीडाभिर्दारुमुद्गरैः॥१२॥
यावद्युगसहस्रान्तं तावत्कालं प्रपच्यते। नानाविधे च नरके पच्यते च पुनः पुनः ॥१३॥

नारकीं याति वै योनिं कृमिकोटिषु पाकृतम् ।
अमेध्ये पच्यते नित्यं हाहाभूतोविचेतनः ॥१४॥
मरणं च स पापात्मा एवं याति सुनिश्चितम् ।
एवं पापस्य संयोगं भङ्क्ते चैव सुदुर्मतिः ॥१५॥

पुनर्जन्म प्रवक्ष्यामि यासु योनिषु यातिच। शुनां योनिशतं प्राप्य भुङ्क्ते वै पातकं पुनः॥१६॥

व्याघ्रो भवति दुष्टात्मा रासभीं याति वै पुनः ।
मार्जारशूकरीं योनिं सर्पयोनिं तथैव च ॥१७॥

भूख तथा प्यास से पीड़ित वह पापी छाया रहित दुर्गम और भयङ्कर मार्गों से ले जाया जाता है ॥३॥ यमदूत उसको गदाओं, खड्गों, फरसों और कोड़ों से पीटते हैं और उसकी निन्दा करते हैं ॥४॥ उसके बाद वह ठंडे मार्ग से ले जाया जाता है और उसको हवा लगती है । उस ठंढ के कारण वह दुःखी हो जाता है ॥५॥ इस तरह से देवता और ब्राह्मण की निन्दा करने वाले उसको यमदूत भयङ्कर मार्गों से ले जाते हैं।॥६॥ इस तरह से वह दुष्ट पापी काजल के समान काले यमदूतों द्वारा यमराज के पास ले जाया जाता है ॥७॥ उग्र, भयङ्कर यमदूतों से घिरे हुए, सभी व्याधियों से युक्त चित्रगुप्त के साथ, भैंसे पर चढ़े हुए, भयङ्कर दाँतों वाले, अत्यन्त उग्र काल के समान मुखवाले पीताम्बर पहने हुए, हाथ में गदा लिए हुए, शरीर में लाल चन्दन लगाये हुए, लाल माला से अलंकृत भयङ्कर, विशालकाय यमराज का वह पापी दर्शन करता है । समस्त धर्मों से बहिष्कृत उस दुष्ट धर्म को बाधित करने वाले पापी को देखकर यमराज अत्यधिक दुख देते हैं ॥८-१२॥ वह हजारों युग पर्यन्त अनेक प्रकार के नरकों में बार-बार पकाया जाता है ॥१३॥ उसके बाद क्रिमी तथा कीड़ों की अनेक नारकीय योनियों में जाता है । हाय-हाय चिलाते हुए उसको अपवित्र नरकों में सताया जाता है ॥१४॥ पापी निश्चित रूप से इसी प्रकार की मृत्यु को प्राप्त करता है । वह मूर्ख इस प्रकार से पापों का फल भोगता है ॥१५॥ उसके बाद उसका जन्म जिन योनियों में होता है, उसे बतलाती हूँ । वह कुत्तों की सैकड़ों योनियों में जाकर पाप का फल भोगता है ॥१६॥ फिर वह बाघ होता है, इसके बाद गधा होता है । उसके बाद बिल्ली, शूकर तथा सर्प की योनियों में जाता है ॥१७॥

नानाभेदासु सर्वासु तिर्यक्षु च पुनः पुनः । पापपक्षिषु संयाति अन्यासु महतीषु च ॥१८॥
चाण्डालभिल्लयोनिं च पुलिन्दीं याति पापकृत् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं पापिनां जन्मचैव हि ॥१९॥
मरणे चैव कान्ताद्य चेष्टां तेषां सुदारुणाम्। पापपुण्यसमाचारस्तवाग्रे कथितो मया ॥२०॥
अन्यदेवं प्रवक्ष्यामि यदि पृच्छसि मानद ॥२१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने पापपुण्यविवक्षा नाम षोडशोध्यायः ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

सोमशर्मोवाच

सर्वं देवि समाख्यतं धर्मसंस्थानमुत्तमम्। कथं पुत्रमहं विद्यां सर्वज्ञं गुणसंयुतम् ॥१॥
वद त्वं मे महाभागे यदि जानासि सुव्रते। दानधर्मादिकं भद्रे परत्रेह न संशयः ॥२॥

सुमनोवाच

वसिष्ठं गच्छ धर्मज्ञं तं प्रार्थय महामुनिम्। तस्मात्प्राप्स्यसि वै पुत्रं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ॥३॥

सूत उवाच

एवमुक्ते तथा वाक्ये सोमशर्मा द्विजोत्तमः । एवं करिष्ये कल्याणि तव वाक्यं न संशयः ॥४॥
एवमुक्त्वा जगामाशु सोमशर्मा द्विजोत्तमः । वसिष्ठं सर्ववेत्तारं दिव्यं तं तपतां वरम् ॥५॥

वह अनेक प्रकार की पक्षियों की योनि में बार-बार जन्म लेता है । वह दूसरी बड़े पापी पक्षियों की योनि में जाता है ॥१८॥ फिर वह पापी चाण्डाल, भिल्ल तथा पुलिन्द योनि में जाता है । इस तरह से मैं आपको पापियों के जन्मों को बतलायी ॥१९॥ हे कान्त ! सबों की मृत्यु काल में होने वाली चेष्टाओं को मैंने बतलाया । मैं पहले ही पाप एवं पुण्य कर्मों को कह चुकी हूँ ॥२०॥ हे मानद ! यदि आप पूछेंगे तो दूसरी बात को भी मैं इसी तरह से कहूँगी ॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय खण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्या के पाप-पुण्य विवक्षा नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

सुमनोपदेश से प्रेरित सोमशर्मा का महर्षि वशिष्ठ के यहाँ जाना

सोमशर्मा ने कहा— हे देवि ! तुमने धर्म के उत्तम अङ्गों का वर्णन किया । मैं सर्वज्ञ तथा गुणवान् पुत्र को कैसे प्राप्त करूँ ॥१॥ हे सुव्रते ! हे भद्रे !! हे महाभागे !!! यदि जानती हो तो तुम लौकिक एवं पारलौकिक दान धर्म आदि को बतलाओ ॥२॥ **सुमना ने कहा—** आप धर्मज्ञ महामुनि वसिष्ठ महर्षि के पास जायँ उनके द्वारा ही आप धर्मज्ञ तथा धर्म वत्सल पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३॥ **सूतजी ने कहा—** सुमना के इस प्रकार से कहने पर द्विजश्रेष्ठ **सोमशर्मा ने कहा—** हे कल्याणि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं ऐसा ही

गङ्गातीरे स्थितं पुण्यमाश्रमस्थं द्विजोत्तमः। तेजोज्वालासमाकीर्णं द्वितीयमिव भास्करम् ॥६॥
राजमानं महात्मानं ब्रह्मण्यं च द्विजोत्तमः। भक्त्या प्रणम्य विप्रेशं दण्डवच्चपुनःपुनः ॥७॥
तमुवाच महातेजा ब्रह्मसूनुरकल्मषः। उपाविशासने पुण्ये सुखेन सुमहामते॥८॥
एवमुक्त्वा य योगीन्द्रः पुनः प्राह तपोधनम्।
गृहे पुत्रेषु ते वत्स दारभृत्येषु सर्वदा ॥९॥
क्षेममस्ति महाभाग पुण्यकर्मसुचाग्निषु। निरामयोऽसि चाङ्गेषु धर्मं पालयसे सदा ॥१०॥
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः पुनः प्राह सुशर्मणम्। किं करोमि प्रियं कार्यं सुप्रियं ते द्विजोत्तम ॥११॥
एवं सम्भाष्य तं विप्रं विरराम महामुनिः। एवमुक्तो महाप्राज्ञस्सोमशर्मा मुनिस्तदा ॥
तमुवाच महात्मानं वसिष्ठं तपतां वरम् ॥१२॥

सोमशर्मोवाच

भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं सुप्रसन्नेन चेतसा ॥१३॥
यदि मे सुप्रियं कार्यं त्वयैव मुनिपुङ्गव। मम प्रश्नार्थसन्देहं विच्छेदय द्विजोत्तम ॥१४॥
दारिद्र्यं केन पापेन पुत्रसौख्यं कथं न हि। एष मे संशयस्तात कस्मात्पापाद्वदस्वमे॥१५॥
महामोहेन संमुग्धः प्रियया बोधितो द्विज। तयाहं प्रेषितस्तात तव पार्श्वं समातुरः॥१६॥
तत्सर्वं हि समाचक्ष्व सर्वसन्देहनाशकम्। मुक्तिदाता भवस्व त्वं मम संसारबन्धनात्॥१७॥

वसिष्ठ उवाच

पुत्रा मित्राण्यथ भ्राता भार्या स्वजनबान्धवाः।
पञ्चभेदास्तु सम्बन्धात्पुरुषस्य भवन्ति ते ॥१८॥

करूँगा ॥४॥ इस तरह से कहकर सोमशर्मा दिव्य, तपस्वियों में श्रेष्ठ, सर्वज्ञ, महर्षि वसिष्ठ के पास गये॥५॥ वे द्विजोत्तम ! गङ्गा के तट पर अपने पवित्र आश्रम में तेज की कान्ति से व्याप्त दूसरे सूर्य के समान बैठे थे ॥६॥ द्विजोत्तम तथा ब्रह्मण्य एवं सुशोभित होने वाले महात्मा वसिष्ठ को उन्होंने दण्ड के समान पृथिवी पर पड़कर बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥७॥ उनको महातेजस्वी निष्पाप ब्रह्मयुक्त वशिष्ठ ने कहा— हे महामते ! सुख पूर्वक आसन पर बैठिये ॥८॥ इस तरह योगीन्द्र, तपोधन महर्षि वसिष्ठ ने कहा हे वत्स ! तुम्हारे गृह में पुत्र, पत्नी और भृत्य का कल्याण है न ? पुण्यकर्मों और अग्निकर्मों (अग्निहोत्र) का कल्याण है न ? तुम नीरोग तो हो ? धर्म का पालन करते हो न ? इस तरह से कहकर उन्होंने सोमशर्मा से फिर कहा— हे द्विजोत्तम ! मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ ?॥९-११॥ सोमशर्मा को इस तरह कहकर महामुनि चुप हो गये। इस तरह से कहे जाने पर महाप्राज्ञ सोमशर्मा तपस्वियों में श्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ से कहे ॥१२॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे भगवन् ! आप प्रसन्न मन से मेरी बात सुनें ॥१३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हैं तो मेरे प्रश्न विषयक सन्देह को दूर करें ॥१४॥ हे तात ! किस पाप के कारण मुझे दरिद्रता है, पुत्र का सुख मुझे क्यों नहीं है ? यही हमारा सन्देह है। इसे आप बतलायें ॥१५॥ मैं महामोह से मोहित था। पत्नी ने मुझे समझाया, आतुर बने हुए मुझको उसने ही आपके पास भेजा है ॥१६॥ आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें। आप मुझे इस संसार के बन्धन से मुक्ति प्रदान करें ॥१७॥ महर्षि वसिष्ठ ने कहा— पुत्र, मित्र, पत्नी, भाई और स्वजन बन्धु ये पुरुषों के

ते ते सुमनया प्रोक्ताः पूर्वमेव तवाग्रतः । ऋणसम्बन्धिनः सर्वे ते कुपुत्रा द्विजोत्तम ॥१९॥
पुत्रस्य लक्षणं पुण्यं तवाग्रे प्रवदाम्यहम् । पुण्यप्रसक्तो यस्यात्मा सत्यधर्मरतः सदा ॥२०॥
शुद्धिविज्ञानसम्पन्नस्तपस्वी वाग्विदां वरः । सर्वकर्मसुधीर्धीरो वेदाध्ययनतत्परः ॥२१॥
ससर्वशास्त्रवेत्ता च देवब्राह्मणपूजकः । याजकः सर्वयज्ञानां दाता त्यागी प्रियम्वदः ॥२२॥
विष्णुध्यानपरो नित्यं शान्तो दान्तो जपी सदा ।
पितृमातृपरो नित्यं सर्वस्वजनवत्सलः ॥२३॥
कुलस्य तारको विद्वान्कुलस्य परिपोषकः । एवं गुणैश्च संयुक्तः सपुत्रः सुखदायकः ॥२४॥
अन्ये सम्बन्धसंयुक्ताः शोकसन्तापदायकाः । एतादृशेन किं कार्यं फलहीनेन तेन च॥२५॥
आयान्ति यान्ति ते सर्वे तापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
पुत्ररूपेण ते सर्वे संसारे द्विजसत्तम ॥२६॥
पूर्वजन्मकृतं पुण्यं यत्त्वया परिपालितम् । तत्सर्वं हि प्रवक्ष्यामि श्रूयतामद्भुतं पुनः ॥२७॥
भवाञ्छूद्रो महाप्राज्ञ पूर्वजन्मनि नान्यथा । कृषिकर्ता ज्ञानहीनो महालोभेन संयुतः॥२८॥
एकाभार्या सदा द्वेषी बहुपुत्रो ह्यदत्तवान् । धर्मं नैव विजानासि सत्यं नैव परिश्रुतम् ॥२९॥
दानं नैव त्वया दत्तं शास्त्रं नैव प्रतिश्रुतम् । कृता नैव त्वया तीर्थे यात्रा चैव महामते॥३०॥
एवं कृतं त्वया विप्र कृषिमार्गं पुनः पुनः । एवं पूर्वं कृतं कर्म त्वयैव द्विजसत्तम॥३१॥
महिषीणां तथाश्वानां पालनं च पुनः पुनः । एवं पूर्वं कृतं कर्म त्वयैव द्विजसत्तम॥३२॥
विपुलं च धनं तद्वल्लोभेन परिसञ्चितम् । तस्य व्ययं सुपुण्येन न कृतं तु त्वया कदा ॥३३॥

सम्बन्ध के भेद से पाँचों होते हैं ॥१८॥ इन सबों को सुमना ने पहले ही तुम्हें बतला दिया है । हे द्विजोत्तम! सभी कुपुत्र ऋण सम्बन्धी होते हैं ॥१९॥ मैं तुमको पवित्र पुत्र का लक्षण बतलाता हूँ । जिसका आत्मा सदापुण्य तथा सत्य धर्म में लगा रहता है । शुद्धि के विज्ञान से सम्पन्न, तपस्वी, श्रेष्ठवक्ता, सभी कर्मों के विषय में सुन्दर बुद्धि वाला, धैर्य सम्पन्न वेदों का अध्ययन करने वाला ॥२०-२१॥ सभी शास्त्रों को जानने वाला, देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन करने वाला सभी यज्ञों को करने वाला, दान देने वाला, त्यागी, प्रिय बोलने वाला ॥२२॥ भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाला, शान्त, दान्त, जप करने वाला, सदा माता-पिता की सेवा करने वाला, अपने लोगों का पालन करने वाला, वंश का उद्धार करने वाला, विद्वान् तथा वंश को पोषण करने वाला होता है, इन गुणों से युक्त पुत्र सुख देने वाला होता है ॥२३-२४॥ उससे भिन्न सभी पुत्र संबन्ध से युक्त शोक तथा सन्ताप देने वाले होते हैं । उस प्रकार के व्यर्थ पुत्रों से क्या लाभ है ?॥२५॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! वे संसार में पुत्र रूप से आते है और कठोर सन्ताप देकर चले जाते हैं॥२६॥ तुमने पूर्वजन्म में किए गये पुण्यों का जो पालन किया है, उसे मैं पूर्णरूप से बतलाता हूँ उसे सुनो ॥२७॥ आप पूर्व जन्म में क्षुद्र, कृषि करने वाले, ज्ञानहीन, महालोभी, एक पत्नी वाले, सदा द्वेष करने वाले, अनेक पुत्रों वाले, दान नहीं करने वाले थे । आप न तो धर्म जानते थे और न सत्य ॥२८-२९॥ आपने न तो कभी दान ही किया और न शास्त्रों का श्रवण किया । हे महामते ! आपने कभी तीर्थयात्रा भी नहीं की ॥३०॥ इस तरह से हे विप्र ! आपने किसानी में बार-बार किया । आपने सभी पशुओं तथा गायों का पालन किया ॥३१॥ आपने बार-बार भैंस तथा घोड़ों को पाला । हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने पूर्व जन्म में

पात्रे दानं न दत्तं तु दृष्ट्वा दुर्बलमेव च। कृपां कृत्वा न दत्तं तु भवता धनमेव च ॥३४॥
गोमहिष्यादिकं सर्वं पशूनां सञ्चितं त्वया। विक्रीय च धनं विप्र सञ्चितं विपुलं त्वया ॥३५॥
तक्रं घृतं तथा क्षीरं विक्रयित्वा ततो दधि। दुष्कालं चिन्तितं विप्र मोहितो विष्णुमायया ॥३६॥
कृतं महार्घमेवात्र अन्नं ब्राह्मणसत्तम। निर्दयेन त्वया दानं न दत्तं तु कदाचन ॥३७॥
देवानां पूजनं विप्र भवता न कृतं कदा। प्राप्य पर्वाणि विप्रेभ्यो द्रव्यं न च समर्पितम् ॥३८॥

श्राद्धकालं तु सम्प्राप्य श्रद्धया न कृतं त्वया ।
भार्या वदति ते साध्वी दिनमेनं समागतम् ॥३९॥

श्वशुरस्य श्राद्धकालः श्वश्वाश्चैव महामते। त्वं श्रुत्वा तद्वचस्तस्य गृहं त्यक्त्वा पलायसे ॥४०॥
धर्ममार्गं न दृष्टं ते श्रुतं नैव कदा त्वया । लोभो माता पिता भ्राता लोभः स्वजनबान्धवाः॥४१॥
पालितं लोभमेवैकं त्यक्त्वा धर्मं सदैव हि। तस्माद्दुःखी भवाञ्जातो दारिद्रयेणातिपीडितः ॥४२॥
दिने दिने महातृष्णा हृदये ते प्रवर्द्धते। यदा यदा गृहे द्रव्यं वृद्धिमायाति ते तदा ॥४३॥
तृष्णया दह्यमानस्तु तया त्वं वह्निरूपया। रात्रौ वा सुप्रसुप्तस्तु निश्चितो हि प्रचिन्तसि ॥४४॥
दिनं प्राप्य महामोहैर्व्यापितोऽसि सदैव हि । सहस्रं लक्षं मे कोटिः कदा चार्बुदमेव च ॥४५॥
भविष्यति कदा खर्वो निखर्वश्चाथ मे गृहे । एवं सहस्रं लक्षं च कोटिरर्बुदमेव च॥४६॥
खर्वोनिखर्वः सञ्जातस्तृष्णा नैव प्रगच्छतिः। तव कायं परित्यज्य वृद्धिमायाति सर्वदा ॥४७॥
नैव दत्तं हुतं विप्रभुक्तं नैव कदा त्वया। खनितं भूमिमध्ये तु क्षिप्तं पुत्रा न जानते॥४८॥

ऐसा ही कर्म किया है ॥३२॥ आप लोभ के कारण विपुल धन सम्पत्ति एकत्रित किया । आपने पुण्य में उस धन का कभी व्यय नहीं किया ॥३३॥ आपने दुर्बलों को देखकर भी न तो योग्य पात्र को दान दिया और न किसी के ऊपर कृपा की ॥३४॥ हे विप्र ! तुमने गौ तथा भैंस आदि बहुत पशुओं का सञ्चय किया और उन सबों को बेंचकर विपुल धन कमाया ॥३५॥ छांछ, घी तथा दुग्ध, दधि को बेंचकर हे विप्र ! आपने भगवान् विष्णु की माया से मोहित होकर दुष्कल को सोचा । उस समय अन्न अत्यधिक महंगा हो गया किन्तु निर्दय होने के कारण आपने कभी दान नहीं दिया ॥३६-३७॥ हे विप्र ! आपने कभी देवताओं की पूजा भी नहीं की और न तो पर्वों के अवसर पर आपने ब्राह्मणों को दान दिया ॥३८॥ श्राद्ध के समय आपने श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध भी नहीं किया । आपकी साध्वी पत्नी जब कहती थी कि हे महामते ! यह श्वसुर और सासु के श्राद्ध का समय है तो आप उसकी बातों को सुनकर घर से भाग जाते थे ॥३९-४०॥ तुमने कभी धर्म का मार्ग न तो देखा और न सुना । आपके माता-पिता, भाई स्वजन, बान्धव सबकुछ लोभ ही बना रहा ॥४१॥ आपने धर्म को त्यागकर केवल लोभ को ही पाला उसके फलस्वरूप आप दारिद्रय के कारण अत्यन्त पीड़ित होकर दुःखी हो गये ॥४२॥ घर में जैसे-जैसे द्रव्य आता है, वैसे-वैसे तुम्हारे हृदय में महातृष्णा बढ़ती जाती है ॥४३॥ अग्नि स्वरूप चिन्ता से जलते हुए तुम रात में सोते समय भी चिन्ता करते रहते हो ॥४४॥ दिन होते ही तुम सदा महामोह से व्याप्त हो जाते हो । सोचते हो कब मेरे पास हजार, लाख, करोड़ तथा अरब की संख्या में द्रव्य हो जायेगा । कब मेरे पास खर्व दशखर्व द्रव्य हो जायेगा ? इसीतरह हजार, लाख तथा करोड़, अरब, खर्व, निखर्व द्रव्य की तृष्णा आपको बनी रहती है। वह तुम्हारे शरीर को त्यागकर कभी जाती नहीं है । अपितु वह बढ़ती ही रहती है ॥४५-४७॥ कभी तुमने

अन्यमेवमुपायं तु द्रव्यागमनकारणात्। कुरुषे सर्वदा विप्र लोकान्पृच्छसि बुद्धिमान् ॥४९॥
खनित्रमञ्जनं वादं धातुवादमतः परम्। पृच्छमानो भ्रमस्येकस्तृष्णाया परिमोहितः ॥५०॥
स्पर्शं चिन्तयसे नित्यं कल्पान्सिद्धिप्रदायकान् ।
प्रवेशं विवराणां तु चिन्तमानः सुपृच्छसि ॥५१॥
तृष्णानलेन दग्धेन सुखंनैव प्रगच्छसि। तृष्णानलेन सन्दीप्तो हाहाभूतो विचेतनः ॥५२॥
एवं मुग्धोऽसिविप्रेन्द्र गतस्त्वं कालवश्यताम् ।
दारपुत्रेषु तद्द्रव्यं पृच्छमानेषु वै त्वया ॥५३॥
कथितं नैव वृत्तान्तं प्राणांस्त्यक्त्वा गतो यमम् ।
एवं सर्वं मयाऽऽख्यातं वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥५४॥
अनेन कर्मणा विप्र निर्धनोऽसि दरिद्रवान् । संसारे यस्य सत्पुत्रा भक्तिमन्तः सदैव हि ॥५५॥
सुशीला ज्ञानसम्पन्नाः सत्यधर्मरताः सदा। सम्भवन्ति गृहे तस्य यस्य विष्णुःप्रसीदति ॥५६॥
धनं धान्यं कलत्रं तु पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स भुङ्क्ते मर्त्यलोके वै यस्य विष्णुः प्रसन्नवान्॥५७॥
विना विष्णोःप्रसादेन दारान्पुत्रान्नचाप्नुयात् । सुजन्म च कुलं विप्रतद्विष्णोः परमंपदम् ॥५८॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

न तो होम किया न ब्राह्मण खिलाया । तुमने भूमि खोदकर धन को गाड़ दिया, जिसे तुम्हारे पुत्र भी नहीं जान पाते थे ॥४८॥ हे विप्र ! सदैव आप द्रव्य प्राप्ति के दूसरे उपायों को लोगों से पूछते रहते थे ॥४९॥ खनती ही तुम्हारे लिए अञ्जन थी, उससे बढ़कर धातुवाद था । तृष्णा के द्वारा मोहित होकर पूछते हुए आप घूमते रहते थे ॥५०॥ तुम सदा स्पर्श को सोचते रहते हो तथा सिद्धि प्रदान करने वाले विकल्पों को सोचते रहते थे । विवरों (विलों) में प्रवेश करने के साधनों की चिन्ता करते हुए पुछते रहते थे ॥५१॥ तृष्णा रूपी अग्नि से दग्ध होने के कारण तुमको सुख नहीं मिलता था । तृष्णा रूपी अग्नि से संतप्त होने के कारण तुम हाय-हाय करते रहते थे ॥५२॥ इस तरह से मोहित होने के कारण तुम काल कवलित हो गये । पत्नी और पुत्रों के पूछने पर तुमने उन लोगों को धन नहीं वतलाया । तुम मरकर यमराज के पास गये । इस तरह से मैंने तुम्हारे पूर्वजन्म के सम्पूर्ण वृत्तान्त को वतलाया ॥५३-५४॥ हे विप्र ! कर्म के कारण तुम निर्धन और दरिद्र हुए हो । जिस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, उसी के संसार में सत्पुत्र होते हैं । वे भक्ति सम्पन्न, सुशील, ज्ञानी और सत्य धर्म का पालन करने वाले होते हैं ॥५५-५६॥ जिस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वह अनन्त धन, धान्य, पत्नी, पुत्र तथा पौत्रों को मर्त्यलोक में प्राप्त करता है ॥५७॥ हे विप्र ! भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के बिना पत्नी, पुत्र तथा सुन्दर वंश में जन्म तथा मुक्ति नहीं होती है॥५८॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्रसुमनोपाख्यान के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

अठारहवाँ अध्याय

सोमशर्मोवाच

पूर्वजन्मकृतं पापं त्वया ख्यातं च मे मुने। शूद्रत्वेन तु विप्रेन्द्र मयैव परिवर्जितम्।।१।।
विप्रत्वं हि मया प्राप्तं तत्कथं द्विजसत्तम। तत्सर्वं कारणं ब्रूहि ज्ञानविज्ञानपण्डित।।२।।

वसिष्ठ उवाच

यत्त्वया चेष्टितं पूर्वं कर्मधर्माश्रितं द्विज। तदहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां यदि मन्यसे ।।३।।
ब्राह्मणः कश्चिदनघः सदाचारः सुपण्डितः। विष्णुभक्तस्तु धर्मात्मा नित्यं विष्णुपरायणः ।।४।।
यात्राव्याजेन तीर्थानां भ्रमत्येकः स मेदिनीम्।
अटमानःसमायातस्तव गेहं महामतिः ।।५।।
याचितं स्थानमेकं वै वासार्थं द्विजसत्तम। तवैव भार्यया दत्तं त्वया च सहपुत्रकैः ।।६।।
एयतामेयतांब्रह्मन्सुखेन सुगृहे मम। वैष्णवं ब्राह्मणं पुण्यमित्युवाच पुनःपुनः ।।७।।
सुखेन स्थीयतामत्र गृहोऽयं तव सुव्रत। अद्यधन्योऽस्म्यहं पुण्यमद्यतीर्थमहंगतः ।।८।।
अद्यतीर्थफलं प्राप्तं तवाङ्घ्रिद्वयदर्शनात्। गवां स्थानं वरं पुण्यं निवासाय निवेदितम् ।।९।।
अङ्गसंवाहनं कृत्वा पादौ चैव प्रमर्दितौ। क्षालितौ च पुनस्तोयैःस्नातःपादोदकेन हि ।।१०।।
सद्यो घृतं दधिक्षीरमन्नंतक्रं प्रदत्तवान्। तस्मै च ब्राह्मणायैव भवानित्थं महात्मने।।११।।
एवं सन्तोषितो विप्रस्त्वया च सह भार्यया। पुत्रैःसार्धं महाभागो वैष्णवो ज्ञानपण्डितः ।।१२।।
अथ प्रभाते साप्राप्ते दिने पुण्ये सुभाग्यदे। आषाढस्य तु शुद्धस्यैकादशी पापनाशिनी।।१३।।

सोमशर्मा के ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के कारण का वर्णन

सोमशर्मा ने कहा— हे मुने ! आपने मेरे पूर्व जन्म के पाप का वर्णन किया। ऐसी स्थिति में मैंने शूद्रत्व से रहित विप्रत्व को कैसे प्राप्त किया ? हे ज्ञान-विज्ञान पण्डित ! आप उन समस्त कारणों को बतलायें ।।१-२।। **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे द्विज ! आपने पूर्व जन्म में जिन चेष्टाओं को किया उन सबों को मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ।।३।। कोई सदाचारी तथा पण्डित विष्णुभक्त सदा विष्णु की भक्ति में लगा रहने वाला धर्मात्मा ब्राह्मण तीर्थ यात्रा के व्याज से पृथिवी पर अकेला भ्रमण कर रहा था। वह महाबुद्धिमान् आपके घर आया ।।४-५।। उस ब्राह्मण ने रुकने के लिए आपसे स्थान की याचना की। आपके पुत्रों तथा पत्नी ने उस ब्राह्मण को रुकने के लिए स्थान दे दिया। आपने उस वैष्णव ब्राह्मण से कहा— कि आप मेरे घर आइये। इस तरह से बार-बार पवित्र वाणी आपने कहा ।।६-७।। आपने कहा— आप सुख पूर्वक रहें यह आपका ही घर है। आज मैं धन्य हो गया। आज मैंने तीर्थयात्रा कर ली। आज आपके चरणों का दर्शन करके मैंने तीर्थ का फल प्राप्त कर लिया। इस तरह से कहकर आपने उनको गोशाला में स्थान दे दिया ।।८-९।। उनके शरीर को दबाकर उनके दोनों चरणों को आपने दबाया। फिर जल से उनके चरणों को धोया और उनके चरणोदक से स्नान किया ।।१०।। आपने उन महात्मा ब्राह्मण को शीघ्र ही घी, दुग्ध, दधि तथा अन्न तथा छांछ प्रदान किया ।।१०।। इस तरह से आपने अपनी पत्नी के साथ उस ज्ञानी वैष्णव तथा पण्डित ब्राह्मण को पुत्रों के साथ सन्तुष्ट किया ।।१२।। उसके बाद दूसरे दिन प्रातःकाल

तस्मिन्दिनेसुसम्प्राप्ता सर्वपातकनाशिनी । यस्यां देवी हृषीकेशो योगनिद्रां प्रगच्छति॥१४॥
तां प्राप्य च ततो लोकास्तत्यजुर्बुद्धिपण्डिताः ।
गृहस्य सर्वकर्माणि विष्णुध्यानरता द्विज ॥१५॥
उत्सवं परमंचक्रुर्गीतमङ्गलवादनैः । स्तुवन्ति ब्राह्मणाःसर्वे वेदैःस्तोत्रैःसुमङ्गलैः ॥१६॥
एवं महोत्सवं प्राप्य स च ब्राह्मणसत्तमः । तस्मिन्दिने स्थितस्तत्र सम्प्राप्तं समुपोषणम् ॥१७॥
एकादश्यास्तु माहात्म्यं पठितं ब्राह्मणेन वै । भार्यापुत्रैस्त्वया सार्द्धं श्रुतं धर्ममनुत्तमम्॥१८॥
श्रुते तस्मिन्महापुण्ये भार्यापुत्रैस्तु प्रेरितः । संसर्गादस्य विप्रस्य व्रतमेतत्समाचर ॥१९॥
तदाकर्ण्य महद्वाक्यं सर्वपुण्यप्रदायकम् । व्रतमेतत्करिष्यामि इति निश्चितमानसः ॥२०॥
भार्यापुत्रैःसमं गत्वा नद्यां स्नानं कृतं त्वया। हृष्टेन मनसा विप्र पूजितो मधुसुदनः ॥२१॥
सर्वोपहारैःपुण्यैश्च गन्धधूपादिभिस्तथा । रात्रौ जागरणंकृत्वा नृत्यगीतादिभिस्तथा॥२२॥
ब्राह्मणस्य प्रसङ्गेन नद्यां स्नानं पुनःकृतम्। पूजितो देवदेवेशःपुष्पधूपादिमङ्गलैः ॥२३॥
भक्त्या प्रणम्य गोविन्दं स्नापयित्वा पुनः पुनः ।
निर्वापं तादृशं दत्तं ब्राह्मणाय महात्मने ॥२४॥
भक्त्या प्रणम्य तं विप्रं दत्ता तस्मै सुदक्षिणा ।
कृतवान्पारणं विप्र पुत्रैर्भार्यादिभिःसमम् ॥२५॥
प्रेषितो भक्तिपूर्वेण सद्भावेन त्वयैव सः । एवं व्रतं समाचीर्णं त्वया वै द्विजसत्तम ॥२६॥
सङ्गत्या ब्राह्मणस्यैव विष्णोश्चैव प्रसादतः । भवान्ब्राह्मणतां प्राप्तःसत्यधर्मसमन्वितः॥२७॥
तेन व्रतप्रभावेण त्वया प्राप्तं महत्कुलम्। भूसुराणां महाप्राज्ञ सत्यधर्म समाविलम्॥२८॥

शुद्ध आषाढ़ मास की पापनाशिनी एकादशी थी । उस एकादशी को श्रीहरि शयन करते हैं ॥१३-१४॥ उस तिथि को संसार के सभी बुद्धिमान् पण्डितजन भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं, घर के सारे कार्यों को त्याग देते हैं ॥१५॥ वे मङ्गलमूय गीतों और वाद्यों से उत्सव मनाते हैं । सभी ब्राह्मण मङ्गलमय वैदिक स्तोतों से श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं ॥१६॥ उस दिन उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने उपवास किया और वे एकादशी का माहात्म्य पढ़े । आपने अपनी पत्नी तथा पुत्रों के साथ उस श्रेष्ठ धर्म कथा का श्रवण किया ॥१७-१८॥ उस ब्राह्मण के संसर्ग से उस कथा के श्रवण करने के बाद आपकी पत्नी तथा पुत्रों ने उस व्रत को करने के लिए प्रेरित किया ॥१९॥ उस पुण्यप्रद वाक्य को सुनकर आपने मन में निश्चय किया कि मैं इस व्रत को करूँगा ॥२०॥ आपने प्रसन्न मन से पत्नी और पुत्रों के साथ जाकर नदी में स्नान किया और भगवान् मधुसूदन की पूजा पवित्र सभी उपहारों, चन्दन तथा धूप आदि से की । रात्रि में गीत तथा नृत्य आदि के द्वारा जागरण किया ॥२१-२२॥ ब्राह्मण के संसर्ग से फिर नदी में स्नान किया, श्रीभगवान् की मङ्गलमय पुष्प तथा धूप आदि से पूजा की ॥२३॥ श्रीभगवान् को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा बार-बार स्नान कराकर उसके अनुसार ब्राह्मण को निर्वाण (भोजन आदि) प्रदान किया ॥२४॥ भक्ति पूर्वक उस ब्राह्मण को प्रणाम करके सुन्दर दक्षिणा आपने दी । फिर आपने पुत्रों तथा पत्नियों आदि के साथ पारण किया ॥२५॥ फिर भक्ति तथा सद्भाव पूर्वक आपने उस ब्राह्मण को विदा किया । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह आपने व्रत किया ॥२६॥ ब्राह्मण की सङ्गति तथा भगवान् विष्णु की कृपा से आपने सत्यधर्म से युक्त

तस्मैतु ब्राह्मणायैव वैष्णवाय महात्मने। श्रद्धया सत्यभावेन दत्तमन्नं सुसंस्कृतम्॥२९॥
तेन दानप्रभावेण मिष्टान्नमुपतिष्ठति। महामोहैः प्रमुग्धो हि तृष्णया व्यापितं मनः॥३०॥
पूर्वजन्मनि ते विप्र अर्थमेव प्रसञ्चितम्। न दत्तं ब्राह्मणेभ्यो हि दीनेष्वन्येषु वै त्वया॥३१॥
दारेषु पुत्रलोभेन म्रियमाणेन वै तदा। तस्य पापस्य भावेन दारिद्रं त्वामुपाविशत्॥३२॥
पुत्रलोभं परित्यज्य स्नेहं त्यक्त्वा प्रदूरतः। अपुत्रवान्भवाञ्जातस्तस्य पापस्य वै फलम्॥३३॥
सुपुत्रं च कुलं विप्र धनंधान्यं धरास्त्रियः। सुजन्म मरणंचैच सुभोगाःसुखमेव च॥३४॥
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च यद्यद्दुर्लभमेव च। प्रसादात्तस्य देवस्य विष्णोश्चैव महात्मनः॥३५॥
तस्मादाराध्य गोविन्दं नारायणमनामयम्। प्राप्स्यसि त्वं परं स्थानं तद्विष्णोःपरमंपदम्॥३६॥
सुपुत्रत्वं धनंधान्यं सुभोगान्सुखमेव च। पूर्वजन्मकृतं सर्वं यत्त्वया परिचेष्टितम्॥३७॥
तन्मया कथितं विप्र तवाग्रे परिनिष्ठितम्। एवं ज्ञात्वा महाभाग नारायणपरोभव॥३८॥

ब्रह्मात्मजेनापि महानुभावः सविप्रवर्यः परिबोधितो हि।
हर्षेण युक्तः स महानुभावो भक्त्या वसिष्ठं प्रणिपत्य तत्र॥३९॥
आमन्त्र्य विप्रं स जगाम गेहं तां प्राप्य भार्यां सुमनां प्रहर्षः।
सर्वं हि वृत्तं मम पूर्वचेष्टितं तेनैव विप्रेण तव प्रसादात्॥४०॥
भद्रे वसिष्ठेन विकाशनीतमद्यैव मोहं परिनाशितं मे।
आराधयिष्ये मधुसूदनं हि यास्यामि मोक्षं परमं पदं तत्॥४१॥

ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया॥२७॥ उस व्रत के ही प्रभाव से आपने महान् ब्राह्मणों के निर्दोष वंश को प्राप्त किया जो सत्य धर्म के समान है॥२८॥ उस वैष्णव तथा माहात्मा ब्राह्मण को आपने अत्यन्त शुद्ध अन्न प्रदान किया॥२९॥ उस दान के प्रभाव से आपको मीठा अन्न मिलता है। आप महामोह से मोहित हैं, आपके मन में तृष्णा (लालच) बनी रहती है॥३०॥ हे विप्र! आपने पूर्व जन्म में धन का ही सञ्चय किया है। आपने ब्राह्मणों, दीनों तथा दूसरों को दान नहीं दिया॥३१॥ आप अपनी पत्नियों में पुत्र प्राप्ति के लोभ से मरते रहे। उसी पाप के कारण आप दरिद्र हुए हैं॥३२॥ उसी पाप का फल है कि आप पुत्र का लोभ तथा स्नेह का परित्याग करके पुत्रहीन हो गये॥३३॥ हे ब्राह्मण! भगवान् विष्णु की ही कृपा से सुन्दर पुत्र, वंश, धन-धान्य, पृथिवी, पत्नी, सुन्दर जन्म, सुन्दर मृत्यु, सुन्दर भोग और सुख, राज्य, स्वर्ग, मोक्ष सभी दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त होती है॥३४-३५॥ अतएव आप अनामय (निर्दोष) भगवान् नारायण गोविन्द की ही आराधना करके भगवान् विष्णु के परमधाम रूपी श्रेष्ठ स्थान तथा सुन्दर पुत्र, धन-धान्य सुन्दर भोग तथा सुख को प्राप्त करेंगे। आपने पूर्वजन्म में जैसा कर्म किया था उसका मैंने वर्णन तुम्हारे सामने किया। हे महाभाग! इस बात को जानकर आप भगवान् नारायण की आराधना करें॥३६-३८॥ ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि के द्वारा उपदिष्ट होकर उस ब्राह्मण ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया उनसे विदा लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपनी पत्नी सुमना के पास गये और कहे— भद्रे! तुम्हारी ही कृपा से महर्षि वसिष्ठ ने मेरे पूर्वजन्म के कृत्यों का वर्णन किया है मेरा मन प्रसन्न हो गया और मोह नष्ट हो गया। मैं भगवान् मधुसूदन की

आकर्ण्य वाक्यं परमं महत्तत्सुमङ्गलं मङ्गलदायकं हि ।
हर्षेण युक्ता तमुवाच कान्तं पुण्योऽसि विप्रेण विबोधितोऽसि ॥४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रेसुमनोपाख्यानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

सोमशर्ममहाप्राज्ञः सुमनया सह सत्तमः। कपिलासङ्गमे पुण्ये रेवातीरे सुपुण्यदे ॥१॥
स्नात्वा तत्र स मेधावी तर्पयित्वा सुरान्पितॄन् ।
तपस्तेपे सुशान्तात्मा जपन्नारायणं शिवम् ॥२॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण ध्यानयुक्तो महामनाः। तस्यैव देवदेवस्य वासुदेवस्य सुव्रतः ॥३॥
आसने शयने याने स्वप्ने पश्यति केशवम्। सदैव निश्चलो भूत्वा कामक्रोधविवर्जितः ॥४॥
सा च साध्वी महाभागा पतिव्रतपरायणा। सुमना कान्तमेवापि शुश्रूषति तपोऽन्वितम् ॥५॥
ध्यायमानस्य तस्यापि विघ्नैःसन्दर्शितं भयम् ।
सर्पा विषोल्बणाःकृष्णास्तत्र यान्ति महात्मनः ॥६॥
पार्श्वे ते तप्यमानस्य तस्य ते सोमशर्मणः। सिंहव्याघ्रगजा दृष्टा भयमेवं प्रचक्रिरे ॥७॥
वेताला राक्षसा भूताःकृष्माण्डा प्रेतभैरवाः। भयं विदर्शयन्त्येते दारुणं प्राणनाशम् ॥८॥

अराधना करके मोक्ष रूपी परम पद को प्राप्त करूँगा ॥३९-४१॥ उन मङ्गलदायक मङ्गलमय वाक्यों को सुनकर सुमना ने अपने पति से प्रसन्नतापूर्वक कहा आप महर्षि के द्वारा उपदिष्ट होकर पवित्र हो गये हैं ॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्यान के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

सुमना के साथ सोमशर्मा का रेवा नदी के तट पर कपिलासंगम तीर्थ में तपस्या करना

सूतजी ने कहा— महाप्राज्ञ सोमशर्मा सुमना के साथ रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर स्थित पवित्र कपिलासङ्गम तीर्थ में जाकर स्नान करके, पितरों का तपर्ण करके, शान्त मन से मङ्गमय भगवान् नारायण का जप करते हुए तपस्या करने लगे ॥१-२॥ महामना सुन्दर व्रत वाले वे देवाराध्य भगवान् वासुदेव का ध्यान करते हुए द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) का जप करते हुए आसन पर, शय्या पर, यान में, स्वप्न में भगवान् केशव का ही दर्शन करते थे । वे काम तथा क्रोध से रहित होकर निश्चल रहते थे ॥३-४॥ पतिव्रता साध्वी सुमना भी तपस्या करती हुयी अपने पति की सेवा करती थी ॥५॥ ध्यान करते हुए सोमशर्मा को भी विघ्नों ने भय प्रदर्शित किया । भयङ्कर विषैले सर्प जैसे उनके पास आ रहे हों ॥६॥ तपस्या करते हुए सोमशर्मा के सन्निकट में भयभीत करने वाले सिंह, व्याघ्र और हाथी दिखायी पड़े ॥७॥

नानाविधा महाभीमाः सिंहास्तत्र समागताः। दंष्ट्राकरालवक्त्राश्च जगर्जुश्चाति भैरवम्॥९॥
विष्णोर्ध्यानात्सधर्मात्मा न चचाल महामतिः। महाविघ्नैःसुसंरूढैश्चालितो मुनिपुङ्गवः॥१०॥
एवं न चलते ध्यानात्सोमशर्मा द्विजोत्तमः। झञ्झावातैश्चशीतेनमहावृष्ट्यासुपीडितः ॥११॥
भम्भारावमहाभीमः सिंहस्तत्र समागतः। तं दृष्ट्वा भयवित्रस्तःसस्मार नृहरिं द्विजः ॥१२॥
इन्द्रनीलप्रतीकाशं पीतवस्त्रं महौजसम्। शङ्खचक्रधरं देवं गदापङ्कजधारिणम्॥१३॥
महामौक्तिकहारेण इन्दुवर्णानुकारिणा। कौस्तुभेनापि रत्नेन द्योतमानं जनार्दनम्॥१४॥
श्रीवत्साङ्केन दिव्येन हृदयं यस्य राजते। सर्वाभरणशोभाङ्गं शतपत्रनिभेक्षणम्॥१५॥
सुस्मितास्यं सुप्रसन्नं रत्नदामाभिशोभितम्। भ्राजमा हृषीकेशं ध्यानं तेन कृतं ध्रुवम्॥१६॥
त्वमेव शरणं कृष्ण शरणागतवत्सल। नमोऽस्तु देवदेवाय किं मे भयं करिष्यति ॥१७॥
यस्योदरे त्रयोलोकाःसप्तचान्ये महात्मनः। शरणं तं प्रपन्नोऽस्मि क्वास्तेभयं ममैव हि ॥१८॥
यस्माद्भयाःप्रवर्तन्ते कृत्यादिकमहाबलाः। सर्वभयप्रहर्तारं तमस्मि शरणं गतः ॥१९॥
पातकानां तु सर्वेषां दानवानां महाभयम्। रक्षको विष्णुभक्तानां तमस्मि शरणं गतः ॥२०॥
वृन्दारकाणां सर्वेषां दानवानां महात्मनाम्। यो गतिःकृष्णभक्तानां तमस्मिशरणंगतः॥२१॥
अभयो भयनाशाय पापनाशाय ज्ञानवान्। एकश्च ब्रह्मरूपेण तमस्मि शरणं गतः ॥२२॥
व्याधीनां नाशकायैव यऔषधस्वरूपवान्। निरामयो निरानन्दस्तमस्मि शरणंगतः ॥२३॥

उनको वेताल, राक्षस, भूत, कुष्माण्ड, भयङ्कर प्रेत ये सभी प्राण नाशक भय को दिखाते थे ॥८॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के भयङ्कर सिंह आये, उनके दाँत भयङ्कर थे और भयङ्कर गर्जना करते थे ॥९॥ भयङ्कर महाविघ्नों से महाज्ञानी मुनिश्रेष्ठ वे भयभीत (विचलित) नहीं हुए क्योंकि वे भगवान् विष्णु का ध्यान करते थे ॥१०॥ ठण्डे झञ्झावात तथा महावृष्टि के द्वारा अत्यन्त पीड़ित किए जाने पर भी वे ध्यान से विचलित नहीं हुए ॥११॥ वहाँ पर गरजता हुआ भयङ्कर सिंह आया। उसको देखकर सोमशर्मा भयभीत हो गये और उन्होंने भगवान् नरसिंह का स्मरण किया ॥१२॥ उन्होंने इन्द्र नीलमणि के समान सुन्दर, पीताम्बरधारी, महाओस्वी, शंङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाले, महाभौक्तिक हार तथा चन्द्रमा के समान वर्ण वाले कौस्तुभमणि के द्वारा प्रकाशमान, जनार्दन (दुष्टों का वध करने वाले) जिनका हृदय श्रीवत्साङ्कचिह्न से सुशोभित था, सभी अलङ्कारों से सुशोभित अङ्गों वाले, कमल के समान नेत्र वाले, मन्द मुस्कान से सुशोभित तथा प्रसन्न मुख वाले, रत्न निर्मित कटि सूत्र से सुशोभित, देदीप्यमान् भगवान् हृषीकेश का ध्यान किया ॥१३-१६॥ वे कहने लगे— हे कृष्ण ! आप रक्षक हैं, हे शरणागतवत्सल, देवाराध्य भगवन् ! यह भय मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?॥१७॥ जिनके उदर में त्रिलोकी तथा सातो लोक (भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक) विद्यमान हैं मैं उनकी शरणागत हूँ, मुझे कहाँ से भय होगा ?॥१८॥ जो कृत्या आदि महाबलवान् समस्त भयों का निर्माण करते हैं, सभी भयों का विनाश करने वाले उन भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥१९॥ जो समस्त पातकों तथा दानवों के भय का विनाश करते हैं और विष्णु भक्तों के रक्षक हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥२०॥ जो सभी देवताओं और दानव महात्माओं तथा कृष्णभक्तों के भय का तथा पापों का नाश करते हैं, अभय तथा ज्ञानवान् हैं मैं उनके शरण में गया हूँ ॥२१-२२॥ जो औषध रूप से समस्त व्याधियों का नाश करते हैं। जो निरामय और

अचलश्चालयेल्लोकानपापो ज्ञानमेव च। तमस्मि शरणं प्राप्तो भयं किं मे करिष्यति॥२४॥
साधूनां चापि सर्वेषां पालको योह्यनामयः। पातिविश्वं च विश्वात्मा तमस्मि शरणंगतः॥२५॥
यो मे मृगेन्द्ररूपेण भयंदर्शयतेऽग्रतः। तमहं शरणं प्राप्तो नरसिंहं भयापहम्॥२६॥
मदमत्तो महाकायो वनहस्ती समागतः। गजलीलागतिं देवं शरणागतवत्सलम्॥२७॥
गजास्यं ज्ञानसम्पन्नं सपाशाङ्कुशधारिणम्। कालास्यं गजतुण्डं च शरणं सुगतोऽस्म्यहम्॥२८॥
हिरण्याक्षप्रहर्तारं वाराहं शरणंगतः। वामनं तं प्रपन्नोऽस्मि शरणागतवत्सलम्॥२९॥

ह्रस्वास्तु वामनाःकुब्जाप्रेताःकृष्माण्डकादयः।
मृत्युरूपधराःसर्वे दर्शयन्ति भयं मम॥३०॥

अमृतं तं प्रपन्नोऽस्मि किं भयं मे करिष्यति ॥३१॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मदो ब्रह्मा ब्रह्मज्ञानमयो हरिः। शरणं तं प्रपन्नोऽस्मि भयं किं मे करिष्यति॥३२॥

अभयो यो हि जगतो भीतिघ्नो भीतिदायकः।
भयरूपं प्रपन्नोऽस्मि भयं किं मे करिष्यति॥३३॥

तारकःसर्वलोकानां नाशकः सर्वपापिनाम्। तमहं शरणंप्राप्तो धर्मरूपं जनार्दनम्॥३४॥
सुरारणं यो हि रणे वपुर्द्धारयतेऽद्भुतम्। शरणं तस्य गन्तास्मि सदागतिरयं मम॥३५॥
झञ्झावातो महाचण्डो वपुर्दूयति मे भृशम्। शरणं तं प्रपन्नोऽस्मि सदागतिरयं मम॥३६॥
अतिशीतं चातिवर्षा आतपस्तापदायकः। एषां रूपेण यो देवस्तस्याहं शरणंगतः॥३७॥

निरानन्द हैं, मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥२३॥ जो अचल रहकर लोकों को कँपा देते हैं, पाप रहित तथा ज्ञान स्वरूप हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ भय मेरा क्या कर पायेगा ?॥२४॥ जो निष्पाप भगवान् सभी सज्जनों का पालन करते हैं। जो विश्व की आत्मा तथा विश्व के रक्षक हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥२५॥ जो मेरे सामने मृगेन्द्र रूप से भय दिखा रहे हैं, मैं सभी भयों को दूर करने वाले भगवान् नरसिंह की शरणागति करता हूँ ॥२६॥ मदमत्त तथा विशालकाय वन हस्ती रूप से आये हैं उन गजलीला करने वाले शरणागत वत्सल भगवान् के शरण में मैं हूँ ॥२७॥ हाथी के मुख वाले, ज्ञानवान् पाश तथा अङ्कुश को धारण करने वाले, काले मुख वाले, गज के सूंड वाले भगवान् की शरण में मैं हूँ ॥२८॥ हिरण्याक्ष का वध करने वाले वाराह भगवान् की शरण में मैं जाता हूँ। मैं शरणागत वत्सल वामन भगवान् की शरणागति करता हूँ। छोटे, वामन तथा कुब्ज आकार वाले प्रेत तथा कुष्माण्ड इत्यादि ये सभी मृत्यु का रूप धारण करके मुझे भयभीत करते हैं ॥२९-३०॥ मैं अमृत स्वरूप श्रीभगवान् की शरणागति करता हूँ, भय मेरा क्या कर पायेगा ?॥३१॥ जो ब्रह्मण्य, ब्रह्म को प्रदान करने वाले, ब्रह्मा स्वरूप तथा ब्रह्मज्ञानमय हैं मैं उन श्रीहरि की शरणागति करता हूँ, भय मेरा क्या कर पायेगा ?॥३२॥ जो अभय स्वरूप, जगत् के भय को विनष्ट करने वाले, तथा भय को उत्पन्न करने वाले एवं भय स्वरूप हैं, मैं उनके शरण में हूँ। भय मेरा क्या करेगा ?॥३३॥ जो समस्त लोकों का उद्धार करने वाले तथा सभी पापियों का नाश करने वाले हैं, मैं उन धर्मरूपी भगवान् जनार्दन के शरण में हूँ ॥३४॥ जो रण में देवताओं की रक्षा करने वाले अद्भुत शरीर को धारण करते हैं, मैं उनकी ही शरण में जा रहा हूँ, वे ही मेरे सर्वदा आश्रय हैं ॥३५॥ अत्यन्त भयङ्कर झंझावात मुझको बहुत दुख देता है, मै उन वायु स्वरूप भगवान् की शरणागति करता हूँ ॥३६॥

कालरूपा अमीप्राप्ता भयदा मम चालकाः। एषांशरणं प्रपन्नोऽस्मि हरेःस्वरूपिणांसदा ॥३८॥

यं सर्वदेवं परमेश्वरं हि निष्केवलं ज्ञानमयं प्रदीपम् ।

वदन्ति नारायणमादिसिद्धं सिद्धेश्वरं तं शरणंप्रपद्ये ॥३९॥

इति ध्यायन्स्तुवन्नित्यं केशवं क्लेशनाशनम्। भक्त्या तेन समानीतस्तदात्महृदये हरिः ॥४०॥

उद्यमं विक्रमं तस्य सदृष्ट्वा सोमशर्मणः। आविर्भूय हृषीकेशस्तमुवाच प्रहृष्टवान् ॥४१॥

सोमशर्मन्महाप्राज्ञ श्रूयतां भार्यया सह। वासुदेवोऽस्मि विप्रेन्द्र वरं याचय सुव्रत ॥४२॥

तेनोक्तो हि सविप्रेन्द्र उन्मील्य नयनद्वयम्। दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं घनश्यामं महोदयम् ॥४३॥

सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वायुधसमन्वितम्। दिव्यलक्षणसम्पन्नं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥४४॥

पीतेन वाससायुक्तं राजमानं सुरेश्वरम्। वैनतेयसमारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥४५॥

ब्रह्मादीनां सुधातारं जगतोऽस्य महायशाः। विश्वस्यास्य सदातीतं रूपातीतं जगद्गुरुम् ॥४६॥

हर्षेण महताविष्टो दण्डवत्प्रणिपत्य तम्। श्रियायुक्तं भासमानं सूर्यकोटि समप्रभम् ॥४७॥

बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा तया सुमनयासह। जयजयेत्युवाचैनं जयमाधव मानद ॥४८॥

जय योगीश योगीन्द्र जय यज्ञपते हरे। यज्ञघ्न जय यज्ञेश जयशाश्वत सर्वग ॥४९॥

जयसर्वेश्वरानन्त यज्ञरूप नमोऽस्तु ते। जय ज्ञानवतांश्रेष्ठ जयत्वं ज्ञाननायक ॥५०॥

जय सर्वद सर्वज्ञ जयत्वं सर्वभावन। जय जीवस्वरूपेश महाजीव नमोऽस्तु ते ॥५१॥

अत्यन्त ठंढी, अत्यन्त वर्षा और सन्तप्त करने वाली धूप इस तरह के जो देवता हैं, मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥३७॥ काल स्वरूप तथा भयभीत करने वाले जो ये सभी भय प्राप्त हैं, श्रीहरि स्वरूपी इन सबों की मैं शरण में हूँ ॥३८॥ जिनको शास्त्र; सर्वदेव स्वरूप परमेश्वर, एकमात्र ज्ञान स्वरूप आदिदेव नारायण तथा सिद्धेश्वर बतलाते हैं, मैं उनकी शरणागति करता हूँ ॥३९॥ इस तरह से भक्ति पूर्वक हृदय अन्तर्यामी रूप में स्थित क्लेशों को विनष्ट करने वाले भगवान् केशव का सदा ध्यान तथा स्तुति और नमस्कार करते हुए उन्होंने अपने हृदय में श्रीहरि को बैठा लिया ॥४०॥ सोमशर्मा के उद्यम और पराक्रम को देखकर श्रीभगवान् ने उनको प्रहृष्ट करते हुए कहा ॥४१॥ हे महाप्राज्ञ ! आप अपनी पत्नी के साथ सुनें । हे विप्रेन्द्र! मैं वासुदेव हूँ । आप वरदान माँगें ॥४२॥ उनके द्वारा कहे जाने पर अपने दोनों नेत्रों को खोलकर महान उदय वाले, मेघ के समान श्याम वर्ण वाले सभी आभरणों से भूषित, सभी आयुधों को धारण किए हुए, दिव्य लक्षण से सम्पन्न, कमल के समान नेत्र वाले, पीताम्बर से सुशोभित, देवताओं के स्वामी, गरुड़ पर बैठे हुए तथा शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किए हुए, ब्रह्मा आदि का पालन करने वाले, महायश स्वरूप इस सम्पूर्ण जगत् से विलक्षण, रूप रहित करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले तथा लक्ष्मीजी के साथ विद्यमान जगद्गुरु श्रीहरि को देखकर, अत्यन्त हर्ष से युक्त दण्डवत् प्रणाम करके ॥४३-४७॥ सुमना के साथ हाथ जोड़कर सोमशर्मा ने कहा— हे सम्मान प्रदान करने वाले माधव ! आपकी जय हो, जय हो॥४८॥ हे योगीश ! आपकी जय हो, हे योगिन्द्र ! आपकी जय हो । यज्ञपते, यज्ञघ्न श्रीहरे ! आपकी जय हो । हे यज्ञेश तथा सदा, सर्वत्र व्यापक भगवन् ! आपकी जय हो ॥४२॥ हे सर्वेश्वर ! अनन्त तथा यज्ञरूप आपको नमस्कार है आपकी जय हो । हे ज्ञाननायक ज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवन् ! आपकी जय हो॥४९-५०॥ हे सबकुछ प्रदान करने वाले ! सर्वज्ञ, सर्वभावन जीव स्वरूप स्वामिन् महाजीव ! आपको

जय प्रज्ञा दप्रज्ञाङ्ग जय प्राणप्रदायक। जयपापघ्न पुण्येश जयपुण्यपते हरे ॥५२॥
जयज्ञानस्वरूपेश ज्ञानगम्याय ते नमः। जयपद्मपलाशाक्ष पद्मनाभाय ते नमः ॥५३॥
जयगोविन्दगोपाल जयशङ्खधरामल। जयचक्रधराव्यक्त व्यक्तरूपाय ते नमः ॥५४॥
जयविक्रमशोभाङ्ग जयविक्रमनायक। जयलक्ष्मीविलासाङ्ग नमो वेदमयाय ते ॥५५॥
जयविक्रमशोभाङ्ग जयउद्यमदायक। जयउद्यमकालाय उद्यमाय नमोनमः ॥५६॥
जयउद्यमशक्ताय उद्यमत्रयधारक। युद्धोद्यमप्रवृत्ताय तस्मै धर्माय ते नमः ॥५७॥
नमोहिरण्यरेतस्क तस्मै ते जायते नमः। अतितेजःस्वरूपाय सर्वतेजोमयाय च ॥५८॥
दैत्यतेजो विनाशाय पापतेजोहराय च। गोब्राह्मणहितार्थाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥५९॥
नमोऽस्तु हुतभोक्त्रे च नमोहव्यवहाय ते। नमःकव्यवहायैव स्वधारूपाय तेनमः ॥६०॥
स्वाहारूपाय यज्ञाय पावनाय नमोनमः। नमस्ते शार्ङ्गहस्ताय हरये पापहारिणे ॥६१॥
सदसच्चोदनायैव नमो विज्ञानशालिने। नमो वेदस्वरूपाय पावनाय नमोनमः ॥६२॥
नमोऽस्तु हरिकेशाय सर्वक्लेशहराय ते। केशवाय परायैव नमस्ते विश्वधारिणे ॥६३॥
नमःकृपाकरायैव नमोहर्षमयाय ते। अनन्ताय नमोनित्यं शुद्धाय क्लेशनाशिने ॥६४॥
आनन्दाय नमोनित्यं दिव्याय दिव्यरूपिणे। रुद्रैर्नमितपादाय विरिञ्चिनमिताय ते ॥६५॥
सुरासुरेन्द्रनमितपादपद्माय तेनमः। नमोनमःपरेशाय अजितायामृतात्मने ॥६६॥

नमस्कार है आपकी जय हो ॥५१॥ हे प्रज्ञा प्रदान करने वाले प्रज्ञाङ्ग स्वरूप, प्राण प्रदान करने वाले, पापों को विनष्ट करने वाले, हे पुण्येश ! पुण्यों के स्वामिन् श्रीहरे ! आपकी जय हो ॥५२॥ हे ज्ञानस्वरूप ईश, ज्ञानगम्य ! आपको नमस्कार है । हे कमल दल के समान सुन्दर नेत्र वाले पद्मनाभ भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥५३॥ हे गोविन्द, हे गोपाल ! हे स्वच्छ शङ्ख को धारण करने वाले, चक्रधारण करने वाले अव्यक्त तथा व्यक्त स्वरूप भगवन् ! आपकी जय हो ॥५४॥ हे विक्रम की शोभा से युक्त शरीर वाले, विक्रमनायक, लक्ष्मी विलासाङ्ग, वेदमय भगवन् ! आपको नमस्कार है, आपकी जय हो ॥५५॥ हे विक्रम से सुशोभित अङ्ग वाले, उद्यम प्रदान करने वाले, उद्यम काल स्वरूप तथा उद्यम रूप आपको नमस्कार है, आपकी जय हो ॥५६॥ हे उद्यम करने में समर्थ ! तीनों प्रकार के उद्यम के आश्रय रूप, युद्ध के उद्यम मे प्रवृत्त रहने वाले, धर्मस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है, आपकी जय हो ॥५७॥ उन हिरण्येरेतस श्रीभगवान् को नमस्कार है; अत्यन्त तेज: स्वरूप तथा सर्वतेजोमय आपको नमस्कार है । दैत्यों के तेज का विनाश करने वाले तथा पाप के तेज का हरण करने वाले, गौ तथा ब्राह्मणों के कल्याणकारी परमात्मा को नमस्कार है ॥५८-५९॥ होम का भोग करने वाले, हविष्य का वहन करने वाले अग्नि स्वरूप तथा कव्य का वहन करने वाले स्वधा रूप आपको नमस्कार है ॥६०॥ स्वाहा स्वरूप, यज्ञरूप तथा पावन आपको नमस्कार है। शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले पापविनाशक आपको नमस्कार है ॥६१॥ सत् एवं असत् प्रेरणा करने वाले तथा विज्ञानशाली आपको नमस्कार है । वेद स्वरूप पवित्र आपको नमस्कार है ॥६२॥ समस्त क्लेशों का विनाश करने वाले हृषीकेश को नमस्कार है । सर्वश्रेष्ठ विश्व को धारण करने वाले भगवान् केशव को नमस्कार है ॥६३॥ कृपा करने वाले, हर्ष स्वरूप क्लेश नाशक भगवान् अनन्त को नमस्कार है ॥६४॥ आनन्द स्वरूप, दिव्य तथा दिव्य रूप वाले जिनको शिवजी तथा ब्रह्माजी नमस्कार करते हैं ऐसे श्रीभगवान्

क्षीरसागरवासाय नमः पद्माप्रियाय ते। ओंकाराय च शुद्धाय अचलाय नमोनमः ॥६७॥
व्यापिने व्यापकायैव सर्वव्यसनहारिणे। नमो नमो वराहाय महाकूर्माय तेनमः ॥६८॥
नमोघामनरूपाय नृसिंहाय महात्मने। नमोरामाथ दिव्याय सर्वक्षत्रवधाय च ॥६९॥
सर्वज्ञानाय मत्स्याय नमो रामाय तेनमः। नमःकृष्णाय बुद्धाय नमोम्लेच्छप्रणाशिने ॥७०॥
नमःकपिलविप्राय हयग्रीवाय तेनमः। नमो व्यासस्वरूपाय नमःसर्वमयाय ते ॥७१॥
एवंस्तुत्वा हृषीकेशं तमुवाच जनार्दनम्। गुणानां तु परंपारं ब्रह्मावेत्ति न पावन ॥७२॥
नचैव स्तोतुं सर्वज्ञस्तथा रुद्रःसहस्त्रदृक्। वक्तुं को हि समर्थस्तु कीदृशी मे मतिर्विभो ॥७३॥
निर्गुणं सगुणं स्तोत्रं मयैव तव केशव। क्षम शब्दापशब्दं मे तव दासोऽस्मि सुव्रत ॥७४॥
जन्मजन्मनि लोकेश दयां मे कुरु पावन ॥७५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

हरिरुवाच

तपसाऽनेनपुण्येन सत्येनानेन ते द्विज। स्तोत्रेण पावनेनापि तुष्टोस्मि व्रियतांवरः ॥१॥
वरं दद्मि माहभाग यत्ते मनसि वर्तते। यं यमिच्छसि कामं त्वं तं तं ते पूरयाम्यहम् ॥२॥

को नमस्कार है ॥६५॥ देवता तथा असुर जिनके चरणों में नमस्कार करते हैं, ऐसे परेश, जिनको कोई परास्त न कर सके, ऐसे अमृत स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥६६॥ क्षीरसागर में निवास करने वाले लक्ष्मीजी के प्रियतम ओङ्कार स्वरूप, शुद्ध तथा अचल श्रीभगवान् को नमस्कार है। व्यापी, व्यापक सभी व्यसनों का नाश करने वाले वराह तथा कूर्म रूपधारी श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥६७-६८॥ वामन भगवान् को नमस्कार है, महात्मा नृसिंह भगवान् को नमस्कार है। सभी क्षत्रियों का विनाश करने वाले दिव्य राम को नमस्कार है ॥६९॥ कपिल नामक विप्र को नमस्कार है, हयग्रीव भगवान् को नमस्कार है, व्यास स्वरूप तथा सर्वमय श्रीहरि को नमस्कार है ॥७०-७१॥ इस तरह से हृषीकेश भगवान् की स्तुति करके उन्होंने कहा— प्रकृति से पार सर्वोत्कृष्ट भगवान् जनार्दन को कोई भी पूर्ण रूप से नहीं जान पाता है ॥७२॥ आपकी स्तुति करने में सर्वज्ञ, रुद्र, इन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। आपको बतलाने में कौन समर्थ है? हे विभो ! मेरी बुद्धि की कौन सी गणना है ?॥७३॥ मैंने ही आपकी निर्गुण और सगुण रूप से स्तुति की है, अतएव आप मेरे शब्दों तथा अपशब्दों को क्षमा करें। हे सुव्रत ! मैं आपका दास हूँ ॥७४॥ हे पवित्र बनाने वाले भगवन् ! हे लोकों के स्वामिन् आप मेरे ऊपर प्रत्येक जन्मों में दया करें ॥७५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्रसुमनोपाख्यान के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

श्रीहरि द्वारा सोमशर्मा को वंश तारक पुत्र का वरदान

श्रीहरि ने कहा— हे द्विज ! आपकी इस तपस्या, पुण्य तथा सत्य से एवं इस पवित्र स्तोत्र से मैं

सोमशर्मोवाच

प्रथमं देहि मे कृष्ण वरमेकं सुबाञ्छितम्। सुप्रसन्नेन मनसा यद्यस्ति सुदया मयि ॥३॥
जन्मजन्मान्तरं प्राप्य तव भक्तिं करोम्यहम्। दर्शयस्व परं स्थानमचलं मोक्षदायकम् ॥४॥
स्ववंशतारकं पुत्रं दिव्यलक्षणसंयुतम्। विष्णुभक्तिपरं नित्यं मम वंशप्रधारकम् ॥५॥
सर्वज्ञं सर्वदं दान्तं तपस्तेजस्समन्वितम्। देवब्राह्मणलोकानां पालकं पूजकं सदा ॥६॥
देवमित्रं पुण्यभावं दातारं ज्ञानपण्डितम्। देहि मे ईदृशं पुत्रं दारिद्र्यं हर केशव ॥७॥
भवत्वेवं न सन्देहो वरमेनं वृणोम्यहम् ॥८॥

हरिरुवाच

एवमस्तु द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः। मत्प्रसादात्सुपुत्रस्तु तव वंशप्रतारकः ॥९॥
भोक्ष्यसि त्वं वरान्भोगान्दिव्यांश्च मानुषानिह।
समालोक्य परं सौख्य पुत्रसम्भवजं शुभम् ॥१०॥
यावज्जीवसि विप्र त्वंतावद्दुःखं न पश्यसि। दाता भोक्ता गुणग्राही भविष्यसि न संशयः ॥११॥
सुतीर्थे मरणं चापि यास्यसि त्वं परां गतिम्।
एवं वरं हरिर्दत्त्वा सप्रियाय द्विजाय सः ॥१२॥
अन्तर्धानं गतोदेवःस्वप्नवत्परिदृश्यते। तदा सुमनया युक्तः सोमशर्मा द्विजोत्तमः ॥१३॥
सुतीर्थे पावने तस्मिन् रेवातीरे सुपुण्यदे। अमरकण्टके विप्रो दानं पुण्यं करोति सः ॥१४॥
गते बहुतरे काल तस्य वै सोमशर्मणः। कपिलारेवयोः सङ्गे स्नानं कृत्वा स निर्गतः ॥१५॥

सन्तुष्ट हूँ आप वरदान माँगे ॥१॥ हे महाभाग ! आपके मन में जो हो वह वरदान मैं देता हूँ। आपकी जो-जो कामना हो, उसे मैं पूर्ण करता हूँ। **सोमशर्मा ने कहा—** हे कृष्ण ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा हो तो सर्वप्रथम मैं एक वरदान माँगता हूँ उसे आप प्रसन्न मन से प्रदान करें ॥३॥ मैं अपने प्रत्येक जन्मों में आपकी भक्ति करूँ। आप मोक्ष प्रदान करने वाले अपने अचल धाम का मुझे दर्शन करायें ॥४॥ हे केशव! मेरे दारिद्रय को विनष्ट कर दें और ऐसे सुपुत्र को प्रदान करें जो वंश का उद्धार करने वाला, दिव्य लक्षण से समपन्न, भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाला, मेरे वंश को चलाने वाला, सर्वज्ञ, सबकुछ देने वाला, दान्तगुण सम्पन्न तपस्या के तेज से युक्त, देवताओं और ब्राह्मणों का पालन करने वाला और उनकी पूजा करने वाला, देवताओं के मित्र, पवित्र भाव वाला, दान करने वाला तथा ज्ञानी पण्डित हो। आप इसी प्रकार का पुत्र मुझे दें। मैं यही आपसे वरदान माँगता हूँ ॥५-८॥ **श्रीहरि ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा इसमें कोई संशय नहीं है। मेरी कृपा से आपका पुत्र वंश का उद्धार करने वाला होगा ॥९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आप मनुष्योचित दिव्य श्रेष्ठ भोगों का भोग करेंगे। आप पुत्र जन्म जन्य श्रेष्ठ सौख्य का अनुभव करके तब तक जीवित रहेंगे। जब तक आपको कोई दुःख नहीं होगा। आप दाता, भोक्ता एवं गुणग्राही ही होंगे ॥१०-११॥ आपकी मृत्यु सुन्दर तीर्थ में होगी और आप मुक्ति प्राप्त करेंगे। इस तरह से अपने प्रिय ब्राह्मण को वर प्रदान करके श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। वह सोमशर्मा को स्वप्न की तरह प्रतीत हुआ। उसके बाद द्विजश्रेष्ठ सुमना के साथ सुन्दर रेवा के तट पर पवित्र अमरकण्टक तीर्थ में दान और पुण्य किए। इस तरह से सोमशर्मा का बहुत अधिक समय बीत गया। वे कपिला और रेवा नदी के सङ्गम

दृष्टवान्पुरतो विप्रः श्वेतमेकं हि कुञ्जरम्। सुप्रभं सुन्दरं दिव्यं सुमदं चारुलक्षणम् ॥१६॥
नानाभरणशोभाढ्यं बहुलक्ष्म्या समन्वितम् । सिन्दूरैः कुङ्कुमैस्तस्य कुम्भस्थलेविराजितम् ॥१७॥
कर्णनीलोत्पलयुतं पताकादण्डसंयुतम्। नागोपरिस्थितो दिव्यः पुरुषो दृढसुप्रभः ॥१८॥
दिव्यलक्षणसम्पन्नः सर्वाभरणभूषितः । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥१९॥
सुसौम्यं सोमवत्पूर्णच्छत्रचामरसंयुतम् । नागारूढं प्रयान्तं तं पुनःपश्यति सत्तमः ॥२०॥
सिद्धचारणगन्धर्वैःस्तूयमानं सुमङ्गलम्। सगजं सुन्दरं दृष्ट्वा पुरुषं दिव्यलक्षणम् ॥२१॥
व्यतर्कयत्सोमशर्मा विस्मयाविष्टमानसः। कोऽयं प्रयाति दिव्याङ्गःपन्थानं प्राप्य सुव्रत ॥२२॥
एवंचिन्तयतस्तस्य यावद्गृहं सम्प्राप्तवान्। प्रविशन्तं गृहद्वारं देवरूपं मनोहरम् ॥२३॥
हर्षेण महता विष्टःसोमशर्मा द्विजोत्तमः । स्वगृहं प्रतिधर्मात्मा त्वरमाणःप्रयाति च ॥२४॥
गृहद्वारं गतो यावत्तावत्तं तु न पश्यति। पतितान्येव पुष्पाणि सौहृद्यानि महामतिः ॥२५॥
दिव्यानि वासयुक्तानि प्राङ्गणे द्विजसत्तमः । चन्दनैःकुङ्कुमैःपुण्यैःसुगन्धैस्तु विलेपितम् ॥२६॥
स्वकीयंप्राङ्गणें दृष्ट्वा दूर्वाक्षतसमन्वितम् । स एवं विस्मयाविष्टश्चिन्तयानः पुनः पुनः ॥२७॥
ददर्श सुमनां प्राज्ञो दिव्यमङ्गलसम्पदम् ॥२८॥

सोमशर्मोवाच

केन दत्तानि दिव्यानि एतान्याभरणानि च। शृङ्गारं रूपसौभाग्यं वस्त्रालङ्कारभूषणम् ॥२९॥
तन्मे त्वं कारणं भद्रे कथयस्वाविशङ्किता। एवं सम्भाष्य तां भार्यां विरराम द्विजोत्तमः ॥३०॥

पर स्नान करके निकले ॥१२-१५॥ उसके बाद उन्होंने अपने सामने एक श्वेत हाथी हो देखा । वह हाथी कान्ति युक्त, सुन्दर दिव्य, मद से युक्त तथा सुन्दर लक्षणों से युक्त था ॥१६॥ वह अनेक अलङ्कारों से सुशोभित और अत्यधिक शोभा से युक्त था । उसके कुम्भस्थल पर सिन्दूर और कुंकुम लगा हुआ था॥१७॥ उसके कान में नीलकमल लगा था । वह हाथी पताका और दण्ड से युक्त था । उस हाथी पर सुन्दर कान्ति से युक्त कोई दिव्य पुरुष बैठा था ॥१८॥ वह दिव्य लक्षणों से युक्त था, सभी आभरणों से भूषित दिव्य माला धारण किए हुए तथा दिव्य चन्दन लगाया था ॥१९॥ अत्यन्त सौम्य पूर्ण चन्द्रमा के समान छत्र एवं चमर से युक्त तथा हाथी पर चढ़कर जाते हुए सोमशर्मा ने फिर देखा ॥२०॥ सिद्ध, चारण तथा गन्धर्व उसका मङ्गलगान कर रहे थे । दिव्य लक्षण से युक्त हाथी के साथ उस सुन्दर पुरुष को देखकर ॥२१॥ आश्चर्य युक्त मन वाले सोमशर्मा ने सोचा यह कौन सुव्रत रास्ते में दिव्य अङ्गों वाला जा रहा है ?॥२२॥ इस तरह से विचार करते हुए उनका घर आ गया । देवता के समान मनोहर उसके घर के दरवाजे में प्रवेश करते हुए उसे देखकर अत्यन्त हर्ष के साथ द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा अपने घर की ओर शीघ्र प्रस्थान किए ॥२३-२४॥ जब वे अपने घर के द्वार पर गये तो उसे नहीं देखे । वे महामति गिरे हुए सुन्दर सुगन्धित दिव्य पुष्पों को आङ्गन में देखा । चन्दन, कुंकुम तथा सुगन्ध से लिपे हुए अपने दूर्वा, अक्षत से युक्त आङ्गन को देखकर आश्चर्यचकित होकर बार-बार विचार करते हुए वे दिव्य मङ्गल से सम्पन्न सुमना को देखे ॥२५-२८॥ **सोमशर्मा ने कहा—** हे भद्रे ! तुम सत्य बतलाओ कि इन दिव्य आभरणों शृङ्गार के साधनों, रूप सौभाग्य वस्त्रालङ्कार तथा भूषणों को तुम्हें किसने दिया है । इस तरह से अपनी उस पत्नी को कहकर वे द्विजश्रेष्ठ चुप हो गये ॥२९-३०॥ **सुमना ने कहा—** हे कान्त ! सुनें कोई श्रेष्ठ देवता आये थे।

सुमनोवाच

श्रृणुकान्त समायात:कश्चिद्देववरोत्तम:। श्वेतनागसमारूढो दिव्याभरणभूषित: ॥३१॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो दिव्याश्चर्यसमन्वित: । न जाने को हि देवोऽसौ विप्र गन्धर्वसेवित: ॥३२॥
स्तूयमान:समायातो देवगन्धर्वचारणै: । योषित: पुण्यरूपाढ्या रूपश्रृङ्गारसंयुता ॥३३॥
सर्वाभरणशोभाढ्या: सर्वा: पूर्णमनोरथा: । ताभि:सह समक्षं मे पुरुषेण महात्मना ॥३४॥
चतुष्कं पूरितंरत्नै:सर्वशोभासमन्वितम् । तत्राहमासनेपुण्ये स्थापिता स्त्रीगणै:किल ॥३५॥
वस्त्रालङ्कारभूषां मे ददुस्ते सर्वएव हि । वेदमङ्गलगीतैस्तु शास्त्रगीतैश्च पुण्यदै: ॥३६॥
अभिषिक्तास्मितै:सर्वैरन्तर्धानं पुनर्गता: । मामेवं परित:सर्वे पुनरूचुर्द्विजोत्तम ॥३७॥
तव गेहे वयं सर्वे वसिष्याम: सदैव हि। शुचिर्भव सुकल्याणि भर्त्रा सार्द्धं सदैव हि ॥३८॥
एवमुक्तवा गता: सर्वे एवं दृष्टं मयैव हि। तया यत्कथितं वृत्तं समाकर्ण्य महामति: ॥३९॥
पुनश्चिन्तां प्रपन्नोऽसौ किमिदं देवनिर्मितम्। विचिन्तयित्वाऽथ तदा सोमशर्मा महामति: ॥४०॥
ब्रह्मकर्मणि संयुक्त:साधर्म्यं धर्ममुत्तमम्। तस्माद्गर्भं महाभागा दधार व्रतशालिनी ॥४१॥
तेन गर्भेण सा देवी अधिकं शुशुभे तदा। सन्दीप्तपुत्रसंयुक्ततेजोज्वालासमन्विता ॥४२॥
सा हि जज्ञे च तपसा तनयं देवसन्निभम्। अन्तरिक्षे ततो नेदुर्देवदुन्दुभयस्तदा ॥४३॥
शङ्खान्दध्मुर्महादेवा गन्धर्वा ललितं जगु: । अप्सरसस्तथा सर्वा ननृतुस्तास्तदा किल ॥४४॥
अथ ब्रह्मासुरै:सार्द्धं समायातो द्विजोत्तमम् । चकार नाम तस्यैव सुव्रतेति समाहित: ॥४५॥
नाम कृत्वा ततो देवा जग्मु:सर्वे महौजस:। गतेषु तेषु देवेषु सोमशर्मा सुतस्य च ॥४६॥

वे उजले हाथी पर चढ़े थे तथा दिव्य आभरणों से अलंकृत थे ॥३१॥ उनके अङ्गों में दिव्य चन्दन लगा था, वे दिव्य आश्चर्य से युक्त थे । न जाने वे कौन से देवता थे ? हे विप्र ! गन्धर्व उनकी सेवा कर रहे थे । जब वे आये उस समय देवता, गन्धर्व और चारणगण उनकी स्तुति कर रहे थे रूप तथा शृङ्गार से युक्त स्त्रियाँ उनके साथ थीं ॥३२-३३॥ वे सभी आभरणों से सुशोभित तथा पूर्ण मनोरथ वाली थीं । उन सबों के साथ उन महात्मा पुरुष ने सभी प्रकार की शोभा से युक्त चौक को बनाकर उसे रत्नों से भर दिया। स्त्रियों ने मुझे सुन्दर आसन पर बैठा दिया ॥३४-३५॥ वेद के मङ्गलमय गीतों तथा शास्त्रगीतों से उन सबों ने मुझे सारा वस्त्रालङ्कार प्रदान किया ॥३६॥ उन सबों ने मुझे अभिषिक्त किया और उसके बाद वे सब अन्तर्धान हो गयीं । उन सबों ने मेरे चारों ओर होकर कहा कि हम सब तुम्हारे घर में सदा निवास करेंगे। हे कल्याणि ! तुम अपने पति के साथ सदा पवित्र रहो ॥३७-३८॥ इस तरह से कहकर वे सब चले गये, ऐसा मैंने ही देखा । सुमना ने जो वृत्तान्त बतलाया उसको सुनकर महामति सोमशर्मा ॥३९॥ सोचने लगे कि देवताओं ने यह क्या किया है ? उसके बाद विचार करके सोमशर्मा ॥४०॥ ब्रह्मकर्म में लगे हुए उत्तम साधर्म्य में संयुक्त हुए उसके कारण व्रत करने वाली सुमना ने गर्भ धारण किया ॥४१॥ उस समय उस गर्भ से तथा देदीप्यमान पुत्र से युक्त तेज की ज्वाला से युक्त वह अधिक सुशोभित हुयी ॥४२॥ उसने तपस्या के द्वारा देवता के समान पुत्र को जन्म दिया । उस समय देवताओं ने अन्तरिक्ष में दुन्दुभि बजायी॥४३॥ बड़े-बड़े देवताओं ने शङ्ख बजाया गन्धर्वों ने ललित गान किया । उस समय अप्सराओं ने भी सुन्दर नृत्य किया ॥४४॥ उसके बाद ब्रह्माजी देवताओं के साथ उस द्विजोत्तम के पास आये और समाहित होकर उस बालक का नाम उन्होने सुव्रत रखा ॥४५॥ नामकरण करके वे सभी महाओजस्वी देवता चले गये । उन सबों के चले जाने पर सोमशर्मा ने अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार किया । देवताओं के द्वारा पुत्र के उत्पन्न

जातकर्मादिकं कर्म चकार द्विजसत्तम। जाते पुत्रे महाभागे सुव्रते देवनिर्मिते॥४७॥
तस्य गेहे महालक्ष्मीर्धनधान्यसमाकुला। गजाश्वमहिषीगावः काञ्चनं रत्नमेव च॥४८॥
यथा कुबेरभवनं शुशुभे धनसञ्चयैः। तत्सोमशर्मणो गेहं तथैव परिराजते॥४९॥
ध्यानपुण्यादिकं कर्म चकार द्विजसत्तमः। तीर्थयात्रां गतो विप्रो नानापुण्यसमाकुलः॥५०॥
अन्यानि यानि पुण्यानि दानानि द्विजसत्तमः। चकार तत्र मेधावी ज्ञानपुण्यसमन्वितः॥५१॥
एवं साधयते धर्मं पालयेच्च पुनःपुनः। पुत्रस्य जातकर्मादि कर्माणि द्विजसत्तमः॥५२॥
विवाहं कारयामास हर्षेण महता किल। पुत्रस्य पुत्राःसञ्जाताःसगुणा लक्षणान्विताः॥५३॥
सत्यधर्म तपोपेता दानधर्मरताः सदा। स तेषां पुण्यकर्माणि सोमशर्मा चकार ह॥५४॥
पौत्राणां तु महाभागस्तेषां सुखेन मोदते। सर्वंसौख्यं सबुभुजे तेजसा राजराजवत्॥५५॥
पञ्चविंशाब्दिको यद्वत्तत्कायस्तु तस्य हि। सूर्यतेजःप्रतीकाशःसोमशर्मा महामतिः॥५६॥
सा चापि शुशुभे देवी सुमना पुण्यमङ्गलैः। पुत्रपोत्रैर्महाभागा दानव्रतैश्च संयमैः॥५७॥
अतिभाति विशालाक्षी पुण्यैःपतिव्रतादिभिः। तारुण्येन समायुक्ता यथाषोडशवर्षिकी॥५८॥
मोदमानौ महात्मानौ दम्पती चारुमङ्गलौ। हर्षेण च समायुक्तौ पुण्यात्मानौ महोदयौ॥५९॥
एवं तयोस्तु वृत्तान्तं पुण्याचारसमन्वितम्। सुव्रतस्य प्रवक्ष्यामि व्रतचर्यां द्विजोत्तमाः॥६०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने सुव्रतोत्पत्तिर्नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

हो जाने पर ॥४६-४७॥ उनका घर धन-धान्य से परिपूर्ण महालक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, भैंस, गौ, सुवर्ण तथा रत्नों के द्वारा कुबेर के भवन के समान धन समूह से सुशोभित हुआ। उससे सोमशर्मा का घर कुबेर के घर के समान सुशोभित होता था ॥४८-४९॥ वे द्विजश्रेष्ठ ध्यान तथा पुण्य आदि कर्मों को करते थे। अनेक पुण्य से युक्त वे ब्राह्मण तीर्थ यात्रा में गये। मेधावी तथा ज्ञान एवं पुण्य से युक्त वे द्विजश्रेष्ठ विभिन्न प्रकार के पवित्र दानों को किए ॥५०-५१॥ इस तरह से वे बार-बार धर्म का साधन और पालन करते थे। उन्होंने अपने पुत्र के जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न किया ॥५२॥ फिर उन्होंने अत्यन्त हर्ष के साथ पुत्र का विवाह किया। उनके पुत्र के भी लक्षण और गुणों से युक्त पुत्र उत्पन्न हुए ॥५३॥ वे सब सत्य धर्म तथा तपस्या से युक्त थे। दान धर्म करते थे। सोमशर्मा ने उन पौत्रों के पुण्य कर्मों को किया ॥५४॥ और उन सबों के सुख से वे आनन्दानुभव करते थे। अपने तेज से उन्होंने राजराज के समान सुखों का भोग किया॥५५॥ पच्चीस वर्ष की आयु वाले के समान उनका शरीर था, महाज्ञानी सूर्य के तेज के समान सोमशर्मा का तेज था ॥५६॥ सुमना देवी भी पुत्र, पौत्र, दान, व्रत तथा संयम रूप मङ्गलों से सुशोभित होती थीं ॥५७॥ बड़े-बड़े नेत्रों वाली वे पवित्र पतिव्रत्य आदि से उसी तरह सुशोभित होती थीं जिस तरह सोलह वर्ष की कोई नारी अपने तारुण्य (जवानी) से शोभा पाती है ॥५८॥ वे दोनों पति-पत्नी मनोहर मङ्गलों के द्वारा आनन्दानुभव करते थे। वे दोनों पुण्यात्मा हर्ष से युक्त थे ॥५९॥ उन दोनों का वृत्तान्त और पवित्र आचरण से समन्वित था। हे द्विजोत्तम! अब मैं सुव्रत की व्रतचर्या का वर्णन करूँगा। जैसा कि सुव्रत ने पवित्र भगवान् नारायण की आराधना की ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुमनोपाख्यान का सुव्रत की उत्पत्ति नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

एकदा व्यासदेवोऽसौ ब्रह्माणं जगतःपतिम्। सुव्रताख्यानकं सर्वंप्रपच्छातीवविस्मितः ॥१॥

व्यास उवाच

लोकात्मंल्लोकविन्यास देवदेव महाप्रभो। सुव्रतस्याथचरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

पाराशर्य महाभाग श्रूयतां पुण्यमुत्तमम्। सुव्रतस्य सुविप्रस्य तपश्चर्यासमन्वितम् ॥३॥
सुव्रतोनाम मेधावी बाल्यादपि स चिन्तयन्। गर्भे नारायणं देवं दृष्टवान्पुरुषोत्तमम्॥४॥
स पूर्वकार्माभ्यासेन हरेर्ध्यानं गतस्तदा। शङ्खचक्रधरं देवं पद्मनाभं सुपुण्यदम् ॥५॥
ध्यायते चिन्तयेत्सोहि गीतेज्ञाने प्रपाठने। एवं देवं हरिंध्यायन्सदैव द्विजसत्तमः ॥६॥
क्रीडत्येवं सदाडिभ्भैःसार्द्धं च बालकोत्तमः। बालकानां स्वकं नाम हरेश्चैव महात्मनः ॥७॥

चकार स हि मेधावी पुण्यात्मा पुण्यवत्सलः ।
समाह्वयति वै मित्रं हरेर्नाम्ना महामतिः ॥८॥
भो भो केशव एह्येहि एहि माधव चक्रधृक् ।
क्रीडस्व च मया सार्धं त्वमेव पुरुषोत्तम ॥९॥

सममेवं प्रगन्तव्यमावाभ्यां मधुसूदन। एवमेव समाह्वानं नामभिश्च हरेर्द्विजः ॥१०॥
क्रीडने पठने हास्ये शयने गीतप्रेक्षणे। याने च ह्यासने ध्याने मन्त्रे ज्ञाने सुकर्मसु॥११॥
पश्यत्येवं वदत्येवं जगन्नाथं जनार्दनम्। स ध्यायते तमेकं हि विश्वनाथं महेश्वरम् ॥१२॥

सुव्रत चरित

सूतजी ने कहा— एक बार व्यासजी ने जगत् के स्वामी ब्रह्माजी से अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक सुव्रत चरित के विषय में पूछा ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** हे लोकात्मन् ! तथा लोकों का विन्यास करने वाले महाप्रभो ! मैं आपसे सुव्रत चरित को सुनना चाहता हूँ ॥२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे महर्षि ! पराशर के पुत्र महाभाग व्यासजी ! आप विप्र सुव्रत के पश्चर्यामय चरित को सुनें ॥३॥ मेधावी सुव्रत वाल्यकाल से ही चिन्तन करते थे । उन्होंने गर्भ से ही पुरुषोत्तम भगवान् नारायण का साक्षात्कार किया था ॥४॥ अपने पूर्वकर्म के अभ्यास से ही शङ्ख, चक्रधारी पुण्यकारक पद्मनाभ श्रीभगवान् का वे ध्यान करते थे ॥५॥ वे अपने गीतों, ज्ञानों तथा पढ़ने के समय में ध्यान और चिन्तन करते थे । इस तरह से वे द्विजश्रेष्ठ सदैव श्रीहरि का ध्यान करते थे ॥६॥ वे इसी तरह से सदा बालकों के साथ क्रीड़ा करते थे । अपने बालकों का पुण्यात्मा, पुण्यवत्सल उन्होंने श्रीहरि का ही नाम रखा । वे अपने मित्रों को भी श्रीहरि के नाम से वे कहते थे; हे केशव ! हे माधव ! हे चक्रधर ! हे पुरुषोत्तम ! आओ मेरे साथ खेलो ॥७-८॥ हे मधुसूदन ! हमदोनों को साथ ही चलना चाहिए । इस तरह से वे द्विज श्रीहरि के नामों से ही बुलाते थे ॥९-१०॥ वे पढ़ते समय, क्रीड़ा करते समय, सोते समय, गीत के समय, देखने के समय, सवारी में, आसन पर, ध्यान के समय मन्त्र में, ज्ञान में, सुन्दर कर्म करते समय, इसी तरह भगवान् जनार्दन जगन्नाथ को देखते

तृणे काष्ठे च पाषाणे शुष्के सार्द्रे हि केशवम् ।
पश्यत्येवं स धर्मात्मा गोविन्दं कमलेक्षणम् ॥१३॥
आकाशे भूमिमध्ये तु पर्वतेषु वनेषु च । जले स्थले च पाषाणे जीवेष्वेव महामतिः ॥१४॥
नृसिंह पश्यते विप्रः सुव्रतः सुमनासुतः । बालक्रीडां समासाद्य रमत्येवं दिनेदिने ॥१५॥
गीतैश्च गायते कृष्णं सुरागैर्मधुराक्षरैः । तालैर्लयसमायुक्तैः सुस्वरैर्मूर्च्छनान्वितैः ॥१६॥

सुव्रत उवाच

ध्यायन्ति वेदविदुषः सततं सुरारिं यस्याङ्गमध्ये सकलं हि विश्वम् ।
योगेश्वरं सकलपापविनाशनं च पादं व्रजामि शरणं मधुसूदनस्य ॥१७॥
लोकेषु यो हि सकलेष्वनुवर्ततेऽथो लोकाश्च यत्र सततं निवसन्ति सर्वे ।
दोषैर्विहीनमखिलैः परमेश्वरं तं तस्यैव पादयुगलं सततं नमामि ॥१८॥
नारायणं गुणनिधानमनन्तवीर्यं वेदान्तशुद्धमतयः प्रपठन्ति नित्यम् ।
संसारसागरमनन्तमगाधदुर्गमुत्तारणार्थमखिलं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥
योगीन्द्रमानससरोवरराजहंसं शुद्धंप्रभावमखिलं सततं हि यस्य ।
तस्यैव पादयुगलं विमलंविशालं दीनस्य मेऽसुररिपो कुरु तस्य रक्षाम् ॥२०॥
ध्यायेऽखिलस्य भुवनं स्वपतिं च देवं दुःखान्धकारदलनार्थमिहैव चन्द्रम् ।
लोकस्य पालनकृते परिणीतधर्मं सत्यान्वितं सकललोकगुरुं सुरेशम् ॥२१॥
गायाम्यहं सुरसगीतकतालमानैः श्रीरङ्गमेकमनिशं भुवनस्य देवम् ।
अज्ञाननाशकमलं च दिनेशतुल्यमानन्दकन्दमखिलं महिमासमेतम् ॥२२॥

और कहते थे । वे केवल विश्व के स्वामी महेश्वर का ही ध्यान करते थे ॥११-१२॥ वे धर्मात्मा तृण, काष्ठ, पत्थर, शुष्क तथा आर्द्र पदार्थों में भी कमल नयन भगवान् गोविन्द का ही दर्शन करते थे ॥१३॥ आकाश में, पृथिवी पर, पर्वतों पर, वन में, जल में, स्थल पर, पाषाण में तथा जीवों में सुमना के पुत्र विप्र सुव्रत भगवान् नरसिंह को ही देखते थे । इस तरह बालक्रीड़ा करते हुए प्रतिदिन आनन्दानुभव करते थे॥१४-१५॥ वे ताल, लय से युक्त सुन्दर स्वर तथा मूर्छना से युक्त सुन्दर राग से गीतों में श्रीहरि का ही गायन करते थे ॥१६॥ **सुव्रत ने कहा—** वेदज्ञ, विद्वान् उन्हीं भगवान् मुरारी का ही वे ध्यान करते हैं जिनके शरीर में सारा विश्व विद्यमान है । मैं योगेश्वर, सभी पापों का विनाश करने वाले, भगवान् मधुसूदन के चरणों की शरणागति करता हूँ ॥१७॥ जो सम्पूर्ण लोकों में सदैव विद्यमान रहते हैं और जिनमें सारे लोक निवास करते हैं । जो समस्त दोषों से रहित हैं मैं सदा उन्हीं देव के दोनों चरणों में नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ वेदान्ताध्ययन के कारण जिनकी मति शुद्ध हो गयी है, वे विद्वान्, अनन्त तथा अगाध संसार सागर को पार करने के लिए गुणों के सागर, अनन्त पराक्रम सम्पन्न भगवान् नारायण का पाठ करते हैं, मैं उनकी ही शरणागति करता हूँ ॥१९॥ जो योगीन्द्रों के मन रूपी मानसरोवर के राजहंस हैं, जिनका ही सारा जगत् शुद्ध प्रभाव है, उनके ही विमल तथा विशाल पादयुगल हैं । हे असुरों के शत्रु भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें ॥२०॥ लोक का पालन करने के लिए जिन्होंने धर्म का प्रणयन किया, जो सत्य से युक्त सम्पूर्ण जगत् के पिता, देवताओं के स्वामी हैं । मैं भुवनों के देवता केवल श्रीरङ्गनाथ भगवान् का ही सुन्दर गीतों और तालों से गायन करता हूँ । सूर्य के समान अज्ञानान्धकार का नाश करने वाले जो आनन्दकन्द समग्र महिमा से युक्त अमृत से परिपूर्ण और कलाओं के आकर हैं, मैं उन्हीं गीतों के कौशल स्वरूप श्रीभगवान्

सम्पूर्णमेवममृतस्य कलानिधानं तं गीतकौशलमनन्यरसैःप्रयागे ।
युक्तं स्वयोगकरणैःपरमार्थदृष्टिं विश्वं स पश्यति चराचरमेव नित्यम् ॥२३॥
पश्यन्ति नैव यमिहाथ सुपापलोकास्तं केशवं शरणमेवमुपैति नित्यम् ॥२४॥
कराभ्यां वाद्यमानस्तु तालं तालसमन्वितम् । गीतेन गायते कृष्णं बालकैःसह मोदते ॥२५॥
एवं क्रीडारतो नित्यं बालभावेन वै तदा । सुव्रतःसुमनापुत्रो विष्णुध्यानपरायणः ॥२६॥
क्रीडमानं प्राह माता सुव्रतं चारुलक्षणम् । भोजनं कुरु मे वत्स क्षुधा त्वां परिपीडयेत् ॥२७॥
तामुवाच पुनःप्राज्ञःसुमनां मातरंपुनः। महामृतेनतृप्तोऽस्मि हरिध्यानरसेन वै ॥२८॥
भोजनासनमारूढो मिष्टमन्नं प्रपश्यति । इदमन्नं स्वयंविष्णुरात्मा ह्यन्नं समाश्रितः ॥२९॥
आत्मरूपेण यो विष्णुरनेनान्नेन तृप्यतु । क्षीरसागरसंवासो यस्यैव परिसंस्थितः ॥३०॥
जलेनानेन पुण्येन तृप्तिमायातु केशवः। ताम्बूलचन्दनैर्गन्धैरेभिः पुष्पैर्मनोहरैः ॥३१॥
आत्मस्वरूपेण कृष्णं तमहं शरणं गतः। शयने याति धर्मात्मा तदा कृष्णं प्रचिन्तयेत् ॥३२॥
योगनिद्रान्वितं कृष्णं तमहं शरणं गतः । भोजनाच्छादनेष्वेवमासने शयने द्विजः ॥३३॥
चिन्तयेद्वासुदेवं तं तस्मै सर्वं प्रकल्पयेत् । तारुण्यं प्राप्यधर्मात्मा कामभोगान्विहाय वै ॥३४॥
संयुक्तःकेशवध्याने वैडूर्यपर्वतोत्तमे। यत्र सिद्धेश्वरं लिङ्गं वैष्णवं पापनाशनम् ॥३५॥
रुद्रमोङ्कारसंज्ञं च ध्यात्वा चैव महेश्वरम् । ब्रह्मणावर्द्धितं देवं नर्मदा दक्षिणे तटे ॥३६॥
सिद्धेश्वरं समाश्रित्य तपोभावं व्यचिन्तयत् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्रे सुमनोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

का गायन करता हूँ । वे अपने योगमय इन्द्रियों से, परमार्थ दृष्टि से वे युक्त हैं, तथा सम्पूर्ण चराचर को वे सदा देखते हैं । संसारी जीव जिनमें कोई दोष नहीं देखते हैं मैं उन्हीं श्रीभगवान् की सदा शरणागति करता हूँ ॥२१-२४॥ वे बालकों के साथ ताली बजा-बजाकर गाते थे और आनन्दानुभव करते थे ॥२५॥ इस तरह से सुमना के पुत्र सदा भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए क्रीड़ा करते थे ॥२६॥ खेलते हुए बालक सुव्रत से उनकी माता सुमना कहती थी हे वत्स ! भोजन कर लो तुम्हें भूख लगी होगी ॥२७॥ बुद्धिमान् सुव्रत ने सुमना से कहा; मैं श्रीहरि के ध्यान रस रूपी महा अमृत से तृप्त हूँ ॥२८॥ भोजन के आसन पर बैठकर जब वे मिठाई देखते थे तो कहते थे; यह अन्न स्वयं विष्णु हैं और आत्मा अन्न है ॥२९॥ जो विष्णु आत्मा रूप हैं वे इस अन्न से तृप्त हों जिनका क्षीर सागर में निवास है, वे भगवान् केशव इस जल से तृप्त होएँ । ताम्बूल, चन्दन की सुगन्धि तथा मनोहर पुष्पों से आत्मा रूप से तृप्त रहने वाले भगवान् केशव तृप्त हों । जब वे सोने के लिए शय्या पर जाते थे तो श्रीभगवान् का ध्यान करते थे ॥३०-३२॥ वे कहते थे जो भगवान् योगनिद्रा से युक्त हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ । वे द्विज भोजन, छादन आसन तथा शयन भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन करते हुए उनको ही सब कुछ समर्पित करते थे । युवावस्था को प्राप्त करके काम भोगों का परित्याग करके वैडूर्य पर्वत पर विद्यमान वे भगवान् केशव का ध्यान करने लगे । जहाँ पर पाप विनाशक भगवान् शिव का वैष्णव लिङ्ग विराजमान है ॥३३-३४॥ नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर ब्रह्माजी के द्वारा जो स्थापित हैं, उन ओङ्कारेश्वर महादेव का वे ध्यान करते थे । सिद्धेश्वर के पास आकर उन्होंने तपस्या करना चाहा ॥३६-३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्रसुमनोपाख्यान का इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

प्रश्नमेकं महाभाग करिष्ये साम्प्रतं वद। त्वयैव पूर्वमुक्तं हि सुव्रतं च प्रतीश्वरम् ॥१॥
पूर्वाभ्यासेन सन्ध्यायन्नारायणमनामयम्। कस्यां ज्ञात्यां समुत्पन्नःसुव्रतः पूर्वजन्मनि ॥२॥
तन्मे त्वं साम्प्रतं ब्रूहि कथमाराधितो हरिः। अनेनापि सदेवेश कोऽयं पुण्यसमाविलः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

वैदिशे नगरे पुण्ये सर्वऋद्धिसमाकुले। तत्र राजा महातेजा ऋतध्वजसुतो बली॥४॥
तस्यात्मजो महाप्राज्ञो रुक्मभूषण विश्रुतः। सन्ध्यावली तस्य भार्या धर्मपत्नी यशस्विनी ॥५॥
तस्यां पुत्रंसमुत्पाद्य स आत्मसदृशं ततः। तस्य धर्माङ्गदं नाम चकार नृपनन्दनः ॥६॥
सर्वलक्षणसम्पन्नः पितृभक्तिपरायणः। रुक्माङ्गदस्य तनयो योऽयं भागवतांवरः ॥७॥
पितुःसौख्याययेनापि मोहिन्यै तु शिरो ददे। वैष्णवेन च धर्मेण पितृभक्त्या तु तस्य हि ॥८॥
सुप्रसन्नो हृषीकेशःस कायो वैष्णवं पदम्। नीतस्तु सर्वधर्मज्ञो वैष्णवःसात्वतांवरः ॥९॥
धर्मङ्गदो महाप्राज्ञः प्रज्ञाज्ञानविशारदः। तत्रस्थो वै महाप्राज्ञो धर्मोऽसौ धर्मभूषणः ॥१०॥
दिव्यान्मनोऽनुगान्भोगान्मोदमानःप्रभुञ्जति। पूर्णे युगसहस्रान्ते धर्मो वै धर्मभूषणः ॥११॥
तस्मात्पदात्परिभ्रष्टो विष्णोश्चैव प्रसादतः। सुव्रतो नाम मेधावी सुमनानन्दवर्द्धनः ॥१२॥
सोमशर्माख्यतनयः श्रेष्ठो भगवतांवरः। तपश्चचार मेधावी विष्णुध्यानपरोऽभवत्॥१३॥
कामक्रोधदिकान्दोषान्परित्यज्य द्विजोत्तमः। संयम्य चैन्द्रियंवर्गं तपस्तेपे निरन्तरम्॥१४॥

सुव्रत के पूर्वजन्म का चरित्र वर्णन

व्यासजी ने कहा— हे महाभाग ! मैं एक प्रश्न पूछता हूँ उसे आप बतलायें। आपने ही पहले कहा है कि सुव्रत पूर्वाभ्यास के कारण अनामय भगवान् नारायण का सदा ध्यान करते थे। सुव्रत पूर्व जन्म में किस वंश में उत्पन्न हुए थे ॥१-२॥ आप इस समय बतलायें कि उन्होंने श्रीहरि की कैसे आराधना की। इसके द्वारा वे देवेश किस पुण्य को प्राप्त किये ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी प्रकार की समृद्धियों से युक्त पवित्र विदिशा नगर में ऋतध्वज के पुत्र बली राजा थे ॥४॥ उनके पुत्र महाप्राज्ञ रुक्मभूषण थे। उनकी यशस्विनी पत्नी का नाम सन्ध्यावली था ॥५॥ अपने ही समान पुत्र को उत्पन्न करके वे नृपनन्दन उसका नाम धर्माङ्गद रखे ॥६॥ भागवतों में श्रेष्ठ यह जो रुक्मांगद का पुत्र था वह पिता की भक्ति से युक्त तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न था ॥७॥ उसने पिता के सुख के लिए अपना शिर मोहिनी को समर्पित कर दिया। उसकी पितृभक्ति और वैष्णव धर्म से प्रसन्न होकर भगवान् हृषीकेश वैष्ण भक्तों में श्रेष्ठ उसको सशरीर विष्णुलोक में लाये ॥८-९॥ महाप्राज्ञ धर्माङ्गद, प्रज्ञा तथा ज्ञान में निपुण थे। वहाँ पर रहकर ये धर्मभूषण॥१०॥ अपने मनोनुकूल दिव्य भोगों का भोग करते थे। एक हजार युग बीत जाने पर वे धर्मभूषण विष्णु लोक से भ्रष्ट हुए और भगवान् विष्णु की कृपा से सुमना के पुत्र सुव्रत हुए ॥११-१२॥ सोमशर्मा के मेधावी पुत्र भागवतों में श्रेष्ठ तपस्या करते हुए भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे ॥१३॥ वे द्विजोत्तम काम क्रोध आदि दोषों का परित्याग करके तथा इन्द्रियों को अपने वश में करके सदा तपस्या करते थे ॥१४॥ सिद्धेश्वर

वैडूर्यपर्वतश्रेष्ठे सिद्धेश्वरस्य सन्निधौ। एकीकृत्य मनश्चायं संयोज्य विष्णुना सह॥१५॥
एवं वर्षशतं स्थित्वा ध्यानेनास्य महात्मनः। सुप्रसन्नो जगन्नाथःशङ्खचक्रगदाधरः ॥१६॥
तस्मै वरं ददौ चाथ सलक्ष्म्या सह केशवः ।
भोभोःसुव्रतधर्मात्मन्बुध्यस्व विबुधांवरः ॥१७॥
वरं वरय भद्रं ते कृष्णोऽहं ते समागतः। एवमाकर्ण्यमेधावी विष्णोर्वाक्यमनुत्तमम्॥१८॥
हर्षेण महताविष्टो दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्। बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणाममकरोत्तदा ॥१९॥

सुव्रत उवाच

संसारसागरमतीवमहासुदुःखजालोर्मिभिर्विविधमोहचयैस्तरङ्गैः ।
सम्पूर्णमस्तिनिजदोषगुणैस्तु प्राप्तं तस्मात्समुद्धर जनार्दनमाऽऽशुदीनम् ॥२०॥
कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयैर्मे ।
मोहान्धकारपटलैर्मम नास्ति दृष्टिर्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥२१॥
संसारकाननघनं बहुदुःखवृक्षैःसंसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः ।
सन्दीप्तमस्ति करुणा बहुवह्नितेजःसन्तप्यमानमनिशं परिपाहि कृष्ण ॥२२॥
संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह उच्चं मायासुकन्दकरुणा बहुदुःखशाखम् ।
जायादिसङ्गच्छदनं फलितं मुरारे तत्राधिरूढपतितं भगवन्हि रक्ष ॥२३॥
दुःखानलैर्विविधमोहमयैःसुधूमैःशोकैर्वियोगमरणान्तिक सन्निभैश्च ।
दग्धोऽस्मि कृष्णसततं मम देहि मोक्षं ज्ञानाम्बुदःसमभिषिञ्च सदैव मां त्वम् ॥२४॥

के सन्निकट वैदूर्य पर्वत पर मन को निगृहीत करके और उसे भगवान् विष्णु में लगा करके ध्यान करते हुए उनके सौ वर्ष बीत गये । उससे प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् केशव लक्ष्मीजी के साथ आकर उन्हें वरदान दिये । **भगवान् ने कहा—** हे धर्मात्मा ! विज्ञो में श्रेष्ठ आँखें खोलो॥१५-१७॥ वरदान माँगो मैं विष्णु तुम्हारे पास आया हूँ । भगवान् विष्णु के वाक्यों को सुनकर मेधावी सुव्रत अत्यन्त हर्षित होकर श्रीभगवान् का दर्शन करके हाथ जोड़कर प्रणाम किए ॥१८-१९॥ **सुव्रत ने कहा—** हे जनार्दन ! इस संसार सागर के महान् दुःख ही लहरी समूह हैं, अनेक प्रकार के मोह समूह ही इसके तरङ्ग है । यह अपने दोषगुणों से परिपूर्ण है इसमें पड़े हुए मेरा आप शीघ्र उद्धार करें ॥२०॥ मानो कर्म रूपी मेघ अत्यन्त गरजता और बरसता है । मेरे पातक समूह रूपी बिजली चमक रही है । अज्ञानान्धकार समूह के कारण मुझको कुछ भी नहीं दिखता है, हे मधुसूदन ! मुझ दीन को आप अपने हाथों का सहारा दें ॥२१॥ संसार रूप घने वन के अनेक प्रकार के दुःख ही वृक्ष हैं । मोहरूपी सिंह ही इसका सेवन करते हैं । अनेक प्रकार के कष्टरूपी अग्नि के तेज से यह सन्तप्त है, इसमें जलते हुए हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें ॥२२॥ यह संसार रूपी वृक्ष अत्यन्त जीर्ण है । अनेक प्रकार की मायायें ही इसकी मूल हैं, अनेक प्रकार के दुःख और करुणा ही इसकी अनेक शाखायें हैं । पत्नी आदि की सङ्गति रूपी छाल से यह फला हुआ है । हे मुरारे ! उस वृक्ष पर चढ़कर गिरे हुए मेरी रक्षा आप करें ॥२३॥ दुःख रूपी अग्नियों, अनेक प्रकार के मोहरूपी धूमों तथा मृत्यु के समान वियोग जन्य शोकों के द्वारा मैं जला जा रहा हूँ । हे कृष्ण ! आप मुझे मुक्ति प्रदान करें और ज्ञानरूपी मेघों से मुझे सदैव सींचते रहें॥२४॥

घोरान्धकारपटले महतीवगर्ते संसारनाम्नि पतितं सततं हि कृष्ण ।
त्वं सत्कृपो मम हि दीनभयातुरस्य तस्माद्विरज्य शरणं तव आगतोऽस्मि ॥२५॥
त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता ध्यायन्ति ज्ञानमनसा पदवीं लभन्ते ।
नत्वैव पादयुगलं च महासुपुण्यं यद्देवकिन्नरगणाःपरिचिन्तयन्ति ॥२६॥
नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि त्वत्पादमब्जयुगलं सततं नमामि ।
कामं त्वमेव मम पूरय मेऽद्य कृष्ण दूरेण यातु मम पातकसञ्चयस्ते ॥२७॥
दासोऽस्मि देव तव किङ्करजन्मजन्म त्वत्पादपद्मयुगलं सततं स्मरामि ।
यदि कृष्ण प्रसन्नोसि देहिमे सुवरं प्रभो। मन्मातापितरौ कृष्ण सकायौ मन्दिरे नय ॥२८॥
आत्मनश्च महादेव मया सह न संशयः ॥२९॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवं ते परमं कार्यं भविष्यति न संशयः ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तुष्टो हृर्षीकेशो भक्त्या तस्य प्रतोषितः ।
प्रयातौ वैष्णवं लोकं दाहप्रलयवर्जितौ ॥३१॥
सुव्रतेन समंतौ द्वौ सुमना सोमशर्मकौ। यावत्कल्पद्वयं प्राप्तं तावत्स सुव्रतो द्विजः॥३२॥
बुभुजे बुभुजे दिव्याँ ल्लोकांश्चैव महामते। देवकार्यार्थमत्रैव काश्यपस्य गृहं पुनः ॥३३॥
अवतीर्णो महाप्राज्ञो वचनात्तस्य चक्रिणः। ऐन्द्रं पदं हि यो भुङ्क्ते विष्णोश्चैवप्रसादतः॥३४॥
वसुदत्तेति विख्यातःसर्वदेवैर्नमस्कृतः। ऐन्द्रं पदं हि यो भुङ्क्ते साम्प्रतं वासवो दिवि॥३५॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं सृष्टिसम्बन्धकारणम्। अन्यदेवं प्रवक्ष्यामि यदेव परिपृच्छसि॥३६॥

घोर अन्धकार समूह से युक्त इस संसार नामक गढे में सदा गिरे हुए हे भगवान् ! दीन तथा भयभीत मुझको अपनी कृपा से आप संसार से पृथक कर दें मैं; आपके शरण में हूँ ॥२५॥ जिनका मन नियत रूप से आप में भाव से युक्त है, वे आपका ध्यान करते हैं और ज्ञान के मार्ग को प्राप्त करते हैं । इसीलिए देवता तथा किन्नरगण आपके पवित्र पादयुगल का ध्यान करते रहते हैं ॥२६॥ हे कृष्ण ! मैं न तो किसी दूसरे का गान करता हू, न दूसरे का भजन करता हूँ, न दूसरे का चिन्तन करता हूँ केवल आपके ही चरण युगल को नमस्कार करता हूँ । हे कृष्ण ! आप ही मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण करें, मेरे सारे पाप समूह मुझसे दूर चले जायँ ॥२७॥ हे देव ! मैं अनेक जन्मों से आपका किंकर हूँ, मैं सदा आपके चरण युगल को नमस्कार करता हूँ । हे कृष्ण ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मुझे यह वरदान दें कि आप मेरे साथ मेरे माता-पिता को अपने धाम ले जायेगे ॥२९॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** इसी तरह से तुम्हारा सर्वोत्तम कार्य होगा, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥३०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** उसकी भक्ति से भगवान् हृषीकेश सन्तुष्ट थे सुव्रत के मनोऽनुकूल सुमना तथा सोमशर्मा दाह और प्रलय से रहित वैष्णव लोक में चले गये । दो कल्पों तक सुव्रत नामक द्विज ॥३१-३२॥ दिव्य लोकों का बार-बार भोग किए । देवताओं का कार्य करने के लिए कश्यप महर्षि के घर में भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से अवतीर्ण हुए तथा वे भगवान् विष्णु की कृपा से ऐन्द्र पद को भोगते हैं ॥३२-३४॥ सभी देवताओं से नमस्कृत जो वसुदत्त के नाम से विख्यात हैं तथा इस समय द्युलोक में इन्द्र के ऐन्द्र पद का भोग करते हैं ॥३५॥ इस तरह से मैंने तुम्हें सृष्टि सम्बन्धी सारी बातों को वतलाया अब दूसरी बातों को भी मैं बतलाऊँगा यदि तुम पूछोगो तो ॥३७॥ **व्यासजी ने कहा—**

व्यास उवाच

धर्माङ्गदो महाप्राज्ञो रुक्माङ्गदसुतो बली। आद्ये कृतयुगे जातःसृष्टिकाले स वासवः ॥३७॥
तत्कथं देवदेवेश अन्योधर्माङ्गदो भुवि। अन्योरुक्माङ्गदो राजा किं चायं त्रिदशाधिपः॥३८॥
एतन्मे संशयं जातं तद्भवान्वक्तुमर्हति।

ब्रह्मोवाच

हन्त ते कथयिष्यामि सर्वसन्देहनाशनम् ॥३९॥
देवस्य लीलासृष्ट्यर्थे वर्तते द्विजसत्तम। यथावाराश्च पक्षाश्च मासाश्च ऋतवो यथा ॥४०॥
संवत्सराश्च मनवस्तथा यान्ति युगाःपुनः। पश्चात्कल्पः समायातिव्रजाम्येवं जनार्दनम्॥४१॥
अहमेव महाप्राज्ञ मयि यान्ति चराचराः। पुनःसृजति योगात्मा पूर्ववद्विश्वमेव हि ॥४२॥
पुनरहं पुनर्वेदाःपुनस्ते देवता द्विजाः। तथा भूपाश्च ते सर्वे स्वचरित्रसमाविलाः ॥४३॥
प्रभवन्ति महाभाग विद्वांस्तत्र न मुह्यति। पूर्वकल्पे महाभागो यथारुक्माङ्गदो नृपः ॥४४॥
तथा धर्माङ्गदश्चायं सञ्जातःख्यातिमान्द्विजः। रामादयो महाप्राज्ञा ययातिर्नहुषस्तथा ॥४५॥
मन्वादयो महात्मानःप्रभवन्ति लयन्ति च। ऐन्द्रंपदं प्रभुञ्जन्ति राजानो धर्मतत्पराः ॥४६॥
यथा धर्माङ्गदोवीरःप्रभुञ्जति महत्पदम्। एवं वेदाश्च देवाश्च पुराणाःस्मृतिपूर्वकाः॥४७॥
एतत्तु सर्वमाख्यातं तवाग्रे द्विजसत्तम। चरितं सुव्रतस्याथ पुण्यं सुगतिदायकम् ॥४८॥
अव्यक्तं तु महाभाग प्रव्रवीमि तवाग्रतः ॥४९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे ऐन्द्र सुव्रतोपाख्यान नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

रुक्माङ्गद के पुत्र जो धर्माङ्गद हुए वे ही प्रथम सत्ययुग में सृष्टिकाल के आने पर इन्द्र हुए। हे देवदेवेश! वे कैसे पृथिवी पर धर्माङ्गद हुए ? अथवा ये रुक्माङ्ग राजा पृथिवी पर हुए अथवा वे देवराज ही थे?॥३७-३८॥ मुझको सन्देह है उसे आप बतलायें। **ब्रह्माजी ने कहा—** अथवा मैं तुम्हें मैं समस्त संशयों को विनष्ट करने वाली बात बतलाता हूँ ॥३९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् की लीला के लिए यह सृष्टि है। जिस तरह ये वार, पक्ष, मास, ऋतु संवत्सर, मनुगण तथा युग होते हैं, उसके बाद कल्प होता है, उसी तरह से मैं भी जनार्दन को प्राप्त करता हूँ ॥४०-४१॥ हे महाप्राज्ञ ! जैसे मैं होता हूँ उसी तरह सभी चराचर मुझमें होते हैं। उसके बाद योगात्मा पहले के ही समान विश्व की सृष्टि करते हैं ॥४२॥ हे महाभाग! मैं वेद, देवता, सभी ब्राह्मण अपने चरित्र से युक्त सभी राजागण बार-बार उत्पन्न होते हैं। इसके विषय में विद्वानों को कोई भी भ्रम नहीं होता है। जिस तरह पूर्वकल्प में महाभाग रुक्माङ्गद राजा थे उसी तरह से ये धर्माङ्गद विख्यात द्विज हुए। उसी तरह राम आदि तथा महाप्राज्ञ ययाति और नहुष आदि हुए ॥४३-४५॥ मनु आदि भी महात्मागण उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं। और धार्मिक राजा गण ऐन्द्र पद का उपभोग करते हैं ॥४६॥ जिस प्रकार वीर धर्माङ्गद महान् पद का उपभोग करते हैं इसी तरह वेद, देवता, पुराण तथा स्मृतियाँ भी बार-बार होती हैं ॥४७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके समक्ष मैंने इन सारी बातों को बतला दी अब मैं पवित्र तथा सुन्दर गति प्रदान करने वाले सुव्रत के अव्यक्त चरित का वर्णन करूँगा ॥४९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के ऐन्द्र सुव्रतोपाख्यान नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

ऋषय ऊचु:

विचित्रेयं कथा पुण्या धन्या यशोविधायिनी ।
सर्वपापहरा प्रोक्ता भवता वदतांवर ॥१॥
सृष्टिसम्बन्धमेतन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । पूर्वमेव यथासृष्टिर्विस्तरात्सूतनन्दन॥२॥

सूतउवाच

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि सृष्टिसंहाकारणम्। श्रुतमात्रेण यस्यापि नरःसर्वज्ञतां व्रजेत् ॥३॥
हिरण्यकशिपुर्योहि तेन व्याप्तंजगत्त्रयम्। तपसाराध्य ब्रह्माणं वरंप्राप्तं सुदुर्लभम् ॥४॥
तस्माद्देवान्महाभागादमरत्वं तथैव च। देवाँल्लोकान्स संव्याप्य प्रभुत्वं स्वयमर्जितम् ॥५॥
ततोदेवाःसगन्धर्वा मुनयो वेदपारगाः । नागाश्च किन्नराःसिद्धा यक्षाश्चैव तथापरे ॥६॥
ब्रह्माणं तु पुरस्कृत्य जग्मुर्नारायणं प्रभुम्। क्षीरसागरसंसुप्तं योगनिद्रां गतं प्रभुम्॥७॥
तं सम्बोध्य महास्तोत्रैर्देवाःप्राञ्जलयस्तथा । सम्बुद्धे सति देवेशे वृत्तं तस्य दुरात्मनः ॥८॥
आचचक्षुर्महाप्राज्ञ समाकर्ण्य जगत्पतिः । नृसिंहरूपमास्थाय हिरण्यकशिपुं व्यहन् ॥९॥
पुनर्वाराहरूपेण हिरण्याक्षो महाबलः। उद्धृता वसुधा पुण्या असुरो घातितस्तदा ॥१०॥
अन्यांश्च घातयामास दानवान्घोरदर्शनान्। एवं चैतेषु नष्टेषु दानवेषु महत्सु च ॥११॥
अन्येषु तेषु नष्टेषु दितिपुत्रेषु वै तदा । पुनःस्थानेषु प्राप्तेषु देवेषु च महत्सु च॥१२॥
यज्ञष्वेवं प्रवृत्तेषु सर्वेषु धर्मकर्मसु। सुस्थेषु सर्वलोकेषु सादितिर्दुःखपीडिता ॥१३॥

सृष्टि तथा संहार के कारण का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! आपने यह पुण्यमयी, यश प्रदान करने वाली, समस्त पापों का विनाश करने वाली विचित्र कथा सुनायी ॥१॥ आप हमलोगों को सृष्टि सम्बन्धी कारणों को बतलायें । जैसे पहले के समान सृष्टि हुयी उसे आप विस्तार से बतलायें ॥२॥ **सूतजी ने कहा**— मैं सृष्टि तथा संहार के कारण का विस्तार से वर्णन करूँगा । उसको केवल सुनकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जा सकता है॥३॥ हिरण्यकशिपु ने तपस्या के द्वारा ब्रह्माजी की आराधना करके दुर्लभ वर को प्राप्त किया और वह त्रैलोक्य में व्याप्त हो गया ॥४॥ उसके कारण देवताओं ने महाभाग से अमरत्व तथा देवलोकों में व्याप्त होकर अपना स्वयं प्रभुत्व अर्जित कर लिया ॥५॥ उसके बाद गन्धर्वो के साथ देवता वेदपारङ्गत मुनिगण, नाग, किन्नर, सिद्ध, तथा यक्ष ब्रह्माजी को आगे करके क्षीरसागर में सोये हुए तथा योगनिद्रा प्राप्त भगवान् नारायण के पास गये ॥६-७॥ महास्तोत्रों के द्वारा उन श्रीभगवान् को हाथ जोड़कर सम्बोधित करके जगाये और श्रीभगवान् के जगने पर देवताओं ने हिरण्यकशिपु के वृत्तान्त को बतलाया । उसको सुनकर जगत् के स्वामी श्रीभगवान् नरसिंह का रूप धारण करके उसका वध किए ॥८-९॥ उसके बाद वाराह रूप धारण करके भगवान् ने महाबलवान् हिरण्याक्ष नामक असुर का वध करके पृथिवी का उद्धार किया । दूसरे भी भयङ्कर असुरों का उन्होने वध किया । इस तरह से इन महान् दानवों के नष्ट हो जाने पर ॥१०-११॥ तथा दूसरे भी दैत्यों के नष्ट हो जाने पर बड़े-बड़े देवताओं ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया ॥१२॥ इस तरह

पुत्रशोकेन सन्तप्ता हाहाभूता विचेतना। भर्तारं सूर्यसङ्काशं तपस्तेजःसमन्वितम् ॥१४॥
दातारं च महात्मानं भर्तारं कश्यपं तदा । भक्त्या प्रणम्य विप्रेन्द्र तमुवाच महामतिम् ॥१५॥
भगवन्नष्टपुत्राहं कृता देवेन चक्रिणा। दैतेया दानवाःसर्वे देवैश्चैव निपातितः॥१६॥
पुत्रशोकानलेनाहं सन्तप्ता मुनिसत्तम। ममानन्दकरं पुत्रं सर्वतेजोहरं विभो ॥१७॥
सुबलं चारुसर्वाङ्गं देवराजसमप्रभम्। बुद्धिमन्तं सुसर्वज्ञं ज्ञातारं सर्वपण्डितम्॥१८॥
तपस्तेजः समायुक्तं सबलं चारुलक्षणम्। ब्रह्मण्यं ज्ञानवेत्तारं देवब्राह्मणपूजकम् ॥१९॥
जेतारं सर्वलोकानां ममानन्दकरं द्विज । सर्वलक्षणसम्पन्नं पुत्रं मे देहि त्वं विभो॥२०॥

एवमाकर्ण्य वै तस्याःकश्यपो वाक्यमुत्तमम् ।
कृपाविष्टमनास्तुष्टो दुःखिताया द्विजोत्तम ॥२१॥

तामुवाच महाभागःकृपणां दीनामानसाम् । तस्याःशिरसि संन्यस्य स्वहस्तं भावत्परः ॥२२॥
भविष्यति महाभागे यादृशो वाञ्छितःसुतः । एवमुक्त्वा जगामासौ मेरुं गिरिवरोत्तमम् ॥२३॥
तपस्तेपे निरालम्बःसाधयन्परमव्रतः । एतस्मिन्नन्तरे सा तु दधार गर्भमुत्तमम् ॥२४॥
सादितिःसर्वधर्मज्ञा चारुकर्मा मनस्विनी । शतवर्षप्रमाणं सा शुचिस्वान्ता बभूव ह ॥२५॥
तया वै जनितःपुत्रो ब्रह्मतेजःसमन्वितः। अथ कश्यप आयातो हर्षेण महतान्वितः ॥२६॥
चकार नाम मेधावी तस्य पुत्रस्य सत्तमः । बलमित्यब्रवीत्पुत्रं नामतःसदृशो महान् ॥२७॥
एवं नाम चकाराथ व्रतबन्धं चकार सः। प्राह पुत्र महाभाग ब्रह्मचर्यं प्रसाधय॥२८॥

से यज्ञों तथा सभी धर्मकर्मों के होने लगने पर सभी लोकों के स्थिर हो जाने पर दैत्यमाता दिति अत्यन्त दुःखी हुयी ॥१३॥ पुत्रों के शोक के संतप्त होकर हाय-हाय करती हुयी वह अचेत हो गयी । तपस्या के तेज से युक्त सूर्य के समान पुत्र प्रदाता अपने पति कश्यप महर्षि को प्रणाम करके, उन महामति महर्षि से कहा— भगवन् चक्रधारी श्रीहरि ने मेरे पुत्रों को मार दिया । देवताओं ने भी दैत्यों और दानवों को मार दिया॥१४-१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं पुत्रशोक से सन्तप्त हूँ । हे विभो ! आप मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो मेरे आनन्द को बढ़ाएँ, सबों के तेज का हरण कर ले, सुन्दर बल से सम्पन्न हो, उसके सारे अङ्ग सुन्दर हों, उसकी देवराज इन्द्र के समान कान्ति हो, वह बुद्धिमान, सर्वज्ञ तथा सर्वज्ञाता हो, सभी विषयों में वह पण्डित हो, सभी विषयों में वह पण्डित हो, वह तपस्या के तेज से सम्पन्न हो, सुन्दर लक्षणों वाला हो, ब्राह्मणों का भक्त हो, ज्ञाता देवताओं एवं ब्राह्मणों की पूजा करने वाला हो, और सभी लोकों को जीत कर मेरे आनन्द को बढ़ाने वाला हो ॥१७-२०॥ दिति के ऐसे वाक्यों को सुनकर कश्यप महर्षि ने दुखिता दिति से करुणा क्रान्त होकर ॥२१॥ उसके शिर पर हाथ रखकर और भावयुक्त होकर उन्होंने दिति से कहा॥२२॥ हे महाभागे ! तुम जैसा चाहती हो तुम्हें वैसा ही पुत्र होगा । इस तरह से कहकर वे सर्वश्रेष्ठ पर्वत सुमेरु पर चले गये ॥२३॥ वे परम व्रत की साधना करते हुए बिना किसी आलम्ब के तपस्या करने लगे । उसी समय दिति ने उत्तम गर्भ धारण किया ॥२४॥ मनस्विनी दिति सभी धर्मों को जानने वाली और सुन्दर कर्मों को करने वाली थी । वह सौ वर्ष तक पवित्र अन्तःकारण वाली रही ॥२५॥ उसने ब्रह्मतेज से युक्त पुत्र को उत्पन्न किया । उसी समय अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक महर्षि कश्यप आये ॥२६॥ मेधावी महर्षि ने अपने उस पुत्र का नाम बल रखा और वह अपने नाम के ही समान बलवान् हुआ ॥२७॥ नामकरण

पुत्र उवाच

एवमेवं करिष्यामि तव वाक्यं द्विजोत्तम। वेदस्याध्ययनं कुर्यांब्रह्मचर्येण सत्तम ॥२९॥

सूत उवाच

एवं वर्षशतंसाग्रं गतं तस्य तपस्यतः। मातुःसमक्षमायातस्तपस्तेजःसमन्वितः ॥३०॥
तपोवीर्यमयं दिव्यं ब्रह्मचर्यमहात्मनः। दितिःपश्यति पुत्रस्य हर्षेण महतान्विता ॥३१॥
तमुवाच महात्मानं बलं पुत्रं तपस्विनम्। मेधाविनं महात्मानं प्रज्ञाज्ञानविशारदम् ॥३२॥
त्वयि जीवति मेधाविन्प्रजीवन्ति सुता मम। हिरण्यकशिप्वाद्यास्ते ये हताश्चक्रपाणिना ॥३३॥
वैरं साधय मे वत्स जहि देवानृपून्रणे। सा दनुस्तमुवाचेदं बलं पुत्रं महाबलम् ॥३४॥
आदाविन्द्रं हि देवेन्द्रं द्रुतं सूदय पुत्रक। पश्चाद्देवा निपात्यन्तां ततो गरुडवाहनः ॥३५॥
तयोराकर्ण्य सा देवी अदितिःपतिदेवता। दुःखेन महताविष्टा पुत्रमिन्द्रमभाषत ॥३६॥
दितिपुत्रो महाकायो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा। देवानां हि वधार्थाय तपस्तेपे निरञ्जने॥३७॥
एवं जानीहि देवेश यदि क्षेममिहेच्छसि। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं स मातुः पाकशासनः ॥३८॥
चिन्तामवाप दुःखेन महतीं देवराट् तदा। महाभयेन सन्त्रस्तश्चिन्तयामास वै ततः ॥३९॥
कथमेनं हनिष्यामि देवधर्मविदूषकम्। इति निश्चित्य देवेशो बलस्य निधनं प्रति ॥४०॥
एकदा हि बलःसोऽपि सन्ध्यार्थं सिन्धुमाश्रितः।
कृष्णाजिनेन दिव्येन दण्डकाष्ठेन राजितः ॥४१॥
अमलेनापि पुण्येन ब्रह्मचर्येण तेन सः। सागरस्योपकण्ठे तं सन्ध्यासनमुपागतम् ॥४२॥

संस्कार करने के पश्चात् उन्होंने उसका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत संस्कार) कर दिया और कहा तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो ॥२८॥ **पुत्र ने कहा—** मैं आपके कथनानुसार ही कार्य करूँगा। ब्रह्मचर्य पूर्वक मैं वेदाध्ययन करूँगा ॥२९॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह उसको तपस्या करते हुए सौ वर्ष से अधिक बीत गये, उसके वाद तपस्या के तेज से युक्त वह अपनी माता के पास आया ॥३०॥ दिति ने तपस्या के वीर्य रूप दिव्य ब्रह्मचर्य से युक्त अपने पुत्र को अत्यन्त हर्षित होकर देखा ॥३१॥ उसने तपस्वी, मेधावी, प्रज्ञानविशारद महात्मा अपने पुत्र बल से कहा ॥३२॥ हे पुत्र ! तुम्हारे जीवित रहने से मेरे जिन पुत्रों को चक्रधारी ने मार दिया था वे मेरे हिरण्यकशिपु आदि पुत्र जीवित हो गये ॥३३॥ हे पुत्र ! तुम वैर का बदला लो और युद्ध में अपने शत्रुओं को मार डालो। दनु ने बल नामक महाबलवान् पुत्र से कहा ॥३४॥ सबसे पहले तुम देवेन्द्र को ही मार दो। उसके बाद देवताओं को मारना और उसके बाद गरुडवाहन विष्णु को मारना॥३५॥ उन दोनों की बातों को सुनकर अपने पति को ही देवता मानने वाली अदिति ने अत्यन्त दुःखी होकर इन्द्र से कहा ॥३६॥ महाकाय दिति का पुत्र ब्रह्मतेज से बढ़ रहा है। उसने देवताओं का ही वध करने के लिए निरञ्जन तीर्थ में तपस्या की है ॥३७॥ हे देवेश ! यदि तुम कल्याण चाहते हो तो इस बात को जान लो। अपनी माता से इस तरह के वाक्य को सुनकर इन्द्र अत्यन्त दुःखी होकर अत्यधिक चिन्तित हो गये। अत्यन्त भय से भयभीत होकर उन्होंने विचार किया ॥३८-३९॥ कि देव धर्म को दूषित करने वाले को मैं कैसे मारूँ। बल की मृत्यु के विषय में विचार करके जब बल समुद्र में सन्ध्या करने के लिए गये थे, उस समय वे कृष्ण मृग चर्म और दण्ड धारण किए थे ॥४०-४१॥ निर्मल पुण्य तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा सागर

जपमानं सुशान्तं तं ददृशे पाकशासनः। वज्रेण तेन दिव्येन ताडितो दितिनन्दनः॥४३॥
बलं निपतितं दृष्ट्वा गतसत्वं गतं भुवि। हर्षेण महताविष्टो देवराण्मुमुदे तदा॥४४॥
एवं निपात्य तं दैत्यं दितिनन्दनमेव च। राज्यं चकार धर्मात्मा सुखेन पाकशासनः॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे बलदैत्यवधोनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

हतं श्रुत्वा दितिः पुत्रं सुबलं बलमेव च। रुदितं करुणं कृत्वा हम्हाकष्टं भृशं मम॥१॥
एवं सुकरुणं कृत्वा बहुकालं तपस्विनी। सा गता कश्यपं कान्तं तमुवाच यशस्विनी॥२॥
तव पुत्रो महापाप इन्द्रः सुरगणेश्वरः। सागरोपागतं दृष्ट्वा बलं मे ब्रह्मलक्षणम्॥३॥
वज्रेण घातयामास सन्ध्यामास्यन्तमेव हि। एवं श्रुत्वा ततः क्रुद्धो मरीचितनयस्तदा॥४॥
क्रोधेन महताविष्टः प्रजज्वालेव वह्निना। अवलुंच्य जटामेकां शुच्यग्रौ स द्विजोत्तमः॥५॥
इन्द्रस्येव वधार्थाय पुत्रमुत्पादयाम्यहम्। तस्मात्कुण्डात्समुत्पन्नो हुताशनमुखादपि॥६॥
कृष्णाञ्जनचयोपेतः पिङ्गाक्षो भीषणाकृतिः। दंष्ट्राकरालवक्त्रान्तो जगतां भयदायकः॥७॥

के किनारे जब आसन पर बैठकर सन्ध्या कर रहे थे और शान्त मन से जप कर रहे थे, उसी समय इन्द्र ने बल को देखा और अपने दिव्य व्रज के द्वारा वल पर प्रहार किया ॥४२-४३॥ पृथिवी पर गिरकर मरे हुए बल को देखकर इन्द्र प्रसन्न हो गये। इस तरह से दिति के पुत्र बल को मारकर धर्मात्मा इन्द्र ने सुखपूर्वक राज्य किया ॥४४-४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के बल नामक दैत्य के वध नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

वृत्रासुर की उत्पत्ति का वर्णन

सूतजी ने कहा— अपने बलवान् बल नामक पुत्र को मरा हुआ सुनकर दिति करुण क्रन्दन करती हुयी कहने लगी कि मुझको अत्यधिक कष्ट है ॥१॥ बहुत समय तक इस प्रकार से करुणा कर तपस्विनी दिति अपने पति कश्यप महर्षि के पास जाकर कही ॥२॥ देवताओं के स्वामी तथा आपके महापापी पुत्र इन्द्र ने मेरे ब्रह्मस्वरूप पुत्र बल को सागर पर गहे हुए देखकर सन्ध्योपासन करते समय वज्र से मार दिया। इस बात को सुनकर महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप महर्षि क्रुद्ध हो गये ॥३-४॥ अत्यधिक क्रोध के कारण वे अग्नि के समान जलने लगे। वे द्विजोत्तम अपनी एक जटा को नोचकर पवित्र अग्नि में यह कहकर डाल दिए कि मैं इन्द्र का ही वध करने के लिए पुत्र उत्पन्न कर रहा हूँ। उस कुण्ड से अग्नि की ज्वाला से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। वह काजल समूह जैसा काला था, उसकी आँखें पीली थीं, आकार भयङ्कर था उसके मुख में भयङ्कर दाँत थे जो जगत् को भय प्रदान करने वाला था ॥५-७॥ वह भयङ्कर महाचर्वरिक (चबा

महाचर्वरिको घोरः खड्गचर्मधरस्तथा। सर्वाङ्गतेजसा दीप्तो महामेघोपमो बली ॥८॥
उवाच कश्यपं विप्रमादेशो मम दीयताम्। कस्मादुत्पादितो विप्र भवता कारणं वद ॥९॥
तमहं साधयिष्यामि प्रसादात्तव सुव्रत ॥१०॥

कश्यप उवाच

अस्या मनोरथं पुत्र पूरयस्व ममैव हि। अदित्याख्यं महाप्राज्ञ जहि इन्द्रं दुरात्मकम्॥११॥
निहते देवराजे हि ऐन्द्रं पदं प्रभुङ्क्ष्व च। एवं तेन समादिष्टः कश्यपेन महात्मना॥१२॥
वृत्रस्तु उद्यमं चक्रे तस्येन्द्रस्य वधाय च। धनुर्वेदस्य चाभ्यासं स चक्रे पौरुषान्वितः ॥१३॥
बलंवीर्य तथा क्षात्रं तेजो धैर्यसमन्वितम्। दृष्ट्वा हि तस्यदैत्यस्य सहस्राक्षो भयातुरः ॥१४॥
उपायश्चिन्तितस्तस्य वृत्रस्यापि दुरात्मनः। बधार्थं देवदेवेन समाहूय महामुनीन् ॥१५॥
सप्तर्षीन्प्रेषयामास वृत्रं दैत्येश्वरं प्रति। भवन्तस्तत्र गच्छन्तु यत्र वृत्रः स तिष्ठति ॥१६॥
सन्धिं कुर्वन्तु वै तेन सार्द्ध मम मुनीश्वराः। एवं तेन समादिष्टा मुनयः सप्त ते तदा ॥१७॥
वृत्रासुरं ततः प्रोचुः सहस्राक्षप्रचालिताः। सख्यं कर्तुं प्रयच्छेत्स क्रियतां दैत्यसत्तम ॥१८॥
ऋषयः सप्त तत्त्वज्ञा ऊचुर्वृत्रं महाबलम्। सहस्राक्षो महाप्राज्ञो भवता सह सत्तम ॥१९॥
मैत्रमिच्छति वै कर्तुं तत्कथं न करोषि किम्।
अर्धमैन्द्र पदं वीर स त्वं भुङ्क्ष्व सुखेन वै ॥२०॥
वक्ति त्वामेवमिन्द्रोऽपि असुरा देवतास्तथा। कुरु मैत्रीन्तु तैस्सर्वैर्वैरं चैव विसृज्य वै ॥२१॥

वृत्र उवाच

यदि सत्येन देवेन्द्रो मैत्रमिच्छति सत्तमः ॥२२॥

जाने वाला) था। वह खड्ग और चर्म (ढाल) धारण किए हुए था। वह बलवान् महामेघ के समान था और उसके सभी अङ्ग तेज से दीप्त थे ॥८॥ उसने विप्र कश्यप से कहा— आप मुझको आदेश दें, आपने मुझे किसलिए उत्पन्न किया है ? उसका मुझे कारण बतलायें ॥९-१०॥ हे सुव्रत ! आपकी कृपा से मैं उसे पूरा करूँगा ॥१०॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** हे पुत्र ! इसके मनोरथ को तुम पूरा करो यही मैं चाहता हूँ। अदिति के पुत्र दुष्ट इन्द्र को तुम मार दो ॥११॥ देवराज को मार दिए जाने पर तुम इन्द्र के पद का उपभोग करो। महर्षि कश्यप के द्वारा इस तरह से आदिष्ट होकर, वृत्र ने इन्द्र को मारने का प्रयास किया। पौरुष से युक्त उसने धनुर्वेद का अभ्यास किया ॥१२-१३॥ उस दैत्य के बल, वीर्य तथ क्षात्र तेज तथा धैर्य को देखकर इन्द्र भयभीत हो गये ॥१४॥ इन्द्र ने महामुनियों को बुलाकर दुष्ट दैत्य वृत्र के वध के उपाय का विचार किया ॥१५॥ उन्होंने दैत्यों के स्वामी वृत्रासुर के पास सप्तर्षियों को भेजा। उन्होंने कहा जहाँ वृत्रासुर रहता है उसके पास आपलोग जायँ ॥१६॥ आपलोग उसकी मेरे साथ सन्धि करा दें। इस तरह से कहकर इन्द्र ने सप्तर्षियों को भेजा ॥१७॥ इन्द्र के द्वारा भेजे गये सप्तर्षियों ने जाकर कहा हे दैत्य श्रेष्ठ इन्द्र आपसे मित्रता करना चाहते हैं ॥१८॥ तत्त्वज्ञ ऋषियों ने जाकर इस बात को महाबलवान् वृत्रासुर से कहा। महाप्राज्ञ इन्द्र आपके साथ मित्रता करना चाहते हैं आप ऐसा क्यों नहीं करते हैं। हे वीर ! तुम इन्द्र के आधे पद का उपभोग सुखपूर्वक करो ॥१९-२०॥ इस प्रकार से इन्द्र, असुर, देवता कहते हैं कि आप उन सबों के साथ वैर का त्याग करके मित्रता कर लें ॥२१॥ **वृत्र ने कहा—** यदि श्रेष्ठ इन्द्र सत्यता

सत्यमाश्रित्य चैवाहं करिष्ये नात्र संशयः। छद्म चैवं पुरस्कृत्य इन्द्रो द्रोहं समाचरेत् ॥२३॥
तदा किं क्रियते विप्रा इत्यर्थे प्रत्ययं हि किम् ।
ऋषयस्त्विन्द्रमाचख्युरित्यर्थे प्रत्ययं वद। तन्नस्त्वं सत्यतां ब्रूहि यदि सख्यमिहेच्छसि ॥२४॥

इन्द्र उवाच

यद्यसत्येनवर्तेऽहं भवद्भिस्सह छद्मना । ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्लिप्येऽहं नात्र संशयः॥२५॥
ते वृत्रं दैत्यनाथं तं पुनरूचुर्महौजसः । ब्रह्महत्यादिकैःपापैर्लिप्येऽहं नात्र संशयः॥२६॥
इत्युवाच महाप्राज्ञ त्वामेवं स पुरन्दरः। एतेन प्रत्ययेनापि सख्यं कुरु महामते॥२७॥

वृत्र उवाच

भवतां शिष्टमार्गेण सत्येनानेन तस्य च । मैत्रमेवं करिष्यामि तेन सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥२८॥
वृत्रमिन्द्रस्य संस्थानं नीतो ब्राह्मणपुङ्गवैः। इन्द्रस्तमागतं दृष्ट्वा वृत्रं मित्रार्थमुद्यतः ॥२९॥
सिंहासनात्समुत्थाय अर्घमादय सत्वरः । ददौ तस्मै सधर्मात्मा वृत्राय द्विजसत्तमाः ॥३०॥
अर्धंभुङ्क्ष्व महाप्राज्ञ ऐन्द्रमेतन्महत्पदम्। वर्तितव्यं सुखेनापि आवाभ्यां दैत्यसत्तम॥३१॥

सूत उवाच

एवं विश्वासयन्दैत्यं वृत्रं मैत्रेण वै तदा। गतेषु तेषु विप्रेषु स्वस्थानं द्विजसत्तमाः॥३२॥
छिद्रं पश्यति दुष्टात्मा वृत्रस्यापि सदैव हि । सावधानत्वमिन्द्रोऽपि दिवारात्रौ प्रचिन्तयेत् ॥३३॥
तस्य च्छिद्रं न पश्येत वृत्रस्यापि महात्मनः। उपायं चिन्तयामास तस्यैव वधहेतवे ॥३४॥
रम्भा सम्प्रेषिता तेन मोहयस्व महासुरम् । येन केनाप्युपायेन यथा हत्वा लभे सुखम् ॥३५॥
तथा कुरुष्व कल्याणि संमोहाय सुरद्विषः । वनं पुण्यं महादिव्यं पुण्यपादपसेवितम्॥३६॥
बहुवृक्षफलोपेतं मृगपक्षिसमाकुलम् । विमानमन्दिरैर्दिव्यैःसर्वत्र परिशोभितम् ॥३७॥

पूर्ण मित्रता चाहते हैं तो भी सत्य को अपना कर मित्रता करूँगा इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है, किन्तु यदि इन्द्र छल करके द्रोह करें तो फिर क्या होगा ? इसके विषय में कौन सा विश्वास है ?॥२२-२३॥ ऋषियों ने इन्द्र से कह कि इस विषय में तुम विश्वास दिलाओ । यदि तुम मित्रता चाहते हो तो सत्य बतलाओ ॥२४॥ **इन्द्र ने कहा**— यदि मैं सत्य का पालन नहीं कर सकूँ तो मैं आपलोगों से कहता हूँ कि छल करने पर मुझे ब्रह्म हत्या का पाप लगे ॥२५॥ वे महा ओजस्वी ऋषिगण वृत्र से फिर कहे कि छल करने पर मुझे ब्रह्म हत्या इत्यादि का पाप लगे ॥२६॥ हे महाप्राज्ञ ! आप से इन्द्र ने ऐसा कहा है, इस प्रत्यय के द्वारा आप सत्य मैत्री करें ॥२७॥ **वृत्र ने कहा**— आपलोगों के शिष्ट मार्ग से तथा इस सत्य के द्वारा हे द्विजोत्तमों ! मैं इसी प्रकार की मित्रता करूँगा ॥२८॥ इसके बाद सप्तर्षियों ने वृत्र को इन्द्र के यहाँ लाया । हे महर्षियों ! वृत्रासुर को मैत्री के लिए आये हुए देखकर अपने सिंहासन से उठकर शीघ्र ही अर्घ लेकर धर्मात्मा इन्द्र ने उसे प्रदान किया और कहा महाप्राज्ञ । आप आधे ऐन्द्र पद का उपभोग करें । हे दैत्य श्रेष्ठ ! हमदोनों को सुखपूर्वक रहना चाहिए ॥२९-३१॥ दैत्य वृत्रासुर को मैत्री के द्वारा इस तरह से विश्वास्त करके हे महर्षियों ! उन सप्तर्षियों के अपने स्थान पर चले जाने पर ॥३२॥ इन्द्र सावधानी पूर्वक रात-दिन इसी बात को देखते रहते थे कि वृत्र कब असावधान हो ॥३३॥ किन्तु इन्द्र वृत्र में कोई कमी देख नहीं पाते थे । उन्होंने वृत्र के वध का उपाय सोचा ॥३४॥ इन्द्र ने रम्भा को भेजा कि वह वृत्रासुर को जिस किसी भी प्रकार से मोहित करे कि मैं वृत्रासुर को मारकर सुख प्राप्त करूँ ॥३५॥ इसके बाद मनोहर मुस्कान वाली रम्भा अप्सराओं के साथ नन्दन वन में आकर क्रीड़ा करने लगी । वह नन्दन वन अनेक वृक्षों

दिव्यगन्धर्वसङ्गीतं भ्रमराकुलितं सदा। कोकिलानां रुतैःपुण्यैःसर्वत्र मधुरायतैः ॥३८॥
शिखिसारङ्गनादैश्च सर्वत्र सुसमाकुलम्। दिव्यैस्तु चन्दनैर्वृक्षैःसर्वत्र समलङ्कृतम् ॥३९॥
वापीकुण्डतडागैश्च जलपूर्णैर्मनोहरैः। कमलैःशतपत्रैश्च पुष्पितैःसमलङ्कृतम् ॥४०॥
देवगन्धर्वसंसिद्धैश्चारणैश्चैव किन्नरैः। मुनिभिःशुशुभे दिव्यैर्दिव्योद्यानवरेण च ॥४१॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णं नानाकौतुकमङ्गलैः। हेमप्रसादसम्बाधं दण्डच्छत्रैश्च चामरैः ॥४२॥
कलशैश्च पताकाभिःसर्वत्र समलङ्कृतम्। वेदध्वनिसमाकीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम् ॥४३॥
एवं नन्दनमासाद्य सा रम्भा चारुहासिनी। अप्सरोभिःसमं तत्र क्रीडत्येवं विलासिनी ॥४४॥

एकदा तु स वृत्रो वै कालकृष्टो गतो वनम्।
कतिभिर्दानवैःसार्द्धं मुदया परया युतः ॥४५॥

अलक्ष्ये भ्रमते पार्श्वे तस्यैव च महात्मनः। देवराजोऽपि विप्रेन्द्रश्छिद्रान्वेषीद्विषांकिल ॥४६॥
स हि वृत्रो महाप्राज्ञो विश्वस्तःसर्वकर्मसु। इन्द्रं मित्रं परं जानन्भयं चक्रे न तस्य सः ॥४७॥
भ्रममाणो वनं पश्येत्सर्वत्र परमंशुभम्। सुरम्यं कौतुकवनं वनितागणसङ्कुलम् ॥४८॥

चन्दनस्यापि वृक्षस्य छायां शीतां सुपुण्यदाम्।
समाश्रित्य विशालाक्षी रम्भा तत्र प्रदीव्यति ॥४९॥

सखीभिस्तु महाभागा दोलारूढा यशस्विनी। गायते सुस्वरं गीतं सर्वविश्व प्रमोहनम् ॥५०॥
तत्र वृत्रःसमायातःकामाकुलितमानसः। दोलरूढां समालोक्य रम्भां चारुसुलोचनाम् ॥५१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वृत्रवञ्चनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

और फलों से युक्त था उसमें मृग तथा पक्षीगण भरे हुए थे। वह सर्वत्र विमानों और मन्दिरों से सुशोभित था। दिव्य गन्धर्व उसमें सङ्गीत कर रहे थे। भौंरें मड़रा रहे थे चारों ओर से आने वाली कोकिलाओं की ध्वनि से वह मधुर बना हुआ था। मयूरों और मृगों की ध्वनि से वह वन व्याप्त था। वह सर्वत्र दिव्य चन्दन के वृक्षों से सुशोभित था। जल से भरे हुए मनोहर वापी, कूप तथा तड़ागों से तथा विकसित शतदल कमलों से वह सुशोभित था। देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों, चारणों, किन्नरों तथा दिव्य मुनियों से तथा दिव्य उद्यान के द्वारा वह सुशोभित होता था। अनेक प्रकार के कौतुक मङ्गलों से तथा अप्सरा समूह से भरा हुआ वह, सुवर्ण निर्मित भवनों से भरा था। तथा दण्ड छत्र एवं चामरों, कलशों तथा पताकाओं से सर्वत्र समलंकृत वे भवन वेद ध्वनि तथा गीत ध्वनि से युक्त था वह नन्दन वन ॥३६-४४॥ एक बार कमल से आकृष्ट होकर वृत्रासुर उस वन में गया। वह अत्यन्त प्रसन्न था। कुछ दानव उसके साथ थे॥४५॥ परोक्ष रहकर शत्रुओं को छिद्र का अन्वेषण करने वाले इन्द्र भी उस वृत्रासुर के साथ भ्रमण कर रहे थे ॥४६॥ महाप्राज्ञ वृत्रासुर सभी कर्मों में विश्वस्थ थे। वे इन्द्र को परं मित्र जानते थे और उनसे किसी प्रकार का भय नहीं करते थे ॥४७॥ वृत्रासुर सर्वत्र अत्यन्त शुभ देखते थे। वे कौतुकवशात् वनिताओं से परिपूर्ण उस वन में भ्रमण कर रहे थे ॥४८॥ अत्यन्त पवित्र चन्दन वृक्ष की छाया में वहाँ रम्भा क्रीड़ा करती थी ॥४९॥ सखियों के साथ झूले पर बैठकर सम्पूर्ण विश्व को मोहित करने वाले स्वर से गीत गाती थी ॥५०॥ काम से आकुल मन वाला वृत्रासुर वहाँ पर मनोहर नेत्रों वाली रम्भा को दोलारूढ देखकर वहाँ आया ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वृत्र का वञ्चन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

पच्चीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

इयं हि का गायति चारुलोचना विलासभावैःपरिविश्वमेव ।
अतीव बाला शुशुभे मनोहरा सम्पूर्णभावैःपरिमोहयेज्जनम् ॥१॥
दृष्ट्वा सरम्भां कमलायताक्षीं पीनस्तनीं चर्चितकुङ्कुमाङ्गीम् ।
पद्माननां कामृगहं ममैषा नो वा रतिश्चारु मनोहरै यम् ॥२॥
सम्पूर्णभावां परिरूपयुक्तां कामाङ्गशीलामतिलीलभावाम् ।
पश्यामि चैनां च सुकाममोहितां यास्यामि पृच्छामि च का भवेत्सा ॥३॥
इतीव दैत्यःसुविचिन्तयान्वितःकामेन मुग्धो बहुकालनोदितः ।
स मातुरस्तत्र जगाम सत्वरमुवाच तां दीनमनाःसुलोचनाम् ॥४॥
कस्यासि वा सुन्दरि केन प्रेषिता किं नाम ते पुण्यतमं वदस्व मे ।
तवैव रूपेण महातितेजसा मुग्धोऽस्मि बाले मम पश्यतां व्रज ॥५॥

एवमुक्ता विशालाक्षी प्राहकामाकुलं प्रति। अहं रम्भा महाभाग क्रीडार्थं वनमुत्तमम् ॥६॥
सखीभिस्सहिता याता नन्दनं वनमुत्तमम्। त्वं तु को वा किमर्थं हि मम पार्श्वं समागतः ॥७॥

वृत्र उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि योऽहं बाले समागतः। हुताशनात्समुत्पन्नःकश्यपस्य सुतःशुभे॥८॥
सखाहं देवदेवस्य इन्द्रस्यापि वरानने। ऐन्द्रं पदं वरारोहे अर्धं मे भुक्तिमागतम् ॥९॥

रम्भा में आसक्त वृत्रासुर का रम्भा के आग्रह से मोहित होकर मदिरा पीना और मारा जाना

सूतजी ने कहा— सुन्दर नेत्रों वाली अपने विलासमय भावों से सम्पूर्ण विश्व को मोहित करती हुयी यह कौन सी मनोहर तथा अत्यन्त बाल रमणी अपने सम्पूर्ण भावों से लागों को मोहित करती हुयी गा रही है ?॥१॥ कमलदल के समान विस्तृत नेत्रों वाली, बड़े-बड़े स्तनों वाली तथा अङ्गों में कुंकुम लगायी हुयी कमल के समान मुखड़े वाली, रति से भी सुन्दर मेरा कामगृह है क्या ?॥२॥ सम्पूर्ण भावों से युक्त, अत्यन्त मनोहर, कामाङ्ग युक्त तथा अत्यन्त लीलामय भावों वाली इसको काममोहित रूप से मैं देख रहा हूँ। जाकर मैं पूछता हूँ कि यह कौन है ॥३॥ इस तरह से वह दैत्य अच्छी तरह से विचार करके तथा काल के द्वारा बहुत अधिक प्रेरित होने के कारण मोहित होकर आतुर बना हुआ वह वहाँ शीघ्र गया और दीन मन से उस सुन्दर नेत्रों वाली से कहा ॥४॥ हे सुन्दरी ! तुम किसकी पत्नी हो ? तुम्हें किसने भेजा है ? बतलाओ । तुम्हारा पवित्र नाम क्या है ? तुम्हारे रूप तथा अत्यन्त तेज से मैं मोहित हो गया हूँ । तुम मेरे सामने आओ ॥५॥ इस तरह से कहे जाने पर वह विशाल नेत्रों वाली ने कामार्त वृत्रासुर से कहा— हे महाभाग ! मैं रम्भा हूँ । मैं क्रीड़ा करने के लिए अपनी सखियों के साथ इस नन्दन वन में आयी हूँ । आप कौन है ? मेरे पास क्यों आये हैं ?॥६-७॥ **वृत्रासुर ने कहा—** हे बाले ! तुम सुनो मैं जो हूँ और यहाँ आया हूँ उसे बतला रहा हूँ शुभे मैं अग्नि से उत्पन्न कश्यप महर्षि का पुत्र हूँ ॥८॥ हे वरानने ! मैं देवराज इन्द्र का मित्र भी हूँ । इन्द्र के आधे राज्य का भोग मैं करता हूँ ॥९॥ मेरा नाम वृत्र है । तुम मुझे नहीं

अहं वृत्रःकथं देवि मामेवं न तु विन्दसि। त्रैलोक्यवशमायातं यस्यैव वरवर्णिनि ॥१०॥
अहं शरणमायातः कामाद्रक्ष वरानने। भजस्व मां विशालाक्षि कामेनाकुलितं प्रिये ॥११॥

रम्भोवाच

वशगाहं तवैवाद्य भविष्यामि न संशयः। यद्यद्वदाम्यहं वीर तत्तत्कार्यं त्वयैव हि ॥१२॥
एवमस्तु महाभागे तत्तत्सर्वं करोम्यहम्। एवं सम्भाषणं कृत्वा तया सह महाबलः ॥१३॥
तस्मिन्वने महापुण्ये रेमे दानवसत्तमः। तस्याःगीतेन नृत्येन हास्येन ललितेन च ॥१४॥
अतिमुग्धो महादैत्यः स तस्याःसुरतेन च। तमुवाच महाभागं दानवं सा वरानना॥१५॥
सुरापानं कुरुष्वेह पिबस्व मधुमाधवीम्। तामुवाच विशालाक्षीं रम्भां शशिनिभाननाम्॥१६॥
पुत्रोऽहं ब्राह्मणस्यापि वेदवेदाङ्गपारगः। सुरापानं कथं भद्रे करिष्यामि विनिन्दितम् ॥१७॥

तया तु रम्भया देव्या प्रीत्यादत्ता सुरा हठात्।
तस्या दाक्षिण्यभावेन सुरापानं कृतं तदा ॥१८॥

अतीवमुग्धःसुरया ज्ञानभ्रष्टो यदाऽभवत्। तदन्तरे सुरेन्द्रेण वज्रेण निहतस्तदा ॥१९॥
ब्रह्महत्यादिकैःपापैःसलिप्तो वृत्रहा ततः। ब्राह्मणास्तु ततःप्रोचुरिन्द्र पापं कृतं त्वया॥२०॥

अस्मद्वाक्यात्तु विश्वस्तो वृत्रो नाम महाबलः।
हतो विश्वासभावेन एवं पापं त्वया कृतम् ॥२१॥

इन्द्र उवाच

येन केनाप्युपायेन हन्तव्योऽरिः सदैव हि। देवब्राह्मणहन्ता च यज्ञधर्मस्य कण्टकः ॥२२॥
निहतो दानवो दुष्टस्त्रैलोक्यापि नाशकः। तदर्थं कुपिता यूयमेतन्न्यायस्य लक्षणम् ॥२३॥

जानती हो क्या ? हे सुन्दरि ! त्रैलोक्य मेरे वश में हैं ॥१०॥ मै काम प्रेरित होकर तुम्हारे शरण में आया हूँ तुम मेरी रक्षा करो । मैं काम से व्याकुल हूँ तुम मेरी बन जाओ ॥११॥ **रम्भा ने कहा—** आज मैं तुम्हारी ही वशवर्तिनी हूँ इसमें कोई संशय नहीं है किन्तु जो मैं कहती हूँ वह तुम करो ॥१२॥ ठीक है महाभागे ! मैं तुम्हारी सारी बातें मानता हूँ । इस तरह से बातें करके उस दानव श्रेष्ठ ने उस पवित्र वन में उसके साथ रमण किया । उसके गीत, नृत्य, मनोहर हास्य तथा उसके साथ सुरत क्रीड़ा से वह महादैत्य अत्यन्त मोहित था । उस दानव से उस सुन्दरी ने कहा । तुम मधुमाधवी मदिरा का पान करो चन्द्रमा के समान मुखवाली विशालाक्षी रम्भा से वृत्र ने कहा ॥१३-१६॥ मैं ब्राह्मण का पुत्र हूँ वेदों तथा वेदाङ्गों में पारंगत हूँ । हे भद्रे ! मैं निन्दित सुरापान कैसे करूँ ?॥१७॥ रम्भा ने प्रेम पूर्वक हठात उसे सुरा प्रदान कर दी । उसके दाक्षिण्य भाव के कारण वृत्रासुर ने मदिरापान कर लिया ॥१८॥ जब वह सुरा के कारण अत्यन्त मोहित होकर ज्ञानभ्रष्ट हो गया । उस समय इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर को मार दिया ॥१९॥ उसके वाद इन्द्र को ब्रह्महत्या इत्यादि पाप लग गये । उसके बाद ब्राह्मणों ने कहा इन्द्र ! तुमने पाप किया है॥२०॥ हमलोगों के वाक्यों के कारण महाबलवान् वृत्र विश्वस्त था । वह विश्वास के कारण मारा गया अतएव तुमने पाप किया है ॥२१॥ **इन्द्र ने कहा—** शत्रु को किसी भी उपाय से मार देना चाहिए, वह देवताओं और ब्राह्मणों को मारने वाला तथा यज्ञ धर्म का विरोधी था ॥२२॥ त्रैलोक्य का भी नाश करने वाला दुष्ट दानव मारा गया । इसके कारण आपलोग कुपित हैं । क्या यही न्याय है ?॥२३॥ हे द्विजश्रेष्ठों!

विचारश्चापि कर्त्तव्योभवद्भिर्द्विजसत्तमाः। पश्चात्कोपःप्रकर्तव्यो न्याय्यन्याय्यं विचिन्त्याम् ॥२४॥
एवं सम्बोधिता विप्रा इन्द्रेणापि महात्मना । ब्रह्मादिभिःसुरैःसर्वैर्बोधितास्ते च सत्तमाः ॥२५॥
जग्मुःस्वस्थानमेवं हि निहिते धर्मकण्टके ॥२६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वृत्रासुरवधोनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

तं पुत्रं निहतं श्रुत्वा सा दितिर्दुःख पीडिता। पुत्रशोकेन तेनैव सन्दग्धा द्विजसत्तमाः ॥१॥
पुनरूचे महात्मानं कश्यपं मुनिपुङ्गवम् । इन्द्रस्यापि सुदुष्टस्य वधार्थं द्विजसत्तम॥२॥
ब्रह्मतेजोमयं तीव्रं दुःसहं सर्वदैवतैः । पुत्रैकं दीयतां कान्त सुप्रियाहं यदा विभो ॥३॥

कश्यप उवाच

निहतौ बलवृत्रौ च मम पुत्रौ महाबलौ। अधर्माश्रित्य देवेन इन्द्रेणापि दुरात्मना॥४॥
तस्यैव च वधार्थाय पुत्रमेकं ददाम्यहम् । वर्षाणां तु शतैकं त्वं शुचिर्भव यशस्विनि ॥५॥
एवमुक्त्वा स योगीन्द्रो हस्तं शिरसि वै तदा ।
दत्त्वादित्या सहैवासौ गतो मेरुं तपोवनम् ॥६॥
तपस्तताप सा देवी तपोवन निवासिनी। शुचिष्मती सदा भूत्वा पुत्रार्थं द्विजसत्तम ॥७॥

आपलोगों को विचार भी करना चाहिए उसके बाद कोप करना चाहिये । आपलोग न्याय एवं अन्याय का विचार करें ॥२४॥ इस तरह ब्रह्मा आदि देवताओं और इन्द्र के द्वारा भी समझायें जाने पर वे सप्तर्षि शान्त हुए ॥२५॥ उस धर्म के शत्रु के मार दिए जाने पर वे अपने स्थान पर चले गये ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वृत्रासुर वध नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

दूसरा वेष बनाकर इन्द्र का दिति की सेवा करना

सूतजी ने कहा— अपने पुत्र को मरा हुआ सुनकर दिति दुःख से पीड़ित हो गयी । उसके पुत्रशोक के द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण सन्तप्त हो गये ॥१॥ उसने फिर महात्मा मुनिश्रेष्ठ कश्यप से कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो अत्यन्त दुष्ट इन्द्र का वध करने के लिए ब्रह्मतेजो मय, तीव्र, सभी देवताओं के लिए दुःसह एक पुत्र मुझे आप प्रदान करें ॥३॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** अधर्म का आश्रय लेकर बल तथा वृत्र नामक मेरे दोनों पुत्र दुष्ट इन्द्र के द्वारा मार दिए गये ॥४॥ हे यशस्विनि ! अब मैं इन्द्र का ही वध करने के लिए तुम्हें एक पुत्र प्रदान करता हूँ । तुम सौ वर्षों तक पावित्र्य का पालन करो ॥५॥ इस तरह से कहकर योगीन्द्र अदिति के शिर पर हाथ रख दिए और उसके बाद सुमेरु पर्वत पर तपोवन में चले

ततो देवः सहस्राक्षो ज्ञात्वा उद्यममेव च । दित्याश्चैव महाभाग अन्तरप्रेक्षकोऽभवत् ॥८॥
पञ्चविंशाब्दिको भूत्वा देवराड्दैवतोपमः । ब्राह्मणस्य च रूपेण तस्याश्चान्तिकमागतः ॥९॥
स तां प्रणम्य धर्मात्मा मातरं तपसान्वितम् । तयोक्तस्तु सहस्राक्षो भवान्को द्विजसत्तम ॥१०॥
तामुवाच सहस्राक्षः पुत्रोऽहं तव शोभने । ब्राह्मणो वेदविद्वांश्च धर्मं जानामि भामिनि॥११॥
तपसस्तव साहाय्यं करिष्येनात्र संशयः । शुश्रूषति सतां देवी मातरं तपसान्विताम्॥१२॥
तमिन्द्रं सा न जानाति आगतं दुष्टकारिणम्। धर्मपुत्रं विजानाति शुश्रूषन्तं दिने दिने ॥१३॥
अङ्गं संवाहयेद्देव्याःपादौ प्रक्षालयेत्ततः । पत्रं मूलं फलं तत्र वल्कलाजिनमेव च ॥१४॥
ददात्येवं सधर्मात्मा तस्यै दित्यै सदैव हि। भक्त्या सन्तोषिता तस्य सन्तुष्टा तमभाषत॥१५॥
पुत्रे जाते महापुण्ये इन्द्रे च निहते सति । कुरू राज्यं महाभाग पुत्रेण मम दैवतम् ॥१६॥
एवमस्तु महाभागे ते प्रसादाद्भविष्यति । तस्याश्चैवान्तरं प्रेप्सुरभवत्पाकशासनः ॥१७॥
पूर्णेवर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः । अकृत्वा पादयोःशौचं दितिः शयनमाविशत् ॥१८॥

शय्यान्ते सा शिरःकृत्वा मुक्तकेशातिविह्वला ।
निद्रामाहारयामस तस्याःकुक्षिं प्रविश्य ह ॥१९॥

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधां तं न्यकृन्तत । वज्रेण तीक्ष्णधारेण रुरोद उदरे स्थितः ॥२०॥
सगर्भस्तत्र विप्रेन्द्रा इन्द्रहस्त गतेन वै। रोदामानं महागर्भं तमुवाच पुनःपुनः ॥२१॥
शतक्रतुर्महातेजा मारोदीरित्यभाषत। सप्तधा कृतवाञ्छक्रस्तं गर्भं दितिजं पुनः ॥२२॥

गये ॥६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! देवी दिति भी तपोवन में रहकर तपस्या करने लगी । वह अपने पुत्र के लिए सदा पवित्र रहती थी ॥७॥ उसके वाद इन्द्रदेव दिति के प्रयास को जानकर उसके दोषों को देखने लगे ॥८॥ इन्द्र पच्चीस वर्ष का देवता वनकर ब्राह्मण के रूप में दिति के पास आये ॥९॥ धर्मात्मा इन्द्र ने तपस्विनी दिति माता को प्रणाम किए तो दिति ने पूछा— हे द्विजश्रेष्ठ ! आप कौन हैं ?॥१०॥ इन्द्र ने कहा— हे शोभने ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ मैं वेद का विद्वान् तथा धर्म को जानने वाला हूँ ॥११॥ मैं निःसन्देह तुम्हारी तपस्या में सहायता करूँगा इसके वाद वे उस तपस्विनी महादेवी अपनी माता दिति की सेवा करने लगे॥१२॥ दिति दुष्ट कर्म करने वाले यह नहीं जानती थी कि यह इन्द्र है । प्रतिदिन सेवा करने वाले उसको दिति धर्मपुत्र जानती थी ॥१३॥ इन्द्र उस देवी के शरीर को दवाते थे और उसके पैरों को धोते थे । वे दिति को पत्र, फल, मूल तथा मृगचर्म लाकर सदा देते थे । इस तरह से इन्द्र ने दिति को सन्तुष्ट कर दिया । दिति ने सन्तुष्ट होकर उससे कहा— महापवित्र पुत्र के उत्पन्न हो जाने के बाद तथा इन्द्र के मार दिए जाने पर तुम मेरे पुत्र के साथ देवताओं का राजा होना ॥१४-१६॥ इन्द्र ने कहा— हे महाभागे ! ऐसा ही हो यह आपकी कृपा से ही सम्भव है । अव इन्द्र दिति के नियमों में विघ्न को खोजने लगे ॥१७॥ सौ वर्ष पूरा हो जाने पर इन्द्र ने उसके नियमों में विघ्न को देखा । दिति पैरों को धोए बिना ही सो गयी ॥१८॥ अत्यन्त विह्वल वनी हुयी दिति शय्या के अन्त में केशों को खोलकर नींद में चली गयी । और इन्द्र उसके पेट में प्रवेश करके ॥१९॥ उसके गर्भ को हाथ में वज्र लेकर सात टुकड़े कर दिए उस रोते हुए गर्भ को इन्द्र ने वार-वार कहा ॥२०-२१॥ इन्द्र ने कहा मत रोओ उसके वाद इन्द्र ने दिति के भी सात-सात टुकड़े कर दिए ॥२२॥ रोते हुए उस गर्भ के प्रत्येक टुकड़े को इन्द्र ने सात-सात टुकड़ा कर दिया । इस प्रकार

एकैकं सप्तधाच्छित्त्वा रुद्रमानं स देवराट् । एवं वै मरुतो जातास्ते तु देबा महौजसः ॥२३॥
यथा इन्द्रेण ते प्रोक्ता बभूवुर्नामभिस्ततः । अतिवीर्या महाकायास्तीव्रतेजःपराक्रमाः ॥२४॥
एकोनावै बभूवुस्ते पञ्चशन्मरुतस्ततः । मरुतो नाम ते ख्याता इन्द्रमेव समाश्रिताः ॥२५॥
भूतानामेव सर्वेषां रोचयन्ति गणंमहत् । निकायेषु निकायेषु हरिःप्रादात्प्रजापतिः ॥२६॥
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि तानि वै । सदेवःपुरुषःकृष्णःसर्वव्यापी जगद्गुरुः ॥२७॥
तपोनिष्णुर्महातेजाः सर्वएकःप्रजापतिः । पर्जन्यःपावकःपुण्यःसर्वात्मा सर्वएव हि ॥२८॥
तस्य सर्वमिदं पुण्यं जगत्स्थावर जङ्गमम् । भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तम॥२९॥
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः । इमां सृष्टिं महापुण्यां सर्वपापहरां शुभाम्॥३०॥
यःश्रृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते। स हि धन्यश्च पुण्यश्च स हि सत्यसमन्वितः ॥३१॥

यःश्रृणोति इमां सृष्टिं स याति परमां गतिम् ।
सर्वपाप विशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥३२॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे मरुदुत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

से वे सभी महाओजस्वी मारुत देवता हो गये ॥२३॥ इन्द्र ने जैसे कहा था वैसे ही उन सबों का नाम हो गया । वे सभी अत्यन्त पराक्रमी, विशालकाय तीव्र तेज और पराक्रम से युक्त हो गये ॥२४॥ उन सबों की संख्या उनचास हो गयी । इन्द्र के ही आश्रित रहने वाले उन सबों का नाम मरुत हो गया ॥२५॥ वे सभी भूतों के समूह को सुशोभित करते हैं । प्रजापति इन्द्र ने उन सबों को निकायों (समूहों) को प्रदान किया॥२६॥ पृथु से पहले के उन राज्यों को सर्वव्यापी, जगद्गुरु पुरुष कृष्ण ही प्रशासित करते थे ॥२७॥ तपस्वी, विष्णु महातेजस्वी सबों के एक प्रजापति, पर्जन्य, पावक, सर्वात्मा तथा सर्वस्वरूप ब्रह्माजी पृथु ही थे ॥२८॥ उनके ही वश में यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् रूपी भूत सृष्टि थी वे अच्छी तरह से इसे जानते थे॥२९॥ उस समय इस लोक में पुनरागमन का भय नहीं था तो परलोक का भय कैसे सम्भव हो ? समस्त पापों को विनष्ट करने वाली शुभ अत्यन्त पवित्र इस सृष्टि का जो नर भक्ति पूर्वक श्रवण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वह धन्य, पवित्र और सत्य से युक्त है ॥३०-३१॥ जो इस सृष्टि का श्रवण करता है वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है । सभी पापों से रहित वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के मरुतों की उत्पत्ति नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

सत्ताइसवाँ अध्याय

सूत उवाच

सप्रभुःसर्वलोकेशो ह्यभिषिच्य ततो नृपम्। पृथुं वेनस्य तनयं सर्वराज्ये महाप्रभुम्॥१॥
महाबाहुं महाकायं यथेन्द्रं च सुरेश्वरम्। क्रमेणापि ततो ब्रह्मा राज्यानि च विचार्य वै॥२॥
यद्यस्यापि भवेद्योग्यं दातुं तदुपचक्रमे। वृक्षाणां ब्राह्मणानां च ग्रहर्क्षाणां तथैव च॥३॥
सोमं राज्ये सोऽभ्यषिञ्चत्तपसा च महामतिः। धर्माणां धर्मयज्ञानां पुण्यानां पुण्यतेजसाम्॥४॥
अपांमध्ये तथा देवं तीर्थानां हि तथैव च। वरुणं सोऽभिषिच्यैव रत्नानां च द्विजोत्तम॥५॥
अन्येषां सर्वयक्षाणां राज्ये वैश्रवणं पुनः। विष्णुमेव महाप्राज्ञमादित्यानां पितामहः॥६॥
राज्ये संस्थापयामास जनता हितहेतवे। सर्वेषामेव पुण्यानां दक्षमेव प्रजापतिम्॥७॥
समर्थं सर्वधर्मज्ञं प्रजापतिं गणेश्वरम्। प्रह्लादं सर्वधर्मज्ञं स हि राज्ये न्यरूपयत्॥८॥
दैत्यानां दानवानां च विष्णुतेजःसमन्वितम्। यमं वैवस्वतं धर्मं पैत्र्ये राज्येऽभिषिच्य च॥९॥
यक्षराक्षसभूतानां पिशाचोरगसर्पिणाम्। योगिनीनां च सर्वासां वैतालानां महात्मनाम्॥१०॥
कङ्कालानां हि सर्वेषां कुष्माण्डानं तथैव च। पार्थिवानां च सर्वेषां गिरिशं शूलपाणिनम्॥११॥
पर्वतानां हि सर्वेषां हिमवन्तं महागिरिम्। नदीनां च तडागानां वापिकानां तथैव च॥१२॥
कुण्डानां कूपराज्ये हि दिव्येषु च सुरेश्वरः। सागरं स्थापितं पुण्यं सर्वतीर्थमनुत्तमम्॥१३॥
गन्धर्वाणां तु सर्वेषां राज्ये पुण्ये तथैव च। चित्ररथं ततो ब्रह्मा अभिषिच्य सुरेश्वरः॥१४॥
नागानां पुण्यवीर्याणां वासुकिं च चतुर्मुखः। सर्पाणां तु तथा राज्ये अभिषिच्य स तक्षकम्॥१५॥

पृथु के द्वारा सभी वर्णों के राजा पद पर राजाओं की स्थापना

सूतजी ने कहा— समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्माजी वेन के पुत्र पृथु को सम्पूर्ण जगत् के राज्य पर अभिषिक्त कर दिये ॥१॥ वे पृथु महाबाहु महाकाय तथा सुरेश्वर इन्द्र के समान थे। उसके बाद ब्रह्माजी ने राज्यों का विचार करके, जो जिसके योग्य था उसको उन्होंने वह राज्य प्रदान कर दिया। उन्होंने वृक्षों, ब्राह्मणों, ग्रहों, तारों तथा तपस्याओं का राजा सोम (चन्द्रमा) को बनाया। धर्मों, धर्मयज्ञों, पुण्यों, पुण्यतेजों का ॥२-४॥ तथा तीर्थो का राजा जल के भीतर रहने वाले वरुण को बनाया। हे द्विजोत्तम ! रत्नों तथा दूसरे यक्षों का स्वामी विश्रवा के पुत्र कुबेर को बनाया। पितामह ने आदित्यों का स्वामी विष्णु को वनाया ॥५-६॥ जिससे संसारियों का कल्याण हो। सभी पुण्यों का स्वामी दक्ष को प्रजापति बनाया ॥७॥ समर्थ सभी धर्मो को जानने वाले दक्ष को प्रजापतियों का भी स्वामी बनाया। उन्होंने दैत्यों और दानवों का स्वामी सभी धर्मों के ज्ञाता तथा विष्णु के तेज से युक्त प्रह्लाद को स्वामी बनाया। विवस्वान् के पुत्र यम को उन्होंने पितृगणों का स्वामी बनाया ॥८-९॥ उन्होंने यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, उरग, सर्प, सभी योगिजनों, वेतालों कंकालों, कूष्माण्डों तथा समस्त राजाओं का स्वामी त्रिशूलधारी शङ्करजी को बनाया ॥१०-११॥ सभी पर्वतों का स्वामी हिमालय को बनाया। नदियों, वापियों एवं तड़ागों का, कुण्डों का तथा कूप राज्य का स्वामी सागर को बनाया। वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है ॥१३॥ सुरेश्वर, ब्रह्माजी ने सभी गन्धर्वो और गन्धर्वों के राज्य पर चित्ररथ को अभिषिक्त किया ॥१४॥ ब्रह्माजी ने नागों का स्वामी वासुकी को बनाया।

वारणानां ततो राज्ये ऐरावणमसिञ्चत। अश्वानां चैव सर्वेषामुच्चैःश्रवसमेव च ॥१६॥
पक्षिणां चैव सर्वेषां वैनतेयमथापि सः । मृगाणां च ततो राज्ये ब्रह्मा सिंहमथादिशत् ॥१७॥
गोवृषं तु गवां मध्ये अभिषिच्य प्रजापतिः। वनस्पतीनां सर्वेषां प्लक्षमेव पितामहः ॥१८॥
एवं राज्यानि सर्वाणि संस्थाप्य च पितामहः ।
दिशापालांस्ततो ब्रह्मा स्थापयामास सत्तमः ॥१९॥
वैराजस्य तथापुत्रं पूर्वस्यां दिशि सत्तमः । सुधन्वानं दिशःपालं राजानं सोऽभ्यषिञ्चत ॥२०॥
दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः। पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषिञ्चत ॥२१॥
पश्चिमायां तथा ब्रह्मा वरुणस्य प्रजापतेः । पुत्रं च पुष्करं नाम सोऽभ्यषिञ्चत्प्रजापतिः ॥२२॥
उत्तरस्यां दिशि ब्रह्मा नलकूबरमेव च । एवं चैवाभ्यषिञ्चच्च दिक्पालान्स महौजसः ॥२३॥
यैरियं पृथिवीसर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथा प्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥२४॥
पृथुश्चैवं महाभागः सोऽभिषिक्तो नराधिपः। राजसूयादिभिः सर्वैरभिषिक्तो महामखैः ॥२५॥
विधिना वेददृष्टेन राजराज्ये महीपतिः । चाक्षुषे नाम्नि सम्पुण्ये अतीते च महौजसि ॥२६॥
मन्वन्तरे महाभाग देवपुण्यहितैषिणि । ततो वैवस्वतायैव मनवे राज्यमादिशत् ॥२७॥
विस्तरं चापि व्याख्यास्ये पृथोश्चैव महात्मनः ।
यदि मामेव विप्रेन्द्रशुश्रूषसिअतन्द्रितः ॥२८॥
एतदेवमधिष्ठानं महत्पुण्यं प्रकीर्तितम्। सर्वेष्वेव पुराणेषु एतद्धि निश्चितं सदा ॥२९॥
पुण्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम्। धन्यं पवित्रमायुष्यं पुत्रदं वृद्धिदायकम् ॥३०॥

सर्पों के राज्य पर उन्होंने तक्षक को अभिषिक्त किया ॥१५॥ उसके बाद उन्होंने हाथियों के राज्य पर ऐरावण को अभिषिक्त किया । अश्वों का राजा उन्होंने उच्चैःश्रवा को बनाया ॥१६॥ सभी पक्षियों का स्वामी गरुड़ को बनाया । उसके बाद ब्रह्माजी ने मृगों का राजा सिंह को बनाया ॥१७॥ गौओं के राज्य पर साण्ड को अभिषिक्त करके ब्रह्माजी वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष (पाकड़वृक्ष) को बनाया ॥१८॥ इस तरह सभी को राज्य पर स्थापित करके ब्रह्माजी ने दिक्पालों को बनाया ॥१९॥ उन्होंने वैराज्य के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का दिक्पाल बनाया ॥२०॥ दक्षिण दिशा का दिक्पाल महात्मा कर्दम के पुत्र शंखपद को राजा बनाया॥२१॥ पश्चिम दिशा में उन्होंने वरुण प्रजापति के पुत्र पुष्कर को अभिषिक्त किया ॥२२॥ उत्तर दिशा में ब्रह्माजी ने नलकूबर को अभिषिक्त किया । इस तरह से महाओजस्वी दिक्पालों को अभिषिक्त करके॥२३॥ ये सभी दिक्पाल सप्तद्वीप तथा नगरों से युक्त इस पृथिवी का पालन धर्मपूर्वक करते हैं ॥२४॥ इस तरह से महाभाग पृथु भी अभिषिक्त होकर राजसूय आदि बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा वेदोक्त विधि से राजराज के पद पर अभिषिक्त थे । वे बीते हुए देवता और पुण्यों के हितैषी चाक्षुष मन्वन्तर में राजा थे । उसके बाद उन्होंने वैवस्वत मनु को राजा बनाया ॥२४-२७॥ मैं महात्मा पृथु का विस्तार से वर्णन करूँगा । यदि हे विप्रेन्द्र! आप मेरी सावधानी से सेवा करते हैं ॥२८॥ इस अत्यन्त पवित्र अधिष्ठान का मैने वर्णन किया । सभी पुराणों में यही निश्चित है ॥२९॥ यह पवित्र, यश प्रदाता, आयु प्रदाता, स्वर्ग में वास करने वाला धन्य,

यः श्रृणोति नरो भक्त्या भावध्यानसमन्वितः ।
अश्वमेधफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥३१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे राज्याभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अठाइसवाँ अध्याय

ऋषयऊचु·

विस्तरेण समाख्याहि जन्म तस्य महात्मनः। पृथोश्चैव महाभाग श्रोतुकामा वयं पुनः ॥१॥
राज्ञा तेन यथा दुग्धा इयं धात्री महात्मना। पुनर्देवैश्च पितृभिर्मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः॥२॥
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः। शैलैश्चैव पिशाचैश्च गन्धर्वैःपुण्यकर्मभिः ॥३॥
ब्राह्मणैश्च तथा सिद्धै राक्षसैर्भीमविक्रमैः। पूर्वमेव यथा दुग्धा अन्यैश्च सुमहात्मभिः॥४॥
तेषामेव हि सर्वेषां विशेषं पात्र धारणम्। क्षीरस्यापि विधिं ब्रूहि विशेषं च महामते ॥५॥
वेनस्यापि नृपस्यैव पाणिरेव महात्मनः। ऋषिभिर्मथितःपूर्वं स कस्मादिह कारणात् ॥६॥
क्रुद्धश्चैव महापुण्यैःसूतपुत्र वदस्व नः। विचित्रेयं कथा पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥७॥
श्रोतुकामा महाभाग तृप्तिर्नैव प्रजापते ॥८॥

सूत उवाच

वैन्यस्य हि पृथोश्चैव तस्य विस्तरमेव च। जन्मवीर्यं तथाक्षेत्रं पौरुषं द्विजसत्तमाः॥९॥

पवित्र पुत्र तथा बुद्धि प्रदान करने वाला है ॥३०॥ जो मनुष्य भाव, भक्ति तथा ध्यान के साथ इसे सुनता है उसको अश्वमेघ याग करने का फल होता है । इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के राज्याभिषेक वर्णन नामक सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

पृथु चरित्र का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे महाभाग ! आप महाराज पृथु के चरित का विस्तार से वर्णन करें । उसे हमलोग सुनना चाहते हैं ॥१॥ महात्मा पृथु ने जिस तरह से पृथिवी का दोहन किया और उसके बाद पितरों, मुनियों और तत्त्वज्ञों ने जैसे पृथिवी का दोहन किया ॥२॥ जिस तरह से दैत्यों, नागों, यक्षों, वृक्षों, पर्वतों, पिशाचों, पृण्यवान्, गन्धर्वों, ब्राह्मणों, सिद्धों, नागों तथा भयङ्कर पराक्रम वाले राक्षसों एवं दूसरे महात्माओं के द्वारा जैसे पहले पृथिवी दूही गयी ॥३-४॥ उनके जो विशेष दोहन पात्र थे तथा उनके दुग्ध विशेष को आप बतलायें ॥५॥ क्रुद्ध ऋषियों ने भी सर्वप्रथम किस कारण से वेन के पाणि का क्यों मन्थन किया ॥६॥ हे सूतजी ! इस बात को आप बतलाएँ । यह पवित्र कथा विचित्र और पापों का विनाश करने वाली है ॥७॥ हे महाभाग ! हमलोग सुनना चाहते हैं, इससे तृप्ति नहीं होती है ॥८॥ **सूतजी ने कहा—**

प्रवक्ष्यामि यथा सर्वं चरितं तस्य धीमतः। शुश्रूषध्वं महाभागा मामेवं द्विजसत्तमाः ॥१०॥
अभक्ताय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च। सुमूर्खाय सुमोहाय कुशिष्याय तथैव च॥११॥
श्रद्धाहीनाय कूटाय सर्वनाशाय मा द्विजाः। अन्यथा पठते यो हि निरयं च प्रयाति हि॥१२॥
भवन्तो भावसंयुक्ताः सत्यधर्मपरायणाः। भवतामग्रतः सर्वं चरित्रं पापनाशनम्॥१३॥
सम्प्रवक्ष्याम्यशेषेण शृणुध्वं द्विजसत्तमाः। स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धन्यं वेदैश्च सम्मितम्॥१४॥
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि द्विजोत्तमाः। यश्चैनं कीर्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्यविस्तरम्॥१५॥
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम्।
सप्तजन्मार्जितं पापं श्रुतमात्रेण नश्यति ॥१६॥
ब्राह्मणो वेदविद्वांश्च क्षत्रियो विजयी भवेत्। वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥१७॥
एवं फलं समाप्नोति पठनाच्छ्रवणादपि। पृथोर्जन्मचरित्रं च पवित्रं पापनाशनम्॥१८॥
धर्मगोप्ता महाप्राज्ञो वेदशास्त्रार्थकोविदः। अत्रिवंश समुत्पन्नः पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ॥१९॥
स्रष्टा सर्वस्य धर्मस्य अङ्गो नाम प्रजापतिः। य आसीत्तस्य पुत्रो वै वेनो नाम प्रजापतिः ॥२०॥
धर्ममेवं परित्यज्य सर्वदैव प्रवर्त्तते। मृत्योः कन्या महाभागा सुनीथा नाम नामतः ॥२१॥
तां तु अङ्गो महाभागः सुनीथामुपयेमिवान्। तस्यामुत्पादयामास वेनं धर्मप्रणाशनम् ॥२२॥
मातामहस्य दोषेण वेनः कालात्मजात्मजः। निजधर्मं परित्यज्य अधर्मनिरतोऽभवत्॥२३॥
कामाल्लोभान्महामोहात्पापमेव समाचरत्। वेदाचारमयं धर्मं परित्यज्य नराधिपः॥२४॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं, महाराज वेन के पुत्र पृथु के जन्म, पराक्रम, क्षेत्र तथा पौरुष तथा चरित का वर्णन करूँगा, आपलोग हमारी इसी तरह सेवा करते रहें ॥९-१०॥ इसको अभक्त, श्रद्धाहीन, शठ, अत्यन्त मूर्ख, मोहित, कुशिष्य, श्रद्धाहीन, कूटभाषी तथा सर्वनाशक को नहीं बतलाना चाहिए । अन्यथा इन सबों को बतलाने वाले को नरक जाना पड़ता है ॥११-१२॥ आपलोग भक्तिभाव वाले हैं, सत्य धर्म का पालन करने वाले हैं, आपलोगों के समक्ष इस पापनाशक सम्पूर्ण चरित का वर्णन करूँगा उसे आपलोग सुनें । यह स्वर्ग, यश, आयु, वेद के सदृश ऋषियों से प्रोक्त रहस्यमय है । जो व्यक्ति पृथु के जीवन चरित का पाठ ब्राह्मणों को नमस्कार करके करता है, वह अपने कृत्या-कृत्य के विषय में चिन्ता न करे । इसका केवल श्रवण कर लेने मात्र से सात जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है ॥१३-१६॥ इसको पढ़ने तथा श्रवण करने से भी ब्राह्मण वेद का विद्वान हो जाता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन से समृद्ध हो जाता है तथा शूद्र सुखी हो जाता है । पृथु का जन्म और चरित्र पवित्र तथा पाप का विनाश करने वाला है ॥१७-१८॥ जो धर्म के रक्षक, महाप्राज्ञ, वेदशास्त्र के अर्थ को जानने वाले, अत्रिवंश में उत्पन्न, तथा अत्रिमहर्षि के समान कान्ति वाले पहले, सभी धर्मों की सृष्टि करने वाले अङ्ग नामक प्रजापति थे, उनके पुत्र वेन नामक प्रजापति हुए ॥१९-२०॥ वे धर्म का परित्याग करके उसके विपरीत कर्मों को करते थे । अङ्ग ने मृत्यु की पुत्री सुनीथा से विवाह किया था । सुनीथा के ही गर्भ से धर्मनाशक वेन का जन्म हुआ था ॥२१-२२॥ अपने नाना (मृत्यु) के दोष के ही कारण वेन काल स्वरूप हुए । वे अपने धर्म का परित्याग करके अधर्म करने में लग गये ॥२३॥ वे काम, लोभ तथा महामोह के कारण केवल पाप ही करते थे । वे राजा वेदाचार मय धर्म का परित्याग कर दिए ॥२४॥ मद तथा मत्सर से मोहित होकर पापाचरण ही करते थे । उस समय

अन्ववर्तत पापेन मदमत्सरमोहितः । वेदाध्यायं विना लोके प्रावर्तन्त तदा जनाः ॥२५॥
निःस्वाधायवषट्काराःप्रजास्तस्मिन्प्रजापतौ । प्रबृत्तं न पपुःसोमं हुतं यज्ञेपु देवताः ॥२६॥
इत्युवाच सदुष्टात्मा ब्राह्मणान्प्रतिनित्यशः । नाध्येतव्यं न होतव्यं न देयं दानमेव च ॥२७॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः । आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते॥२८॥
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति पुनःपुनः । मयि यज्ञा विधातव्या मयि होतव्यमित्यपि ॥२९॥
इत्यब्रवीत्सदा वेनो ह्यहं विष्णुःसनातनः । अहं ब्रह्मा अहं रुद्रो मित्र इन्द्रः सदागतिः ॥३०॥
अहमेव प्रभोक्ता च हव्यं कव्यं न संशयः । अथ ते मुनयःक्रुद्धा वेनं प्रतिमहाबलाः ॥
ऊचुस्ते सङ्गता सर्वे राजानं पापचेतनम् ॥३१॥

ऋषयः ऊचु

राजाहि पृथिवीनाथःप्रजां पालयते सदा । धर्ममूर्ति सराजेन्द्र तस्माद्धर्मं हि रक्षयेत् ॥३२॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामो यज्ञे द्वादशवार्षिकीम् । अधर्मं कुरु मा यागे नैषधर्मःसतांगतिः ॥३३॥
कुरुधर्मं महाराज सत्यं पुण्यं समाचर । राजाहं पालयिष्यामि इति ते समयः कृतः ॥३४॥
तांस्तथा ब्रुवतःसर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा । वेनःप्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थकम् ॥३५॥

वेन उवाच

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यःश्रोतव्यं कस्य वा मया ।
श्रुतवीर्यतपःसत्यो मया वा कःसमोभुवि ॥३६॥

प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मां विचेतसः ॥३७॥

सभी लोग वेदाध्ययन करना छोड़ दिए ॥२५॥ उस राजा के राज्य काल में सारी प्रजाएँ स्वाध्याय एवं वषट्कार से रहित हो गयीं । यज्ञों में देवता न तो सोमपान करते थे और न होम का ग्रहण करते थे ॥२६॥ वह दुष्ट सदा ब्राह्मणों से कहता था न तो वेदाध्ययन करना चाहिए, न होम करना चाहिए और न दान देना चाहिए ॥२७॥ यजन और होम भी नहीं करना चाहिए । इस प्रकार से उस वेन प्रजापति की क्रूर प्रतिज्ञा थी क्योंकि उसका विनाशकाल आ गया था ॥२८॥ मैं पूज्य हूँ, यजन करने वाला हूँ, और मैं ही यज्ञ हूँ । आपलोग मेरे लिए ही यज्ञ और होम करें ॥२९॥ वेन सदैव कहता था मैं ही सनातन विष्णु हूँ । मैं ही ब्रह्मा, रुद्र, मित्र, इन्द्र तथा वायु हूँ ॥३०॥ मैं ही हव्य एवं कव्य का भोग करने वाला हूँ । इसके कारण महाबलवान् मुनिजन वेन के प्रति क्रुद्ध हो गये । वे सभी एकत्र होकर पापी राजा वेन से कहे ॥३१॥ **ऋषियों ने कहा—** राजा ही पृथिवी का स्वामी होता है वह सदा प्रजाओं का पालन करता है । हे राजेन्द्र! राजा धर्ममूर्ति होता है । अतएव राजा को धर्म की रक्षा करनी चाहिए ॥३२॥ हमलोग बारहवर्ष तक चलने वाले यज्ञ की दीक्षा लेंगे । आप इस याग में अधर्म न करें । यह सज्जनों का धर्म नहीं है ॥३३॥ हे महाराज ! आप धर्म करें सत्य और पुण्य का आचरण करें । आपने प्रतिज्ञा की है कि मैं राजा हूँ और मैं पालन करूँगा ॥३४॥ इस तरह से कहने वाले महर्षियों से वेन ने कहा । दुर्बुद्धि वेन ने जोर से हँसकर इस अनर्थकारी वाक्य को कहा ॥३५॥ **वेन ने कहा—** मुझसे भिन्न धर्म सृष्टि करने वाला कौन है ? मुझे किसकी बात सुननी चाहिए ? संसार में मेरे समान श्रवण, वीर्य, तपस्या तथा सत्यवाणी किसकी है?॥३६॥ आप सभी मूर्ख और अज्ञानी हैं जिसके कारण सभी भूतों तथा धर्मों की उत्पत्ति स्थान मुझको नहीं जानते

इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलैस्तथा। द्यां भुवं चैवरुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा ॥३८॥
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः। अपनेतुं तदा वेनं ततःक्रुद्धा महर्षयः ॥३९॥
विस्फुरन्तं तदा वेनं बलाद्गृह्यततो रुषा। वेनस्य तस्य सव्योरुं ममन्थुर्जात मन्यवः ॥४०॥
कृष्णाञ्जनवयोपेतमतिहस्वं विलक्षणम्। दीर्घास्यं महात्मानो निषीदेत्यब्रुवंस्ततः ॥४१॥
लम्बोदरं व्यूढकर्ममतिभीतं दुरोदरम्। ददृशुस्ते महात्मानो निषीदेत्यब्रुवंस्ततः ॥४२॥
तेषां तद्ववचनं श्रुत्वा निषसाद भयातुरः। पर्वतेषु वनेष्वेव तस्य वंशः प्रतिष्ठितः ॥४३॥

निषादाश्च किराताश्च भिल्ला नाहलकास्तथा ।
भ्रमराश्च पुलिंन्दाश्च ये चान्ये म्लेच्छजातयः ॥४४॥

पापाचारास्तु ते सर्वे तस्मादङ्गात्प्रजज्ञिरे। अथ ते ऋषयःसर्वे प्रसन्नमनसस्ततः ॥४५॥
गतकल्मषमेवं तं जातं वेनं नृपोत्तमम्। ममन्थुर्दक्षिणं पाणिं तस्यैव च महात्मनः ॥४६॥
मथिते तस्य पाणौ तु सञ्जातं स्वेदमेवहि। पुनर्ममन्थुस्ते विप्रा दक्षिणं पाणिमेव च ॥४७॥
सुकरात्पुरुषोजज्ञे द्वादशादित्य सन्निभः। तप्तकाञ्चनवर्णाङ्गो दिव्यमाल्याम्बरावृतः ॥४८॥
दिव्याभरणशोभाङ्गो दिव्यगन्धानुलेपनः। मुकुटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां विराजते ॥४९॥
महाकायो महाबाहू रूपेणाप्रतिमो भुवि। खड्ग बाणधरो धन्वी कवची च महाप्रभुः ॥५०॥
सर्वलक्षणसम्पन्नःसर्वालङ्कारभूषणः। तेजसा रूपभावेन सुवर्णैश्च महामतिः ॥५१॥
दिविइन्द्रो यथा भाति भुवि वेनात्मजस्तथा। तस्मिञ्जातेमहाभागे देवाश्च ऋषयोऽमलाः ॥५२॥

हैं ॥३७॥ मैं चाहूँ तो पृथिवी को भस्म कर दूँ और जल में डुबा दूँ। निश्चिम रूप से द्युलोक और भूलोक को रोक दूँ ॥३८॥ जब मोह तथा अभिमान से युक्त राजा वेन को वे रोन न सके तो महर्षिगण उस पर क्रुद्ध हो गये ॥३९॥ क्रोध के कारण छटपटाते हुए वेन को क्रुद्ध महर्षियों ने पकड़ लिया और उसकी बाँयीं जङ्घा का क्रोध पूर्वक मन्थन करने लगे ॥४०॥ उसमें उन लोगों ने काजल समूह के समान काले अत्यन्त छोटे विलक्षण आकार वाले, बड़े मुँह वाले पुरुष को देखा, उसकी आँखे बदरूप थीं वह नीला कञ्चुक धारण किए हुए था उसका पेट लम्बा तथा कान व्यूट (कर्कश) थे। वह अत्यन्त डरा हुआ दुरोदर था। उसको देखकर महात्माओं ने कहा निषीद (बैठ जाओ) ॥४०-४२॥ ऋषियों की वाणी सुनकर वह भयभीत होकर बैठ गया उसके वंश वाले पर्वतों और बनों में जाकर रहने लगे ॥४३॥ उन सबों की निषाद, किरान, भिल्ल, नाहलक, भ्रमर तथा म्लेच्छ आदि जातियाँ हो गयी ॥४४॥ वे सभी पापी थे और वेन के उस अङ्ग से उत्पन्न हुए। उसके बाद सभी ऋषिगण प्रसन्न मन से राजा वेन के निष्पाप हो जाने पर उनके दाहिने हाथ का मन्थन किए ॥४५-४६॥ उनके हाथ का मन्थन करने पर उससे पसीना निकला। उसके बाद ऋषियों ने उनके दाहिने हाथ का ही मन्थन किया ॥४७॥ उस हाथ से द्वादशादित्य के समान पुरुष उत्पन्न हुए। उनका शरीर सुतप्त स्वर्ण के समान देदीप्यमान था और वे दिव्य माला और वस्त्र धारण किए थे ॥४८॥ वे दिव्य आभरणों को धारण किए थे दिव्य चन्दन लगाये थे। उनका मुकुट सूर्य के समान देदीप्यमान था तथा दोनों कुण्डलों से सुशोभित थे ॥४९॥ उनका शरीर विशाल था भुजाएँ लम्बी थीं पृथिवी पर उनका रूप अतुलनीय था। वे महाप्रभु खड्ग, बाण, धनुष और कवच धारण किए थे ॥५०॥ वे सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न थे और सभी अलङ्कारों को धारण किए हुए थे। तेज तथा रूप के कारण वे महामति

उत्सवं चक्रिरे सर्वे वेनस्य तनयं प्रति। दीप्यमानःस्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलः ॥५३॥
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महावरम्। शरान्दिव्यांश्च रक्षार्थे कवचं च महाप्रभम्॥५४॥
जाते सति महाभागे पृथौ वीरे महात्मनि। सम्प्रहृष्टानि भूतानि समस्तानि द्विजोत्तम ॥५५॥
सर्वतीर्थानितोयानि पुण्यानि विविधानि च। तस्याभिषेके विप्रेन्द्राःसर्व एव प्रतस्थिरे ॥५६॥
पितामहाद्या देवास्तु भूतानि विविधानि च। स्थावराणि चराण्येव अभ्यषिञ्चन्नराधिपम्॥५७॥
महावीरं प्रजापालं पृथुमेव द्विजोत्तम। पृथुर्वैन्यो राजराज्ये अभिगम्य चराचरैः ॥५८॥
देवैर्विप्रैस्तथा सर्वैरभिषिक्तो महामनाः। राज्ञां समधिराज्ये वै पृथुर्वैन्यःप्रतापवान्॥५९॥
तस्य पित्रा प्रजाःसर्वाःकदा नैवानुरञ्जिताः। तेनानुरञ्जिताः सर्वा मुमुदिरे सुखेन वै ॥६०॥
तस्यानुरागाद्वीरस्य नामराजेत्यजायत। प्रयातस्य सुवीरस्य समुद्रस्य द्विजोत्तम ॥६१॥
आपस्तस्तम्भिरे सर्वा भयात्तस्य महात्मनः। दुर्गं मार्गं विलोप्यैव सुमार्गं पर्वताददुः ॥६२॥
आज्ञा भङ्गं न चक्रुस्ते गिरयःसर्व एव ते। अकृष्टपच्या पृथिवी सर्वत्र कामधेनवः ॥६३॥
पर्जन्यःकामवर्षी च वेदयज्ञान्महोत्सवान्। कुर्वन्ति ब्राह्मणाःसर्वे क्षत्रियाश्च तथापरे ॥६४॥
सर्वकामफला वृक्षास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे। नदुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् ॥६५॥
सर्वे सुखेन जीवन्ति लोका धर्मपरायणाः। तस्मिञ्छासति दुर्धर्षे राजराजे महात्मनि ॥६६॥
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सूत्यां समुत्पन्नःसौम्येऽहनि महामतिः ॥६७॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः। पृथोःस्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः ॥६८॥

देखने में सुन्दर थे ॥५१॥ जैसे स्वर्ग में इन्द्र सुशोभित होते हैं उसी तरह पृथिवी पर वेन पुत्र पृथु सुशोभित होते थे। उनके उत्पन्न होने पर देवता तथा निर्मल ऋषियों ने पृथु का उत्सव मनाये। साक्षात् अग्नि के समान अपने शरीर से देदीप्यमान पृथु आद्य श्रेष्ठ अजगव धनुष धारण करके रक्षा करने के लिए बाणों और कवच को धारण किए ॥५२-५४॥ महाभाग महात्मा वीर पृथु के ऐसा होने पर हे द्विजोत्तम ! सभी जीव प्रसन्न हो गये ॥५५॥ उनके अभिषेक में ब्राह्मणों ने सभी तीर्थों के अनेक प्रकार के जल लाये ॥५६॥ पितामह आदि देवता और स्थावर जङ्गम अनेक प्रकार के जीव उनका अभिषेक किए ॥५७॥ उनलोगों ने महावीर प्रजाओं के पालक पृथु को ही अभिषिक्त किए। वेन के पुत्र पृथु राजराज्य पर चराचरों के द्वारा अभिषिक्त हुए ॥५८॥ वे महामना सभी देवताओं और ब्राह्मणों द्वारा प्रतापी वैन्य राजाओं के अधिराज पद पर अभिषिक्त हुए ॥५९॥ उनके पिता ने कभी भी प्रजाओं का अनुरञ्जन नहीं किया। वे प्रजाएँ उनके द्वारा अनुरञ्जित होकर प्रसन्नता का अनुभव की ॥६०॥ उस वीर पृथु के अनुराग के ही कारण उनका नाम राजा हुआ। हे द्विजोत्तम ! उस वीर के प्रणय करते समय समुद्र का जल स्थिर हो जाता था और पर्वत अपने दुर्गम मार्ग को छिपाकर उन्हें सुन्दर मार्ग प्रदान करते थे ॥६१-६२॥ कोई भी पर्वत उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था। उस समय पृथिवी अकृष्टपच्चा हो गयी और गौएँ कामधेनु हो गयीं। मेघ इच्छा के अनुसार वर्षा करते थे सभी क्षत्रिय ब्राह्मण तथा दूसरे लोग वेदयज्ञों तथा महोत्सवों को करते थे ॥६३-६४॥ उन राजा के प्रशासन काल में वृक्ष लोगों की इच्छा के अनुसार फल देते थे। उस समय न दुर्भिक्ष होता था न किसी को व्याधि होती थी और न तो किसी की अकाल मृत्यु होती थी ॥६५॥ उस दुर्धर्ष राजाधिराज के प्रशासन में सभी धार्मिक सुख पूर्वक जीते थे ॥६६॥ इसी राजा के पैतामह यज्ञ में शुभ दिन को सूती

सूतस्य लक्षणं वक्ष्ये महापुण्यं द्विजोत्तमाः । शिखा सूत्रेणसंयुक्तो वेदाध्ययनतत्परः ॥६९॥
सर्वशास्त्रार्थवेत्ताऽसावग्निहोत्रमुपासिता । दानाध्ययनसम्पन्नो ब्रह्माचारपरायणः ॥७०॥
देवानां ब्राह्मणानां च पूजनाभिरतःसदा । याचकःस्तावकैःपुण्यैर्वेदमन्त्रैर्यजेत्किल ॥७१॥
सदाचारपरो नित्यं सम्बन्धो ब्राह्मणैःसह । एवं स मागधो जज्ञे वेदाध्ययनवर्जितः ॥७२॥
वन्दिनश्चारणाःसर्वे ब्रह्माचार विवर्जिताः । ज्ञेयास्ते च महाभागाः स्तावकाःप्रभवन्ति ते ॥७३॥
स्तवनार्थमुभौसृष्टौ निपुणौ सूतमागधौ। तावूचुर्ऋषयःसर्वेस्तूयतामेष पार्थिवः ॥७४॥
कर्मैतदनुरूपं च यादृशोऽयं नराधिपः । तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृषीन्बन्दिमागधौ ॥७५॥
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावःस्वकर्मभि । न चास्यविद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः ॥७६॥
कर्मणा येन कुर्यावाः स्तोत्रमस्य महात्मनः। जानीवस्तन्न विप्रेन्द्रा अविज्ञातगुणस्य हि ॥७७॥
भविष्यैस्तैर्गुणैःपुण्यैःस्तोतव्योऽयं नरोत्तमः । कृतवान्यानि कर्माणि पृथुरेव महायशाः ॥७८॥
ऊचुस्ते मुनयःसर्वेगुणान्दिव्यान्महात्मनः । सत्यवाज्ञानसम्पन्नो बुद्धिमान्ख्यातविक्रमः ॥७९॥
सदा शूरोगुणग्राही पुण्यवांस्त्यागवान्गुणी। धार्मिकः सत्यवादीच यज्ञानां याजकोत्तमाः ॥८०॥
प्रियवाक्सत्यवादी च धान्यवान्धनवान्गुणी। गुणज्ञः सगुणग्राही धर्मज्ञःसत्यवत्सलः ॥८१॥
सर्वगः सर्ववेत्ता च ब्रह्मण्यो वेदविल्सुधीः । प्रज्ञावान्सुस्वरश्चैव वेदवेदाङ्गपारगः ॥८२॥
धाता गोप्ता प्रजानां सविजयी समराङ्गणे। राजसूयादिकानां तु यज्ञानां राजसत्तमः ॥८३॥

के गर्भ से महामति सूत उत्पन्न हुए ॥६७॥ उसी महायज्ञ में बुद्धिमान मागध उत्पन्न हुए । उन दोनों को महर्षियों ने पृथु की स्तुति करने के लिए बुलाया ॥६८॥ हे द्विजोत्तम ! मैं सूत का अत्यन्त पवित्र लक्षण बतलाता हूँ । सूत शिखा तथा सूत्र से युक्त, वेदाध्ययन करने वाला, सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला, अग्निहोत्र करने वाला, दान एवं अध्ययन करने वाला, ब्रह्माचार परायण, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला, पवित्र स्तुतियों के द्वारा याचना करने वाला, वेद के मन्त्रों से यजन करने वाला, सदाचार का पालन करने वाला, तथा ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध रखने वाला होता है । मागध भी ऐसा ही होता है । सभी वन्दीगण और चारणगण वेदाध्ययन से रहित होते हैं । ब्रह्माचार नहीं करते थे । उन महाभोगों को स्तावक (स्तुति करने वाला) जानना चाहिए ॥६९-७३॥ निपुण और मागध की सृष्टि स्तुति करने के लिए की गयी उन दोनों को ऋषियों ने कहा कि इस राजा की स्तुति करो ॥७४॥ यह राजा जैसा होगा इसके कर्मानुसार उन दोनों वन्दी और मागधों ने ऋषियों को बतलाया । उन दोनों ने कहा— हमदोनों देवताओं और ऋषियों को अपने कर्म से प्रसन्न करते हैं । हम इस राजा के न तो कर्म को जानते हैं और न यश को जानते हैं॥७५-७६॥ इस महात्मा के जिन कर्मों की स्तुति हम दोनों करते हैं हे विप्रश्रेष्ठों ! हम इस अविज्ञात गुण वाले राजा को नहीं जानते हैं ॥७७॥ अतएव इस राजा की भविष्यत् कालिक पवित्र गुणों से स्तुति करनी चाहिए । जिन कर्मों को आगे चलकर महात्मा पृथु ने किया ॥७९॥ उन मुनियों ने महात्मा पृथु के दिव्य गुणों का वर्णन किया । इस राजा के भविष्य में ये गुण होंगे । यह सत्यवक्ता, बुद्धिमान्, विख्यात पराक्रम वाला, वीर, गुणग्राही, पुण्यवान्, गुणी, धार्मिक, सत्यवादी, उत्तम यज्ञों को करने वाला, प्रिय तथा सत्य बोलने वाला, धन-धान्य से युक्त, गुणी, गुणज्ञ, सुन्दर गुणों को ग्रहण करने वाला, धर्मज्ञ, सत्यवत्सल, सर्वत्र व्याप्त, सर्ववेत्ता, ब्रह्मण्य, वेदवेत्ता, बुद्धिमान्, सुन्दर स्वरों से युक्त प्रज्ञावान्, वेदों तथा वेदाङ्गों में

आहर्ता भूतले चैकः सर्वधर्मसमन्वितः। एते गुणा अस्य चाग्रे भविष्यन्ति महात्मनः ॥८४॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु कुर्वाणौ सूतमागधौ। गुणैश्चैव भविष्यैश्च स्तोत्रं तस्य महात्मनः ॥८५॥
तदाप्रभृति वै लोकाः स्तवैस्तुष्टा महामते। पुरतश्च भविष्यन्ति दातारः स्तावनैर्गुणैः ॥८६॥
ततःप्रभृतिलोकेऽस्मिन्स्तवेषु द्विजसत्तमः। आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते तेषां द्रविणमुत्तमम् ॥८७॥
सूताय मागधायैव वन्दिने च महोदयम्। चारणाय ततः प्रादात्कलिङ्गं देशमुत्तमम् ॥८८॥
पृथुः प्रसादाद्धर्मात्मा हैहयं देशमेव च। रेवातीरे पुरं कृत्वा स्वनाम्ना नृपनन्दनः ॥८९॥
ब्राह्मणेभ्यो द्विजश्रेष्ठ यजन्दाता पृथुः पुरा। सर्वज्ञं सर्वदातारं धर्मवीर्यं नरोत्तमम् ॥९०॥
तं ददृशुः प्रजाः सर्वा मुनयश्च तपोऽमलाः। ऊचुः परस्परं पुण्या एष राजा महामतिः ॥९१॥
देवादीनां वृत्तिदाता अस्माकं च विशेषतः। प्रजानां पालकश्चैव वृत्तिदो हि भविष्यति ॥९२॥
इयं धात्री महाप्राज्ञा उप्तं बीजं पुरा किल। जीवनार्थंप्रजाभिस्तु ग्रासयित्वा स्थिराऽभवत् ॥९३॥
ततः पृथुं द्विजश्रेष्ठ प्रजाः समभिदुद्रुवुः। विधत्स्वेति सुवृत्तिं नो मुनीनां वचनं तदा ॥९४॥
ग्रासयित्वा तदान्नानि पृथ्वी जाता सुनिश्चला। भयं प्रजानां सुमहत्सदृष्ट्वा राजसत्तमः ॥९५॥
महर्षिवचनात्सोऽपि प्रगृह्य सशरंधनुः। अभ्यधावत वेगेन पृथ्वीं क्रुद्धो नराधिपः ॥९६॥
कौञ्जरं रूपमास्थाय भयात्तस्य तु मेदिनी। वनेषु दुर्गदेशेषु गुप्ता भूत्वा चचार सा ॥९७॥
न पश्यति महाप्राज्ञः कुरूपं द्विजसत्तमाः। आचचक्षुर्महाप्राज्ञं कुञ्जरंरूपमास्थिता ॥९८॥

पारङ्गत, प्रजाओं को धारण करने वाला और उनकी रक्षा करने वाला, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला राजाओं में श्रेष्ठ यह राजसूय आदि यज्ञों को करने वाला तथा पृथिवी पर अकेला सभी धर्मों से युक्त होगा॥७९-८४॥ ऋषियो के द्वारा नियुक्त वे दोनों सूत तथा मागध राजा पृथु के भविष्यत् कालिक गुणों से स्तुति किए ॥८५॥ हे महामते ! उसी समय से लोग स्तुति से सन्तुष्ट होते हैं । आगे भी वे स्तुति के गुणों के अनुसार दान करने वाले होंगे ॥८६॥ उसी समय से संसार में श्रेष्ठ ब्राह्मण स्तुतियों के द्वारा राजाओं की उत्तम सम्पत्ति का आशीर्वाद के द्वारा प्रशंसा करते हैं ॥८७॥ उसके बाद पृथु महाराज सूत, मागध, वन्दीगण और चारण को कलिङ्ग देश प्रदान किए ॥८८॥ नृपनन्दन पृथु प्रसन्नता पूर्वक हैहय देश में ही रेवा नदी के तट पर अपने नाम की नगरी का निर्माण करके यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों को दान देते थे । उस सर्वज्ञ, सबकुछ देने वाले, नरोत्तम तथा धर्मवीर्य राजा को सभी निर्दोष मुनियों तथा सभी प्रजाओं ने देखा और परस्पर में कहने लगे कि ये राजा महाबुद्धिमान् हैं ॥८९-९१॥ वे कहते थे कि ये राजा देवताओं आदि को वृत्ति प्रदान करने वाले हैं, और हमलोगों को विशेष रूप से वृत्ति प्रदान करने वाले हैं । ये प्रजाओं के पालक और वृत्ति प्रदान करने वाले होंगे ॥९२॥ हे महाप्राज्ञ ! पृथिवी प्रजाओं के द्वारा जीने के लिए बोये गये बीज को ग्रस्त करके स्थिर हो गयी है ॥९३॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके बाद प्रजाएँ राजा के पास गयीं और कहीं कि आप मुनियों के वचनानुसार हमें वृत्ति प्रदान करें ॥९४॥ यह पृथिवी अन्नों को खाकर अत्यन्त निश्चल हो गयी है । प्रजाओं के महान् भय को देखकर श्रेष्ठ राजा पृथु मुनियों के वचनानुसार पृथिवी पर क्रोध करके धनुषबाण धारण करके दौड़ पड़े ॥९५-९६॥ राजा के भय से पृथिवी हाथी का रूप धारण करके पर्वत के दुर्गम प्रदेश में चरने लगी ॥९७॥ वे महाप्राज्ञ पृथिवी के रूप को नहीं देख पाये ब्राह्मण श्रेष्ठों ने महाप्राज्ञ राजा को बतलाया कि वह हाथी का रूप बनाये हुयी है ॥९८॥ उसके बाद राजा उस

ततःकुञ्जररूपां तामभिदुद्राव पार्थिवः। ताड्यमाना च सा तेन निशितैर्मार्गणैस्ततः ॥९९॥
हरिरूपं समास्याय पलायनपराऽभवत्। हरेरूपं समास्थाय अभिदुद्राव पार्थिवः॥१००॥
सोऽतिक्रुद्धो महाप्राज्ञो रोषारुणसुलोचनः। सुवाणैर्निशितैस्तीक्ष्णैराजघान स मेदिनीम् ॥१०१॥
आकुलव्याकुला जाता बाणाघातहता तदा। माहिषं रूपमास्थाय पलायनपराऽभवत्॥१०२॥
अभ्यधावत वेगेन बाणपाणिर्धनुर्धरः। सा गौर्भूत्वा द्विजश्रेष्ठाःस्वर्गमेव गता ध्रुवम्॥१०३॥
ब्रह्मणःशरणं प्राप्ता विष्णोश्चैव महात्मनः। रुद्रादीनां च देवानां त्राणस्थानं न विन्दति॥१०४॥
अलभन्ती भृशं त्राणं वैन्यमेवान्वविन्दत। तस्यपार्श्वं पुनःप्राप्ता बाणघातसमाकुला॥१०५॥
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा तं पृथुं वाक्यमब्रवीत्। त्राहि त्राहीति राजेन्द्र सा राजानमभाषत ॥१०६॥
अहं धात्री महाभाग सर्वाधारा वसुन्धरा। निहतायां मयि नृप निहतं लोकसप्तकम्॥१०७॥
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा तं पृथु वाक्यमब्रवीत्। उवाच चैनं राजानमवध्या स्त्री सदा नृप ॥१०८॥
स्त्रीणां वधे महत्पातं दृष्टमस्ति द्विजोत्तमैः। गवांवधे महत्पापं दृष्टमस्ति द्विजोत्तमैः॥१०९॥
मया बिना महाराज कथं धारयसे प्रजाः। अहं यदा स्थिरा राजंस्तदालोकाश्चराचराः॥११०॥

स्थिरत्वं यान्ति ते सर्वे स्थिरीभूता यदाह्यहम् ।
मां विना तु इमे लोका विनश्येयुश्चराचरः ॥१११॥

ततः प्रजा विनश्येयुर्धर्मनाशे समागते। कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्मया विना॥११२॥

मयि लोकाःस्थिरा राजन्मयेदं धार्यते जगत् ।
मद्विनाशे विनश्येयुःप्रजाःसर्वा न संशयः ॥११३॥

न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल श्रृणु देव वचो मम ॥११४॥

कुञ्जर रूप धारिणी के पीछे दौड़े। उस समय तीक्ष्ण वाणों से मारी जाती हुयी वह सिंह का रूप धारण करके भागने लगी। राजा सिंह का रूप धारण करके उसके पीछे दौड़े ॥९९-१००॥ उस समय राजा अत्यन्त क्रुद्ध थे क्रोध से उनकी आँखे लाल हो गयी थी। उन्होंने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से पृथिवी को मारा॥१०१॥ उस समय बाणों के प्रहार से पृथिवी घबरा गयी। वह भैंस का रूप धारण करके भागने लगी॥१०२॥ धनुर्धारी राजा वेग से दौड़ने लगे। गौ का रूप धारण करके वह स्वर्ग में चली गयी॥१०३॥ वह ब्रह्मा और विष्णु के शरण में गयी। वह रुद्र आदि देवताओं के स्थान में त्राण नहीं पायी ॥१०४॥ कहीं भी शरण नहीं पाने के कारण वह पृथु के ही शरण में गयी। बाण के प्रहार से व्याकुल बनी हुयी वह पृथु के पास चली गयी ॥१०५॥ उसने राजा से हाथ जोड़कर कहा— आप मेरी रक्षा करें रक्षा करें॥१०६॥ हे महाभाग! मैं सबों का आधार सबों की धात्री पृथिवी हूँ। राजन् मेरे मर जाने पर सातों लोक विनष्ट हो जायेंगे ॥१०७॥ त्रैलोक्य के द्वारा पूज्या वह हाथ जोड़कर राजा से कही राजन्! स्त्री को नहीं मारना चाहिए॥१०८॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने स्त्रियों और गौओं का वध करने का महान् पाप वतलाया है ॥१०९॥ राजन्! मेरे बिना आप प्रजाओं को कैसे धारण कर सकेंगे? राजन् जब तक मैं स्थिर हूँ तभी तक चराचर जीव हैं ॥११०॥ जब तक मैं स्थिर बनी हुयी हूँ तव तक वे स्थिर हैं मेरे बिना तो ये चराचर लोक विनष्ट हो जायेंगे ॥१११॥ उसके वाद मेरे नष्ट हो जाने पर प्रजायें विनष्ट हो जायेंगी। राजन् मेरे बिना आप प्रजा को कैसे धारण कर सकेंगे ॥११२॥ हे राजन्! मुझ पर ही लोक स्थिर है। मैं इस जगत् को धारण करती

उपायैश्च महाभाग सुसिद्धिं यान्त्युपक्रमाः। समालोक्य ह्युपायं त्वं प्रजा येन धरिष्यसि॥११५॥
मां हत्वा त्वं महाराज धारणे पालने सदा। पोषणे च महाप्राज्ञ मद्विना हि कथंनृप ॥११६॥
धरिष्यसि प्रजां चेमां कोपं यच्छत्वमात्मनः। अन्नमयी भविष्यामि धरिष्यामि प्रजामिमाम्॥११७॥
अहं नारी अवध्या च प्रायश्चित्तीभविष्यसि। अवध्यांतुस्त्रियं प्राहुस्तिर्यग्योनिगतामपि॥११८॥
विचार्यैव महाराज न धर्मं त्युक्तमर्हसि। एवं नानाविधैर्वाक्यैरुक्तो धात्र्या नराधिपः ॥११९॥
कोपमेन महाराज त्यज दारुणमेवहि ।
प्रसन्ने त्वयि राजेन्द्र तदा स्वस्था भवाम्यहम् ॥१२०॥
एवमुक्तस्तया राजापृथर्वैन्यःप्रजापतिः। तामुवाच महाभागां धरित्रीं द्विजसत्तमः ॥१२१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पृथूपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

पृथुरुवाच

हते चैव महापापे एकस्मिन्पापचारिणि। लोकाःसुखेन जीवन्ति साधवःपुण्यदर्शिनः ॥१॥
तस्मादेकः प्रहर्तव्यःपापिष्ठः पापचेतनः। तस्मात्त्वां हि हनिष्यामि सर्वसत्त्वप्रणाशिनीम् ॥२॥

हूँ। मेरा विनाश हो जाने पर तो प्रजायें निश्चित रूप से विनष्ट हो जायेंगी ॥११३॥ हे राजन् ! यदि आप कल्याण करना चाहते हैं तो मुझे न मारें। हे राजन् ! आप मेरी बात सुनें आप कल्याण करना चाहते हैं तो मुझे न मारें। हे राजन् ! आप मेरी बात सुनें ॥११४॥ सभी उपक्रम उपायों से सिद्ध होते हैं। आप उस उपाय का विचार करें; जिसके द्वारा आप प्रजाओं को धारण करेंगे ॥११५॥ हे महाराज ! मुझको मारकर मेरे विना आप प्रजाओं का धारण, पोषण तथा पालन कैसे कर सकेंगे ? आप इस प्रजा को कैसे धारण कर पायेंगे। अतएव आप अपना क्रोध त्याग दें। मैं अन्न स्वरूप होकर इस प्रजा को धारण करूँगी॥११६-११७॥ मैं नारी हूँ अतएव अवध्या हूँ। मुझको मारकर आप प्रायश्चित्ती हो जायेंगे। तिर्यग् योनि की भी स्त्रियों को अवध्या बतलाया गया है ॥११८॥ इस तरह से विचार करके आप धर्म का त्याग न करें। इस तरह से अनेक प्रकार के वाक्यों द्वारा कहे जाने पर ॥११९॥ महाराज आप इस भयङ्कर क्रोध को त्याग दें। राजेन्द्र ! आपके प्रसन्न हो जाने पर मैं स्वस्थ हो जाऊँगी ॥१२०॥ इस तरह से कहे जाने पर प्रजापति महाराज पृथु ने उस पृथिवी से कहा ॥१२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के दूसरे भूमिखण्ड के पृथु उपाख्यान के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

महाराज पृथु की पृथिवी के प्रति उक्ति

महाराज पृथु ने कहा— साधुजनों ने किसी एक महापापी के मार देने से यदि लोग सुखी हो जाते हैं तो उसे पुण्य बतलाया है ॥१॥ अतएव किसी पापी को मार देना ही चाहिए। अतएव सभी पापों को

त्वया बीजानि सर्वाणि लुप्तान्येतानि साम्प्रतम् ।
ग्रासं कृत्वा स्थिरीभूत्वा प्रजा हत्वा क्व यास्यसि ॥३॥
हते पापे दुराचारे सुखं जीवन्ति साधवः । तस्मात्पापा प्रहन्तव्या सत्यमेवं न संशयः ॥४॥
पालितव्यः प्रयत्नेन यस्माद्धर्मप्रवर्द्धते । भवत्या तु मूहत्पापं प्रजासंक्षयकारकम् ॥५॥
एकस्यार्थे न यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
लोकोपतापकं हत्वा न भवेत्तस्यापातकम् ॥६॥
यस्मिंस्तु निहते पाप एकस्मिन्स्वे परे तथा। बहवस्सुखमेधन्ते हन्याद्दुष्टं न पातकम् ॥७॥
प्रजानिमित्तं त्वामेव हनिष्यामि न संशयः । यदिमे पुण्यसंयुक्तं वचनं न करिष्यसि ॥८॥
जगतोऽस्य हितार्थाय साधु चैव वसुन्धरै । हनिष्ये त्वां शितैर्बाणैर्मद्वाक्यात्तु पराङ्मुखीम् ॥९॥
स्वीयेन तेजसा चैव पुण्यास्त्रैलोक्यवासिनीः। प्रजाश्चाहं धरिष्यामि धर्मेणापि न संशयः ॥१०॥
मच्छासनं समास्थाय धर्मयुक्तं बसुन्धरे। इमाः प्रजा आज्ञया मे सञ्जीवय सदैव हि ॥११॥
एवं मे शासनं भद्रे अद्य यर्हि करिष्यसि। ततःप्रीतोऽस्मिते नित्यं गोपायिष्यामि सर्वदा ॥१२॥
त्वामेव हि न सन्देह अन्ये चैव नृपोत्तमाः । धेनुरूपेण सा पृथ्वी बाणाञ्चितकलेवरा ॥१३॥
उवाचेदं पृथुं वैन्यं धर्माधारं महामतिम् ॥१४॥

धरण्युवाच

तवादेशं महाराज सत्यपुण्यार्थसंयुतम्। प्रजानिमित्तमत्यर्थं विधास्यामि न संशयः ॥१५॥
उद्यमेनापि पुण्येन उपायेन नरेश्वर । समारम्भाःप्रसिद्ध्यन्ति पुण्याश्चैवाप्युक्रमाः ॥१६॥

विनष्ट करने वाली मैं तुम्हारा वध करूँगा ॥२॥ तुमने इस समय सभी बीजों को छिपा लिया है । उन सवों को खाकर स्थिर होकर तुम प्रजाओं को मारकर तुम कहाँ जाओगी ॥३॥ दुराचारी पापी को मार देने से साधुजन सुखपूर्वक जीवित रहते हैं । अतएव पापियों को मार ही देना चाहिए यही सत्य है ॥४॥ जिसके द्वारा धर्म बढ़ता है उसका प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए । तुमने तो प्रजाओं का विनाश करने वाले महापाप को किया है ॥५॥ अपने अथवा दूसरे के किसी एक के लिए जो कि लोक को सन्तप्त करने वालों को मारता है उसको कोई पाप नहीं लगता है ॥६॥ अपने अथवा पराये किसी पापी के मारने से बहुत से लोग सुखी होते हैं; अतएव दुष्ट को मारना चाहिए उसमें कोई पाप नहीं है ॥७॥ यदि तुम मेरे पुण्यमय बातों को नहीं मानोगी तो प्रजाओं की रक्षा के लिए निश्चित रूप से तुम्हें मार दूँगा ॥८॥ हे पृथिवी ! संसार का कल्याण करने के लिए यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो तुम्हें तीक्ष्ण बाणों से निश्चित रूप से मार दूँगा ॥९॥ मैं अपने पुण्य तथा तेज से पुण्यमयी त्रैलोक्य वासिनी प्रजाओं को अपने धर्म से धारण करूँगा॥१०॥ हे पृथिवी ! मेरी धर्मयुक्त आज्ञा को मानकर तुम इन प्रजाओं का सदा पालन करो ॥११॥ हे भद्रे ! यदि तुम मेरी इस आज्ञा का पालन करोगी तो तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी सदा रक्षा करूँगा ॥१२॥ दूसरे भी राजागण तुम्हारी रक्षा करेंगे । इसके बाद बाणों से सुशोभित शरीर वाली गौरूप धारिणी पृथिवी ने धर्म के आधार महाबुद्धिमान वेन के पुत्र पृथु से कहा ॥१३-१४॥ **पृथिवी ने कहा—** महाराज आपके सत्य और पुण्य से युक्त आदेश को प्रजा के लिए मैं अवश्य पालन करूँगी ॥१५॥ पवित्र भी उपक्रम और कार्य उद्यम और पवित्र उपाय के ही द्वारा सिद्ध होते हैं ॥१६॥ आप उपाय को बतलायें जिसके द्वारा आप सत्यप्रतिज्ञ

उपायं पश्य राजेन्द्र येन त्वं सत्यवान्भवेः । धारयेथाःप्रजाश्चेमा येनसर्वाःप्रवर्द्धयेः ॥१७॥
संलग्नाश्चोत्तमा बाणा ममाङ्गे ते शिलाशिताः ।
समुद्धर स्वयं राजंश्छल्यन्त्रिभृतमेव मे ॥
समां कुरु महाराज तिष्ठेन्मयि यथा पयः ॥१८॥

सूत उवाच

धनुषोऽग्रेण ताञ्छैलान्नानारूपान्गुरूंस्तथा। उत्सारयंस्ततःसर्वा समरूपां चकार सः ॥१९॥
तदा प्रभृति ते शैला बृद्धिमापुर्द्विजोत्तमाः । तस्या अङ्गात्स्वयं बाणान्स्वकीयान्नृपनन्दनः ॥२०॥
समुद्धृत्य ततो वैन्यःप्रीतेन मनसा तदा । गर्ताश्च कन्दराश्चैव बाणाघातैःसमीकृताः ॥२१॥
एवं पृथ्वीं समां सर्वां चकार पुण्यवर्द्धनः । समीकृत्य महाभागो वत्सं तस्याव्यकल्पयत् ॥२२॥
मनुं स्वायम्भुवं पूर्वं परिचिन्त्य पुनःपुनः। अतीतेष्वथ सर्वेषु मन्वन्तरेषु सत्तमाः ॥२३॥
विषमत्वं गता भूमिःपन्था नासीच्च कुत्रचित् ।
समानि विषमाण्येवं स्वयमासन्द्विजोत्तमाः ॥२४॥
पूर्वं मनोश्चाक्षुषस्य प्राप्ते चैवान्तरे तदा। जाते पूर्वविसर्गे च विषमे च धरातले ॥२५॥
ग्रामाणां च पुराणां च पत्तनानां तथैव च। देशानां क्षेत्रपन्नानां मर्यादा न हि दृश्यते॥२६॥
कृषिर्नैव न वाणिज्यं न गोरक्षा प्रवर्तते । नानृतं भाषते कश्चिन्न लोभो न च मत्सरः ॥२७॥
नाभिमानं च वै पापं न करोति कदा किल ।
वैवस्वतस्य सम्प्राप्ते अन्तरे द्विजसत्तमः ॥२८॥
वैन्यस्य सम्भवात्पूर्वं प्रजानामेव सम्भवः । इमाःप्रजा द्विजाःसर्वा निवासं समरोचयन्॥२९॥
क्वचिद्भूमौ गिरौ क्वापि नदीतीरेषु वै तदा ।
कुञ्जेषु सर्वतीर्थेषु सागरस्यतटेषु च ॥३०॥

वनें । सम्पूर्ण प्रजा का धारण कर सकें और उन सबों की समृद्धि कर सकें ॥१७॥ आपके तीक्ष्ण शिलारूप और उत्तम वाण मेरे अङ्गों में लगे हैं । आप उन सबों को स्वयं निकालें वे मुझको अत्यधिक दुःख दे रहे हैं । महाराज आप मुझको समतल बना दें जिससे कि मुझमें जल टिक सके ॥१८॥ **सूतजी ने कहा**— उसके वाद राजा ने अपने धनुष के अग्रभाग से अनेक भारी पर्वतों को हटाकर पृथिवी को समतल वना दिया ॥१९॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! उसी समय से वे पर्वत वृद्धि को प्राप्त किए । महाराज पृथु ने पृथिवी के अङ्गों से अपने बाणों को स्वयं निकालकर प्रसन्न मन से गढों और कन्दराओं को बाणों के प्रहार से समतल कर दिया ॥२०-२१॥ इस तरह पृथिवी को समतल बनाकर महाप्राज्ञ पृथु ने उसके वत्स की कल्पना की॥२२॥ सर्वप्रथम उन्होंने बार-बार विचार करके स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाया । हे द्विजश्रेष्ठों ! बीते सभी मन्वन्तरों में पृथिवी विषमा थी कहीं भी रास्ता नहीं था । इसी तरह से समविषम पृथिवी थी ॥२३-२४॥ पहले के चाक्षुष मन्वन्तर में और उसके सृष्टिकाल में जब धरातल विषम था उस समय ग्रामों, नगरों, पत्तनों, देशों तथ क्षेत्रों की कोई सीमा नहीं थी ॥२५-२६॥ उस समय कृषि, व्यापार और गोरक्षा भी नहीं होती थी । कोई न तो झूठ बोलता था, न लोभ कोई करता था और न द्वेष करता था ॥२७॥ कोई भी कभी अभिमान या पाप नहीं करता था जब वैवस्वत मन्वन्तर हुआ तो वैन्य (पृथु) के ही उत्पन्न से सर्वप्रथम प्रजाएँ हुयीं।

निवासं चक्रिरे सर्वाःप्रजाःपुण्येन वै तदा । तासामाहारः सञ्जात फलं मूलं तथामधु॥३१॥
महताकृच्छ्रेण तासामाहारश्च द्विजोत्तमाः । पृथुर्वैन्यः समालोक्य प्रजानां कष्टमेव हि॥३२॥
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सःकल्पितस्तेन भूभुजा। स्वपाणिः कल्पितस्तेन पात्रमेवं महामते॥३३॥
सपृथुःपुरुषव्याघ्रो दुदोह वसुधां तदा। सर्वसस्यमयंधीरं स सर्वान्नं गुणान्वितम् ॥३४॥
तेन पुण्येन चान्नेन सुधाकल्पेन ताः प्रजाः । तृप्तिं नयन्ति देवान्वै प्रजाःपितृंस्तथाऽपरान्॥३५॥

प्रसादात्तस्य वैन्यस्य सुखं जीवन्ति ताः प्रजाः ।
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दत्त्वा चान्नं प्रजास्ततः ॥३६॥
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण अतिथिभ्यस्तथैव च ।
पुण्यास्ता भुञ्जते पश्चात् प्रजाः सर्वा द्विजोत्तमाः ॥३७॥

यज्ञैश्चान्ये यजन्त्येव तर्पयन्ति जनार्दनम्। तेन चान्नेन देवेशं तृप्तिं गच्छन्ति देवताः ॥३८॥
पुनर्वर्षति पर्जन्यः प्रेषितो माधवेन च। तस्मात्पुण्या महौषध्यः सम्भवन्ति सुपुण्यदाः ॥३९॥
सस्यजातानि सर्वाणि पृथोः प्रभृति नान्यथा। तेनान्नेन प्रजाः सर्वा वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ॥४०॥
ऋषिभिश्चैव मिलितैर्दुग्धा चेयं वसुन्धरा। पुनर्विप्रैर्महाभाग्यैः सत्यवद्भिः सुरैस्तथा ॥४१॥

सोमो वत्सस्वरूपोऽभूद्दोग्धा देवगुरुः स्वयम् ।
ऊर्जं क्षीरं पयः कल्पं येन जीवन्ति चामराः ॥४२॥

तेषामन्नेन पुण्येन सर्वे जीवन्ति जन्तवः । सत्यपुण्ये प्रवर्त्तन्ते ऋषिदुग्धा वसुन्धरा ॥४३॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यथा दुग्धा इयं धरा। पितृभिश्च पुरा वत्स विधिना येन वै तदा॥४४॥

उस मय ये प्रजायें और ब्राह्मण चाहने लगे ॥२८-२९॥ उनलोगों ने कहीं भूमि पर, कहीं पर्वत पर, कही नदी के तट पर, कुञ्जों में, सभी तीर्थों में, सागर के तट पर सभी प्रजाएँ पुण्य के कारण निवास की । उन सबों का आहार फल, मूल बना ॥३०-३१॥ हे ब्राह्मण ! उनसबों को आहार बड़े कष्ट से मिलता था । उन सबों के कष्ट का विचार करके वेन के पुत्र पृथु ने मनु को वत्स बनाया । अपनी हथेली को ही उन्होंने पात्र बनाया ॥३२-३३॥ उस समय पुरुषों में श्रेष्ठ पृथु ने पृथिवी का दोहन किया । वह दुग्ध सम्पूर्ण सस्यमय, गुणों से युक्त सभी प्रकार के अन्नमय हो गया ॥३४॥ उस अमृत के सदृश पवित्र अन्न से वे प्रजायें देवताओं, पितरों तथा दूसरे जीवों को तृप्त करते हैं ॥३५॥ वैन्य की कृपा से वे प्रजाएँ सुखपूर्वक जीने लगीं । उसके बाद से प्रजाएँ देवताओं तथा पितरों को अन्न प्रदान करके विशेष रूप से ब्राह्मणों और अतिथियों को उसे प्रदान करके तज्जन्य पुण्य को वे सब भोगती हैं ॥३६-३७॥ दूसरी प्रजाएँ यज्ञों के द्वारा भगवान् जनार्दन की पूजा करती हैं । उस अन्न के द्वारा देवेश तथा देवता तृप्त होते हैं ॥३८॥ उसके बाद श्रीभगवान् से प्रेषित होकर मेघ वर्षा करते हैं । उससे अत्यन्त पुण्यप्रद महौषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥३९॥ सभी सस्य पृथु से ही उत्पन्न होना प्रारम्भ किए । उसी अन्न से आज भी सारी प्रजाएँ जीवित रहती हैं।॥४०॥ इसके बाद एकत्रित होकर महाभाग्यवान् सत्यवादी ऋषियों तथा देवताओं ने पृथिवी का दोहन किया । उस समय सोम ही वत्स हुए और बृहस्पति दोग्धा हुए । उन लोगों ने पृथिवी से ओजरूपी दुग्ध का दोहन किया। उसी से सभी देवता जीवित रहते हैं ॥४२॥ उन सबों के पवित्र अन्न से सभी जन्तु जीते हैं और सत्य तथा पुण्य की प्रवृत्ति होती है । ऋषियों के द्वारा दूह ली जाने पर पृथिवी जिस तरह से आगे दूही गयी

सुपात्रं राजतंकृत्वा स्वधाक्षीरं सुधान्वितम् । परिकल्प्य यमं वत्सं दोग्धा चान्तक एव सः ॥४५॥
नागैः सर्पैस्ततो दुग्धा तक्षकं वत्समेव च। अलाबुपात्रमादाय विषं क्षीरं द्विजोत्तमाः ॥४६॥
नागानां तु तथा दोग्धा धृतराष्ट्रःप्रतापवान् । सर्पा नागा द्विजश्रेष्ठास्तेनवर्तन्ति चातुलाः ॥४७॥
नागा वर्तन्ति तेनापि ह्यत्युग्रेण द्विजोत्तमाः । विषेण घोररूपेण सर्पाश्चैव भयानकाः ॥४८॥
तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया महाबलाः। तदाहारास्तदाचारस्तद्वीर्यास्तत्पराक्रमाः ॥४९॥
अथातःसम्प्रवक्ष्यामि यथा दुग्धा वसुन्धरा । असुरैर्दानवैःसर्वैःकल्पयित्वा द्विजोत्तमाः ॥५०॥
पात्रमत्रान्नसदृशमायशं सर्वकामिकम् । क्षीरं मायामयंकृत्वा सर्वारातिविनाशनम् ॥५१॥
तेषामभूत्स वै वत्सो विरोचनः प्रतापवान्। ऋत्विग्द्विमूर्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥५२॥
तया हि मायया दैत्याः प्रवर्तन्ते महाबलाः। महाप्राज्ञा महाकाया महातेजः पराक्रमाः ॥५३॥
तद्बलंपौरुषं तेषां तेन जीवन्ति दानवाः। तयैते माययाद्यापि सर्वमायाद्विजोत्तमाः ॥५४॥
प्रवर्तन्तेऽमितप्रज्ञास्ते तदेषामिदं बलम्। तथा तु दुग्धा यक्षैःसा सर्वाधारा सुमेदिनी ॥५५॥
इतिशुश्रुम विप्रेन्द्राः पुराकल्पे महात्मभिः। अन्तर्धानमयं क्षीरमयस्पात्रे सुविस्तरे ॥५६॥
वैश्रवणो महाप्राज्ञस्तदा वत्सःप्रकल्पितः। मणिधरस्य पितापुण्यःप्राज्ञो बुद्धिमतांवरः ॥५७॥
दोग्धा रजतनाभस्तु तस्याश्चासीन्महामतिः। सर्वज्ञः सर्वधर्मज्ञो यक्षराजसुतोबली ॥५८॥
अष्टबाहुर्महातेजा द्विशीर्षःसुमहातपाः । यक्षावर्तन्ति तेनापि सर्वदेव द्विजोत्तमाः ॥५९॥
पुनर्दुग्धा इयंपृथ्वी राक्षसैश्च महाबलैः। तथाचैषा पिशाचैश्च सातुरैर्दग्धवारिभिः ॥६०॥

उसे मैं बतलाता हूँ । पितरों ने वत्स विधि से पृथिवी का दोहन किया । उस समय वत्स ही वत्स हुए और मृत्यु ही दोग्धा हुए पितरों ने रजत पात्र में स्वधा रूपी क्षीर का दोहन किया ॥४३-४५॥ उसके पश्चात् नागों तथा सर्पों ने तक्षक को वत्स बनाकर अलावुपात्र में पृथिवी से विषरूपी दूध दूहा ॥४६॥ नागो का दोधा धृतराष्ट्र था । उसी के कारण सर्प और नाग अतुल विसैले हुए । हे द्विजोत्तमों ! नाग भी अत्यन्त उग्र हैं। सर्प भी उग्र विष के कारण भयङ्कर हैं ॥४७-४८॥ उस विष के ही कारण वे सभी उग्र, महाकाय, महाबलवान्, विष का ही आहार करने वाले, और उसी का आचरण करने वाले हैं । उनका वीर्य और पराक्रम विष ही हैं ॥४९॥ अब मैं बतला रहा हूँ कि पृथिवी असुरों, तथा दानवों के द्वारा कैसी कल्पना करके दूही गयी ॥५०॥ इन सबों ने अन्न के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले लौह पात्र में सभी शत्रुओं को जीतने वाली माया का दोहन किया ॥५१॥ उन सबों ने अत्यन्त प्रतापी विरोचन को वत्स बनाया और दोग्ध दैत्यों के ऋत्विक द्विमूर्धा हुए ॥५२॥ इसीलिए दैत्य माया के द्वारा कार्य करते हैं । वे सव पराक्रमी, महातेजस्वी, महाकाय तथा महाप्राज्ञ होते हैं ॥५३॥ माया ही उन दानवों का बल और पौरुष हैं । वे उसी के द्वारा जीते हैं । आज भी वे उस माया से सभी प्रकार की मायाओं में निपुण हैं ॥५४॥ अमित बुद्धि सम्पन्न वे मायावी माया ही उन सबों का बल है । उसके बाद यक्षों ने सबों के आधार भूत पृथिवी का दोहन किया ॥५५॥ हे विप्रेन्द्रों ! यह मैंने पूर्वकल्प में महात्माओं से सुना है । उन लोगों ने विस्तृत लौहमय पात्र में तिरस्करिणी विद्या का दोहन किया ॥५६॥ उस समय कुबेर को वत्स बनाया गया। उसके दोग्ध मणिधर नामक यक्ष के पिता प्राज्ञ तथा बुद्धिमान रजतनाभ हुए । वे सर्वज्ञ, सभी धर्मों के ज्ञाता तथा यक्षराज के पुत्र थे ॥५७-५८॥ वे महातपस्वी थे, उनकी आठ भुजाएँ और दो शिर थे । हे द्विजोत्तमों!

उत्प्लुतं नृकपालं तं शावपात्रमयस्कृतम्। सुप्रजां भोक्तुकामास्ते तीव्रकोपपराक्रमाः ॥६१॥
दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीन्महाबलः। सुमालीनामवत्सश्च शोणितं क्षीरमेव च॥६२॥
रक्षांसि यातुधानाश्च पिशाचाश्च महाबलाः। यक्षास्तेन च जीवन्ति भूतसङ्घाश्च दारुणः॥६३॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा। कृत्वा वत्सं सुविद्वांसं तैश्च चित्ररथं पुनः॥६४॥
दुदुहुःपद्मपात्रे तु गान्धर्वं गीतसङ्कुलम्। सुरुचिर्नामगन्धर्वस्तेषामासीन्महामतिः ॥६५॥
दोग्धा पुण्यतमश्चैव तस्याश्च द्विजसत्तमाः। शुचिगीतं महात्मानःसुक्षीरं दुदुहुस्तदा॥६६॥
गन्धर्वास्तेन जीवन्ति यक्षाश्चाप्सरसस्तथा। पर्वतैश्च महापुण्यैर्दुग्धाचेयं वसुन्धरा॥६७॥
रत्नानिविविधान्येव ओषधीश्चामृतोपमाः। वत्सश्चैव महाभागो हिमवान्परिकल्पितः॥६८॥

मेरुर्दोग्धा च सञ्जातःपात्रंकृत्वा तु शैलजम्।
तेन क्षीरेण संवृद्धाःशैलाःसर्वेमहोच्छयाः ॥६९॥

पुनर्दुग्धा महावृक्षैः पुण्यैःकल्पद्रुमादिभिः। पालाशं पात्रमानिन्युश्छिन्नदग्धप्ररोहणम्॥७०॥
शालो दुदोह पुण्याङ्ग प्लक्षोवत्सोऽभवत्तदा। गुह्यकैश्चारणैःसिद्धैर्विद्याधरगणैस्तदा ॥७१॥
दुग्धाचेयं सर्वधात्री सर्वकामप्रदायिनी। यं यमिच्छन्ति ये लोकाः पात्रवत्सविशेषणैः॥७२॥
तैस्तैस्तेषां ददात्येव क्षीरं सद्भावमीदृशम्। इयं धात्री विधात्री तु इयं श्रेष्ठा वसुन्धरा॥७३॥
सर्वकामदुधा धेनुरियं पुण्यैरलङ्कृता। इयंज्येष्ठा प्रतिष्ठा तु इयं सृष्टिरियं प्रजा॥७४॥
पावनी पुण्यदा पुण्या सर्वशस्यप्ररोहिणी। चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठायोनिरेव च॥७५॥

यक्ष उसी विद्या का उपभोग करते हैं ॥५९॥ उसके बाद इस पृथिवी का दोहन महाबलवान् राक्षसों, पिशाचो तथा भूतों ने किया। उन सबों ने लोहे के पात्र में और मनुष्य की खोपड़ी में पृथिवी को दूहा। तीव्र कोप तथा तीव्र पराक्रम वाले वे प्रजाओं को खा जाना चाहते थे ॥६०-६१॥ उनसबों के दोग्धा महाबलवान् रजतनाभ थे। उन सबों ने सुमाली को वत्स बनाया और खून रूपी दूध को दूहा ॥६२॥ उस खून से ही राक्षस, दानव, पिशाच, यक्ष, तथा भयङ्कर भूत समुदाय जीते हैं ॥६३॥ उसके बाद गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने पृथिवी का दोहन किया। उनलोगों ने चित्ररथ को वत्स बनाया और पद्मपात्र में गन्धर्व विद्या तथा गीत समूह का दोहन किया। उन महात्माओं ने पवित्र गीत रूपी दूध दूहा ॥६६॥ उसीसे गन्धर्व, यक्ष और अप्सराएँ जीते हैं। महापवित्र पर्वतों ने भी इस पृथिवी का दोहन किया ॥६७॥ उन सबों ने हिमवान् को वत्स बनाया तथा अनेक प्रकार के रत्न तथा अमृत के समान औषधियों का दोहन किया ॥६८॥ उन सबों के दोग्धा सुमेरु ने शिलामय पात्र में पृथिवी का दोहन किया। उस दुग्ध से पर्वत बहुत बड़े-बड़े हो गये॥६९॥ उसके पश्चात् कल्पवृक्ष आदि महावृक्षों ने पृथिवी का दोहन किया। उनसबों ने पत्तों का पात्र बनाया और कट जाने और जल जाने पर भी प्ररोह (बढना) रूपी दूध को दूहा। पवित्र शाल वृक्ष ने दोहन किया और उन सबों ने पाकड़ वृक्ष को वत्स बनाया। उसके बाद गुह्यक, चारण, सिद्ध तथा विद्याधरों ने सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली सर्वधात्री पृथिवी का दोहन किया। जो-जो संसारी जीव अपने पात्र तथा वत्स विशेष के द्वारा जिन-जिन वस्तुओं की इच्छा करते हैं उन सबों को यह पृथिवी रूपी गौ वहीं-वहीं क्षीर प्रदान करती है। यही धात्री, विधात्री और श्रेष्ठ वसुन्धरा है ॥७०-७३॥ पुण्यों से सुशोभित यह पृथिवी रूपी गौ समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। यही ज्येष्ठा, प्रतिष्ठा, सृष्टि और प्रजा है ॥७४॥ यह

महालक्ष्मीरियं विद्या सर्वविश्वमयी सदा। सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वबीजप्ररोहिणी ॥७६॥
सर्वेषां श्रेयसां माता सर्वलोकधरा त्वियम्। पञ्चानामपि भूतानां प्रकाशोरूपमेव च ॥७७॥
आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। मधुकटैभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता ॥७८॥
तेनेयं मेदिनोनाम प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः। ततोऽभ्युपगमात्प्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य सत्तमाः ॥७९॥
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवीपृथ्वीति चोच्यते। तेन राज्ञा द्विजश्रेष्ठाः पालितेयं वसुन्धरा ॥८०॥
ग्रामाधारा गृहाढ्या च पुरपत्तनमालिनी। सस्याकरवती स्फीता सर्वतीर्थमयी द्विजाः ॥८१॥
एवं वसुमतीदेवी सर्वलोकमयी सदा। एवं प्रभावो राजेन्द्रः पुराणे परिपठ्यते ॥८२॥
पृथुर्वैन्यो महाभागः सर्वकर्मप्रकाशकः। यथाविष्णुर्यथाब्रह्मा यथारुद्रः सनातनः ॥८३॥
नमस्कार्यास्त्रयो देवा देवाद्यैर्ब्रह्मवादिभिः। ब्राह्मणैर्ऋषिभिः सर्वैर्नमस्कार्यो नृपोत्तमः ॥८४॥
वर्णानामाश्रमाणां यः स्थापकः सर्वलोकधृक्। पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेप्सुभिः ॥८५॥
आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। धनुर्वेदार्थिभिर्योधै सदैव जयकाङ्क्षिभिः ॥८६॥
नमस्कार्यो महाराजो वृत्तिदाता महीभृताम्। एवं पात्रविशेषाश्च मयाख्याता द्विजोत्तमाः ॥८७॥
वत्सानां सुविशेषाश्च दोग्धृणां भवदग्रतः। क्षीरस्यापि विशेषं तु यथोद्दिष्टंहि भृभुजा ॥८८॥
समाख्यातं तथाग्रे च भवतां वै यथार्थतः। धन्यं यशस्यमारोग्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥८९॥

पवित्र करने वाली, पुण्य देने वाली, पवित्र, सभी सस्यों को बढ़ाने वाली है । यह सम्पूर्ण चराचर की प्रतिष्ठा का मूल है ॥७५॥ यही महालक्ष्मी विद्या तथा सर्वविश्वमयी है । यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली गौ, तथा सभी जीवों को बढ़ाने वाली है ॥७६॥ यह सभी कल्याणों की माता है, सभी लोकों को धारण करने वाली है । यह पाँचों भूतों के प्रकाश रूप है ॥७७॥ यह समुद्र के भीतर विद्यमान थी । इसे मोदिनी कहा गया है क्योंकि यह मधु तथा कैटभ के मेदस से भर गयी थी ॥७८॥ इसीलिए ब्रह्मवादीगण इसको मोदिनी कहते हैं । उसके वाद प्राज्ञ पृथु के द्वारा स्वीकृत होने के कारण यह उनकी पुत्री हो गयी । इसीलिए पृथिवी को पृथ्वी कहते हैं । हे श्रेष्ठ द्विजों ! महाराज पृथु ने पृथिवी का पालन किया ॥७९-८०॥ यह पृथिवी, ग्रामों के आधार गृहों से परिपूर्ण, नगरों एवं पत्तनों (छोटे ग्रामों) से सुशोभित है । यह सस्यों के आकर स्वरूपिणी तथा स्फीत है । तथा सर्वतीर्थमयी है ॥८१॥ इसी तरह से सर्वलोकमयी पृथिवी देवी सदा रहती है । हे राजेन्द्र ! पृथिवी का इस प्रकार का प्रभाव पुराणों में पढ़ा जाता है ॥८२॥ वेन के पुत्र महाभाग पृथु सभी कर्मों के प्रकाशक हैं । जिस तरह सनातन ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ब्रह्मवादि आदि देवताओं ब्राह्मणों एवं ऋषियों के द्वारा नमस्काया उसी तरह से ब्राह्मणों एवं देवताओं के द्वारा ये राजश्रेष्ठ नमस्कार्य हैं ॥८३-८४॥ जो सभी वर्णों एवं धर्मों के स्थापक हैं तथा सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाले हैं । राजाओं तथा राजत्व प्राप्त करना चाहने वालों के द्वारा पृथु राजा नमस्कार्य हैं । धनुर्वेद को चाहने वाले योधाओं तथा विजय प्राप्त करना चाहने वालों के द्वारा राजाओं को वृत्ति प्रदान करने वाले महाराज पृथु नमस्कार्य हैं । हे द्विजोत्तमों ! इस प्रकार से मैंने पात्र दिशेषों का वर्णन किया ॥८५-८७॥ आपलोगों के समक्ष वत्स विशेष तथा दोग्धा विशेषों का भी मैंने वर्णन किया और क्षीर विशेषों का भी मैंने वर्णन किया । मैंने राजाओं का भी यथार्थ वर्णन किया । यह प्रसङ्ग धन्य, यश प्रदान करने वाला, आरोग्य प्रदान करने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है ॥८८-८९॥ हे द्विजेतमों ! वेन के पुत्र पृथु का

पृथोर्वैन्यस्य चरितं यःशृणोति द्विजोत्तमाः । तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥९०॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥९१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पृथूपाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

तीसवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

योऽसौ वेनस्त्वयाऽख्यातःपापाचारेण वर्तितः ।
तस्य पापस्य का वृत्तिः किं फलं प्राप्तवान्द्विज ॥१॥
चरित्रं तस्य वेनस्य समाख्याहि यथापुरा । विस्तरेण विदांश्रेष्ठ त्वं न एतन्महामते ॥२॥

सूत उवाच

चरित्रं तस्य वेनस्य वैन्यस्यापि महात्मनः । प्रवक्ष्यामि सुपुण्यं च यथान्यायं श्रुतं पुरा ॥३॥
जाते पुत्रे महाभागे तस्मिन्पृथौ महात्मनि । विमलत्वं गतो राजा धर्मत्वं गतवान्पुनः ॥४॥
महापापानि सर्वाणि अर्जितानि नराधमैः । तीर्थसङ्गप्रसङ्गेन तेषां पापं प्रयाति च ॥५॥
सतांसङ्गात्प्रजायेत पुण्यमेव न संशयः । पापानां तु प्रसङ्गेन पापमेव प्रजायते ॥६॥
सम्भाषाद्दर्शनात्स्पर्शादासनाद्भोजनात्किल । पापिनां सम्भवाच्चैव किल्विषं परिसञ्चरेत् ॥७॥
तथापुण्यात्मकानां च पुण्यमेव प्रसञ्चरेत् । महातीर्थप्रसङ्गेन पापाःशुध्यन्ति नान्यथा ॥८॥

चरित्र जो सुनता है, उसको प्रतिदिन गङ्गास्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥९०॥ सभी पापों से विशुद्ध बना हुआ वह विष्णु लोक में जाता है ॥९१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के पृथु उपाख्यान नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

वेन का विस्तार पूर्वक चरित्र वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे द्विज ! आपने जिस वेन को बतलाया है । उसके पापाचरण तथा पाप की वृत्ति क्यों हुयीं और उसका फल क्या हुआ ?॥१॥ आप पहले के ही समान उसके चरित का वर्णन करें। हे विद्वानों में श्रेष्ठ ! उसे आप विस्तार से बतलायें ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** उस वेन तथा महात्मा वैन्य (पृथु) के पवित्र चरित्र को जैसा मैंने सुना है, मैं वैसा ही कहूँगा ॥३॥ जब वेन के पुत्र महाभाग पृथु उत्पन्न हुए तो राजा वेन विमल हो गये और वे धर्म को प्राप्त कर लिए ॥४॥ नराधम जिन महापापों को करता है, वे पाप तीर्थों का सम्बन्ध हो जाने पर विनष्ट हो जाते हैं ॥५॥ सज्जनों के सङ्ग के कारण उसके पुण्य उदित हो जाते हैं । किन्तु पापियों का सम्बन्ध होने पर केवल पाप ही उत्पन्न होता है ॥६॥ बातचित करने से, देखने से, स्पर्श करने से, एक आसन पर बैठने से तथा भोजन करने से पापियों के पाप से जन्य होने

पुण्यां गतिंप्रयान्त्येते निर्द्धूताशेषकल्मषाः ॥९॥

ऋषय ऊचुः

तत्कथं यान्ति मे पापाःपरां सिद्धिं द्विजोत्तम ।
ततो विस्तरतो ब्रूहिश्रोतुं श्रद्धा प्रवर्तते ॥१०॥

लुब्धकाश्च महापापाःसञ्जाता दासधीवरा। रेवा च यमुना गङ्गा तासामम्भसि संस्थिताः ॥११॥

ज्ञानतोऽज्ञानतःस्नात्वा सङ्क्रीडन्ते च वै जले ।
महानद्याःप्रसङ्गेन ते यान्ति परमां गतिम् ॥१२॥

दासत्वं पापसङ्घातं परित्यज्य व्रजन्ति ते। पुण्यतोयप्रसङ्गाच्च ह्याप्लुताःसर्वएव ते ॥१३॥
महानद्याःप्रसङ्गाच्च अन्यासां नैव सत्तमाः । महापुण्यजनस्यापि पापंनश्यति पापिनाम्॥१४॥
प्रसङ्गाद्दर्शनात्स्पर्शन्नात्र कार्या विचारण। अत्रार्थे श्रूयते विप्रा इतिहासोऽघनाशनः ॥१५॥
तं वो ह्यद्य प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यप्रदायकम् । कश्चिदस्ति मृगव्याधः सुलोभाख्यो महावने ॥१६॥
श्वभिर्वागुरिजालैश्च धनुर्बाणैस्तथैव च। मृगान्घातयतेनित्यं पिशितास्वाद लम्पटः ॥१७॥
एकदा तु सुदुष्टात्मा वाणपाणिर्धनुर्धरः। श्वभिःपरिवृतोदुर्गं वनं विन्ध्यस्य वै गतः ॥१८॥
मृगान्रुरून्वराहांश्च भीतान्सूदितवान्बहून्। रेवातीरं समासाद्य कश्चिच्छफरघातकः ॥१९॥
शफरान्सूदयित्वा स निर्जगाम बहिर्जलात्। मृगव्याधस्यलोभस्य भयत्रस्ता ततोमृगी ॥२०॥
जीवत्राणपरा साऽर्ता भीता चलितचेतना । त्वरमाणा पलायन्ती रेवातीरं समाश्रिता ॥२१॥

से पाप का दूसरे में संचार होता है ॥७॥ उसी तरह जो पुण्य पुरुष हैं उनका पुण्य का भी दूसरे के प्रति संचरण उसी प्रकार से होता है ॥८॥ पापों की शुद्धि महातीर्थ के प्रसङ्ग से ही होती है दूसरे प्रकार से नहीं॥८॥ पापों के विनष्ट हो जाने से वे पुण्य गति को प्राप्त कर लेते हैं ॥९॥ **ऋषियों ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! तो फिर पापी जीव मुक्ति को कैसे प्राप्त करते हैं ? आप इसको विस्तार पूर्वक बतलायें, उसे सुनने के लिए हमलोगों की श्रद्धा बढ़ रहीं है ॥१०॥ व्याध तथा दास धीवर ये महापापी होते हैं । वे भी रेवा (नर्मदा), गङ्गा या यमुना नदी के जल में स्थित होकर जानकर अथवा बिना जाने ही जल में क्रीड़ा करते हैं । किन्तु इन महानदियों के सम्बन्ध के कारण वे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥११-१२॥ वे अपने पाप समूह रूप दासता का परित्याग करके पवित्र जल के पूर्ण रूप से सम्बन्ध के कारण मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ महानदियों के सम्बन्ध से दूसरे का नहीं अपितु महापुण्यवान् मनुष्य के भी पाप विनष्ट होते हैं ॥१४॥ उन नदियों के दर्शन, स्पर्श तथा सम्बन्ध होने से पापों का नाश होता है, यह निश्चित है । हे विप्रो ! इस विषय में एक पाप विनाशक इतिहास सुना जाता है ॥१५॥ उस पुण्य प्रदान करने वाले इतिहास को मैं आज सुना रहा हूँ । कोई सुलोभ नामक व्याध महान् वन में निवास करता था ॥१६॥ मांस के आस्वाद का लोभी वह कुत्तों, जालों तथा धनुष बाणों से नित्य ही मृगों को मारने का काम करता था॥१७॥ एक बार वह दुष्ट कुत्तों के साथ हाथ में धनुष बाण धारण करके विन्ध्य वन में गया ॥१८॥ उसने बहुत से भयभीत मृगों, रुरुओं तथा सूकरों को मारा । कोई मछलियों को मारने वाला रेवा के तट पर आकर ॥१९॥ मछलियों को मार कर वह जल से बाहर निकला । उसी समय सुलोभ नामक मृगव्याध के भय से भयभीत कोई मृगी ॥२०॥ आर्त तथा भयभीत बनी हुई अपनी जान बचाने के लिए शीघ्रता से

श्वभिश्चालिता सा तु बाणघातक्षतातुरा। श्वसनस्यापि वेगेन सुलोभो मृगघातकः ॥२२॥
पृष्ठएव समायाति पुरतोयाति सा मृगी। दृष्टवांस्तां शफरहा बाणपाणिः समुद्यतः ॥२३॥
धनुरानम्यवेगेन अनुरुध्य च तां मृगीम्। तावल्लुब्धकलोभाख्यः श्वभिःसार्द्धं समागतः ॥२४॥
न हन्तव्या मदीयेयं मृगयां मे समागता। तस्य वाक्यं समाकर्ण्य मीनहा मांसलम्पटः ॥२५॥
बाणं मुमोच दुष्टात्मा तामुद्दिश्य महाबलः। निहता मृगलुब्धेन बाणेन निशितेन च ॥२६॥
प्रमृता सा मृगी तत्र बाणाभ्यां पापचेतसोः। श्वभिर्दन्तैःसमाक्रान्तो त्वरमाणा पपात सा ॥२७॥
शिखराच्च ह्रदे पुण्ये रेवायाःपापनाशने। श्वातश्च त्वरमाणास्ते पतिता विमले ह्रदे ॥२८॥
मृगव्याधोवदत्येवं धीवरं क्रोधमूर्च्छितः। मदीयेयं मृगी दुष्ट कस्माद्बाणैर्हता त्वया ॥२९॥
तमुवाच पुनःसोऽपि मीनहा मृगघातकम्। मदीयेयं न सन्देहश्चावलिप्तःप्रभाषसे ॥३०॥
युध्यमानौ ततस्तौ तु द्वावेतौ तु परस्परम्। क्रोधलोभान्महाभागौ पतितौ विमले जले॥३१॥
तस्मिन्काले महापर्व वर्तते गतिदायकम्। अमावास्या समायोगं महापुण्यफलप्रदम्॥३२॥
वेलायां पतिताःसर्वे पर्वणस्तस्य सत्तमाः। जपध्यानविहीनास्ते भावसत्यविवर्जिताः॥३३॥
तीर्थस्नानप्रसङ्गेन मृगीश्वा च स लुब्धकः। सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेगताःपरमां गतिम्॥३४॥
तीर्थानां च प्रभावेण सतांसङ्गाद्द्विजोत्तमाः। नाशतेपापिनां तापं दहदग्निरिवेन्धनम्॥३५॥
तेषामेवं हि संसर्गादृषीणां च महात्मनाम्। सम्भाषाद्दर्शनान्नष्टं स्पर्शाच्चैव नृपस्य च॥३६॥
वेनस्य कल्मषं नष्टं सतांसङ्गात्पुराकिल। अत्युग्र पुण्यसंसर्गात्पापं नश्यति पापिनाम्॥३७॥

भागती हुयी रेवा के तट पर आयी ॥२१॥ बाण के प्रहार से आतुर तथा कुत्तों से दौड़ायी जाती हुयी उसके पीछे सुलोभ भी वायु के वेग से वहाँ आ गया। उस मृगी को मछली मारने वाले ने देखा और बाण हाथ में लेकर मारने के लिए तैयार हो गया ॥२२-२३॥ उस मृगी को रोककर तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर वेग से उसने मारा। उसी समय लोभ नामक व्याध अपने कुत्तों के साथ वहाँ आ गया। उसने कहा— यह मेरे आखेट की मृगी है, इसे तुम न मारो। उसके वाक्य को सुनकर मांस के लोभी मछली मारने वाले ने मांस के लोभ से उस मृगी को मार दिया। व्याध के बाण से घायल बनी हुयी वह मृगी मर गयी ॥२४-२६॥ जिसे कुत्तों ने दाँतों से काट लिया था तथा उन दोनों पापियों के बाण से मारी गयी वह मृगी शीघ्रता से शिखर से रेवा नदी पाप नाशक पवित्र ह्रद में गिर गयी। शीघ्रता करते हुए वे कुत्ते भी उसी ह्रद में गिर पड़े ॥२७-२८॥ मृगव्याध ने धीवर से कहा— दुष्ट ! यह मृगी मेरी है, तुमने इसे बाण से क्यों मारा?॥२९॥ मछली मारने वाले ने उससे कहा— यह मेरी मृगी है तुम अभिमान के कारण ऐसा बोल रहे हो ॥३०॥ क्रोध तथा लोभ के कारण युद्ध करते हुए वे दोनों भी परस्पर में युद्ध करते हुए उसी विमल ह्रद में गिर पड़े ॥३१॥ उस दिन मुक्ति प्रदान करने वाला महापर्व था। उस पर्व के साथ अमावस्या का महायोग जो महान् पुण्य रूपी फल प्रदान करने वाला था ॥३२॥ हे द्विजों ! उसी पर्व के समय वे सब के सब गिरे। वे जप तथा ध्यान से विहीन थे तथा भाव सत्य से रहित थे ॥३३॥ किन्तु तीर्थ स्नान के प्रसङ्ग से मृगी व्याधा, कुत्ते, मछली मारने वाला सभी पापों से रहित होकर परमागति को प्राप्त कर लिए ॥३४॥ हे द्विजोत्तमों ! सज्जनों के सङ्ग तथा तीर्थों के सम्बन्ध से जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है, उसी तरह पापियों का पाप नष्ट हो जाता है ॥३५॥ उन महात्मा ऋषियों के ही सम्बन्ध से, उनके साथ बातें करने,

अत्युग्रपापिनां सङ्गात्पापमेव प्रसञ्चरेत्। मातामहस्य दोषेण संलिप्तो वेन एव सः ॥३८॥

ऋषय ऊचुः

मातामहस्य को दोषस्तन्नो विस्तरतो वद। समृत्युः स च वै कालःसम्यो धर्म एव च ॥३९॥

नहिंसको हि कस्यापि एते तस्मिन्प्रतिष्ठितः।
चराचराश्रये लोकाःस्व कर्मवशवर्तिनः ॥४०॥
जीवन्ति च म्रियन्ते च भुञ्जन्त्येवं स्वकर्मभिः।
पापाः पश्यन्ति तं घोरं तेषां कर्मविपाकतः ॥४१॥

निरयेषु च सर्वेषु कर्मणैव सुपुण्यवान्। योजयेत्ताडयेत्सूत यम एष दिने दिने ॥४२॥
सर्वेष्वेव सुपुण्येषु कर्मस्वेवं स पुण्यवान्। योजयत्येव धर्मात्म तस्य दोषो नदृश्यते ॥
स मृत्योः केन दोषेण पापी वेनस्त्वजायत ॥४३॥

सूत उवाच

स मृत्युःशासको नित्यं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥४४॥
वर्तते कालरूपेण तेषां कर्म विमृश्यति। दुष्कृतं कर्म यस्यापि कर्मणा तेन घातयेत् ॥४५॥

तस्य पापं विदित्वासौ नयत्येवं हि तं यमः।
सुकृतात्मा लभेत्स्वर्गं कर्मणा सुकृतेन वै ॥४६॥

योजयत्येष तान्सर्वान्मृत्युरेव सुदूतकैः। महता सौख्यभावेन गीतमङ्गलकारिणा ॥४७॥
दानभोगादिभिश्चैव योजयेच्च कृतात्मकान्। पीडाभिर्विवियाभिश्च क्लेशैःकाष्ठैश्चदारुणैः ॥४८॥
त्रासयेत्ताडयेद्विप्रान्सक्रोधो मृत्युरेवतान्। कर्मण्येवं हि तस्यापि व्यापारःपरिवर्तते ॥४९॥

उनका दर्शन करने से तथा उनका स्पर्श करने के कारण राजा वेन का पाप सज्जनों के सम्बन्ध के कारण नष्ट हो गया। अत्यन्त उग्र पुण्य के सम्बन्ध से पापियों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥३६-३७॥ अत्यन्त उग्र पापियों के सम्बन्ध से पाप ही बढ़ता है। वेन अपने मातामह (नाना) के दोष से संलिप्त थे ॥३८॥ **ऋषियों ने कहा—** आप हमें विस्तार से बतलायें कि मातामह का कौन सा दोष था ? वे ही मृत्यु है, यम है, काल हैं तथा धर्म हैं। वे तो उस पद पर बैठे हैं किसी के वे हिंसक नहीं हैं। चराचर के जितने जीव हैं वे अपने कर्मों के अधीन रहने वाले हैं ॥४०॥ वे अपने कर्मों के अनुसार जीते, मरते और कर्मफलों को भोगते हैं। अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप वे घोर यम का दर्शन करते है ॥४१॥ हे सूतजी ! अत्यन्त पुण्यवान् यमराज प्रतिदिन जीवों के कर्मानुसार नरकों में डालते हैं और प्रताड़ने करते है ॥४२॥ धर्मात्मा यम सभी पुण्य कर्म करने वालों को पुण्यों से जोड़ देते हैं, उसमें उनका कोई दोष नहीं है। वे मृत्यु के किस दोष के कारण पापी हो गये ॥४३॥ **सूतजी ने कहा—** मृत्यु दुष्ट विचार वाले पापियों का सदा प्रशासन करते हैं ॥४४॥ वे कालरूप से रहकर उन सबों के कर्मों का विचार करते हैं। जिसका पाप कर्म होता है उसको उसी कर्म से मारते हैं ॥४५॥ उसके पापों को जानकर यमराज उसको ले जाते हैं। पुण्यवान् जीव अपने पुण्यों के कारण स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥४६॥ मृत्यु ही उन सबों को अपने सुन्दर दूतों के द्वारा गीत मङ्गलकारी सुखमय भाव से युक्त कर देते हैं ॥४७॥ उन कृतात्माओं को वे दानों तथा भोगों से युक्त कर देते हैं। और मृत्यु ही क्रोध पूर्वक पापी विप्रों को त्रास देते और मारते हैं। अनेक प्रकार

मृत्योश्चापि महाभाग लोभात्पुण्यात्प्रजायते । सुनीथानामवै कन्या सञ्जातैषामहात्मनः ॥५०॥
पितुःकर्म विमृश्यैव क्रीडमाना सदैव सा । प्रजानां शास्तिकर्तारंपुण्यपापनिरीक्षणम् ॥५१॥

सा तु कन्या महाभागा सुनीथा नाम तस्य सा ।
रममाणा वनं प्राप्ता सखीभिःपरिवारिता ॥५२॥

तत्रापश्यन्महाभागं गन्धर्वतनयं वरम् । गीतकोलाहलस्यापि सुशङ्खंनाम सा तदा॥५३॥
ददर्श चारुसर्वाङ्गं तप्यन्तं सुमहत्तपः । गीतविद्यासु सिद्ध्यर्थं ध्यायमानं सरस्वतीम् ॥५४॥
तस्योपघातमेवासौ सा चकार दिने दिने। सुशङ्खःक्षमते नित्यं गच्छगच्छेति सोऽब्रवीत् ॥५५॥
प्रेषिता नैव गच्छेत्सा विघ्नमेव समाचरेत् । तेनैवमुक्ता सा क्रुद्धाऽताडयत्तपसि स्थितम् ॥५६॥
तामुवाचततःक्रुद्ध सुशङ्खःक्रोधमूर्च्छितः । दुष्टे पापसमाचारे कस्माद्विघ्नस्त्वया कृतः ॥५७॥
ताडनात्ताडनंदष्टे न कुर्वन्ति महाजनाः। आक्रुष्टा नैव कुप्यन्ति इतिधर्मस्य संस्थितिः ॥५८॥
त्वयाऽहं घातितःपापे निर्दोषस्तपसान्वितः। एवमुक्त्वा स धर्मात्मा सुनीथां पापचारिणीम् ॥५९॥
विरराम महाक्रोधाज्ज्ञात्वा नारींनिवर्तितः । ततः सपापमोहद्वा बाल्याद्वा तमिहैव च ॥६०॥
समुवाच महात्मानं सुशङ्खं तपसि स्थितम्। त्रैलोक्यवासिनां तातो ममैवपरिघातकः॥६१॥
असतोघातयेन्नित्यं सत्यान्स परिपालयेत् । नैव दोषो भवेत्तस्य महापुण्ये न वर्तयेत्॥६२॥
एवमुक्त्वा गता सा तु पितरं वाक्यमब्रवीत् । मया हि ताडितस्तात गन्धर्वतनयो वने ॥६३॥
तपस्तपन्सदैकान्ते कामक्रोधविवर्जितः । समामुवाच धर्मात्मा क्रोधरागसमन्वितः ॥६४॥

के भयङ्कर कष्टों को प्रदान करते हैं । इस तरह से वे हितकारी के कर्मानुसार व्यवहार करते हैं ॥४८-४९॥ महात्मा मृत्यु को भी लोभ तथा पुण्य के कारण उनकी सुनीथा नाम की पुत्री हुयी ॥५०॥ अपने पिता के कर्म को सदा खेलती हुयी वह देखती थी कि उसके पिता प्रजाओं के पुण्य तथा पापकर्म का निरीक्षण रूपी कर्म का विचार करते हैं ॥५१॥ वह महाभाग सुनीथा नाम की कन्या अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुयी वन में गयी ॥५२॥ वहाँ पर उसने श्रेष्ठ गन्धर्व पुत्र सुशंख को देखी ॥५३॥ उनके सारे अङ्ग सुन्दर थे । वे गीत विद्या की सिद्धि के लिए सरस्वती देवी का ध्यान करते हुए घोर तपस्या कर रहे थे ॥५४॥ वह (सुनीथा) उनका प्रतिदिन विघ्न करती थी । सुशंख उसको यहाँ से चली जाओ कहकर उसे क्षमा कर देते थे ॥५५॥ वहाँ से हटाने पर भी वह वहाँ से नहीं जाती थी और उनकी बातों को सुनकर क्रुद्ध होकर उन्हें मारती थी ॥५६॥ अत्यन्त क्रुद्ध होकर सुशंख ने उसको कहा— अरे पापिनी दुष्टे ! तुम विघ्न क्यों करती हो ?॥५७॥ धार्मिक स्थिति है कि मारने पर भी धार्मिक उसको नहीं मारते हैं और न तो निन्दा करने पर कोप करते हैं ॥५८॥ मैं निर्दोष हूँ, तपस्या कर रहा हूँ, फिर भी पापिनी मुझे मारा; इस तरह उन धर्मात्मा ने पापिनी सुनीथा को कहकर ॥५९॥ उसे नारी समझकर चुप हो गये । उसके बाद पाप तथा मोह के कारण अथवा बाल्यावस्था के कारण वहीं तपस्या करने वाले सुशङ्ख से उसने कहा त्रैलोक्य वासियों को मेरे ही पिता मारते हैं ॥६०-६१॥ वे सदा पापियों को मारते हैं तथा सज्जनों का परिपालन करते है, किन्तु उनको कोई भी पाप नहीं लगता है । अतएव महापुण्य का व्यवहार नहीं करना चाहिए इस तरह से कहकर वह अपने पिता के पास जाकर सारी बातों को कही और बतलायी कि हे तात ! मैंने वन में गन्धर्व पुत्र को मारा है ॥६२-६३॥ वह एकान्त में तपस्या करता है तथा काम एवं क्रोध से रहित है । क्रोध तथा राग से

न ताडयेत्ताडयन्तं क्रोशन्तं नैव क्रोशयेत् । इत्युवाच स मां तात तन्मे त्वं कारणं वद ॥६५॥
एवमुक्तः स वै मृत्युः सुनीथां द्विजसत्तमाः । किञ्चिन्नोवाच धर्मात्मा प्रश्नप्रत्युत्तरं ततः ॥६६॥
वनं प्राप्ता पुनः साहि सुशङ्खो यत्र संस्थितः ।
कशाघातैस्ततो दौष्ट्याज्जघान तपतांवरम् ॥६७॥
सुशङ्खस्ताडितो विप्रा मृत्योश्चैव हि कन्यया। ततःक्रुद्धोमहातेजाःशशाप तनुमध्यमाम् ॥६८॥
निर्दोषो हि यतो दुष्टे त्वयैव परिताडितः । अहमत्र वने संस्थस्तस्माच्छापं ददाम्यहम् ॥६९॥
गार्हस्थ्यं च समास्थाय सहभर्त्रा यदा शृणु। पापाचारमयःपुत्रो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥७०॥
सर्वपापरतो दुष्टे तवगर्भे भविष्यति । एवं शप्त्वा गतःसोऽपि तपएव समाश्रितः ॥७१॥
गते तस्मिन्महाभागे सा सुनीथा गृहंगता। समाचष्ट महात्मानं पितरं तप्तमानसा ॥७२॥
यथाशप्ता तदा तेन गन्धर्वतनयेन सा। तत्सर्वं संश्रुतं तेन मृत्युना परिभाषितम्॥७३॥
कस्मात्त्वया ताडितोऽसौ तपस्वी दोषवर्जितः ।
युक्तं नैव कृतं पुत्री तपतस्तस्य ताडनम् ॥७४॥
एवमाभाष्य धर्मात्मा मृत्युःपरमदुःखितः। बभूव सहितस्तस्यादिष्टमेवं विचिन्तयन्॥७५॥

सूत उवाच

अत्रिपुत्रो महातेजा अङ्गोनाम प्रतापवान् । एकदा तु गतोविप्रा नन्दनंप्रति स द्विजः ॥७६॥
तत्र दृष्ट्वा देवराजं तमिन्द्रं पाकशासनम् । अप्सरसांगणैर्युक्तं गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा॥७७॥
गीयमानं गीतगैश्च सुस्वरैःसप्तकैस्तथा। वीज्यमानं सुगन्धैश्च व्यजनैःसर्वतोऽपि तम्॥७८॥

युक्त उस धर्मात्मा ने मुझे कहा— मारने वाले को मारना नहीं चाहिये और निन्दा करने वाले की निन्दा न करे । हे तात ! आप बतलाइये कि उसने मुझे ऐसा क्यों कहा ?॥६४-६५॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इस तरह से कहने पर भी मृत्यु ने सुनीथा के प्रश्न के उत्तर में कुछ भी नहीं कहा ॥६६॥ इसके बाद वह पुनः वन में गयी और जहाँ पर सुशङ्ख रहते थे । उसने अपनी दुष्टता के कारण उस तपस्वी को कोड़ों से मारा ॥६७॥ हे विप्रो ! मृत्यु की पुत्री के द्वारा ताड़ित होकर सुशङ्ख अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उस सुन्दरी को शाप दे दिया ॥६८॥ दुष्टे ! चूँकि तुमने निर्दोष, वन में रहने वाले मुझको मारा है अतएव मैं तुम्हें शाप देता हूँ॥६९॥ जब तुम गार्हस्थ्य को प्राप्त करोगी तो तुम्हारे पति से तुम्हारा पुत्र पापी तथा देवताओं और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला उत्पन्न होगा ॥७०॥ हे दुष्टे ! तुम्हारे गर्भ में वह सभी पापों को करने वाला होगा । यह कहकर वे भी जाकर तपस्या करने लगे ॥७१॥ उनके चले जाने पर सुनीथा अपने घर गयी । सन्तप्तमना उसने सारी बात अपने पिता को बतलाया ॥७२॥ उसने बतलाया कि उस गन्धर्व ने उसे किस प्रकार से शाप दिया है । उन सारी बातों को मृत्यु ने सुनकर कहा ॥७३॥ तुमने उस निर्दोष तपस्वी को क्यों मारा? पुत्रि उस तपस्वी को मारकर तुमने अच्छा काम नहीं किया ॥७४॥ इस तरह से कहकर धर्मात्मा मृत्यु उसके भविष्य का विचार करके अत्यन्त दुःखी हो गये ॥७५॥ **सूतजी ने कहा**— महर्षि अत्रि के पुत्र अङ्ग महातेजस्वी और प्रतापी थे । एक बार वे नन्दन वन में गये ॥७६॥ उन्होंने वहाँ पर पाकशासन इन्द्र को देखा. उन्होंने देखा कि अप्सराएँ, गन्धर्व और किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे हैं और सातो स्वरों के साथ सुन्दर गीतों से उनको गीत सुना रहे हैं । चारो ओर से उनको सुगन्धित व्यजनों से हवा किया जा रहा

योषिद्भीरूपयुक्ताभिश्चामरैर्हंसगामिभिः । छत्रेण हंसवर्णेन चन्द्रविम्बानुकारिणा ॥७९॥
राजमानं सहस्राक्षं सर्वाभरणभूषितम्। कामक्रीडा गतंदेवं दृष्ट्वा ह्यमितौजसम्॥८०॥
तस्य पार्श्वे महाभागां पोलोमीं चारुमङ्गलाम्।
रूपेण तेजसा चैव तपसा च यशस्विनीम् ॥८१॥
सौभाग्येन विराजन्तीं पातिव्रत्येन तां सतीम्। तया सह सहस्राक्षः स रेमे नन्दनेवने ॥८२॥
तस्य लीलां समालोक्य अङ्गश्चैव द्विजोत्तमः ।
धन्यो वै देवराजोऽयमीदृशैःपरिवारितः ॥८३॥
अहोऽस्य तपसोवीर्यं येन प्राप्तं महत्पदम्। यदा ममेदृशःपुत्रःसर्वलोकप्रधारकः ॥८४॥
भवेत्तदा महत्सौख्यं प्राप्स्यामीह न संशयः। इतिचिन्तापरो भूत्वा त्वरमाणो गृहं गतः ॥८५॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे भूमिखण्डे वेनोपाख्याने त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

अथत्वङ्गोमहातेजा दृष्ट्वेन्द्रस्यसम्पदम्। भोगंचैवविलासं च लीलां तस्य महात्मनः॥१॥
कथं मे इन्द्रसदृशःपुत्रःस्याद्धर्मसंयुतः। चिन्तयित्वा क्षणं चैव अङ्गो धर्मभृतांवरः ॥२॥

है ॥७७-७८॥ हंस के समान सुन्दर गमन करने वाली सुन्दरी स्त्रियां उनको चमर कर रही है, हंस के समान तथा चन्द्र विम्ब के समान छत्र से वे सुशोभित हो रहे थे। इस तरह से सभी आभरणों से अलंकृत तथा काम क्रीडा करने वाले अमितौजस इन्द्र को उन्होंने देखा ॥७९-८०॥ उनके बगल में मनोज्ञ मङ्गलमयी महाभागा पुलोम पुत्री रूप, तेज तथा तपस्या से यशस्विनी बनी बैठी थीं ॥८१॥ वे पातिव्रत्य तथा सौभाग्य से सुशोभित थीं। उसके साथ सहस्राक्ष उस नन्दन वन में विहार कर रहे थे ॥८२॥ इन्द्र की लीला को देखकर अङ्ग सोचने लगे कि इस तरह से परिवार से युक्त इन्द्र धन्य हैं ॥८३॥ इनकी तपस्या का पराक्रम सराहनीय है जिसके कारण इन्होंने ऐसा पद प्राप्त किया है। जब सभी लोकों को धारण करने वाला मेरा भी पुत्र इसी प्रकार का होगा तो मैं सुखी हो जाऊँगा। इस तरह से चिन्ता करते हुए वे शीघ्र ही अपने घर चले गये ॥८४-८५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

महर्षि अत्रि के उपदेश से इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिए अङ्ग का तपस्या करने के लिए जाना

सूतजी ने कहा— उसके बाद महातेजस्वी अङ्ग इन्द्र की सम्पदा, भोग, विलास तथा लीला को देखकर किस प्रकार से मेरा पुत्र इन्द्र के समान धार्मिक हो इस प्रकार से क्षणभर विचार करके धार्मिकों में

स्वकं गेहं समायातःसत्वङ्गःसत्यतत्परः । अत्रिं पप्रच्छ पितरं प्रणतो नम्रकन्धरः ॥३॥
कोऽयं पुण्यसमाचारो भुङ्क्ते ऐन्द्रं पदं महत् ।
कस्य पुण्यस्य वै पुष्टिः किं कृतं कर्म कीदृशम् ॥४॥
कीदृशं तप एतस्य कमाराधितवान्पुरा । एतन्मे विस्तरेण त्वं ब्रूहि सत्यवतांवर॥५॥

अत्रिरुवाच

साधु साधु महाभाग यद्येवं पृच्छसे मयि । चरित्रमिन्द्रस्य वत्स तन्मे निगदतःशृणु ॥६॥
सुव्रतो नाम मेधावी पुरा ब्राह्मणसत्तमः । तेन कृष्णो हृषीकेशस्तपसा चैव तोषितः ॥७॥
पुण्यं गर्भं पुनःप्राप्तो ह्यदित्याःकश्यपात्किल ।
विष्णोश्चैव प्रसादेन सुरराजो बभूव ह ॥८॥

अङ्ग उवाच

कथमिन्द्रसमःपुत्रो ममस्यात्पुत्रवत्सल । तदुपायं समाचक्ष्व त्वं हि ज्ञानवतांवरः ॥९॥

अत्रिरुवाच

समासेनैव तस्यैव सुव्रतस्य महात्मनः । चरित्रमखिलंपुण्यं निशामय महामते ॥१०॥
यथा सुव्रतमेधावी पुराराधितवान्हरिम्। तस्य भावं च भक्तिं च ध्यानंचैव महात्मनः॥११॥
समालोक्य जगन्नाथो दत्तवान्वै महत्पदम् । स ऐन्द्रं सर्वभोगाढ्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१२॥
विष्णोश्चैव प्रसादाच्च पदंभुङ्क्तेत्रिलोकधृक् । एवंते सर्वमाख्यातमिन्द्रस्यापि विचेष्टितम् ॥१३॥
भक्त्या तुष्यति गोविन्दो भावध्यानेन सत्तम ।
सर्वंददाति तुष्टात्मा भक्त्यासन्तोषितोहरिः ॥१४॥

श्रेष्ठ सत्य का पालन करने वाले अपने घर शीघ्र आये । उन्होंने अपना कन्धा झुकाकर तथा प्रणाम करके अपने पिता अत्रि महर्षि से पूछा ॥१-३॥ कौन पुण्यवान् पुरुष महान् ऐन्द्र पद का भोग करता है । उसने किस पुण्य की पुष्टि की है तथा कैसा कर्म किया है ?॥४॥ उसने कैसी तपस्या की और किसकी पहले आराधना की थी ? हे सत्य बोलने वालों में श्रेष्ठ ! आप इन सारी बातों को मुझे विस्तार से बतलाएँ ॥५॥ **अत्रि महर्षि ने कहा—** बहुत अच्छी बात है, महाभाग कि तुम मुझसे इस तरह पूछ रहे हो । हे वत्स ! मैं इन्द्र का चरित्र बतला रहा हूँ सुनो ॥६॥ पहले सुव्रत नामक मेधावी ब्राह्मण श्रेष्ठ थे । उन्होंने तपस्या से श्रीभगवान् को प्रसन्न किया ॥७॥ उसके बाद वे कश्यप तथा अदिति के पुत्र रूप से गर्भ में आये और श्रीभगवान् की कृपा से वे इन्द्र हो गये ॥८॥ **अङ्ग ने कहा—** हे पुत्र वत्सल ! मेरा पुत्र इन्द्र के समान कैसे हो सकता है ? आप मुझे उसी उपाय को बतलायें । आप तो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ॥९॥ **अत्रि महर्षि ने कहा—** हे महामते ! तुम संक्षेप में उस सुव्रत के ही पवित्र चरित्र को सुनो ॥१०॥ सुव्रत ने जिस प्रकार से श्रीहरि की आराधना की उनके भाव, भक्ति तथा भाव को देखकर ही जगत् स्वामी ने इस महान् पद को उन्हें प्रदान किया । भगवान् विष्णु की ही कृपा से त्रैलोक्य के स्वामी वे समस्त भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य के ऐन्द्र पद का भोग करते हैं । इस तरह से मैंने तुम्हें इन्द्र की भी विशेष चेष्टाओं को कह दिया ॥११-१३॥ हे श्रेष्ठ ! भगवान् गोविन्द भक्तिभाव से ही प्रसन्न होते हैं । भक्ति से सन्तुष्ट होकर श्रीहरि सबकुछ प्रदान कर देते हैं ॥१४॥ अतएव सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सभी पुरुषों में श्रेष्ठ सबकुछ

तस्मादाराध्य गोविन्दं सर्वदं सर्वसम्भवम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेषां पुरुषं वरम् ॥१५॥
तस्मात्प्राप्स्यसि सर्वं त्वं यद्यदिच्छसि नंदन ॥१६॥
सुखस्य दाता परमार्थदाता मोहस्य दाता जगतां हि नाथः ।
तस्मात्तमाराधय गच्छ पुत्र सम्प्राप्स्यसे इन्द्रसमं हि पुत्रम् ॥१७॥
आकर्ण्य वाक्यं परमार्थयुक्तमुक्तं महात्मा ऋषिणा हि तेन ।
सङ्गृह्य तत्त्वं वचनस्य तस्य प्रणम्य तं शाश्वतमभ्ययात्सः ॥१८॥
आमन्त्र्य चाङ्गः पितरं महात्मा ब्रह्मात्मजं ब्रह्मसमानमेव ।
सम्प्राप्तवान्मेरुगिरेस्तु शृङ्गं तं काञ्चनै रत्नमयैःसमेतम् ॥१९॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

नानारत्नैःसुदीप्ताङ्गो हाटकेनापि सर्वतः। राजमानो गिरिश्रेष्ठो यथासूर्यःस्वरश्मिभिः ॥१॥
छायामशोकां सम्प्राप्य शीतलां सुखदायिनीम् ।
ध्यायन्ति योगिनःसर्वे उपविष्टा दृढासने ॥२॥
क्वचित्तपन्ति मुनयःक्वचिद्गायन्ति किन्नराः। सन्तुष्टाः ऋषिगन्धर्वा वीणातालकराविलाः ॥३॥

उत्पन्न करने वाले सबकुछ प्रदान करने वाले भगवान् गोविन्द की आराधना करके तुम जो कुछ भी चाहते हो उनसे ही प्राप्त करोगे ॥१५-१६॥ सुख, परमार्थ तथा मोह को देने वाले संसार के स्वामी भगवान् गोविन्द हैं। अतएव हे पुत्र ! जाओ, उनकी ही आराधना करो उनसे ही तुम इन्द्र के समान पुत्र को प्राप्त करोगे ॥१७॥ महात्मा अत्रि महर्षि से कहे गये परमार्थ युक्त वाक्य को सुनकर उनके वचन के सार का संग्रह करके तथा उनको प्रणाम करके अङ्ग श्रीभगवान् के शरण में गये ॥१८॥ अङ्ग ब्रह्माजी के पुत्र तथा ब्रह्माजी के ही समान अपने पिता अत्रि महर्षि को प्रणाम करके सुमेरु पर्वत के शिखर पर चले गये जो सुवर्णमय रत्नों से परिपूर्ण शिखर था ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

महाराज अङ्ग की तपस्या से प्रकट हुए भगवान् वासुदेव की अङ्ग कृत स्तुति

सूतजी ने कहा— अनेक प्रकार के रत्नों से जिसके सम्पूर्ण भाग प्रकाशित तथा जो पूर्णरूप से सुवर्ण का था वह सुमेरु नामक पर्वत अपनी कान्तियों से सूर्य के समान था ॥१॥ अशोक की शीतल और सुखद छाया में दृढासन से बैठे हुए योगिजन जहाँ पर ध्यान करते हैं ॥२॥ उस पर कहीं पर तो मुनिगण

तालमानलयेलीनाः स्वरैः सप्तभिरन्वितैः । मूर्च्छनारतिसंयुक्तैर्व्यक्तं गीतंमनोहरम् ॥४॥
तस्मिन्वै पर्वतश्रेष्ठे चन्दनच्छायसंश्रिताः । गन्धर्वा गीततत्त्वज्ञा गीतंगायन्ति तत्पराः ॥५॥
नृत्यन्ति योषितस्तत्र देवानां पर्वतोत्तमे। पापहा पुण्यदो दिव्यःसुश्रेयसां प्रदायकः ॥६॥
वेदध्वनिसुमधुरःश्रूयते पर्वतोत्तमे । चन्दनाशोकपुन्नागैःशालैस्तालैस्तमालकैः ॥७॥
वटैस्तु मेघसङ्काशै राजते पर्वतोत्तमः । सन्तानकैःकल्पवृक्षै रम्भापादपसङ्कुलै ॥८॥
नगेन्द्रो भाति सर्वत्र नाकवृक्षैःसुपुष्पितैः । नानाधातुसमाकीर्णो नानारत्नचयो गिरिः ॥९॥
नानाकौतुकसंयुक्तो नानामङ्गलसंयुतः । वेदवृन्दैःसञ्जुष्टो ह्यप्सरोगणसङ्कुलः ॥१०॥
ऋषिभिर्मुनिभिःसिद्धैर्गन्धर्वैः परिभाति सः । गजैश्चाचलसङ्काशैःसिंहनादैर्विराजते ॥११॥
शरभैर्मत्ताशार्दूलैमृगधूर्तैरलंकृतः । वापीकूपतडागैश्च सम्पूर्णैर्विमलोदकैः ॥१२॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः सर्वत्र परिशोभते। कनकोत्पलैश्च श्वेतैश्च रक्तोत्पलैविराजते ॥१३॥
नदीस्त्रवणसङ्घातैर्विमलैश्चोदकैस्तथा । शिलातलैश्च रूपैश्च सगजैःस्फाटिकैस्तथा॥१४॥
विस्तीर्णैःकाञ्चनैर्दिव्यैःसूर्यवह्निसमप्रभैः । शिलातलैश्च सम्पूर्णःशैलराजो विराजते ॥१५॥
विमानैर्देवतानां च प्रासादैःपर्वत्तोत्तमैः। हंसचन्द्रप्रतीकाशैर्हेमदण्डैरलङ्कृतः ॥१६॥
कलशैश्चामरैर्युक्तैःप्रासादैःपरिशोभितः । नानागुणप्रमुदितदेववृन्दैश्च शोभितः॥१७॥
देववृन्दैरनेकैश्च गन्धर्वैश्चारणैस्तथा। सर्वत्र राजते पुण्यो मेरुर्गिरिवरोत्तमः ॥१८॥

तपस्या करते हैं, कहीं पर किन्नर गीत गाते हैं उससे सन्तुष्ट होकर ऋषिगण और गन्धर्व वीणा ताली बजाते हैं ॥३॥ ताल तथा अनुकूल लय के बीच सातो स्वरों से युक्त तथा मूर्छना से युक्त वह गीत अत्यन्त मनोहर होता है ॥४॥ उसी पर्वत श्रेष्ठ पर चन्दन की छाया में बैठे हुए गीत तत्त्व को जानने वाले गन्धर्व गीत गाते हैं ॥५॥ उस उत्तम पर्वत पर देवताओं की स्त्रियाँ नृत्य करती हैं । उस उत्तम पर्वत पर पापविनाशक, पुण्यप्रद, सुन्दर कल्याण प्रदान करने वाले दिव्य तथा अत्यन्त मधुर वेदध्वनि सुनायी पड़ती हैं । वह पर्वतोत्तम चन्दन, अशोक, पुन्नाग, शाल, ताल, तमाल तथा मेघ के समान वट के वृक्षों से सुशोभित होता है । सन्तान वृक्ष और कल्पवृक्षों जो रम्भा के चरणों से स्पृष्ट है उनके द्वारा अनेक प्रकार के धातुओं से भरा हुआ तथा अनेक प्रकार के रत्नों के समूह से तथा स्वर्गीय वृक्षों से वह पर्वत श्रेष्ठ सुशोभित होता है ॥६-९॥ अनेक प्रकार के कौतुक से संयुक्त तथा अनेक प्रकार के मङ्गल युक्त, अप्सरा समूह से परिपूर्ण वह पर्वत ऋषियों, मुनियों, सिद्धों और गन्धर्वों से सुशोभित था । पर्वतों के समान विशाल काय हाथियों तथा सिंहों के नादों से वह पर्वत सुशोभित था ॥१०-११॥ शरभ, मदमत्त, शार्दूल तथा धूर्त मृगों से वह पर्वत अलंकृत था । स्वच्छ जलों से भरे हुए वापी, कूप तथा तड़ागों तथा हंसो, कारण्डवों से परिपूर्ण वह पर्वत सर्वत्र सुशोभित होता था । सुवर्ण कमल श्वेत कमल तथा रक्त कमल वहाँ सुशोभित हो रहे थे ॥१२-१३॥ नदियों, झरनों, स्वच्छ जलों तथा बड़े-बड़े शाल वृक्षों रूपों, गजों, स्फटिकों तथा विस्तृत दिव्य सुवर्णो सूर्य और अग्नि के समान कान्ति वाले शिलापट्टों से सम्पूर्ण वह शैलराज शोभित था ॥१४-१५॥ देवताओं के विमानों, भवनों तथा उत्तम पर्वतों से हंस तथा चन्द्रमा के समान सुवर्ण दण्डों से वह अलंकृत था ॥१६॥ कलशों, देवताओं से युक्त प्रासादों से वह सुशोभित तथा अनेक गुणों से प्रसन्न देव समूह से वह शोभित था ॥१७॥ श्रेष्ठ पर्वतों में उत्तम सुमेरु पर्वत सर्वत्र अनेक देव समूहों, गन्धर्वों तथा चारणों से सुशोभित

तस्माद्गङ्गा महापुण्या पुण्यतोया महानदी। प्रसूता पुण्यतीर्थाढ्या हंसपद्मैः समाकुला ॥१९॥
मुनिभिः सेव्यमाना सा ऋषिसङ्घैर्महानदी । एवंगुणं गिरिश्रेष्ठं पुण्यकौतुकमङ्गलम् ॥२०॥
अङ्गश्चात्रिसुतः पुण्यः प्रविवेश महामुनिः । गङ्गातीरे सुपुण्ये च एकान्ते चारुकन्दरे ॥२१॥
तत्रोपविश्य मेधावी कामक्रोधविवर्जितः । सर्वेन्द्रियाणि संयम्य हृषीकेशं मनोगतम् ॥२२॥
ध्यायमानः सधर्मात्मा कृष्णं क्लेशापहं प्रभुम् ।
आसने शयनेयाने ध्याने च मधुसूदनः ॥२३॥
नित्यं पश्यति युक्तात्मा योगयुक्तो जितेन्द्रियः ।
चराचरेषु जीवेषु तेषु पश्यतिकेशवम् ॥२४॥
आर्द्रेषु चैव शुष्केषु सर्वेष्वन्येषु स द्विजः । एवं वर्षशतं जातं तप्यमानस्य तस्य च॥२५॥
समालोक्य जगन्नाथश्चक्रपाणिर्द्विजोत्तमम्। बहुविघ्नान्सुघोरांश्च दर्शयत्येव नित्यशः॥२६॥
तेजसा तस्य देवस्य नृसिंहस्य महात्मनः। निरातङ्कः सधर्मात्मा दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥२७॥
नियमैः संयमैश्चान्यैरुपवासैर्द्विजोत्तमः । क्षीयमाणस्तु सञ्जातो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥२८॥
सूर्यपावकसङ्काशस्त्वङ्ग एवं प्रदृश्यते । एवंतपः सुनिरतं ध्यायमानं जनार्दनम् ॥२९॥
अविर्भूयाब्रवीद्देवो वरं वरय मानद । तं च दृष्ट्वा हृषीकेशमङ्गः परमनिर्वृतः ॥३०॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वासुदेवं प्रसन्नधीः ॥३१॥

अङ्गउवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानां भूतभावन पावन। भूतात्मा सर्वभूतेश नमस्तुभ्यं गुणात्मने॥३२॥

होता था ॥१८॥ पवित्र तीर्थों से परिपूर्ण है उसी से हंसों एवं कमलों से भरी हुयी अत्यन्त पवित्र जलों वाली महानदी गङ्गा निकली है ॥१९॥ उस महानदी का सेवन ऋषिगण और मुनिगण करते हैं । इस तरह के गुण वाले तथा पवित्र कौतुकों और मङ्गलों से युक्त उस पर्वत पर महर्षि अत्रि के पुत्र महामुनि अङ्ग चले गये । वे गङ्गा के तट पर एकान्त में सुन्दर गुफा में ॥२०-२१॥ काम और क्रोध से रहित होकर मेधावी अङ्ग वहीं पर बैठकर सभी इन्द्रियों को वश में करके भगवान् हृषीकेश में अपना मन लगा दिए ॥२२॥ क्लेशों को दूर करने वाले भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए धर्मात्मा अङ्ग अपने आसन, शय्या, यान, तथा ध्यान में भगवान् मधुसूदन को ही सदा देखने लगे । वे योगयुक्त और जितेन्द्रिय थे वे सम्पूर्ण चराचर जीवों में भगवान् केशव को ही देखने लगे ॥२३-२४॥ वे द्विज शुष्क तथा आर्द्र वस्तुओं में भी भगवान् को देखने लगे । इस तरह से तपस्या करते हुए उनके सौ वर्ष बीत गये ॥२५॥ उन द्विजोत्तम को देखकर चक्रपाणि श्रीभगवान् उनको सदैव अनेक प्रकार के विघ्नों को दिखाते थे ॥२६॥ वे महात्मा भगवान् नृसिंह के तेज से उन सभी विघ्नों को उसी प्रकार से नष्ट कर देते थे और नीडर रहते थे जिस तरह से अग्नि इन्धन को जला देती है ॥२७॥ नियमों, संयमों तथा दूसरे उपवासों से क्षीणकाय होते हुए वे अपने तेज से देदीप्यमान थे ॥२८॥ सूर्य तथा अग्नि के सदृश दिखायी पड़ते थे । इस तरह की तपस्या में लगे हुए तथा भगवान् जनार्दन का ध्यान करते हुए अङ्ग के समक्ष प्रकट होकर श्रीभगवान् ने कहा— हे मानद ! वरदान माँगो उन श्रीभगवान् केशव को देखकर अङ्ग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥२९-३०॥ वे प्रणत होकर प्रसन्नता पूर्वक भगवान् वासुदेव की स्तुति करने लगे ॥३१॥ अङ्ग ने कहा— हे भूतभावन ! पावन भगवन् ! आप

गुणरूपाय गुह्याय गुणातीताय ते नमः। गुणाय गुणकर्त्रे च गुणाढ्याय गुणात्मने ॥३३॥
भवाय भवकर्त्रे च भक्तानां भवहारिणे। भवोद्भयाय गुह्याय नमो भवविनाशिने ॥३४॥
यज्ञाय यज्ञरूपाय यज्ञेशाय नमोनमः। यज्ञकर्मप्रसङ्गाय नमः शङ्खधराय च ॥३५॥
नमोनमो हिरण्याय नमोरथाङ्गधारिणे। सत्याय सत्यभावाय सर्वसत्यमयाय च ॥३६॥
धर्माय धर्मकर्त्रे च सर्वकर्त्रे च ते नमः। धर्माङ्गाय सुवीराय धर्माधराय ते नमः ॥३७॥
नमः पुण्याय पुत्राय ह्यपुत्राय महात्मने। मायामोहविनाशाय सर्वमायाकराय ते ॥३८॥
मायाधराय मूर्ताय त्वमूर्ताय नमोनमः। सर्वमूर्तिधरायैव शङ्कराय नमोनमः ॥३९॥
ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय परब्रह्मस्वरूपिणे। नमस्ते सर्वधाम्ने च नमोधामधराय च ॥४०॥
श्रीपते श्रीनिवासाय श्रीधराय नमोनमः। क्षीरसागरवासाय ह्यमृताय च ते नमः ॥४१॥
महौषधाय घोराय महाप्रज्ञापराय च। अक्रूराय प्रमेध्याय मेध्यानां पतये नमः ॥४२॥
अनन्ताय ह्यशेषाय चानघाय नमोनमः। आकाशस्य प्रकाशाय पक्षिरूपाय ते नमः ॥४३॥
हुताय हुतभोक्त्रे च हवीरूपाय ते नमः। बुद्धाय बुद्धरूपाय सदाबुद्धाय ते नमः ॥४४॥
नमो हव्याय कव्याय स्वधाकाराय ते नमः।
स्वाहाकाराय शुद्धाय ह्यव्यक्ताय महात्मने ॥४५॥

हो सभी जीवों के आश्रय हैं। हे सभी भूतों की आत्मा, हे सर्वभूतेश ! हे गुणात्मन् !! आपको मेरा नमस्कार है ॥३२॥ गुणस्वरूप, गुह्य, तथा गुणातीत आपको नमस्कार है। गुणरूप, गुणों को उत्पन्न करने वाले गुणों से परिपूर्ण आपको नमस्कार है ॥३३॥ भव स्वरूप, भवसंसार की सृष्टि करने वाले तथा भक्तों के संसार बंध को विनष्ट करने वाले संसार को उद्भूत करने वाले, रहस्यमय तथा भवबन्धन को विनष्ट करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३४॥ यज्ञस्वरूप, यज्ञशरीरक, तथा यज्ञेश आपको बारम्बार नमस्कार है। यज्ञकर्म के प्रसङ्ग स्वरूप तथा शङ्ख को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥३५॥ हिरण्य स्वरूप तथा रथाङ्ग (चक्र) पाणि आपको नमस्कार है। सत्य स्वरूप तथा सर्वसत्यमय आपको नमस्कार है ॥३६॥ धर्मस्वरूप, धर्म को करने वाले तथा सबकुछ करने वाले आपको नमस्कार है। धर्माङ्ग सुवीर तथा धर्म के आधार रूप आपको नमस्कार है ॥३७॥ पुण्यपुत्र स्वरूप तथा पुत्र रहित महात्मा आपको नमस्कार है। मायामोह का विनाश करने वाले तथा सभी मायाओं को उत्पन्न करने वाले आपको नमस्कार है ॥३८॥ माया को धारण करने वाले मूर्त तथा अमूर्त स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। सभी मूर्त पदार्थ शरीरक, कल्याणकारी आपको नमस्कार है ॥३९॥ ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मशरीरक तथा परब्रह्म स्वरूपी, सर्वधाम स्वरूप तथा धामों के आधार स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४०॥ श्रीमान्, श्रीनिवास तथा श्रीधर भगवान् को नमस्कार है। क्षीरसागर में निवास करने वाले तथा अमृत स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४१॥ महौषधरूप, घोर, तथा महाप्रज्ञा परायण आपको नमस्कार है। अक्रूर, अत्यन्त पवित्र, तथा मेध्यों (पवित्रों) के स्वामी आपको नमस्कार है ॥४२॥ अनन्त स्वरूप सम्पूर्ण जगत् स्वरूप तथा अनघ आपको बारम्बार नमस्कार है। आकाश के प्रकाश स्वरूप, तथा पक्षी स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४३॥ होमस्वरूप, होमों का भोग करने वाले तथा हविष्य स्वरूप आपको नमस्कार है। बुद्ध स्वरूप, बुद्ध शरीरक तथा सर्वज्ञ आपको नमस्कार है॥४४॥ हव्य स्वरूप, कव्यस्वरूप, स्वधाकार तथा स्वाहाकार स्वरूप शुद्ध तथा अव्यक्त आपको नमस्कार है ॥४५॥

व्यासाय वासवायैव वसुरूपाय ते नमः । वासुदेवाय विश्वाय वह्निरूपाय ते नमः ॥४६॥
हरये केवलायैव वामनाय नमोनमः । नमो नृसिंहदेवाय सत्त्वपालाय ते नमः ॥४७॥
नमो गोविन्दगोपाय नम एकाक्षराय च । नमःसर्वाक्षरायैव हंसरूपाय ते नमः ॥४८॥
त्रितत्त्वाय नमस्तुभ्यं पञ्चतत्त्वाय ते नमः । पञ्चविंशतितत्त्वाय तत्त्वाधाराय वै नमः ॥४९॥
कृष्णाय कृष्णरूपाय लक्ष्मीनाथाय ते नमः। नमःपद्मपलाशाक्ष आनन्दाय पराय चं ॥५०॥
नमोविश्वम्भरायैव पापनाशय वै नमः । नमःपुण्यसुपुण्याय सत्यधर्माय ते नमः ॥५१॥

नमोनमःशाश्वत अव्याय नमोनमःसर्वनभोमयाय ।
श्रीपद्मनाभाय महेश्वराय नमामि ते केशव पादपद्मम् ॥५२॥
आनन्दकन्द कमलाप्रिय वासुदेव सर्वेशईश मधुसूदन देहि दास्यम् ।
पादौ नमामि तव केशव जन्मजन्म कृपां कुरुष्व ममशान्तिद शङ्खपाणे ॥५३॥
संसारदारुणहुताशनतापदग्धं पुत्रादि वन्धुमरणैर्बहुशोकतापैः ।
ज्ञानाम्बुदेन ममप्लावय पद्मनाभ दीनस्य मच्छरणरूप भवस्व नाथ ॥५४॥
एवं स्तोत्रं समाकर्ण्य त्वङ्गस्यापि महात्मनः ।
दर्शयित्वा स्वकं रूपं घनश्यामं महौजसम् ॥५५॥

शङ्खचक्रगदापाणिं पद्महस्तं महाप्रभुम् । वैनतेयसमारूढमात्मरूपं प्रदर्शितम् ॥५६॥

व्यास शरीरक, इन्द्र शरीरक तथा वसुशरीरक आपको नमस्कार है । वासुदेव, विश्वशरीरक, अग्निशरीरक आपको नमस्कार है । श्रीहरि, केवल स्वरूप तथा वामन स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४६॥ नृसिंह देव को नमस्कार है, सत्य का पालन करने वाले आपको नमस्कार है ॥४७॥ भगवान् गोविन्द को नमस्कार है । गोपरूपधारी को नमस्कार है । एकाक्षर स्वरूप आपको नमस्कार है । सर्वाक्षर स्वरूप, हंस स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४८॥ तत्त्वत्रय (जीव, ईश्वर और माया) स्वरूप तथा पञ्चतत्त्व (पृथिव, जल, तेज, वायु और आकाश) स्वरूप आपको नमस्कार है । पंचविंशति तत्त्व स्वरूप (प्रकृति, महान्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ मन तथा जीव रूप) तथा तत्त्वों के आधार स्वरूप आपको नमस्कार है॥४९॥ कृष्ण स्वरूप, लक्ष्मीनाथ भगवान् को नमस्कार है । कमल दल स्वरूप, सर्वश्रेष्ठ आनन्द स्वरूप आपको नमस्कार है ॥५०॥ भगवान् विश्वंभर को नमस्कार है । पापों का नाश करने वाले आपको नमस्कार है । पुण्य स्वरूप तथा सत्य धर्म स्वरूप आपको नमस्कार है ॥५१॥ शाश्वत अव्यय स्वरूप श्रीभगवान् को बारम्वार नमस्कार है । सम्पूर्ण आकाश स्वरूप श्रीभगवान् को बारम्वार नमस्कार है । श्रीपद्मनाथ भगवान् को नमस्कार है, महेश्वर को नमस्कार है । हे केशव ! मैं आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ हे आनन्दकन्द, लक्ष्मीजी के प्रियतम सर्वेश, हे वासुदेव, हे ईश भगवन् मधुसूदन आप मुझे अपनी दासता प्रदान करें । हे केशव ! मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ । हे मुझे शान्ति प्रदान करने वाले, शङ्ख पाणि प्रभो, प्रत्येक जन्मों में आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥५३॥ पुत्र आदि की मृत्यु जन्य शोक संतप्त रूप संसार रूपी भयङ्कर अग्नि के संताप से दग्ध मुझे आप ज्ञान रूपी मेघ से सींच दें । हे पद्मनाथ ! हे नाथ ! आप मुझदीन की रक्षा करें ॥५४॥ इस तरह से महात्मा अङ्ग की स्तुति को सुनकर अपने महाओजस्वी घनश्याम रूप को दिखाकर गरुड पर बैठे हुए हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए महाप्रभु का रूप

सर्वाभरणशोभाङ्गं हारकङ्कणकुण्डलैः । राजमानं परंदिव्यंनिर्मलं घनमालया ॥५७॥
अङ्गस्याग्रे हृषीकेशःशोभमानमहत्प्रभः । श्रीवत्साङ्केन पुण्येन कौस्तुभेन जनार्दनः ॥५८॥
दर्शयित्वा स्वकं देहं सर्वदेवमयोहरिः । स उवाच महात्मानं तमङ्गमृषिसत्तमम् ॥५९॥
भोभोविप्र महाभाग श्रूयतां वचनं शुभम् । मेघगम्भीरघोषेण समाभाष्य द्विजोत्तमम् ॥६०॥
तपसाऽनेन तुष्टोऽस्मि वरं वरय शोभनम् । तुष्यमाणं हृषीकेशं तं दृष्ट्वा कमलापतिम् ॥६१॥
दीप्यमानं विराजन्तं विश्वरूपं जनेश्वरम् । पादाम्बुजयद्वयं तस्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥६२॥
हर्षेण महताविष्टस्तमुवाच जनार्दनम् । दासोऽहं तव देवेश शङ्खचक्रगदाधर ॥६३॥
वरं मे दातुकामोऽसि देहि त्वं वंशजं सुतम् ।
दिवि शक्रो यथाऽऽभाति सर्वतेजःसमन्वितः ॥६४॥
तादृशं देहि मे पुत्रं सर्वलोक्स्य रक्षकम् । सर्वदेवप्रियंदेव ब्रह्मण्यं धर्मपण्डितम्॥६५॥
दातारं ज्ञानसम्पन्नं धर्मतेजःसमन्वितम् । त्रैलोक्यरक्षकं कृष्णं सत्यधर्मानुपालकम् ॥६६॥
यज्वनामुत्तमंचैकं शूरं त्रैलोक्यभूषणम् । ब्रह्मण्यं वेदविद्वांसं सत्यसन्धंजितेन्द्रियम् ॥६७॥
अजितं सर्वजेतारं विष्णुतेजःसमप्रभम् । वैष्णवं पुण्यकर्तारं पुण्यजं पुण्यलक्षणम् ॥६८॥
शान्तं तु तपसोपेतं सर्वशास्त्र विशारदम् । वेदज्ञं योगिनांश्रेष्ठं भवतो गुणसंनिभम्॥६९॥
ईदृशं देहि मे पुत्रं दातुकामो यदा वरम् ॥७०॥

श्रीभगवान् ने दिखाया ॥५५-५६॥ भगवान् के अङ्ग सभी आभरणों से सुशोभित थे । हार, कंकण तथा कुण्डल से सुशोभित तथा वनमाला से सुशोभित अत्यन्त दिव्य रूप था ॥५७॥ अङ्ग के समक्ष अत्यन्त कान्ति सम्पन्न भगवान् हृषीकेश पवित्र श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि से सुशोभित भगवान् जनार्दन सर्वदेवमय, श्रीहरि ने अपने शरीर को दिखाकर ऋषियों में श्रेष्ठ महात्मा अङ्ग से कहा ॥५८-५९॥ हे महाभाग विप्र ! आप मेरी शुभ वाणी सुनें । इस तरह से गम्भीर वाणी से कहकर ॥६०॥ **भगवान् ने कहा**— मैं आपकी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ आप सुन्दर वरदान माँगें । सन्तुष्ट कमलापति भगवान् हृषीकेश को देखकर ॥६१॥ विश्वरूप, जनेश्वर, के देदीप्यमान दोनों चरण कमलों को बार-बार प्रणाम करके ॥६२॥ अत्यधिक हर्ष से युक्त होकर अङ्ग भगवान् हृषीकेश से कहे । हे शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले, देवेश मैं आपका दास हूँ ॥६३॥ यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो आप मुझे वंशज पुत्र प्रदान करें । वह उसी तरह के तेज से युक्त हो जिस तरह स्वर्ग में इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥६४॥ आप सम्पूर्ण लोक के रक्षक उसी प्रकार का पुत्र मुझे दीजिए वह सभी देवताओं का प्रिय, ब्राह्मण तथा धर्म का पण्डित हो ॥६५॥ दान देने वाला, ज्ञानी तथा धर्म के तेज से युक्त हो, त्रैलोक्य का रक्षक, कृष्ण स्वरूप तथा सत्य धर्म का पालक हो ॥६६॥ वह यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ, प्रधान वीर तथा त्रैलोक्य को भूषित करने वाला हो । ब्रह्मण्य, वेद का विद्वान् सत्य वक्ता तथा जितेन्द्रिय हो ॥६७॥ उसको कोई भी परास्त न कर सकें, वह सबों पर विजय प्राप्त करने वाला तथा भगवान् विष्णु के तेज के समान कान्ति वाला हो । वह वैष्णव, पुण्य करने वाला, पुण्य से उत्पन्न और पुण्य लक्षण वाला हो ॥६८॥ वह शान्त, तपस्या करने वाला तथा सभी शास्त्रों में निपुण हो, वेदज्ञ, योगियों में श्रेष्ठ, तथा आपके समान गुणवान् हो ॥६९॥ यदि आप वरदान देना चाहते हैं तो मुझे ऐसा ही पुत्र प्रदान

वासुदेव उवाच

एभिर्गुणैः समोपेतस्तवपुत्रो भविष्यति । अत्रिवंशस्य वै धर्ता विश्वस्यास्य महामते ॥७१॥
तेजसा यशसापुण्यैःपितरं चोद्धरिष्यति। उद्धरिष्यति यःसत्यैःपितरं च पितामहम् ॥७२॥
भवान्यास्यति मे स्थानं तद्विष्णोःपरमं पदम् ।
इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तमङ्गंप्रति सद्विज ॥७३॥
कस्यचित्पुण्यवीर्यस्य पुण्यां कन्यां विवाहय ।
तस्यामुत्पादय सुतं शुभं पुण्यावहप्रियम् ॥७४॥
स भविष्यतिधर्मात्मामत्प्रसादान्महामते। सर्वज्ञः सर्ववेत्ता च यादृशो वाञ्छितस्त्ववा ॥७५॥
एवं वरं ततो दत्त्वा अन्तर्धानं गतो हरिः ॥७६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने अङ्गवरप्रदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

शप्ता गन्धर्वपुत्रेण सुशङ्खेन महात्मना। तस्य शापात्कथं जाता किं किं कर्मकृतं तया ॥१॥
स लेभे कीदृशं पुत्रं तस्य शापाद् द्विजोत्तम ।
सुनीथायाश्च चरितं त्वं नो विस्तरतो वद ॥२॥

सूत उवाच

सुशङ्खेनापि तेनैव सा शप्ता तनुमध्यमा । पितुःस्थानं गता सा तु सुनीथा दुःखपीडिता ॥३॥

करें ॥७०॥ **श्रीवासुदेव ने कहा—** तुम्हारा पुत्र ऐसे ही गुणों से युक्त होगा । हे महामते ! वह अत्रिवंश को तथा विश्व को धारण करने वाला होगा ॥७१॥ वह तेज, यश तथा पुण्यों के द्वारा अपने पिता और पितामहों का उद्धार करेगा । आप मेरे परमपद में जायेंगे ॥७२॥ इस तरह से अङ्ग से कहकर देवदेवेश श्रीभगवान् ने अङ्ग से कहा आप पहले किसी पुण्यवान् पुरुष की कन्या से विवाह करें ॥७३॥ और उसके गर्भ से पुण्यवान् तथा प्रिय पुत्र को उत्पन्न करें । हे महामते ! वह मेरी कृपा से पुण्यात्मा होगा ॥७४॥ जैसा आप चाहते हैं वैसा ही वह सर्वज्ञ तथा सर्ववेत्ता होगा । इस तरह से वरदान देकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥७५-७६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के अंतर्गत अङ्ग को वर प्रदान नामक बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३२।।

सुनीथा चरित्र

ऋषियों ने कहा— गन्धर्व पुत्र महात्मा सुशङ्ख के द्वारा शाप दिए जाने के बाद उस शाप के कारण सुनीथा कैसी हुयी ? और उसने कौन सा कर्म किया ?॥१॥ हे द्विजोत्तम ! उस शाप के कारण उसने कैसा पुत्र प्राप्त किया ? आप सुनीथा के चरित का विस्तार से वर्णन करें ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** सुशङ्ख के

पितरं चात्मनश्चैव चरितं च प्रकाशितम्। श्रुतवान्सोऽपि धर्मात्मा मृत्युःसत्यवतांवरः ॥४॥
तामुवाच सुनीथां तु सुतां शप्तां महात्मना। भवत्या दुष्कृतं पापं धर्मतेजःप्रणाशनम्॥५॥
कस्मात्कृतं महाभागे सुशान्तस्य हि ताडनम्।
विरुद्धं सर्वलोकस्य भवत्या परिकल्पितम् ॥६॥
कामक्रोध विहीनं तं सुशान्तं धर्मवत्सलम्। तपोमार्गे विलीनं च परब्रह्मणि संस्थितम् ॥७॥
तमेव घातयेद्योवै तस्य पापं शृणुत्व हि। पापात्माजायते पुत्रः किल्बिषं लभते बहु ॥८॥
ताडयन्तं ताडयेद्यःकोशान्तं क्रोशयेत्पुनः। तस्य पापं सवै भुङ्क्ते ताडितस्य न संशयः॥९॥
स वै शान्तो जितात्मा च ताडयन्तं न ताडयेत्।
निर्दोषं प्रति येनापि ताडनं च कृतं सुते ॥१०॥
पश्चान्मोहेन पापेन निर्दोषोऽपि च ताडयेत्। निर्दोषं प्रतियेनापि हृद्रोगःक्रियतेवृथा ॥११॥
निर्दोषं ताडयेत्पश्चान्मोहात्पापेन केनचित्। स पापी पापमाप्नोति निर्दोषस्य शरीरजम् ॥१२॥
निर्दोषो घातयेत्तंवै ताडन्तं पापचेतसम्। पुनरुत्थाय वेगेन साहसापापचेनतम् ॥१३॥
पापकर्तुश्च यत्पापं निर्दोषं प्रतिगच्छति। ताडनंनैव तस्माद्वैकार्यदोषवतोऽपि च ॥१४॥
दुष्कृतं च महत्पुत्रि त्वयैवपरिपालितम्। शप्तां तेनापि याद्यैव तस्मात्पुण्यं समाचर॥१५॥
सतां सङ्गं समासाद्य सदैव परिवर्तय। योगध्यानेन ज्ञानेन परिवर्तय नन्दिनि ॥१६॥
सतांसङ्गो महापुण्यो बहुश्रेयो विधायकः। बाले पश्य सुदृष्टान्तं सतां सङ्गस्य यद्गुणम्॥१७॥
अपांसंस्पर्शनात्पानात्स्नानात्तत्रमहाधियः । मुनयःसिद्धिमायान्विवाह्याभ्यन्तरक्षालिताः ॥१८॥

द्वारा शापित होकर वह सुन्दरी दुःख से पीड़ित होकर अपने पिता के पास गयी ॥३॥ उसने अपने पिता से अपने चरित को बतलायी। सत्यवानों में श्रेष्ठ धर्मात्मा मृत्यु भी उसे सुना ॥४॥ शापित सुनीथा से महात्मा मृत्यु ने कहा— तुमने धर्म के तेज को विनष्ट करने वाले महान् पाप को किया है ॥५॥ हे महाभागे ! तुमने उन शान्त महात्मा का प्रताड़न क्यों किया ? तुमने सम्पूर्ण लोक के विरुद्ध कार्य किया है ॥६॥ काम एवं क्रोध से रहित, अत्यन्त शान्त, धर्मवत्सल तपोनिष्ठ तथा परब्रह्म में स्थित ॥७॥ व्यक्ति को जो मारता है, उसको जो पाप होता है उसे तुम सुनो। उसका पुत्र अत्यन्त पापी होता है, उसको बहुत अधिक पाप लगता है जो मारने वाले को मारता है, तथा निन्दा करने वाले की निन्दा करता है उस मारने का फल पहले मारने वाला ही भोगता है ॥९॥ हे पुत्रि ! जिसे तुमने मारा है, वह निर्दोष तथा जितेन्द्रिय है तथा शान्त है वह मारने वाले को भी नहीं मारता है ॥१०॥ बाद में मोह तथा पाप के कारण यदि कोई निर्दोष को मारता है तो वह व्यर्थ के हृदय के रोग को लेता है ॥११। यदि कोई मोह या पाप के कारण निर्दोष व्यक्ति को मारता है वह पापी निर्दोष के शरीर जन्य पाप को प्राप्त करता है ॥१२॥ यदि पापी तथा मारने वाले को निर्दोष व्यक्ति उठकर साहस करके यदि मारता है तो फिर पाप करने वाले का जो पाप होता है वह उस निर्दोष के पास चला जाता है ॥१३-१४॥ हे पुत्रि ! तुमने ही महान् पाप को पाला है, उसके कारण उसने जो शाप दिया है, उसके कारण तुम पुण्य कार्य करो ॥१५॥ तुम सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त करके उसको सदैव पालन करो। योग, ज्ञान तथा ध्यान के द्वारा हे पुत्रि ! तुम व्यवहार करो ॥१६॥ सज्जनों की सङ्गति अत्यन्त पुण्यप्रद होती है। हे पुत्रि ! सत्सङ्गति के गुण को तुम दृष्टान्त पूर्वक जानो ॥१७॥ जल का स्पर्श

आयुष्मन्तो भवन्त्येते लोकाः सर्वे चराचराः ।
आपः शान्ताः सुतीताश्च मृदुगात्राःप्रियङ्कराः ॥१९॥

निर्मला रसवत्यश्च पुण्यवीर्या मलापहाः। तथा सन्तस्त्वया ज्ञेया निषेव्याश्च प्रयत्नतः ॥२०॥
यथावह्नि प्रसङ्गाच्च मलंत्यजति काञ्चनम्। तथा सतां हि संसर्गात्पापं त्यजति मानवः ॥२१॥
सत्यवह्निःप्रदीप्तश्च प्रज्वले प्पुण्यतेजसा। सत्येन दीप्ततेजास्तु ज्ञानेनापि सुनिर्मलः ॥२२॥
अत्युष्णो ध्यानभावेन अस्पृश्यःपापजैर्नरैः। सत्यवह्नेःप्रसङ्गाच्च पापं सर्वं विनश्यति ॥२३॥
तस्मात्सत्यस्य संसर्गःकर्तव्यःसर्वथा त्वया। पापभारं परित्यज्य पुण्यमेव समाश्रय॥२४॥

सूत उवाच

एवं पित्रा सुनीथा सा दुःखिता प्रतिबोधिता ।
नमस्कृत्य पितुःपादौ गता सा निर्जनं वनम् ॥२५॥
कामं क्रोधं परित्यज्य बालभावं तपस्विनी ।
मोहद्रोहौ च मायां च त्यक्त्वा एकान्तमास्थिता ॥२६॥
तस्याःसख्यःसमाजग्मू रम्भाद्यास्स्क्रीडार्थं लीलयाऽन्विताः ।
तां ददृशुर्विशालाक्ष्यः सुनीथां दुःखभागिनीम् ॥२७॥

ध्यायन्तीं चिन्तयानां तामूचुश्चिन्तापरायणाः। कस्माच्चिन्तयसे भद्रे कयावा चिन्तयान्विता ॥२८॥
तन्नो वै कारणं ब्रूहि चिन्तादुःखप्रदायिनी। एकैव सार्थका चिन्ता धर्मस्यार्थे विचिन्त्यते ॥२९॥

करने से, पान करने से तथा उसमें स्नान करने से बाह्य तथा आभ्यान्तर स्वच्छता से युक्त होकर मुनिजन सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं ॥१८॥ ये सारे जीव पानी से आयुष्मान हो जाते हैं । क्योंकि जल शान्त, शीतल तथा मृदुल शरीर वाला तथा प्रिय करने वाला होता है ॥१९॥ जल निर्मल, रसवान्, पवित्र पराक्रम वाला तथा मल को विनष्ट करने वाला होता है । उसी तरह सज्जन पुरुष को तुम्हें जानना चाहिए । उनका सेवन प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥२०॥ जिस तरह अग्नि के सम्बन्ध से सुवर्ण अपने मैल को त्याग देता है उसी तरह सज्जनों के संसर्ग से मनुष्य पाप को छोड़ देता है ॥२१॥ सत्य रूपी अग्नि पुण्य के तेज से प्रदीप्त होता है । सत्य से तेज बढ़ता है और ज्ञान से मनुष्य निर्मल होता है ॥२२॥ वह ध्यान की भावना से अत्यन्त उष्ण हो जाता है और पापी मनुष्य उसको स्पर्श नही कर सकता है । सत्य रूपी अग्नि के संसर्ग से सारा पाप विनष्ट हो जाता है ॥२३॥ अतएव तुम्हें सदा सत्य का सम्बन्ध करना चाहिए । तुम पाप के भार का परित्याग करके पुण्य का ही आश्रयण करो ॥२४॥ **सूतजी ने कहा—** इस प्रकार से अत्यन्त दुःखी सुनीथा को पिता मृत्यु ने समझाया । वह अपने पिता के चरणों में प्रणाम करके निर्जन वन में चली गयी ॥२५॥ काम, क्रोध तथा बालभाव का परित्याग करके वह तपस्विनी मोह, द्रोह तथा माया का परित्याग करके एकान्त में रहने वाली ॥२६॥ उसकी तपस्या करने वाली रम्भा आदि सखियाँ उसके पास आयीं । उन सुन्दरियों ने दुखिनी उस सुनीथा को देखा ॥२७॥ वे सब चिन्तित होकर ध्यान तथा चिन्ता करने वाली सुनीथा से कहा— हे भद्रे ! तुम चिन्ता क्यों करती हो ? तुम्हें कौन सी चिन्ता है॥२८॥ उस कारण को तुम हमलोगों को बतलाओ, चिन्ता तो दुःख देने वाली होती है, वही चिन्ता सार्थक होती है जो धर्मप्राप्ति के लिए की जाती है ॥२९॥ चिन्ता से तृष्णा, मोह, तथा लोभ उत्पन्न होते

द्वितीया सार्थका चिन्ता योगिनां धर्मनन्दिनी ।
अन्या निरर्थिका चिन्ता तां नैव परिकल्पयेत् ॥३०॥
कायनाशकरी चिन्ता बलतेजःप्रणाशिनी । नाशयेत्सर्वसौख्यं तु रूपहानिं निदर्शयेत्॥३१॥
तृष्णां मोहं तथा लोभमेतांश्चिन्ता हि प्रापयेत् ।
पापमुत्पादयेच्चिन्ता चिन्तिता च दिने दिने ॥३२॥
चिन्ता व्याधिप्रकाशाय नरकाय प्रकल्पयेत्। तस्माच्चिन्तां परितज्य चानुवर्तस्वशोभने॥३३॥
अर्जितं कर्मणा पूर्वं स्वयमेव नरेण तु। तदेव भुङ्क्तेऽसौ जन्तुर्ज्ञानवान्नविचिन्तयेत्॥३४॥
तस्माच्चिन्तां परित्यज्य सुखदुःखादिकं वद ।
तासां तद्वचनं श्रुत्वा सुनीथा वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुनीथाचरितं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥
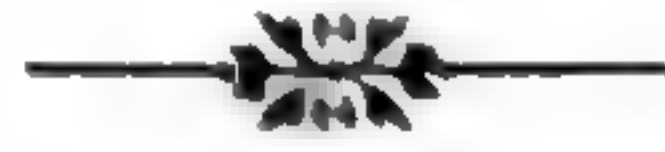
चौंतीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

यथा शप्ता वने पूर्वं सुशङ्खेन महात्मना। तासु सर्वं समाख्यातं सखीष्वेव विचेष्टितम् ॥
आत्मनश्च महाभागा दुःखेनातिप्रपीडिता ॥१॥

सुनीथोवाच

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि सख्यः शृण्वन्तु साम्प्रतम् ॥२॥
मदीयरूपसम्पत्तिर्वयः सुगुणसम्पदः । विलोक्य मां पितुश्चिन्ता सञ्जाता मम कारणात्॥३॥

हैं । प्रतिदिन की जाने वाली चिन्ता पाप को ही उत्पन्न करती है ॥३०-३२॥ चिन्ता से व्याधि होती है, तथा चिन्ता नरक का कारण होती है । अतएव चिन्ता का परित्याग करके तुम शुभकार्य को करो ॥३३॥ मनुष्य अपने पूर्व कर्मों के द्वारा जो अर्जित किए रहता है, वह उसी का भोग करता है । चूँकि वह उसी का फल भोगता है अतएव ज्ञानी को चिन्ता नहीं करना चाहिए ॥३४॥ अतएव चिन्ता को छोड़कर तुम अपने सुख-दुःख इत्यादि को बतलाओ । उन सबों की वाणी को सुनकर सुनीथा ने कहा ॥३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुनीथा चरित नामक तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।
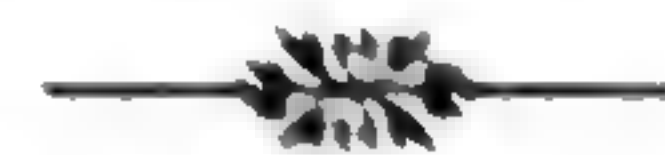
सुनीथा द्वारा सखियों के समक्ष अपने पाप का प्रकाशन

सूतजी ने कहा— वन में सुशङ्ख के द्वारा जैसे वह शापित हुयी उसे उस सम्पूर्ण अपने कर्मों को उसने सखियों को बतलाया । वह महाभागा दुःख से अत्यन्त पीड़ित थी ॥१॥ **सुनीथा ने कहा—** हे सखियां । मैं दूसरी बात भी बतला रही हूँ उसे सुनो ॥२॥ मेरी रूप सम्पत्ति तथा सुन्दर गुण रूपी सम्पत्ति

देवेभ्यो दातुकामोऽसौ मुनिभ्यस्तु महायशाः ।
मां च हस्ते विगृह्यैव सर्वान्वाक्यमुदाहरत् ॥४॥
गुणयुक्ता सुता बाला ममेयं चारुलोचना । दातुकामोस्मि भद्रं वो गुणिने सुमहात्मने॥५॥
मृत्योर्वाक्यं ततो देवा ऋषयः शुश्रुवुस्तदा । तमूचुर्भाषमाणं ते देवा इन्द्रपुरोगमाः॥६॥
तव कन्या गुणाढ्येयं शीलानां परमोनिधिः ।
दोषणैवेकेन सन्दुष्टा ऋषिशापेन तेन वै ॥७॥
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो यस्य वीर्यात्पुमान्किल ।
भविता स महापापी पुण्यवंशविनाशकः ॥८॥
गङ्गातोयेन सम्पूर्णः कुम्भ एव प्रदृश्यते। सुराया विन्दुना लिप्तो मद्यकुम्भः प्रजायते ॥९॥
पापस्य पापसंसर्गात्कुलं पापि प्रजायते। आरनालस्य वै विन्दुःक्षीरमध्ये प्रयाति चेत् ॥१०॥
पश्चान्नाशयते क्षीरमात्मरूपं प्रकाशयेत्। तद्वद्विनाशयेद्वंशं पापःपुत्रो न संशयः ॥११॥
अनेनापि हि दोषेण तवेयं पापभागिनी। अन्यस्मै दीयतां गच्छ देवैरुक्तः पिता मम ॥१२॥
देवैश्चापि सगन्धर्वैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः । तैश्चापि सम्परित्यक्तःपिता मेदुःखपीडितः ॥१३॥
ममान्ये चापि स्वीकारं न कुर्वन्ति हि सज्जनाः ।
एवं पापमयं कर्म मया चैव पुराकृतम् ॥१४॥
सन्तप्ता दुःखशोकेन वनमेव समाश्रिता । तप एव चरिष्यामि करिष्ये कायशोषणम् ॥१५॥
भवतीभिः सुपृष्टाहं कार्यकारणमेव हि । मम चिन्तानुगं कर्म मया तद्वःप्रकाशितम् ॥१६॥
एवमुक्त्वा सुनीथा सा मृत्योःकन्या यशस्विनी ।
विरराम च दुःखार्ता किञ्चिन्नोवाच वै पुनः ॥१७॥

को देखकर मेरे कारण मेरे पिता को चिन्ता हो गयी ॥३॥ वे महायशस्वी मुझे देवताओं और मुनियों को प्रदान करना चाहते थे । उन्होंने मुझको हाथ से पकड़कर सबों से कहा ॥४॥ मेरी यह पुत्री गुणवती और सुन्दर नेत्रों वाली है । मैं इसे किसी गुणी महात्मा को देना चाहता हूँ, आपलोगों का कल्याण हो ॥५॥ देवताओं और ऋषियों ने मृत्यु की वाणी को सुना और बोलने वाले मृत्यु से इन्द्र इत्यादि देवताओं ने कहा॥६॥ तुम्हारी कन्या गुणों से परिपूर्ण तथा शील का आकार है । केवल एक दोष से ऋषि ने इसे शाप दे दिया है ॥७॥ जिसके वीर्य से इसका पुत्र उत्पन्न होगा वह महापापी और पवित्र वंश का विनाश करने वाला होगा ॥८॥ सारा कलश गङ्गा के जल से भरा हो, किन्तु मदिरा के एक बून्द पड़ जाने से वह मदिरा का कुम्भ हो जाता है ॥९॥ पापी के पाप का सम्बन्ध होने पर पूरा वंश पापी हो जाता है ॥१०॥ यदि आरनाल (काञ्जी) एक बूंद भी दूध में पड़ जाता है तो वह दूध का रूप नष्ट करके अपने ही रूप का प्रकाशन करता है । उसी तरह पापी पुत्र पूरे वंश का विनाश कर देता है ॥११॥ इसी दोष के कारण तुम्हारी यह पुत्री पापिनी है । इसे किसी दूसरे को प्रदान करो इस तरह से देवताओं ने मेरे पिता को कहा॥१२॥ देवता, गन्धर्व, ऋषि तथा महात्माओं के द्वारा परित्यक्त मेरे पिता दुःखी हो गये ॥१३॥ दूसरे भी सज्जन मुझको नहीं स्वीकार करते हैं । मैं इस प्रकार का पाप कर्म कर चुकी हूँ ॥१४॥ दुःख और शोक से सन्तप्त होकर मैं वन में आयी हूँ । मैं तपस्या ही करूँगी और अपने शरीर का शोषण करूँगी ॥१५॥

सख्य ऊचुः

दुःखमेव महाभागे त्यज कायविनाशनम् । नास्ति कस्य कुलेदोषो देवैःपापं समाश्रितम् ॥१८॥
जिह्ममुक्तं पुरा तेन ब्राह्मणा हरसन्निधौ। देवैश्चापि स हि त्यक्तो ब्रह्मा पूज्यतमोऽभवत्॥१९॥
ब्रह्महत्याप्रयुक्तोऽसौ देवराजोऽपि पश्य भोः ।
देवैःसार्धं महाभागो त्रैलोक्यं परिभुञ्जति ॥२०॥
गौतमस्य प्रियां भार्यामहल्यां गतवान्पुरा। परदाराभिगामी स देवत्वे परिवर्त्तते ॥२१॥
ब्रह्महत्योपमं कर्म दारुणं कृतवान्हरः। ब्रह्मणस्तु कपालेन चाद्यापि परिवर्तते॥२२॥
देवा नमन्ति तं देवमृषयो वेदपारगाः। आदित्यःकुष्ठसंयुक्तस्त्रैलोक्यं च प्रकाशयेत् ॥२३॥
लोका नमन्ति तं देवं देवाद्याःसचराचराः। कृष्णोभुङ्क्ते महाशापं भार्गवेण कृतं पुरा ॥२४॥
गुरुभार्यां गतश्चन्द्रःक्षयी तेन प्रजायते। भविष्यति महातेजा राजराजःप्रतापवान्॥२५॥
पाण्डुपुत्रो महाप्राज्ञो धर्मात्मा स युधिष्ठिरः। गुरोश्चैव वधार्थाय अनृतं स वदिष्यति ॥२६॥
एतेष्वेव महत्पापं वर्तते च महत्सु च ।
वैगुण्यं कस्य वै नास्ति कस्य नास्ति च लाञ्छनम् ॥२७॥
भवती स्वल्पदोषेण विलिप्तासि वरानने। उपकारं करिष्यामस्तवैव वरवर्णिनि॥२८॥
तवाङ्गे ये गुणाःसन्ति सत्यस्त्रीणां यथाशुभे। अन्यत्रापि न पश्यामस्तान्गुणांश्चारुलोचने ॥२९॥
रूपमेवगुणःस्त्रीणां प्रथमं भूषणं शुभे । शीलमेव द्वितीयं च तृतीयं सत्यमेव च ॥३०॥

आपलोगों ने मुझसे चिन्ता का कारण पूछा तो मैंने अपनी चिन्ता का कारण बतला दिया ॥१६॥ इस तरह से कहकर मृत्यु की यशस्विनी कन्या दुखार्त बनी हुयी चुप हो गयी और कुछ भी नहीं बोली ॥१७॥ **सखियों ने कहा—** हे महाभागे ! शरीर को विनष्ट करने वाले दुःख का तुम त्याग करो । किसके वंश में दोष नहीं है, देवता भी तो पाप करते हैं ॥१८॥ ब्रह्माजी ने शङ्करजी के सन्निकट झूठ बोला । देवताओं ने ब्रह्मा का परित्याग कर दिया फिर ब्रह्माजी पूज्यतम हो गये ॥१९॥ देखो इन्द्र को भी ब्रह्म हत्या लगी; किन्तु हे महाभागे ! वे देवताओं के साथ त्रैलोक्य का भोग करते हैं ॥२०॥ इन्द्र गौतम की प्रिया पत्नी अहल्या के साथ सहगमन किए वे परदाराभिगामी होकर भी देवत्व को प्राप्त कर लिए ॥२१॥ कई लोगों ने भी ब्रह्म हत्या के समान भयङ्कर कर्म किया, आज भी ब्रह्माजी के कपाल से युक्त हैं ॥२२॥ उनको देवता और वेद पारंगत ऋषिगण नमस्कार करते हैं । कुष्ठ से युक्त आदित्य भी त्रैलोक्य का प्रकाशन करते हैं ॥२३॥ सभी लोग तथा देवता आदि भी सूर्य को नमस्कार करते है । भगवान् विष्णु भी पहले के भृगु के शाप का फल भोगते हैं ॥२४॥ चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का उपभोग किया उसके कारण वे क्षयी हो गये । वे महातेजस्वी प्रतापी राजराज हो गये ॥२५॥ महाप्राज्ञ युधिष्ठिर भी अपने गुरु द्रोणाचार्य के वध के लिए झूठ बोलेंगे ॥२६॥ इन महापुरुषों में भी महापाप विद्यमान है । किस में दोष नहीं है ? और किसमें लाञ्छन नहीं है ?॥२७॥ हे वरानने ! तुम तो छोटे से दोष से लिप्त हुयी हो । हे सुन्दरि ! हमलोग तुम्हारा उपकार करेंगी ॥२८॥ तुम्हारे शरीर में जो गुण हैं, वे सती स्त्रियों के समान है । हे सुन्दर नेत्रों वाली, उन गुणों को हमलोग दूसरी स्त्रियों में नहीं पाती हैं ॥२९॥ स्त्रियों का गुण रूप ही है, उनका दूसरा गुण शील रूपी भूषण से युक्त होना है । तीसरा गुण सत्य बोलना है ॥३०॥ चौथा गुण आर्जव (सीधापन) है; पाँचवाँ गुण

आर्जवत्वं चतुर्थं च पञ्चमं धर्ममेव हि। मधुरत्वं ततःप्रोक्तं षष्ठमेव वरानने ॥३१॥
शुद्धत्वं सप्तमं बाले अन्तर्बाह्येषु योषिताम्। अष्टमं हि पितुर्भक्तिः शुश्रूषा नवमं किल॥३२॥
सहिष्णुर्दशमंप्रोक्तं रतिश्चैकादशं तथा। पातिव्रत्यं ततःप्रोक्तं द्वादशं वरवर्णिनि ॥३३॥
तैस्त्वं सम्भूषिता बाले मा बिभेषि वरानने। येनोपायेन ते भर्ता भविष्यति सुधर्मधृक्॥३४॥
तमुपायं प्रपश्यामस्तवार्थं वयमेव हि। स्वस्था भव महाभागे मा त्वं वै साहसं कुरु॥३५॥

सूत उवाच

एवमुक्ता सुनीथा सा पुनरूचे सखीस्तु ताः। कथयध्वं ममोपायं येन भर्ता भविष्यति ॥३६॥
तामूचुस्ता वरानार्यो रम्भाद्याश्चारुलोचनाः। रूपमाधुर्यसंयुक्ता भवती भूतिवर्द्धिनी ॥३७॥
ब्रह्मशापेन सम्भीता वयमत्र समागताः। विद्यामेकां प्रदास्यामःपुरुषाणां प्रमोहिनीम्॥३८॥
सर्वमायाविदां भद्रे सर्वभद्रप्रदायिनीम्। विद्याबलं ततो दद्युस्तस्यै ताःसुखदायकम् ॥३९॥
यं यं मोहयितुं भद्रे इच्छास्येवं सुरादिकम्। तं तं सद्यो मोहय वा इत्युक्ता सा तथाकरोत्॥४०॥

विद्यायां हि सुसिद्धायां सा सुनीथा सुनन्दिता ।
भ्रमत्येवं सखीभिस्तु पुरुषान्सा विपश्यति ॥४१॥

अटमाना गतापुण्यं नन्दनं वनमुत्तमम्। गङ्गातीरे ततो दृष्ट्वा ब्राह्मणं रूपसंयुतम् ॥४२॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं सूर्यतेजःसमप्रभम्। रूपेणाप्रतिमंलोके द्वितीयमिव मन्मथम्॥४३॥
देवरूपं महाभागं भाग्यवन्तं सुभाग्यदम्। अनौपम्यं महात्मानं विष्णुतेजःसमप्रभम् ॥४४॥
वैष्णवं सर्वपापघ्नं विष्णुतुल्यपराक्रमम्। कामक्रोधविहीनं तमत्रिवंशविभूषणम्॥४५॥

धर्म है, छठा गुण मधुर भाषित्व है ॥३१॥ हे बाले ! सातवाँ गुण आन्तर एवं बाह्य शुद्धता है । आठवाँ गुण पितृभक्ति है, नवाँ गुण शुश्रूण (सेवा करने की इच्छा) है ॥३२॥ दशवाँ गुण सहिष्णुता बतलाया गया है, ग्यारहवाँ गुण प्रेम करना है । हे सुन्दरि ! बारहवाँ गुण पातिव्रत्य है ॥३३॥ हे बाले ! तुम इन बारहों गुणों से भूषित हो, डरो मत जिस उपाय से तुम्हारा पति धार्मिक होगा, उस उपाय को हमलोग ही जानती हैं । तुम स्वस्थ हो जाओ तुम साहस करो ॥३४-३५॥ **सूतजी ने कहा**— इसतरह से उन सबों के कहने पर सुनीथा ने उन सखियों से कहा— तुमलोग उस उपाय को बतलाओ जिससे कि मैं पति को प्राप्त कर सकूँगी ॥३६॥ रम्भा आदि उन सुन्दर नारियों ने सुनीथा को बतलाया कि आप तो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली हो ॥३७॥ ब्रह्माजी के शाप से डरी हुयी हमलोग यहाँ आयीं । हमलोग तुमको पुरुषों को मोहित करने वाली एक विद्या प्रदान करेंगी ॥३८॥ सभी मायाओं को जानने वाली वे सब सभी कल्याणों को प्रदान करने वाली विद्या को उसे प्रदान किया ॥३९॥ हे भद्रे ! इस तरह से तुम जिस-जिस देवता आदि को मोहित करना चाहोगी, उस-उस को तुम शीघ्र ही मोहित कर लो इस तरह से कहने पर सुनीथा ने वैसा ही किया ॥४०॥ उस विद्या के सिद्ध हो जाने पर सुनीथा प्रसन्न हो गयी । वह पुरुषों को देखती हुयी सखियों के साथ घूमने लगी ॥४१॥ घूमती हुयी वह पवित्र नंदन वन में गयी उसके बाद गङ्गा के तट पर रूपवान ब्राह्मण को देखी॥४२॥ वे ब्राह्मण सभी लक्षणों से सम्पन्न, सूर्य के समान कान्तिमान, अप्रतिम सुन्दर तथा द्वितीय कामदेव के समान थे ॥४३॥ उनका रूप देवता के समान था सौभाग्य प्रदायक भाग्यवान् उनकी किसी दूसरे से तुलना नहीं की जा सकती थी । उनकी कान्ति भगवान् विष्णु के तेज के समान था ॥४४॥

दृष्ट्वा सुरूपं तपसां स्वरूपं दिव्यप्रभावं परितप्यमानम् ।
पप्रच्छ रम्भां सुसखीं सरागां कोऽयं दिविष्ठः प्रवरो महात्मा ॥४६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

रम्भोवाच

ब्रह्मा अव्यक्तसम्भूतस्तस्माज्जज्ञे प्रजापतिः। अत्रिर्नाम सधर्मात्मा तस्य पुत्रो महामनाः॥१॥
अङ्गो नाम अयं भद्रे नन्दनं वनमागतः। इन्द्रस्य सम्पदं दृष्ट्वा नानातेजस्समन्विताम् ॥२॥
कृतास्पृहा अनेनापि इन्द्रस्य सदृशे पदे । ईदृशो हि यदा पुत्रो ममस्याद्धर्मसंयुतः ॥३॥
सुश्रेयो मे भवेज्जन्म यशःकीर्ति समन्वितम् ।
आराधितो हृषीकेशस्तपोभिर्नियमैस्तथा ॥४॥
सुप्रसन्ने हृषीकेशे वरं याचितवानयम्। इन्द्रस्य सदृशं पुत्रं विष्णुतेजःपराक्रमम्॥५॥
वैष्णवं सर्वपापघ्नं देहि मे मधुसूदन। दत्तवान्स तदा पुत्रमीदृशं सर्वधारकम् ॥६॥
तदा प्रभृति विप्रेन्द्रःपुण्यां कन्यां प्रपश्यति। यथा त्वं चारुसर्वाङ्गी तथाऽयं परिपश्यति॥७॥

वे सभी पापों को विनष्ट करने वाले वैष्णव थे उनका पराक्रम भगवान् विष्णु के समान था । वे अत्रिवंश को विभूषित करने वाले तथा काम एवं क्रोध से रहित थे ॥४५॥ तपः स्वरूप सुन्दर रूप वाले तथा दिव्य प्रभाव से देदीप्यमान उनको देखकर उसने प्रेमपूर्वक रम्भा से पूछा यह देव प्रवर स्वर्ग में रहने वाले कौन महात्मा हैं ?॥४६॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

रम्भा के मुख से अङ्ग के वृत्तान्त को सुनकर सुनीथा का उनको प्राप्त करने का निश्चय

रम्भा ने कहा— अव्यक्त से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी । उनसे धर्मात्मा अत्रि प्रजापति उत्पन्न हुए । उनके पुत्र अङ्ग नामक महात्मा उत्पन्न हुए । वे एक बार इस नन्दन वन में आये । वे अनेक प्रकार के तेज से युक्त इन्द्र की सम्पति को देखकर इन्होंने भी इन्द्र के सदृश पद की स्पृहा की । उन्होंने सोचा यदि इसी प्रकार का मेरा धार्मिक पुत्र हो तो ॥१-३॥ मेरा परम कल्याण हो । मेरा जन्म यश और कीर्ति से समन्वित हो जाय । उन्होंने तपस्याओं और नियमों के साथ भगवान् हृषीकेश की आराधना की ॥४॥ उससे भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये तो भगवान् से वर माँगा कि हे भगवन् मधुसूदन ! आप मुझे इन्द्र के समान, विष्णु भगवान् के समान तेज और पराक्रम से युक्त सभी पापों को विनष्ट करने वाला वैष्णव पुत्र प्रदान करें । भगवन् ने भी इसी तरह के पुत्र का वरदान दिया ॥५-६॥ उसी समय से ये विप्रेन्द्र किसी पवित्र कन्या की

एनं गच्छ वरारोहे अस्मात्पुत्रो भविष्यति। पुण्यात्मा पुण्यधर्मज्ञो विष्णुतेज:पराक्रमः ॥८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथाहं पृच्छिता त्वया। अयंभर्ता भवत्यर्हो भवेदेव न संशयः ॥९॥
सुशङ्खस्यापि यःशापो वृथा सोऽपि भविष्यति।
अस्माज्जाते महाभागे पुत्रे धर्म प्रचारिणी ॥१०॥
भविष्यसि सुखी भद्रे सत्यंसत्यं वदाम्यहम्। सुक्षेत्रे कृषिकारस्तु बीजंवपति तत्परः ॥११॥
स तथा भुञ्जते देवि यथाबीजं तथाफलम्। अन्यथा नैव जायेत तत्सर्वं सदृशं भवेत् ॥१२॥
अयमेष महाभागस्तपस्वी पुण्यवीर्यवान्। अस्य वीर्यात्समुत्पन्नो अस्यैव गुणसम्पदा ॥१३॥
युक्तःपुत्रो महातेजा:सर्वदेहभृतांवरः। भविष्यति महाभाग्यो युक्तात्मा योगतत्त्ववित॥१४॥
एवं हि वाक्यं तु निशम्य बाला रम्भाप्रियोक्तं शिवदायकं तत्।
विचिन्त्यबुद्ध्येह सुनीथया तदा तत्त्वार्थमेतत्परिसत्यमेव हि ॥१५॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

सुनीथोवाच

सत्यमुक्तंत्वया भद्रे एवमेतत्करोम्यहम्। अनया विद्यया विप्रं मोहयिष्यामि नान्यथा॥१॥

प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे समस्त सुन्दर अङ्गों वाली! जैसी तुम हो उसी तरह की कन्या को ये चाहते हैं ॥७॥ हे सुन्दरि! तुम इनके पास जाओ। इनसे तुम्हारा धर्मात्मा पुत्र होगा। उसका विष्णु के समान तेज और पराक्रम होगा ॥८॥ तुमने जो पूछा उन सारी बातों को मैंने बतला दी। ये तुम्हारे योग्य पति होंगे इसमें कोई संशय नहीं है ॥९॥ इनसे धर्म के प्रचारक पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर सुशङ्ख का शाप व्यर्थ हो जायेगा॥१०॥ हे भद्रे! मैं सत्य कहती हूँ; तुम भी सुखी हो जाओगी कृषक सुन्दर खेत में ही तत्परता से बीज वपन करते हैं ॥११॥ हे देवि! जैसा बीज होता है वैसा ही वह (किसान) फल भोगता है। इससे भिन्न प्रकार का नहीं होता है। फल बीज के ही समान होता है ॥१२॥ ये महाभाग तपस्वी और पुण्य पराक्रमी हैं। इनके वीर्य से उत्पन्न पुत्र इनके ही समान गुण वाला होगा ॥१३॥ सभी देह धारियों में श्रेष्ठ तथा महातेजस्वी पुत्र होगा। वह महाभाग्यवान तथा योगतत्त्ववेत्ता होगा ॥१४॥ इस तरह रम्भा के प्रिय लगने वाले कल्याणप्रद वाक्य को सुनकर सुन्दरी सुनीथा बुद्धि से विचार किया कि यह सत्य तथा तत्त्वार्थ है ॥१५॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान का पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३५॥

सुनीथा द्वारा गीत के प्रभाव से अङ्ग को वश में करना

सुनीथा ने कहा— हे भद्रे! तुमने सत्य ही कहा है मैं ऐसा ही करती हूँ। इस विद्या के द्वारा मैं इनको मोहित करूँगी ॥१॥ तुम मुझे उचित सहायक दो जिससे कि मैं इनके पास जा सकूँ। उसके इस

साहाय्यं देहि मे पुण्यं येन गच्छामि साम्प्रतम् ।
एवमुक्ता तया रम्भा तामुवाच मनस्विनीम् ॥२॥
कीदृग्ददामि साहाय्यं तत्त्वं कथय भामिनी। दूतत्वं गच्छ मे भद्रे एतं प्रति सुसाम्प्रतम् ॥३॥
एवमुक्तं तया तां तु रम्भां प्रति सुलोचनाम् ।
एवमेव प्रतिज्ञातं रम्भया देवयोषिता ॥४॥
करिष्ये तव साहाय्यमादेशो मम दीयताम् । सद्भावेन विशालाक्षी रूपयौवनशालिनी॥५॥
मायया दिव्यरूपा सा सम्भूव वरानना। रूपेणाप्रतिमालोके मोहयन्ती जगत्त्रयम्॥६॥
मेरोश्चैव महापुण्ये शिखरे चारुकन्दरे । नानाधातुसमाकीर्णे नानारत्नोपशोभिते ॥७॥
देववृक्षैःसमाकीर्णे बहुपुष्पोपशोभिते। देवबृन्दसमाकीर्णे गन्धर्वाप्सरसेविते॥८॥
मनोहरे सुरम्ये च शीतच्छायासमाकुले। चन्दनानामशोकानां तरूणां चारुहासिनी ॥९॥
दोलाया सा समारूढा सर्वशृङ्गारशोभिता। कौशेयेन सुनीलेन राजमाना वरानना॥१०॥
बन्धूकपुष्पवर्णेन कञ्चुकेन द्विजोत्तमाः । सर्वाङ्गसुन्दरी बाला बीणातालकराविला॥११॥
गायमाना वरंगीतं सुस्वरं विश्वमोहनम् । ताभिःपरिवृताबाला सखीभिःसुमनोहरा ॥१२॥
अङ्गस्तु कन्दरे पुण्ये एकान्ते ध्यानमास्थितः ।
कामक्रोधविहीनस्तु ध्यायमानो जनार्दनम् ॥१३॥
स श्रुत्वा सुस्वरं गीतं मधुरं सुमनोहरम्। तालमानक्रियोपेतं सर्वसत्त्वविकर्षणम्॥१४॥
ध्यानाच्चचाल तेजस्वी माया गीतेन मोहितः ।
समुत्थायासनात्तूर्णं वीक्षमाणोमुहुर्मुहुः ॥१५॥

प्रकार से कहने पर मनस्विनी रम्भा ने सुनीथा से कहा ॥२॥ मैं तुम्हारी कैसी सहायता करूँ ? उसे तुम बतलाओ । **सुनीथा ने कहा—** हे भद्रे ! तुम मेरा दूत बन जाओ । और इनके पास जाओ ॥३॥ सुन्दरी रम्भा को इस प्रकार से सुनीथा द्वारा कहे जाने पर देवपोषित् रम्भा ने कहा ठीक है । मैं ऐसा ही करूँगी॥४॥ मैं तुम्हारी सहायता करूँगी । रूप एवं यौवन से सुशोभित सद्भाव पूर्वक तुम मुझे आदेश दो ॥५॥ इसके बाद सुन्दरी माया से दिव्य रूप वाली बन गयी अप्रतिम रूप के द्वारा वह त्रैलोक्य को मोहित कर रही थी॥६॥ वह सुमेरु पर्वत के शिखर पर विद्यमान् सुन्दर कन्दरा में जो अनेक प्रकार के धातुओं से परिपूर्ण था ॥७॥ उसमें अनेक देववृक्ष लगे थे, अनेक प्रकार के पुष्पों से वह सुशोभित था देवताओं का समूह उसमें रहता था, गन्धर्व एवं अप्सराएँ उसका सेवन करती थीं ॥८॥ रम्य तथा मनोहर चन्दन तथा अशोक वृक्षों की शीतल छाया से युक्त उस कन्दरा में वह मनोहर मुस्कान वाली ॥९॥ सभी शृङ्गारों से सुशोभित होकर दोला पर बैठ गयी । नीले कैशेय (रेशमी) वस्त्र से वह सुन्दरी सुशोभित होती थी ॥१०॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! वह बन्धूक पुष्प (दुपहरिया के फूल) के समान लाल रङ्ग की चोली पहनी थी । इस तरह की सर्वाङ्ग सुन्दरी के अपने हाथ में वीणा धारण की और उसके बाद ॥११। विश्व को मोहित करने वाले गीत को सुन्दर स्वर से गाने लगी । वह सुन्दरी बाला अपनी सखियो से घिरी हुयी थी ॥१२॥ अङ्ग तो काम और क्रोध से रहित होकर एकान्त में मनोहर कन्दराओं में बैठकर ध्यान कर रहे थे । वे उस समय भगवान् जनार्दन का ध्यान कर रहे थे ॥१३॥ सभी जीवों को आकर्षित करने वाले ताल, मान तथा क्रिया से युक्त मधुर तथा अत्यन्त

जगाम तत्रवेगेन मायाचलित मानसः। दोलासंस्थां विलोक्यैव वीणादण्डकराविलाम्॥१६॥
हसमानां सुगायन्तीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम्। मोहितस्तेन गीतेन रूपेणापि महायशाः॥१७॥
तस्या लावण्यभावेन मन्मथस्य शराहतः। आकुलव्याकुलज्ञानऋषिपुत्रो द्विजोत्तमाः॥१८॥
प्रलपत्यतिमोहेन जृम्भते च पुनः पुनः। स्वेदःकम्पोऽथ सन्तापस्तस्याजायत तत्क्षणात्॥१९॥
मुह्यन्निव महामोहैर्ग्लानिश्चलितमानसः। वेपमानस्ततस्त्वङ्गो दूयमानःसमागतः॥२०॥

तामालोक्य विशालाक्षीं मृत्युकन्यां यशस्विनीम्।
अथोवाच महात्मा स सुनीथां चारुहासिनीम्॥२१॥
का त्वं कस्य वरारोहे सखीभिःपरिवारिता।
केन कार्येण सम्प्राप्ता केनत्वं प्रेषितावनम्॥२२॥

तवाङ्गं सुन्दरं सर्वमत्रभाति महावने। समाचक्ष्व ममाद्यैव प्रसादसुमुखीभव॥२३॥
मायामोहेन सम्मुग्धस्तस्याःकर्म न विन्दति। मार्गणैर्मन्मथस्यापि परिविद्धो महामुनिः॥२४॥

एवंविधं महद्वाक्यं समाकर्ण्य महामतेः।
नोवाच किञ्चित्सा विप्रं समालोक्य सखीमुखम्॥२५॥

रम्भां च प्रेरयामास सुनीथा संज्ञया सखीम्। समुवाच ततो रम्भा सादरं तं द्विजंप्रति॥२६॥
इयं कन्या महाभागा मृत्योश्चापि महात्मनः। सुनीथाख्या प्रसिद्धेयं सर्वलक्षणसम्पदा॥२७॥
पतिमन्विच्छतीबाला धर्मवन्तं तपोनिधिम्। शान्तं दान्तं महाप्राज्ञं वेदविद्याविशारदम्॥२८॥
एवंविधं महद्वाक्यं समाकर्ण्य महामुनिः। तामुवाच ततस्त्वङ्गो रम्भामप्सरसां वराम्॥२९॥

मनोहर सुन्दर स्वर वाले गीत को सुनकर ॥१४॥ उस माया गीत से मोहित होकर वे अपने ध्यान से विचलित हो गये। वे अपने आसन से शीघ्र ही उठ गये और बार-बार देखने लगे ॥१५॥ माया के कारण चञ्चल मन वाले वे वहाँ पर वेग से गये दोला पर बैठी हुयी और वीणा धारण की हुयी उसको देखकर ही॥१६॥ हँसती हुयी और सुन्दर गीत गाती हुयी पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली सुनीथा को देखकर उसके रूप पर मोहित हो गये ॥१७॥ उसके सौन्दर्य तथा काम बाण से विद्ध उन ऋषि पुत्र का ज्ञान आकुल-व्याकुल हो गया ॥१८॥ वे अत्यन्त मोह से कुछ बोल रहे थे तथा बार-बार जम्भाई ले रहे थे। उस समय उनको पसीना, कम्प, और सन्ताप होने लगा ॥१९॥ उनका मन चञ्चल हो गया। वे महामोह से मोहित थे। उसके बाद काँपते हुए तथा दुःखी अङ्ग वहाँ आये ॥२०॥ उस विशालाक्षी तथा यशस्विनी मृत्यु की पुत्री को देखकर वे महात्मा मनोहर मुस्कान वाली सुनीथा से कहा ॥२१॥ सुन्दरि ! अपनी सखियों के साथ यहाँ विद्यमान कौन हो ? यहाँ पर किस काम से आयी हो। इस वन में तुम्हें किसने भेजा है ?॥२२॥ इस वन में तुम्हारे सभी अङ्ग सुन्दर लगते हैं। तुम प्रसन्न होकर मुझे इन बातों को बतलाओ ॥२३॥ माया जन्य मोह से मोहित वे उसके कर्म को जानते नहीं थे। वे महामुनि काम के भी बाणों से विद्ध थे ॥२४॥ उन महामति के उन वाक्यों को सुनकर सुनीथा ने सखी के मुँह को देखा; किन्तु कुछ बोली नहीं ॥२५॥ उसने इशारे से अपनी सखी रम्भा को प्रेरित किया। रम्भा ने प्रेम पूर्वक उन महामुनि से कहा ॥२६॥ ये महाभाग महात्मा मृत्यु की पुत्री हैं। सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न हैं तथा इनका नाम सुनीथा है ॥२७॥ यह बाला धार्मिक तथा तपस्वी पति को प्राप्त करना चाहती है। ऐसा पति जो शान्त, दान्त, महाप्राज्ञ तथा वेदविद्या

मया चाराधितो विष्णुःसर्वविश्वमयो हरिः। तेन दत्तो वरो मह्यं पुत्राख्यःसर्वसिद्धिदः ॥३०॥
तन्निमित्तमहं भद्रे सुतार्थं नित्यमेव च। कस्यचित्पुण्यवीर्यस्य कन्यामेकां प्रचिन्तये ॥३१॥
सदैवाहं न पश्यामि सुभार्यां सत्यमीदृशीम्। इयं धर्मस्य वै कन्या धर्माचारा वरानना ॥३२॥
मामेवं हि भजत्वेषा यदि कान्तमिहेच्छति। यं यमिच्छेदियंबाला तं ददामि न संशयः ॥३३॥
अदेयं देयमित्याह अस्याःसङ्गमकारणात् । एकमेव त्वया देयं रम्भोवाच द्विजोत्तमम् ॥३४॥
विप्रेन्द्र त्वं शृणुष्वेह प्रतिज्ञां वच्मि साम्प्रतम् ।
एषा नैव त्वया त्याज्या धर्मपत्नी तवैव हि ॥३५॥
अस्या दोषो गुणोनैव ग्राह्य एवत्वया कदा। इत्यर्थे प्रत्ययं विप्र प्रत्यक्षं परिदर्शय ॥३६॥
स्वहस्तं देहि विप्रेन्द्र सत्यप्रत्ययकारकम्। एवमस्तु मया दत्तो ह्यस्याहस्तो न संशयः ॥३७॥

सूत उवाच

एवंसम्बन्धकं कृत्वा सत्यप्रत्ययकारकम्। गान्धर्वेण विवाहेन सुनीथामुपयेमिवान् ॥३८॥
तस्मैदत्वा सुनीथां तां रम्भा हृष्टेनचेतसा। सा तां चामन्त्रयित्वा वै गता गेहं स्वकंपुनः ॥३९॥
प्रहृष्टचेतसःसख्यःस्वस्थानं परिजग्मिरे। गतासु तासु सर्वासु सखीषु द्विजसत्तमः ॥४०॥
रेमे त्वङ्गस्तया सार्धं प्रिययाभार्यया सह। तस्यामुत्पाद्य तनयं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥४१॥
चकार नाम तस्यैव वेनाख्यं तनयस्य हि। ववृधे स महातेजाःसुनीथातनयस्तदा॥४२॥
वेदशास्त्रमधीत्यैव धनुर्वेदं गुणान्वितम् । सर्वासामपि मेधावी विद्यानां पारमेयिवान्॥४३॥
अङ्गस्य तनयो वेनःशिष्टाचारेणवर्तते । स वेनो ब्राह्मणश्रेष्ठःक्षत्राचारपरोऽभवत्॥४४॥

में निपुण हो ॥२८॥ इस तरह के उसके वाक्य को सुनकर महामुनि अङ्ग ने अप्सराओं में श्रेष्ठ रम्भा से कहा ॥२९॥ मैंने सम्पूर्ण विश्वमय भगवान् विष्णु की आराधना की है सभी सिद्धियों को देने वाले उन्होंने मुझे पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया है ॥३०॥ हे भद्रे ! मैं नित्य ही उसके लिए किसी पुण्यवीर्य की कन्या को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥३१॥ मैंने कभी इस प्रकार की सुन्दर पत्नी नहीं देखा । यह धर्मराज की धर्माचरण करने वाली सुन्दरी पुत्री है ॥३२॥ यदि यह पति प्राप्त करना चाहती है तो मुझको ही अपना पति बना ले। यह जो-जो चाहेगी मैं उन सभी वस्तुओ को प्रदान करूँगा ॥३३॥ इस संगम के कारण अदेय वस्तु भी इसके लिये देय होगी । रम्भा ने द्विजश्रेष्ठ से कहा— आप इसको एक ही वस्तु दें ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र ! आप सुनें इसकी प्रतिज्ञा मैं कह रही हूँ । यह आपकी धर्म पत्नी होगी और आप कभी भी इसका त्याग नहीं करेंगे ॥३५॥ हे विप्र ! आप प्रत्यक्ष प्रतिज्ञा करें कि आप इसके दोषों और गुणों का ग्रहण नहीं करेंगे॥३६॥ हे विप्र ! सत्य प्रतिज्ञा करने वाले अपने हाथ को आप बढ़ायें । **अङ्ग ने कहा**— ठीक हैं मैंने इसके हाथ को पकड़ लिया ॥३७॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह सत्य का विश्वास दिलाने वाला सम्बन्ध करके अङ्ग ने सुनीथा से गन्धर्व विधि से विवाह कर लिया ॥३८॥ रम्भा अङ्ग को सुनीथा को प्रदान करके प्रसन्नता पूर्वक सुनीथा से विदा लेकर अपने घर चली गयी ॥३९॥ सखियाँ प्रसन्न मन से चली गयीं । उन सखियों के चले जाने पर द्विजश्रेष्ठ अङ्ग ने अपनी उस प्रियतमा भार्या के साथ रमण किया । उन्होंने उससे सभी लक्षणों से युक्त पुत्र को उत्पन्न किया ॥४०-४१॥ उस पुत्र का नम उन्होंने वेन रखा । इसके बाद सुनीथा का महातेजस्वी पुत्र बढ़ने लगा ॥४२॥ उस मेधावी तथा गुणी पुत्र ने वेदशास्त्र का अध्ययन करने के बाद धनुर्वेद का अभ्यास किया और वह सभी विद्याओं में पारङ्गत हो गया ॥४३॥ अङ्ग का पुत्र वेन शिष्टाचार

दिविचन्द्रो यथाभाति सर्वतेज:समन्वित:। भात्येवं तु महाप्राज्ञ:स्वबलेन पराक्रमै: ॥४५॥
चाक्षुषस्यान्तरेप्राप्ते वैवस्वतसमागते। प्रजापालं विनालोके प्रजा:सीदन्ति सर्वदा॥४६॥
ऋषयो धर्मतत्त्वज्ञा:प्रजाहेतोस्तपोधना:। व्यचिन्तयन्महीपालं धर्मज्ञं सत्यपण्डितम्॥४७॥
तं वेनमेव ददृशु:सम्पन्नं लक्षणैर्युतम्। प्राजापत्ये पदंपुण्ये अभ्यषिञ्चन्द्विजोत्तमा: ॥४८॥
अभिषिक्ते महाभागे त्वङ्गपुत्रे तदा नृपे। ते प्रजापतय:सर्वे जग्मुश्चैव तपोवनम्॥४९॥
गतेषु तेषु सर्वेषु वेनो राज्यमकारयत्। सा सुनीथा सुतं दृष्ट्वा सर्वराज्यप्रसाधकम् ॥५०॥
विशङ्कते प्रभावेण शापात्तस्य महात्मन:। मम पुत्रो महाभागो धर्मत्राता भविष्यति॥५१॥
इत्येवं चिन्तयेन्नित्यं पूर्वपापाद्विशङ्किता। धर्माङ्गानि सुपुण्यानि सुताग्रे परिदर्शयेत्॥५२॥
सत्यभावादिकान्पुण्यान्गुणान्सा वै प्रकाशयेत्।
इत्युवाच सुतं सा हि अहं धर्मसुता सुत ॥५३॥
पिता ते धर्मतत्त्वज्ञस्तस्माद्धर्मं समाचर। इत्येवं बोधयेन्नित्यं पुत्रं वेनं तदा सती॥५४॥
मातापित्रोस्तयोर्वाक्यं प्रजायुक्तं प्रपालयेत्। एवंवेन:प्रजापाल:सञ्जात:क्षितिमण्डले ॥५५॥
सुखेन जीवते लोक:प्रजाधर्मेण रञ्जिता:। एवं राज्यप्रभावं तु वेनस्यापि महात्मन:॥५६॥
धर्मभावा:प्रवर्तन्ते तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने षट्त्रिंशोऽध्याय: ॥३६॥

का पालन करता था। वह ब्राह्मण श्रेष्ठ क्षत्रियो के आचार का पालन करने लगा ॥४४॥ अपने, बल एवं पराक्रम से सुशोभित सभी तेजों से युक्त वेन उसी तरह सुशोभित होते थे जैसे स्वर्ग में इन्द्र सुशोभित होते हैं। चाक्षुष मन्वन्तर के बाद जब वैवस्वत मन्वन्तर आया तो प्रजाएँ राजा के बिना दु:खी रहने लगीं ॥४६॥ धर्म के तत्व को जानने वाले ऋषियों ने सत्य को जानने वाले धर्मज्ञ प्रजाओं के लिए प्रजापाल का चिन्तन किया ॥४७॥ उन लोगों ने सभी लक्षणों से युक्त उस वेन को ही देखा और प्रजापतियों ने वेन को प्रजापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया ॥४८॥ जब अङ्ग पुत्र महाभाग वेन राजा के पद पर अभिषिक्त हो गये तो सभी प्रजापति तपोवन में चले गये ॥४९॥ सबो के चले जाने पर वेन राज्य करने लगे। सुनीथा भी सम्पूर्ण राज्य को चलाने वाले अपने पुत्र को देखकर ॥५०॥ उस महात्मा के शाप के प्रभाव से सशंकित रहा करती थी कि मेरा महात्मा पुत्र धर्म का रक्षक होगा ॥५१॥ वह इसी तरह से सदा चिन्तन करती हुयी अपने पुत्र के सामने धर्म के अङ्गों का प्रदर्शन करती थी ॥५२॥ वह सत्यभाव इत्यादि पवित्र गुणों को उसे बतलाती थी। वह अपने पुत्र से कहती थी कि पुत्र मैं धर्मराज की पुत्री हूँ ॥५३॥ तुम्हारे पिता धर्म के तत्त्वो को जानने वाले हैं, अतएव तुम धर्म का पालन करो। इस तरह से वह अपने पुत्र वेन को सदा सिखाती रहती थी ॥५४॥ अपने माता-पिता के वाक्यानुसार वेन प्रजा का उचित ढंग से पालन करते थे। इस तरह से वेन पृथिवी मण्डल के प्रजापाल (राजा) हो गये ॥५५॥ वे लोक में सुखपूर्वक जीते थे और प्रजा धर्म के कारण प्रसन्न थी ॥५६॥ उस राजा के राज्य काल में धर्म का ही प्रभाव था ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

सैंतीसवाँ अध्याय

ऋषयऊचुः

एवंवेनस्य चैयारीत्सृष्टिरेव महात्मनः। धर्माचारं परित्यज्य कथं पापमतिर्भवेत् ॥१॥

सूतउवाच

ज्ञानविज्ञानसंपन्ना मुनयस्तत्त्ववेदिनः। शुभाशुभं वदन्त्येवं तत्र स्यादिह चान्यथा ॥२॥

तप्यमानेन तेनापि सुशङ्खेन महात्मना। दत्तःशापंकथं विप्रा न यथावच्चजायते ॥३॥

वेनस्य पातकाचारं सर्वमेव वदाम्यहम्। तस्मिञ्छासति धर्मज्ञे प्रजापाले महात्मनि ॥४॥

पुरुषः कश्चिदायातश्छद्मलिङ्गधरस्तदा। नग्नरूपो महाकायः शिरोमुण्डो महाप्रभः ॥५॥

मार्जनी शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन्।
गृहीतं पानपात्रं तु नालिकेरमयंकरे ॥६॥

पठमानोह्यसच्छास्त्रं वेदधर्मविदूषकम्। यत्र वेनोमहाराजस्तत्रायातस्त्वरान्वितः ॥७॥

सभायां तस्य वेनस्य प्रविवेश स पापवान्। तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं वेनः प्रश्नं तदाऽकरोत् ॥८॥

भवान्को हि समायात ईदृग्रूपधरो मम। सभायां वर्तमानस्य पुरः कस्मात्समागतः ॥९॥

को वेषः किन्नु ते नाम को धर्मः कर्म ते वद।
को वेदस्ते कः आचारः किंतपः का प्रभावना ॥१०॥
किं ज्ञानं कःप्रभावस्ते किं सत्यंधर्मलक्षणम्।
तत्त्वं सर्वं समाचक्ष्व ममाग्रेसत्यमेव च ॥११॥

छद्मलिङ्गधारी पुरुष के साथ वेन का संवाद

ऋषियों ने कहा— इस तरह से महात्मा वेन की सारी सृष्टि हो गयी धर्माचरण को छोड़कर वेन की पापमयी बुद्धि कैसे हो सकती थी ?॥१॥ **सूतजी ने कहा—** तत्त्ववेत्ता ज्ञान विज्ञान सम्पन्न मुनिगण इसी तरह से शुभ एवं अशुभ को बतलाते हैं। इसलिए अन्यथा नहीं हो सकता है ॥२॥ तपस्या करने वाले महात्मा सुशङ्ख ने भी जो शाप दिया था हे विप्रो! वह सत्य नहीं हो रहा था ॥३॥ धर्म को जानने वाले वेन के शासन काल में वेन ने जो पापाचरण किया मैं उसे कह रहा हूँ ॥४॥ उस समय कोई छद्म लिङ्गधारी पुरुष आया। वह नग्न था, उसका शरीर विशाल था, शिर मुड़ाये था और महाकान्ति सम्पन्न था ॥५॥ वह अपने कमर में मयूर पिच्छ का झाड़ू लिए था। और नारियल का पान पात्र (पानी पीने का पात्र) धारण किए था ॥६॥ वह वेदशास्त्र को दूषित करने वाले असत् शास्त्र को पढ़ रहा था। जहाँ पर महाराज वेन थे वहाँ वह शीघ्रता से आया ॥७॥ वह पापी वेन की सभा में प्रवेश किया। उसको आये हुए देखकर वेन ने उससे पूछा ॥८॥ आप कौन हैं ? और इस तरह का रूप धारण करके क्यों आये हैं ? मेरी इस सभा में मेरे सामने कैसे आयें ?॥९॥ हे नग्न! तुम्हारा कौन वेष है ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा धर्म और कर्म क्या है ? बतलाओ तुम्हारा वेद कौन है ? कौन आचार है ? कौन सी तुम्हारी तपस्या है ? और तुम्हारी भावना क्या है ?॥१०॥ तुम्हारा ज्ञान क्या है ? तुम्हारा प्रभाव क्या है ? सत्य धर्म का लक्षण क्या है ? तुम मेरे सामने इन सारी बातों को ठीक-ठीक बतलाओ ॥११॥ वेन के वाक्य को सुनकर उस पापी

श्रुत्वा वेनस्य तद्वाक्यं पापो वाक्यमुदाहरत् ।
करोष्येवं वृथा राज्यं महामूढो न संशयः ॥१२॥
अहं धर्मस्य सर्वस्वमहंपूज्यतमस्सुरैः । अहं ज्ञानमहंसत्यमहं धाता सनातनः ॥१३॥
अहं धर्म अहं मोक्षः सर्वदेवमयो ह्यहम्। ब्रह्मदेहात्समुद्भूतः सत्यसन्धोऽस्मि नान्यथा ॥१४॥
जिनरूपं विजानीहि सत्यधर्मकलेवरम् । मामेव हि प्रधावन्ति योगिनो ज्ञानतत्परा ॥१५॥

वेन उवाच

तवैव कीदृशं कर्म किं ते दर्शनमेव च । किमाचारो वदस्वैहि इत्युक्तं तेन भूभुजा ॥१६॥

पातक उवाच

अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरुः । दयाचैव परोधर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते ॥१७॥
दर्शनेऽस्मिन्नसन्देह आचारान्प्रवदाम्यहम् । यजनं याजनं नास्ति वेदाध्ययनमेव च ॥१८॥
नास्ति सन्ध्या तपो दानं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
हव्यकव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिकाक्रिया ॥१९॥
पितृणां तर्पणं नास्ति नातिथिर्वैश्वदेविकम् । क्षपणस्य वरा पूजा अर्हतो ध्यानमुत्तमम् ॥२०॥
अयं धर्मसमाचारो जैनमार्गे प्रदृश्यते । एतत्ते सर्वमाख्यातं निजधर्मस्य लक्षणम् ॥२१॥

वेन उवाच

वेदप्रोक्तो यथा धर्मो यत्र यज्ञादिकाः क्रियाः ।
पितृणां तर्पणं श्राद्धं वैश्वदेवं नदृश्यते ॥२२॥
न दानं तप एवस्ति क्वास्ते धर्मस्यलक्षणम् ।
वद सत्यं ममाग्रे तु दयाधर्मश्च कीदृशः ॥२३॥

ने कहा— तुम इस तरह का राज्य व्यर्थ ही करते हो । तुम महामूर्ख हो ॥१२॥ धर्म का सर्वस्व मैं हूँ । देवताओं के लिए मैं पूज्यतम हूँ । मैं ही ज्ञान, सत्य तथा सनातन धाता हूँ ॥१३॥ मैं ही धर्म हूँ, मोक्ष हूँ, तथा सर्वदेवमय मैं ही हूँ । ब्रह्म के शरीर से उत्पन्न हूँ । मैं सत्य बोलता हूँ; कभी मिथ्या नहो बोलता हूँ। मुझे तुम जिन जानो । सत्य और धर्म ही मेरे शरीर हैं । ज्ञानवान् योगिजन मुझको ही प्राप्त करना चाहते हैं ॥१५॥ **वेन ने कहा—** तुम्हारा कर्म कैसा है ? तुम्हारा दर्शन कौन है ? तुम्हारा आचार क्या है ? इसे बतलाओ ॥१६॥ **पातक ने कहा—** अर्हन्त ही मेरे देवता हैं और निग्रन्थ ही जिसमें गुरु हैं, दया ही जिसमें परम धर्म है, उसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१७॥ इस दर्शन में कोई भी सन्देह नहीं है । मैं आचारों को बतलाता हूँ । यज्ञ करना, यज्ञ कराना और वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए ॥१८॥ इस धर्म में सन्ध्या, तपस्या, दान, स्वधा और स्वाहा नहीं होता है हव्य, कव्य आदि तथा यज्ञ आदि कर्म आदि भी नहीं करना है ॥१९॥ पितृतर्पण, अतिथि पूजन, बलिवैश्वदेव आदि भी नहीं करना चाहिए । क्षपणक की पूजा ही श्रेष्ठ पूजा है और अर्हत का ही ध्यान करना उत्तम है ॥२०॥ जैन धर्म ही धर्म की पद्धति है । मैंने अपने धर्म का सारा लक्षण तुम्हें बतला दिया ॥२१॥ **वेन ने कहा—** जिस धर्म में वेदप्रोक्त धर्म नहीं है, यज्ञ इत्यादि क्रियाएँ नहीं की जाती है, न तो पितरों का तर्पण, श्राद्ध और बलि वैश्वदेव क्रिया भी नहीं की जाती है । न दान किया जाता है, न तपस्या की जाती है उसमें धर्म का लक्षण कहाँ है । तुम सत्य बतलाओ कि दया

पातक उवाच

पञ्चतत्त्वप्रवृद्धोऽयं प्राणिनां काय एव च। आत्मावायुस्वरूपोऽयं तेषांनास्तिप्रसङ्गता ॥२४॥
यथा जलेषु भूतानामपि सङ्गमवेहि तत्। जायते बुद्बुदाकारं तद्वद्भूतसमागमः॥२५॥

पृथ्वीभावो रजःस्थस्तु चापस्तत्रैव संस्थिताः।
ज्योतिस्तत्र प्रदृश्येतसुवायुर्वर्ततेतेत्रिषु ॥२६॥

आकाशमावृणोत्पश्चाद्बुदबुदत्वं प्रजायते। अप्सु मध्ये प्रभात्येव सुतेजो वर्तुलं वरम्॥२७॥
क्षणमात्रं प्रदृश्येत क्षणात्रैव च दृश्यते। तद्वद्भूतसमायोगः सर्वत्र परिदृश्यते ॥२८॥
अन्तकाले प्रयात्यात्मा पञ्च पञ्चसु यान्तिते। मोहमुग्धास्ततो मर्त्या वर्तन्ते च परस्परम्॥२९॥
श्राद्धंकुर्वन्ति मोहेन क्षयाहे पितृतर्पणम्। क्वास्तेमृतः समश्नातिकीदृशोऽसौनृपोत्तमः॥३०॥
किं ज्ञानं कीदृशं कार्यं वेनदृष्टं वदस्वनः। मिष्टान्नं भोजयित्वा च तृप्तायान्ति च ब्राह्मणाः॥३१॥

कस्य श्राद्धं प्रदीयेत सा तु श्रद्धा निरर्थिका।
अन्यदेव प्रवक्ष्यामि वेदानां कर्मदारुणम् ॥३२॥

यदाऽतिथिगृहे याति महोक्षं पचते द्विजः। अजं वा राजराजेन्द्र अतिथिं परिभोजयेत्॥३३॥
अश्वमेघमखे अश्वं गोमेधे वृषमेव च। नरमेधेनरं राजन्वाजपेये तथाह्यजान्॥३४॥
राजसूये महाराज प्राणिनां घातनं बहु। पुण्डरीके गजंहन्याद्गजमेधेऽथ कुञ्जरम्॥३५॥
सौत्रामण्यां पशुं मेध्यं मेषमेव प्रदृश्यते। नानारूपेषु सर्वेषु श्रूयतां नृपनन्दन ॥३६॥

धर्म कैसा है ?॥२२-२३॥ **पातक (पाप) ने कहा—** प्राणियों का यह शरीर पाँच तत्त्वों से बना है। आत्मा तो वायु रूप है। उसका उन पञ्च तत्त्वों से कोई सम्बन्ध नहीं है ॥२४॥ जिस तरह से जीवों का क्षणिक सम्बन्ध होता है अथवा जल में जैसे बुलबुले क्षणिक होते हैं, उसी तरह से आत्मा का शरीर से क्षणिक सम्बन्ध समझो ॥२५॥ पृथिवी का भाव धूल में होता है। जल उसी में स्थित होता है। उसी में तेज दिखायी देता है वायु इन तीनों मे रहती है ॥२६॥ इन सबों का आकाश आवृत करता है। उसके बाद उसमें बुदबुदता आती है। वह जल में अच्छी तरह से दिखता है तेज भी वर्तुल ही होता है ॥२७॥ वह क्षणभर ही दिखता है, क्षण भर के बाद वह नहीं दिखता है। इसी तरह से सर्वत्र भूतों का संयोग दिखता है ॥२८॥ अन्त समय में आत्मा शरीर से निकल जाती है और पाञ्चो भूत अपने-अपने महाभूतों में मिल जाते हैं। उसके बाद अज्ञानी जीव परस्पर मे व्यवहार करते हैं ॥२९॥ अज्ञान के कारण वे क्षयाहन तिथि को श्राद्ध और तर्पण करते हैं। मरा जीव न तो रहता है और न भोजन करता है। हे राजन्! उस मृत व्यक्ति का आकार कैसा होता है ?॥३०॥ ज्ञान क्या है ? उसका कार्य कैसा है ? उसे किसने देखा है ? यह बतलाओ। ब्राह्मण तो मिठाई खाकर अपने घर चले जाते हैं ॥३१॥ किसका श्राद्ध किया जाता है। वह श्राद्ध करना व्यर्थ है। इसी तरह मैं वेदों के दूसरे भयङ्कर कर्मों को बतलाता हूँ ॥३२॥ जब गृहस्थ के घर अतिथि आता है तो उसके लिए मोटा सांड पकाया जाता है। अथवा हे राज राजेन्द्र! बकरा को पकाकर अतिथि को भोजन कराया जाता है ॥३३॥ अश्वमेघ यज्ञ मे अश्व का होम होता है, गोमेध में वृष का, नरमेध में नर का तथा वाजपेय यज्ञ में बकरों का होता है ॥३४॥ हे महाराज! राजसूय याग में अनेक प्राणियों का वध होता है। पुण्डरीक याग में हाथी को मारा जाता है तथा गजमेघ याग में भी हाथी को मारा

नानाजातिविशेषाणां पशूनां घातनं स्मृतम्। यच्चापि दीयते दानं किं तद्दानस्य लक्षणम् ॥३७॥
ज्ञेयं तदन्नमुच्छिष्टं क्रियते भूरिभोजनम्। अत्यन्तदोषहीनांस्तान्हिंसन्ति यन्महामखे॥३८॥
तत्र किं दृश्यते धर्मः कि फलं तत्र भूपते। पशूनां मारणं यत्र निर्दिष्टं वेदपण्डितैः॥३९॥
तस्माद्विनष्टधर्मं च न पुण्यं मोक्षदायकम्। दयांविना हि योधर्मः स धर्मोविफलायते॥४०॥
जीवानां पालनं यत्र तत्र धर्मो न संशयः। स्वाहाकारः स्वधाकारस्तपःसत्यं नृपोत्तम॥४१॥
दयाहीनं चापलं स्यान्नास्ति धर्मस्तु तत्र हि। एते वेदा न वेदास्युः दया यत्र न विद्यते॥४२॥
दयादानपरो नित्यं जीवमेव प्ररक्षयेत्। चाण्डालोऽप्यथशूद्रो वा स वै ब्राह्मणउच्यते॥४३॥
ब्राह्मणो निर्दयो योवै पशुघातपरायणः। स वै सुनिर्दयः पापे कठिनः क्रूरचेतनः॥४४॥
वञ्चकैः कथितो वेदो योवेदो ज्ञानवर्जितः। यत्र ज्ञानं भवेन्नित्यं तत्र वेदः प्रतिष्ठते॥४५॥
दयाहीनेषु वेदेषु विप्रेषु च महामते। नास्ति सत्यं क्रिया तत्र वेदविप्रेषु वै तदा॥४६॥
वेदा न वेदा राजेन्द्र ब्राह्मणाः सत्यवर्जिताः। दानस्यापि फलं नास्ति तस्माद्दानं न दीयते॥४७॥

यथा श्राद्धस्य वै चिह्नं तथा दानस्य लक्षणम्।
जिनस्यापि च यद्धर्मं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥४८॥

तवाग्रेऽहं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यप्रदायकम्। आदौ दया प्रकर्तव्या शान्तभूतेन चेतसा॥४९॥
आरधयेद्धृदादेवं जितं येन चराचरम्। मनसा शुद्धभावेन जिनमेकं प्रपूजयेत्॥५०॥
नमस्कारः प्रकर्तव्यस्तस्य देवस्य नान्यथा। माता पित्रोस्तु वै पादौ कदा नैव प्रवन्दयेत्॥५१॥

जाता है। सौत्रामणि याग में पशु का वध किया जाता है। हे नृपनन्दन ! अनेक प्रकार के होने वाले यागों में अनेक जाति के पशुओ को मारा जाता है। उसमें जो दान दिया जाता है उस दान का क्या फल होता है ?॥३५-३७॥ जिसमें भूरि भोजन कराया जाता है उस अन्न को उच्छिष्ट समझना चाहिए। यज्ञ में जिन पशुओं को मारा जाता है, वे बिल्कुल दोष रहित होते हैं॥३८॥ वेद के पण्डितों ने जिनमें पशुओं को मारने का निर्देश दिया है उस यज्ञ में कौन सा धर्म है ? और उससे कौन सा फल होता है॥३९॥ अतएव विनष्ट धर्म न तो पुण्य है और न मोक्षप्रद है। जिस धर्म में दया नहीं होती है, वह धर्म व्यर्थ है॥४०॥ जिस धर्म में जीवो की रक्षा की जाती है वही धर्म है। हे नृपोत्तम ! स्वाहाकर स्वधाकार, तपस्या और सत्य दयाहीन होने के कारण चपलता मात्र हैं। वे धर्म नहीं हो सकते हैं। जिनमे दया दिखायी नहीं देती, वे वेद वेद नहीं हो सकते हैं॥४१-४२॥ दया दान परायण को सदा जीवों की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा करने वाला चाहें चाण्डाल या शूद्र हो वह ब्राह्मण ही है॥४३॥ जो ब्राह्मण निर्दय है, पशुओं को मारने का काम करता है, वह पाप करने में कठिन तथा क्रूर होने के कारण अत्यन्त निर्दय है॥४४॥ जो वेद ज्ञान से रहित है, नुसवेद को वञ्चकों ने कहा है। जहाँ पर सदा ज्ञान बना रहता है वहीं पर वेद प्रतिष्ठित हैं॥४५॥ हे महामते ! दया रहित वेदों तथा ब्राह्मणों में तथा वेदविप्रों में सत्य तथा क्रिया का अभाव है॥४६॥ हे राजन् ! सत्यहीन वेद न तो वेद हैं और न सत्य हीन ब्राह्मण ब्राह्मण हैं। उसमें दान का भी कोई फल नही है अतएव दान नहीं देना चाहिए॥४७॥ जो श्राद्ध का लक्षण है, वही दान का भी लक्षण है जिनका जो धर्म है, वही भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है॥४८॥ अब मैं आपको अत्यधिक पुण्यप्रद बातें बतलाता हूँ। सबों पर शान्त मन से दया करनी चाहिए॥४९॥ जो चराचर को धारण करते है ऐसे जिन देव की शुद्ध मन से तथा हृदय से आराधना करनी चाहिए॥५०॥ उनको ही नमस्कार करना चाहिए

अन्येषामपि का वार्ता श्रूयतां राजसत्तमः ॥५२॥
एते विप्राश्च आचार्या गङ्गाद्याः सरितस्तथा। वदन्ति पुण्यतीर्थानि बहुपुण्यप्रदानिच ॥
तत्किं वदस्व सत्यं मे यदि धर्ममिहेच्छसि ॥५३॥

पातक उवाच

आकाशाद्वै महाराज मेघा वर्षन्ति वै जलम्। भूमौ हि पर्वतेष्वेवं सर्वत्र पतते जलम् ॥५४॥
सआप्लाव्य ततस्तिष्ठेद्दयां सर्वत्र भावयेत्। नद्यः पापप्रवाहास्तुतासुतीर्थं श्रुतं कथम् ॥५५॥
जलाशया महाराज तडागाः सागरास्तथा। पृथिव्या धारकाश्चैव गिरयो अश्मराशयः ॥५६॥
नास्त्येतेषु च वै तीर्थं जलैर्जलदमुत्तमम् । स्नाने यदा महत्पुण्यं कस्मान्मत्स्येषु नैवहि ॥५७॥

दृष्टास्नानेन वै सिद्धिर्मीनाः शुद्ध्यन्तिनान्यथा ।
यत्रजिनस्तत्र तीर्थं तत्र धर्मः सनातनः ॥५८॥

तपोदानादिकं सर्वं पुण्यं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥५९॥

एको जिनः सर्वमयो नृपेन्द्र नास्त्येव धर्मं परमं हि तीर्थम् ।
अयं तु लाभः परमस्तु तस्माद्ध्यायस्व नित्यं सुसुखो भविष्यसि ॥६०॥
विनिन्द्य धर्मं सकलं सदेवं दानं सपुण्यं परयज्ञरूपम् ।
पापस्वभावैर्बहुबोधितो नृपस्त्वङ्गस्य पुत्रो भुवि तेन पापिना ॥६१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

किसी दूसरे को नहीं । माता-पिता के चरणों की वन्दना कभी न करें ॥५१॥ तो फिर दूसरों की क्या बात है ॥५२॥ **वेन ने कहा—** ये ब्राह्मण तथा आचार्य गङ्गा आदि नदियों को पुण्यतीर्थ तथा अत्यधिक पुण्यप्रद बतलाते हैं, इसमें क्या सत्य है ? इसे आप बतलायें ॥५३॥ **पाप ने कहा—** हे महाराज ! मेघ आकाश से जल बरसाते हैं वह भूमि तथा पर्वत आदि सभी स्थानों पर एकरूप से गिरता है ॥५४॥ वही पानी से भरकर सर्वत्र रहता है, अतएव उसमें दया की भावना करनी चाहिए । नदियाँ तो पाप को बहाती है, उनको सुतीर्थ कैसे कहा जा सकता है ?॥५५॥ हे महाराज ! सरोवर और सागर जलाशय हैं । पत्थर समूह रूप पर्वत ही पृथिवी को धारण करने वाले हैं ॥५६॥ इन सबो में तीर्थ नहीं है । मेघ का ही जल उत्तम है । यदि स्नान करने से महान् पुण्य होता है तो सबसे अधिक पुण्य मछलियों को होना चाहिए ॥५७॥ यदि स्नान से महासिद्धि होती है तो मछलियाँ क्यों नहीं सिद्ध होती हैं ? अतएव जहाँ पर जिन हैं वहीं तीर्थ हैं, वहीं पर सनातन धर्म है ॥५८॥ वहीं पर तप दान आदि सभी पुण्य स्थित हैं ॥५९॥ हे नृपेन्द्र ! केवल जिन ही सर्वमय हैं धर्म श्रेष्ठ तीर्थ नहीं है । ये ही परम लाभ हैं अतएव उनका ही सदा ध्यान करो उससे तुम अत्यन्त सुखी होगे ॥६०॥ इस तरह वेद सम्पूर्ण धर्म, पुण्य तथा यज्ञों की विशेष रूप से निन्दा करके राजा अङ्ग के पुत्र वेन को उस पापी ने पाप स्वभाव का अनेक प्रकार से उपदेश दिया ॥६१॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

अड़तीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

एवं सम्बोधितो वेनः पापभावं गतः किल। पुरुषेण तेन जैनेन महापापेन मोहितः ॥१॥
नमस्कृत्य ततः पादौ तस्यैव च दुरात्मनः । वेदधर्मं परित्यज्य सत्यधर्मादिकां क्रियाम् ॥२॥
सुयज्ञानां निवृत्तिः स्याद्वेदानां हि तथैव च । पुण्यशास्त्रमयो धर्मस्तदा नैव प्रवर्तितः ॥३॥
सर्वपापमयो लोकः सञ्जातस्तस्य शासनात्। नैव यागाश्च वेदाश्च धर्मशास्त्रार्थमुत्तमम् ॥४॥
न दानाध्ययनं विप्रास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे । एवं धर्मप्रलोपोऽभून्महत्पापं प्रवर्तितम् ॥५॥
अङ्गेन वार्यमाणस्तु अन्यथा कुरुते भृशम् । न ननाम पितुः पादौ मातुश्चैव दुरात्मवान् ॥६॥
स न कस्यापि विप्रस्य अहमेकः प्रतापवान् ।
पित्रा निवार्यमाणश्च मात्राचैव दुरात्मवान् ॥७॥
न करोति शुभं पुण्यं तीर्थदानादिकं कदा । आत्मभावानुरूपं च बहुकालं महायशाः ॥८॥
पुनः सर्वैर्विचार्यैवं कस्मात्पापी व्यजायत । अङ्गप्रजापतेः पुत्रो वंशलाञ्छनमागतः ॥९॥
पुनःपप्रच्छ धर्मात्मा सुतां मृत्योर्महात्मनः । कस्य दोषात्समुत्पन्नो वद सत्यं मम प्रिये ॥१०॥

सुनीथोवाच

पूर्वमेव स्ववृत्तान्तमात्मपुण्यं च नन्दिनी। समाचष्ट च अङ्गाय मम दोषान्महामते ॥११॥
बाल्ये कृतं मया पापं सुशङ्खस्यमहात्मनः । तपसि संस्थितस्यापि नान्यत्किञ्चित्कृतं मया ॥१२॥
शऽप्ताहं कुप्यता तेन दुष्टा ते सन्ततिर्भवेत्। इति जाने महाभाग तेनायं दुष्टतां गतः ॥१३॥

वेन द्वारा वैदिक धर्म कर्म का परित्याग

सूतजी ने कहा— इस प्रकार से उपदिष्ट होने के कारण वेन उस महापापी जैन पुरुष के द्वारा मोहित होकर पापी हो गये ॥१॥ उसी दुष्ट के चरणों में प्रणाम करके वे वेद धर्म का परित्याग करके यज्ञों की तथा सत्यधर्मादि क्रियाओं का परित्याग कर दिया ॥२॥ उसके बाद वेदों तथा यज्ञों का होना वन्द हो गया । उस समय पुण्यशास्त्रीय धर्म नहीं होता था ॥३॥ वेन के शासन के कारण सारा संसार पापमय हो गया यज्ञ, वेद तथा उत्तम शास्त्रों के अर्थ नहीं होते थे ॥४॥ उस राजा के प्रशासन काल में ब्राह्मण दान तथा वेदाध्ययन नहीं करते थे । इस तरह धर्म का लोप हो गया और महान् पाप फैल गया ॥५॥ अङ्ग के द्वारा रोके जाने पर भी वह उनके विपरीत ही आचरण करता था । वह माता-पिता के चरणों की वन्दना भी नहीं करता था॥६॥ अपने पिता के द्वारा रोके जाने पर वह कहता था कि सम्पूर्ण देवताओं और ब्राह्मणो में मैं ही केवल प्रतापी हूँ ॥७॥ वह कभी भी दान आदि पुण्य क्रियाओं को भी नहीं करता था । वह अपनी भावना के अनुसार वहुत समय तक ऐसा करता रहा ॥८॥ उनके वाद सवों ने विचार किया कि अङ्ग का पुत्र ऐसा कैसे हो गया ? वह तो वंश का कलङ्क हो गया ॥९॥ उसके बाद अङ्ग ने अपनी पत्नी सुनीथा से कहा— प्रिये ! यह सत्य वतलाओ कि यह किसके दोष के कारण पापी हो गया ॥१०॥ **सुनीथा ने कहा—** सुनीथा ने अङ्ग को अपना पूर्वकालिक वृत्तान्त सुनाया और कहा कि हे महामते ! यह मेरे पाप के कारण पापी हो गया है ॥११॥ मैंने अपनी बाल्यावस्था में महात्मा सुशङ्ख का अपराध किया था । उस समय वे तपस्यारत

समाकर्ण्य महातेजास्तया सह वनं ययौ। गते तस्मिन्महाभागे सभार्ये च वने तदा ॥१४॥
सप्तैते ऋषयस्तत्र वेनपार्श्वं गतास्तथा। समाहूय ततः प्रोचुरङ्गस्य तनयं प्रति ॥१५॥
मा वेन साहसं कार्षीः प्रजापालोभवानिह। त्वया सर्वमिदं लोकं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१६॥
धर्मे चैव महाभाग सकलं हि प्रतिष्ठितम् । पापकर्म परित्यज्य पुण्यं कर्म समाचर ॥१७॥
एवमुक्तेषु तेष्वेव प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्। अहमेवपरो धर्मोऽहमेवार्थः सनातनः ॥१८॥
अहं धाता अहं गोप्ता अहं वेदार्थ एव च। अहं धर्मो महापुण्यो जैनधर्मः सनातनः ॥१९॥
मामेव कर्मणा विप्रा भजध्वं धर्मरूपिणम् ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
सर्वेषामेव वर्णानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥२१॥

वेदाचारेण वर्तन्ते तेन जीवन्ति जन्तवः । ब्रह्मवंशात्समुद्भूतो भवान्ब्राह्मण एव च॥२२॥
पश्चाद्राजा पृथिव्याश्च सञ्जातः कृतविक्रमः। राजपुण्येन राजेन्द्र सुखं जीवन्ति वै द्विजाः ॥२३॥
राज्ञः पापेन नश्यन्ति तस्मात्पुण्यं समाचर । समादृतस्त्वया धर्मः कृतश्चापि नराधिप ॥२४॥
त्रेतायुगस्य कर्मापि द्वापरस्य तथा नहि । कलेश्चैव प्रवेशं तु वर्त्तयिष्यन्ति मानवाः॥२५॥
जैनधर्मं समाश्रित्य सर्वे पापप्रमोहिताः । वेदाचारं परित्यज्य पापं यास्यन्ति मानवाः ॥२६॥
पापस्य मूलमेवं वै जैनधर्मो न संशयः । अनेन मुग्धा राजेन्द्र महामोहेन पातिताः॥२७॥
मानवाः पापसङ्घातास्तेषां नाशाय नान्यथा । भविष्यत्येव गोविन्दः सर्वपापापहारकः ॥२८॥

थे ॥१२॥ उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि तुम्हारी सन्तान दुष्ट हो जायेगी । हे महाभाग ! मै समझती हूँ कि उसी के कारण यह दुष्ट हो गया है ॥१३॥ इस बात को सुनकर महाभाग अपनी पत्नी के साथ वन में चले गये । अपनी पत्नी के साथ उनके वन में चले जाने पर ॥१४॥ वेन के पास सप्तर्षिगण गये । उन लोगों ने वेन को बुलाकर कहा ॥१५॥ वेन साहसिक कार्य मत करो आप संसार के प्रजापालक हैं । तुमने चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् को धार्मिक रूप से प्रतिष्ठित किया था । अतएव तुम पाप कर्म का परित्याग करके पुण्य कर्म करो ॥१७॥ सप्तर्षियों के इस तरह से कहने पर जोर से हँसते हुए वेन ने कहा मैं ही सर्वश्रेष्ठ धर्म हूँ, मैं ही सनातन आर्हत हूँ ॥१८॥ मैं ही धाता, गोप्ता (रक्षक) तथा वेदार्थ हूँ । मैं ही धर्म हूँ तथा सनातन जैन धर्म रूप महापुण्य हूँ ॥१९॥ हे विप्रो ! आपलोग अपने कर्मों के द्वारा मेरी ही आराधना करें ॥२०॥ **ऋषियों ने कहा**— ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं । सभी वर्णों का प्रतिपादन नित्य श्रुति ही करती है ॥२१॥ वेदोक्त आचार का पालन करने के कारण जीव जीवित हैं । आप तो ब्राह्मण वंश में उत्पन्न ब्राह्मण हैं ॥२२॥ आप बाद में अपने पराक्रम से पृथिवी के राजा हो गये। हे राजेन्द्र ! राजा के पुण्य से सभी द्विज सुख पूर्वक जीवित रहते हैं ॥२३॥ राजा के पाप से द्विजो का नाश हो जाता है । अतएव आप पुण्य कर्म करें । राजन् ! आपने धर्म का समादर भी किया है और स्वयं धर्म किया भी है ॥२४॥ त्रेतायुग के कर्म भी द्वापर युग के नहीं होते हैं । कालिक का प्रवेश होने पर मनुष्य ऐसा व्यवहार करेंगे ॥२५॥ जैन धर्म को अपना कर सभी पाप से मोहित मनुष्य उस समय वेदाचार का त्याग करके पाप करने लगेंगे ॥२६॥ निश्चित रूप से जैन धर्म पाप का मूल है । हे राजेन्द्र ! इससे मोहित तथा महा अज्ञान से पतित ॥२७॥ सभी मनुष्य पाप समूह रूप हो जायेंगे । उन सबों का ही नाश करने के लिए भगवान् गोविन्द सभी पापों का विनाश करने वाले होंगे ॥२८॥ अपनी इच्छा के अनुसार रूप

स्वेच्छारूपं समासाद्य संहरिष्यति पातकात्। पापेषु सङ्गतेष्वेवं म्लेच्छनाशाय वै पुनः ॥
कल्किरेव स्वयं देवो भविष्यति न संशयः ॥२९॥
व्यवहारं कलेश्चैव त्यज पुण्यं समाश्रय। वर्तयस्व हि सत्येन प्रजापालो भवस्व हि॥३०॥

वेन उवाच

अहं ज्ञानवतां श्रेष्ठः सर्वं ज्ञातं मया इह। योऽन्यथा वर्तते चैव स दण्ड्यो भवति ध्रुवम्॥३१॥
अत्यर्थं भाषमाणं तं राजानं पापचेतनम्। कुपितास्ते महात्मानः सर्वे वै ब्रह्मणःसुताः॥३२॥
कुपितेष्वेव विप्रेषु वेनो राजा महात्मसु। ब्रह्मशापभयात्तेषां वल्मीकं प्रविवेश ह॥३३॥
अथ ते मुनयः क्रुद्धा वेनं पश्यन्ति सर्वतः। ज्ञात्वा प्रनष्टं भूपं तं वल्मीकस्थं सुसाम्प्रतम्॥३४॥
बलादानिन्युस्तं विप्राः क्रूरं तं पापचेतनम्। दृष्ट्वा च पापकर्माणं मुनयःसुसमाहिताः॥३५॥
सव्यं पाणिं ममन्थुस्ते भूपस्य जातमन्यवः। तस्माज्जातो महाह्रस्वो नीलवर्णो भयङ्करः॥३६॥
बर्बरो रक्तनेत्रस्तु बाणपाणिर्धनुर्द्धरः। सर्वेषामेव पापानां निषादानां बभूवह॥३७॥
धाता पालयिता राजा म्लेच्छानां तु विशेषतः।
तं दृष्ट्वा पापकर्माणमृषयस्तु महामते॥३८॥
ममन्थुर्दक्षिणं पाणिं वेनस्यापि मात्मनः। तस्माज्जातो महात्मा स येन दुग्धावसुन्धरा॥३९॥
पृथुर्नाम महाप्राज्ञो राजराजो महाबलः। तस्य पुण्यप्रसादाच्च वेनो धर्मार्थकोविदः॥४०॥
चक्रवर्तिपदं भुक्त्वा प्रसादात्तस्य चक्रिणः। जगाम वैष्णवं लोकं तद्विष्णोःपरमं पदम्॥४१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

धारण करके वे पापों का संहार करेंगे पापियों के एकत्रित हो जाने पर वे म्लेच्छों का नाश करने के लिए स्वयं कल्कि रूप धारण करेंगे॥२९॥ अतएव कलि के व्यवहार का त्याग करके आप पुण्य को अपनाएँ सत्य व्यवहार करें और प्रजाओं के पालक बनें रहें॥३०॥ **वेन ने कहा**— मैं ज्ञानियों मे श्रेष्ठ हूँ, मैं सबकुछ जानता हूँ। जो इसके विपरीत चलेगा वह दण्ड का पात्र होगा॥३१॥ बहुत अधिक बोलने वाले पापी राजा के प्रति वे ब्रह्माजी के पुत्र सप्तर्षि क्रुद्ध हो गये॥३२॥ उन ब्राह्मणों के कुपित हो जाने पर राजा वेन ब्रह्मशाप के भय से वल्मीक में प्रवेश कर गया॥३३॥ इसके बाद वे सभी वेन को चारो ओर देखने लगे। उसको वल्मीक में स्थित और मरे हुए जानकर उस क्रूर पापी को बल पूर्वक खींच लाये। अत्यन्त समाहित मुनियों ने उस पापी को देखकर राजा के बायें हाथ का मन्थन किए और उससे अत्यन्त छोटा, काला तथा भयङ्कर पुरुष पैदा हुआ॥३४-३६॥ वह बर्बर था। उसकी आँखें लाल थी। वह हाथ में धनुषबाण धारण किए था। सभी पापी निषादों तथा म्लेच्छों का पालक तथा राजा हुआ। हे महामते! उसको देखकर ऋषिगण वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किए और उससे पृथिवी का दोहन करने वाले महात्मा पृथु उत्पन्न हुए। वे राजराज, महाप्राज्ञ तथा महाबलवान् थे। उनके ही पुण्य प्रसाद से वेन ही धार्मिक हो गये॥३७-३९॥ उन चक्रधारी श्रीभगवान् की ही कृपा से राजा वे चक्रवर्ती पद का उपभोग करके भगवान् विष्णु के लोक वैकुण्ठ में चले गये॥४०-४१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥३८॥

उनतालिसवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

कथं वेनो गतः स्वर्गं पापं त्याक्त्वा प्रदूरतः ।
तन्नो विस्तरतोऽत्रापि वद सत्यवतां वर ॥१॥

सूत उवाच

ऋषीणांपुण्यसंसर्गात्संवादाच्चद्विजोत्तमाः । कायस्य मथनात्पापो बहिस्तस्य विनिर्गतः ॥२॥
पश्चाद्वेनः स पुण्यात्मा ज्ञानं लेभे च शाश्वतम् ।
रेवाया दक्षिणे कूले तपश्चकार स द्विजाः ॥३॥
तृणविन्दोर्ऋषेश्चैव आश्रमे पापनाशने । वर्षाणां तु शतं साग्रं कामक्रोधविवर्जितः ॥४॥
तस्याग्रतपसा देवः शङ्खचक्रगदाधरः । प्रसन्नोऽभून्महाभागो निष्पापस्य नृपस्य वै ॥
उवाच च प्रसन्नोऽस्मि व्रियतां वर उत्तमः ॥५॥

वेन उवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि देहि मे वरमुत्तमम्। अनेनापि शरीरेण गन्तुमिच्छामि त्वत्पदम् ॥६॥
पित्रासार्धं महाभाग मात्रा चैव सुरेश्वर। तवैव तेजसा देव तद्विष्णोः परमं पदम्॥७॥

श्रीवासुदेव उवाच

क्व गतोऽसौ महामोहो येन त्वं महितोनृप ।
लोभेन मोहयुक्तेन ततो मार्गे निपातितः ॥८॥

वेन उवाच

यन्मे पूर्वकृतं पापं तेनाहं मोहितो विभो। अतो मामुद्धरास्मात्त्वं पापाच्चैव सुदारुणात् ॥९॥
प्रजप्तव्यमथो पाठ्यं तद्वदानुग्रहाद्विभो ॥१०॥

रेवा नदी के तट पर वेन का तपस्या करना

ऋषियों ने कहा— किस प्रकार वेन पाप का परित्याग करके स्वर्ग चले गये ? हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ ! उसे आप हमलोगों को बतलाइये ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— हे द्विजोत्तमो ! ऋषियों के साथ पवित्र सम्बन्ध होने, उनके साथ बातें करने के कारण तथा उनके शरीर का मन्थन करने के कारण पाप वेन का शरीर त्यागकर बाहर निकल गया ॥२॥ उसके बाद पुण्यात्मा वेन शाश्वत ज्ञान को प्राप्त किए और रेवा नदी के दाहिने तट पर तृणविन्दु नामक ऋषि के आश्रम में रहकर सौ वर्ष से भी अधिक समय तक काम एवं क्रोध से रहित होकर तपस्या किए ॥३-४॥ उनकी उग्र तपस्या के कारण शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले श्रीभगवान् उन निष्पाप राजा पर प्रसन्न हो गये । उनहोंने कहा मैं प्रसन्न हूँ उत्तम वरदान माँगे ॥५॥ **वेन ने कहा**— हे देव ! यदि आप प्रसन्न है तो आप मुझे उत्तम वरदान दीजिये । मैं इसी शरीर से आपके लोक में अपने माता-पिता के साथ जाना चाहता हूँ । हे देव ! मैं आपके ही उस वैकुण्ठ लोक में जा सकूँगा ॥६-७॥ **श्रीवासुदेव ने कहा**— राजन् ! वह महामोह कहाँ चला गया जिसने आपको लोभ एवं मोह से युक्त तमोगुण के मार्ग पर डाल दिया था ॥८॥ **वेन ने कहा**— हे विभो ! मैंने जो पहले पाप किया

भगवानुवाच

साधु भूप महाभाग पापं ते नाशमागतम्। शुद्धोऽसि तपसा च त्वं ततः पुण्यं वदाम्यहम्॥११॥
पुरा वै ब्रह्मणा तात पृष्टोऽहं भवता यथा। तस्मै यदुदितं वत्स तत्ते सर्वं वदाम्यहम्॥१२॥
एकदा ब्रह्मणा ध्यानस्थितेन नाभिपङ्कजे। प्रादुरास तदा तस्य वरदानाय सुव्रत॥१३॥
तेन पृष्टं महत्पुण्यं स्तोत्रं पापप्रणाशनम्। वासुदेवाभिधानं च सुगतिप्रदमिच्छता॥१४॥
स्तोत्राणां परमं तस्मै वासुदेवाभिधं महत्। सर्वसौख्यप्रदं नृणां पठतां जपतां सदा॥
उपादिशं महाभाग विष्णुप्रीतिकरं परम् ॥१५॥

विष्णुरुवाच

एतत्सर्वं जगद्व्याप्तं मया त्वव्यक्तमूर्तिना। अतो मां मुनयः प्राहुर्विष्णुं विष्णुपरायणाः॥१६॥
वसन्ति यत्र भूतानि वसत्येषु च यो विभुः। स वासुदेवो विज्ञेयो विद्वद्भिरहमादरात्॥१७॥
सङ्कर्षति प्रजाश्चान्ते ह्यव्यक्ताय यतो विभुः। ततः सङ्कर्षणो नाम्ना विज्ञेयः शरणागतैः॥१८॥
इङ्गिते कामरूपोऽहं बहुस्यामिति काम्यया। प्रद्युम्नोऽहं बुधैस्तस्माद्विज्ञेयोऽस्मि सुतार्थिभिः॥१९॥
अत्र लोके विनाचेशौ सर्वेशौ हरकेशवौ। निरूद्धोऽहं योगबलान्नकेनातोऽनिरुद्धवत्॥२०॥
विश्वाख्योऽहं प्रतिजगज्ज्ञानविज्ञानसंयुतः। अहमित्याभिमानी च जाग्रच्चिन्तासमाकुलः॥२१॥

था उसीने मुझे मोहित किया था, अतएव आप मुझे इस अत्यन्त दुःखद पाप से मेरा उद्धार करें ॥९॥ आप मुझे कृपा करके जपने योग्य पाठ का उपदेश दें ॥१०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** बहुत अच्छा है, महाभाग राजन्! आपका पाप नष्ट हो गया। आप तपस्या के कारण पवित्र हो गये हैं; अतएव मैं आपको बतला रहा हूँ ॥११॥ हे तात! पूर्व काल में आपके ही समान ब्रह्माजी ने भी मुझसे पूछा था। मैंने उस समय जो ब्रह्माजी को बतलाया उसे ही मैं आपको पूर्ण रूप से बतलाता हूँ ॥१२॥ एक बार ब्रह्माजी मेरे नाभि कमल पर स्थित होकर ध्यान कर रहे थे। हे सुव्रत! मैं उनको वर प्रदान करने के लिए प्रकट हुआ॥१३॥ उन्होंने अत्यन्त पवित्र तथा पाप विनाशक वासुदेव नामक स्तोत्र के विषय में मुझसे पूछा। वह चाहने वालों को सुन्दर गति प्रदान करने वाला है ॥१४॥ मैं सभी स्तोत्रों में श्रेष्ठ वासुदेव स्तोत्र के पाठ तथा जप करने वाले मनुष्यों को सभी प्रकार का सुख प्रदान करने वाला है, उसका उपदेश मैं ब्रह्माजी को दिया। उससे भगवान् विष्णु की प्रसन्नता होती है ॥१५॥ **विष्णु भगवान् ने कहा—** यह सम्पूर्ण जगत् मुझ अव्यक्त मूर्ति के द्वारा व्याप्त है। इसीलिए विष्णुपुराण मुनियों ने मुझे विष्णु कहा है ॥१६॥ प्रलयकाल मे जिसमें सभी भूत (जीव) निवास करते हैं तथा सृष्टिकाल में जो सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से निवास करते हैं, वहीं मैं विद्वानों द्वारा वासुदेव नाम से जानने योग्य हूँ ॥१७॥ अन्तिम समय में मैं सभी प्रजाओं का अव्यक्त से सङ्कर्षण करता हूँ, इसीलिए शरणागतों को मुझे सङ्कर्षण जानना चाहिए ॥१८॥ अपनी इच्छानुसार मैं अनेक हो जाऊँ इस प्रकार की कामना से मैं कामरूप हूँ इसीलिए पुत्र चाहने वाले अर्थियों द्वारा मैं प्रद्युम्न रूप से जानने योग्य हूँ ॥१९॥ इस संसार में मैं शङ्कर तथा विष्णु नामक दोनों नियामकों के बिना ही अपने योग के बल से इस लोक में स्थित रहता हूँ किसी दूसरे से नहीं अतएव मेरा नाम अनिरुद्ध है ॥२०॥ मैं विश्व शब्द से इसलिए कहा जाता हूँ कि ज्ञान-विज्ञान से युक्त मैं सम्पूर्ण जगत् में जागरावस्था में अहं शब्दाभिमानी रूप से रहता हूँ ॥२१॥ स्वप्नावस्थावस्थित मैं इन्द्रिय शरीरक होकर तैजस रूप से विद्यमान रहता हूँ। उस

तैजसोऽहं जगच्चेष्टामयश्चेन्द्रियरूपवान्। ज्ञानकर्मसमुदितः स्वप्नावस्थां गतोह्यहम् ॥२२॥
प्राज्ञोऽहमधिदैवात्मा विश्वाधिष्ठानगोचरः। सुषुप्तावास्थितो लोकादुदासीनो विकल्पितः ॥२३॥
तुरीयोऽहं निर्विकारी गुणावस्थाविवर्जितः । निर्लिप्तः सक्षिवद्विश्वप्रतिबिम्बितविग्रहः ॥२४॥
चिदाभासश्चिदानन्दश्चिन्मयश्चित्स्वरूपवान् । नित्योऽक्षरो ब्रह्मरूपो ब्रह्मन्नेवमवेहि माम् ॥२५॥

भगवानुवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणे पुरा ।
सोऽपि ज्ञात्वा जगद्व्याप्तिं कृतात्मा समभूत्क्षणात् ॥२६॥

राजंस्त्वमपि शुद्धात्मा पृथोर्जन्मन एव च। तथाप्याराधय विभुं स्तोत्रेणानेन सुव्रत ॥२७॥
तुष्टो विष्णुस्तमभ्याह वरं वरय मानद ॥२८॥

वेन उवाच

सुगतिं देहि मे विष्णो दुष्कृतात्तारयस्व माम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि कारणं वद सद्गतेः ॥२९॥

विष्णुरुवाच

पूर्वमेव महाभाग त्वदङ्गेनापि महात्मना। अहमाराधितस्तेन तस्मै दत्तो वरो मया॥३०॥
प्रयास्यसि महाभाग वैष्णवं लोकमुत्तमम् । कर्मणा स्वेन विप्रेन्द्र पुण्येन नृपनन्दन ॥३१॥
आत्मार्थे त्वं महाभाग वरमेव प्रयाचय। शृणु वेन महाभाग वृत्तान्तं पूर्वसम्भवम्॥३२॥
तव मात्रे पुरा दत्तः शापः क्रुद्धेन भूपते । सुशङ्खेन सुनीथायै बाल्ये पूर्वं महात्मना ॥३३॥
ततस्त्वदङ्गे वरो दत्तो मयैव विदितात्मना । त्वां समुद्धर्तुकामेन सुपुत्रस्ते भविष्यति ॥३४॥
एवमुक्त्वा तु पितरं तवाहं गुणवत्सल। भवदङ्गात्समुद्भूतः करिष्ये लोकपालनम्॥३५॥

समय मेरे ज्ञान और कर्म उद्रिक्त (उद्भूत) रहते हैं ॥२२॥ विश्व रूपी अधिष्ठान का विषय बना हुआ लोक से उदासीन प्राज्ञ तथा अधिदैवत मैं सुषुप्तावस्था में रहता हूँ ॥२३॥ तुरीयावस्था में मैं निर्विकार तथा गुणावस्था से रहित निर्लिप्त तथा साक्षी के समान रहता हूं । मेरे ही शरीर में सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिम्बित होता है ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे आप चिदाभास, चिदानन्द, चिन्मय, चित्स्वरूप नित्य, अक्षर तथा ब्रह्मस्वरूप जानें ॥२५॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— ब्रह्माजी को इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये । ब्रह्माजी मेरी जगद्व्यापकता को जानकर कृतकृत्य हो गये ॥२६॥ हे राजन् ! पृथु के जन्म से आप भी शुद्ध हो गये हैं फिर भी आप इस स्तोत्र से भगवान् विष्णु की आराधना करें ॥२७॥ प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने वेन से कहा हे मानद ! आप वर माँगें ॥२८॥ **वेन ने कहा**— हे भगवन् विष्णो ! आप मुझे इस पाप से पार करके सुगति प्रदान करें । मैं आपके शरण में हूँ । आप सद्गति के उपाय को बतलायें ॥२९॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे महाभाग ! पहले भी अङ्ग ने मेरी आराधना की थी, उससे प्रसन्न होकर उनको मैंने वरदान दिया था ॥३०॥ हे विप्रेन्द्र ! महाभाग ! नृपनन्दन ! आप अपने पुण्य कर्मों के द्वारा ही विष्णु लोक में जायेंगे ॥३१॥ हे महाभाग ! आप अपने लिए वर माँगें जिसके कारण यह वृत्तान्त हुआ उसे आप सुनें ॥३२॥ राजन् ! आपकी माता सुनीथा को महात्मा सुशंख ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया था ॥३३॥ उसके बाद विदितात्मा मैंने अङ्ग को तुम्हारा उद्धार करने की इच्छा से वरदान दिया कि तुमको सुपुत्र की

दिवीन्द्रो हि यथा भाति तथाहं भूतले स्थितः ।
आत्मा वै जायते पुत्र इति सत्यवती श्रुतिः ॥३६॥
अतस्त्वं सुगतिं वत्स लभिष्यसि वरान्मम। गत्यर्थमात्मनो राजन्दानमेकं समाचर ॥३७॥
यस्त्वां पातकरूपोऽहं सुनीथायाः परन्तप। अब्रुवं नग्नरूपेण कर्तुं त्वां तु विधर्मगम्॥३८॥
अन्यथा तु सुशङ्खस्य वाक्यमेवान्यथा भवेत् ।
अतो विधिर्निषेधश्च ह्यहमेव नृपोत्तम ॥३९॥
कर्मानुरूपफलदो बुद्ध्यतीतो गुणग्रहः । दानमेव परं श्रेष्ठं दानं सर्वप्रभावकम् ॥४०॥
तस्माद्दानं ददस्व त्वं दानात्पुण्यं प्रवर्तते । दानेन नश्यते पापं तस्माद्दानं ददस्व हि ॥४१॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्यजस्व नृपसत्तम । भूमिदानादिकं दानं ब्राह्मणेभ्यो ददस्व वै ॥४२॥
सुदानात्प्राप्यते भोगः सुदानात्प्राप्यते यशः । सुदानाज्जयते कीर्तिः सुदानात्प्राप्यते सुखम् ॥४३॥
दानेन स्वर्गमाप्नोति फलं तत्र भुनक्ति च । दत्तस्यापि सुदानस्य श्रद्धायुक्तस्य सत्तम ॥४४॥
काले प्राप्ते व्रजेत्तीर्थं पुण्यस्यापि फलं त्विदम् ।
पात्रभूताय विप्राय श्रद्धापूतेन चेतसा ॥४५॥
यो ददाति महादानं मयिभावं निवेश्य च। तस्याहं सकलं दद्मि मनसा यं यमिच्छति॥४६॥

वेन उवाच

कालं दानस्य मे ब्रूहि कीदृक्कालस्य लक्षणम् ।
तीर्थस्यापि च यद्रूपं पात्रस्यापि सुलक्षणम् ॥४७॥

प्राप्ति होगी ॥३४॥ इस तरह से गुणवत्सल मैं तुम्हारे पिता को कहकर तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हो गया मैं संसार का पालन करूँगा ॥३५॥ जिस तरह स्वर्ग में इन्द्र सुशोभित होते हैं उसी तरह मैं पृथिवी पर सुशोभित होऊँगा । सत्यवादिनी श्रुति ने कहा भी है कि आत्मा ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है ॥३६॥ अतएव हे राजन् ! तुम मुझसे सुन्दर गति तथा वरों को प्राप्त करोगे । हे राजन् । आप गति की प्राप्ति के लिए एक दान करें ॥३७॥ हे वरन्तप ! सुनीथा के पाप स्वरूप मैंने तुमको विमार्गगामी बनाने के लिए नग्न रूप से कहा ॥३८॥ यदि ऐसा नहीं करता तो सुशङ्ख की वाणी मिथ्या हो जाती; अतएव हे नृपोत्तम ! मैं ही विधि रूप और निषेध रूप हूँ ॥३९॥ मैं कर्मों के अनुसार फल प्रदान करता हूँ । मैं बुद्धि से परे और गुण का विषय नहीं बनने वाला हूँ । दान ही सबसे श्रेष्ठ है । दान सबको प्रभावित करने वाला है ॥४०॥ अतएव तुम दान दिया करो, दान करने से पुण्य होता है । दान से पाप का नाश होता है, अतएव तुम दान दो ॥४१॥ हे राजश्रेष्ठ ! अश्वमेघ आदि यज्ञों से यजन करो और ब्राह्मणों को भूमि इत्यादि का दान दो॥४२॥ सुन्दर दान करने से भोगों की समृद्धि होती है, सुदान से यश की प्राप्ति होती है, सुदान से कीर्ति होती है और सुदान से सुख मिलता है ॥४३॥ दान के द्वारा मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है, और स्वर्ग में वह दान का फल भोगता है । श्रद्धा पूर्वक किए गये दान के ही ये सब फल होते हैं ॥४४॥ समयानुसार तीर्थ मे जाने पर पुण्य का भी यही फल है कि श्रद्धापूर्ण हृदय से योग्य ब्राह्मण को जो मुझमें भक्तिभावना रखकर महादान देता है । वह मनसे जो-जो चाहता है उसको मैं उन सारी वस्तुओं को प्रदान करता हूँ॥४५-४६॥ **वेन ने कहा—** काल का लक्षण क्या है ? आप मुझे दान का काल कौन है ? आप मुझे

दानस्यापि जगन्नाथ विधिं विस्तरतो वद। प्रसादसुमुखो भूत्वा दया मे यदि वर्त्तते ॥४८॥

श्रीकृष्ण उवाच

दानकालं प्रवक्ष्यामि नित्यं नैमित्तिकं नृप। काम्यं चान्यं महाराज चतुर्थं प्रायिकं पुनः ॥४९॥
सूर्योदयस्य वेलायां पापं नश्यति सर्वतः। अन्धकारदिकानां च घोराणां नाशकारकः ॥५०॥

दिवि सूर्यो ममांशोऽयं तेजसां कल्पितोनिधिः।
तस्यैव तेजसा दुग्धा भस्मतां यान्ति किल्बिषाः ॥५१॥
उदयन्तं ममांशं यो दृष्ट्वा दत्ते तु वार्यपि।
तस्य किं कथ्यते भूप नित्यं पुण्यविवर्द्धनम् ॥५२॥
सम्प्राप्तायां सुवेलायां तस्यां पुण्यकरो नरः।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितृन्देवान्दानदाता भवेत्पुनः ॥५३॥

यथाशक्तिप्रभावेन श्रद्धापूतेन चेतसा। अन्नं फलं पुष्पं वस्त्रं तथा ताम्बूलभूषणम् ॥५४॥
हेमरत्नादिकं चैव तस्य पुण्यमनन्तकम्। मध्याह्ने तु ततो राजन्नपराह्ने तथैव च ॥५५॥
मामुद्दिश्य च योदद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्। खाद्यपानादिकं मिष्टं लेपनं गन्धकुङ्कुमम् ॥५६॥
कर्पूरादिकमेवापि वस्त्रालङ्कारसंयुतम्। अविच्छिन्नं ददात्येवं भोगसौख्यप्रदायकम् ॥५७॥

नित्यकालो मयाख्यातो दानपूजार्थिनां शुभः।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नैमित्तिकमनुत्तमम् ॥५८॥

त्रिकालेष्वपि दातव्यं दानमेवं न संशयः। शून्यं दिनं न कर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता ॥५९॥

तीर्थ तथा सुपात्र का भी लक्षण बतलायें ॥४७॥ हे जगन्नाथ ! आप दान की विधि का भी विस्तार पूर्वक वर्णन करें। यदि आपकी मुझ पर दया है तो आप प्रसन्न मन से मुझे इन बातों को बतलायें ॥४८॥ **श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा**— मैं नित्य, नैमित्तिक काम्य तथा प्रायिक दानों के कालों को बतलाता हूँ॥४९॥ सूर्योदय की वेला में पापों का हर प्रकार से नाश होता है। अन्धकार आदि घोर पदार्थों का नाश करने वाला तेजो के आकार द्युलोक में विद्यमान सूर्य मेरे अंश हैं। उनके ही तेज से सारे पाप भस्म हो जाते हैं ॥५०-५१॥ जो उदय होते हुए मेरे अंश भूत सूर्य को देखकर जल भी प्रदान करता है, उसके पुण्य के विषय में क्या कहना है ? वह नित्य ही पुण्य को बढ़ाने वाला है ॥५२॥ उस सुन्दर बेला के आने पर स्नान करके देवताओं और पितरों की पूजा करके दान देने वाला मनुष्य पुण्यवान होता है ॥५३॥ अपनी शक्ति और प्रभाव के अनुसार तथा श्रद्धा पूर्वक अन्तःकरण से अन्न, जल, फल, मूल, वस्त्र, ताम्बूल और भूषण, सोना तथा रत्न आदि जो दान दिया जाता है उसका अनन्त पुण्य होता है। हे राजन् ! उसके बाद माध्याह्न तथा अपराह्न में ॥५४-५५॥ मरे निमित्त जो मीठा, अन्न, जल आदि तथा चन्दन कुंकुम आदि का लेपन दिया जाता है या वस्त्र तथा अलङ्कार इत्यादि का दान दिया जाता है उसका अनन्त पुण्य होता है। इस तरह से जो भोग एवं सौख्य प्रदान करने वाले पदार्थों का सदैव दान देता है उसका भी अनन्त पुण्य होता है ॥५६-५७॥ मैंने दान तथा पूजा करने वालों के लिए शुभ नित्य काल का वर्णन किया अब मैं सर्वोत्तम नैमित्तिक काल का वर्णन करूँगा ॥५८॥ तीनों समय में दान देना चाहिए। आत्मकल्याण चाहने वाले को अपना दान शून्य दिन नहीं बनाना चाहिए ॥५९॥ हे राजन् ! जिस समय में दिया गया थोड़ा सा भी जो

यस्मिन्काले प्रदत्तं हि किंचिद्दानं नराधिप। तत्प्रभावान्महाप्राज्ञो बहुसामर्थ्यसंयुतः ॥६०॥
धनाढ्यो गुणवान्प्राज्ञः पण्डितोऽपि विचक्षणः ।
पक्षं मासं दिनं यावन्न दत्तं वैयदशानम् ॥६१॥
तावद्वै वारयाम्येनं भक्ष्याच्चैव नरोत्तमम्। स्वमलं भक्षितं चैव अदत्त्वा दानमुत्तमम्॥६२॥
उत्पादयाम्यहं रोगं सर्वभोगनिवारणम्। तेषां कायेष्वसन्तुष्टो बहुपीडाप्रदायकम्॥६३॥
मन्दानलेन संयुक्तं ज्वरं सन्तापकारणम्। त्रिकालेषु न दत्तं यैर्ब्राह्मणेषु सुरेषु च ॥६४॥
स्वयमश्नाति मिष्टं तु तेन पापं महत्कृतम्। प्रायश्चित्तेन रौद्रेण तमेव परिशोधयेत्॥६५॥
उपवासैर्महाराज कायशोषकरादिकैः। चर्मकारो यथाचर्मकुण्डस्योपरि निर्घृणः ॥६६॥
शोधयेच्च कषायैश्च तच्चर्मस्फोटयत्यथ। तथाऽहं पापकर्तारं शोधयामि न संशयः ॥६७॥
ओषधीनां सुयोगाच्च कषायैः कटुकैर्ध्रुवम्। उष्णोदकैश्च सन्तापैर्वैद्यरूपेण नान्यथा॥६८॥
सुखं भुङ्क्ते ततस्सोऽग्रेभोगान्पुण्यान्मनोऽनुगान् ।
नकरोमि समर्थस्सन्सर्वदानमनुत्तमम् ॥६९॥
महता पापरूपेण तमेवं परितापये। नित्यकालस्य यद्दानमात्मार्थं पापिभिर्यथा ॥७०॥
न दत्तंराजराजेन्द्र श्रद्धापूतेन चेतसा। तथा ताञ्जारयाम्येतानुपायैर्दारूणैः किल ॥७१॥
नैमित्तिकं तथा कालं पुण्यं चैव तवाग्रतः। प्रवक्ष्यामि नरश्रेष्ठ सुबुद्ध्या शृणु तत्परः ॥७२॥
अमावास्या महाराज पौर्णमासी तथैव च। यदा भवति सङ्क्रान्तिर्व्यतीपातो नरेश्वर॥७३॥
वैधृतिश्च यदा प्रोक्ता यदाचैकादशी भवेत्। महामाघी तथाषाढी वैशाखीं कार्तिकी तथा ॥७४॥

दान होता है उसके प्रभाव से वह महाप्राज्ञ बहुत सामर्थ्ययुक्त होता है ॥६०॥ धनाढ्य, गुणवान् तथा पण्डित भी जो पक्षभर महीने भर तथा दिन भर में जो भोजन दान नहीं करता है ॥६१॥ मैं उसको भी उतने दिन तक उसको भक्ष्य पदार्थ नहीं देता हूँ। उत्तम दान नहीं देने वाला उतने समय तक अपने मल को ही खाता है ॥६२॥ मैं उसके लिए ऐसा रोग उत्पन्न कर देता हूँ कि वह भोजन नहीं कर पाता है। आसन्तुष्ट होने के कारण मैं उन सबों के शरीर में बहुत अधिक दुःख देने वाला रोग उत्पन्न करता हूँ ॥६३॥ जिन सबों ने दिन के किसी भी समय में देवताओं और ब्राह्मणों को दान नहीं दिया है वे सब मन्दाग्नि तथा सन्तापकारी ज्वर से युक्त हो जाते हैं ॥६४॥ जो अकेले अच्छी वस्तुएँ खा लेता है, वह बहुत बड़ा पाप करता है, अतएव उस पाप का शोधन उसे भयङ्कर प्रायश्चित से करना चाहिए ॥६५॥ उसे उपवास आदि करके अपने शरीर को सुखाना चाहिए। अन्यथा जिस तरह निष्ठुर चर्मकार (चमार) चर्मकुण्ड पर कषाय आदि के द्वारा चमड़े का शोधन करता है उसी तरह मैं भी उस पापी को शोधन कड़वी और काषाय औषधियों के द्वारा तथा गर्भ जलके सन्ताप के द्वारा वैद्य के रूप में करता हूँ ॥६६-६८॥ उसके बाद वह अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगता है। जो समर्थ होकर भी दान नहीं करता है, उसको मैं महान् पाप के रूप से इसी तरह सन्तप्त करता हूँ। हे राजेन्द्र ! जिन पापियों ने नित्यकाल के दान को अपने कल्याण के लिए श्रद्धा पूर्वक नहीं किया है, उसको मैं इन्ही भयङ्कर उपायों से जलाता रहता हूँ ॥६९-७१॥ हे नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे सामने दान के नैमित्तिक काल का वर्णन करूँगा उसको तुम सावधानी पूर्वक सुनो ॥७२॥ हे नरेश्वर ! अमावस्या, पौर्णमासी, सङ्क्रान्ति, व्यतीपातयोग, वैधृतियोग, एकादशी, महामाघी, आषाढी, वैशाखी तथा कार्तिकी

अमासोमसमायोगे मन्वादिषु युगादिषु। गजच्छाया तथा प्रोक्ता पितृक्षयतिथिस्तथा ॥७५॥
एते नैमित्तिकाः ख्यातास्तवाग्रे नृपसत्तम। एतेषु दीयते दानं तस्य दानस्य यत्फलम् ॥७६॥
तत्फलं तु प्रवक्ष्यामि श्रूयतां नृपसत्तम। मामुद्दिश्य नरो भक्त्याब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥७७॥
तस्याहं निर्विकल्पे न प्रयच्छामि न संशयः। गृहं सौख्यं महाराज स्वर्गमोक्षादिकं बहु ॥७८॥
काम्यं कालं प्रवक्ष्यामि दानस्य फलदायकम् ।
व्रतानामेव सर्वेषां देवादीनां तथैव च ॥७९॥
दानस्य पुण्यकालं तु सम्प्रोक्तं द्विजसत्तमैः। आभ्युदयिकमेवापि कालं वक्ष्यामि ते नृप ॥८०॥
शुभानामेव सर्वेषां वैवाहिकमनुत्तमम्। पुत्रस्य जातमात्रस्य चौलमौञ्ज्यादिकं तथा ॥८१॥
प्रासादध्वजदेवानां प्रतिष्ठादिककर्मणि। वापीकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ॥८२॥
तदाभ्युदयिकं प्रोक्तं मातृणां यत्र पूजनम्। तस्मिन्काले ददेद्योनं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥८३॥
त्रिविधोऽयंतु ते कालः प्रोक्तश्चैव नृपोत्तम। अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि पापपीडानिवारणम्॥८४॥
मृत्युकाले च सम्प्राप्ते क्षयं ज्ञात्वा नरोत्तम। तत्र दानं प्रदातव्यं यममार्गसुखप्रदम्॥८५॥
नित्यनैमित्तिकात्कालात्काम्याभ्युदयिकात्तथा। अन्त्यः कालो महाराज समाख्यातस्तवाग्रतः ॥८६॥
एते कालाः समाख्याताःस्वकर्मफलदायकः ।
तीर्थस्य लक्षणं राजन्प्रवक्ष्यामितवाग्रतः ॥८७॥
सुतीर्थानामियं गङ्गा भाति पुण्या सरस्वती। रेवा च यमुना तापी तथा चर्मण्वती नदी॥८८॥
सरयूर्घर्घरावेणा सर्वपापप्रणाशिनी। कावेरी कपिलाचान्या विशाला विश्वतारिणी॥८९॥

अमावस्या, सोमवती अमावस्या मन्वादितिथि, युगादि तिथि, गजच्छाया योग, पितृक्षय तिथि, ये सभी नैमित्तिक दानकाल कहे गये हैं। हे राजन्! इन अवसरों पर दिए गये दान का जो फल होता है, वह मैं आपको बतला रहा हूँ, उसे आप सुनें। इन अवसरों पर मेरे उद्देश्य से जो कोई ब्राह्मणों को दान देता है ॥७३-७७॥ उसको मैं बिना किसी विकल्प के स्वर्ग तथा मोक्ष आदि फल प्रदान करता हूँ ॥७८॥ अब मैं दान का फल देने वाले काम्य काल को बतलाता हूँ। सभी व्रतों तथा देवता आदि के दान का पुण्यकाल द्विजश्रेष्ठों ने बतलाया है। हे राजन्! मैं आपको आभ्युदयिक काल को बतलाता हूँ ॥७९-८०॥ समस्त शुभों में वैवाहिक शुभ श्रेष्ठ है। उत्पन्न हुए पुत्र के चौल संस्कार तथा मौञ्जी बन्धन संस्कार भवन ध्वज रोहण तथा देवताओं के प्रतिष्ठा आदि कर्म में तथा वापी, कूप तथा तटाक, आराम (उद्यान) तथा गृह की प्रतिष्ठा का काल आभ्युदयिक काल होता है। उसमें मातृकाओं का पूजन होता है। उस समय दिया जाने वाले दान सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है ॥८१-८३॥ हे राजन्! मैंने आप को दान के तीन प्रकार के कालों को बतलाया है। दूसरे भी कालों को बतलाऊँगा जो तथा पीड़ा को दूर करने वाला होता है ॥८४॥ मृत्यु काल के उपस्थित हो जाने पर क्षय को जानकर उस समय दान देना चाहिए। वह यममार्ग में सुखप्रद होता है ॥८५॥ हे महाराज! मैंने आपके समक्ष, नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा आभ्युदयिक काल से भिन्न अन्त्य काल को बतलाया ॥८६॥ ये सभी काल अपने कर्मों के फल को देने वाले होते हैं। हे राजन्! मैं आपके समक्ष तीर्थ का लक्षण बतलाता हूँ ॥८७॥ सुतीर्थों में गङ्गानदी पवित्र है। सरस्वती नदी; रेवानदी यमुना, तापी तथा चर्मण्डवती नदी ॥८८॥ सरयू, घाघरा तथा वेणा, ये सभी नदियाँ पापों को

गोदावरी समाख्याता तुङ्गभद्रा नरोत्तम। पापानां भीतिदा नित्यं भीमरथी प्रपठ्यते॥९०॥
देविकाकृष्णागङ्गा च अन्याः सरिद्वरोत्तमाः। एतासां पुण्यकालेषु सन्तितीर्थान्यनेकशः ॥९१॥
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये नद्यः सर्वत्र पावनाः ।
तत्रतत्रप्रकर्तव्याः स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥९२॥
यदा न ज्ञायते नाम तासां तीर्थस्य सत्तम। नामोच्चारं प्रकुर्वीत विष्णुतीर्थमिदं नृप॥९३॥
तीर्थस्य देवतातद्वदहमेव न संशयः। मामेवमुच्चरेद्योवै तीर्थे देवेषु साधकः ॥९४॥
तस्य पुण्यफलं जातं मन्नाम्ना नृपनन्दन। अज्ञातानां सुतीर्थानां देवानां नृपसत्तम॥९५॥
स्नाने दाने महाराज मन्नामहिसमुच्चरेत्। तीर्थानामेव राजेन्द्र यात्राधात्र्य इमाःकृताः ॥९६॥
सिन्धवः सर्वपुण्यानां सर्वस्थाः क्षितिमण्डले ।
यत्र तत्र प्रकर्त्तव्यं स्नानदानादिकं नृप ॥९७॥
अक्षयं फलमाप्नोति सुतीर्थानां प्रसादतः। तीर्थरूपा महापुण्याः सागराः सप्त एव च ॥९८॥
मानसाद्यास्तथा राजन्सरस्यश्च प्रकीर्तिताः। निर्झराःपल्वलाः प्रोक्तातीर्थरूपानसंशयः॥९९॥
स्वल्पा नद्यो महाराज तासु तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
खातेष्वेवं न सर्वेषु वर्जयित्वा च कूपकम् ॥१००॥
पर्वतास्तीर्थरूपाश्च मेर्वाद्याश्च महीतले। यज्ञभूमिश्च यज्ञश्च अग्निहोत्रे यथास्थितः॥१०१॥
श्राद्धभूमिस्तथा शुद्धो देवशाला तथापुनः। होमशाला तथा प्रोक्ता वेदाध्ययनवेश्म च॥१०२॥
गृहेषु पुण्य संयुक्तं गोस्थानं वरमुत्तमम्। सोमपायी भवेद्यत्र तीर्थं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०३॥

विनष्ट करने वाली हैं। कावेरी, कपिला, विशाला ये सभी विश्वतारिणी नदियाँ हैं। गोदावरी, तुङ्गभद्रा तथा भीमरथी ये नदियाँ पापों के भय को विनष्ट करने वाली बतलायी गयी हैं ॥८९-९०॥ देविका नदी, कृष्णागङ्गा तथा दूसरी श्रेष्ठ नदियाँ कही गयी हैं। इन नदियों का पुण्यकाल में जल अनेक प्रकार का बतलाया गया है ॥९१॥ नदी चाहे ग्राम में हो अथवा वन में हो, नदियाँ सर्वत्र पवित्र होती हैं। अतएव सर्वत्र नदियों में स्नान तथा दान आदि करना चाहिए ॥९२॥ यदि तीर्थ का नाम ज्ञात नहीं हो तो तीर्थ नामोच्चारण के समय उसे विष्णु तीर्थ कहना चाहिए ॥९३॥ तीर्थ का देवता मैं ही हूँ, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। जो साधक तीर्थों में इस प्रकार से मेरा उच्चारण करता है, उसको मेरे नाम से तीर्थ का फल मिल जाता है। हे नृपश्रेष्ठ ! देवताओं और तीर्थों का नाम अज्ञात होने पर मेरे ही नाम का उच्चारण कर लेना चाहिए। हे राजेन्द्र ! तीर्थों के ब्रह्माजी ने इन सबों को बनाया ॥९४-९६॥ पृथिवी पर सभी पुण्यों की धात्री नदियाँ और सागर हैं। इस तरह से हे नृप ! कहीं भी स्नान-दान आदि करना चाहिए। ऐसा करने वाला तीर्थों की कृपा से अक्षय फल को प्राप्त करता है। सातों सागर तीर्थ स्वरूप हैं ॥९७-९८॥ हे राजन् ! मानस आदि सरोवर, झरने और पल्वल (छोटे-छोटे जलाशय) ये सभी तीर्थ रूप बतलाये गये हैं ॥९९॥ हे महाराज! छोटी नदियों में भी तीर्थ स्थित रहता है। इसी तरह कूप को छोड़ सभी खातों में तीर्थ रहता है ॥१००॥ पृथिवी पर सुमेरु आदि पर्वत भी तीर्थ रूप हैं। जिस तरह सभी अग्निहोत्रों में यज्ञ और यज्ञभूमि स्थित होती है, उसी तरह ॥१०१॥ श्राद्धभूमि, देव मन्दिर, होमशाला तथा वेदाध्ययन का स्थान ये सभी शुद्ध होते हैं॥१०२॥ घर में विद्यमान गोशाला सर्वाधिक शुद्ध होती है। जहाँ पर सोमपायी ब्राह्मण रहते हैं वहाँ पर

आरामा यत्र वै पुण्या अश्वत्थो यत्र तिष्ठति ।
ब्रह्मवृक्षो भवेद्यत्र वटवृक्षस्तथैव च ॥१०४॥
अन्ये च वन्य संस्थाने तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
एते तीर्थाः समाख्याताः पिता माता तथैव च ॥१०५॥
पुराणं पठ्यते यत्र गुरुर्यत्र स्वयंस्थितः । सुभार्यातिष्ठते यत्र तत्र तीर्थं न संशयः ॥१०६॥
सुपुत्रस्तिष्ठते यत्र तत्र तीर्थं न संशयः। एतान्यापि च तीर्थानि राजमेश्म तथैव च ॥१०७॥

वेन उवाच

पात्रस्य लक्षणं ब्रूहि तस्मै देयं सुरोत्तम । प्रसाद सुमुखो भूत्वा कृपया मममाधव॥१०८॥

वासुदेव उवाच

शृणु राजन्महाप्राज्ञ पात्रस्यापि सुलक्षणम्। यस्मै देयं सुदानं च श्रद्धापूतैर्महात्मभिः॥१०९॥
ब्राह्मणं सुकुलोपेतं वेदाध्ययनतत्परम्। शान्तं दान्तं तपोयुक्तं शुक्लमेव विशेषतः ॥११०॥
प्रज्ञावन्तं ज्ञानवन्तं देवपूजनतत्परम्। सत्यवन्तं महापुण्यं वैष्णवं ज्ञानपण्डितम् ॥१११॥
धर्मज्ञं मुक्तलौल्यं च पाखण्डैस्तु विवर्जितम् ।
एवं पात्रं समाख्यातमन्यदेवं वदाम्यहम् ॥११२॥
एवमेतैर्गुणैर्युक्तं स्वसृपुत्रं नरोत्तमम्। एतं पात्रं विजानीहि दुहितुस्स्तनयं ततः ॥११३॥
जामातरं महाराज भावैरेतैश्च संयुतम्। गुरुं च दीक्षितं चैव पात्रभूतं नरोत्तम ॥११४॥
एतान्येव सुपात्राणि दानयोग्यानि सत्तम । वेदाचार समोपेतस्तृप्तिं नैव च गच्छति॥११५॥
वर्जयेत्किलतं विप्रं तथाकाणं सुधूर्तकम्। अतिकृष्णं महाराज कपिलं परिवर्जयेत्॥११६॥

तीर्थ प्रतिष्ठित रहता है ॥१०३॥ जहाँ पर पवित्र उद्यान हो जहाँ पर अश्वत्थ (पिप्पल) का पेंड़ तथा जहाँ पर ब्रह्मवृक्ष (पाकड़ का पेंड़) रहता है अथवा बटवृक्ष रहता है वहाँ भी तीर्थ होता है ॥१०४॥ दूसरे भी वन के स्थान में तीर्थत्व स्थित रहता है । ये सभी तथा माता-पिता भी तीर्थ बतलाये गये हैं ॥१०५॥ जहाँ पर पुराण पढ़ा जाता है, जहाँ पर आचार्य का निवास हो तथा जहाँ पर पतिव्रता पत्नी रहती है, वहाँ पर भी तीर्थ का निवास होता है इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥१०६॥ जहाँ पर सुपुत्र का निवास होता है वहाँ भी तीर्थ का निवास होता है । ये सभी तीर्थ हैं तथा राज का महल भी तीर्थ होता है ॥१०७॥ **वेन ने कहा**— हे माधव ! कृपा करके प्रसन्नता पूर्वक आप दान के पात्र, जिसको दान दिया जाय उसको मुझे बतलाएँ ॥१०८॥ **भगवान् वासुदेव ने कहा**— हे महाप्राज्ञ राजन् ! आप पात्र का भी लक्षण सुनें । जिस पात्र को श्राद्ध करके पवित्र बने महापुरुषों को दान देना चाहिए ॥१०९॥ उसी सुन्दर वंश में उत्पन्न, और वर्ण के शान्त, दान्त, ब्राह्मण होना चाहिए जो वेदाध्ययन करने वाला हो, जो प्रज्ञा तथा ज्ञान से सम्पन्न हो, देवताओं की पूजा करता हो, सत्यवक्ता, वैष्णव, ज्ञानी तथा तपस्वी हो ॥११०-१११॥ धर्म को जानने वाला, लालच रहित, पाखण्ड रहित हो इस तरह के ब्राह्मण को दान का पात्र कहा गया है । मैं दूसरे भी दान के पात्रों को बतलाता हूँ ॥११२॥ इन सभी गुणों से युक्त ब्रह्म का पुत्र तथा पुत्री का पुत्र भी दान का पात्र होता है ॥११३॥ हे महाराज ! उपर्युक्त गुणों से युक्त दामाद भी दान के पात्र होते हैं । यज्ञ में दीक्षित गुरु भी दान के पात्र हैं ॥११४॥ हे राजन् ! ये सभी दान के योग्य पात्र है । जो वैदिक आचार से युक्त हो किन्तु असन्तुष्ट रहता हो ऐसे ब्राह्मण को दान न दे । इसी तरह, काने, धूर्त, अत्यन्त काले तथा कपिल

कर्कटाक्षं सुनीलं च श्यावदन्तं विवर्जयेत् । नीलदन्तं तथा राजन्पीतदन्तं तथैव च ॥११७॥
गोदन्तं कृष्णदन्तं च बर्बरं चातिपांसुलम् । हीनाङ्गमधिकाङ्गं च कुष्ठिनं कुनखं तथा॥११८॥
दुश्चर्माणं महाराज खल्वाटं परिवर्जयेत् । अन्यायेषुरता यस्य जायाविप्रस्य कस्य च ॥११९॥
तस्मै दानं न दातव्यं यदि ब्रह्मसमोभवेत् । स्त्रीजिताय न दातव्यं शाखारण्डेमहामते ॥१२०॥
व्याधिताय न दातव्यं मृतभोजिषु भूपते । चोराय च न दातव्यं सयद्यत्रिसमो भवेत्॥१२१॥
अतृप्ताय न दातव्यं शावं तु परिवर्जयेत् । अतिस्तब्धाय नोदेयं शठाय च विशेषतः ॥१२२॥
वेदशास्त्रसमायुक्तः सदाचारेण वर्जितः । श्राद्धेदाने च राजेन्द्र नैवयुक्तःकदा भवेत् ॥१२३॥
अथदानं प्रवक्ष्यामि सफलं पुण्यदायकम् । कालतीर्थं सुपुत्राणां श्रद्धायोगात्प्रजायते ॥१२४॥

नास्ति श्रद्धा समंपुण्यं नास्ति श्रद्धा समं सुखम् ।
नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप ॥१२५॥

श्रद्धाभावेन संयुक्तो मामेवं परिसंस्मरेत् । पात्रहस्ते प्रदातव्यं स्वल्पमेव नृपोत्तम॥१२६॥
एवंविधस्य दानस्य विधियुक्तस्य यत्फलम् । अनन्तं तदवाप्नोति मत्प्रासादात्सुखी भवेत् ॥१२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

वर्ण के भी ब्राह्मण को दान न दे ॥११५-११६॥ जिसके नेत्र केकड़े के समान हो, जो नील वर्ण का हो, जिसके दाँत श्याम वर्ण के हो, जिसके काले दाँत हो तथा जिसके पीले दाँत हो ऐसे भी ब्राह्मण को दान न दे । गौ के दाँत के समान चौड़े दाँत वाले, काले दाँत वाले, बर्बर तथा अत्यन्त दोषी ब्राह्मण को दान न दे । हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, कोढ़ी तथा काले नख वाले को भी दान न दे ॥११७-११८॥ दुश्चर्म वाले और खल्वाट (जिसकी खोपड़े के वाल उड़ गये हो) ब्राह्मण को दान न दे । जिस ब्राह्मण की पत्नी सदा अन्याय युक्त कार्य करती हो वह ब्राह्मण यदि ब्रह्मा के समान हो तो भी उसे दान न दे । स्त्री के वश में रहने वाले तथा वेश्यागामी को दान न दे ॥११९-१२०॥ हे राजन् ! रोगी तथा मरनी में भोजन करने वाले ब्राह्मण को भी दान न दे । अत्यन्त अभिमानी तथा शठ को भी दान न दे ॥१२१॥ वेदों तथा शास्त्रों को जानने वाले किन्तु सदाचार विहीन को श्राद्ध मे भी दान न दे ॥१२२-१२३॥ अव मैं सफल तथा पुण्यप्रद दान को बतलाता हूँ । सुपुत्रों के लिए श्रद्धा उत्पन्न होने पर काल तीर्थ होता है । हे राजन् ! संसार में श्रद्धा के समान न तो कोई तीर्थ है और न तो श्रद्धा के समान कोई सुख है, श्रद्धा के समान कोई पुण्य भी नहीं है ॥१२४-१२५॥ श्रद्धापूर्वक इसी प्रकार से मेरा स्मरण करे तथा योग्य पात्र के हाथ में थोड़ा सभी दान दे ॥१२६॥ इस प्रकार के विधि पूर्वक दिए गए दान का मेरी कृपा के कारण अनन्त फल होता है॥१२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

चालीसवाँ अध्याय

वेन उवाच

नित्यदानफलं देव त्वत्तःपूर्वं मया श्रुतम्। नैमित्तिकस्य दानस्य दत्तस्यापि हि यत्फलम् ॥१॥
तत्फलं मे समाचक्ष्व त्वत्प्रसादात्प्रयत्नतः। शृण्वंस्तृप्तिं न गच्छामि श्रोतुं श्रद्धा प्रवर्तते ॥२॥

विष्णुरुवाच

नैमित्तिकं प्रवक्ष्यामि दानमेव नृपोत्तम। महापर्वणि सम्प्राप्ते येन दानानि श्रद्धया ॥३॥
सत्पात्रेभ्यःप्रदत्तानि तस्य पुण्यफलं शृणु। गजं रथं प्रदत्ते यो हाश्वंचापि नृपोत्तमः ॥४॥
स च भृत्यस्तु संयुक्तःपुण्यदेशे नृपोत्तमः। जायते हि महाराज मत्प्रसादात्र संशयः॥५॥
राजा भवति धर्मात्मा ज्ञानवान्बलवान्सुधीः। अजेयःसर्वभूतानां महातेजाःप्रजायते ॥६॥
महापर्वणि सम्प्राते भूमिदानं ददाति यः। गोदानं वा महाराज सर्वभोगपतिर्भवेत् ॥७॥
ब्राह्मणाय सुपुण्याय दानं दद्यात्प्रयत्नतः। महादानानि यो दद्यात्तीर्थे पर्वणि पात्रवित् ॥८॥
तेषांचिह्नं प्रवक्ष्यामि भूपति त्वं प्रजायते। तीर्थे पर्वणि सम्प्राप्ते गुप्तदानं ददाति यः ॥९॥
निधीनामाशु सम्प्राप्तिरक्षरापरिजायते। महापर्वणि सम्प्राप्ते तीर्थेषु ब्राह्मणाय च॥१०॥
सुचैलं च महादानं काञ्चनेन समन्वितम्। पुण्यफलं प्रवक्ष्यामि तस्य दानस्य भूपते ॥११॥
जायन्ते बहवःपुत्राःसुगुणा वेदपारगाः। आयुष्मन्तःप्रजावन्तो यशःपुण्यसमन्विताः ॥१२॥
विपुलाश्चैव जायन्ते स्फीता लक्ष्मीर्महामते। सौख्यं च लभतेपुण्यं धर्मवान्परिजायते ॥१३॥
महापर्वणिसम्प्राप्ते तीर्थे गत्वा प्रयत्नतः। कपिलां काञ्चनीं दद्याद्ब्राह्मणाय महात्मने॥१४॥

नित्य तथा नैमित्तिक दानों के फल का वर्णन

वेन ने कहा— हे देव ! मैं आपसे नित्य दान तथा नैमित्तिक दान को सुन चुका हूँ। उन दानों का जो फल होता है, उसे आप बतलायें उसको सुनने से तृप्ति हीं होती है और अधिक सुनने की श्रद्धा होती है ॥१-२॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे राजन् ! मैं नैमित्तिक दानों को बतला रहा हूँ। महापर्व के होने पर जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक सत्पात्रों को दान देता है। आप उसका फल सुनें। जो श्रेष्ठ राजा हाथी, घोड़ा, और रथ का दान करता है, हे राजन् ! वह मेरी कृपा से पवित्र देश में अपने भृत्यों के साथ श्रेष्ठ राजा होता है ॥३-५॥ वह राजा धर्मात्मा, बलवान्, सुखी सभी जीवों के लिए अजेय तथा महातेजस्वी होता है॥६॥ जो व्यक्ति महापर्व के अवसर पर भूमिदान करता है अथवा गोदान करता है वह हे महाराज ! समस्त भोगों का स्वामी होता है ॥७॥ अत्यन्त पवित्र ब्राह्मण को दान देना चाहिए जो पर्व के अवसर पर तीर्थ में जाकर महादानों को देते हैं, उनका यही लक्षण है कि वे पृथिवीपति होते हैं, जो पर्व के अवसर पर तीर्थ में गुप्त दान करता है ॥८-९॥ उसको शीघ्र हीं अक्षय निधियों की प्राप्ति होती है। जो महापर्व के अवसर पर तीर्थों में ब्राह्मण को सुवर्ण के साथ वस्त्रों का महादान देता है राजन् उसका पुण्यफल मैं बतलाता हूँ॥१०-११॥ उसके सुन्दर गुणवान् अनेक पुत्र होते हैं। वे वेदों में पारङ्गत होते हैं। वे आयुष्मान् तथा यश एवं पुण्य से युक्त होते हैं ॥१२॥ हे महामते ! वे अनेक पुत्र होते हैं और उन सबों की लक्ष्मी शुभ होती है। दानदाता सुख को प्राप्त करता है और धार्मिक होता है ॥१३॥ महापर्व के अवसर पर प्रयत्न

तस्यपुण्यं प्रवक्ष्यामि दानस्य च महामते। कपिलादो महाराज सर्वसौख्यान्प्रभुञ्जति ।।१५।।
यावद् ब्रह्मा प्रजीवेत्स तावत्तिष्ठति तत्र सः ।
महापर्वणि सम्प्राप्ते अलङ्कृत्य च गां तदा ।।१६।।
काञ्चनेनापि संयुक्तां वस्त्रालङ्कारभूषणैः । तस्य दानस्य राजेन्द्र फलभोगं वदाम्यहम् ।।१७।।
विपुला जायते लक्ष्मीर्दानभोगसमाकुला । सर्वविद्यापतिर्भूत्वा विष्णुभक्तो भवेत्किल ।।१८।।
विष्णुलोके वसेन्मर्त्यो यावत्तिष्ठति मेदिनी । तीर्थं गत्वा तु यो दद्याद्ब्राह्मणाय विभूषणम् ।।१९।।
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगानिन्द्रेण क्रीडतेसह । महापर्वणिसम्प्राप्ते वस्त्रं च द्विजपुङ्गवे।।२०।।
दत्त्वान्नं भूमिसंयुक्तं पात्रे श्रद्धासमन्वितः । मोदते स तु वैकुण्ठे विष्णुतुल्यपराक्रमः ।।२१।।
सवस्त्रंकाञ्चनं दत्त्वा द्विजाय परिशीलने। स्वेच्छया अग्निसदृशो वैकुण्ठे स वसेत्सुखी ।।२२।।
सुवर्णस्य सुकुम्भं च घृतेन परिपूरयेत् । पिधानं रौप्यंकर्तव्यं वस्त्रहारैरलङ्कृतम् ।।२३।।
पुष्पमालान्वितं कुर्याद्ब्रह्मसूत्रेण शोभितम् । प्रतिष्ठितं वेदमन्त्रैस्तं सम्पूज्य महामते।।२४।।
उपचारैपवित्रैश्च षोडशैःपरिपूजयेत् । स्वलङ्कृत्य ततोदद्याद्ब्राह्मणाय महात्मने ।।२५।।
षोडशैवततोगावःसवस्त्राः कांस्यदोहनाः । कुम्भयुक्ताश्चचत्वारो दक्षिणां च सकाञ्चनाम्।।२६।।
तथाद्वादशका गावो वस्त्रालङ्कारभूषणाः । पृथग्भूताय विप्राय दातव्या नात्रसंशयः ।।२७।।
एवमादीनि दानानि अन्यानि नृपनन्दन। तीर्थकालं सुसम्प्राप्य पात्रसम्पत्तिमेव च ।।२८।।

पूर्वक तीर्थ में जाकर सुवर्णालङ्कृत कपिला गौ का दान ब्राह्मण को देना चाहिए ।।१४।। हे महामते ! उस दान का पुण्य मैं बतलाता हूँ जो कपिला का दान करता है वह सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करता है।।१५।। जब तक ब्रह्माजी जीते हैं तब तक वह उनके लोक में निवास करता है । जो महापर्व के अवसर पर गौ को सुवर्ण, वस्त्र तथा अलङ्कारों से सजाकर दान करता है, हे राजेन्द्र ! उसके दान से प्राप्त होने वाले फल भोगों को मैं बतलाता हूँ ।।१६-१७।। दान और भोग से युक्त उसको विपुल मात्रा में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । वह सभी विद्याओं का स्वामी होकर भगवान् विष्णु का भक्त होता है ।।१८।। वह विष्णु लोक में तब तक रहता है जब तक पृथिवी रहती है । जो तीर्थ में जाकर ब्राह्मण को भूषण प्रदान करता है ।।१९।। वह बहुत अधिक भोगों को भोगकर इन्द्र के साथ क्रीड़ा करता है । महापर्व के अवसर पर जो ब्राह्मण श्रेष्ठ को वस्त्र प्रदान करता है ।।२०।। भूमि के साथ ब्राह्मण को श्रद्धा पूर्वक अन्नदान करके वह विष्णु के समान पराक्रम वाला होकर वैकुण्ठ में आनन्दानुभव करता है ।।२१।। विद्वान् ब्राह्मण को सुवर्ण तथा वस्त्र का दान देकर अग्नि के समान कान्ति वाला एवं सुखी हो जाता है और अपनी इच्छानुसार वैकुण्ठ लोक में निवास करता है ।।२२।। सुवर्ण के सुन्दर घड़े को घी से भरकर उसको चाँदी के ढक्कन से ढँक दे । फिर वस्त्र तथा हार से अलंकृत करके पुष्पमाला से अलंकृत करके ब्रह्मसूत (यज्ञोपवीत) से सुशोभित करे । उनके बाद उसकी प्रतिष्ठा वेद मन्त्रों से करके पूजा करे ।।२३-२४।। उसकी पवित्र उपचारों से षोडशोपचार पूजा करे । उसके बाद अच्छी तरह से अलंकृत करके उसे ब्राह्मण को दान दे दें ।।२५।। उसके बाद वस्त्रों के साथ सोलह गायों को कांस्य निर्मित दोहन पात्र के साथ चार कुम्भों से युक्त तथा सुवर्ण की दक्षिणा के साथ बाहर गायों को वस्त्रालङ्कारों तथा भूषणों से भूषित करके पृथक भूत ब्राह्मणों को देना चाहिए । हे नृपनन्दन ! तीर्थ काल के अवसर पर पात्र तथा सम्पत्ति को ।।२६-२८।। श्रद्धा पूर्वक दान देना

श्रद्धाभावेन दातव्यं बहुपुण्यकरं भवेत्। विष्णुमुद्दिश्य यद्दानं कामनापरिकल्पितम् ॥२९॥
तस्यदानस्य भावेन भावना परिभावितः। तादृक्फलं समश्नाति मानुषोनात्र संशयः ॥३०॥
आभ्युदयं प्रवक्ष्यामि यज्ञादिषु प्रवर्तते। तेन दानेन तस्यापि श्रद्धया च द्विजोत्तमा ॥३१॥
प्रज्ञावृद्धिं समाप्नेति न च दुखं प्रविन्दति। भोगान्भुनक्ति धर्मात्मा जीवमानस्तु साम्प्रतम् ॥३२॥

ऐन्द्रास्तु भक्ङ्के भोगान्सदाता दिव्यांगतिं गतः ।
स्वकुलं नयते स्वर्गं कल्पानां च सहस्त्रकम् ॥३३॥

एवमाभ्युदयं प्रोक्तमथान्यत्ते वदाम्यहम्। कायस्य च क्षयं ज्ञात्वा जरया परिपीडितः॥३४॥
दानं तेन प्रदातव्यमाशां कस्य न कारयेत्। मृते च मयि मे पुत्रा अन्येस्वजमबान्यवाः॥३५॥
कथमेते भविष्यन्ति मां विना सुहृदो मम। तेषां मोहात्प्रमुग्धो वै न ददाति सकिंचनः ॥३६॥
मृत्युं प्रयाति मोहात्मा रुदन्ति मित्रबान्धवाः। दुःखेनपीडिताःसर्वेमायामोहेनपीडिताः ॥३७॥

सङ्कल्पयन्ति दानानि मोक्षं वै चिन्तयन्ति च ।
तस्मिन्मृतेमहाराज मायामोहे गते सति ॥३८॥
विस्मरन्ति च दानानि लोभात्मानो दिशन्ति न ।
योऽसौ मृतो महाराज यमपथं सुदुःखितः ॥३९॥

तृषाक्षुधा समाक्रान्तो बहुदुःखैःप्रपीडितः। तस्माद्दानं प्रदातव्यं स्वयमेव न संशयः ॥४०॥
कस्य पुत्राश्च पौत्रश्च कस्य भार्यानृपोत्तम। संसारेनास्ति कःकस्य तस्माद्दानं प्रदीयते ॥४१॥
ज्ञानवता प्रदातव्यं स्वयमेव न संशयः। अन्नं पानं च ताम्बूलमुदकं काञ्चनं तथा॥४२॥

चाहिए। ऐसा करना बहुत पुण्यप्रद होता है। भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए जो दान कामना पूर्वक दिया जाता है उस दान की भावना से वह जैसा चाहता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है; इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२९-३०॥ यज्ञ आदि में किए जाने वाले आभ्युदय की श्रद्धा से हे द्विजोत्तम !॥३१॥ दाता प्रज्ञा और बुद्धि को प्राप्त करता है, वह कभी भी दुःखी नहीं होता है। जब तक वह जीवित रहता है, भोगों को प्राप्त करता है ॥३२॥ वह दाता दिव्य गति को प्राप्त करके ऐन्द्र भोगों को भोगता है। वह अपने वंश को हजार कल्पों तक के लिए स्वर्ग में पहुँचा देता है ॥३३॥ इस तरह से मैंने आभ्युदयिक दान को बतलाया अब दूसरे दानों को मैं बतलाता हूँ। बुढ़ापे से पीड़ित व्यक्ति के शरीर का क्षय होता है ॥३४॥ अतएव दान करते रहना चाहिए, किसी की भी आशा न करे। मनुष्य सोचता है कि मेरे मर जाने पर मेरे पुत्र तथा दूसरे स्वजन कैसे रहेंगे ?॥३५॥ मेरे बिना ये मेरे मित्र कैसे रहेंगे ? इसी प्रकार के मोह से अज्ञानी बना हुआ मनुष्य कुछ भी दान नहीं करता है ॥३६॥ जब मनुष्य मर जाता है तो उसके सुहृदजन रोते हैं। वे सब मायामोह से तथा दुःख से पीड़ित हो जाते हैं ॥३७॥ वे दोनों का सङ्कल्प करते हैं मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। हे महाराज ! उस मनुष्य के मर जाने पर मायामोह भी समाप्त हो जाता है। वे उस मृत व्यक्ति के लिए सङ्कल्पित दानों को भूला जाते हैं और लोभग्रस्त होकर मृत आत्मा को नहीं याद करते हैं। वह मरा व्यक्ति यममार्ग पर अत्यन्त कष्ट से जाता है ॥३८-३९॥ वह भूख और प्यास से व्याकुल रहता है और अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित होता है। अतएव अपने लिए स्वयंदान कर लेना चाहिए॥४०॥ पुत्र, पौत्र तथा पत्नी इनमें से कोई भी किसी का नहीं होता है। अतएव स्वयं दान करना चाहिए ॥४१॥

सुगां सवत्सां भूमिं च फलानि विविधानि च ।
जलपात्राण्यनेकानि सोदकानि नृपोत्तम ॥४३॥
वाहनानि विचित्राणि यानान्येव महामते । नानागन्धं सकर्पूरं पादयोर्वै सुखप्रदे ॥४४॥
उपानहौ प्रदातव्ये यदीच्छेद्विपुलं सुखम् । एतैर्दानैर्महाराज यममार्गं सुखेन वै ॥४५॥
प्रयाति मानवो राजन्यमदूतैरलङ्कृतम् ॥४६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकतालिसवाँ अध्याय

वेन उवाच

पुत्रो भार्या कथंतीर्थं पितामाता कथं वद। गुरुश्चैव कथंतीर्थं तन्मे विस्तरतो वद ॥१॥

श्रीविष्णुरुवाच

अस्तिवाराणसी रम्या गङ्गायुक्ता महापुरी। तस्यां वसति वैश्योहि कृकलो नामनामतः ॥२॥
तस्य भार्यामहासाध्वी पतिव्रतपरायणा। धर्माचारपरा नित्यं सा वै पतिपरायणा ॥३॥
सुकला नाम पुण्याङ्गी सुपुत्रा चारुमङ्गला। सत्यंवदा सदाशुद्धा प्रियाकारा पिप्रप्रिया ॥४॥
एवंगुणैःसमायुक्ता सुभगा चारुकारिणी। सवैश्य उत्तमो नानाधर्मज्ञो ज्ञानवान्गुणी ॥५॥

ज्ञानी व्यक्ति को स्वयं ही दान करना चाहिए । उसे अन्न, जल, ताम्बूल तथा सुवर्ण आदि का दान कर लेना चाहिए ॥४२॥ हे राजन् ! यम मार्ग में सुख चाहने वाले को बछड़े के साथ अच्छी गौ, भूमि, अनेक प्रकार के फल जल भरे अनेक प्रकार के जलपात्र अद्भुत प्रकार के वाहन, अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, पैरों के लिए सुखप्रद उपाहन (जूते) इन सबों का दान करना चाहिए । इन सबों का दान कर लेने से जीव सुखपूर्वक यममार्ग पर जाता है । यमदूत उसे अलंकृत करके ले जाते हैं ॥४३-४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४०।।

सुकला के पातिव्रत्य चरित्र का वर्णन

वेन ने कहा— आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें कि पुत्र, पत्नी, माता-पिता तथा गुरु कैसे तीर्थ हैं?॥१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** गङ्गा के तट पर अवस्थित वाराणसी नगरी है । उस नगरी में कृकल नाम के एक वैश्य रहते थे । उसकी पत्नी महासाध्वी, पतिव्रता, धर्माचरण करने वाली तथा अपने पति की भक्ता थी ॥२-३॥ उसका नाम सुकला था । वह मङ्गलामयी थी । उसके पुत्र अच्छे थे, वह सत्य बोलती थी, सदा शुद्ध रहती थी, उसका आकार प्रिय था, और अपने पति को प्रिय थी ॥४॥ ऐसे गुणों से युक्त वह मनोहर कार्यों को करने वाली थी । वह वैश्य उत्तम धर्मज्ञ ज्ञानवान् और गुणी था ॥५॥ वह सदा पुराणों

पुराणे श्रौतधर्मे च सदाश्रवणतत्परः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन बहुपुण्य प्रदायिकाम् ॥६॥
श्रद्धयानिर्गतो यात्रां तीर्थानां पुण्यमङ्गलाम् । ब्राह्मणानां प्रसङ्गेन सार्थवाहेन तेन च ॥७॥
प्रस्थितो धर्ममार्गं तु तमुवाच पतिव्रता । पतिस्नेहेन संमुग्धा भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

सुकलोवाच

अहं ते धर्मतः पत्नी सहपुण्यकरीप्रिय। पतिमार्गं प्रतीक्ष्याहं पतिदेवं यजाम्यहम् ॥९॥
कदानैव मयात्याज्यं सामीप्यं ते द्विजोत्तम। तवच्छायां समाश्रित्य करिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥१०॥
पतिव्रताख्यं पापघ्नं नारीणां गतिदायकम्। पुण्यस्त्री कथ्यते लोके या स्यात्पतिपरायणा॥११॥
युवतीनां पृथक्तीर्थं विनाभर्तुर्न शोभते। सुखदं नास्ति वै लोके स्वर्गमोक्षप्रदायकम्॥१२॥
सव्यंपादं च भर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम। वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत् ॥१३॥
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यंपरिजायते। प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः ॥१४॥
सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यमयःपतिः। मखानां यजनात्पुण्यं यद्वै भवति दीक्षिते॥१५॥
तत्फलं समवाप्रोति सेवया भतुरेव हि। गयादीनां सुतीर्थानां यात्रा कृत्वा हि यद्भवेत् ॥१६॥
तत्फलं समवाप्रोति भर्तुःशुश्रूषणादपि। समासेन प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतःशृणु ॥१७॥
नास्त्यायां हि पृथग्धर्मःपतिशुश्रूषणं विना। तस्मात्कान्त सहायन्ते कुर्वाणा सुखदायिनी॥१८॥
तवच्छायां समाश्रित्य आगमिष्यामि नान्यथा। रूपं शीलं गुणं भक्तिं समालोक्य वयस्तथा ॥१९॥
सौकुमार्यं विचार्यैवं कृकलःसपुनः पुनः । यद्येवं हि नयिष्यामि दुर्गमार्गं सुदुःखदम् ॥२०॥

तथा श्रौतधर्मों को सुनने के लिए उत्सुक रहता था । तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से अनेक प्रकार के पुण्यों को प्रदान करने वाली यात्रा में श्रद्धा पूर्वक तीर्थों के पुण्यमङ्गलमय तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ वह उस धर्ममार्ग पर चल पड़ा । पति के स्नेह से मोहित पतिव्रता ने अपने पति से कहा ॥६-८॥ **सुकला ने कहा—** मैं आपके साथ ही पुण्यों को करने वाली, आपकी धर्मपत्नी हूँ । अपने पति के मार्ग को देखकर मैं अपने पतिदेव की पूजा करती हूँ ॥९॥ हे द्विजोत्तम ! मुझे कभी भी आपका साथ नहीं छोड़ना चाहिए । आपकी ही छाया में बैठकर मैं उत्तम धर्म करूँगी ॥१०॥ पतिव्रत्य धर्म नारियों के पापों को विनष्ट करने वाला तथा सुन्दर गति प्रदान करने वाला धर्म है । जो पतिपरायणा स्त्री होती है, उसको पुण्यवती कहा गया है ॥११॥ स्त्रियों के लिए पति से भिन्न कोई दूसरा तीर्थ न तो लोक में सुखद होता है और न तो वह स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाला होता है ॥१२॥ पति का दायाँ पैर ही पत्नी के लिए प्रयाग कहा गया है । पति के बायें पैर को नारी के लिए पुष्कर तीर्थ मानना चाहिए ॥१३॥ पति के चरणोदक से स्नान करना पत्नी को प्रयाग और पुष्कर इन दोनों तीर्थों में स्नान करने का फल प्रदान करता है ॥१४॥ पति पत्नी के लिए सर्वतीर्थमय होता है । उसके लिए पति सर्वपुण्यमय होता है । दीक्षा ग्रहण करके यज्ञ करने का जो फल होता है, उस फल को पत्नी अपने पति की सेवा करके ही प्राप्त कर लेती है । गया आदि तीर्थों की यात्रा करने का जो फल होता है ॥१५-१६॥ उस फल की प्राप्ति पति के सेवा करने से भी हो जाती है । मैं संक्षेप में कहती हूँ उसे आप सुनें ॥१७॥ पति की सेवा से भिन्न नारियों का कोई भी धर्म नहीं है । अतएव हे कान्त ! आपकी सहायता करती हुयी सुख देने वाली ॥१८॥ मैं आपकी छाया का ही आश्रयण करके जाऊँगी । उसके रूप, शील, गुण तथा भक्ति अवस्था तथा सौकुमार्य का विचार करके कृकल सोचने लगे कि यदि मैं

रूपनाशो भवेच्चास्या:शीतातप विलोडनात्। पद्मगर्भ प्रतीकाशमस्याश्चाङ्गं प्रवर्णकम्॥२१॥
झञ्झावातेन शीतेन कृष्णवर्णं भविष्यति ।
पन्थाःकर्कश सुग्रावा पादौ चास्याः सुकोमलौ ॥२२॥
एष्यते वेदना तीव्रामथोगन्तु न च क्षमा। क्षुत्तृष्णाभि परीताङ्गी कीदृशीयं भविष्यति॥२३॥
वामाङ्गी मम च स्थानं सुखस्थानं वरानना। मम प्राणप्रियानित्यं नित्यंधर्मस्य चाश्रयः॥२४॥
नाशमेति यदा बाला मम नाशो भवेदिह। इयं ते जीविकानित्यमियं प्राणस्य चेश्वरी॥२५॥
न नयिष्ये वनं तीर्थमेकश्चैवाप्यहं व्रजे। चिन्तयित्वा क्षणं नूनं कृकलेन महात्मना॥२६॥
तस्य चित्तानुगोभावस्तयाज्ञाते नृपोत्तम। पुनरूचे महाभागाः भर्त्तारं प्रस्थितं तदा॥२७॥
अनघा नैव वै त्याज्या पुरुषैः शृणु सत्तम। मूलमेवं हि धर्मस्य पुरुषस्य महामते॥२८॥
एवंज्ञात्वा महाभाग मामेवं नयसाम्प्रतम्। श्रुत्वा सर्वं हि तेनापि प्रियाया भाषितंबहु॥२९॥
प्रहस्यैव बचो ब्रूते तामेवं कृकलःपुनः। नैवत्याज्या भवेद्भार्या प्राप्ताधर्मेण वै प्रिये॥३०॥
येन भार्यापरित्यक्ता सुनीता धर्मचारिणी। दशाङ्ग धर्मस्तेनापि परित्यक्तो वरानने॥३१॥
तस्मात्त्वामेव भद्रं ते नैव त्यक्ष्ये कदाप्रिये। एवमाभाष्य तां भार्यां सम्बोध्य चपुनःपुनः॥३२॥
तस्या अज्ञातमात्रेण ससार्थेन समंगतः। गते तस्मिन्महाभागे कृकले पुण्यकर्मणि॥३३॥
देवकर्म सुवेलाया काले पुण्ये शुभानना। नैवपश्यति भर्तारं कृकलं निजमन्दिरे॥३४॥
समुत्थाय त्वरायुक्ता रुदमाना सुदुःखिता। वयस्यान्पृच्छते भर्तुर्दुःखशोकाधिपीडिता॥३५॥
युष्माभिर्वा महाभागा दृष्टोऽसौ कृकलो मम ।
प्राणेश्वरो गतःक्वापि भवन्तो मम बान्धवाः ॥३६॥

इसके अपने साथ ले जाता हूँ तो फिर शीत तथा धूप को वर्दास्त करने के कारण इसके रस का नाश हो जायेगा। कमल के भीतरी भाग के समान इसका वर्ण झञ्झावात तथा शीत के कारण काला हो जायेगा। रास्ता कंकणों के कारण कर्कश है और इसके पैर अत्यन्त कोमल हैं॥१९-२२॥ उसके कारण इसको तीव्र वेदना होगी; यह जाने में समर्थ नहीं है। भूख और प्यास से व्याकुल अङ्गों वाली यह कैसे रहेगी॥२३॥ यह मेरी वामाङ्गी मेरे सुख का साधन है। यह सदा मेरी प्राणप्रिया और धर्म का आश्रय है॥२४॥ यह वाला मर गयी तो मैं भी मर जाऊँगा। यह मेरी नित्यजीविका है। यह मेरे प्राणों की स्वामिनी है॥२५॥ मैं इसे वन में और तीर्थ में नहीं ले जा सकता मैं अकेले ही जाऊँगा। इस तरह से महात्मा कृकल ने क्षणभर विचार किया॥२६॥ उनके चित्त के भावों को जानकर महाभागा सुकला ने अपने पति से कहा॥२७॥ हे श्रेष्ठ! आप मेरी बात सुनें पुरुषों को निर्दोष पत्नी का त्याग नहीं करना चाहिए। हे महामते! यही धर्म का मूल है॥२८॥ हे महाभाग! इस बात को जानकर आप मुझे अपने साथ ले चलें। उसकी बातों को सुनकर॥२९॥ कृकल ने जोर से हँसकर अपनी पत्नी से कहा— हे प्रिये! धर्मपत्नी को नहीं त्यागना चाहिए॥३०॥ जिसने सुनीता और धर्मचारिणी का परित्याग किया; उसने दश अङ्गों वाले धर्म का त्याग कर दिया॥३१॥ अतएव मै तुमको नहीं त्यागूँगा। इस तरह से पत्नी को बार-बार सम्बोधित करके॥३२॥ कृकल उसके बतलाये विना ही साथियों के साथ चले गये। पुण्यकर्मा महात्मा कृकल के चले जाने पर॥३३॥ देवकर्म की बेला आने पर सुकला ने मन्दिर में अपने पति को नहीं देखा॥३४॥ अत्यन्त दुःखी

यदि दृष्टो महाभागाःकृकलो मम साम्प्रतम् ।
भर्तारं पुण्यकर्तारं सर्वज्ञं सत्यपण्डितम् ॥३७॥
कथयन्तु महात्मानं यदि दृष्टो महामतिः। तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा तामूचुस्तेमहामतिम् ॥३८॥
धर्मयात्रा प्रसङ्गेन नाथस्ते कृकलःशुभे। तीर्थयात्रां चकारासौ कस्माच्छोचसि सुव्रते ॥३९॥
साधयित्वा महातीर्थं पुनरेष्यति शोभने। एवमाश्वासिता सा च पुरुषैराप्तकारिभिः ॥४०॥
पुनर्गेहं गताराजन्सुकला चारुभाषिणी। रुरोद करुणं दुःखं सुकलापति परायणा॥४१॥
यावदायाति मे भर्त्ता भूमौस्वप्स्यामि संस्तरे ।
घृतं तैलं न भोक्ष्येऽहं दधिक्षीरं तथैव च ॥४२॥
लवणं च परित्यक्तं तथाताम्बूलमेव च। मधुरं च तथाराजंस्त्यक्तं गुडादिकं तथा॥४३॥
एकाहारा निराहारा तावत्स्थास्ये न संशयः। यावच्चागमनं भर्तुःपुनरेव भविष्यति॥४४॥
एवंदुःखान्विता भूत्वा एकवेणी धरापुनः। एककञ्चुकसंवीता मलिना च बभूव सा॥४५॥
मलिनेनापि वस्त्रेण एकेनैव स्थितापुनः। हाहाकारं प्रमुञ्चन्तीनिःश्वसन्ती सुदुःखिता ॥४६॥
वियोगानलसन्दग्धा कृष्णाङ्गी मलधारिणी। एवंदुःखसमाचारा सुकृशाविह्वला तदा॥४७॥
रोदमाना दिवारात्रं निद्रां लेभे न वै निशि। क्षुधां नविन्दते राजन्दुःखेन विदलीकृता॥४८॥
अथसख्यःसमायाताःपप्रच्छुसुकलां तदा ॥४९॥

सख्य ऊचुः

सुकले चारुसर्वाङ्गि कस्माद्रोदिषि सम्प्रति। ततस्त्वं कारणं ब्रूहि दुःखस्यास्य वरानने॥५०॥

रोती हुयी उठकर दुःख तथा शोक से पीड़ित उसने मित्रों से पूछा ॥३५॥ हे महाभागों ! आपलोगों ने मेरे कृकल को देखा है क्या ? मेरे प्राणेश्वर कहीं चले गये । आपलोग मेरे बान्धव हैं ॥३६॥ महाभागों ! आपलोगों ने यदि मेरे पुण्यकर्त्ता, सर्वज्ञ तथा सत्यपण्डित महामति मेरे पति को देखा हो तो आपलोग मुझे बतलायें । उसकी बातों को सुनकर उनलोगों ने कृकल के विषय में वतलाया ॥३७-३८॥ कि तुम्हारे पति कृकल धर्मयात्रा में गये हैं । हे शुभे ! उन्होंने तीर्थ यात्रा की है तुम क्यों सोचती हो ॥३९॥ वे महातीर्थ करके पुनः आयेंगे । इस तरह से आप्त (प्रामाणिक) पुरुषों के द्वारा आश्वस्त होकर वह मनोहर बोलने वाली सुकला अपने घर गयी और पतिपरायण वह करुण कन्दन करती रही । उसने निश्चय किया कि जब तक उसके पति नहीं आते हैं तब तक मैं भूमि पर चटाई पर ही सोऊँगी । मैं तब तक घी, तेल, दधि और दुग्ध नहीं खाऊँगी ॥४०-४२॥ उसने नमक और ताम्बूल छोड़ दिया । हे राजन् ! उसने गुड़ आदि मिट्ठी चीजों को त्याग दिया ॥४३॥ वह सोचती थी कि मैं तब तक एक शाम भोजन करके अथवा निराहार रहूँगी । यह क्रम तब तक चलेगा तब तक मेरे पति नहीं आते हैं ॥४४॥ इस तरह से दुःखी होकर एक बेणी धारण करके एक ही चोली पहनी हुयी वह मलिन हो गयी ॥४५॥ मलिन एक ही वस्त्र धारण की हुयी वह बार-बार रोती थी और दुःखी होकर लम्बी श्वास लेती थी ॥४६॥ वियोग की अग्नि में सन्तप्त वह काले अङ्गों वाली हो गयी और उसके शरीर में मैल बैठ गया । इस तरह दुःखिनी वह दुबली हो गयी ॥४७॥ वह दिन-रात रोती थी उसे रात में नींद नहीं आती थी । हे राजन् ! दुःख के कारण उसको भूख नहीं लगती थी ॥४८॥ उसके बाद सखियाँ आयीं और सुकला से पूछीं ॥४९॥ **सखियों ने कहा**— हे सुन्दरि !

सुकलोवाच

स मां त्यक्त्वा गतो भर्ता धर्मार्थं धर्मतत्परः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन अटते मेदिनींततः ॥५१॥
मां त्यक्त्वा स गतः स्वामी निर्दोषां पापवर्जिताम् ।
अहं साध्वी समाचारा सदापुण्या पतिव्रता ॥५२॥

मां त्यक्त्वा सगतो भर्ता तीर्थसाधनतत्परः। तेनाहं दुःखिता सख्योवियोगेनाति पीडिता ॥५३॥
जीवनाशो वरं श्रेष्ठो वरं वै विषभक्षणम् । वरमग्निप्रवेशश्च वरं कायविनाशनम् ॥५४॥
नारीं प्रियांपरित्यज्य भर्ता याति सुनिष्ठरः। भर्तृत्यागो वरं नैव प्राणत्यागो वरं सखि ॥५५॥
वियोगं न समर्थाहं सहितुं नित्यदारुणम्। तेनाहं दुःखिता सख्यो वियोगेनापि नित्यशः ॥५६॥

सख्य ऊचुः

तीर्थयात्रां गतो भर्ता पुनरेष्यति ते पतिः । वृथा शोषयसे कायं वृथाशोकं करोषि वै ॥५७॥
वृथात्वं तप्यसे बाले वृथाभोगान्परित्यजेः। पिवस्व पानंभुङ्क्ष्व त्वं स्वप्रदत्तंहिपूर्वकम्॥५८॥

कस्यभर्ता सुताःकस्य कस्य स्वजनबान्यवाः ।
कःकस्य नास्ति संसारे सम्वन्धःकेन चैव हि ॥५९॥

भक्ष्यतेभुज्यतेबालेसंसारस्य हितत्फलम्। मृतेप्राणिनि कोऽश्नाति को हि पश्यति तत्फलम्॥
पीयते भुज्यते बाले एतत्संसारतःफलम् ॥६०॥

सुकलोवाच

भवतीभिःप्रयुक्तं यत्तन्नस्याद्वेदसंमतम् । या तु भर्तुःपृथग्भूता तिष्ठत्येका सदैव हि ॥६१॥

सुकले! इस समय तुम क्यों रोती हो ? हे वरानने ! तुम अपने इस दुःख का कारण बतलाओ ॥५०॥ **सुकला ने कहा—** मेरे धर्म परायण पति धर्म करने के लिए मुझे छोड़कर चले गये । तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में इस समय वे पृथिवी पर भ्रमण करते हैं ॥५१॥ मैं निर्दोष और पाप रहित हूँ, फिर भी मेरे स्वामी मुझे छोड़कर चले गये । मैं साध्वी का आचरण करती हूँ । मैं सदा पातिव्रत्य का पालन करती हूँ ॥५२॥ सखियों ! मैं उनके वियोग में अत्यन्त पीड़ित हूँ, तीर्थाटन करने वाले मेरे पतिदेव मुझको छोड़कर चले गये हैं ॥५३॥ विष खाकर मर जाना ठीक है । अग्नि में प्रवेश कर जाना भी श्रेष्ठ है तथा अपने शरीर को नष्ट कर देना भी ठीक है ॥५४॥ अत्यन्त निष्ठुर पति अपनी प्रिया पत्नी को छोड़कर चले जाते हैं तो मर जाना श्रेष्ठ है किन्तु पति के द्वारा त्याग ठीक नहीं है ॥५५॥ मैं अत्यन्त ! दुखद वियोग को सहने में समर्थ नहीं हूँ । इसीलिए सखियों ! मैं वियोग के कारण दुःखी हूँ ॥५६॥ **सखियों ने कहा—** तुम्हारे पति तीर्थयात्रा में गये हैं, वे फिर आयेंगे ही तुम व्यर्थ ही शरीर को सुखा रही हो और शोक करती हो ॥५७॥ हे बाले! तुम व्यर्थ ही सन्तप्त होती हो, व्यर्थ ही भोगों का परित्याग की हो । तुम पानी पियो और अपने पूर्वप्रदत्त भोगों का उपभोग करो ॥५८॥ बाले ! पति, पुत्र, स्वजन, बान्धव ये सब किसके होते हैं । संसार में कोई किसीका नहीं है ? और किसके साथ सम्बन्ध है ?॥५९॥ बाले हम जो भोगते हैं, जो खाते हैं; वह संसार का फल है । प्राणी के मर जाने पर कौन खाता है ? और कौन किये हुए के फल को देखता है ?। बाले! इन सारी चीजों को हम संसार काल तक ही खाते पीते हैं ॥६०॥ **सुकला ने कहा—** आपलोगों ने जो

पापभूता भवेन्नारी तां न मन्यन्ति सज्जनाः ।
भर्तुःसार्थसदा सख्यो दृष्टोवेदेषु सर्वदा ॥६२॥
सम्बन्धःपुण्यसंसर्गाज्जायते नात्रसंशयः। नारीणां च सदातीर्थं भर्ताशास्त्रेषु पठ्यते ॥६३॥
तमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः। मनसा पूजयेन्नित्यं भावसत्येन तत्परा ॥६४॥
भर्तुःपार्श्वमहातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि। तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्त्तयेत् ॥६५॥
यजते दानपुण्यैश्च तस्य दानस्य यत्फलम्। वाराणस्यांच गङ्गायां तत्फलं न च पुष्करे ॥६६॥
द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे। लभतेनैव सा नारी यजमाना सदाकिल ॥६७॥
तादृशं फलमेवं सा न प्राप्नोति कदा सखि ।
सुमुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम् ॥६८॥
वस्त्रालङ्कारसौभाग्यं रूपं तेजःफलं सदा। यशःकीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनी ॥६९॥
भर्तुःप्रसादात्सर्वं च लभते नात्रसंशयः। विद्यमाने यदाकान्ते अन्यं धर्मं करोति या ॥७०॥
निष्फलं जायते तस्याःपुंश्चाली परिकथ्यते। नारीणां यौवनं रूपमवतारं स्मृतं ध्रुवम् ॥७१॥
एकस्यापि हि भर्तुश्च तस्यार्थे भूमिमण्डले। सुपुत्रा सुयशानारी परिकथ्येत वै सदा ॥७२॥
तुष्टे भर्तरि संसारे दृश्या नारी न संशयः। पतिहीना भवेन्नारी भवेत्सा भूमिमण्डले ॥७३॥
कुतस्तस्याःसुखं रूपं यशःकीर्तिःसुता भुवि ।
सुदौर्भाग्यं महद्दुःखं संसारे परिभुज्यते ॥७४॥
पापभागा भवेत्सा च दुःखाचारा सदैव हि ।
तुष्टेभर्तरि तस्यास्तु तुष्टाःसर्वाश्च देवताः ॥७५॥

कहा है वह वेद सम्मत नहीं है। जो पत्नी पति से अलग होकर अकेले रहती है ॥६१॥ वह नारी पापिनी होती है, सज्जन उसका समादर नहीं करते हैं। सखियों! वेदों में सर्वत्र, सदा पति के साथ रहने के लिए कहा गया है ॥६२॥ निश्चित रूप से सम्वन्ध, पवित्र संसर्ग के कारण होता है। शास्त्रों में नारी के लिए उसका पति ही तीर्थ वतलाया गया है ॥६३॥ मैं अपनी वाणी, शरीर तथा कर्म से उनका ही आवाहन करती हूँ और मन से सत्य भावपूर्वक उनकी ही पूजा करती हूँ ॥६४॥ पति का दाहिना भाग सदा तीर्थ होता है। उस ओर वैठकर गृहस्थ नारी, यजन करती है तथा दान और पुण्य करती है। उस दान का जो फल होता है, उस फल की प्राप्ति न तो वाराणसी में गङ्गा में स्नान करने से होता है और न पुष्कर में होता है ॥६५-६६॥ द्वारका तथा अवन्ती में या केदार नाथ में भी उस फल की प्राप्ति नहीं होती है। नारी तो सदैव यजमान वनी रहती है ॥६७॥ सखि! वह उस प्रकार का फल कभी भी नहीं प्राप्त करती है। सुन्दरी नारी पति की कृपा से सुन्दर पुत्र, सौभाग्य स्नान, दान, भूषण, वस्त्र, अलङ्कार, रूप तथा तेज रूपी फल को यश, कीर्ति तथा गुणों को प्राप्त करती है। यदि कोई नारी पति के रहने पर दूसरा कोई धर्म करती है॥६८-७०॥ तो उसका वह धर्म व्यर्थ होता है तथा वह पुंश्चली कही जाती है। नारियों का यौवन रूपी अवतार भूमण्डल में केवल उसके पति के लिए होता है। पति के प्रसन्न रहने पर नारी संसार में सुपुत्रों तथा सुन्दर यशवाली कहलाती है। पृथिवी पर रहने वाली पतिविहीन नारी को सुख, रूप, यश, कीर्ति और पुत्र की प्राप्ति कहाँ से सम्भव है? वह संसार में अपने अत्यन्त दौर्भाग्य का भोग करती है ॥७१-७४॥ वह

तुष्टेभर्तरि तुष्यन्ति ऋषयो देवमानवाः। भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतःसह ॥७६॥
भर्तातीर्थश्च पुण्यश्च नारीणां नृपनन्दन। शृङ्गारं भूषणं रूपं वर्णं सौगन्ध्यमेव च॥७७॥
कृत्वा सा तिष्ठते नित्यं वर्जयित्वासुपर्वसु। शृङ्गारैर्भूषणैःसा तु शुशुभे सा यदा पति॥७८॥
पत्या विना भवत्येवं क्षीरं सर्पमुखे यथा। भर्तुरर्थे महाभागा सुव्रता चारुमङ्गला॥७९॥
गते भर्तरि या नारी शृङ्गारं कुरुते यदि। रूपंवर्णं च तत्सर्व शवरूपेण जायते॥८०॥
वदन्ति भूतले लोकाःपुंश्चली यं न संशयः। तस्माद्भर्तुर्वियुक्ता या नार्याःशृणुत भूतले ॥८१॥
इच्छन्त्या वै महासौख्यं भवितव्यं कदाचन। सुजायायाःपरोधर्मो भर्ता शास्त्रेषु गीयते॥८२॥
तस्माद्वैशाश्वतो धर्मो न त्याज्यो भार्यया किल।
एवंधर्मं विजानामि कथं भर्ता परित्यजेत् ॥८३॥
इत्यर्थे श्रूयते सख्य इतिहासःपुरातनः। सुदेवायाश्च चरितं सुपुण्यं पापनाशनम्॥८४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलचरित्रे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

केवल पापिनी होती है तथा दुःख भोगती है। पति के सन्तुष्ट होने पर उससे सभी देवता सन्तुष्ट होते हैं॥७५॥ पति के सन्तुष्ट होने पर उस ऋषिगण, देवता और मनुष्य भी सन्तुष्ट होते हैं। नारी का पति ही स्वामी, गुरु और देव समूह देवता है ॥७६॥ हे नृपनन्दन ! नारी के लिए उसका पति ही तीर्थ है, पुण्य है, शृङ्गार है, भूषण है, रूप है, वर्ण है तथा सौगन्ध है ॥७७॥ पति के रहने पर वह भूषणों से शृङ्गार बिना किसी पर्व के भी करके रहती है ॥७८॥ पति के बिना शृङ्गार उसी तरह होता है जिस तरह सर्प के मुँह में दूध हो। पति के लिए नारी सुन्दर व्रत वाली और मनोहर मङ्गलों वाली होती है ॥७९॥ पति के बाहर चले जाने पर जो नारी शृङ्गार करती है, उसका रूप तथा वर्ण शव के समान अस्पृश्य होता है॥८०॥ उसको संसार के लोग पुंश्चली कहते हैं। अतएव पृथिवी पर जो नारी पति से विहीन होकर नारी के महासुख की कामना करती है वह सम्भव नहीं है, शास्त्रों में पत्नी का सबसे बड़ा धर्म उसका पति कहा गया है॥८१-८२॥ अतएव पत्नी को शाश्वत धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। मैं इस धर्म को जानती हूँ अतएव पत्नी-पति को बिना कैसे रह सकती है ?॥८३॥ हे सखियों ! इस विषय में एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है ॥८४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के अन्तर्गत सुकला के चरित्र वर्णन नामक एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

बयालीसवाँ अध्याय

सख्य ऊचुः

सुदेवा का त्वया प्रोक्ता किमाचारा वदस्व नः ।
त्वया प्रोक्तं महाभागे वद नःसत्यमेव च ॥१॥

सुकलोवाच

अयोध्यायां महाराजःस आसीद्धर्मकोविदः । मनुपुत्रो महाभागःसर्वधर्मार्थतत्परः ॥२॥
इक्ष्वाकुर्नाम सर्वज्ञो देवब्राह्मण पूजकः । तस्य भार्या सदा पुण्या पतिव्रतपरायणा ॥३॥
तया सार्द्धं यजेद्यज्ञं तीर्थानि विविधानि च । वेदराजस्य वीरस्य काशीशस्य महात्मनः ॥४॥
सुदेवानाम वै कन्या सत्याचारपरायणा। उपयेमे महाराज इक्ष्वाकुस्तां महीपतिः ॥५॥
सुदेवां चारुसर्वाङ्गीं सत्यव्रत परायणाम् । तया सार्द्धं यजेद्यज्ञान्सुपुण्यान्पुण्यनायकः ॥६॥
स रेमे नृपशार्दूलो नित्यं च प्रियया तया। एकदा तु महाराजस्तया सार्द्धं वनं ययौ ॥७॥
गङ्गारण्यं समासाद्य मृगयां क्रीडते सदा। सिंहान्हत्वा वराहांश्च गजांश्च महिषांस्तथा ॥८॥
क्रीडमानस्य तस्याग्रे वराहश्च समागतः । बहुशूकरयूथेन पुत्रपौत्रैरलङ्कृतः ॥९॥
एका च शूकरी तस्य प्रियापार्श्वे प्रतिष्ठिता। दृष्ट्वा च राजराजेन्द्रं दुर्जयं मृगयारतम् ॥१०॥
पर्वताधारमाश्रित्य भार्यया सहशूकरः। तिष्ठत्येकःपरिवृतःपुत्रपौत्रादिभिस्तु सः ॥११॥
महाराज कृतं तेषां ज्ञात्वा तु कदनं महत् । तानुवाच सुतान्पौत्रान्भार्यां तां च सशूकरः ॥१२॥
कोशलाधिपतिर्वीरो मनुपुत्रो महाबलः । क्रीडते मृगयां कान्ते मृगान्संहरते बहुन् ॥१३॥

सुदेवा के चरित का वर्णन

सखियों ने कहा— तुमने जिसके बारे में कहा है, वह सुदेवा कौन है ? उसका आचार क्या है ? यह तुम बतलाओ । हे महाभागे ! तुम सत्य बतलाओ ॥१॥ **सुकला ने कहा—** अयोध्या में महाराज मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे । वे सभी धर्मों के ज्ञाता और धर्मार्थतत्पर थे ॥२॥ वे सर्वज्ञ तथा देवता और ब्राह्मणों के पूजक थे । उनकी पत्नी पातिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली थी । वे उसके साथ सदा यजन करते रहते थे और अनेक तीर्थों में जाते थे । उनकी पत्नी का नाम सुदेवा था । वह महात्मा काशिराज वेदराज की पुत्री थी । वह सत्याचार का पालन करती थी । महाराज इक्ष्वाकु ने उसके साथ विवाह किया ॥३-५॥ सुदेवा सर्वाङ्ग सुन्दरी थीं, वह सत्यव्रत का पालन करती थी । इक्ष्वाकु ने उसके साथ अनेक पुण्यप्रद यज्ञों को किया ॥६॥ वे नृपश्रेष्ठ उसके साथ रमण करते थे । एक बार वे सुदेवा के साथ वन में गये ॥७॥ वे गङ्गारण्य में जाकर आखेट करने लगे । सिंहो, वराहों, हाथियों तथा भैंसों को मारकर क्रीड़ा करते थे ॥८॥ क्रीडा करते हुए इक्ष्वाकु के सामने एक वराह आया । उसके साथ उसके पुत्र पौत्र आदि अनेक शूकरों का समूह था ॥९॥ उसके पार्श्व (बगल) में उसकी प्रिया शूकरी भी थी । मृगया करने वाले दुर्जय राजराजेन्द्र इक्ष्वाकु को देखकर ॥१०॥ वह शूकर उस पर्वत की तलहटी में अपनी प्रियतमा के साथ रहता था और उसके साथ उसके पुत्र-पौत्र आदि भी रहते थे । उन सबों को जानकर इक्ष्वाकु ने उन सबों का वध किया। शूकर ने अपनी पत्नी और पुत्रों से कहा ॥११-१२॥ हे प्रिये ! ये कोसल देश के राजा, वीर, महाबलवान्

स मां दृष्ट्वामहाराज एष्यते नात्र संशयः। अन्येषां लुब्धकानां मे नास्तिप्राणभयंध्रुवम् ॥१४॥
मम रूपं नृपो दृष्ट्वा क्षमां नैव करिष्यति। हर्षेण महताविष्टो बाणपाणिर्धनुर्धरः ॥१५॥
श्वभिर्युक्तो महातेजा लुब्धकैःपरिवारितः। प्रिये करिष्यते घातं ममाप्येवं न संशयः ॥१६॥

शूकर्युवाच

यदायदापश्यसि लुब्धकान्बहून्महावने कान्त समायुधान्बहून् ।
एतैस्तु पुत्रैर्ममपौत्रकैः समं दूरं नु भो यासि पलायमानः ॥१७॥
त्यक्त्वा सुधैर्यं बलपौरुषं महन्महाभयेनापि विषण्णचेतनः ।
दृष्ट्वा नृपेन्द्रं पुरुषोत्तमोत्तमं करोषि किं कान्त वदस्व कारणम् ॥१८॥
तस्यास्तु वाक्यं सनिशम्य कोल उवाच तां शूकरराज उत्तरम् ।
यदर्थं भीतोऽस्मि सुलुब्धकात्प्रिये दृष्ट्वा गतो दूर निशम्य शूकरान् ॥१९॥
सुलुब्धकाःपापकराःशठाःप्रिये कुर्वन्ति पापं गिरिदुर्गकन्दरे ।
सदैव दुष्टा बहुपापचिन्तका जाताश्च सर्वे परिपापिनां कुले ॥२०॥
तेषां हि हस्तान्मरणद् बिभेमि मृतोऽपि यास्यामि पुनश्च पापम् ।
दूरं गिरिं पर्वतकन्दरं च व्रजामि कान्ते अपमृत्युभीतः ॥२१॥
अयं हि पुण्यो नरनाथ आगतो विश्वाधिकःकेशवरूप भूपः ।
युद्धं करिष्ये समरे महात्मना सार्द्धं प्रिये पौरुषविक्रमेण ॥२२॥
जेष्यामि भूपं यदि स्वेन तेजसा भोक्ष्यामि कीर्तिं त्वतुलां पृथिव्याम् ।
तेनाहतो वीरवरेण सङ्गरे यास्यामि लोकं मधुसूदनस्य ॥२३॥
ममाङ्गभूतेन पलेन मेदसा तृप्तिं परां यास्यति भूमिनाथः ।
तृप्ता भविष्यन्ति सुलोकदेवता अस्मादयं चागतो वज्रपाणिः ॥२४॥

तथा मनु के पुत्र हैं ये मृगया करते हुए बहुत अधिक पशुओं को मार रहे हैं ॥१३॥ वे मुझको देखकर यहाँ अवश्य आयेंगे, इसमें कोई भी संशय नहीं है। मुझे दूसरे मांसलोभियों से कोई भी प्राण का भय नहीं है॥१४॥ मेरे रूप को देखकर राजा मुझे क्षमा नहीं करेंगे। हे प्रिये! वे कुत्तों और व्याधों को साथ लेकर मेरा वध अवश्य करेंगे ॥१५-१६॥ **शूकरी ने कहा—** हे कान्त! जब-जब आप महावज्र के समान आयुध वाले, बहुत से लुब्धकों को देखते हैं, तब-तब आप भागते हुए अपने इने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ दूर चले जाते हैं ॥१७॥ आप अपने धैर्य, बल और पौरुष का परित्याग करके इस महाभय के अवसर पर पुरुषों में उत्तम इस नृपेन्द्र को देखकर उदास क्यों नहीं हो रहे हैं। इसका कारण क्या है? बतलायें॥१८॥ उस शूकरी के वाक्य को सुनकर वह शूकरराज कहने लगा। हे प्रिये! मैं लुब्धकों को देखकर जिस कारण से शूकरों के साथ दूर चला जाता था, उसे सुने ॥१९॥ हे प्रिये! वे लुब्धक (व्याध) पापी तथा शठ होते हैं, दुर्गम पर्वत कन्दराओं में पाप करते हैं। पापियों के वंश में उत्पन्न हुए वे सब पापी सदा पाप की ही बात सोचते हैं। उन सबों के हाथ से मरने से मैं डरता हूँ क्योंकि उन सबों के हाथों मरकर मैं नरक में जाऊँगा। इसीलिए मैं अपमृत्यु के भय से पर्वत और उसकी कन्दराओं से दूर चला जाता हूँ ॥२०-२१॥ ये राजा पुण्यवान्, संसार से ऊपर ये केशव स्वरूप हैं और वे ही आये हैं। हे प्रिये! मैं इन महात्मा के

अस्यैव हस्तान्मरणं यदा भवेल्लाभश्च मे सुन्दरकीर्तिरुत्तमा ।
तस्माद्यशो भूमितले जगत्त्रये व्रजामि लोकं मधुसूदनस्य ॥२५॥
नैवंभीतोऽस्मि क्षुब्धोऽस्मि गतोऽहं गिरिसानुषु ।
पापद्भीतो गतःकान्ते धर्मं दृष्ट्वास्थितोह्यहम् ॥२६॥
न जाने पातकं पूर्वमन्यजन्मनि चार्जितम् । येनाहं शौकरीं योनिं गतोऽहं पापसञ्चयात् ॥२७॥
क्षालयिष्याम्यहं घोरं पूर्वपातक सञ्चयम्। वाणोदकैर्महाघोरैःसुतीक्ष्णैर्निशितैःशतैः ॥२८॥
पुत्रान्पौत्रान्वरांकन्यां कुटुम्बंवालवृद्धकम्। गिरिंगच्छगृहीत्वा तु मम मोहमिमं त्यज॥२९॥
ममस्नेहं परित्यज्य हरिरेष समागतः । अस्य हस्तात्प्रयास्यामि तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥३०॥
दैवानापि ममाद्यैव स्वर्गद्वारमनुत्तमम्। उद्घाटितकपाटं तु यास्यामि सुमहादिवम्॥३१॥

सुकलोवाच

तच्छुत्वा वचनं तस्य शूकरस्य महात्मनः । उवाच तत्प्रिया सख्यःसीदमानान्तरा तदा ॥३२॥

शूकर्युवाच

यस्मिन्यूथे भवान्स्वामी पुत्रपौत्रैरलङ्कृतः। मितैश्च भ्रातृभिश्चैव अन्यैःस्वजनवान्धवैः॥३३॥
त्वयैवालङ्कृतो यूथो भवता परिशोभते । त्वां विनायं महाभाग कीदृग्यूथो भविष्यति ॥३४॥
तथैव स्वबलेनापि गर्जमानाश्च शूकराः । विचरन्ति गिरौ कान्त तनया मम बालकाः ॥३५॥

साथ अपने पौरुष तथा पराक्रम से युद्ध करूँगा ॥२२॥ यदि मैं अपने तेज से राजा को जीत लेता हूँ तो पृथिवीं पर मै अतुलनीय कीर्ति का भोग करूँगा । यदि मैं उन वीरश्रेष्ठ के द्वारा मारा जाता हूँ तो भगवान् मधुसूदन के लोक में जाऊँगा ॥२३॥ मेरे शरीर के मांस और मेदा को खाकर पृथिवीपति अत्यन्त तृप्त होंगे। उससे सुन्दर लोकों के देवता भी तृप्त होंगे । इसीलिए ये राजा यहाँ आये हैं ॥२४॥ इस राजा के ही हाथ से यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो हे सुन्दरि ! मुझे उत्तम कीर्ति का लाभ होगा । उसके फलस्वरूप त्रैलोक्य में श्रेष्ठ मैं भगवान् मधुसूदन लोक में जाऊँगा ॥२५॥ इसीलिए मैं न तो डरता हूँ, न क्षुब्ध हूँ इस गिरिपर्वत शिखर पर मैं पाप से भयभीत होता था, धर्म को देखकर मैं यहाँ ठहरा हुआ हूँ ॥२६॥ मैं पूर्वजन्म में किए गये उस पाप को नहीं जानता हूँ जिसके कारण पाप समूह रूप मुझे यह शूकर का शरीर प्राप्त हुआ है ॥२७॥ मैं अपने उस घोर पाप समूह का अत्यन्त भयङ्कर, अत्यन्त तीक्ष्ण सैकड़ों बाणों के प्रहार रूप पानी से प्रक्षालन करूँगा ॥२८॥ तुम पुत्रों, पौत्रों तथा श्रेष्ठ कन्या तथा अपने कुटुम्ब को लेकर पर्वत पर चली जाओ और मेरे मोह को छोड़ दो ॥२९॥ मेरे स्नेह का परित्याग करके तुम जाओ, श्रीहरि आये हैं इस राजा रूप श्रीहरि के हाथों मरकर मैं भगवान् विष्णु के प्रख्यात परमपद में जाऊँगा ॥३०॥ भाग्यवशात् आज मेरे लिए स्वर्ग का द्वार खुल गया है, मै महान् द्युलोक में जाऊँगा ॥३१॥ **सुकला ने कहा—** उस शूकर के वचन को सुनकर दुख का अनुभव करती हुयी उसकी प्रिया शूकरी ने कहा ॥३२॥ **शूकरी ने कहा—** जिस यूथ (समूह) के पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, भाइयों तथा दूसरे स्वजन बान्धवों से अलकृत आप स्वामी हैं ॥३३॥ आपके ही द्वारा यह यूथ अलंकृत है । हे नाथ ! आपके विना यह यूथ कैसा लगेगा॥३४॥ हे कान्त ! आपके ही द्वारा मेरे पुत्र बालक शूकर गरजते हुए पर्वत पर विचरण करते हैं॥३५॥ आपके ही तेज से वे निर्भय होकर वे कन्दों तथा मूलों को दुर्गम वनों के कुञ्जों ग्रामों तथा नगरों

कन्दान्मूलान्सुभक्षन्ति निर्भयास्तव तेजसा। दुर्गेषु वनकुञ्जेषु ग्रामेषु नगरेषु च ॥३६॥
न कुर्वन्ति भयं तीव्रं सिंहानामिह पर्वते। मनुष्याणां महाबाहो पालितास्तव तेजसा॥३७॥
त्वया त्यक्ता अमी सर्वे बालका मम दारकाः ।
दीनाश्चैवाकुलाश्चैव भविष्यन्तिविचेतनाः ॥३८॥
नित्यमेवसुखं वर्त्म गत्वा पश्यन्ति बालकाः। पतिहीना यथानारी शोभते नैव शोभना ॥३९॥
अलङ्कृता यथादिव्यैरलङ्कारैःसकाञ्चनैः। परिच्छदैरत्नवस्त्रैःपितृमातृसहोदरैः ॥४०॥
श्वश्रूश्वशुरकैश्चान्यैःपतिहीना न भाति सा। चन्द्रहीना यथारात्रिःपुत्रहीनंयथा कुलम्॥४१॥
दीपहीनं यथागेहं नैवभाति कदाचन। त्वां विनाऽयं तथायूथो नैवशोभेत मानद ॥४२॥
आचारेण विना मर्त्यो ज्ञानहीनो यतिर्यथा। मन्त्रहीनो यथा राजा तथायं नैव शोभते ॥४३॥
कैवर्तेन विना नौर्वा सम्पूर्णा परिसागरे। न भात्येवं यथासार्थःसार्थवाहेन वै विना ॥४४॥
सेनाध्यक्षेण च विना यथासैन्यं न भाति च ।
त्वां विना वै तथा सैन्यं शूकराणां महामते ॥४५॥
दीनो भविष्यति तथा वेदहीनो यथाद्विजः। मयि भारं कुटुम्बस्य विनिवेश्य प्रगच्छसि ॥४६॥
मरणं सुलभो ज्ञात्वा का प्रतिज्ञा तवेदृशी। त्वां विनाहं न शक्नोमि धर्तुं प्राणान्प्रियेश्वर ॥४७॥
त्वयैव सहिता स्वर्गं भूमिंवाथ महामते। नरकंवापि भोक्ष्यामि सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥४८॥
त्वं वा पुत्रांस्तु पौत्रांस्तु गृहीत्वा यूथमुत्तमम्। आवां व्रजावयूथेश दुर्गमेवं सुकन्दरम्॥४९॥

में खाते पीते हैं ॥३६॥ वे इस पर्वत पर सिंहों को भी देखकर भयभीत नहीं होते हैं। हे महाबाहो! आप से पालित वे सब मनुष्यों से भी नहीं डरते हैं ॥३७॥ आप से परित्यक्त होकर ये मेरे पुत्र दीन और आकुल हो जायेंगे ।३८॥ सदैव सुखमय मार्ग पर चलते हुए आपके बिना ये उसीतरह हो जायेंगे जिस तरह सुन्दरी भी नारी पति के बिना सुशोभित नहीं होती है ॥३९॥ जिस तरह रत्नों और दिव्य सुवर्ण निर्मित अलङ्कारों, परिच्छदों (साजशय्या) पिता, माता तथा सहोदरों, सासु, श्वसुर तथा दूसरे बान्धवों से अलंकृत होने पर भी पति के बिना नारी सुशोभित नहीं होती है। जैसे चन्द्रा के बिना रात्रि नहीं शोभती है, पुत्र से रहित वंश नहीं शोभता है ॥४०-४१॥ दीपक (प्रकाश) के विना घर नहीं शोभता है, हे मानद! आपके बिना यह समूह नहीं शोभेगा ॥४२॥ जिस तरह सदाचार के बिना मनुष्य नहीं शोभता है, ज्ञान के बिना सन्यासी नहीं शोभता है, मन्त्र से रहित राजा नहीं शोभता है, उसी प्रकार आपके बिना यह समुदाय नहीं शोभता है॥४३॥ सागर में विद्यमान तथा भरी हुयी नौका जिस तरह खेने वाले कैवर्त (मल्लाह) के बिना नहीं शोभती है उसी तरह समूह को चलाने वाले स्वामी के बिना समूह नही शोभता है ॥४४॥ जिस तरह सेनाध्यक्ष के बिना सेना नहीं शोभती है उसी तरह आपके बिना यह शूकरों की सेना नहीं शोभती है ॥४५॥ वेद विहीन ब्राह्मण के समान यह समूह भी दीन हो जायेगा। मेरे ऊपर कुटुम्ब का भार सौंपकर आप जाना चाहते हैं ॥४६॥ मरण को सुलभ समझकर आपकी यह प्रतिज्ञा ठीक नहीं है। तुम्हारे बिना मैं अपने प्राणो को धारण नही कर सकती हूँ ॥४७॥ मैं सत्य कहती हूँ कि आपके ही साथ मैं स्वर्ग अथवा भूलोक अथवा नरक का भोग करूँगी ॥४८॥ हे यूथेश! हमदोनों पुत्रों तथा पौत्रो से युक्त इस उत्तम यूथ को लेकर कन्दरा रूपी दुर्ग मे चलते हैं ॥४९॥ जीवन का परित्याग करके जो आप अच्छा समझते हैं, इसमे कौन सा लाभ है ?

जीवितव्यं परित्यज्य मरणायाभिगम्यते। तत्र को दृश्यते लाभो मरणे वद साम्प्रतम् ॥५०॥

वाराह उवाच

वीराणां त्वं न जानासि सुधर्मं शृणु साम्प्रतम् ।
युद्धार्थिना हि वीरेण वीरं गत्वा प्रयाचितम् ॥५१॥

देहि मे योधनं सङ्ख्ये युद्धार्थ्यहं समागतः । परेणयाचितं युद्धं न ददाति यदा नरः ॥५२॥
कामाल्लोभाद्भयाद्वापि मोहाद्वा शृणुवल्लभे। कुम्भीपाके तु नरकेवसेद्युगसहस्रकम्॥५३॥
क्षत्रियाणां परोधर्मो युद्धं देयं न संशयः । तद्युद्धं दीयमानेन रणभूमिं गतेन वै ॥५४॥
निर्जितं तु परं तत्र यशःकीर्तिं प्रभुञ्जते । स वा हतो युध्यमानः पौरुषेणाति निर्भयः ॥५५॥
वीरलोकमवाप्नोति दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जते। यावद्वर्षसहस्राणां विंशत्येकां प्रिये शृणु ॥५६॥
वीरलोके वसेत्तावद्देवाचारैर्महीयते । मनुपुत्रःसमायातअयं वीरो न संशयः ॥५७॥
सङ्ग्रामं याचमानस्तु युद्धं देयं मया ध्रुवम्। युद्धातिथिःसमायातो विष्णुरूपःसनातनः ॥५८॥
सत्कारो युद्धरूपेण कर्तव्यश्च मया शुभे ॥५९॥

शूकर्युवाच

यदा युद्धं त्वया देयं राज्ञे चैव महात्मने। ततोऽयं पौरुषं कान्त पश्यामि तव कीदृशम् ॥६०॥
एवमुक्त्वा प्रियान्पुत्रान्समाहूय त्वरान्विता । उवाच पुत्रका यूयं शृणुध्वं वचनं मम ॥६१॥
युद्धातिथिःसमायातो विष्णुरूपःसनातनः। मया तत्र प्रगन्तव्यं यत्रायं हि गमिष्यति ॥६२॥
यावत्तिष्ठति वै नाथो भवतां प्रतिपालकः। यूयं गच्छत वै दूरं दुर्गं गिरिगुहामुखम् ॥६३॥

सुखं जीवत मे वत्सा वर्जयित्वा सुलुब्धकान् ।
मया तत्रैव गन्तव्यं यत्रैष हि गमिष्यति ॥६४॥

बतलाइये ॥५०॥ **वराह ने कहा**— सुनो ! तुम वीरों के सुधर्म को नहीं जानती हो । युद्ध करने की इच्छा वाले वीर ने दूसरे वीर के पास जाकर कहा ॥५१॥ तुम मेरे साथ युद्ध करो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए आया हूँ । दूसरे वीर के द्वारा युद्ध की याचना करने पर यदि मनुष्य, काम, लोभ अथवा भय के कारण युद्ध नहीं करता है तो वह हजार वर्ष तक कुम्भीपाक नामक नरक में निवास करता है ॥५२-५३॥ क्षत्रियों का सबसे बड़ा धर्म युद्ध करना है । रणभूमि में जाकर युद्ध करने वाला वीर यदि विजय प्राप्त करता है तो वह श्रेष्ठ यश और कीर्ति को प्राप्त करता है । यदि वह युद्ध करते हुए पौरुष प्रदर्शन पूर्वक मारा जाता है तो वह वीर लोक को प्राप्त करके दिव्य भोगों को इक्कीस हजार वर्ष तक प्राप्त करता है ॥५४-५६॥ जब तक वह वीरलोक में निवास करता है तब तक देवताओं के द्वारा वह पूजित होता है । मनु के पुत्र जो आये हैं वे वीर हैं ॥५७॥ वे युद्ध करना चाहते है अतएव मुझे उनके साथ युद्ध अवश्य करना चाहिए । यहाँ पर विष्णु स्वरूप युद्ध के अतिथि आये हैं ॥५८॥ अतएव प्रिये युद्ध के द्वारा मुझे उनका सत्कार अवश्य करना चाहिए ॥५९॥ **शूकरी ने कहा**— हे कान्त ! तुम उस राजा का युद्ध के द्वरा सत्कार करोगे तो मैं यह देखूँगी कि आपका पौरुष कैसा है ?॥६०॥ सुकला ने कहा— इस तरह से कहकर उसने शीघ्रता से अपने पुत्रों को बुलाकर कहा— पुत्रों तुमलोग मेरी बात सुनो ॥६१॥ विष्णुरूपी सनातन युद्ध का अतिथि आया हैं । अतएव मैं वही जा रही हूँ जहाँ ये जायेंगे ॥६२॥ जब तक तुमलोगों के स्वामी जीवित रहते हैं, उससे पहले ही पर्व के गुफा से निकल कर दूर चले जाना चाहिए ॥६३॥ हे बच्चों ! तुम लोग लुब्धकों से बचकर दीर्घकाल तक जीओ । मुझे तो ये जहाँ जायेंगे वहीं जाना चाहिए ॥६४॥ तुमलोगों के

भवतां श्रेष्ठोऽयंभ्राता यूथरक्षां करिष्यति। एते पितृव्यकाःसर्वे भवतां त्राण कारकाः ॥६५॥
दूरं प्रयात वै सर्वे मां विहाय सुपुत्रकाः ॥६६॥

पुत्रा ऊचुः

अयं हि पर्वतश्रेष्ठो बहुमूल फलोदकः । भयं तु कस्य वै नास्ति सुखं जीवनमस्ति वै॥६७॥
युवाभ्यां हि अकस्माद्वै इदमुक्तं भयङ्करम्। तन्नोहि कारणं मातवंद सत्यमिहैवहि ॥६८॥

शूकर्युवाच

अयं राजा महारौद्रः कालरूपः समागतः । क्रीडते मृगयालुब्धो मृगान्हत्वा बहून्वने॥६९॥
इक्ष्वाकुर्नाम दुर्धर्षो मनुपुत्रो महाबलः। संहरिष्यति कालोऽयं दूरं यात सुपुत्रकाः॥७०॥

पुत्रा ऊचुः

मातरं पितरं त्यक्त्वा यःप्रयाति स पापधीः ।
महारौद्रं सुघोरं तु नरकं प्रतिपद्यते ॥७१॥

मातुःपुण्यं पयःपीत्वा पुष्टो भवति निर्घृणः। मातरं पितरं त्यक्त्वा यः प्रयाति सुदुर्बलः ॥७२॥
पूयं नरकमेतीह कृमिदुर्गन्धि सङ्कुलम्। मातस्तस्मान्नयास्यामो गुरुंत्यक्त्वा इहैव च ॥७३॥
एवंविषादःसञ्जातस्तेषां धर्मार्थसंयुतः । व्यूहंकृत्वा स्थिताःसर्वे बलतेजःसमाकुलाः ॥७४॥
साहसोत्साहसम्पनाःपश्यन्ति नृपनन्दनम्। नदन्तः पौरुषैर्युक्ताःक्रीडमाना वने तदा॥७५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

यूथ की रक्षा तुमलोगों का जो बड़ा भाई है वही करेगा । तुम्हारे ये सभी पितृव्य (चाचा) तुमलोगों की रक्षा करने वाले होंगे ॥६५॥ अतएव बच्चों मुझको छोड़कर तुमलोग दूर भाग जाओ ॥६६॥ **पुत्रों ने कहा—** अनेक प्रकार के मूल, फल और जलों वाला यह पर्वत श्रेष्ठ है । यहाँ पर किसी प्रकार का भय नहीं है, यहाँ पर जीवन सुखमय है ॥६७॥ आपदोनों ने अकस्मात् इस भयङ्कर बात को सुनाया है । अतएव हे माँ! इसका तुम सत्य-सत्य कारण बतलाओ ॥६८॥ **शूकरी ने कहा—** यहाँ पर ये काल स्वरूप राजा आये हैं। ये अत्यन्त भयङ्कर हैं । ये वन में अनके मृगों को मारकर मृगया बिहार करते हैं । ये महाबलवान् तथा मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हैं । हे पुत्रों यह काल संहार करने वाला है । अतएव तुमलोग दूर चले जाओ ॥६९-७०॥ **पुत्रों ने कहा—** माता-पिता को छोड़कर जो चला जाता है वह पापी होता है और वह अत्यन्त भयङ्कर नरकों में जाता है ॥७१॥ वह निष्ठुर अपनी माता का पवित्र दुग्ध पीकर पुष्ट होता है । जो अत्यन्त दुर्बल माता-पिता को छोड़कर चला जाता है । वह उस पीब के नरक में जाता है जो क्रिमि तथा दुर्गन्धि से पूर्ण होता है । अतएव हे मातः ! अपने गुरुजनों को परित्याग करके हमलोग यहाँ से नहीं जा सकते हैं ॥७३॥ इस प्रकार से धर्म और अर्थ से युक्त वहाँ पर विषाद फैल गया । वे सब बल और तेज से सम्पन्न व्यूह (झुण्ड) बनाकर वहीं पड़े रहें ॥७४॥ उन सब अचानक उत्साह से सम्पन्न होकर राजा को देखते रहे और पौरुष से सम्पन्न वे उस वन में क्रीडा करते रहे ॥७५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित के बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४२॥

तैंतालिसवाँ अध्याय

सुकलोवाच

एवं ते शूकराःसर्वे युद्धाय समुपस्थिताः। पुरःस्थितस्य ते राज्ञो ह्यवतस्थुश्च लुब्धकाः॥१॥
महावराहो राजेन्द्र गिरिसानुं समाश्रितः। महता यूथभावेन व्यूहं कृत्वा प्रतिष्ठति॥२॥
कपिलःस्थूलपीनाङ्गो महादंष्ट्रो महामुखः। दुःसहःशूकरो राजन्गर्जते चातिभैरवम्॥३॥
तानपश्यन्महाराजःशालतालवनाश्रयान्। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मनुपुत्रःप्रतापवान्॥४॥
गृह्यतां शूरवाराहो विध्यतां बलदर्पितः। एवमाभाष्य तान्वीरो मनुपुत्रःप्रतापवान्॥५॥
अथ ते लुब्धकाःसर्वे मृगया मदमोहिताः। संनद्धा दंशिताःसर्वे श्वभिःसार्द्धं प्रजग्मिरे॥६॥
हर्षेण महताविष्टो राजराजो महाबलः। अश्वारूढःसुसैन्येन चतुरङ्गेण संयुतः॥७॥
गङ्गातीरं समायातो मेरौ गिरिवरोत्तमे। रत्नधातु समाकीर्णे नानावृक्षैरलङ्कृते॥८॥

सुकलोवाच

योबलधाममरीचिचयकरनिकरमयप्रोत्तुङ्गोऽत्युच्चं।
गगनमेवसम्प्राप्तो नानानगाचरितशोभोगिरिराजोभाति॥९॥
योजनबहलविमलगङ्गाप्रवाहसमुच्चरत्तीरवीचीतरङ्गभङ्गै।
र्मुक्ताफलसदृशौर्निर्मलाम्बुकणैःसर्वत्रप्रक्षालितधवलतलशिलातलो गिरीन्द्रःसुश्रिया युक्तः॥१०॥

सुमेरु पर्वत पर मनुपुत्र के सैनिकों के साथ शूकर के युद्ध का वर्णन

सुकला ने कहा— इस प्रकार से वे सभी शूकर युद्ध करने के लिए तैयार थे। सामने विद्यमान राजा के साथ उनके लुब्धक विद्यमान थे॥१॥ हे राजेन्द्र! वह महावराह पर्वत के शिखर पर था। वह बहुत बड़ा यूथ बनाकर व्यूह भाव से विद्यमान था॥२॥ वह कपिल वर्ण वाला था। उसके अङ्ग मोटे थे। उसका मुख बड़ा था और दाँत बड़े थे। हे राजन्! दुःसह शूकर भयङ्कर गर्जना करता था॥३॥ महाराज इक्ष्वाकु ने शाल ताल वन में स्थित उन सबों को देखा। उन सबों के उस बात को सुनकर प्रतापी मनुपुत्र ने कहा— इस वीर वराह को पकड़ लो इसे बल से दृप्त बने हुए को छेद डालो। इस तरह से सैनिकों को कहकर प्रातापी मनुपुत्र॥४-५॥ उसके बाद सभी लुब्धक आखेट के मद से मोहित होकर तथा तैयार होकर कुत्तों के साथ प्रस्थान किए॥६॥ अत्यन्त हर्ष से युक्त राजराज इक्ष्वाकु घोड़े पर चढ़कर चतुरङ्गिणी सेना के साथ॥७॥ उत्तम सुमेरु गिरि पर गङ्गा के तट पर आये। वह सुमेरु पर्वत रत्नों और धातुओं से भरा पड़ा था तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से वह अलंकृत था॥८॥ **सुकला ने कहा**— जो पर्वतराज बल के आश्रय स्वरूप तथा सूर्य के किरण समूह स्वरूप अत्यन्त ऊँचा था। वह अपनी ऊँचाई से आकाश को ही छू लिया था, वह अनेक पर्वतों की शोभा से सुशोभित होता था॥९॥ जिस पर्वतराज की योजना पर्यन्त स्वच्छ गङ्गा के प्रवाह से निकलती हुयी तट की लहरियों से टकराकर मोती के समान स्वच्छ जल कणों के द्वारा सर्वत्र प्रक्षालित श्वेत पर्वत शिला पट्ट सौन्दर्य से सम्पन्न थे॥१०॥ वह पर्वत देवता, चारणगण तथा किन्नरों से भरा था। गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, अप्सराओं के समूह, मुनिजनों, नागेन्द्रों (गजेन्द्रों) श्रीखण्डों, अनेक चन्दन वृक्षों, सरल, ताल, तमाल वृक्षों तथा श्रेष्ठ सिद्धि प्रदान करने वाले रुद्राक्षों, तथा कल्पवृक्षों

देवैश्चारणकिन्नरैः परिवृतो गन्धर्वविद्याधरैः सिद्धैरप्सरसांगणैर्मुनिजनैर्नागेन्द्रविद्याधरैः ।
श्रीखण्डैर्बहुचन्दनैस्ससरलैःशालैस्तमालैर्गिरी रुद्राक्षैर्वरसिद्धिदायकधनैःकल्पद्रुमैःशोभते ॥११॥
नानाधातु विचित्रो वै नानारत्न विचित्रितैः । विमानैःकाञ्चनैर्दण्डैःकलत्रैरुपशोभते ॥१२॥
नालिकेरवनैर्दिव्यैःपूगवृक्षैर्विराजते । दिव्यपुन्नाग बकुलैःकदली खण्डमण्डितैः ॥१३॥
पुष्पकैश्चम्पकैरद्रिःपाटलैःकेतकैस्तथा । नानावल्लीवितानैश्च पुष्पितैःपद्मकैस्तथा ॥१४॥
नानावर्णैःसुपुष्पैश्च नानावृक्षैरलङ्कृतः । दिव्यवृक्षैःसमाकीर्णःस्फाटिकस्य शिलातलैः ॥१५॥
योगि योगीन्द्रसंसिद्धैःकन्दरान्तर्निवासिभिः । निर्झरैश्चैव रम्यैश्च बहुप्रस्रवणैर्गिरिः ॥१६॥
नदीप्रवाह संहृष्टैःसङ्गमैरुपशोभते । ह्रदैश्च पल्वलैःकुण्डैर्निर्मलोदकधारिभिः ॥१७॥
गिरिराजो विभात्येकःसानुभिःसह संस्थितैः। शरभैश्चैवशार्दूलैर्मृगयूथैरलङ्कृतः ॥१८॥
महामत्तैश्चामात्तङ्गैर्महिषै रुरुभिःसदा । अनेकैर्दिव्यभावैश्च गिरिराजो विभाति सः ॥१९॥
अयोध्याधिपति बीर इक्ष्वाकुर्मनुनन्दनः। तया सुभार्यया युक्तश्चतुरङ्ग बलेन च॥२०॥
पुरतोलुब्धका यान्ति शूराःश्वानश्च शीघ्रगाः। यत्रास्ते शूकरःशूरो भार्यया सहितो बली ॥२१॥
बहुभिःशूकरैर्गुप्तो गुरुभिःशिशुभिस्ततः। मेरुभूमिं समाश्रित्य गङ्गातीरं समन्ततः ॥२२॥

सुकलोवाच

तामुवाच वराहस्तु सुप्रियां हर्षसंयुतः। प्रिये पश्यसमायातःकोशलाधिपतिर्बली ॥२३॥
मामुद्दिश्य महाप्राज्ञो मृगयां क्रीडते नृपः। युद्धमेव करिष्यामि सुरासुरप्रहर्षकम् ॥२४॥
अथ भूपो महातेजा बाणपाणिर्धनुर्धरः। सुदेवां सत्यधर्माङ्गीं तामुवाच प्रहर्षितः ॥२५॥

से सुशोभित होता था ॥११॥ वह अनेक प्रकार के धातुओं से अद्भुत बना हुआ तथा अनेक रत्नों से विचित्रित, सुवर्णमय दण्डों वाले विमानों तथा कलत्रों से सुशोभित था ॥१२॥ वह नारियल के दिव्य वनों तथा पूगीफलों से सुशोभित होता था । दिव्य पुन्नाग वृक्ष, बकुल तथा कदली स्तम्भों से सुशोभित पुष्पकों तथा चम्पकों से पाटल पुष्पों (गुलाब) तथा केतकी (केवड़ा) से सुशोभित था । अनेक प्रकार के लता वितानों तथा विकसित कमलों से ॥१३-१४॥ अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से वो पर्वत अलंकृत था । दिव्य वृक्षों तथा स्फटिक मणि के शिलापट्टों से भरा हुआ था ॥१५॥ कन्दराओं के भीतर रहने वाले, योगियों, योगीन्द्रों तथा सिद्धों द्वारा मनोहर झरनों तथा अनेक प्रकार के जल स्रोतों से, नदी के प्रवाह से संदृष्ट तथा सङ्गमों से वह पर्वत सुशोभित होता था । कुण्डों, छोटे जलाशयों, जो निर्मल जल से भरे थे; उन सबों से सुशोभित था ॥१६-१७॥ अपने शिखरों के साथ विद्यमान यह पर्वतराज एक प्रतीक होता था वह शरभ, शार्दूल तथा मृग समूह से अलंकृत था ॥१८॥ मदमत्त हाथियों, महिवों और रुरुओं तथा अनेक दिव्य भावों से गिरिराज सुशोभित होता था ॥१९॥ मनु के पुत्र अयोध्याधिपति इक्ष्वाकु अपने पत्नी सुदेवा और चतुरङ्गिणी सेना के साथ थे ॥२०॥ उनके आगे व्याधे और शीघ्र चलने वाले कुत्ते थे । जहाँ पर वह वीर शूकर अपनी शूकरी तथा अनेक शूकरों तथा बच्चों के साथ था, वह सुमेरु भूमि थी और गङ्गा का तट था ॥२१-२२॥ **सुकला ने कहा—** हर्षित होकर वराह ने शूकरी से कहा प्रिये ! देखों बलवान् कोसलाधिपति आ गये ॥२३॥ मुझको ही उदिष्ट करके वे आखेट क्रीड़ा करते हैं । मैं देवताओं तथा असुरों को प्रहर्षित करने वाला युद्ध करूँगा ॥२४॥ उसके बाद प्रहर्षित होकर सत्य धर्म का पालन

पश्यप्रिये महाकोलं गर्जमानं महाबलम् । परिवारसमायुक्तं दु:सहं मृगघातिभि: ॥२६॥
अद्यैवाहं हनिष्यामि सुबाणैर्निशितै:प्रिये । मामेव हि महाशूरो युद्धाय समुपाश्रयेत् ॥२७॥
एवमुक्त्वा प्रियो भार्यां लुब्धकान्वाक्यमब्रवीत् ।
यथाशूरो महाशूरा:प्रेषयध्वं हि शूकरम् ॥२८॥
अथ ते प्रेषिता:शूरा बलतेज:पराक्रमा: । गर्जमाना:प्रधावन्ति बलतेज:पराक्रमा: ॥२९॥
कोलंप्रति गता:सर्वे वायुवेगेन साम्प्रतम् । विध्यन्तिबाणजालैस्ते निशितैर्वनचारका ॥३०॥
नानाशस्त्रैरथास्त्रैश्च वाराहं वीररूपिणम् ॥३१॥

सुकलोवाच

पतन्ति बाणतोमरा विमुक्तलुब्धकै:शरा । घनागिरिंप्रवर्षिणो यथा तथा धरान्तरे ॥
हतो दृढप्रहारिभि:सनिर्जितस्ततस्तथा । शतैस्तुयूथपालक:सकोल:सङ्गरं गत: ॥३२॥
स्वपुत्र पौत्रबान्धवै:परांश्च संहरेत्स वै । पतन्ति ते स्वदंष्ट्या हताहवेऽय लुब्धका: ॥
पतन्ति पादहस्तका:स्थितस्यवेगभ्रामणै: । सलुब्धगर्जमेव तं वराहोऽपश्यदागतम् ॥३३॥
स्वतेजसा विनाशितं मुखाग्रदंष्ट्याहतम् । गत:स यत्र भूपति:स वाञ्छते न सङ्गरम् ॥३४॥
इक्ष्वाकुनाथं सुमहत्प्रसह्य सन्त्रास्य क्रुद्ध:सहि शूकरेश: ।
युद्धं वने वाञ्छति तेन सार्द्धमिक्ष्वाकुणा सङ्गरहर्षयुक्त: ॥३५॥
वाराह:पुनरेव युद्धकुशल:संवाञ्छते सङ्गरम् ।
तुण्डाग्रेणसुतीक्ष्णदन्त नखरै:क्रुद्धो धरां क्षोभयन् ॥
हुङ्करोच्चारगर्वात्प्रहरतिविमलं भूपतिं तं च राजन् ।
विष्णुपराक्रमं मनुसुतस्त्वानन्दरोमाञ्चित: ॥३६॥

करने वाली पत्नी सुदेवा से हाथ में धनुष धारण किए हुए महाराज इक्ष्वाकु कहे ॥२५॥ हे प्रिये ! गरजते हुए, महाबलवान् अपने परिवार के साथ विद्यमान दु:सह तथा मृगों को मारने वाले इस वराह को देखो॥२६॥ वह मेरे साथ ही युद्ध करने के लिए आया है । प्रिये ! इसको मैं अत्यन्त तीक्ष्ण वाणों से आज ही मारूँगा॥२७॥ इस तरह से अपनी पत्नी से कहकर लुब्धकों से वीरों के ही समान शूरवीर राजा ने कहा कि शूकर के पास शूरवीरों को भेजो ॥२८॥ उसके वाद तेज तथा पराक्रम से युक्त भेजे गये शूरवीर शूकर की ओर गरजते हुए दौड़े । वायु के समान वेग से गये हुए वे वनेचर तीक्ष्ण वाण समूह से उसे वेधने लगे ॥२९-३०॥ मूर्तिमान वीर स्वरूप उस शूकर को सव अनेक प्रकार के अस्त्रों से वेधने लगे ॥३१॥ **सुकला ने कहा—** लुब्धकों के द्वारा छोड़े गये वाण और तोमर उस शूकर पर उसी तरह गिरने लगे जिस तरह पर्वतों और पृथिवी पर मेघ वर्षा करते हैं । समराङ्गण में विद्यमान वह यूथपाल वराह कठोर प्रहार करने वालों के द्वारा जैसे जीत लिया गया ॥३२॥ वह भी अपने पुत्र, पौत्र तथा वान्धवों के द्वारा शत्रुओं का संहार करने लगा । उसके दाँतों से मारे गये लुब्धक गिर पड़े । अपने पैरों तथा हाथों को वेगपूर्वक घुमाने के कारण वे गिर रहे थे । उस वराह ने गर्जना करके आते हुए एक लुब्धक को देखा और उसको उसने अपने दाँतों के अग्रभाग से मार दिया इस तरह उसने उस लुब्धक को अपने तेज से विनष्ट कर दिया । और वह राजा के पास पहुँच गया । किन्तु राजा युद्ध करना नहीं चाहते थे । क्रुद्ध उस शूकरों के स्वामी ने इक्ष्वाकु

दृष्ट्वा शूकरपौरुषं थमतुलं मेने पतिर्दैवराड्
देवारिंमनसाविचिन्त्य सहसा वाराहरूपेण वै ।
सम्प्रेक्ष्यैव महावलं वहुतरं युक्तं त्वरेर्वारणम्
सैन्यं कोलविनाशनाय सहसा सङ्गृह्य सङ्गृह्यताम् ॥३७॥
प्रेषिताश्च वारणा रथाश्च वेगवत्तराः
सुबाणखड्ग धारिणो भृशुण्डिभिश्च मुद्गरैः ।
सपाशपाणि लुब्धकानदन्ति तत्र तत्पराः
निवारितो नतिष्ठते हयागजाश्च यद्गताः ॥३८॥
क्वचित्क्वचिन्नदृश्यते क्वचित्क्वचित्प्रदृश्यते ।
क्वचिद्भयंप्रदर्शयेत्क्वचिद्भयान्प्रमर्दयेत् ॥३९॥
मर्दयित्वा भटान्वीरान्वाराहो रणदुर्जयः । शब्दं चकार दुर्धर्षं क्रोधारुणविलोचनः ॥४०॥
कोसलाधिपतिर्वीरस्तं दृष्ट्वा रणदुर्जयम्। युध्यमानं महाकायं मुञ्चन्तं मेघवत्स्वनम् ॥४१॥
गर्जति समरं विचरति विलसति वीरान्स्वतेजसा धीरः ।
तडिदिव मुखेषु दंष्ट्रा तस्याविभात्युल्लसत्येव ॥४२॥
मनुपुत्रस्तथा दृष्ट्वा कोलं च निशितैःशरैः। प्रतिभिन्नमेकैकं शस्त्राहतं च वन्धुभिः॥४३॥
नरपतिरुवाचसैन्याःकिमिह न गृह्णन्तु ओजसा शूराः ।
युध्यध्वं तत्र निशितैर्वाणैस्तीक्ष्णैरनेनापि ॥४४॥

को अत्यधिक भयभीत कर दिया, वह उनके साथ युद्ध करना चाहता था । वह हर्षित था ॥३३-३५॥ फिर भी युद्ध करने में कुशल वह वाराह युद्ध करता हुआ मुख के अग्र भाग में विद्यमान अत्यन्त तीक्ष्ण दाँतों और नखों से पृथिवी को खोद रहा था । उसने गर्व पूर्वक गर्जना किया और उस राजा पर प्रहार किया क्योंकि वह जानता था कि ये विष्णु के समान पराक्रम वाले हैं । मनु पुत्र इक्ष्वाकु भी रोमाञ्चित हो गये॥३६॥ यम के समान पराक्रम वाले उस शूकर को देखकर, राजा ने उसे देवराज के समान माना । वे उसको मन से वाराह रूप में विद्यमान् देवशत्रु (असुर) माने । उसे महाबलवान् देखकर राजा ने उस वाराह को मारने के लिए हाथियों की सेना को शीघ्रता से भेजा और राजा ने कहा इसे पकड़ लो ॥३७॥ राजा के द्वारा भेजे गये हाथी अत्यधिक वेग सम्पन्न रथ, बाण, खड्गधारी, भुशुण्डि तथा मुद्गर से सम्पन्न थे तथा पाश हाथ में लिए हुए लुब्धक युद्ध के लिए तैयार होकर गरजने लगे । किन्तु उसके पास जो घोड़े हाथी जाते थे वे रोकने पर भी नहीं रुक पाते थे ॥३८। वह शूकर कहीं पर दिखायी नहीं पड़ता था और कहीं पर दीखता था । वह कहीं पर भय प्रदर्शित करता था तो कहीं पर भय के कारण मर्दन करने लगता था॥३९॥ रण में दुर्जय वना हुआ वह योद्धा वीरों का मर्दन करके क्रोध से आँखें लाल करके भयङ्कर शब्द किया ॥४०॥ कोसलाधिपति ने युद्ध करने में दुर्जय महाकाय मेघ के समान ध्वनि करने वाले उस शूकर वीर को देखा ॥४१॥ वह समर में विलास पूर्वक गर्जना करता था । उसके मुख में विद्यमान दाँत विजली के समान चमक रहा था ॥४२॥ मनुपुत्र ने उस प्रकार के शूकर को देखकर अपने तीक्ष्ण वाणों से अपने वान्धवों से मारे गये उसे मारे ॥४३॥ राजा ने कहा— हे वीर सैनिकों ! इसको तुमलोग पकड़ क्यों नहीं

समाकर्ण्य ततो वाक्यं क्रुद्धस्यापि महात्मनः ।
ततस्तेसैनिकाःसर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ॥४५॥
अनेकैर्भटसाहस्रैर्वने तं समरेस्थितम्। दिक्षु सर्वासुसंहत्य विभिदुःशूकरं रणे ॥४६॥
बिद्धश्चक्रैश्चित्तदा बाणजालैःसुयोधैश्च सङ्ग्रामभूमौ विशालैः ।
क्वचिच्चक्रघातैःक्वचिद्वज्रपातैर्हतंदुर्जयं सङ्गरे तं महान्तैः ॥४७॥
ततःपौरुषैक्रोधयुक्तःसकोलःसुविच्छिद्य पाशान्रणे प्रास्थितः सः ।
महाशूकरैःसार्द्धमेव प्रयातस्ततःशोणितस्यापि धाराभिषिक्तः ॥४८॥
करोति प्रहारं च तुण्डेन वीरहयानां द्विपानां च चिच्छेद वीरः ।
स्वदंष्ट्राग्रभागेन तीक्ष्णेन वीरान्पदातीन्हि सम्पातयेद्रोषभावैः ॥४९॥
जघानास्य शुण्डं गजस्यापि रुष्टो भटान्हतान्पादनखैस्तुहृष्टः ॥५०॥
ततस्तेशूकराःसर्वे लुब्धकाश्च परस्परम्। युयुधुःसङ्गरं कृत्वा क्रोधारुणविलोचनाः॥५१॥
लुब्धकैश्च हताःकोलाःकोलैश्चापि सुलुब्धकाः ।
निहताःपतिता भूमौ क्षतजेनापि सारुणाः ॥५२॥
जीवं त्यक्त्वा हताःकोलैर्लुब्धकाःपतिता रणे ।
मृताश्चशूकरास्तत्रश्वानःप्राणांश्चतत्यजुः ॥५३॥
यत्रतत्र मृताभूमौ पतिता मृगघातकाः। बहवःशूकरा राज्ञा खड्गपातैर्निपातिताः॥५४॥
कतिनष्टा हताःकोला भीतादुर्गेषु संस्थिताः। कुञ्जेषु कन्दरान्तेषु गुहान्तेषु नृपोत्तम ॥५५॥
लुब्धकाश्च मृताःकेचिच्छिन्नादंष्ट्राग्रसूकरैः । प्राणांस्त्यक्त्वा गतास्वर्गं खण्डशोविदलीकृताः॥५६॥

लेते हो । तुमलोग इसके साथ तीक्ष्ण बाणों से युद्ध करो ॥४४॥ उसके बाद राजा के वचन को सुनकर सभी सैनिक युद्ध करने लगे ॥४५॥ अनेक हजार वीर उसको वन में घेरकर युद्ध में स्थित उस शूकर को सभी दिशाओं से शूकर का भेदन करने लगे ॥४६॥ उस समय उस सङ्ग्राम भूमि में वह चक्रों तथा विशाल बाणसमूह से विद्ध हो गया । बड़े-बड़े वीर कहीं चक्रों स तो कहीं पर वज्रपात से उस दुर्जय शूकर पर प्रहार कर रहे थे । उसके बाद उस वराह ने क्रोध पूर्वक युद्ध में पाशों को तोड़कर रण में प्रस्थान किया। वह बड़े-बड़े शूकरों के साथ प्रस्थान किया । उस समय वह खून की धारा से भिंग गया था ॥४७-४८॥ वह अपने थुथुन से प्रहार करके वीरों, घोड़ों और हाथियों को चीर दिया । रोष के कारण वह अपने थुथुन के प्रहार से पैदल सेना को गिरा दिया । उसने हाथी के सूंढ़ को प्रसन्नता पूर्वक चीर दिया और वीर योद्धाओं को मार दिया ॥४९-५०॥ उस समय सभी शूकर और लुब्धक परस्पर में आखें लाल करके युद्ध करने लगे॥५१॥ लुब्धकों ने शूकरों को मारा तथा शूकरों ने लुब्धकों को मार दिया जिसके कारण वह लहूलुहान बने हुए वे गिरकर मर गये ॥५२॥ शूकरों ने अपने जीवन का मोह त्याग करके जिन लुब्धों को मार दिया वे रण में गिर पड़े । वहाँ पर शूकरों तथा श्वानों ने भी अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥५३॥ जहाँ-तहाँ मृगघातक भी मरकर पृथिवी पर गिर पड़े । राजा ने बहुत से शूकरों को खड्ग के प्रहार से मार दिया॥५४॥ हे नृपोत्तम ! बहुत से मारे गये शूकर भयभीत होकर दुर्गों, कुञ्जों, कन्दराओं तथा गुफाओं में पड़े रहे॥५५॥ शूकरों के दाँत के अग्रभाग से कटे हुए लुब्धक मरकर स्वर्ग चले गये । उन सबों को शूकरों ने खण्ड-खण्ड

वागुराःपाशजलाश्च कुटकाःपञ्जरास्तथा। नाडयश्च पतिताभूमौ यततत्र समन्ततः ॥५७॥
एकोदयितया सार्थं वाराहःपरितिष्ठति। पौत्रकैःपञ्चसप्तभिर्युद्धार्थं बलदर्पितः ॥५८॥
तमुवाच तदाकान्तं शूकरं शूकरी पुनः। गच्छकान्त मयासार्द्धमेभिस्तु बालकैःसह ॥५९॥
प्राह प्रीतो वराहस्तां विवस्तां सुप्रियामिति। क्वगच्छामि प्रभग्नोऽहं स्थानं नास्ति महीतले॥६०॥
मयि नष्टे महाभागे कोलयूथं विनङ्क्ष्यति। द्वयोश्च सिंहयोर्मध्ये जलं पिबति शूकरः ॥६१॥
द्वयोःशूकरयोर्मध्ये सिंहो नैव पिबत्यपः। एवं शूकरजातिषु दृश्यते बलमुत्तमम् ॥६२॥
तदहं नाशयाम्येव यदाभग्नो व्रजाम्यहम्। जाने धर्मं महाभागे बहुश्रेयो विधायकम्॥६३॥
कस्माल्लोभाद्भयाद्वापि युध्यमानःप्रणश्यति। रणतीर्थंपरित्यज्य सत्यात्पापी न संशयः॥६४॥
निशितं शस्त्रसंव्यूहं दृष्ट्वा हर्षं प्रगच्छति। अवगाह्यामरींसिन्धुं तीर्थपारं प्रगच्छति ॥६५॥
स याति वैष्णवं लोकं पुरुषांश्च समुद्धरेत्। समायान्तं च तदहं कथं भग्नो व्रजामि वै ॥६६॥
योधनं शस्त्रसङ्कीर्णं प्रवीरानन्ददायकम्। दृष्ट्वा प्रयाति संहृष्टस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६७॥
पदे पदे महत्स्नानं भागीरथ्याः प्रजायते। रणाद्भग्नो गृहं याति यो लोभाच्च प्रिये शृणु ॥६८॥
मातृदोषं प्रकाशेत स्त्रीजातःपरिकथ्यते। अत्र यज्ञाश्च तीर्थाश्च अत्रदेवा महौजसः ॥६९॥
पश्यन्ति कौतुकं कान्ते मुनयःसिद्धचारणाः। त्रैलोक्यं वर्तते तत्र यत्र वीरप्रकाशनम्॥७०॥
समराद्भग्नं प्रपश्यन्ति सर्वे त्रैलोक्यवासिनः। शपन्ति निर्घृणं पापं प्रहसन्ति पुनःपुन ॥७१॥
दुर्गतिं दर्शयेत्तस्य धर्मराजो न संशयः। सम्मुखःसमरे युद्धे स्वशिरःशोणितं पिबेत्॥७२॥

कर दिया था ॥५६॥ बागुरा, पाश, जाल, कुटक, पिञ्जड़े तथा नाड्य भी पृथिवि पर यत्र-तत्र पड़े रहे॥५७॥ अकेला वह वाराह अपनी पत्नी के साथ तथा अपने पाञ्च सात पौत्रों के साथ बल के दर्प से दृप्त बना हुआ युद्ध करने के लिए डटा रहा ॥५८॥ उसके बाद शूकर से शूकरी ने कहा— हे कान्त ! मेरे तथा इन बालकों के साथ आप यहाँ से चलें ॥५९॥ प्रसन्न होकर वाराह ने उससे कहा— मैं टूट चुका हूँ पृथिवी पर मेरे लिए कोई स्थान नहीं है ॥६०॥ महाभागे ! मेरे मर जाने पर शूकरों का समूह विनष्ट हो जायेगा । शूकर दो सिंहों के बीच जल पीता है ॥६१॥ किन्तु दो शूकरों के बीच सिंह जल नहीं पीता है । शूकर जाति में इस प्रकार का उत्तम बल देखा जाता है ॥६२॥ यदि मैं भागकर यहाँ से चला जाता हूँ तो फिर उस यश को विनष्ट कर दूँगा । हे महाभागे ! बहुत अधिक कल्याणकारी धर्म को मैं जानता हूँ ॥६३॥ किस लोभ अथवा भय से लड़ता हुआ वीर नष्ट हो जाता है । युद्ध तीर्थ का परित्याग करने वाला पापी होता है॥६४॥ तीक्ष्ण शस्त्र समूह को देखकर जो हर्षित होता है । वह अमर नदी में स्नान करके तीर्थ के पार चला जाता है ॥६५॥ वह विष्णुलोक में चला जाता है और अपने पूर्वजों का उद्धार कर देता है । वह समय आ गया है, अतएव मैं कैसे जा सकता हूँ ॥६६॥ शस्त्र समूह से परिपूर्ण युद्ध वीरों को आनन्द प्रदान करने वाला है । उसको देखकर जो प्रसन्नता पूर्वक युद्ध करता है, उसका पुण्य फल सुनो ॥६७॥ उसके युद्ध करने के लिए जाते समय पग-पग पर भागीरथी में स्नान करने का फल प्राप्त होता है । हे प्रिये! जो युद्ध से भागकर अपने घर जाता है उसको स्त्री का जन्म होता है और अपनी माता के दोष का प्रकाशन करने का उसे पाप लगता है । अतएव यहाँ पर ही मेरे लिए यज्ञ, तथा महाओस्वी देवता हैं ॥६८-६९॥ हे कान्ते ! मुनिजन, सिद्ध तथा चारण इस कौतुक को देख रहे हैं । जहाँ पर वीर का प्रकाशन होता है वहीं पर त्रैलोक्य स्थित रहता है ॥७०॥ सभी त्रैलोक्य वासी समर से भागे हुए को देखते हैं । उस निष्ठुर को

अश्वमेध फलं भुङ्क्ते इन्द्रलोकं प्रगच्छति। यदा जयति सङ्ग्रामे शत्रूच्छूरो वरानने ॥७३॥
तदा प्रभुञ्जते लक्ष्मीं नानाभोगान्नसंशयः। यदा तत्र त्यजेत्प्राणान्सम्मुखःसन्निराश्रयः ॥७४॥
सगच्छेत्परमं स्थानं देवकन्यां प्रभुञ्जते। एवं धर्मं विजानामि कथंभग्नो व्रजाम्यहम् ॥७५॥
अनेन समरे युद्धं करिष्ये नात्र संशयः। मनोःपुत्रेण धीरेण राज्ञा इक्ष्वाकुणा सह ॥७६॥

डिम्भान्गृहीत्वा याहि त्वं सुखं जीव वरानने ।
तस्य श्रुत्वा वचःप्राह बद्धाहं तव बन्धनैः ॥७७॥

स्नेह मानरसाख्यैश्च रतिक्रीडनकैःप्रिय। पुरतस्ते सुतैःसार्द्धं प्राणांस्त्यक्ष्यामि मानद ॥७८॥
एवमेतौ सुसम्भाष्य परस्पर हितैषिणौ। युद्धाय निश्चितौ भूत्वा समालोकयतो रिपून् ॥७९॥
कोशलाधिपतिं वीरं तमिक्ष्वाकुं महामतिम् ॥८०॥

यथैव मेघःपरिगर्जते दिवि प्रावृट्सुकालेषु तडित्प्रकाशैः ।
तथैव सङ्गर्जति कान्तयासमं समाह्वयेद्राजवरं खुराग्रैः ॥८१॥
तं गर्जमानं ददृशे महात्मा वाराहमेकं पुरुषार्थयुक्तम् ।
ससार अश्वस्य जवेन युक्तःससम्मुखं तस्य नृवीरधीरः ॥८२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

शाप देते हैं और बार-बार हँसते हैं ॥७१॥ उसको धर्म राज दुर्गति देते हैं जो सामने के युद्ध में अपने शिर का खून पीता है ॥७२॥ वह अश्वमेध याग करने का फल भोगता है तथा इन्द्रलोक में जाता है। हे वरानने! जब वीर शत्रु पर विजय प्राप्त करता है ॥७३॥ उस समय वह अनेक भोगों से युक्त लक्ष्मी का भोग करता है। जब निराश्रय वह सामने अपने प्राणों का परित्याग करता है तो ॥७४॥ वह परम स्थान में जाकर देव कन्याओं का भोग करता है। मैं इस तरह के धर्म को जानता हूँ अतएव मैं भाग कर कैसे जाऊँ ?॥७५॥ मैं इस धैर्य सम्पन्न मनु के पुत्र राजा इक्ष्वाकु के साथ इस समर में युद्ध करूँगा ॥७६॥ हे वरानने ! तुम बालकों को लेकर जाओ और सुख पूर्वक जीओ। उसकी वाणी को सुनकर शूकरी ने कहा कि मैं तुम्हारे बन्धन से बँधी हूँ ॥७७॥ स्नेह, मान रस तथा रति क्रीडन के द्वारा बँधी हूँ। मैं तुम्हारे सामने ही इन बालकों के साथ अपने प्राणों का परित्याग करूँगी ॥७८॥ इस तरह वे दोनों परस्पर में हितैषी बातें करके युद्ध के लिए निश्चय करके शत्रुओं को देखने लगे ॥७९॥ कोसलाधिपति वीर इक्ष्वाकु को वे जैसे विद्युतम के प्रकाश के साथ आकाश में मेघ गरजता है वह उसी तरह अपनी कान्ता के साथ गरज रहा था और खुर के अग्रभाग से राजा को मानो बुला रहा था ॥८०-८१॥ उस गरजते हुए तथा पुरुषार्थ से युक्त अकेले वराह को महात्मा इक्ष्वाकु ने देखा और मनुष्य वीरों ने धैर्यवान् वे अश्व के वेग के साथ उसके सामने गये ॥८२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकलाचरित्र का तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४३॥

चौवालिसवाँ अध्याय

सुकलोवाच

स्वसैन्यं दुर्धरं दृष्ट्वा निर्जितं दुर्धरेण तत्। चुकोप भूपतिःक्रूरं दुःसहं शूकरं प्रति ॥१॥
धनुरादाय वेगेन बाणं कालानलोपमम्। तस्याभिमुखमेवासौ हयेनाभिससार सः ॥२॥

स यदा नृपतिं हयपृष्ठगतं वरपौरुषयुक्तममित्रहणम् ।
परिपश्यति शूकरयूथपतिःप्रगतोऽभिमुखं रणभूमितले ॥३॥
निशितेन शरेण हतो हि यदा नृपतेर्हयपादतले प्रगतः ।
तमिहैव विलङ्घ्यच वेगमनाःप्रखरेण जवेन च कोलवरः ॥४॥
व्यथितस्तुरगःसकिरिःकिटिना न हि याति क्षितौ स हि विद्धगतिः ।
तुरगःपतितो भुवि तुण्डहतो लघुस्यन्दनमेवगतो नृपतिः ॥५॥
स हि गर्जति शूकरजातिरवैरथसंस्थित कोशलपेनजवात् ।
गदया निहतःकिलभूपतिना रणमध्यगतःसहि यूथपतिः ॥६॥
परित्यज्य तनुं च स्वकांहि तदा गतएव हरेर्गृहमेव वरम् ॥७॥
कृत्वा हि युद्धं समरे हि तेन राज्ञा समं शूकरराजराजः ।
पपात भूमौ च हतो यदा तु ववर्षिरे देववराः सुपुष्पैः ॥८॥
तस्योर्ध्वगःपुष्पचयःसुजातःसन्तानकानामिव सौरभश्च ।
सकुङ्कुमैश्चन्दनवृष्टिमेव कुर्वन्ति देवाःपरितुष्यमाणाः ॥९॥
विमृश्यमानःसहितेन राज्ञा चतुर्भुजःसोऽपि बभूव राजन् ।
दिव्याम्बरो भूषणदिव्यरूपःस्वतेजसा भाति दिवाकरो यथा ॥१०॥

शूकर के साथ इक्ष्वाकु का युद्ध

सुकला ने कहा— अपनी दुर्धर्ष सेना को उस दुर्धर्ष शूकर के द्वारा परास्त देखकर राजा इक्ष्वाकु ने शूकर के प्रति भयङ्कर क्रोध किया ॥१॥ कालानल के समान भयङ्कर बाण तथा धनुष धारण करके वे घोड़े पर सवार होकर वेग से शूकर के पास गये ॥२॥ उस शूकर ने जब घोड़े पर सवार श्रेष्ठ पौरुष से युक्त शत्रुओं को मारने वाले राजा इक्ष्वाकु को देखा तो वह भी उस रणभूमि में आ गया ॥३॥ जब उस पर राजा ने तीक्ष्ण बाण से प्रहार किया तो वह वाराह श्रेष्ठ, अत्यन्त वेगे के साथ राजा के घोड़े के पैरों के नीचे चला गया और अत्यन्त वेग से वह उनको फाँद गया ॥४॥ उस शूकर के द्वारा राजा का घोड़ा घायल कर दिया गया, विद्धगति वह शूकर पृथिवी पर टिकता ही नहीं था। शूकर के तुण्ड के प्रहार से घोड़ा पृथिवी पर गिर पड़ा और राजा शीघ्रता से रथ पर बैठ गये ॥५॥ वह अपनी जाति की ही ध्वनि में गरज रहा था। उस समय रथ पर बैठे हुए कोसलाधिपति इक्ष्वाकु ने युद्ध करने वाले शूकर को अपनी गदा से मारा ॥६॥ उसके कारण वह अपने शरीर का परित्याग करके श्रीहरि के लोक में चला गया ॥७॥ राजा इक्ष्वाकु के साथ शूकर राजा युद्ध करके जब पृथिवी पर गिर पड़ा तो उस समय देवताओं ने उस पर फूलों की वर्षा की॥८॥ उसके ऊपर विद्यमान सन्तान वृक्ष के समान सुगन्धित पुष्पों की तथा कुङ्कुम तथा चन्दन की वृष्टि सन्तुष्ट हुए

दिव्येन यानेन दिवंगतो यदा सुपूज्यमानःसुरराज देवैः ।
गन्धर्वराजःस बभूव भूयःपूर्वं स्वकं कायमिहैव हित्वा ॥११॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पैंतालिसवाँ अध्याय

सुकलोवाच

अथ ते लुब्धकाःसर्वे शूकरींप्रति जग्मिरे। शूराश्च दारुणाःप्राप्ताःपाशहस्ताश्च भीषणाः॥१॥
चतुरश्च ततोडिम्भान्वृत्वा स्थित्वा च शूकरी। कुटुम्बेन समं कान्तं हतं दृष्ट्वा महाहवे॥२॥
भर्तुर्मे चिन्तितं प्राप्तमृषिदेवैश्च पूजितः । गतःस्वर्गं महात्मासौ वीर्येणानेन कर्मणा ॥३॥
अनेनापि पथा यास्ये स्वर्गं भर्त्ता सतिष्ठति। तथा सुनिश्चितं कृत्वा पुत्रान्प्रति विचिन्तितम् ॥४॥
यदा जीवन्ति मे बालाश्चत्वारो वंशधारकाः। भवत्यस्य सुवीरस्य कोलस्यापि महात्मनः॥५॥
केनोपायेन पुत्रान्वै रक्षायुक्तान्करोम्यहम्। इति चिन्ता परा भूत्वा दृष्ट्वा पर्वतसङ्कटम् ॥६॥
तत्रमार्गसुविस्तीर्णनिष्कासायप्रयास्यते । तया सुनिश्चितं कृत्वा पुत्रान्प्रतिविचिन्तितम्॥७॥
तानुवाच महाराज पुत्रान्प्रति सुमोहितान्। यावत्तिष्ठाम्यहं पुत्रास्तावद्गच्छत शीघ्रगाः ॥८॥

देवताओं ने की ॥९॥ राजा के द्वारा देखे जाते हुए वह चतुर्भुज रूप वाला हो गया । वह दिव्य वस्त्र, तथा भूषण धारण किए हुए था और वह अपने तेज के द्वारा सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था ॥१०॥ जब वह दिव्य विमान से स्वर्ग गया तो उसकी पूजा इन्द्र ने देवताओं के द्वारा करवायी । उसके बाद वह गन्धर्वों का राजा हो गया । उसने अपने पहले के शरीर को इस संसार में ही छोड़ दिया ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के सुकला चरित्रान्तर्गत चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

इक्ष्वाकु के सैनिकों के साथ शूकरी का युद्ध

उसके वाद वे सभी सैनिक शूकरी के पास गये । अपने हाथ में पाश लिए हुए भयङ्कर वीरों के साथ गये ॥१॥ उसके बाद अपने परिवार के समान चार बच्चों के साथ शूकरी स्थित थी । महायुद्ध में अपने पति को मारा गया देखकर ॥२॥ वह सोचती थी कि मेरे पति ने अपने अभिलक्षित अर्थ को प्राप्त कर लिया अपने पराक्रम पूर्ण कर्म के द्वारा ऋषियों और देवताओं से पूजित होकर वे महात्मा स्वर्ग चले गये॥३॥ मैं भी इसी मार्ग से स्वर्ग जाऊँगी । मेरे स्वामी मेरे इन्तजार करते हैं इस तरह से निश्चित करके वह अपने पुत्रों के विषय में विचार की ॥४॥ जब मेरे वंश को धारण करने वाले चार बच्चे जीवित हैं तो फिर मेरे पति का वंश तो रहेगा ही ॥५॥ अब मैं किस तरह से इन पुत्रों को सुरक्षित करूँ । इस तरह से सोचकर पर्वत की गुफा को देखकर ॥६॥ उससे बाहर निकलने का विस्तृत मार्ग उसने बनाया । उसने

तेषांमध्ये सुतो ज्येष्ठ:कथं यास्यामि मातरम् ।
संत्यज्य जीवलोभाच्च धिङ् मे मात:सुजीवितम् ॥९॥
पितृवैरं करिष्यामि साधयिष्ये रणे रिपून्। गृहीत्वा त्वं कनीयसोभ्रातॄंन्स्त्रीन्दुर्गकन्दरम्॥१०॥
पितरं मातरं त्यक्त्वा यो याति हि स पापधीः ।
नरकं च प्रयात्येव कृमिकोटिसमाकुलम् ॥११॥
तमुवाच सुदु:खार्ता त्वां त्यक्त्वाहं कथं सुत ।
संयास्यामि महापापा त्रयो गच्छन्तु मे सुता ॥१२॥
कनीयसस्त्रयस्त्वेव गतागिरि वनान्तरम्। तौ जग्मतू रणभुवं तेषामेव सुपश्यताम् ॥१३॥
तेजसा सुबलेनापि गर्जन्तौ च पुनः पुनः। अथ ते लुब्धका:शूरा:सम्प्राप्ता वातरंहसः ॥१४॥
तथातेनापि दुर्गेण त्रयस्तेप्रेषिता नृप। तिष्ठत:स्मापथंरूद्धा द्वावेतौ जननीसुतौ॥१५॥
लुब्धकाश्च तत:प्राप्ता:खड्गबाण धनुर्धरा:। प्रजघ्नुस्तोमरैस्तीक्ष्णैश्चक्रैश्चमुसलैस्ततः ॥१६॥
मातरं पृष्ठत:कृत्वा तनयोयुध्यतेसतैः। दंष्ट्र्या निहता केचित्केचित्तुण्डेन घातिता: ॥१७॥
सञ्जघान खुराग्रैश्च शूराश्च पतिता रणे। युयुधे शूकर:सङ्ख्ये दृष्टो राज्ञा महात्मना: ॥१८॥
पितु:सकाशाच्छूरोऽयमिति ज्ञात्वा ससम्मुखः ।
बाणपाणिर्महातेजा मनुसूनु:प्रतापवान् ॥१९॥
निशितेनापि बाणेन अर्द्धचन्द्रानुकारिणा। राज्ञा हत:पपातोर्व्यां विद्धोरस्को महात्मना॥२०॥
ममार सहसा भूमौ पपात स हि शूकरः। पुत्रमोहं परं प्राप्ता तस्योपरिगता स्वयम्॥२१॥

निश्चित करके अपने पुत्रों से कहा। हे पुत्रों ! मैं जब तक जीवित हूँ तब तक तुमलोग शीघ्रता से यहाँ से निकल जाओ ॥७-८॥ उनमें से ज्येष्ठ ने कहा कि माँ मेरे जीवन को धिक्कार है तुमको छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ ?॥९॥ मैं पिता के वैरियों से वैर साधूंगा। तुमको तथा छोटे भाइयों और उनकी स्त्रियों को लेकर जो कन्दरा रूपी वैर में ॥१०॥ माता-पिता को छोड़कर जाता है वह पापी होता है। वह करोड़ों कृमियों से भरे नरक कुण्ड में जाता है ॥११॥ दुःख से आर्त बनी हुयी शूकरी ने कहा— हे पुत्र ! तुमको छोड़कर महापापिनी मैं कैसे जा सकती हूँ ? किन्तु मेरे तीन पुत्र चले जायँ ॥१२॥ तीनों छोटे पर्वत के दूसरे वन में चले गये। उन सबों के सामने वे दोनों (शूकरी और उसका बड़ा पुत्र) युद्ध में चले गये॥१३॥ वे तेज और बल पूर्वक बार-बार गर्जना कर रहे थे। उसके बाद वायु के वेग से वहाँ पर लुब्धक आ गये॥१४॥ वे तीनों उसी मार्ग से भेज दिए गये थे। वे दोनों माता, पुत्र मार्ग को रोककर वहाँ ठहरे हुए थे ॥१५॥ लुब्धक, खड्ग, बाण और धनुष धारण करके वहाँ आ गये थे। उन सबों ने तीक्ष्ण, तोमर और चक्र से प्रहार किया ॥१६॥ अपनी माता को पीछे करके उसका वेटा युद्ध करता था। उसने कुछ को तो दाँत से मार दिया और कुछ को तुण्ड (थुथुन) से मार दिया ॥१७॥ उसने अपने खूरों के अग्रभाग से जिन वीरों को मार दिया वे वीर युद्ध में गिर पड़े। शूकर रण में युद्ध कर रहा था। राजा ने उसे देखा ॥१८॥ उन्होंने अनुभव किया कि यह अपने पिता के समान वीर है। इसके बाद महातेजस्वी मनुपुत्र अपने हाथ में बाण ले लिए ॥१९॥ उन्होंने अर्द्धचन्द्र अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से उसके हृदय में प्रहार किया और उससे विद्ध होकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२०॥ वह शूकर पृथिवी पर गिरकर मर गया। उसके ऊपर गिरकर शूकरी

तया च निहता:शूरास्तुण्डघातैर्महीतले । निपेतुलुब्धका:शूरा:कति नष्टा मृता नृप ॥२२॥
द्रावयन्ती महत्सैन्यं दंष्ट्वा शूकरीतत: । यथा कृत्वा समुद्भूता महाभयविधायिका ॥२३॥
तमुवाच ततो राज्ञी देवराज सुतोपमम् । अनया निहतं राजन्महत्सैन्यं तवैव हि ॥२४॥
कस्मादुपेक्षसे कान्त तन्मे त्वं कारणं वद । तामुवाचमहाराजो नाहं हन्मि इमां स्त्रियम् ॥२५॥
महादोषं प्रिये दृष्टं स्त्रीवधे दैवतै:किल । तस्मान्नघातयेन्नारीं प्रेषयेऽहं न कंचन ॥२६॥

अस्या वध निमित्तार्थे पापाद्बिभेमि सुन्दरि ।
एवमुक्त्वा तदा राजा विरराम महीपति: ॥२७॥

लुब्धको झर्झरोनाम ददृशे स तु शूकरीम् । कुर्वन्तीं कदनं तेषां दु:सहां सुभटैरपि ॥२८॥
आविव्याय सुवेगेन बाणेन निशितेन हि । संलग्नेन तु बाणेन शोणितेन परिप्लुता ॥२९॥

शोभमाना त्वरां प्राप्ता वीरश्रिया समाकुला ।
तुण्डेनापि हत:सङ्ख्ये झार्झर:स तया पुन: ॥३०॥

पतमानेन तेनापि झाझरिण तदाहता । खड्गेन निशितेनापि पपात बिदली कृता ॥३१॥
श्वसमाना रणेनापि मूर्च्छनाभिपरिप्लुता । दु:खेन महताविष्टा जीवमाना महीतले ॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय: ॥४५॥

को अत्यन्त पुत्र मोह हुआ ॥२१॥ उसने भी अपने तुण्ड से वीरों को मारा उसके कारण बहुत से लुब्धक वीर पृथिवी पर गिरकर मर गये ॥२२॥ महान सेना को अपने दाँत के द्वारा दौड़ाती हुयी कृत्या जैसी बन गयी । उसने महान् भय उत्पन्न कर दिया ॥२३॥ इसके बाद रानी ने इक्ष्वाकु से कहा— महाराज ! इसने तो आपकी बहुत बड़ी सेना को मार दिया ॥२४॥ हे नाथ ! मुझे बतलाइये कि आप इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? महाराज ने कहा— मैं इस स्त्री को नहीं मारना चाहता हूँ ॥२५॥ देवताओं ने स्त्री का वध करने का बहुत अधिक दोष बतलाया है । इसलिए मैं किसी नारी को नहीं मारता हूँ और न तो उसे मारने के लिए किसी को भेजता हूँ ॥२६॥ इसके वध से होने वाले पाप से मैं डरता हूँ । यह कहकर राजा चुप हो गये ॥२७॥ झर्झर नामक लुब्धक ने उस शूकरी को देखा । उसने देखा कि वह बहुत से वीरों को मार रही थी । वीर उससे पार नहीं पाते थे ॥२८॥ उसने अत्यन्त वेग सम्पन्न बाण के द्वारा उसे मारा । उस लगे हुए बाण से वह खून से लथपथ हो गयी ॥२९॥ अत्यन्त शीघ्रता करती हुयी वह अपनी वीर लक्ष्मी से सुशोभित हुयी । उसने भी अपने थुथुन से झर्झर को मारा ॥३०॥ गिरते हुए झर्झर ने भी अपने तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से उसको काट दिया ॥३१॥ वह युद्ध में मूर्छित होकर श्वास ले रही थी । वह अत्यन्त दु:खी थी किन्तु जी रही थी ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीये भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित के पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४५॥

छियालिसवाँ अध्याय

सुकलोवाच

श्वसन्तीं शूकरीं दृष्ट्वा पतितां पुत्रवत्सलाम्। सुदेवा कृपया विष्टा गत्वा तां दुःखितांप्रति॥१॥
अभिषिंच्य मुखं तस्याःशीतलेनोदकेन च। पुनःसर्वाङ्गमेवापि दुःखितां रणशालिनीम् ॥२॥
पुण्येन शीततोयेन सा उवाचाभिषिञ्चतीम्। उवाच मानुषीं वाचं सुस्वरं नृपतिप्रियाम् ॥३॥
सुखं भवतु ते देवि अभिषिक्ता त्वया यदि। सम्पर्कादर्शनात्तेऽद्य गतो मे पापसञ्चयः॥४॥
तदाकर्ण्य महद्वाक्यमद्भुताकारसंयुतम्। चित्रमेतन्मया दृष्टं कृतं तेऽनामयं वचः ॥५॥
पशुजातिमतीचेयं सौष्ठवं भाषते स्फुटम्। स्वरव्यञ्जसम्पन्नं संस्कृतमुत्तमं मम॥६॥
हर्षेण विस्मयेनापि कृत्वा साहसमुत्तमम्। तत्रस्था सा महाभागा तं पतिं वाक्यमब्रवीत् ॥७॥
पश्यराजन्नपूर्वेयं संस्कृतं भाषते महत् । पशुयोनिगताचेयं यथा वै मानुषो वदेत् ॥८॥
तदाकर्ण्य ततो राजा सर्वज्ञानवतांवरः । अद्भुतमद्भुताकारं यन्नदृष्टं श्रुतं मया॥९॥
तामुवाच ततोराजा सुदेवां सुप्रियां तदा । पृच्छ चैनां शुभांकान्ते का चेयं तु भविष्यति॥१०॥
श्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं सा पप्रच्छ च शूकरीम् ।
का भविष्यसि त्वं भद्रे चित्रं ते दृश्यते बहु ॥११॥
पशुयोनिगता त्वं वै भाषसे मानुषं वचः । सौष्ठवं ज्ञानसम्पन्नं वद मे पूर्वचेष्टितम्॥१२॥
भर्तुश्चापि महाराज भटस्यास्य महात्मनः। कोऽयं धर्मो महावीर्यो गतः स्वर्गं पराक्रमैः॥१३॥
आत्मनश्च स्वभर्तुश्च सर्वं पूर्वानुगं वद । एवमुक्त्वा महाभागा विरराम नृपप्रिया॥१४॥

श्वास लेती हुयी शूकरी के मुख का सुदेवा द्वारा सींचा जाना

सुकला ने कहा— गिरी हुयी पुत्रवत्सला शूकरी को श्वास लेती हुयी देखकर, उस दुःखिता के पास करुणाकान्त होकर सुदेवा गयीं ॥१॥ उस युद्ध करने वाली के मुख को उन्होंने शीतल जल से सींचा उसके बाद उसके शरीर को भी ॥२॥ पवित्र शीतल जल से सींचती हुयी राजपत्नी सुदेवा से उसने मनुष्य की वाणी में सुन्दर स्वर से कहा ॥३॥ हे देवि ! आपने मुझे सींचा है, आप सुखी हों । तुम्हारे दर्शन तथा सम्पर्क के कारण मेरा पाप विनष्ट हो गया ॥४॥ उसने कहा, आपने मेरी निर्दोष वाणी बना दी ॥५॥ वह पशुजाति की होकर सुन्दर संस्कृत शब्दों को बोली । स्वर एवं व्यञ्जन से युक्त मेरा संस्कृत उत्तम है ॥६॥ हर्ष तथा विस्मय पूर्वक उत्तम साहस करके वहाँ पर विद्यमान् वह सुदेवा अपने पति से कहा ॥७॥ हे राजन्! आप देखें यह पशुयोनि की भी होकर मनुष्य के समान संस्कृत बोलती है ॥८॥ उसको सुनकर सभी ज्ञानियों में श्रेष्ठ राजा इक्ष्वाकु ने कहा— यह तो मैंने अदृष्ट अश्रुत सुना ॥९॥ उसके बाद सुदेवा से राजा ने कहा कि तुम इससे पूछो कि यह कौन है ?॥१०॥ राजा की वाणी सुनकर सुदेवा ने शूकरी से पूछा, भद्रे ! तुम कौन हो ? मैं बहुत आश्चर्य देख रही हूँ ॥११॥ तुम पशुयोनि की होकर भी सौष्ठव और ज्ञान मय शब्दों से युक्त मनुष्य की वाणी में बोलती हो, तुम अपने पूर्वकर्म को बतलाओ ॥१२॥ तुम्हारे इस वीर पति का भी कौन सा धर्म है, जिससे वह अपने पराक्रम से स्वर्ग चला गया ॥१३॥ तुम अपने और अपने पति का पूर्वकर्म बतलाओ । इस तरह से कहकर राजा की पत्नी सुदेवा चुप हो गयी ॥१४॥ **शूकरी ने**

शूकर्युवाच

यदि पृच्छसि मां भद्रे ममास्य च महात्मनः ।
तत्सर्वं ते प्रवक्ष्यामि चरितं पूर्वचेष्टितम् ॥१५॥

अयमेष महाप्राज्ञो गन्धर्वो गीतपण्डितः । रङ्गविद्याधरो नाम सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥१६॥
मेरुं गिरिवरश्रेष्ठं चारुकन्दर निर्झरम् । तमाश्रित्य महातेजाःपुलस्त्यो मुनिसत्तमः ॥१७॥
तपश्चचार तेजस्वी निर्व्यलीकेन चेतसा। विद्याधरस्तत्रगतःस्वेच्छया स महाप्रभो ॥१८॥
तमाश्रित्य गिरिश्रेष्ठं गीतमभ्यसते तदा। स्वरताल समोपेतं सुस्वरं चारुहासिनि ॥१९॥

गीतं श्रुत्वा मुनिस्तस्य ध्यानाच्चलित मानसः ।
गायन्तं तमुवाचेदं गीतविद्याधरं प्रति ॥२०॥

भवद्गीतेन दिव्येन देवामुह्यन्ति नान्यथा। सुस्वरेण सुपुण्येन तालमानेन पण्डित ॥२१॥
लययुक्तेन भावेन मूर्च्छनासहितेन च । मे मनश्चलितं ध्यानाद्गीतेनानेन सुव्रत ॥२२॥
इदं स्थानं परित्यज्य अन्यस्थानं व्रजस्व तत् ॥२३॥

गीतविद्याधर उवाच

आत्मज्ञानसमं गीतमहमत्र प्रसाधये। दुखं ददे न कस्यापि सुखदो नृषु सर्वदा ॥२४॥
गीतेनानेन दिव्येन सर्वास्तुष्यन्ति देवताः। शम्भुश्चापि समानीतो गीतध्वनिरतो द्विज ॥२५॥
गीतं सर्वरसं प्रोक्तं गीतमानन्ददायकम्। शृङ्गाराद्यारसाःसर्वे गीतेनापि प्रतिष्ठिताः॥२६॥
शोभामायान्तिगीतेन वेदाश्चत्वार उत्तमाः। गीतेन देवताःसर्वास्तोषमायान्ति नान्यथा॥२७॥
तदेवं निन्दसे गीतं मामेवं परिचालयेः। अन्यायोऽयं महाभाग तवैव इह दृश्यते ॥२८॥

कहा— हे भद्रे ! यदि तुम मेरे और मेरे इस पति के विषय में पूछती हो तो मैं अपने पूर्वचेष्टित कर्म को बतला रही हूँ ॥१५॥ ये महाप्राज्ञ गीत के पण्डित गन्धर्व थे । इनका नाम रङ्गविद्याधर था । ये सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे ॥१६॥ सुमेरु नामक पर्वत श्रेष्ठ पर एक सुन्दर कन्दरा झरना से युक्त था । उसी कन्दरा में महर्षि पुलस्त्य शान्त मन से तपस्या करते थे । ये विद्याधर भी उसी पर्वत पर जाकर अपनी इच्छा के अनुसार स्वर एवं ताल के साथ सुन्दर स्वर में गीत का अभ्यास करते थे ॥१७-१९॥ उनके गीत को सुनकर मुनि का मन ध्यान से विचलित हो जाता था । उन्होंने गाने वाले गीतविद्याधर से कहा ॥२०॥ हे पण्डित ! ताल, मान से तथा सुन्दर स्वर से युक्त आपके गीत से देवता मोहित हो जाते हैं । क्योंकि आपका यह गीत लय, भाव तथा मूर्छना से युक्त है । हे सुव्रत ! इस गीत के कारण मेरा मन चंचल हो गया ॥२१-२२॥ अतएव इस स्थान को छोड़कर तुम दूसरे स्थान पर चले जाओ ॥२३॥ **गीतविद्याधर ने कहा—** मैं यहाँ पर आत्मज्ञान के समान गीत की साधना करता हूँ । मैं किसी को दुःख नहीं देता हूँ । यह मनुष्यों को सुख देने वाला है ॥२४॥ इस गीत से सभी देवता सन्तुष्ट होते हैं । हे द्विज ! शिवजी भी इस गीत ध्वनि में लीन हो गये ॥२५॥ गीत को सभी रसों वाला कहा गया है तथा गीत आनन्द प्रद होता है। शृङ्गार आदि रस गीत में ही प्रतिष्ठित हैं ॥२६॥ चारों वेद भी गीत से ही सुशोभित होते हैं । गीत से ही सभी देवता सन्तुष्ट होते हैं ।२७॥ इस प्रकार के गीत की आप निन्दा कर रहे हैं और मुझको भी यहाँ से हटा रहे हैं । हे महाभाग ! यह तो आप अन्याय करते हैं ॥२८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** तुमने सत्य

पुलस्त्य उवाच

सत्यमुक्तं त्वयाद्यैव गीतार्थं बहुपुण्यदम्। शृणुत्वं मामकं वाक्यं मानं त्यज महामते ॥२९॥
नाहं गीतं प्रकुत्सामि गीतं वन्दामि नान्यथा ।
विद्याश्चतुर्दशैवैता एकीभावेन भावदाः ॥३०॥
प्राणिनां सिद्धिमायान्ति मनसा निश्चलेन च। तपश्च तद्वन्मन्त्राश्चसुसिद्ध्यन्त्येक चिन्तया ॥३१॥
हृषीकाणां महावर्णश्चपलो मम संमतः। विषयेष्वेव सर्वेषु नयत्यात्मानमुच्चकैः ॥३२॥
चालयित्वा मनस्तस्माद्ध्यानादेव न संशयः। यत्रशब्दं न रूपं च युवतीनैव तिष्ठति ॥३३॥
मुनयस्तत्र गच्छन्ति तपः सिद्ध्यर्थमेव हि। अयं गीतःपवित्रस्ते बहुसौख्यप्रदायकः ॥३४॥
न पश्येम वयं वीर तिष्ठामो वनसंस्थिताः। अन्यत्स्थानं प्रयाहि त्वं नो वा वयं व्रजामहे ॥३५॥

गीतविद्याधर उवाच

इन्द्रियाणां बलं वर्ग जितं येन महात्मना। स जयी कथ्यते योगी स च वीरःस साधकः ॥३६॥
शब्दंश्रुत्वा वा दृष्ट्वा रूपमेवं महामते। चलते नैव यो ध्यानात्सधीरस्तपसाधकः ॥३७॥
भवांस्तु तेजसा हीन इन्द्रियैर्विजितो यतः। स्वर्गेऽपि नास्ति सामर्थ्यं मम गीतस्यघर्षणे ॥३८॥
वर्जयन्ति वनं सर्वे हीनवीर्या न संशयः। अयं साधारणो विप्र वनदेशो न संशयः ॥३९॥
देवानां सर्वजीवानां यथा मम तथातव। कथं गच्छाम्यहं त्यक्त्वा वनमेवमनुत्तमम् ॥४०॥
यूयं गच्छन्तु तिष्ठन्तु यद्भव्यं तत्तु नान्यथा। एवमाभाष्य तं विप्रं गीतविद्याधरस्तथा ॥४१॥
समाकर्ण्य ततस्तेन मुनिना तस्य उत्तरम्। चिन्तयामास मेधावी किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥४२॥

कहा है कि गीत बहुत पुण्य प्रदान करने वाला होता है। तुम अपना मान छोड़कर मेरी बात सुनो ॥२९॥ मैं गीत की निन्दा नहीं करता हूँ, मै सदा गीत की वन्दना करता हूँ। चौदहों विद्याएँ एकीभूत होकर गीत में भाव प्रदान करती हैं। वे निश्चल मन से ही जीवों को सिद्ध होती हैं। उसी तरह तपस्या और मन्त्र भी एकाग्र मन होने पर ही सिद्धिप्रद होते हैं ॥३०-३१॥ मैं मानता हूँ कि इन्द्रियों का समूह चंचल होता है। वह मनुष्य को विषयों की ओर ले जाता है ॥३२॥ वे ध्यान से मन को चंचल बना देते हैं। जहाँ पर शब्द, रूप अथवा युवती नहीं रहते हैं ॥३३॥ वहीं पर तप की सिद्धि के लिए मुनिजन जाते हैं। तुम्हरा यह गीत पवित्र है और अत्यधिक सुखद है ॥३४॥ हे वीर ! हमलोग किसी को देखते नहीं है, इसीलिए वन में रहते हैं। अतएव तुम किसी दूसरे स्थान में चले जाओ अथवा मैं अन्यत्र चला जाऊँ ॥३५॥ **गीतविद्याधर ने कहा**— जिस महात्मा ने इन्द्रियों के बल तथा समूह को जीत लिया है वही विजयी, योगी और वीर साधक होता है ॥३६॥ हे महामते ! जो शब्द को सुनकर अथवा रूप को देखकर ध्यान से विचिलित नहीं होता है वही धीर तथा तपस्या का साधक होता है ॥३७॥ आप तो तेज से रहित हैं क्योंकि आपको इन्द्रियों ने जीत लिया है मेरे गीत को प्रघर्षित करने की शक्ति स्वर्ग में भी नहीं है ॥३८॥ कमजोर लोग ही वन का त्याग करते हैं। हे प्रिये ! यह तो साधारण वन प्रदेश है ॥३९॥ इस तरह देवताओं का, सभी जीवों का, आपका और हमारा एक समान अधिकार है। इस वन को छोड़कर मैं ही क्यों जाऊँ॥४०॥ आप लोग ही चले जायँ अथवा रहें, जो मन हो सो करें। उस समय उस गीतविद्याधर ने महर्षि पुलस्त्य को इस प्रकार से कहा ॥४१॥ मुनि ने उसके उस उत्तर को सुनकर विचार किया कि क्या करने से अच्छा

क्षमां कृत्वा जगामाथ अन्यत्स्थानं द्विजोत्तमः ।
तपश्चचार धर्मात्मा योगासनगतःसदा ॥४३॥
कामंक्रोधं परित्यज्य मोहंलोभं तथैव च । सर्वेन्द्रियाणि संयम्य मनसा सममेव च ॥
एवं स्थितस्तदोयोगी पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ॥४४॥

सुकलोवाच

गते तस्मिन्महाभागे पुलस्त्ये मुनिपुङ्गवे। कालादिष्टेन तेनापि गीतविद्याधरेण च ॥४५॥
चिन्तितं सुचिरं कालं न दृष्टोऽयं भयान्मम। क्वगतस्तिष्ठते वापि कुरुते किं कथं च स॥४६॥
ज्ञात्वा पद्मात्मज सुतमेकान्तवनशालिनम्। गतो वराहरूपेण तस्याश्रममनुत्तमम् ॥४७॥
आसनस्थं महात्मानं तेजोज्वालासमाविलम्। दृष्ट्वा चकार वै क्षोभं तस्य विप्रस्य भामिनि॥४८॥
धर्षयेन्नियतं विप्रं तुण्डाग्रेण कुचेष्टया। पशुं ज्ञात्वा महाराज क्षमते तस्य दुष्कृतम् ॥४९॥
मूत्रयेत्पुरतःकृत्वा विष्ठां च कुरुते ततः। नृत्यते क्रीडते तत्र पततिप्रोच्चलेत्पुनः॥५०॥
पशुं ज्ञात्वा परित्यक्तो मुनिना तेन भूपते । एकदा तु तथाऽऽयाते तेन रूपेण वै पुनः ॥५१॥
अट्टाट्टाहासेन पुनर्हास्यमेवं कृतं तदा ।
रोदनं च कृतं तत्र गीतं गायति सुस्वरम् ॥५२॥
तथातमागतं विप्रो गीतविद्याधरं नृप। चेष्टितं तस्य वै दृष्ट्वा घोणीह्येष भवेन्नहि॥५३॥
ज्ञात्वा तस्य तु वृत्तान्तं मामेवं परिचालयेत्। पशुं ज्ञात्वा मया त्यक्तो दुष्ट एष सुनिर्घृणः ॥५४॥
एवंज्ञात्वा महात्मानं गन्धर्वाधममेव हि । चुकोप मुनिशार्दूलस्तं शशाप महामतिः ॥५५॥
यस्माच्छूकररूपेण मामेवं परिचालयेः । तस्माद्व्रज महापाप पापयोनिं तु शौकरीम्॥५६॥
शप्तस्तेनापि विप्रेण गतो देवं पुरन्दरम् । तमुवाच महात्मानं कम्पमानो वरानने ॥५७॥

होगा ?॥४२॥ उसके बाद उसे क्षमा करके वे अन्य स्थान पर चले गये और योगासन पर स्थित होकर तपस्या करने लगे ॥४३॥ मुनियों में श्रेष्ठ योगी पुलस्त्य महर्षि काम, क्रोध, मोह तथा लोभ का परित्याग करके तथा मन एवं इन्द्रियों को संयमित करके योग करने लगे ॥४४॥ **सुकला ने कहा—** महाभाग ! पुलस्त्य के चले जाने पर कलादिष्ट उस गीत विद्याधर ने सोचा कि बहुत समय से मैंने महर्षि पुलस्त्य को नहीं देखा । वे मेरे भय से कहाँ चले गये और क्या, कहाँ पर कर रहें है ॥४५-४६॥ वह ब्रह्माजी के पुत्र पुलस्त्य महर्षि के आश्रम में वराह के रूप में गया । महर्षि एकान्त में वन में रहते थे ॥४७॥ हे भामिनि! उनको आसन पर बैठे हुए तथा तेज की ज्वाला से सम्पन्न देखकर महर्षि को क्षुब्ध किया ॥४८॥ वह निश्चित रूप से अपने तुण्ड के अग्रभाग से तथा अपनी निन्दित चेष्टाओं से उनको दुःख देता था । महर्षि भी उसको पशु समझकर क्षमा करते थे ॥४९॥ वह उनके सामने ही मल-मूत्र भी कर देता था । वह नृत्य करता था, क्रीड़ा करता था, गिरता था और उठकर चल देता था ॥५०॥ हे राजन् ! वे उसको पशु समझकर छोड़ देते थे । एकबार वह पुनः महर्षि के समक्ष उसी रूप में आया ॥५१॥ वह जोर से हँसकर उनका उपहास किया । वह वहाँ पर रोया और फिर सुन्दर स्वर में गीत गाया ॥५२॥ उस प्रकार से आये हुए उस गीतविद्याधर की चेष्टाओं को देखकर महर्षि ने जान लिया कि यह वराह नहीं हो सकता । वे जान गये कि यह वही अधम गन्धर्व ही है । वे क्रोध करके उसे शाप दिए कि चूँकि तुम शूकर रूप से मुझे

शृणु वाक्यं सहस्राक्ष तवकार्यं कृतं मया। तपएव हि कुर्वन्सन्दारुणं मुनिपुङ्गवः ॥५८॥
तस्मात्तपःप्रभावात्तु चालितःक्षोभितो मया। शप्तस्तेनास्मि विप्रेण देवरूपं प्रणाशितम् ॥५९॥
पशुयोनिं गतंशक्रमामेवं परिरक्षय। ज्ञात्वा तस्य स वृत्तान्तं गीतविद्याधरस्य च॥६०॥
तेनसार्द्धं गतश्चेन्द्रस्तं मुनिं पर्यभाषत। दीयतामनुग्रहो नाथ सिद्धज्ञोऽसिद्धिजोत्तमः ॥६१॥
क्षम्यतां मुनिवर्यास्मिन्क्रियतां शापमोक्षणम् ॥६२॥

पुलस्त्य उवाच

इतिसम्प्रार्थितो विप्रो महेन्द्रेणाह हृष्टधीः। वचनात्तव देवेश क्षन्तव्यं च मयापि हि ॥
भविष्यति महाराज मनुपुत्रो महाबलः ॥६३॥
इक्ष्वाकुर्नाम धर्मात्मा सर्वधर्मानुपालकः। तस्य हस्ताद्यदा मृत्युरस्यैव च भविष्यति ॥६४॥
तदैष वैस्वकं देहं प्राप्स्यते नात्र संशयः। एत्तते सर्ववृत्तान्तं शूकरस्यनिवेदितम्॥६५॥
आत्मनश्च प्रवक्ष्यामि पत्या सार्द्धं शृणुष्व हि ।
मया च पातकं घोरं कृतं यत्पापया पुरा ॥६६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

विघ्नित करते हो अतएव हे महापापी ! तुम शूकर योनि में चले जाओ ॥५३-५६॥ उस विप्र के द्वारा शापित होकर वह काँपता हुआ इन्द्र के पास गय ॥५७॥ उसने कहा— हे इन्द्र ! आप मेरी बात सुनें । मैंने आपका कार्य किया है । मुनिश्रेष्ठ ! घोर तपस्या कर रहे थे ॥५८॥ मैंने उनको तप के प्रभाव से चंचल वनाकर क्षुव्ध बना दिया । उस विप्र ने मुझे शाप दे दिया जिसके कारण मेरा देवत्व विनष्ट हो गया ॥५९॥ मैं पशुयोनि में चला गया हूँ हे इन्द्र ! आप मेरी रक्षा करें । उस गीतविधाधर के वृत्तान्त को जानकर॥६०॥ उसके वाद इन्द्र मुनि के पास जाकर उनसे कहे हे द्विजोत्तम ! आप सिद्धान्त हैं । इस पर कृपा कीजिए॥६१॥ मुनिवर्य ! आप इसे क्षमा करें । इसके शाप से मुक्ति को बतलाइये ॥६२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर महर्षि प्रसन्न होकर कहे— हे देवेन्द्र ! तुम्हारे कहने के कारण मुझे भी क्षमा करनी चाहिए ॥६३॥ मनु के पुत्र महात्मा इक्ष्वाकु सभी धर्मों का पालन करने वाले और धर्मात्मा होंगे । उन्हीं के हाथ से इसकी मृत्यु होगी ॥६४॥ उसी समय यह अपना रूप प्राप्त करेगा । इस प्रकार से मैंने शूकर के वृत्तान्त को आप को बतलाया ॥६५॥ मैं अपना भी वृत्तान्त बतलाऊँगी, उसे आप अपने पति के साथ सुनें । मैंने भी पहले घोर पाप किया है, उसे बतलाती हूँ ॥६६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के छियालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४६॥

सैंतालिसवाँ अध्याय

सुकलोवाच

सुदेवा चारुसर्वाङ्गी तामुवाचाथ सूकरीम्। पशुयोनिं गतात्वं हि कथं वदसि संस्कृतम् ॥१॥
एवं विधं महाज्ञानं कस्माद्भूतं वदस्व मे। कथं जानासि वै भर्तुश्चरित्रमात्मनः शुभे ॥२॥

शूकर्युवाच

पशोर्भावेन मोहेन मुष्टाहं वरवर्णिनि। निहता खड्गबाणैश्च पतितारण मूर्धनि ॥३॥
मूर्च्छयामि परिक्लिन्ना ज्ञानहीना वरानने। त्वया भिषिक्ता येनाहं पुण्यहस्तेन सुन्दरि ॥४॥
पुण्योदकेन शीतेन तव हस्तगतेन वै। अभिषिके हि मे काये मोहो नष्टो विहाय माम् ॥५॥
यथाविनाशं तेजोभिरन्धकारःप्रयाति सः। तथातवाभिषेकेन मम पापं गतं शुभे॥६॥
प्रसादात्तव चार्वङ्गि लब्धं ज्ञानं पुरातनम्। पुण्यां गति प्रयास्यामि इति ज्ञातं मया शुभे ॥७॥
श्रूयतामभिधास्यामि पूर्ववृत्तान्तमात्मनः। यत्कृतं तु मया भद्रे पापया दुष्कृतं बहु ॥८॥
कलिङ्गाख्ये महादेशे श्रीपुरं नामपत्तनम्। सर्वसिद्धिसमाकीर्णं चतुवर्णनिषेवितम् ॥९॥
वसतिस्म द्विजःकोऽपि वसुदत्त इति श्रुतः। ब्रह्माचारपरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥१०॥
वेदवेत्ता ज्ञानवेत्ता शुचिमान्गुणवान्धनी। धनधान्य समाकीर्णःपुत्रपौत्रैरेलङ्कृतः ॥११॥
तस्याहं तनया भद्रे सोदरैःस्वजनबान्धवैः। अलङ्कारैस्तु शृङ्गारेर्भूषितास्मि वरानने॥१२॥
सुदेवा नाम मे तातश्चकार स महामतिः। तस्याहं दयिता नित्यं पितुश्चापि महामते ॥१३॥

शूकरी द्वारा अपने पूर्व जन्म के चरित्र का वर्णन

सुकला ने कहा— सर्वाङ्गसुन्दरी सुदेवा ने उस शूकरी से कहा— तुम पशु योनि में भी जाकर संस्कृत कैसे बोलती हो ?॥१॥ बतलाओ तुमको इस प्रकार का महाज्ञान कैसे हुआ ? तुम अपने पति के चरित्र को कैसे जानती हो ?॥२॥ **शूकरी ने कहा**— हे सुन्दरि ! पशुभाव के कारण मैं अज्ञान से मोहित हो गयी थी। खड्ग और बाण से मारे जाने के कारण मैं समरस्थल में गिर पड़ी ॥३॥ खून से लथपथ ज्ञानहीन मैं हे वरानने ! मूर्छित हो गयी थी। तुमने अपने पवित्र हाथों से मुझे सींचा ॥४॥ तुम्हारे पवित्र हाथों से शीतल जल से अभिषिक्त होने के कारण पाप मुझे छोड़कर विनष्ट हो गया ॥५॥ हे शुभे ! जिस तरह तेज के द्वारा अन्धकार विनष्ट हो जाता है, उसी तरह तुम्हारे द्वारा किए गये अभिषेक के कारण मेरा पाप विनष्ट हो गया ॥६॥ हे शुभे ! तुम्हारी कृपा से मैंने अपना पहले का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब मैं शुभ गति को प्राप्त करूँगी यह मैंने जान लिया है ॥७॥ आप सुनें मैं अपना प्राचीन वृत्तान्त सुनाती हूँ। मैंने पापिनी ने बहुत से पापों को किया है ॥८॥ कलिङ्ग नामक देश में श्रीपुर नामक नगर है। वह सभी सिद्धियों से युक्त है तथा वहाँ पर चारों वर्णो के लोग रहते हैं ॥९॥ वहाँ पर वसुदत्त नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे ब्राह्माचार परायण और सत्य धर्म के पालक थे ॥१०॥ वे वेदज्ञ, ज्ञानी, पावित्र्य को पालन करने वाले, गुणवान् और धनी थे। वे धन-धान्य से परिपूर्ण और पौत्रों से युक्त थे ॥११॥ मैं अपने भाइयों तथा स्वजन बान्धवों से युक्त उनकी पुत्री थी। मैं अलङ्कारों तथा शृङ्गारों से भूषित थी ॥१२॥ महामति मेरे पिता ने मेरा नाम सुदेवा रखा। मैं अपने पिता की प्रिया पुत्री थी ॥१३॥ मेरा रूप अप्रतिम (अतुलनीय)

रूपेणाप्रतिमा जाता संसारे नास्ति तादृशी । रूपयौवनगर्वेण मत्ताहं चारुहासिनी ॥१४॥
अहं कन्या सुरूपा वै सर्वालङ्कारशोभिता। मां च दृष्ट्वा ततो लोकाः सर्वे स्वजनवर्गकाः ॥१५॥
मामेवं याचमानास्ते विवाहार्थे वरानने । याचिताहं द्विजैः सर्वैर्न ददाति पिता मम ॥१६॥
स्नेहाच्चैव महाभागे मुमोह च महामतिः । न दत्ताहं तदातेन पित्रा चैव महात्मना ॥१७॥
सम्प्राप्तं यौवनं बाले मयि भावसमन्वितम् । रूपमेतादृशं दृष्ट्वा मम माता सुदुःखिता ॥१८॥
पितरं म उवाचाथ कस्मात्कन्या न दीयते । त्वं कस्मै सुद्विजायैव ब्राह्मणाय महात्मने ॥१९॥
देहि कन्यां महाभाग सम्प्राप्ता यौवनं त्वियम् ।
वसुदत्तो द्विजश्रेष्ठः प्रत्युवाचद्विजोत्तमः ॥२०॥
मातरं मे महाभागे श्रूयतां वचनं मम। महामोहेन मुग्धोऽस्मि सुताया वरवर्णिनी ॥२१॥
यो मे गृहस्थो विप्रो वै भविष्यति शुभे शृणु ।
तस्मै कन्यां प्रदाष्यामि जामात्रे तु न संशयः ॥२२॥
मम प्राणप्रिया चैषा सुदेवानात्र संशयः । एवमूचे मदर्थे स वसुदत्तः पिता मम ॥२३॥
कौशिकस्य कुले जातः सर्वविद्याविशारदः । ब्राह्मणानांगुणैर्युक्तः शीलवान्गुणवाञ्छुचिः ॥२४॥
वेदाध्ययनसम्पन्नं पठमानं हि सुस्वरम् । भिक्षार्थं द्वारमायान्तं पितृमातृ विवर्जितम् ॥२५॥
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं रूपं वीक्ष्यमहामतिः । तं प्रोवाच पिताएवं को भवान्वैभविष्यति ॥२६॥
किं ते नाम कुलं गोत्रमाचारं वद साम्प्रतम् ।
समाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वसुदत्तमुवाच सः ॥२७॥
कौशिकस्यान्वये जातो वेदवेदाङ्गपारगः । शिवशर्मेति मे नाम पितृमातृविवर्जितः ॥२८॥

था, मेरे समान कोई सुन्दरी नहीं थी । रूप तथा यौवन से मदमत्त, मनोहर मुस्कान वाली मैं हो गयी । मैं सुन्दर रूप वाली कन्या थी और सभी अलङ्कारों से अलंकृत थी । मुझको देखकर अपने वर्ग के सभी लोग॥१४-१५॥ हे वरानने ! मुझसे विवाह करना चाहते थे । सभी द्विजों ने मेरी याचना की किन्तु मेरे पिता ने मुझे उनलोगों को नहीं दिया ॥१६॥ स्नेह के कारण वे महामति मोहित थे । जब महात्मा मेरे पिता ने किसी को मुझे नहीं दिया ॥१७॥ मैं जवान हुयी । बाला, रूपवती तथा भाव से युक्त मुझको देखकर मेरी माता अत्यन्त दुःखी हुयी ॥१८॥ उन्होंने मेरे पिता से कहा कि आप कन्या का विवाह क्यों नहीं कर देते हैं ? आप इसको किसी सुन्दर ब्राह्मण को दान दे दें ॥१९॥ हे महाभाग ! आप कन्या का विवाह कर दें यह जवान हो गयी है । ब्राह्मण श्रेष्ठ वसुदत्त ने मेरी माता को उत्तर दिया कि तुम मेरी बात सुनो । हे सुन्दरी ! अपनी पुत्री के विषय में मैं महामोह से मोहित हूँ ॥२०-२१॥ जो गृहस्थ ब्राह्मण मेरे घर रहेगा उसी को मैं अपनी पुत्री देकर उसे अपना जमाता बनाऊँगा ॥२२॥ सुदेवा मुझको प्राण के समान प्रिय है । इस प्रकार से मेरे पिता वसुदत्त ने मेरे विषय में कहा ॥२३॥ मेरे पिता कौशिक वंश में उत्पन्न, सभी विद्याओं में विशारद, ब्राह्मणों के गुण से सम्पन्न, शीलवान्, गुणवान् और पवित्र थे ॥२४॥ उन्होंने वेदाध्ययन करने वाले तथा सुन्दर स्वर से वेद पढ़ने वाले, माता-पिता से रहित तथा भिक्षा के लिए आते हुए ब्राह्मण के आने पर उसके रूप को देखकर महामति मेरे पिता ने उससे पूछा आप कौन है ?॥२५-२६॥ तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा कुल, गोत्र और आचार क्या है ? मेरे पिता की वाणी को सुनकर उन्होंने मेरे पिता

सन्ति मे भ्रातरश्चान्ये चत्वारो वेदपारगाः। एवं कुलसमाख्यातमाचारःकुलसम्भवः ॥२९॥
एवं सर्वं समाख्यातं पितरं शिवशर्मणा। शुभलग्ने तिथौ प्राप्ते नक्षत्रे भगदैवते ॥३०॥
पित्रा दत्तास्मि सुभगे तस्मै विप्राय वै तदा। पितृगेहे वसाम्येका तेन सार्द्धं महात्मना ॥३१॥
नैव शुश्रूषितो भर्ता मया स पापया तदा। पितृमातृसुद्रव्येण गर्वेणापि प्रमोहिता ॥३२॥
अङ्गसंवाहनं तस्य न कृतं हि मया कदा। रतिभावेन स्नेहेन वचने न मया शुभे॥३३॥
क्रूरबुद्ध्याहि दृष्टोऽसौ सर्वदा पापया मया। पुंश्चलीनां प्रसङ्गेन तद्भावं हि गता शुभे ॥३४॥
मातापित्रोश्च भर्तुश्च भ्रातृणां हितमेव च। न करोम्यहमेवापि यत्र यत्र व्रजाम्यहम्॥३५॥
एवं मे दुष्कृतं दृष्ट्वा शिवशर्मा पतिर्मम। स्नेहाछ्वशुरवर्गस्य ममभर्ता महामतिः ॥३६॥

न किं चिद्वक्ति मां सोऽपि क्षमते दुष्कृतं मम ।
वार्यमाणा कुटुम्बेन अहमेवं सुपापिनी ॥३७॥
तस्य शीलं विदित्वा ते साधुत्वं शिवशर्मणः ।
पितामाता च मे सर्वे मम पापेन दुःखिताः ॥३८॥
भर्त्ता मे दुष्कृतं दृष्ट्वा स्वगृहान्निर्गतो बहिः ।
तं देशं ग्राममेनं च परित्यज्य गतस्ततः ॥३९॥

गते भर्तरि मे तातःसञ्जातश्चिन्तयान्वितः। ममदुःखेन दुःखात्मा यथारोगेण पीडितः॥४०॥
ममामाता उवाचैनं भर्तारं दुःखपीडितम्। कस्माच्चिन्तयसे कान्त वद दुखं ममाग्रतः ॥४१॥
वसुदत्त उवाचैनां मातरं मम नन्दने। सुतां त्यक्त्वा गतो विप्रो जामाता शृणु वल्लभे॥४२॥

वसुदत्त से कहा ॥२७॥ मैं कौशिक वंश में उत्पन्न हूँ। मैं वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत हूँ। मैं माता-पिता से रहित हूँ और शिवशर्मा मेरा नाम है। मेरे दूसरे भी चार भाई वेद पारङ्गत हैं। इस तरह से प्रख्यात वंश और आचार इत्यादि सारी बातों को शिवशर्मा ने मेरे पिता को बतलाया। इसके बाद शुभ लग्न में शुभ तिथि को भगदेवता के नक्षत्र में ॥२८-३०॥ मेरे पिता ने शिवशर्मा से मेरा विवाह कर दिया। मैं अपने पिता के ही घर में उस ब्राह्मण के साथ रहती थी ॥३१॥ पापिनी मैंने अपने पति की सेवा नहीं की। मैं अपने माता-पिता के धन सम्पत्ति और गर्व से मोहित थी ॥३२॥ मैंने उनके शरीर को कभी भी नहीं दबाया। मैंने उनके साथ कभी प्रेमपूर्ण बातें भी नहीं की ॥३३॥ पापिनी मैं उनको सदा क्रूर दृष्टि से ही देखती थी। पुंश्चली नारियों के सम्बन्ध के कारण मैं भी पुश्चली हो गयी ॥३४॥ मैं जहाँ कहीं भी जाती थी वहाँ अपनी माता, पिता, भाई तथा पति के कल्याण की बातें नहीं करती थी ॥३५॥ इस तरह से मेरे पापों को देखकर मेरे शिवशर्मा सासु, श्वसुर के स्नेह के कारण मुझको कुछ भी नहीं कहते थे। वे मेरे पापों को क्षमा कर देते थे। कुटुम्व के लोग मुझ पापिनी को रोकते थे ॥३६-३७॥ वे लोग शिवशर्मा के शील और साधुत्व को जानते थे। मेरे माता-पिता इत्यादि सभी मेरे पाप से दुःखी थे ॥३८॥ मेरे पति मेरे पाप को देखकर घर से बाहर चले गये। वे उस ग्राम और देश का भी परित्याग करके चले गये ॥३९॥ पति के चले जाने पर मेरे पिता चिन्तित हो गये। मेरे दुःख से दुःखी होकर वे रोगी हो गये ॥४०॥ मेरी माता ने उनसे कहा— कान्त ! आप क्यों चिन्ता करते हैं ? मुझे अपने दुःख का कारण बतलाइये ॥४१॥ वसुदत्त ने मेरी माता से कहा कि प्रियतमे ! मेरे जमाता मेरी पुत्री को त्यागकर चले गये ॥४२॥ यह पापिनी निष्ठुर और

इयं पापसमाचारा निर्घृणा पापचारिणी । अनया हि परित्यक्तःशिवशर्मा महामतिः ॥४३॥
समस्तस्य कुटुम्वस्य दाक्षिण्येन महामतिः। मामायं सद्विजःकान्ते सुदेवां नैव भाषते॥४४॥
वसते सौम्यभावेन नैवनिन्दति कुत्सति। सुदेवां पापसञ्चारां स वै पण्डितबुद्धिमान्॥४५॥
भविष्यति त्वियं दुष्टा सुदेवा कुलनाशिनी । अहमेनां परित्यज्य व्रजामि गृहवासिनि॥४६॥

ब्राह्मण्युवाच

अद्य ज्ञातं त्वया कान्त सुताया गुणदूषणम् ।
तव मोहेन स्नेहेन नष्टेयं शृणु साम्प्रतम् ॥४७॥

तावद्विलाडयेत्पुत्रं यावत्स्यात्पञ्चवार्षिकः । शिक्षाबुद्ध्या सदा कान्त पुनर्मोहेन पोषयेत्॥४८॥
स्नानाच्छादनकैर्भक्ष्यैर्भोज्यैःपेयैर्नसंशयः । गुणेषु योजयेत्कान्त सद्विद्यासु च तं सुतम्॥४९॥
गुणशिक्षार्थं निर्मोहः पिता भवति सर्वदा। पालने पोषणे कान्त संमोहःपरिजायते॥५०॥
सगुणं न वदेत्पुत्रं कुत्सयेच्च दिने दिने । काठिन्यं च वदेन्नित्यं वचनैःपरिपीडयेत्॥५१॥
यथा हि साधयेन्नित्यं सुविद्यां ज्ञानतत्परः । अभिमाने छलेनापि पापं त्यक्तवा प्रदूरतः ॥५२॥
नैपुण्यं जायते नित्यं विद्यासु च गणेषु च । माता च ताडयेत्कन्यां स्नुषां श्वश्रूर्विताडयेत्॥५३॥
गुरुश्चताडयेच्छिष्यं ततःसिध्यन्ति नान्यथा । भार्यांच ताडयेत्कान्त अमात्यं नृपतिस्तथा॥५४॥
हयं च ताडयेद्धीरो गजं मात्रोदिनेदिने । शिक्षाबुद्ध्या प्रसिध्यन्ति ताडनात्पालनाद्विभो ॥५५॥
त्वयेयं नाशिता नाथ सर्वदैव न संशयः। सार्धं सुब्राह्मणेनापि भवता शिवशर्मणा॥५६॥

पापाचरण करने वाली है ! इसने ही महामति शिवशर्मा को त्याग दिया था ॥४३॥ सम्पूर्ण कुटुम्व के प्रति स्नेहिल होने के कारण वे द्विज इसको कुछ नहीं कहते थे ॥४४॥ वे सौम्य भाव से रहते थे । वे न तो निन्दा करते थे और न कोसते थे । सुदेवा पापिनी है और वे बुद्धिमान पण्डित थे ॥४५॥ यह दुष्टा सुदेवा वंश का विनाश करने वाली होगी । हे प्रिये ! मैं इसको छोड़कर जा रहा हूँ ॥४६॥ **ब्राह्मणी ने कहा**—हे कान्त ! आज आपने अपनी पुत्री के गुण तथा दोष को जाना । आप सुनें । आपके ही दोष के कारण यह विनष्ट हुयी है ॥४७॥ पुत्र को तब तक ही प्यार करना चाहिये जब तक कि वह पाँच वर्ष का न हो जाय । उसके बाद हे कान्त ! उसको शिक्षा तथा बुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए ॥४८॥ उसको स्नान, वस्त्र, भक्ष्य तया भोज्य पदार्थ प्रदान करके उसको सद्विद्या तथा सद्गुणों में लगाये ॥४९॥ गुणों की शिक्षा देने के विषय में पिता सदा मोह रहित होता है । हे कान्त ! पुत्र का पालन और पोषण के विषय में मोह होना चाहिए ॥५०॥ पुत्र के गुणवान् हो जाने पर उसकी प्रशंसा न करे, उसको सदा डाँटते रहना चाहिए। कठोर बोलकर उसको दु:खी भी बनाना चाहिए ॥५१॥ जिससे कि ज्ञान में तत्पर रहकर अभिमान तथा छल का दूर से ही त्याग करके वह सुन्दर विद्या को प्राप्त करें ॥५२॥ उससे विद्याओं और गुणों की वृद्धि होती है । माता को भी अपनी पुत्री का तथा सासु को अपनी पुत्रवधू का प्रताडन करते रहना चाहिए ॥५३॥ जव गुरु शिष्य का प्रताड़न करते हैं तव ही शिष्यों को सिद्धि मिलती है । पति को पत्नी का तथा राजा को मन्त्रियों का प्रताड़न करना चाहिए ॥५४॥ साईस को चाहिए कि वह घोड़े का प्रताड़न करे, हस्तीपद को हाथी का प्रताड़न शिक्षा की दृष्टि से करना चाहिए तव ही वे प्रसिद्ध होते हैं । अतएव ताड़न और पालन दोनों करे ॥५५॥ आपने ही इसका नाश किया है । ब्राह्मण शिवशर्मा भी इसको घर में निरङ्कुश बनाये,

निरङ्कुशा कृता गेहे तेन नष्टा महामते। तावद्विधारयेत्कन्यां गृहे कान्तवचःशृणु ॥५७॥
अष्टवर्षान्विता यावत्प्रबलांनैव धारयेत्। पितुर्गेहस्थिता पुत्री यत्पापं हि प्रकुर्वती॥५८॥
उभाभ्यामपितत्पापं पितृभ्यामपि विन्दति। तस्मान्नधार्यते कन्या समर्था निजमन्दिरे ॥५९॥
यस्य दत्ता भवेत्सा च तस्य गेहे प्रपोषयेत्। तत्रस्था साधयेत्कान्तं सगुणं भक्तिपूर्वकम् ॥६०॥
कुलस्य जायते कीर्तिःपिता सुखेन जीवति। तत्रस्था कुरुते पापं तत्पापं भुञ्जते पतिः ॥६१॥
तत्रस्था वर्द्धते नित्यं पुत्रैःपौत्रैःसदैव सा। पिताकीर्तिमवाप्नोति सुतायाःसुगुणैःप्रिय ॥६२॥
तस्मान्नधारयेत्कान्त गेहे पुत्रीं सभर्तृकाम्। इत्यर्थे श्रूयते कान्त इतिहासो भविष्यति ॥६३॥
अष्टाविंशातिकेप्राप्ते युगेद्वापरके महान्। उग्रसेनस्यवीरस्य यदुज्येष्ठस्य यत्प्रभो॥६४॥
चरित्रं ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना द्विज ॥६५॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अड़तालिसवाँ अध्याय

ब्राह्मण्युवाच

माथुरे विषये रम्ये मथुरायां नृपोत्तमः। उग्रसेनेति विख्यातो यादवःपरवीरहा॥१॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञो वेदज्ञःश्रुतवान्बली। दाता भोक्ता गुणग्राही सद्गुणान्वेत्ति भूपतिः ॥२॥

उसके कारण यह बिगड़ गयी। हे कान्त! आप मेरी बात सुनें। कन्या को तब ही अपने घर में रखना चाहिए जब तक कि वह आठ वर्ष की न हो जाय। प्रबला को अपने घर में न रखे। पिता के घर में रहकर पुत्री जो पाप करती है ॥५६-५८॥ उसका वह पाप उसके माता-पिता दोनों को लगता है। अतएव समर्था पुत्री को अपने घर में नहीं रखना चाहिए ॥५९॥ कन्या का जिससे विवाह हो जाय, उसे उसी घर का पालन करना चाहिए। वहाँ पर रहकर वह अपने गुणवान् पति को भक्तिपूर्वक प्रसन्न रखे ॥६०॥ ऐसा करने से वंश का यश होता है उसके पिता सुख पूर्वक जीते हैं। वहाँ पर जो वह पाप करती है उसका फल उसके पति को मिलता है ॥६१॥ अपने पति के घर में रहकर वह अपने पुत्रों और पौत्रों के साथ बढ़ती है। अपनी पुत्री के सुन्दर गुणों से पिता की भी कीर्ति बढ़ती है ॥६२॥ अठाइसवें द्वापर युग में यदुवंश में बड़े उग्रसेन के चरित्र को मैं आपको सुनाती हूँ उसे सुनें ॥६३-६५॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४७॥

राजा उग्रसेन की पत्नी पद्मावती के चरित्र का वर्णन

ब्राह्मणी ने कहा— मनोहर माथुर प्रदेश के मथुरा नगरी में, शत्रुवीरों को मारने वाले, यदुवंशीय रजा उग्रसेन हुए ॥१॥ वे सभी धर्मों और अर्थों को जानने वाले वेदज्ञ, दानी, भोक्ता, गुणग्राही तथा सद्गुणों के ज्ञाता थे ॥२॥ वे मेधावी राजा धर्मपूर्वक राज्य करते थे और प्रजाओं का पालन करते थे। इस प्रकार के

राज्यं चकार मेधावी प्रजाधर्मेण पालयेत् । एवं स च महातेजा उग्रसेनः प्रतापवान् ॥३॥
वैदर्भे विषयेपुण्ये सत्यकेतुः प्रतापवान् । तस्य कन्या महाभागा पद्माक्षी कमलानना ॥४॥
नाम्ना पद्मावतीनाम सत्यधर्मपरायणा । सा तु स्त्रीणां गुणैर्युक्ता द्वितीयेव समुद्रजा ॥५॥
वैदर्भी शुशुभे राजन्स्वगुणैः सत्यकारणैः । माथुर उग्रसेनस्तु उपयेमे सुलोचनाम् ॥६॥
तया सह महाभाग सुखं रेमे प्रतापवान् । अतिप्रीतो गुणैस्तस्यास्तया सह सुखी भवेत् ॥७॥
तस्याः स्नेहेन प्रीत्या च संमुग्धो माथुरेश्वरः । पद्मावती महाभागा तस्य प्राणप्रियाऽभवत् ॥८॥
तया विना न बुभुजे तया सह प्रकीडयेत् । तया विना न सेवेत परमं सुखमेव सः ॥९॥
एवं प्रीतिकरौ जातौ परस्परमनुत्तमौ। स्नेहवन्तौ द्विजश्रेष्ठ सुखसम्प्रीतिदायकौ ॥१०॥

सत्यकेतुश्च राजेन्द्रः सस्मार पद्मावतीम् ।
स्वसुतां तां महाभोगो माता तस्याः सुदुःखिता ॥११॥

सदूतान्प्रेषयामास वैदर्भो मथुरांप्रति । उग्रसेनं नृवीरेन्द्रं सादरेण द्विजोत्तम ॥१२॥
उग्रसेनं महाराजं सदूतो वाक्यमब्रवीत् । विदर्भाधिपतिर्वीरो भक्त्या स्नेहेन नन्दयन् ॥१३॥
आत्मनः कुशलं ब्रूते भवतां परिपृच्छति। सत्यकेतुर्महाराज त्वामेवं परिपृष्टवान् ॥१४॥
दर्शनाय प्रेषयस्व सुतां पद्मावतीं मम । यदि त्वं मन्यसे नाथ प्रीतिस्नेहं हि तस्य च ॥१५॥
प्रेषयस्व महाभागां प्रियां प्रीतिकरां तव । औत्कण्ठ्येन महाराज सशोकेनानुवर्तते ॥१६॥
समाकर्ण्य ततोवाक्यमुग्रसेनो नृपोत्तमः । प्रीत्या स्नेहेन तस्यापि सत्यकेतोर्महात्मनः ॥१७॥
दाक्षिण्येन च विप्रेन्द्र प्रेषयामास भूपतिः । पद्मावतीं प्रियां भार्यामुग्रसेनः प्रतापवान् ॥१८॥

महातेजस्वी प्रतापी राजा उग्रसेन थे ॥३॥ उस समय विदर्भ प्रदेश के सत्यकेतु प्रतापी राजा थे । उनकी पुत्री कमल के समान नेत्रों वाली थी, उसका मुख कमल के समान मनोहर था ॥४॥ उसका नाम पद्मावती था। वह सत्य धर्म का पालन करने वाली थी । वह स्त्रियों के गुणों से सम्पन्न दूसरी लक्ष्मी के समान थी ॥५॥ वैदर्भी अपने सत्य पालन आदि सद्गुणों से सुशोभित होती थी । मथुरा के राजा उग्रसेन ने उसके साथ विवाह किया ॥६॥ उसी के साथ प्रतापी राजा रमण करते थे । वे पद्मावती के गुणों से अत्यन्त प्रसन्न थे और सुखी थे ॥७॥ स्नेह से माथुरेश्वर सदा मोहित रहते थे । महाभागा पद्मावती उनकी प्राणप्रिया पत्नी थी ॥८॥ वे उसके विना भोजन भी नहीं करते थे । उसी के साथ वे क्रीड़ा करते थे । उनके बिना वे सबसे बड़े सुख का भी सेवन नहीं करते थे ॥९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार से दोनों सुख और प्रेम को प्रदान करने वाले और परस्पर में प्रेम करने वाले थे ॥१०॥ सत्यकेतु ने अपनी पुत्री पद्मावती का एक बार स्मरण किया, क्योंकि उसकी माता अत्यन्त दुःखी थी ॥११॥ हे द्विजोत्तम ! सत्यकेतु ने मथुरा के उग्रसेन के पास अपना दूत भेजा ॥१२॥ उस दूत ने महाराज उग्रसेन से कहा— विदर्भाधिपति स्नेह और भक्तिपूर्वक आपको आनन्दित करते हुए तथा अपना कुशल बतलाते हुए आपका कुशल पूछते हैं । महाराज सत्यकेतु ने आपसे कहा है ॥१३-१४॥ आप मेरी पुत्री को देखने के लिए भेज दें । अतएव हे नाथ ! आप उनसे प्रेम करते हैं तो अपनी प्रेम करने वाली पत्नी को भेज दें । महाराज उत्कण्ठित तथा शोकयुक्त हैं ॥१५-१६॥ महाराज उग्रसेन ने प्रेमपूर्वक महाराज सत्यकेतु के वाक्यों को सुना ॥१७॥ अपने दाक्षिण्य गुण के कारण उन्होंने अपनी प्रिया पत्नी पद्मावती को भेज भी दिया ॥१८॥ उग्रसेन के द्वारा प्रेषित पद्मावती अत्यन्त प्रसन्नता

प्रेषितानेन राजेन्द्र गता पद्मावती स्वकम् । पूर्वं गृहं सती सा तु महाहर्षेण सङ्कुला ॥१९॥
पितृपूर्वं कुटुम्बं तु ददृशे चारुमङ्गला । पितुःपादौ ननामाथ शिरसा सत्यतत्परा ॥२०॥
आगतायां महाराजःपद्मावत्यां द्विजोत्तम । हर्षेण महताविष्टो विदर्भाधिपतिर्नृपः ॥२१॥
वर्द्धिता दानमानैश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः। पद्मावती सुखेनापि पितुर्गेहे प्रवर्तते ॥२२॥
सखीभिःसहिता सा तु निःशङ्का परिवर्तते । रमते सा तदा तत्र यथापूर्वं तथैव च॥२३॥
गृहेवने तडागेषु प्रासादे च तथैव सा। पुनर्बालेव भूता सा निर्लज्जा सम्प्रवर्तते ॥२४॥
निःशङ्का वर्ततेविप्र सखीभिःसह सर्वदा। पतिव्रता महाभागा हर्षेण महतान्विता॥२५॥
सुखं तु पितृगेहस्य दुर्लभं श्वशुरे गृहे । एवं ज्ञात्वा तदारेमे कदा इदृग्भविष्यति ॥२६॥
अनेन मोहभावेन क्रीडालुब्धा वरानना । सखीभिःसहिता नित्यं वनेषूपवने तदा ॥२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

उनचासवाँ अध्याय

ब्राह्मण्युवाच

एकदा तु महाभाग गता सा पर्वतोत्तमे । रमणीयं वनं दृष्ट्वा कदलीखण्डमण्डितम्॥१॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेरैस्तथोत्कटैः । पूगीफलैर्मातुलिङ्गैर्नारङ्गैश्चारुजम्बुकैः ॥२॥
चम्पकैःपाटलैःपुण्यैःपुष्पितैःकुटकैर्वटैः । अशोकबकुलोपेतं नानावृक्षैरलङ्कृतम्॥३॥

पूर्वक अपने पहले के घर में चली गयी ॥२१॥ दान, मान तथा वस्त्रालङ्कारों से सम्मानित पद्मावती अपने पिता के घर में सुखपूर्वक रहले लगी ॥२२॥ वह निःशङ्क होकर अपनी सखियों के साथ घूमती थी । वहाँ पर पहले के ही समान सुखी थी ॥२३॥ वह बिना किसी लज्जा के गृह, वन, तड़ाग और प्रासाद में पहले के ही समान जाती थी ॥२४॥ हे विप्र ! वह सखियों के साथ सदा निःशङ्क वनी रहती थी । वह प्रतिव्रता तथा अत्यन्त हर्षित रहती थी ॥२५॥ पिता के घर का सुख तो ससुराल में दुर्लभ होता है । अब कब ऐसा मौका मिलेगा यह मानकर वह प्रसन्न थी ॥२६॥ इस मोहभाव के कारण क्रीड़ा करने वाली वह सुन्दरी सदैव वनों तथा उपवनों में क्रीड़ा करती थी ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

पद्मावती के चरित्र का वर्णन

ब्राह्मणी ने कहा— एक बार वह एक उत्तम पर्वत पर गयी । वहाँ पर उसने कदलीखण्ड से मण्डित वन को देखा ॥१॥ वह वन, शाल, ताल, तमाल, नारियल, पूगीफल, मातुलिङ्ग, नारङ्गी तथा मनोहर जामुन ॥२॥ चम्पा, गुलाब, इत्यादि पवित्र पुष्पों से तथा कुटक, वट, अशोक, बकुल इत्यादि अनेक प्रकार

पर्वतं पुण्यवन्तं तं पुष्पितैश्च नरोत्तमैः। सर्वत्र दृश्यते रम्यो नानाधातु समाकुलः ॥४॥
तडागं सर्वतोभद्रं पुण्यतोयेन पूरितम्। कमलैःपुष्पितैश्चान्यैः सुगन्धैः कनकोत्पलैः ॥५॥
श्वेतोत्पलैर्विभासन्तं रक्तोत्पल सुपुष्पितैः। नीलोत्पलैश्च कह्लारैर्हंसैश्च जलकुक्कुटैः ॥६॥
पक्षिभिर्जलजैश्चान्यैर्नानाधातुसमाकुलः । तडागं सर्वतःशुभ्रं नानापक्षिगणैर्युतम् ॥७॥
कोकिलानां रुतैःपुण्यैःसुस्वरैःपरिशोभितः। मधुराणां तथा शब्दैः सर्वत्र मधुरायते ॥८॥
षट्पदानां सुनादेन सर्वत्र परिशोभते। एवंविधं गिरिं रम्यं तदेववनमुत्तमम् ॥९॥
तडागं सर्वतोभद्रं ददृशे नृपनन्दिनी। वैदर्भीक्रीडमाना सा सखीभिः सहिता तदा ॥१०॥
समालोक्य वनं पुण्यं सर्वत्र कुसुमाकुलम्। चापल्येन प्रभावेन स्त्रीभावेन च लीलया ॥११॥
पद्मावती सरस्तीरे सखीभिःसहिता तदा। जलक्रीडा समालीना हसते गायते पुनः ॥१२॥
सुखेन रममाणा सा तस्मिन्सरसि भागिनी। एवं विप्र तदा सा तु सुखेन परिवर्तयेत् ॥१३॥

गोभिलो नाम वै दैत्यो भृत्यो वैश्रवणस्य च ।
दिव्येनापि विमानेन सर्वभोग परिप्लुतः ॥१४॥

याति चाकाशमार्गेण गोभिलो दैत्यसत्तमः। तेन दृष्टा विशालाक्षी वैदर्भीनिर्भया तदा॥१५॥
सर्वयोषिद्वरा सा हि उग्रसेनस्य वै प्रिया। रूपेणाप्रतिमालोके सर्वाङ्गेषु विराजते॥१६॥
रतिर्वैमन्मथस्यापि किं वा पियं हरिप्रिया। किं वापि पार्वतीदेवी शची किं वा भविष्यति॥१७॥
यादृशी दृश्यते चेयं नारीणां प्रवरोत्तमा। अन्यापि ईदृशीनास्ति द्वितीया क्षितिमण्डले॥१८॥

नक्षत्रेषु यथा चन्द्रः सम्पूर्णो भाति शोभनः ।
गुणरूपकलाभिस्तु तथा भाति वरानना ॥१९॥

के वृक्षों से अलंकृत था ॥३॥ तथा श्रेष्ठ पर्वतों से सुशोभित वह पर्वत सर्वत्र मनोहर दिखता था । वह अनेक प्रकार के धातुओं से भरा था ॥४॥ अत्यन्त मनोहर सरोवर पवित्र जल से भरा था । वह सुगन्धित तथा विकसित कमलों तथा स्वर्णिम कमलों, श्वेत तथा लाल कमलों से वह सुशोभित होता था । नील कमल कह्लार, हंस तथा कारण्डव जलकुकुटों पक्षियों से तथा दूसरें अनेक प्रकार के धातुओं से वह सुशोभित था । हर प्रकार से स्वच्छ अनेक प्रकार के पक्षियों से युक्त उस तड़ाग से ॥५-७॥ वह पर्वत कोयलों के सुन्दर तथा मधुर ध्वनि से सर्वत्र मधुर प्रतीत होता था ॥८॥ भ्रमरों की सुन्दर ध्वनि से वह सर्वत्र सुशोभित होता था । इस प्रकार का मनोहर पर्वत तथा ऐसे वन को, हर प्रकार से मनोहर सरोवर को राजकुमारी ने देखा । वह वैदर्भी अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुयी ॥९-१०॥ उस सर्वत्र पुष्पों से भरे हुए वन को देखकर अपनी चपलता के कारण तथा स्त्रीभाव के कारण लीलापूर्वक ॥११॥ सरोवर के तट पर जलक्रीड़ा में मग्न होकर हँसती और गीत गाती थी ॥१२॥ इस तरह से वह विभिन्न सरोवरों में रमण करती थी । हे विप्र ! वह इसी तरह से उस समय घूमती थी ॥१३॥ **विष्णुभगवान् ने कहा—** कुबेर का भृत्य तथा सभी भोगों से सम्पन्न गोभिल नाम का दैत्य उस समय आकाश मार्ग से जा रहा था । उसने उस विशालाक्षी निर्भय वैदर्भी को देखा ॥१४-१५॥ उग्रसेन की प्रियतमा वह सभी स्त्रियों में श्रेष्ठ थी । उस सर्वाङ्ग सुन्दरी का अप्रतिम रूप सुशोभित हो रहा था ॥१६॥ उसने सोचा क्या यह कामदेव की पत्नी रति है ? अथवा यह श्रीहरि की प्रिया लक्ष्मी है ? अथवा यह पार्वती देवी हैं ? या ये शची हैं ॥१७॥ यह

पुष्करेषु यथा हंसस्तथेयं चारुहासिनी। अहोरूपमहोभाव अस्यास्तु परिदृश्यते ॥२०॥
का कस्य शोभना बाला चारुवृत्तपयोधरा। व्यमृशद्गोभिलो दैत्यः पद्मावतीं वराननाम् ॥२१॥
चिन्तयित्वा क्षणं विप्र का कस्यापि भविष्यति ।
ज्ञानेन महता ज्ञात्वा वैदर्भीति न संशयः ॥२२॥
दयिता उग्रसेनस्य पतिव्रतपरायणा। आत्मबलेन तिष्ठन्ती दुष्प्राप्या पुरुषैरपि ॥२३॥
उग्रसेनो महामूर्खःप्रेषिता येन वै वरा। पितुर्गेहमियं बाला स तु भाग्येन वर्जितः ॥२४॥
अनया विना सजीवेच्च कथं कूटमतिःसदा ।
किं वा नपुंसको राजा एनां यो हि परित्यजेत् ॥२५॥
तां दृष्ट्वा स तु कामात्मा सञ्जातस्तत्क्षणादपि ।
इयं पतिव्रता बाला दुष्प्राप्या पुरुषैरपि ॥२६॥
कथं भोक्ष्याम्यहं गत्वा कामो मामतिपीडयेत् ।
अभुक्त्वैनां यदा यास्ये तत्स्यान्मृत्युर्ममैव हि ॥२७॥
अद्यैव हि न सन्देहो यतःकामो महाबलः। इति चिन्ता परो भूत्वा गोभिलो मनसैक्षत ॥२८॥
कृत्वा मायामयंरूपमुग्रसेनस्य भूपतेः। यादृशस्तूग्रसेनश्च साङ्गोपाङ्गो महानृपः ॥२९॥
गोभिलस्तादृशोभूत्वा गत्या च स्वरभाषया। यथावस्त्रो यथावेशो वयसा च तथा पुनः ॥३०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः। सर्वाभरणशोभाङ्गो यादृशो माथुरेश्वरः ॥३१॥
भूत्वाऽथ तादृशो दैत्य उग्रसेनमयस्तदा। मायया परया युक्तो रूपलावण्य सम्पदा ॥३२॥

श्रेष्ठ नारियों में उत्तम जैसी दिखती है, इस पृथिवी पर इसके समान दूसरी कोई नारी नहीं है ॥१८॥ जिस तरह ताराओं के वीच में सम्पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं, उसी तरह यह सुन्दरी रूप, गुण तथा कलाओं से शोभती है ॥१९॥ जिस तरह कमलों के बीच हंस शोभता है उसी तरह यह चारुहासिनी शोभती है। इसके रूप तथा भाव सराहनीय हैं ॥२०॥ गोभिल नामक दैत्य पद्मावती के विषय में सोचने लगा कि यह किसकी कौन है ?॥२१॥ उसने क्षणभर यह किसकी कौन है ? इस बात का विचार करके जान लिया कि यह वैदर्भी है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२२॥ पतिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली यह उग्रसेन की पत्नी है। यह दूसरे पुरुषों के लिए दुष्प्राप्य है तथा आत्मभाव से यहाँ पर रहती है ॥२३॥ उग्रसेन महामूर्ख है कि उसने इसे यहाँ भेज दिया है। यह सुन्दरी अपने पिता के घर में रहती है वह तो भाग्यहीन है ॥२४॥ वह सदा कूटमति इसके बिना न जाने कैसे जीवित रहता है ? अथवा वह राजा नपुंसक है इसीलिए इसको छोड़े हुए है ॥२५॥ पद्मावती को देखकर वह उसी क्षण कामार्त हो गया। वह वाला पतिव्रता है अतएव दूसरे पुरुषों के लिए दुष्प्राप्य है ॥२६॥ मैं इसके पास जाकर इसका कैसे उपभोग करूँ ? काम मुझको पीड़ित कर रहा है। यदि इसको छोड़कर मैं चला जाऊँ तो मेरी मृत्यु आज ही हो जायेगी ॥२७॥ क्योंकि काम महाबलवान् हैं ! इस तरह से विचार करके गोभिल ने मन से विचार किया॥२८॥ उसने माया के द्वारा उग्रसेन का रूप धारण कर लिया। वह साङ्गोपाङ्ग उग्रसेन के समान हो गया ॥२९॥ गोभिल गति, स्वर तथा भाषा के द्वारा उग्रसेन के समान हो गया। उसके वस्त्र, वेष तथा अवस्था भी उग्रसेन के समान हो गये ॥३०॥ वह दिव्य माला, वस्त्र तथा चन्दनादि लगाये था। उसके सारे अङ्ग

पर्वताग्रे अशोकस्य च्छायामाश्रित्य संस्थितः ।
शिलातलस्थो दुष्टात्मा वीणादण्डेन वीरकः ॥३३॥

सुस्वरं गायमानस्तु गीतं विश्वप्रमोहनम्। तालमानक्रियोपेतं सप्तस्वरविभूषितम् ॥३४॥
गीतं गायति दुष्टात्मा तस्यागीतेनमोहितः। पर्वताग्रेस्थितो विप्र हर्षेण महतान्वितः ॥३५॥
सखीमध्यगता सा तु पद्मावती वरानना। शुश्रुवे सुस्वरं गीतं तालमानलयान्वितम् ॥३६॥

कोऽयं गायति धर्मात्मा महत्सौख्य प्रदायकम् ।
गीतं हि सत्क्रियोपेतं सर्वभावसमन्वितम् ॥३७॥
सखीभिःसहिता गत्वा औत्सुक्येन नृपात्मजा ।
अशोकच्छायामाश्रित्य विमले सुशिलातले ॥३८॥

ददर्श भूपवेषेण गोभिलं दानवाधमम्। पुष्पमालाम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥३९॥
सर्वाभरणशोभाङ्गं पद्मावती पतिव्रता। मथुरेशःसमायातःकदा धर्मपरायणः ॥४०॥
ममनाथो महात्मा वै राज्यंत्यक्त्वा प्रदूरतः। यावद्धि चिन्तयेत्सा च तावत्पापेन तेन सा ॥४१॥
समाहूताऽऽतुरीभूय एहि त्वं हि प्रिये मम। चकिता शङ्किता सा च कथं भर्ता समागतः ॥४२॥

लज्जिता दुःखिता जाता अधःकृत्वा ततो मुखम् ।
अहं पापा दुराचारा निःशङ्का पतिवर्तिता ॥४३॥

कोपमेवं महाभागःकरिष्यति न संशयः। यावद्विचिन्तयेत्साच तावत्तेनापि पापिना ॥४४॥
समाहूताऽऽतुरीभूय एह्येहि त्वं मम प्रिये। त्वया विना कृतो देवि प्राणान्धर्तु वरानने ॥४५॥

माथुरेश्वर उग्रसेन के समान ही शोभा सम्पन्न हो गये ॥३१॥ अपनी श्रेष्ठ माया के द्वारा उग्रसेन स्वरूप होकर दैत्य ॥३२॥ पर्वत के अग्रभाग में अशोक वृक्ष की छाया में बैठ गया । वह दुष्ट बीणा के दण्ड को पकड़कर वैठ गया ॥३३॥ वह विश्व को मोहित करने वाले सुन्दर स्वर से गाने लगा । ताल, मान तथा क्रिया से युक्त वह सातों स्वर से समलंकृत गीत गा रहा था ॥३४॥ पद्मावती के रूप से मोहित होकर वह दुष्ट गीत गाता था । पर्वत के अग्रभाग में स्थित वह अत्यन्त प्रसन्न था ॥३५॥ सखियों के बीच में विद्यमान सुन्दरी पद्मावती ने उस सुन्दर स्वर वाले तथा ताल मान और लय से युक्त गीत को सुना ॥३६॥ उसने सोचा, कौन धर्मात्मा अत्यधिक आनन्दप्रद गीत गा रहा है ? यह गीत तो क्रिया तथा सभी भावों से युक्त है ॥३७॥ वह नृपात्मजा उत्सुक होकर सखियों के साथ उसके पास गयी । उसने अशोक वृक्ष के नीचे स्वच्छ शिला के ऊपर दानवाधम गोभिल को राजा के वेष में देखा । वह दिव्य पुष्पमाला, वस्त्र तथा चन्दन लगाये था ॥३८-३९॥ सभी आभरणों से सुशोभित अङ्ग वाले गोभिल को देखकर पतिव्रता पद्मावती सोचने लगी कि धर्मपरायण माथुरेश कब आये हैं ?॥४०॥ मेरे स्वामी महात्मा है, राज्य को छोड़कर दूर से, कब आये ! इस तरह वह सोच रही थी कि उस पापी ने ॥४१॥ आतुर होकर कहा— प्रिये ! तुम आओ । वह चकित और शङ्कित थी कि मेरे पति कैसे आये ॥४२॥ लज्जित और दुःखित होकर उसने अपना मुख नीचे कर लिया । वह सोच रही थी कि मैं पापिनी तथा दुराचारिणी हूँ । निःशङ्क होकर व्यवहार करती हूँ ॥४३॥ इस तरह से तो स्वामी कोप अवश्य करेंगे । जब तक वह सोच ही रही थी कि उस पापी ने ॥४४॥ आतुर

न हि शक्नोम्यहं कान्ते जीवितं प्रियमेव च ।
तवस्नेहेन लुब्धोऽस्मि त्वां त्यक्त्वा नोत्सहे भृशम् ॥४६॥

ब्राह्मण्युवाच

एवमुक्ता गताऽपश्यत्सुमुखं लज्जयान्विता । समालिङ्ग्य ततो दैत्यःसतीं पद्मावतीं तदा ॥४७॥
एकान्तं तु समानीता सुभुक्ता इच्छया ततः। दैत्येन गोभिलेनापि सत्यकेतोःसुता तदा ॥४८॥

सुकलोवाच

मुष्कस्थानेऽस्यसङ्केतं नाविन्दत वरानना । स्ववस्त्रं सा परिगृह्य शङ्किता दुःखिताह्यभूत् ॥४९॥
सा सक्रोधावचःप्राह गोभिलं दानवाधमम् । कस्त्वंपापसमाचारो निर्घृणो दानवाकृतिः ॥५०॥
शप्तुकामा समुद्युक्ता दुःखेनाकुलितेक्षणा । वेपमाना तदा रजन्दुःखभारेण पीडिता ॥५१॥
मम कान्तच्छलेनैव त्वयाऽगत्य दुरात्मवन् । नाशितं धर्ममेवाग्रं पातिव्रत्यमनुत्तमम् ॥५२॥
सुस्वरं रुदितं कृत्वा ममजन्म त्वया हतम् । पश्य मे बलमत्रैव शापं दास्ये सुदारुणम् ॥५३॥
एवं सम्भाषमाणां तं शप्तुकामा तु गोभिलम् ॥५४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

होकर कहा— प्रिये ! तुम आओ । हे देवि ! तुम्हारे बिना मैं अपने प्राणों को भी धारण नहीं कर सकता हूँ ॥४५॥ कान्ते ! तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता हूँ । मैं तुम्हारे स्नेह का लोभी हूँ । मैं तुमको छोड़कर नहीं रह सकता हूँ । **ब्राह्मणी ने कहा—** इस प्रकार से वह उनके पास जाकर उनके सुन्दर मुख को लज्जा पूर्वक देखी । दैत्य ने भी सती पद्मावती का आलिङ्गन किया ॥४७॥ वह पद्मावती को एकान्त में लाकर सत्यकेतु की पुत्री पद्मावती का इच्छानुसार उपभोग किया ॥४८॥ **सुकला ने कहा—** पद्मावती ने उसके अण्डकोश के पास राजा के चिह्न को नहीं देखा । वह अपने वस्त्र को धारण करके शङ्कित और दुःखी हो गयी ॥४९॥ उसने क्रुद्ध होकर दानव गोभिल को कहा— अरे पापी ! दानव के समान तुम कौन हो?॥५०॥ दुःख से व्याकुल नेत्रों वाली वह शाप देने के लिए उद्यत हो गयी । हे राजन् ! वह उस समय वह अत्यन्त दुःखी और काँप रही थी ॥५१॥ तुमने छलपूर्वक मेरे पति के समान गति के द्वारा मेरे श्रेष्ठ पतिव्रत्य धर्म को नष्ट कर दिया है ॥५२॥ वह सुन्दर स्वर से कही कि तुमने मेरे जन्म को नष्ट कर दिया है । अब तुम मेरा बल देखो । मैं तुम्हे भयङ्कर शाप देती हूँ । इस तरह से कहती हुयी वह गोभिल को शाप देना चाहती थी ॥५३-५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित के उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४९।।

पचासवाँ अध्याय

सुकलोवाच

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा गोभिलो वाक्यमब्रवीत् ।
भवती शप्तुकामासि कस्मान्मे कारणं वद ॥१॥
केनदोषेण लिप्तोऽस्मि यस्मात्त्वं शप्तुमुद्यता ।
गोभिलो नाम दैत्योऽस्मि पौलस्त्यस्य भटःशुभे ॥२॥

दैत्याचारेण वर्तामि जाने विद्यामनुत्तमाम् । वेदशास्त्रार्थ वेत्तास्मि कलासु निपुणःपुनः ॥३॥
एवं सर्वं विजानामि दैत्याचारं शृणुष्व मे। परस्वं परदारांश्च बलाद्भुञ्जामि नान्यथा ॥४॥
वयं दैत्याःसमाकर्ण्य दैत्याचारेणसाम्प्रतम्। वर्तामो ज्ञातिभावेन सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥५॥

ब्राह्मणानां हि च्छिद्राणि विपश्यामो दिने दिने ।
तेषां हि तपसो नाशं विघ्नैःकुर्मो न संशयः ॥६॥

छिद्रं प्राप्य वयं देवि नाशयामो न संशयः। ब्राह्मणाच्छ्रूयतां भद्रे देवयज्ञं वरानने ॥७॥
नाशयामो वयंयज्ञान्धर्मयज्ञं न संशयः। सुब्राह्मणान्परित्यज्य देवं नारायणं प्रभुम् ॥८॥
पतिव्रतां महाभागां सुमतिं भर्तृतत्पराम्। दूरेणापि परित्यज्य तिष्ठामो नात्र संशयः ॥९॥
तेजो देवि सुविप्रस्य हरेश्चैव महात्मनः। नार्याःपतिव्रतायाश्च सोढुं दैत्याश्च न क्षमा॥१०॥
पतिव्रताभयेनापि विष्णोःसुब्राह्मणस्य च। नश्यन्ति ब्राह्मणाःसर्वे दूरं राक्षस पुङ्गवाः॥११॥
अहं दानवधर्मेण विचरामि महीतलम्। कस्मात्त्वं शप्तुकामासि मम दोषोविचार्यताम्॥१२॥

गोभिल दैत्य द्वारा धर्म वर्णन पुरस्सर पद्मावती को पुंश्चली सिद्ध करना

सुकला ने कहा— उसकी वाणी को सुनकर गोभिल ने कहा— तुम मुझे किस कारण से शाप देना चाहती हो ?॥१॥ मैं किस दोष से युक्त हूँ कि तुम मुझे शाप देने के लिए तैयार हो ? मैं गोभिल नाम का दैत्य हूँ तथा कुबेर का योद्धा हूँ ॥२॥ मैं दैत्यानुकूल आचरण करता हूँ । मैं सर्वश्रेष्ठ विद्या को जानता हूँ । वैं वेदों तथा शास्त्रों के अर्थ को जानता हूँ और कलाओं में निपुण हूँ ॥३॥ इस तरह से मैं सम्पूर्ण दैत्याचार को जानता हूँ । मैं बलपूर्वक दूसरों की सम्पत्ति तथा दूसरों की स्त्रियों का उपभोग करता हूँ ॥४॥ हमलोग दैत्य हैं, किसी भी बात को सुनकर दैत्याचार के अनुसार ज्ञानी रूप से व्यवहार करते हैं, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥५॥ हमलोग प्रतिदिन ब्राह्मणों में होने वाली कमी को सदा देखते रहते हैं । विघ्नों के द्वारा हमलोग उन सबों की तपस्या का नाश करते हैं ॥६॥ हे देवि ! कमी पाकर ही हमलोग ब्राह्मणों के देवयज्ञ का नाश करते हैं ॥७॥ हमलोग यज्ञों तथा धर्मयज्ञों का नाश करते हैं । सदाचारी ब्राह्मण, भगवान् नारायण, सुन्दर मति वाली पतिपरायणा पतिव्रता इन सबों से हमलोग दूर ही रहा करते हैं । इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥८-९॥ हे देवि ! सदाचारी विप्र, तथा भगवान् श्रीहरि, एवं पतिव्रता नारी इन सबों के तेज को दैत्य सह सकने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१०॥ पतिव्रता, भगवान् विष्णु तथा सदाचारी ब्राह्मण इन तीनों के तेज से दैत्य तथा राक्षस श्रेष्ठ दूर से ही नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ मैं दानव धर्म के अनुसार पृथिवी पर विचरण करता हूँ । तुम क्यों मुझे शाप देना चाहती हो ? मेरा दोष वतलाओ ॥१२॥

पद्मावत्युवाच

मम धर्मः सुकायश्च त्वयैव परिनाशितः। अहं प्रतिव्रता साध्वी पतिकामा तपस्विनी॥१३॥
स्वमार्गे संस्थिता पाप मायया परिनाशिता। तस्मात्त्वामप्यहं दुष्ट आधक्ष्यामि न संशयः॥१४॥

गोभिल उवाच

धर्ममेव प्रवक्ष्यामि भवती यदि मन्यते। अग्निचिद्ब्राह्मणस्यापि श्रूयतां नृपनन्दिनि॥१५॥
जुह्वन्देवं द्विकालं यो न त्यजेदग्निमन्दिरम्। सचाग्निहोत्री भवति यजत्येव दिने दिने॥१६॥
अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि भृत्यधर्मं वरानने। मनसा कर्मणा वाचा विशुद्धो योऽपि नित्यशः॥१७॥
नित्यमादेशकारी यः पश्चातिष्ठति चाग्रतः। स भृत्यःकथ्यते देवि पुण्यभागी न संशयः॥१८॥
यः पुत्रो गुणवाञ्ज्ञाता पितरं पालयेच्छुभः। मातरं च विशेषेण मनसा कायकर्मभिः॥१९॥
तस्य भागीरथी स्नानमहन्यहनि जायते। अन्यथा कुरुते योहि स पापीस्यान्न संशयः॥२०॥
अन्यच्चैवं प्रवक्ष्यामि पतिव्रतमनुत्तमम्। वाचा सुमनसा चैव कर्मणा शृणु भामिनि॥२१॥
शुश्रूषां कुरुते या हि भर्तुश्चैव दिने दिने। तुष्टेभर्त्तरि या प्रीता न त्यजेत्क्रोधनं पुनः॥२२॥
तस्य दोषं न गृह्णाति ताडिता तुष्यते पुनः। भर्त्तुकर्मसु सर्वेषु पुरतस्तिष्ठते सदा॥२३॥
सा चापि कथ्यते नारी पतिव्रतपरायणा। पतितोऽपि पितापुत्रैर्बहुदोषसमन्वितः॥२४॥
कस्मादपि च न त्याज्यःकुष्ठितःक्रुधितोऽपि वा।
एवं पुत्राःशुश्रूषन्ति पितरं मातरं किल॥२५॥
ते यान्ति परमंलोकं तद्विष्णोःपरमं पदम्। एवं हि स्वामिनं ये वै उपाचरन्तिभृत्यकाः॥२६॥

पद्मावती ने कहा— तुमने मेरे शरीर और धर्म का नाश किया है। मैं पतिव्रता, पति की कामना करने वाली, साध्वी एवं तपस्विनी हूँ॥१३॥ अरे पापी! मैं अपने धर्म में स्थित हूँ तुमने मेरे धर्म का नाश कर दिया। इसीलिए दुष्ट! तुमको भस्म करूँगी। इसमें कोई संशय नहीं है॥१४॥ **गोभिल ने कहा—** यदि आप धर्म की बातें करती हैं तो मैं धर्म को ही बतलाता हूँ। हे राजकुमारी! अग्नि का चयन करने वाले ब्राह्मण का धर्म सुनो॥१५॥ जो दोनों समय देवताओं की आहुति देने वाला, कभी अपनी यज्ञशाला का त्याग नहीं करता है, प्रतिदिन अग्नि का यजन करता है, वह अग्निहोत्री होता है॥१६॥ हे वरानने! मैं भृत्य का भी धर्म बतलाता हूँ। जो मन, वाणी एवं कर्म से सदा विशुद्ध होता है॥१७॥ अपने स्वामी के आदेश का पालन करता है, उसके आगे पीछे बना रहता है, हे देवि! वह पुण्यवान् भृत्य कहलाता है॥१८॥ जो गुणी, ज्ञानी पुत्र अपने माता-पिता का पालन मन, वाणी और कर्म से करता है, उसको गङ्गा में स्नान करने का प्रतिदिन फल प्राप्त होता है। जो पुत्र इसके विपरीत आचरण करता है, वह पापी होता है॥१९-२०॥ इससे भिन्न पतिव्रत धर्म को भी मैं बतलाता हूँ। हे भामिनि! जो नारी, मन, वाणी तथा कर्म से प्रतिदिन अपने पति की सेवा करती है। पति के प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है तथा जो क्रोधी पति का भी कभी परित्याग नहीं करती है॥२१-२२॥ वह अपने पति के दोषों को नहीं देखती है, पति के मारने पर भी प्रसन्न ही रहती है, पति के सभी कर्मों में वह उनके सामने रहती है॥२३॥ ऐसी ही नारी पतिव्रत परायण कहलाती है। पति के पतित, पिता-माता के अनेक अपराधों को करने वाले कोढी तथा क्रोधी होने पर भी उसे नहीं त्यागना चाहिए। इस प्रकार के माता-पिता की जो पुत्र भी सेवा करते हैं॥२४-२५॥ वे

पत्युर्लोकं प्रयान्त्येते प्रसादात्स्वामिनस्तदा। अग्निंनैव त्यजेद्विप्रो ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥२७॥
अग्नित्यागकरो विप्रो वृषलीपतिरुच्यते। स्वामिद्रोहीभवेद्भृत्यःस्वामित्यागात्र संशयः ॥२८॥
अग्निं च पितरं चैव न त्यजेत्स्वामिनं शुभे। सदाविप्रःसुतोभृत्यःसत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२९॥
परित्यज्यप्रगच्छन्ति ते यान्ति नरकार्णवम्। पतितं व्याधितं देवि विकलं कुष्ठिनं तथा ॥३०॥
सर्वकर्मविहीनं च गतवित्तादि सञ्चयम्। भर्तारं न त्यजेन्नारी यदिश्रेय इहेच्छति ॥३१॥
त्यक्त्वा कान्तं व्रजेन्नारी अन्यत्कार्यमिहेच्छति ।
सा मता पुंश्चलीलोके सर्वधर्मबहिष्कृता ॥३२॥
गते भर्तरि या ग्रामं भोगं श‍ृङ्गारमेव च। लौल्याच्च कुरुते नारी पुंश्चली वदते जनः ॥३३॥
एवं धर्मं विजानामि वेदशास्त्रैश्च संमतम्। दानवा राक्षसाःप्रेता धात्रा सृष्टा यदादितः ॥३४॥
तत्रेह कारणं सर्वं प्रवक्ष्यामि न संशयः। ब्राह्मणा दानवाश्चैव पिशचाश्चैवराक्षसाः ॥३५॥
धर्मार्थं सकलं प्रोक्तमधीतंतैस्तु सुन्दरि। विन्दन्तिसकलं सर्वे आचरन्ति न दानवाः ॥३६॥
विधिहीनं प्रकुर्वन्ति दानवा ज्ञानवर्जिताः। अन्यायेन व्रजन्त्येते मानवा विधिवर्जिताः ॥३७॥
तेषां शासनहेत्वर्थं कृता एतेऽपि नान्यथा। विधिहीनं प्रकुर्वन्ति ये हि धर्मं नराधमाः ॥३८॥
तान्वयं शासयामो वै दण्डेन महता किल। भवत्या दारुणं कर्म कृतमेव सुनिर्घृणम् ॥३९॥
गार्हस्थ्यं च परित्यज्य अत्रायाता किमर्थतः। वदत्येवं मुखेनापि अहं हि पतिदेवता ॥४०॥
कर्मणानास्ति तद्दृष्टं पतिदैवत्यमेव ते। भर्तारं तं परित्यज्य किमर्थं त्वमिहागता ॥४१॥

भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं। इसी प्रकार से जो भृत्य अपने स्वामी की सेवा करते हैं ॥२६॥ वे अपने स्वामी की कृपा से स्वामियों के लोक में जाते हैं। जो ब्राह्मण कभी अग्नि का परित्याग नहीं करता है वह ब्रह्मलोक में जाता है ॥२७॥ अग्नि का परित्याग करने वाला ब्राह्मण वेश्यागामी कहलाता है। स्वामी का त्याग करने वाला भृत्य स्वामिद्रोही कहलाता है ॥२८॥ हे शुभे ! ब्राह्मण को अग्नि का, पुत्र को माता-पिता का तथा भृत्य को स्वामी का कभी त्याग नहीं करना चाहिए। यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥२९॥ इन सबों का परित्याग करने वाले ब्राह्मण, पुत्र तथा भृत्य नरकगामी होते हैं। यदि नारी इस संसार में कल्याण चाहती है तो वह पतित, रोगी, विकल, कुष्ठी, सभी कर्मों से रहित, धन संपत्ति से रहित भी पति का कभी त्याग न करे ॥३०-३१॥ जो नारी किसी दूसरे कार्य को करने के लिए अपने पति को छोड़कर अन्यत्र जाती है वह वेश्या हो जाती है। वह संसार में सभी शुभ कर्मो में निषिद्ध पुंश्चली कहलाती है ॥३२-३३॥ मैं वेदशास्त्रानुकूल इस प्रकार से धर्म को जानता हूँ। शुरू में ब्रह्माजी ने जब दानव, राक्षस और प्रेत की सृष्टि की ॥३४॥ उसके सम्पूर्ण कारणों को मैं बतलाता हूँ। ब्राह्मण, दानव, पिशाच और राक्षस ॥३५॥ हे सुन्दरि ! उन सबों के जो धर्म बतलाये गये हैं उन धर्मो का उन सबों ने अध्ययन किया। सभी दानव उन सबों को जानते हैं किन्तु वे धर्मों का आचरण नहीं करते हैं ॥३६॥ अज्ञानी विधि हीन कर्मों को करते हैं। जो मानव विधिहीनता तथा अन्याय मार्ग से चलते हैं ॥३७॥ उनका प्रशासन करने के लिए ही ब्रह्माजी ने इन सबों की सृष्टि की है। जो नराधम विधि से रहित धर्माचरण करते हैं ॥३८॥ उन सबों को महान दण्ड देकर हमलोग उनका प्रशासन करते हैं। तुमने अत्यन्त भयङ्कर तथा निष्ठुर कर्म किया है ॥३९॥ अपने गार्हस्थ्य का परित्याग करके तुम यहाँ पर किसलिए आयी हो ?॥४०॥ तुम्हारे देवता तो तुम्हारे पति

शृङ्गारं भूषणं वेषं कृत्वा तिष्ठसि निर्घृणा। किमर्थं हि कृतं पापे कस्य हेतोर्वदस्व मे ॥४२॥
निशङ्का वर्त्तसे चापि प्रमत्ता गिरिकानने। मया त्वं साधिता पापा दण्डेन महताशृणु ॥४३॥
अधर्मचारिणी दुष्टा पतिं त्यक्त्वा समागता। क्वास्ते तत्पतिदेवत्वं दर्शयत्वं ममाग्रतः ॥४४॥
भवती पुंश्चली नाम यया त्यक्तःस्वकःपतिः ।
पृथक्छय्या यदानारी तदा सा पुंश्चलीमता ॥४५॥
योजनानां शतैकस्य सोऽन्तरेण प्रवर्त्तते। क्वास्ति ते पतिदैवत्यं पुंश्चल्याचारचारिणी ॥४६॥
निर्लज्जे निर्घृ णे दुष्टे कि मे वदसिसं मुखी ।
तपसःक्वास्ति ते भावः क्व तेजो बलमेव च ॥४७॥
दर्शयस्व ममाद्यैव बलवीर्य पराक्रमम् ॥४८॥

पद्मावत्युवाच

स्नेहेनापि समानीता श्रूयतामसुराधम। भर्तुर्गेहादहं पित्रा क्वास्ते तत्र च पातकम् ॥४९॥
नैव कामान्नलोभाच्च न मोहन्न च मत्सरात् ।
आगताऽहं पतिं त्यक्त्वा पतिभावेन संस्थिता ॥५०॥
मर्तृरूपच्छलेनापि त्वयैव परिवञ्चिता। भवन्तं माथुरंज्ञात्वा गताऽहं सम्मुखं तव ॥५१॥
मायाविनं यदा जाने त्वामेवं दानवाधम। एकेन हुङ्कृतेनैव भस्मीभूतं करोम्यहम् ॥५२॥

गोभिल उवाच

चक्षुर्हीना न पश्यन्ति मानवाः शृणु साम्प्रतम् ।
धर्मनेत्रविहीना त्वं कथं जानासि मामिह ॥५३॥

हैं, तुमने अपने कर्मों से उनको नहीं देखा। अपने इस प्रकार के पति को छोड़कर तुम यहाँ क्यों आयी हो?॥४१॥ तुम निष्ठुर हो, शृङ्गार और वेष से सजकर यहाँ रहती हो। अरे पापिनी ! तुमने यह सब क्यों किया ? मुझे बतलाओ ॥४२॥ तुम पर्वतों तथा वनों में निःशङ्क रहती हो, इसीलिए मैंने तुमको पाप रूपी दण्ड से दण्डित किया है। ॥४३॥ तुम अधर्म का आचरण करने वाली हो, पति को छोड़कर यहाँ आयी हो। तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ? दिखाओ मुझे ॥४४॥ चूँकि तुम अपने पति को छोड़कर आयी हो अतएव तुम वेश्या हो। जब नारी पति की शय्या से भिन्न शय्या पर सोती है, उसी समय वह वेश्या हो जाती है॥४५॥ तुम्हारा पति यहाँ से सैकड़ों योजन दूर है। अतएव कहाँ तुम्हारा पतिव्रत्य रहा ? तुम तो वेश्या का आचरण करती हो ॥४६॥ अरी निर्लज्ज ! निष्ठुर दुष्टे ! मेरे सामने तुम क्या बोल रही हो तुम्हारा तपस्या का भाव कहाँ है ? तथा तुम्हारे तेज का बल कहाँ है ?॥४७॥ आज तुम अपना बल और पराक्रम दिखाओ। **पद्मावती ने कहा—** हे असुराधम ! तुम मेरी बात सुनो मैं स्नेह के कारण यहाँ लाीय गयी हूँ॥४८॥ मेरे पिता ने मुझे मेरे पति के घर से लाया है, इसमें कौन सा पाप है ? मैं काम, लोभ, मोह अथवा द्वेष के कारण पति को छोड़कर नहीं आयी हूँ। मैं सदा पति की भावना से भावित रहती हूँ। तुमने भी मेरे पति का ही रूप बनाकर मेरे साथ छल किया है ॥४९-५०॥ तुमको मथुराधिपति ही समझकर मैं तुम्हारे सामने आयी। हे दानवाधम ! जब मैंने तुमको मायावी समझती हूँ ॥५१॥ मैं अपने एक ही हुंकार से तुम्हें भस्म कर दे रही हूँ **गोभिल ने कहा—** सुनो ! नेत्रहीनों को कुछ दिखायी नहीं पड़ता है ॥५२॥

यदा ते भाव उत्पन्नः पितुर्गेहं प्रतिशृणु । पतिध्यानं परित्यज्य मुक्ताध्यानेन त्वं तदा ॥५४॥
ज्ञाननेत्रं तदानष्टं स्फुटं च हृदये तव । कथं मां त्वं विजानासि ज्ञानचक्षुर्हता भुवि ॥५५॥

कस्या माता पिता भ्राता कस्याः स्वजनबान्धवाः ।
सर्वस्थाने पतिर्ह्येको भार्यायास्तु न संशयः ॥५६॥
इत्युक्त्वा हि प्रहस्यैव गोभिलो दानवाधमः ।
न भयं विद्यते तेऽद्य ममापि शृणु पुंश्चलि ॥५७॥

किं भवेत्तव शापेन वृथैव परिकम्पसे । मम गेहं समाश्रित्य भुङ्क्ष्वभोगान्मनोऽनुगान् ॥५८॥

पद्मावत्युवाच

गच्छ पापसमाचार किं त्वं वदसि निर्घृणः। सतीभावेन संस्थास्मि पतिव्रतपरायणा ॥५९॥
धक्ष्यामि त्वां महापाप यद्येवं तु वदिष्यसि। एवमुक्त्वा तथैकान्ते निषसाद महीतले ॥६०॥
दुःखेन महताविष्टां तामुवाच सगोभिलः। तवोदरे मया न्यस्तं स्ववीर्यं सुकृतं शुभे ॥६१॥
तस्मादुत्पत्स्यते पुत्रस्त्रैलोक्यक्षोभकारकः। एवमुक्त्वाजगामाथ गोभिलोदानवस्तदा॥६२॥
मते तस्मिन्दुराचारे दानवे पापचारिणि। दुःखेन महताविष्टा नृपकन्या रुरोद ह ॥६३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

तुम तो धर्मरूपी नेत्र से हीन हो मुझको कैसे जान सकती थी ?। जब तुम्हारे मन में अपने पिता के घर के प्रति भाव उत्पन्न हुआ ॥५३॥ उसी समय पति के ध्यान को छोड़ने से ध्यान मुक्त हो गयी । उसके कारण तुम्हारे हृदय में रहने वाला तुम्हारा ज्ञान नेत्र नष्ट हो गया ॥५४॥ **पद्मावती ने कहा**— तुम कैसे जानते हो कि मेरा ज्ञान विनष्ट हो गया है ? माता, पिता, भाई तथा बान्धवर किसके होते हैं ॥५५॥ निश्चित है कि इन सबों के स्थान में अकेला पति ही होता है । इस तरह से कहकर गोभिल नामक दानवधम ने कहा— अरी पुंश्चली मुझको कोई भी भय नहीं है । तुम व्यर्थ ही काँप रही हो । तुम्हारे शाप से मुझे कुछ नहीं होगा॥५६-५७॥ तुम मेरे घर में रहकर अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगो । **पद्मावती ने कहा**— ऐ निष्ठुर! तुम यहाँ से चले जाओ तुम क्या बोल रहे हो ?॥५८॥ मैं सतीभाव से स्थित पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली हूँ । अरे पापी यदि इस तरह से बोलोगे तो मैं तुम्हें भस्म कर दूँगी ॥५९॥ इस तरह से कहकर वह एकान्त में पृथिवी पर बैठ गयी । अत्यधिक दुखिनी उसको गोभिल ने कहा ॥६०॥ हे शुभे ! तुम्हारे गर्भ में मैंने अपने वीर्य का आधान कर दिया है । उससे त्रैलोक्य को क्षुब्ध कर देने वाला पुत्र उत्पन्न होगा॥६१॥ यह कहकर गोभिल वहाँ से चला गया । उस दुराचारी पापी दानव के चले जाने पर ॥६२॥ वह राज कन्या अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगी ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५०॥

एकावनवाँ अध्याय

ब्राह्मण्युवाच

गते तस्मिन्दुराचारे गोभिले पापचेतसि। पद्मावती रुरोदाथ दुःखेन महतान्विता ॥१॥
तस्यास्तु रुदितं श्रुत्वा सख्यःसर्वा द्विजोत्तम। पप्रच्छुस्तां राजकन्यां ताःसर्वाश्च वराननाः ॥२॥
कस्माद्रोदिषिभद्रं ते कथयस्व हि चेष्टितम्। क्व गतोऽसौ महाराजो माथुराधिपतिस्तव॥३॥
येन त्वं हि समाहूता प्रियेत्युक्त्वा वदस्व नः ।
ता उवाच सुदुःखेन रोदमाना पुनःपुनः ॥४॥
तया आवेदितं सर्वं यज्जातं दोषसम्भवम्। ताभिर्नीता पितुर्गेहं वेपमाना सुदुःखिता ॥५॥
मातुः समक्षं तस्यास्तु आचचक्षुस्तदा स्त्रियः ।
समाकर्ण्य ततो देवी गता स भर्तृमन्दिरम् ॥६॥
भर्तारं श्रावयामास सुता वृतान्तमेव हि। समाकर्ण्य ततो राजा महादुःखी व्यजायत ॥७॥
यानाच्छादनकं दत्त्वा परिवार समन्विताम्। मथुरां प्रेषयामास गता सा प्रियमन्दिरम् ॥८॥
सुतादोषं समाच्छाद्य पितामाताद्विजोत्तमः। उग्रसेनस्तुधर्मात्मा पद्मावतीं समागताम्॥९॥
स दृष्ट्वा मुमुदे चाशु उवाचेदं वचः पुनः । त्वया बिना न शक्तोऽस्मि जीवितुं हि वरानने॥१०॥
बहुप्रभासि मे प्रीता गुणशीलैस्तुसर्वदा। भक्त्या सत्येन ते कान्ते पतिदैवत्यकैर्गुणैः ॥११॥
समाभाष्य प्रियां भार्यां पद्मावतींनरेश्वरः । तया सार्धं स वै रेमे उग्रसेनो नृपोत्तमः ॥१२॥
ववृधे दारुणो गर्भःसर्वलोक भयप्रदः । पद्मावती विजानाति तस्य गर्भस्य कारणम्॥१३॥

वसुदत्त द्वारा अपनी पुत्री सुदेवा का परित्याग

ब्राह्मणी ने कहा— उस पापी गोभिल के चले जाने पर अत्यन्त दुःखी होकर पद्मावती रोने लगी॥१॥ उसके रुदन को सुनकर उसकी सुन्दरी सखियों ने उसके रुदन का कारण पूछा ॥२॥ तुम्हारा कल्याण हो तुम क्यों रो रही हो ? तुम अपनी चेष्टाओं को बतलाओ । मथुरा के अधिपति और तुम्हारे स्वामी कहाँ गये?॥३॥ उन्होंने तुम्हें प्रिये ! कहकर बुलाया था । पद्मावती ने बार-बार रोकर उन सबों से कहा ॥४॥ उसने उन सबों को उन सारी बातों को बतलाया जो पाप हो गया था । काँपती हुयी और अत्यन्त दुःखी उसको सखियाँ उसके पिता के घर लायीं ॥५॥ उसकी माता के समक्ष उन सखियों ने सारी बातों को बतलाया । इन बातों को सुनकर पद्मावती की माँ अपने पति के पास गयी ॥६॥ उसने अपनी पुत्री के सारे वृत्तान्तों को बतलाया । उसको सुनकर राजा सत्यकेतु बहुत दुःखी हुए ॥७॥ पान तथा वस्त्रादि देकर परिवार के साथ उन्होंने उसे मथुरा भेज दिया और वह अपने पति के घर आयी । हे द्विजोत्तम ! अपनी पुत्री के दोष को छिपाकर उसके माता-पिता उसे भेज दिए । धर्मात्मा उग्रसेन आयी हुयी पद्मावती को देखकर प्रसन्न हो गये और कहे हे वरानने ! तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता हूँ ॥८-१०॥ तुम बहुत कान्ति सम्पन्न हो अपने गुण तथा शील के कारण मुझे प्रिय हो प्रिये ! पति दैवत गुणों के कारण तथा तुम्हारी भक्ति के कारण ॥११॥ इस प्रकार से अपनी प्रिय पत्नी को कहकर उग्रसेन उसके साथ रमण किए ॥१२॥ इसके बाद सम्पूर्ण जगत् को भयभीत करने वाला गर्भ बढ़ गया । उस गर्भ का कारण पद्मावती जानती थी ॥१३॥

स्वोदरे वर्द्धमानस्य चिन्तयन्ती दिवानिशम् । अनेन किमुजातेन लोकनाशकरेण वै ॥१४॥
अनेनापि न मे कार्यं दुष्टपुत्रेण साम्प्रतम् । ओषधीं पृच्छते सा तु गर्भपातस्य सर्वतः ॥१५॥
नारी महौषधी सा हि विन्दन्ती च दिनेदिने। गर्भस्य पातनायैव उपाया बहुशःकृताः ॥१६॥
ववृधे दारुणोगर्भःसर्वलोक भयङ्करः। तामुवाच ततो गर्भःपद्मावतीं च मातरम् ॥१७॥
कस्मात्त्वं व्यथसे मातरोषधीभिर्दिनेदिने। पुण्येन वर्द्धते चायुःपापेनाल्पं तु जीवितम् ॥१८॥

आत्मकर्म विपाकेन जीवन्ति च म्रियन्ति च ।
आमगर्भाःप्रयान्त्यन्ये अपक्वास्तु महीतले ॥१९॥
जातमात्राम्रियन्तेऽन्ये कति ते यौवनान्विताः ।
बालावृद्धाश्चतरुणा आयुषो वशतां गताः ॥२०॥

सर्वे कर्मविपाकेन जीवन्ति च मियन्ति च । ओषध्यो मन्त्रदेवाश्च निमित्ताःस्युर्न संशयः ॥२१॥

मामेव हि न जानासि भवती यादृशो ह्यहम् ।
दृष्टःश्रुतस्त्वया पूर्वंकालनेमि महाबलः ॥२२॥

दानवानां महावीर्यस्त्रैलोक्यस्य भयप्रदः । देवासुरे महायुद्धे हतोऽहं विष्णुना पुरा ॥२३॥
साधयितुं च तद्वैरमागतोऽस्मि तवोदरम्। साहसं च श्रमं मातर्माकुरुष्व दिने दिने ॥२४॥
एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठ मातरं विरराम सः । मातोद्यमं परित्यज्य महादुःखादभूत्तदा ॥२५॥
दशाब्दाश्च गता यावत्तावद्वृद्धिमवाप्तवान्। पश्चाज्जज्ञे महातेजाःकंसोऽभूत्समहाबलः ॥२६॥

येन सन्त्रासिता लोकास्त्रैलोक्यस्य निवासिनः ।
यो हतो वासुदेवेन गतो मोक्षं न संशयः ॥२७॥

एवं श्रुतं मयाकान्त भविष्यं तु भविष्यति। पुराणेष्वेव सर्वेषु निश्चितं कथितं तव॥२८॥

अपने उदर में बढ़ते हुए गर्भ के विषय में पद्मावती रात-दिन सोचती थी । लोक का नाश करने वाले इस पुत्र के उत्पन्न होने से कौन सा लाभ है ? वह सर्वत्र गर्भपात करने वाली औषधि को पूछती थी ॥१४-१५॥ वह नारी प्रतिदिन गर्भपात कराने वाली औषधि का सेवन करती थी । इसके लिए उसने बहुत से उपायों को भी किया ॥१६॥ किन्तु सम्पूर्ण संसार के लिए भयङ्कर वह गर्भ बढ़ता गया । उसके बाद उस गर्भ ने अपनी माता पद्मावती से कहा ॥१७॥ हे माँ ! तुम प्रतिदिन औषधियों से मुझे क्यों पीड़ित करती हो ? पुण्य से आयु बढ़ती है और पाप से आयु घटती है ॥१८॥ अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप ही जीव जीते और मरते हैं । औषधि, मन्त्र तथा देवता तो उसके निमित्त मात्र होते हैं ॥१९-२१॥ मैं जैसा हूँ उसे आप नहीं जानती हैं । तुमने पहले कालनेमि को देखा और सुना भी है वह महाबलवान् था ॥२२॥ वह दानवों में महापराक्रमी और त्रैलोक्य को भयभीत करने वाला था । पहले देवासुर संग्राम में विष्णु ने मुझे मार दिया था ॥२३॥ उस वैर का बदला लेने के लिए मैं तुम्हारे उदर में आया हूँ । हे माँ ! प्रतिदिन साहस और श्रम मत करो॥२४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! इस प्रकार से अपनी माता से कहकर वह चुप हो गया । माता भी अपने प्रयास का परित्याग करके अत्यन्त दुःखी हो गयी ॥२५॥ वह गर्भ दश वर्षों तक बढ़ता रहा । उसके बाद वह उत्पन्न हुआ और वह कंस नामक महाबलवान् दैत्य हुआ ॥२६॥ उसने त्रैलोक्य में रहने वाले जीवों का संत्रस्त कर दिया । उसको भगवान् वासुदेव ने मारा और वह मुक्त हो गया ॥२७॥ हे कान्त ! मैंने ऐसा ही सुना है कि जो होने

पितृगेहे स्थिता कन्या नाशमेवं प्रयाति सा। गृहावासाय मे कान्त कन्यामोहं न कारयेत् ॥२९॥
इमां दुष्टां महापापां परित्यज्य स्थिरो भव। प्राप्तव्यं तु महापापं दुःखं दारुणमेव च ॥३०॥
लोके श्रेयस्करं कान्त तद्भुङ्क्ष्व त्वं मया सह ॥३१॥

शूकर्युवाच

एतद्वाक्यंसुमन्त्रं तु श्रुत्वा स हि द्विजोत्तमः। त्यागे मतिं चकारासौ समाहूता ह्यहं तदा॥३२॥
सकलं वस्त्रशृङ्गारं ममदत्तं शुभे शृणु। तवैव दुर्नयैर्विप्रःशिवशर्माद्विजोत्तमः ॥३३॥
गतो वै मतिमान्दुष्टे कुलदुष्ट प्रचारिणि। यत्र ते तिष्ठते तत्र गच्छ न संशयः॥३४॥
तव यद्रोचते स्थानं यथादिष्टं तथा कुरु। एवमुक्त्वा महाभागे पितृमातृ कुटुम्बकैः ॥३५॥
परित्यक्ता गताशीघ्रं निर्लज्जाहं वरानने। न लभाम्यहमेवापि वासस्थानं सुखं शुभे॥३६॥
भर्त्सयन्ति च मां लोकाःपुंश्चलीयं समागता। अटमाना गतादेशात्कुलमानेन वर्जिता॥३७॥
देशे गुर्जरके पुण्ये सौराष्ट्रे शिवमन्दिरे। वनस्थलेति विख्यातं नगरं वृद्धिसङ्कुलम्॥३८॥
अतीव पीडिता देवि क्षुधयाहं तदा शृणु। कर्परं हि करेगृह्य भिक्षार्थमुपचक्रमे ॥३९॥
गृहिणां द्वारदेशेषु प्रविशामि सुदुःखिता। ममरूपंविपश्यन्ति लोकाःकुत्सन्ति भामिनि॥४०॥
न ददते च मे भिक्षां पापाचेयं समागता। एवं दुःख समाहारा दारिद्र्य परिपीडिता॥४१॥
अटन्त्या च मया दृष्टं गृहमेकमनुत्तमम्। तुङ्ग प्राकार संवेष्टं वेदशालासमन्वितम्॥४२॥
वेदध्वनिसमाकीर्णं बहुविप्रसमाकुलम्। धनधान्य समाकीर्णं दासीदासैरलङ्कृतम्॥४३॥

वाला होगा वह होयेगा ही। सभी पुराणों में निश्चित करके यह कहा गया है ॥२८॥ जो कन्या अपने पिता के घर में रहती है उसका नाश हो जाता है। हे कान्त ! घर में वसाने के लिए कन्या का मोह नहीं करना चाहिए ॥२९॥ इस महापापिनी दुष्टा का परित्याग करके आप स्थिर हो जायँ। महापाप और भयङ्कर दुःख तो मिलना ही है ॥३०॥ हे कान्त ! आप मेरे साथ लोक कल्याणकारी कर्मों का भोग करें। **शूकरी ने कहा—** इस तरह सुन्दर विचार रूप वाक्य को सुनकर वे द्विजोत्तम ॥३१॥ मेरा त्याग करने का निश्चय कर लिए। उन्होंने मुझको बुलाया। उन्होंने मेरे सम्पूर्ण वस्त्रों और शृङ्गार सामग्रियों को दे दिया और कहा दुष्टे! तुम्हारी ही दुर्नीति के कारण द्विजोत्तम विप्र शिवशर्मा चले गये। तुम वंश को दूषित करने वाली हो। तुम वहीं चली जाओ जहाँ पर तुम्हारे पति रहते हैं। तुमको जो स्थान अच्छा लगे, वहाँ जाओ और जो अच्छा लगे वही करो ॥३२-३४॥ हे महाभागे ! माता-पिता और कुटुम्बीजनों के द्वारा इस तरह त्यागी जाने पर मैं निर्लज्ज वहाँ से चली गयी ॥३५॥ घूमती हुई मुझको कोई सुखद अच्छा स्थान नहीं मिला। लोग यह पुंश्चली आयी है कहकर मेरी भर्त्सना करते थे ॥३६॥ कुल और मान से रहित मैं घूमती हुयी देश से बाहर चली गयी। मैं गुर्जर प्रदेश के सौराष्ट्र के शिव मन्दिर में गयी ॥३७॥ वहाँ पर वनस्थला नाम से विख्यात समृद्ध नगर था। हे देवि ! मैं उस समय भूख से अत्यन्त पीड़ित थी ॥३८॥ अपने हाथ में खप्पर लेकर मैं भीख माँगने लगी। अत्यन्त दुःखी मैं गृहस्थों के द्वार पर जाती थी ॥३९॥ लोग मेरे रूप को देखते थे और मुझको कोसते थे। वे मुझे भिक्षा नहीं देते थे और कहते थे यह पापिनी आयी है ॥४०॥ इस तरह दुःख समूह तथा द्रारिद्रय से पीड़ित घूमती हुयी मैंने एक सुन्दर गृह देखा ॥४१॥ उसकी चाहारदिवारी ऊँची

प्रविवेश गृहं रम्यं लक्ष्मीमुदितमेवतत्। तद्गृहं सर्वतोभद्रं तस्यैव शिवशर्मणः ॥४४॥
भिक्षां देहीत्युवाचाथ सुदेवा दुःखपीडिता। शिवशर्माथ शुश्राव भिक्षाशब्दं द्विजोत्तमः॥४५॥
मङ्गलां नाम वै भार्यां लक्ष्मीरूपां वराननाम् ।
तां हसन्प्राह धर्मात्मा शिवशर्मा महामतिः ॥४६॥
इयं हि दुर्बला प्राप्ता भिक्षार्थं द्वारमागता। समाहूय प्रिये चैनां देहि त्वं भोजनं शुभे॥४७॥
कृपया परयाऽऽविष्टा ज्ञात्वा मां तु समागताम् ।
प्रोवाच मङ्गला कान्तं दास्यामि प्रियभोजनम् ॥४८॥
एवमुक्त्वा च भर्तारं मङ्गला मङ्गलान्विता । पुनर्माभोजयामास मिष्टान्नेन सुदुर्बलाम् ॥४९॥
मामुवाचसधर्मात्मा शिवशर्मा महामुनिः । का त्वमत्र समायाता कस्य वा भ्रमसे जगत् ॥५०॥
केन कार्येण सर्वत्र कथयस्व ममाग्रतः । एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं भर्तुश्चैव महात्मनः ॥५१॥
स्वरेण लक्षितःकान्तो मया वै पापया तदा। व्रीडयाधोमुखी जाता दृष्टो भर्ता यदा मया॥५२॥
मङ्गला चारुसर्वाङ्गी भर्तारमिदमब्रवीत् ।
काचेयं हि समाचक्ष्व त्वांदृष्ट्वा हि विलज्जति ॥५३॥
कथयस्व प्रसादेन का च एषा भविष्यति ॥५४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे एकपञ्चशततमोऽध्यायः ॥५१॥

थी और उसमें वेदशाला थी । उसमें बहुत से विप्र रहते थे और वेदध्वनि करते थे ॥४२॥ वह धन धान्य से तथा दासियों एवं दासों से परिपूर्ण था । मैं उस मनोहर गृह में प्रवेश कर गयी । वह लक्ष्मी से परिपूर्ण था ॥४३॥ वह गृह सब प्रकार से मनोहर था । वह शिवशर्मा का ही गृह था । अत्यन्त दुःखी सुदेवा ने कहा भिक्षा दो ॥४४॥ द्विजश्रेष्ठ शिवशर्मा ने भिक्षा शब्द को सुना । उन्होंने मङ्गला नाम की लक्ष्मी स्वरूपिणी अपनी पत्नी से ॥४५॥ हँसते हुए कहा— यह अत्यन्त दुर्बल और भिक्षा के लिए द्वार पर आयी है ॥४६॥ हे प्रिये ! इसको बुलाकर तुम भोजन दे दो । यह श्रेष्ठ कृपा से आविष्ट मुझको जानकर आयी है ॥४७॥ मङ्गला ने कहा— हे कान्त ! मैं इसको प्रिय भोजन देती हूँ । इस तरह से अपनी पति से कहकर मङ्गलमयी मङ्गला ॥४८॥ उसके बाद अत्यन्त दुर्बल हुयी मुझको भोजना कराया । महामुनि शिवशर्मा ने मुझको कहा॥४९॥ तुम कौन हो और कैसे यहाँ आयी हो ? तुम किसकी हो ? और पृथिवी पर क्यों भ्रमण करती हो ? तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? मुझे बतलाओ ॥५०॥ इस प्रकार से अपने स्वामी के वाक्य को सुनकर उनके स्वर से पापिनी मैंने जान लिया कि ये मेरे स्वामी हैं ॥५१॥ जब मैंने अपने पति को देखा तो मैंने लज्जा से अपना मुख नीचे कर लिया । सर्वाङ्ग सुन्दरी मङ्गला ने अपने पति से कहा ॥५२॥ आप बतलायें यह कौन है ? आपको देखकर लज्जित होती है । आप कृपा पूर्वक बतलायें कि यह कौन है ?॥५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५१॥

बावनवाँ अध्याय

शिवशर्मोवाच

मङ्गले श्रूयतां वाक्यं यदि पृच्छसि साम्प्रतम्। यदर्थं हि त्वया पृष्टं तन्निबोध वरानने॥१॥
इयं हि साम्प्रतं प्राप्ता वराकी भिक्षुरूपिणी ।
वसुदत्तस्य विप्रस्य सुतेयं चारुलोचने ॥२॥
सुदेवा नाम भद्रेयं मम जाया प्रिया सदा। केनापि कारणेनैव देशं त्यक्त्वा समागता ॥३॥
मम दुःखेन दग्धेयं वियोगेन वरानने। मां ज्ञात्वा तु समायाता भिक्षुरूपेण ते गृहम् ॥४॥
एवं ज्ञात्वा त्वया भद्रे आतिथ्यं परिशोभितम् ।
कर्त्तव्यं न च सन्देह इच्छन्त्या मम सुप्रियम् ॥५॥
भर्तुवाक्यं निशम्यैव मङ्गलापतिदेवता। हर्षेण महताविष्टा स्वयमेव सुमङ्गला॥६॥
स्नानाच्छादनं भोज्यं च मम चक्रे वरानने । रत्नकाञ्चनयुक्तैश्चाभरणैश्च पतिव्रता ॥७॥
अहं हि भूषिता भद्रे तथैव पतिकाम्यया । तयाहं भूषिता देवि मानस्नानैश्च भोजनैः ॥८॥
भर्त्राहं मानिता देवि जातं दुःखमनन्तकम्। ममोरसि महातीव्रं सर्वप्राणिविनाशनम्॥९॥
तस्यामानो मया दृष्टो दुःखमात्मगतं तथा। चिन्ता मे दारुणा जाता यया प्राणा व्रजन्ति मे॥१०॥
कदापि वचनं दत्तं न मया पापया शुभम्। अस्यैव विप्रवर्यस्य आचरन्त्या च दुष्कृतम्॥११॥
पादप्रक्षालनं नैव अङ्गसंवाहनं न हि। एकान्तं न मयादत्तं तस्यैव हि महात्मनः॥१२॥
सम्भाषां कथमस्यैव करिष्ये पापनिश्चया । रात्रौचैव तदा तत्र पतिता दुःखसागरे ॥१३॥

अपनी सौत मङ्गला के पातिव्रत्य को देखकर सुदेवा की मृत्यु और शूकरी होना, और इक्ष्वाकु की पत्नी से एक वर्ष का पुण्य प्राप्त करके उसका स्वर्गारोहण करना

शिवशर्मा ने कहा— हे मङ्गले ! यदि तुम पूछती हो तो मेरी बात सुनो । हे सुन्दरि ! तुमने जो पूछा है उसे जान लो ॥१॥ इस समय यह बेचारी भिक्षुणी आयी है । हे सुन्दर नेत्रों वाली ! यह वसुदत्त की पुत्री है ॥२॥ इसका नाम सुदेवा है । यह मेरी पत्नी है । यह किसी कारण वश अपना देश त्याग कर आयी है ॥३॥ मुझको जानकर यह भिक्षु के रूप में तुम्हारे घर आयी है ॥४॥ हे भद्रे ! इस बात को जानकर यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो तो तुम्हें अच्छी तरह से इसका आतिथ्य करना चाहिए ॥५॥ अपने पति की बातों को सुनकर पति को ही देवता मानने वाली मङ्गला अत्यन्त हर्षित हुयी ॥६॥ उसने मुझको स्नान, वस्त्र तथा भोजन इत्यादि कराया । उस पतिव्रता ने सुवर्ण और रत्न युक्त आभरणों को प्रदान किया ॥७॥ पति को चाहने वाली उसने मुझको अलंकृत किया । हे देवि ! उसने मुझको सम्मान, स्नान तथा भोजन से भूषित किया ॥८॥ हे देवि ! पति ने मेरा सम्मान किया । उससे मुझे अत्यन्त दुःख हुआ, मेरे हृदय और प्राणों को विनष्ट करने वाला मुझे अत्यन्त तीव्र दुःख हुआ ॥९॥ मैंने उसके मान को देखा तथा मेरे मन में अनन्त दुःख हुआ । मुझको भयङ्कर चिन्ता हुयी जिससे मेरे प्राण निकलने लगे ॥१०॥ मैंने सोचा कि पापिनी मैं इनसे कभी शुभ वचन भी नहीं बोली । मैं इन विप्रवर्य का पाप करती रही ॥११॥ मैंने तो इनका कभी पैर धोया, न इनके शरीर को दबाया और न इन महात्मा को मैंने कभी एकान्त प्रदान किया॥१२॥

एवं हि चिन्तमानाया:स्फुटितं हृदयं मम । गता:प्राणास्तदा कायं परित्यज्य वरानने ॥१४॥
तत्र दूता:समायाता धर्मराजस्य वै तदा । वीराश्च दारुणा:क्रूरा गदाचक्रासिधारिण: ॥१५॥
तैस्तु बद्धा महाभागे मृङ्खलैर्दृढबन्धनै: । नीता यमपुरं तैस्तु रुदमाना सुदु:खिता ॥१६॥
मुद्गरैस्ताड्यमानाहं दुर्गमार्गेण पीडिता । भर्त्स्यमाना यमस्याग्रे तैस्तत्राहं प्रवेशिता ॥१७॥
दृष्टाहं यमराजेन सक्रोधेन महात्मना । अङ्गारसञ्चये क्षिप्ता क्षिप्ता नरकसञ्चये ॥१८॥
लोहस्य पुरुषं कृत्वा अग्निना परितापित: । ममोरसि समुत्क्षिप्तो निजभर्तुश्च वञ्चनात् ॥१९॥
नानापीडातिसन्तप्ता नरकाग्नि प्रतापिता । तैलद्रोण्यां परिक्षिप्ता करम्भ वालुकोपरि ॥२०॥
असिपत्रैश्च संच्छिन्ना जलयन्त्रेण वाहिता । कूटशाल्मलि वृक्षेषु क्षिप्ता तेन महात्मना ॥२१॥
पूयशोणित विष्ठायां पतिता कृमिसङ्कुले । सर्वेषु नरकेष्वेवं क्षिप्ताहं नृपनन्दिनि ॥२२॥
पीडायुक्तेषु तीव्रेषु तेनैवापि महात्मना । करपत्रै:पाटिताहं शक्तिभिस्ताडिता भृशम् ॥२३॥
अन्येष्वेव नरकेषु पातिता नृपनन्दिनि । योगिगर्तेषु क्षिप्तस्मि पतितादु:खसङ्कटे ॥२४॥
धर्मराजेन तेनाहं नरकेषु निपातिता । वल्गुलीयोनिमासाद्य भुक्तं दु:खं सुदारुणम् ॥२५॥
गताहं क्रौष्टुकीं योनिं शुनीयोनिं पुनर्गता । स कुक्कुटीं च मार्जारीमाखुयोनिं गताह्यहम् ॥२६॥
एवं योनि विशेषेषु पापयोनिषु तेन च । क्षिप्तास्मि धर्मराजेन पीडिता सर्वयोनिषु ॥२७॥
तेनैवाहं कृता भूमौ शूकरी नृपनन्दिनि । तवहस्ते महाभागे सन्ति तीर्थान्यनेकश: ॥२८॥
तेनोदकेन सिक्तास्मि त्वयैव वरवर्णिनि । मम पापं गतं देवि प्रसादात्तव सुन्दरि ॥२९॥

अब पापिनी मैं इनसे बातें कैसे करूँगी ? रात्रि में न दु:ख सागर में पड़ गयी ॥१३॥ इस तरह से सोचने वाली मेरा हृदय फट गया । हे वरानने ! शरीर का परित्याग करके मेरे प्राण निकल गये ॥१४॥ उस समय धर्मराज के दूत आये । वे सब भयङ्कर तथा क्रूर आकार वाले थे तथा गदा, चक्र और तलवार धारण किए थे ॥१५॥ उन सबों ने मुझे कसकर सीकड़ में बाँध दिया । रोती हुयी मुझको वे यमपुरी ले गये ॥१६॥ उन सबों के द्वारा मुद्गर से मारी जाती हुयी मैं अत्यन्त कठिन मार्ग से डाँटी जाती हुयी यम के सामने उपस्थित की गयी ॥१७॥ यमराज ने मुझको क्रोध पूर्वक देखा । इसके बाद मैं अङ्गार समूह में डाल दी गयी, फिर नरक कुण्डों में डाली गयी ॥१८॥ अपने पति की वंचना करने के कारण लौह पुरुष को अत्यन्त तप्त करके मेरे हृदय पर डाल दिया गया ॥१९॥ अनेक प्रकार की पीड़ा से तथा नरक की अग्नि से संतप्त मुझको, खौलते हुए तेल के कड़ाह में डाल दिया गया । उसके बाद मुझको जलते हुए बालू के ऊपर फेंक दिया गया ॥२०॥ उसके बाद मैं असिपत्र से काट दी गयी और जलमंत्र से बहा दी गयी । उन महात्मा ने मुझको कंटीले सेमर के वृक्ष पर फेंक दिया ॥२१॥ फिर मैं कीड़ों से भरे हुए पीब, खून तथा विष्ठा में डाल दी गयी । हे राजकुमारी ! इस तरह मैं समस्त नरकों में डाली गयी । उसी के बाद मैं दु:ख भरे योनि रूपी संकीर्ण गढे में डाल दी गयी ॥२२-२४॥ उन धर्मात्मा ने मुझे नरकों में डाल दिया । बल्गु की योनि में जाकर मैंने भयङ्कर कष्ट सहा ॥२५॥ उसके बाद मैं स्यार योनि में गयी, फिर कुत्ते की यानि में गयी । उसके बाद मैं मुर्गे की योनि में गयी, फिर बिल्ली की योनि में, फिर चूहें की योनि में गयी॥२६॥ इस तरह से धर्मराज ने मुझे विभिन्न पाप योनियों में डाला और मैं सभी योनियों में कष्ट सहती रही ॥२७॥ इसके बाद मुझे यमराज ने भूमि पर शूकरी बना दिया गया । हे महाभागे ! तुम्हारे हाथ में अनेक तीर्थ हैं॥२८॥

तवैव तेज:पुण्येन जातं ज्ञानं वरानने। इदानीं मामुद्धरस्व पतितां नरकसङ्कटे ॥३०॥
यदानोद्धरसे देवि पुनर्यास्यामि दारुणम्। नरकं च महाभागे त्राहि मां दुःखभागिनीम्॥३१॥
गताहं पापभावेन दीनाहं च निराश्रया ॥३२॥

सुदेवोवाच

किं कृतं हि मया भद्रे सुकृतं पुण्यसम्भवम् ।
येनाहमुद्धरे त्वां वै तन्मे त्वं वदसाम्प्रतम् ॥३३॥

शूकर्युवाच

अयं राजा महाभागा इक्ष्वाकुर्मनुनन्दनः। विष्णुरेष महाप्राज्ञो भवती श्रीर्हि नान्यथा ॥३४॥
पतिव्रता महाभाग पतिव्रतपरायणा । त्वं सती सर्वदा भद्रे सर्वतीर्थमयी प्रिया ॥३५॥
देवि सर्वमयी नित्यं सर्वदेव मयी सदा। महापतिव्रतलोक एकात्वं नृपते:प्रिया ॥३६॥
यथाशुश्रूषितो भर्ता भवत्या हि अहर्निशम् । एकस्य दिवसस्यापि पुण्यं देहि वरानने ॥३७॥
पतिशुश्रूषणस्यापि यदि मे कुरुषे प्रियम् । मम मातापितात्वं वै त्वं मे गुरु:सनातनः ॥३८॥
अहं पापा दुराचारा असत्याज्ञानवर्जिता । मामुद्धर महाभागे भीताहं यमताडनैः ॥३९॥

सुकलोवाच

एवंश्रुत्वा तया प्रोक्तं समालोक्य नृपं तदा । किं करोमि महाराज एष किं वदते पशुः ॥४०॥

इक्ष्वाकुरुवाच

एनां दुःखां वराकीं वै पापयोनिं गतां शुभे ।
समुद्धरस्व पुण्यैस्त्वंमहच्छ्रेयोभविष्यति ॥४१॥

एवमुक्ता वरा नारी सुदेवा चारुमङ्गला। उवाचैकाब्द पुण्यं ते मया दत्तं वरानने॥४२॥

उसी जल से आपने मुझको सींचा है । हे सुन्दरि ! आपकी कृपा से मेरा पाप विनष्ट हो गया ॥२९॥ हे वरानने ! आपके ही पवित्र तेज से मुझको ज्ञान हो गया है । मैं घोर नरक में पड़ी हूँ आप अब मेरा उद्धार करें ॥३०॥ हे महाभागे ! यदि आप दु:खिनी मेरा उद्धार नहीं करेंगी तो मैं पुन: घोर नरक में चली जाऊँगी। पाप के ही भाव से मैं दीन और निराश्रित हूँ । **सुदेवा ने कहा—** हे भद्रे ! मैंने कौन सा पुण्यजनक कार्य किया है जिससे कि मैं तुम्हारा उद्धार करूँ मुझे बतलाओ । **शूकरी ने कहा—** ये महाराज मनु के पुत्र हैं॥३१-३३॥ ये महाप्राज्ञ विष्णु स्वरूप हैं और आप लक्ष्मी स्वरूपिणी हैं । आप पतिपरायणा पतिव्रता हैं॥३४॥ हे भद्रे ! आप सदा सती हैं तथा आप सर्वतीर्थमयी हैं । हे देवि ! आप सदा सर्वदेवमयी हैं॥३५॥ महापतिव्रताओं के लोक में आप अकेली राजा की प्रिया हैं । आपने रात-दिन अपने पति की सेवा की है ॥३६॥ अतएव हे वरानने ! एकदिन के भी पति की सेवा का पुण्य आप मुझे प्रदान करें । इस तरह से आप मेरा कल्याण करें ॥३७॥ आप ही मेरी माता, पिता तथा सनातन गुरु हैं । मै पापिनी, दुराचारिणी, असत्यभाषिणी और ज्ञानहीन हूँ ॥३८॥ हे महाभागे ! आप मेरा उद्धार करें मैं यमयातना से भयभीत हूँ । **सुकला ने कहा—** इसतरह से कहने पर राजा को देखकर सुदेवा ने कहा— महाराज मैं क्या करूँ ? यह शूकरी जो कह रही है उसके विषय में **इक्ष्वाकु ने कहा—** हे शुभे ! पाप योनि को प्राप्त इस बेचारी दु:खिनी का ॥३९-४०॥ तुम पाप से उद्धार करो उससे बहुत पुण्य होगा । इस तरह से कहने पर श्रेष्ठ

एवमुक्तेन वाक्येन तया देव्या हि तत्क्षणात् ।
रूपयौवनसम्पन्ना दिव्यमाला विभूषिता ॥४३॥
दिव्यदेहा च सम्भूता तेजोज्वालासमावृता। सर्वभूषणशोभढ्या नानारत्नैश्चशोभिता ॥४४॥
सञ्जाता दिव्यरूपा सा दिव्यगन्धानुलेपना। दिव्यं विमानमारूढा अन्तरिक्षं गतासती ॥४५॥
तामुवाच ततो राज्ञीं प्रणता नतकन्धरा। स्वस्त्यस्तु ते महाभागे प्रसादात्तव सुन्दरि ॥४६॥
व्रजामि पातकान्मुक्ता स्वर्गं पुण्यतमं शुभम्। प्रणम्यैवं गता स्वर्गं सुदेवा शृणु सत्तम ॥४७॥
एत्तते सर्वमाख्यातं सुकलया निवेदितम् ॥४८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे सुदेवास्वर्गारोहणंनाम द्विपञ्चसत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

सुकलोवाच

एवं धर्मं श्रुतं पूर्वं पुराणेषु तदा मया । पतिहीना कथं भोगं करिष्ये पापनिश्चया॥१॥
कान्ते न तु विना तेन जीवं कायेन धारये ॥२॥

नारी सुदेवा ने कहा कि मैं तुम्हें अपना एकवर्ष का पुण्य प्रदान करती हूँ। उस देवी के इस प्रकार से कहने पर वह शूकरी उसी क्षण ॥४१-४२॥ रूप एवं यौवन से सम्पन्न, दिव्यमाला से अलंकृत तेज की ज्वाला से युक्त होकर दिव्य शरीर वाली हो गयी ॥४३॥ सभी भूषणों की शोभा से सम्पन्न तथा अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित वह दिव्य रूप तथा दिव्य अनुलेपनों वाली हो गयी ॥४४॥ वह दिव्य विमान पर चढकर अंतरिक्ष में चली गयी। वह अपना शिर झुकाकार तथा प्रणत होकर रानी से कही ॥४५॥ हे सुन्दरि ! आप का कल्याण हो, आपकी कृपा से मैं पापों से मुक्त होकर उत्तम स्वर्ग में जा रही हूँ ॥४६॥ हे सत्तम ! इस प्रकार से रानी को प्रणाम करके सुदेवा स्वर्ग चली गयी। इस तरह से मैंने सुकला के सम्पूर्ण चरित को आपको सुनाया ॥४७-४८॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित में सुदेवा के स्वर्गारोहण नामक बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५२॥

सुकला के पातिव्रत्य भङ्गार्थ दूती के सारे प्रयासों का विफल होना

सुकला ने कहा— इस तरह का धर्म मैंने पुराणों में सुना है। पति से रहित मैं पापिनी कैसे भोगों को भोगूँ ?॥१॥ पति के बिना मैं अपने शरीर में जीव को भी नहीं धारण कर सकती हूँ। **विष्णुभगवान् ने कहा—** इस तरह से श्रेष्ठपतिव्रत धर्म को कहकर वे श्रेष्ठ नारियाँ उस धर्म को सुनकर अत्यन्त हर्षित

विष्णुरुवाच

एवमुक्त्वा परं धर्म पतिव्रतमनुत्तमम्। तास्तु सख्यो वरानर्यो हर्षेण महतान्विताः ॥३॥
श्रुत्वा धर्मं परं पुण्यं नारीणां गतिदायकम्। स्तुवन्ति तां महाभागां सुकलां धर्मवत्सलाम् ॥४॥
ब्राह्मणाश्च सुराःसर्वे पुण्यस्त्रियो नरोत्तम । तस्या ध्यानं प्रकुर्वन्ति पतिकामप्रभावतः ॥५॥
अत्यर्थं दृढतामिन्द्रःसुविचिन्त्य सुरेश्वरः । सुकलायाःपरंभावं सुविचार्यामरेश्वरः ॥६॥
चालये धैर्यमस्याश्च पतिस्नेहं न संशयः । सस्मार मन्मथं देवं त्वरमाणः सुराधिपः ॥७॥
पुष्पचापं स सङ्गृह्य मीनकेतुःसमागतः। प्रियया च तया युक्तो रत्या दृष्टो महाबलः॥८॥
बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा सहस्राक्षमुवाच सः । कस्मादहं त्वया नाथ अधुना संस्मृतो विभो ॥
आदेशो दीयतां मेऽद्य सर्वभावेन मानद ॥९॥

इन्द्र उवाच

सुकलेयं महाभागा पतिव्रतपरायणा। शृणुष्व कामदेव त्वं कुरु साहाय्यमुत्तमम् ॥१०॥
निष्कर्षय महाभागां सुकलां पुण्यमङ्गलाम्। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रस्य तमथाब्रवीत् ॥११॥
एवमस्तु सहस्राक्ष करिष्यामि न संशयः । साहाय्यं देवदेवेश तव कौतुक कारणत् ॥१२॥
एवमुक्त्वा महातेजाःकन्दर्पो मुनिदुर्जयः। देवाञ्जेतुं समर्थोऽहं समुनीनृषिसत्तमान्॥१३॥
किं पुनःकामिनीं देव यस्या अङ्गेन बै बलम् ।
कामिनीनामहं देव अङ्गेषु निवसाम्यहम् ॥१४॥
भाले कुचेपु नेत्रेषु कचाग्रेषु च सर्वदा। नाभौ कट्यां पृष्ठदेशे जघने योनिमण्डले॥१५॥
अधरे दन्तभागेषु कक्षायां हि न संशयः । अङ्गेष्वेवं प्रत्यङ्गेषु सर्वत्र निवसाम्यहम् ॥१६॥
नारी मम गृहं देव सदा तत्र वसाम्यहम्। तत्रस्थःपुरुषान्सर्वान्मारयामि न संशयः ॥१७॥

थीं । वह पवित्र धर्म नारियों को सुन्दर गति प्रदान करने वाला है ॥२-३॥ वे सब धर्म वत्सला सुकला की स्तुति की । हे नरोत्तम ! सभी ब्राह्मण, देवता और पवित्र स्त्रियाँ उसके पति की कामना के प्रभाव से उसका ध्यान करती हैं । देवराज इन्द्र ! उसकी अत्यन्त सुदृढ़ता का विचार करके सोचे कि मैं इसके पति में होने वाले धैर्य को भङ्ग कर दूँ ॥४-६॥ इन्द्र ने शीघ्रता से कामदेव का स्मरण किया और कामदेव भी हाथ में पुष्पनिर्मित धनुष धारण करके उपस्थित हो गये ॥७॥ महाबलवान् कामदेव के साथ उनकी पत्नी रति भी थीं। काम ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा ॥८॥ हे नाथ ! आपने इस समय मेरा किसलिए स्मरण किया है? हे मानद ! आप मेरे लिए आदेश करें ॥९॥ **इन्द्र ने कहा**— यह महाभागा सुकला पतिव्रत धर्म का पालन करती है । हे कामदेव ! तुम मेरी सहायता करो । तुम पुण्यमङ्गला सुकला की परीक्षा लो । इन्द्र की वाणी सुनकर कामदेव ने उनसे कहा ॥१०-११॥ ठीक है इन्द्र; मैं कौतुकवशात् इस कार्य में आपको सहायता करूँगा ॥१२॥ इस तरह से कहकर मुनियों के लिए भी दुर्जय काम ने कहा— मैं मुनियों तथा ऋषियों के साथ देवताओं को भी जीत लेने में समर्थ हूँ तो फिर कामिनी के विषय में क्या कहना है ? हे देव ! कामिनियों का अङ्ग ही मेरा बल है । हे देव ! मैं कामिनियों के अङ्गों में निवास करता हूँ ॥१३-१४॥ उनके ललाट, स्तन, नेत्र, स्तनों के अग्रभाग, नाभि, कमर, पीठ, जङ्घा, योनि, ओष्ठ, दाँत तथा कांख इस तरह से उन सबों के अंङ्ग प्रत्यङ्ग में सर्वत्र मैं रहता हूँ॥१५-१६॥ हे देव ! नारी तो मेरा घर है और मैं

स्वभावेनाबलादेव सन्तप्ता मम मार्गणैः। पितरं मातरं दृष्ट्वा अन्यंस्वजनबान्धवम् ॥१८॥
सुरूपं सुगुणं देव मम बाणाहता सती। चलते नात्रसन्देहो विपाकं नैव चिन्तयेत्॥१९॥
योनिःस्पन्देत नारीणां स्तनाग्रौ च सुरेश्वर। नास्तिधैर्यं सुरेशान सुकलां नाशयाम्यहम् ॥२०॥

इन्द्र उवाच

पुरुषोऽहं भविष्यामि रूपवान्गुणवान्धनी। कौतुकार्थमिमां नारीं चालयामि मनोभव ॥२१॥
नैव कामान्नसन्त्रासान्नवा लोभान्न कारणात्। न वै मोहान्न वै क्रोधात्सत्यंसत्यं रतिप्रिय॥२२॥
कथं मे दृश्यते तस्या महत्सत्यंपतिव्रतम्। निष्कर्षिष्ये इतो गत्वा भवन्मोहोऽत्रकारणम्॥२३॥
एवं कामं च सन्दिश्य जगाम सुरराट् स्वयम् ।
आत्मविकृति सम्भूतो रूपवान्गुणवान्स्वयम् ॥२४॥
सर्वाभरणशोभाङ्गः सर्वभोगसमन्वितः। भोगलीला समाकीर्णः सर्वदौदार्यसंयुतः॥२५॥
यत्र सा तिष्ठते देवी कृकलस्य प्रिया नृप। आत्मलीलां स्वरूपं च गुणं भावं प्रदर्शयेत् ॥२६॥
नैव पश्यति सा तं तु पुरुषं रूपसम्पदम्। यत्र तत्र व्रजेत्सा हि तत्र तां पश्यते नृप॥२७॥
साभिलाषेण मनसा तामेवं परिपश्यति। कामचेष्टां सहस्राक्षोऽदर्शयत्सर्वभावकैः ॥२८॥
चतुष्पथे पथे तीर्थे यत्र देवी प्रयाति सा। तत्र तत्र सहस्राक्षस्तामेव परिपश्यति ॥२९॥
इन्द्रेण प्रेषिता दूती सुकलां प्रति सा गता। सुकलां सुमहाभागां प्रत्युवाच प्रहस्य वै॥३०॥
अहो सत्यमहो धैर्यमहो कान्तिरहो क्षमा। अस्यारूपेण संसारे नास्ति नारी वरानना॥३१॥

उसमें सदैव रहता हूँ। वहीं रहकर मैं सभी पुरुषों को मारने का काम करता हूँ ॥१७॥ हे देव ! मेरे बाणों से संतप्त अबला स्वभाव से ही सुन्दर तथा गुणी माता, पिता, भाई या दूसरे स्वजन बन्धुजन को देखकर तथा मेरे बाणों से आहत होकर अपने पतिव्रत धर्म से चञ्चल हो जाती है और उसके होने वाले परिणामों की परवाह नहीं करती है ॥१८-१९॥ नारियों की योनि तथा स्तनों के अग्रभाग में स्पंदन होता है तो वे धैर्य नहीं रख पाती हैं ! मैं सुकला को भ्रष्ट कर देता हूँ ॥२०॥ **इन्द्र ने कहा—** काम ! मैं रूपवान, गुणवान तथा धनी पुरुष बन जाता हूँ और कौतुकवशात् इस नारी को धर्मभ्रष्ट कर देता हूँ ॥२१॥ मैं काम, संत्रास, लोभ, मोह तथा क्रोध के कारण ऐसा नहीं कर रहा हूँ। मैं सत्य कह रहा हूँ कि मुझे देखना है कि उसका पतिव्रत कैसे सत्य है ? आपके द्वारा मोहित होने के कारण उसको मैं यहाँ से जाकर भ्रष्ट बना दूँगा॥२२-२३॥ इस तरह से कामदेव को आदेश देकर इन्द्र स्वयम् अपने आत्म विकार से उत्पन्न रूपवान् और गुणवान् बन गये ॥२४॥ उनके समस्त अङ्गों में आभरण सुशोभित हो रहे थे। समस्त भोगों से सम्पन्न वे औदार्य पूर्ण भोग की लीला से सम्पन्न थे ॥२४-२५॥ हे राजन् ! (वेन) जहाँ पर कृकल की पत्नी रहती थी वहीं पर इन्द्र अपनी लीला रूप, गुण तथा भाव का प्रदर्शन करने लगे ॥२६॥ किन्तु वह रूप तथा सम्पत्ति सम्पन्न उस पुरुष को नहीं देखती थी। वह जहाँ जाती थी वहाँ पर वह पुरुष दिखायी देता था॥२७॥ वह पुरुष उसको अभिलाषा पूर्वक देखता था। इन्द्र हर प्रकार से कामुक चेष्टा का प्रदर्शन करते थे ॥२८॥ वह देवी, चौराहा, मार्ग, अथवा तीर्थ में जहाँ कहीं जाती थी वहाँ-वहाँ इन्द्र उसको ही देखते थे॥२९॥ इन्द्र ने सुकला के पास अपनी दूती को भेजा। महाभागा सुकला से उसने हँस कर कहा ॥३०॥ आपका सत्य, धैर्य, कान्ति और क्षमा तथा रूप संसार के किसी नारी में नहीं है ॥३१॥ हे कल्याणि ! तुम

का त्वं भवसि कल्याणि कस्य भार्या भविष्यसि ।
यस्य त्वं सगुणा भार्या सधन्यःपुण्यभाग्भुवि ॥३२॥
तस्यास्तुवचनं श्रुत्वा तामुवाच मनस्विनी। वैश्यजत्यांसमुत्पन्नो धर्मात्मा सत्यवत्सलः ॥३३॥
तस्याहं हि प्रिया भार्या सत्यसन्धस्य धीमतः ।
कृकलस्यापि वैश्यस्य सत्यमेव वदामि ते ॥३४॥
ममभर्ता सधर्मात्मा तीर्थयात्रां गतःसुधीः । तस्मिन्गते महाभागे मम भर्तरि सम्प्रति ॥३५॥
अतिक्रान्ताःशृणुष्वत्वं त्रयश्चैवापिवत्सराः। ततोऽहंदुःखिता जाता विना तेन महात्मना ॥३६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तान्तमेवच। भवती पृच्छते मां का भविष्यति वदस्व मे॥३७॥
सुकलाया वचःश्रुत्वा दूत्या आभाषितं पुनः ।
मामेवं पृच्छसे भद्रे तत्ते सर्वं वदाम्यहम् ॥३८॥
अहं तवान्तिकं प्राप्ता कार्यार्थं वरवर्णिनि । श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैवावधार्यताम्॥३९॥
गतस्ते निर्घृणो भर्ता त्वांत्यक्त्वा तु वरानने ।
किं करिष्यसि तेनापि प्रियाघातकरेण च ॥४०॥
यस्त्वां त्यक्त्वा गतःपापी साध्व्याचारसमन्विताम् ।
किं वा स ते गतो बाले तत्र जीवती वै मृतः ॥४१॥
किं करिष्यति तेनैवं भवती खिद्यते वृथा। कस्मान्नाशयते चाङ्गं दिव्यं हेमसमप्रभम्॥४२॥
बाल्ये वयसि सम्प्राप्ते मानवो न च विन्दति ।
एकं सुखं महाभागे बालक्रीडां विना शुभे ॥४३॥
वार्द्धके दुःखसम्प्राप्तिर्जराकायं प्रहिंसयेत्। तारुण्ये भुज्यते भोगःसुखात्सर्वो वरानने ॥४४॥

कौन हो ? किसकी पत्नी हो ? तुम जिसकी पत्नी हो वह पुरुष संसार में धन्य तथा पुण्यवान् है ॥३२॥ उसकी वाणी को सुनकर मनस्विनी सुकला ने कहा— मैं तुम्हें सत्य वतला रही हूँ कि मैं वैश्यजाति में उत्पन्न, धर्मात्मा, सत्यवक्ता, कृकल मेरे पति हैं । मैं उनकी ही पत्नी हूँ । वे सत्ससंघ तथा वुद्धिमान हैं॥३३-३४॥ मेरे बुद्धिमान् तथा धार्मिक पति, तीर्थ यात्रा में गये हुए हैं । हे महाभागे ! उनके चले जाने से इस समय तीन वर्ष वीत गये हैं । मैं उन महात्मा के विना दुःखी हो गयी हूँ ॥३५-३६॥ इस तरह से मैंने तुम्हें अपना वृत्तान्त वतलाया । आप वतलाइये कि आप कौन हैं ?॥३७॥ सुकला की वाणी सुनकर दूती ने कहा— हे भद्रे ! यदि तुम मेरे विषय में पूछती हो तो मैं तुम्हें वतलाती हूँ ॥३८॥ हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारे पास कार्यवशात् आयी हूँ । मैं उसे वतला रही हूँ उसे आप सुनें और सुनकर निश्चय करें ॥३९॥ हे सुन्दरि ! तुम्हारा निष्ठुर स्वामी तुमको छोड़कर चला गया है । तुम उस पत्नी से घात करने वाले पति को लेकर क्या करेंगी ?॥४०॥ साध्वी का आचरण करने वाली तुमको छोड़कर जो पापी चला गया, क्या वह गया हुआ तुम्हारा पति जी रहा है कि मर गया क्या पता है ?॥४१॥ उसको लेकर आप क्या करेंगी? आप तो व्यर्थ ही दुःख सह रही हैं । आप सुवर्ण के समान अपने अङ्गों का नाश क्यों कर रही हो ॥४२॥ वाल्यावस्था में विद्यमान मनुष्य वालक्रीड़ा किए विना कोई भी सुख नहीं प्राप्त कर पाता है ॥४३॥ वृद्धावस्था में शरीर जर्जर हो जाता है और केवल दुःख ही भोगता हैं । हे सुन्दरि ! जवानी में ही मनुष्य समस्त भोगों

यावत्तिष्ठति तारुण्यं तावद्भुञ्जन्ति मानवाः । सुखभोगादिकं सर्वं स्वेच्छया रमते नरः ॥४५॥
यावत्तिष्ठति तारुण्यं तावद्भोगान्प्रभुञ्जते । वयस्यपि गते गते भद्रे तारुण्ये किं करिष्यति॥४६॥

सम्प्राप्ते वार्द्धके देवि किंचित्कार्यं न सिध्यति ।
स्थविरश्चिन्तयेन्नित्यं सुखकार्यं न गच्छति ॥४७॥

पयस्यपि गतेबले क्रियते सेतुबन्धनम्। तादृशोऽयं भवेत्कायस्तारुण्ये तु गतेशुभे॥४८॥

तस्माद्भुङ्क्ष्व सुखेनापि पिबस्व मधुमाधवीम्।
कामबाणा दहन्त्यङ्गं तवेमे चारुलोचने ॥४९॥

अयमेकःसमायातः पुरुषो रूपवान्गुणी। अयं हि पुरुषव्याघ्रःसर्वज्ञो गुणवान्धनी ॥५०॥
तवार्थे नित्यसंयुक्तःस्नेहेन वरवर्णिनि ॥५१॥

सुकलोवाच

बाल्यं नास्त्यपि जीवस्य तारुण्यं नास्ति जीविते ।
वृद्धत्वं नास्ति चैवास्य स्वयंसिद्धःसुसिद्धिदः ॥५२॥

अमरो निर्जरो व्यापी सुसिद्धःसर्ववित्तमः । अकामःकामदो लोके आत्मरूपेण वर्तते ॥५३॥
यथा गेहस्य संस्थानं तथाकायस्य दृश्यते। मृत्तिकयोदकेनापि समन्तात्परिणामयेत् ॥५४॥
अनेक काष्ठसङ्घातैर्नानादारुसमुच्चयैः। मृत्तिकयोदकेनापि समन्तात्परिणामयेत् ॥५५॥

विलिप्तं लेपकैःकाष्ठं चित्रं भवति चित्रकैः ।
प्रथमं रूपमायाति गृहं सूत्रेण सूत्रितम् ॥५६॥

को सुख पूर्वक भोगता है ॥४४॥ जब तक जवानी रहती है तब तक ही मनुष्य अपनी इच्छानुसार सुखों को भोगता है और रमण करता है ॥४५॥ तारुण्य काल पर्यन्त ही वह भोगों को भोगता है । हे भद्रे ! युवावस्था के बीत जाने पर तुम क्या करोगी ?॥४६॥ हे देवि ! वृद्धावस्था के आ जाने पर तो कोई काम नहीं हो पाता है । बुढ़ा तो केवल सोचता है किन्तु वह सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥४७॥ हे बाले! जैसे कोई जल के बह जाने के बाद सेतु बनाये उसी तरह का यह जवानी बीत जाने के बाद व्यर्थ हो जाता है ॥४८॥ अतएव तुम सुख का भोग करो और माधवी मधु का पान करो । हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम्हारे ये अङ्ग काम के बाणों से जले जा रहे हैं ॥४९॥ यहाँ एक रूपवान तथा गुणी, पुरुष आया है । यह पुरुष सर्वज्ञ, गुणवान् और धनी है ॥५०॥ यह सदा तुम्हारे लिए प्रेम करता है । **सुकला ने कहा—** जीव न तो बालक होता है और न जवान होता है ॥५१॥ आत्मा वृद्ध भी नहीं होता है, यह स्वयं सिद्ध तथा सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाला है । आत्मा अमर तथा जरा रहित है । यह व्यापक तथा सुसिद्ध और सर्वज्ञ है॥५२॥ वह कामना रहित तथा लोक में आत्मा रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । शरीर तो गृह के समान है और उसमें आत्मा का निवास होता है ॥५३॥ जिस तरह बढ़ई सूत्र से नाप कर अनेक प्रकार के काष्ठों तथा दारु समूह से मंदिर का निर्माण करता है, उसी तरह शरीर भी अनेक तत्त्वों से बना है॥५४॥ बढ़ई मंदिर को मिट्टी तथा जल से सँवारता है । रङ्गों से रङ्गा हुआ काष्ठ ही विचित्र लगने लगता है ॥५५॥ सूत्र से सूत्रित गृह में पहले रूप आता है । इसके बाद लोग उसको प्रतिदिन लिप पोतकर पुष्ट बनाते हैं ॥५६॥ वायु के द्वारा हिलाया गया घर प्रतिदिन मैला हो जाता है । वह गृह का मध्यमवर्ती काल कहलाता है ॥५७॥ जब मंदिर के रूप की होनी होती है गृह स्वामी उसको पोत देता है और गृहस्वामी

पुष्णान्ति च स्वयं तत्तु लेपनाद्वै दिनेदिने । वायुनादोलितं नित्यं गृहं च मलिनायते ॥५७॥
मध्यमो वर्तुलःकालो गृहस्य परिकथ्यते । रूपहानिर्भवेत्तस्य गृहस्वामी विलेपयेत् ॥५८॥
स्वेच्छया च गृहस्वामी रूपवत्त्वं नयेद्गृहम् ।
तारुण्यं तस्य गेहस्य दूतिके परिकथ्यते ॥५९॥
काष्ठसङ्घैश्च जीर्णत्वं बहुकालःप्रयाति सः । स्थानभ्रष्टाःप्रजायन्ते मूलाग्रे प्रचलन्तिते ॥६०॥
न सहेल्लेपनाभारमाधारेण प्रतिष्ठति। एतद्गृहस्य वार्द्धक्यं कथितं शृणु दूतिके ॥६१॥
पतमानं गृहं दृष्ट्वा गृहस्वामी परित्यजेत्। गृहमन्यं प्रवेशाय प्रयात्येव हि सत्वरम् ॥६२॥
तथाबाल्यं च तारुण्यं नृणां वृद्धत्वमेव च । सबाल्ये बालरूपश्च ज्ञानहीनं प्रकारयेत् ॥६३॥
चित्रयेत्कायमेवापि वस्त्रालङ्कारभूषणैः । लेपनैश्चन्दनैश्चान्यैताम्बूलप्रभवादिभिः ॥६४॥
कायस्तरुणतां याति अतिरूपो विजायते । बाह्याभ्यन्तरमेवापि रसैः सर्वैः प्रपोषयेत्॥६५॥
तेन पोषण भावेन परिपुष्टः प्रजायते । जायते मांसवृद्धिस्तु रसैश्चापि नवोत्तमा॥६६॥
यान्ति विस्तरतां राजन्नङ्गान्याप्यायितान्यपि। प्रत्यङ्गानि रसैश्चैव स्वं स्वं रूपं प्रयान्ति वै॥६७॥
दन्ताधरौ स्तनौ बाहू कटि पृष्ठमुरूउभे। हस्तपाद तलौतद्वद्वृद्धित्वं प्रतिपेदिरे ॥६८॥
उभाभ्यामपि तान्येव वृद्धिमायान्ति तानि वै। अङ्गानि रसमांसाभ्यां सुरूपाणि भवन्ति ते ॥६९॥
तैःस्वरूपैर्भवेन्मर्त्यो रसबद्धश्च दूतिके। सुरूपः कथ्यते मर्त्यो लोके केन प्रियो भवेत्॥७०॥
विष्ठामूत्रस्य वै कोशःकाय एष च दूतिके। अपवित्र शरीरोऽयं सदा स्रवति निर्घृणः ॥७१॥
तस्य किं वर्ण्यते रूपं जलबुद्बुदवच्छुभे । यावत्पञ्चांशद्वर्षाणि तावत्तिष्ठति वै दृढः ॥७२॥

अपनी इच्छानुसार उस गृह को रूपवान बनाता है ॥५८॥ हे दूतिके ! वही गृह की युवावस्था कहलाती है। बहुत दिनों के बाद वह अपने काष्ठ समूह के साथ जीर्ण हो जाता है ॥५९॥ ऐसी स्थिति में वे काष्ठ अपने स्थान से खिसक जाते हैं, नीचे ऊपर वे हिलने लगते हैं । वे उस लेप के भार को भी नहीं बर्दास्त कर पाते हैं । वे आधार पर टिके रहते हैं ॥६०॥ ऐ दूति ! मैंने तुम्हें गृह के पुराने पत्र का वर्णन किया । उस गिरते हुए गृह को देखकर गृह का स्वामी उस गृह का परित्याग कर देता है । वह शीघ्र ही दूसरे गृह में रहने के लिए चला जाता है । मनुष्य की बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था भी इसी प्रकार के हैं ॥६१-६२॥ वह बाल्यावस्था में बालरूप से ज्ञानहीन रहता है । अपने शरीर को ही वस्त्र, अलङ्कार और भूषणों से सजाता है ॥६३॥ वह चन्दनों तथा दूसरे ताम्बूल आदि से उत्पन्न रागों से अपने शरीर को सजाता है । जब उसका शरीर युवक हो जाता है तो सुन्दर लगने लगता है ॥६४॥ वह बाह्य तथा अभ्यन्तर सभी रसों से पुष्ट करता है । उस पोषण के भाव से शरीर पुष्ट हो जाता है ॥६५॥ रसों के कारण शरीर में अच्छी तरह से मांस की वृद्धि हो जाती है । हे राजन् ! पुष्ट हुए अङ्ग भी विस्तृत हो जाते हैं ॥६६॥ रसों के प्रत्येक अङ्ग अपने-अपने रूप को प्राप्त कर लेते हैं । दाँत, ओष्ठ, दोनों स्तन, दोनों भुजाएँ, कमर, पीठ, दोनों जङ्घे ॥६७॥ उसी तरह हाथ, तथा दोनों पैर भी बढ़ जाते हैं । रस और मांस इन दोनों से प्रत्येक अङ्ग बढ़ते हैं और सुन्दर लगने लगते हैं । हे दूति ! उन रूपों से मनुष्य रस से युक्त हो जाता है ॥६८-६९॥ संसारी लोग इस मल-मूत्र के खजाने शरीर को ही सुन्दर कहने लगते हैं ॥७०॥ अपवित्र शरीर सदैव मल को बहाता है । हे शुभे ! जल के बुलबुले के समान इस शरीर के रूप का क्या वर्णन करना है ?॥७१॥

पश्चाच्च जायते हानिस्तस्यैवापि दिने दिने ।
दन्ताः शिथिलतां यान्ति तथालालायते मुखम् ॥७३॥
चक्षुर्भ्यामपि पश्येन्न कर्णाभ्यां न शृणोति च ।
गतिंकर्तुं नशक्नोतिहस्तपादैश्चदूतिके ॥७४॥

अक्षमो जायते कायो जरा कालेन पीडितः। तद्रसःशोषमायाति जराग्नितापशोषितः ॥७५॥
अक्षमो जायते दूति केनरूपत्वमिष्यते। यथाजीर्णं गृहं याति क्षयमेवं न संशय ॥७६॥
तथा संक्षयमायाति वार्द्धके तु कलेवरम्। ममरूपं समायातं वर्णस्येवं दिने दिने ॥७७॥
केनाहं रूपसंयुक्ता केनरूपत्वमिष्यते। यथाजीर्णं गृहं याति केनासौ पुरुषोवली ॥७८॥
यस्यार्थमागता दूति भवती केन संप्रति। किमुचैव त्वयादृष्टं ममाङ्गे वद साम्प्रतम्॥७९॥
तस्याङ्गादिह हीनं च दूतिनास्त्यधिकं तथा । यथा त्वं च तथाऽसौ वै तथाहं नात्र संशयः॥८०॥
कस्यरूपं न विद्येत रूपवान्नास्ति भूतले। उच्छ्रायाः पतनान्ताश्च नागास्तु गिरयःशुभे ॥८१॥
कालेन पीडिता यान्ति तद्वद्भूताश्च नान्यथा । अरूपो रूपवान्दिव्यआत्मासर्वगतःशुचिः॥८२॥
स्थावरेष्वेव सर्वेषु जङ्गमेषु च दूतिके। एको निवसतो शुद्धो घटेष्वेकं यथोदकम् ॥८३॥
घटनाशात्प्रयात्येकमेकत्वं त्वं न बुध्यसे। पिण्डनाशादयंचात्मा एकरूपो विजायते॥८४॥
एकं रूपं मया दृष्टं संसारे वसतां सदा। एवं वदस्व तं ज्ञात्वा यस्यार्थमिहचागता॥८५॥

पचास वर्ष की अवस्था पर्यन्त यह शरीर सुदृढ़ बना रहता है । उसके बाद वह दिन-दिन क्षीण होने लगता है ॥७२॥ दाँत हिलने लगता हैं, मुँह से लार निकलने लगता है । दोनों नेत्रों से दिखायी नहीं पड़ता हैं और कान से सुनायी भी नहीं पड़ता है ॥७३॥ हे दूति ! उस समय मनुष्य अपने हाथ पैर से चल फिर भी नहीं पाता है । बुढ़ापा और काल से पीड़ित यह शरीर असमर्थ हो जाता है ॥७४॥ बुढ़ापा रूपी अग्नि से सुखाया गया शरीर का रस सुख जाता है । मनुष्य अक्षम हो जाता है, उसके रूप को कोई नहीं चाहता है॥७५॥ जिस तरह से पुराना घर विनष्ट हो जाता है उसी तरह बुढ़ापे में शरीर भी विनष्ट हो जाता है॥७६॥ मेरा रूप प्रतिदिन इसी प्रकार का होता जाता है मैं किसके द्वारा रूपवती हूँ अथवा कौन मेरे रूप को चाहता है ?॥७७॥ किसके द्वारा यह बलवान् मनुष्य पुराने घर के समान हो जाता है । तुम जिसके लिए मेरे पास आयी हो वह किसके द्वारा बोलता है ॥७८॥ बतलाओ तुम मेरे अङ्गों में इस समय क्या देखी हो ? इसमें अङ्गों के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है ॥७९॥ जैसी तुम हो उसी तरह का वह (मुझे चाहने वाला) है और वैसी ही मैं भी हूँ । पृथिवी में किसका रूप नहीं होता है और कौन रूपवान् नहीं है?॥८०॥ हे शुभे ! ऊँचे-ऊँचे पर्वतों का अंत पतन में ही होता है । उसी प्रकार सभी भूत भी काल के प्रभाव से हो जाते हैं ॥८१॥ सर्वव्यापक, रूप रहित दिव्य आत्मा ही रूपवान् है । वह जैसा जङ्गम जीवों में है उसी तरह का स्थावरों में भी है ॥८२॥ जिस तरह अनेक घटों में एक समान सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखता है उसी तरह एक ही तरह का आत्मा सभी जीवों में निवास करता है । जिस तरह घड़ों का नाश हो जाने पर सूर्य एक ही हो जता है, और उसकी एकता की प्रतीति नहीं होती है ॥८३॥ उसी तरह शरीर का नाश हो जाने पर आत्मा एक रूप वाला हो जाता है । संसार में रहने वाले सभी जीवों को मैंने एक ही समान देखा है ॥८४॥ इस प्रकार आत्मा को जानकर तुम जिसकी ओर से आयी हो उसे तुम कहो कि

दर्शयस्व अपूर्वं मे यदि भोक्तुमिहेच्छसि । व्याधिनापीड्यमानस्य कफेनापि वृतस्य च ॥८६॥
अङ्गादिवलते शोणः स्थानभ्रष्टोऽभि जायते । अङ्गसन्धिषु सर्वासु पलत्वं चान्तरङ्गतः ॥८७॥
एकतो नाशमायाति स्वंहि रूपं परित्यजेत् । विष्ठात्वं जायते शीघ्रं कृमिभिश्च भवेत्किल ॥८८॥
तद्वद्दुःखकरं वापि निजरूपं परित्यजेत् । श्रूयतां जायते पश्चात्कृमिदुर्गन्धसङ्कुलम् ॥८९॥

जायन्ते तत्र वै यूकाः कृमयो वा न संशयः ।
सकृमिः कुरुते स्फोटं कण्डूं च परिदारुणाम् ॥९०॥

व्यथामुत्पादयेद्यूका सर्वाङ्गं परिचालयेत् । नखाग्रैर्घृष्यमाणा सा कण्डूःशान्ता प्रजायते ॥९१॥
तद्वृत्तैश्च शृणुष्वैव सुरतस्य न संशयः । भुनक्त्येवरसान्मर्त्यः सुभक्षान्पिवते पुनः ॥९२॥
वायुना तेन प्राणेन पाकस्थानं प्रणीयते । यद्भुक्तं प्राणिभिर्दूति पाकस्थानं गतं पुनः ॥९३॥
सर्वं तत्पिहितं तत्र वायुर्वैपातयेन्मलम् । सारभूतो रसस्तत्र तद्रक्तश्च प्रजायते ॥९४॥
निर्मलःशुद्धवीर्यस्तु ब्रह्मस्थानं प्रयाति च । आकृष्टःस समानेन नीतस्तेनापि वायुना ॥९५॥
स्थानं न लभते वीर्यं चञ्चलत्वेन वर्तते । प्राणिनां हि कपालेषु कृमयः सन्ति पञ्च वै ॥९६॥
द्वावेतौ कर्णमूले तु नेत्रस्थाने ततः पुनः । कनिष्ठाङ्गुलिमानेन रक्तपुच्छाश्चदूतिके ॥९७॥
नवनीतस्य वर्णेन कृष्णपुच्छान संशयः । तेषां नामापि भद्रे त्वं मत्तौनिगदितं शृणु ॥९८॥
पिङ्गलीशृङ्खलीनाम द्वौ कृमी कर्णमूलयोः । चपलः पिप्पलश्चैव द्वावेतौ नासिकाग्रयोः ॥९९॥
शृङ्गली जङ्गली चान्यौ नेत्रयोरन्तरस्थितौ । कृमीणांशतपञ्चाशत्तादृग्भूता न संशयः ॥१००॥

मेरे जिस अपूर्व वस्तु का उपभोग करना चाहते हो उसे दिखलाओ ॥८५-८६॥ सभी अङ्गों के सन्धिस्थल में केवल मांस भरा है । मरते ही वह (मांस) नष्ट हो जाता है और उसका रूप बदल जाता है ॥८७॥ वह विष्ठा बन जाता है और उसमें कीड़े पड़ जाते हैं । उस प्रकार के दुःखद वह अपने रूप का परित्याग कर देता है ॥८८॥ उसके पश्चात् वह शरीर क्रिमि और दुर्गंध से भर जाता है । उसमें यूका तथा कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं ॥८९॥ वे कीड़े शरीर में भयङ्कर घाव और खुजली उत्पन्न कर देते हैं । यूका सारे शरीर में व्यथा उत्पन्न करके उसे चञ्चल बना देती है ॥९०॥ जब नखों से खुजलाया जाता है तो वह खुजली शान्त होता है । सुनो उससे युक्त इस सुन्दर शरीर के रस का प्रभूत मात्रा में मनुष्य उपभोग करता है । वायु प्राण के द्वारा उसे पाक स्थान में ले जाता है ॥९१-९२॥ हे दूति ! प्राणी जिस खाये हुए वस्तु को पाक स्थान में ले जाता है उन सारी वस्तुओं को वायु मल बना देता है ॥९३॥ उसका (खाये पिये अन्न का) सार भाग रक्त बन जाता है । जो निर्मल शुद्ध वीर्य प्राणी होता है, वह ब्रह्म स्थान में जाता है ॥९४॥ वह समान वायु से आकृष्ट होकर उस वायु के द्वारा स्थान नहीं प्राप्त करने के कारण चञ्चल हो जाता है ॥९५॥ प्राणियों के कपोल में पाँच कीड़े होते हैं । वे ही दो कान के मूल स्थान में रहते हैं तथा बचे हुए नेत्र स्थान में होते हैं ॥९६॥ हे दूति ! वे कनिष्ठा अङ्गुलि के समान होते हैं और उसकी पूंछ लाल होती है जो नवनीत के समान वर्ण वाले होते हैं, उनकी पूंछ काली होती है । हे भ्रदे ! मैं उन कीड़ों का नाम बतलाती हूँ । कानों के मूल में रहने वाले कीड़ों के नाम पिङ्गली और शृङ्खली हैं ॥९७-९८॥ नासिका के अग्रभाग में रहने वाले दोनों कीड़ों के नाम चपल और पिप्पल हैं । शृङ्गली और जङ्गली नामक दो कीड़े नेत्रों के भीतर रहते हैं॥९९॥

भालान्तेऽवस्थिताः सर्वे राजिकायाः प्रमाणतः ।
कपालरोगिणःसर्वे विकुर्वन्ति न संशयः ॥१०१॥
केशद्वयं मुखे तस्य विद्यते शृणु दूतिके। प्राणिनां संक्षयं विद्धि तत्क्षणे हि न संशयः॥१०२॥
स्वस्थाने संस्थितस्यापि प्राजापत्यस्य वै मुखै ।
तद्वीर्य रसरूपेण पतते नात्र संशयः ॥१०३॥
मुखेन पिवते वीर्यं तेन मत्तः प्रजायते । तालुमध्यप्रदेशे च चञ्चलत्वेन वर्तते ॥१०४॥
इडा च पिङ्गला नाडी सुषुम्नाख्या च संस्थिता ।
सुबलेनापि तस्यैव नाडिका जालपञ्जरे ॥१०५॥
कामकण्डूर्भवेद्दूति सर्वेषां प्राणिनां किल । पुंसश्चस्फुरते लिङ्गं नार्यायोनिश्चदूतिके॥१०६॥
स्त्रीपुंसौसम्प्रमत्तौ तु व्रजतः सङ्गमं ततः । कायेन कायसङ्घृष्टिर्मैथुनेन हि जयते॥१०७॥
क्षणमात्रं सुखं काये पुनः कण्डूश्च तादृशी। सर्वत्र दृश्यते दूति भाव एवं विधः किल ॥
व्रजत्वमात्मनः स्थानं नैवास्त्यत्र अपूर्वता। अपूर्वंनास्ति मे किंचित्करोम्येव न संशय ॥१०८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे त्रिपञ्चाशत्तमोऽधयायः ॥५३॥

उसी तरह राई के समान छोटे-छोटे पाँच हजार कीड़े ललाट के भीतर रहते हैं ॥१००॥ वे सबके सब मनुष्य को कपाल का रोगी बना देते हैं । उसके मुख में दो केश जम जाते हैं । यदि प्राजापत्य स्थान में भी रहने वाला प्राणी हो और उसके मुख में केश जम जायँ तो उसकी मृत्यु अवश्य हो जाती है ॥१०१-१०२॥ उस प्राणी का वीर्य ही उसके मुख में रस रूप से गिरने लगता है और उस वीर्य को वह मुँह से पीता है । उससे वह मत्त हो जाता है ॥१०३॥ चञ्चल होने के कारण वह तालु के मध्य में स्थित होता है । वहीं इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा नाम की तीनों नाडियाँ रहती हैं ॥१०४॥ हे दूति ! उसके अत्यन्त बलवान् होने के कारण सभी प्राणियों के नाडिकाओं में काम कण्डूति (कामुकता) होती है ॥१०५॥ हे दूति ! उसके कारण पुरुष के लिङ्ग में तथा नारियों की योनि में स्फुरण होने लगता है । उसके कारण स्त्री और पुरुष दोनों प्रमत हो जाते हैं और उसके बाद वे सङ्गम करते हैं ॥१०६॥ उस मैथुन के कारण शरीर से शरीर में रगड़ होता है । उसके कारण शरीर में सुख उत्पन्न होता है । उसके बाद उसी प्रकार की कण्डू उत्पन्न होती है ॥१०७॥ हे दूति ! सर्वत्र इसी प्रकार का भाव दिखता है । तुम यहाँ से अपने स्थान पर चली जाओ । यहाँ कोई अपूर्वता (नवीनता) नहीं है । मुझमें कोई अपूर्व वस्तु नहीं हैं मैं अपूर्व वस्तु कर भी नहीं सकती हूँ ॥१०८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

चौवनवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

एवमुक्ता गता दूती तया सुकलया तदा। समासेन सुसम्प्रोक्तमवधार्य पुरन्दरः ॥१॥
तदर्थं भाषितं तस्याः सत्यधर्मसमन्वितम् । आलोच्य साहसं धैर्यंज्ञानमेव पुरन्दरः ॥२॥
ईदृशं हि वदेत्का हि नारी भूत्वा महीतले। योगंरूपं सुसंशिष्टंन्यायोदैःक्षालितं वचः ॥३॥
पवित्रेयं महाभागा सत्यरूपा न संशयः। त्रैलोक्यस्य समस्तस्य धुरंधर्तुं भवेत्क्षमा ॥४॥
एतदर्थं विचार्यैवं जिष्णुःककन्यनिमब्रवीत् । त्वया सह गमिष्यामि द्रष्टुं तां कृकलप्रियाम् ॥५॥
प्रत्युवाच सहस्राक्षं मन्मथो बलदर्पितः। गम्यतां तत्र देवेश यत्रास्ते सा पतिव्रता॥६॥
मानं वीर्यं बलं धैर्यंतस्याःसत्यं पतिव्रतम् । गत्वाहं नाशयिष्यामि कियन्मात्रासुरेश्वर ॥७॥
समाकर्ण्य सहस्राक्षो वचनं मन्मथस्य च। भो भोऽनङ्ग श्रृणुष्वत्वमधिकंभाषितं मुधा ॥८॥
सुदृढा सत्य वीर्येण सुस्थिरा धर्मकर्मभिः। सुकलेयमजेया वै तत्र ते पौरुषं न हि ॥९॥
इत्याकर्ण्य ततः क्रुद्धोमन्मथस्त्विन्द्रमब्रवीत्। ऋषीणां देवतानां च बलंमयाप्रणाशितम् ॥१०॥
अस्या बलं कियन्मात्रं भवता मम कथ्यते। पश्यतस्तव देवेश नाशयिष्यामि तां स्त्रियम् ॥११॥
नवनीतं यथाचाग्नेस्तेजो दृष्ट्वा द्रवं व्रजेत् । तथेमां द्रावयिष्यामि स्वेन रूपेण तेजसा॥१२॥
गच्छ तत्र महत्कार्यमुत्पाद्यं साम्प्रतं ध्रुवम् ।
कस्मात्कुत्ससि मे तेजस्त्रैलोक्यस्य विनाशनम् ॥१३॥

सुकला तथा इन्द्र की दूती का संवाद

भगवान् विष्णु ने राजा वेन से कहा— सुकला के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर दूती चली गयी और उन सारी बातों को उसने संक्षेप में इन्द्र को सुनाया ॥१॥ सुकला ने जो सत्य एवं धर्म से समन्वित कहा उससे उसके साहस, धैर्य तथा ज्ञान का विचार करके इन्द्र ने ॥२॥ संसार की कोई भी नारी इस तरह की योगयुक्त शिष्टता तथा विशिष्टता तथा न्याययुक्त बातें नहीं कर सकती है ॥३॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्मस्वरूपिणी यह महाभागा नारी पवित्र है, यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य का पालन कर सकती है ॥४॥ इन सारी बातों का विचार करके इन्द्र ने कामदेव से कहा कि मैं तुम्हारे साथ, कृकल की पत्नी का दर्शन करने चलूँगा ॥५॥ बल के दर्प से दृप्त बने हुए काम ने इन्द्र से कहा— हे देवेश ! आप वह पतिव्रता जहाँ है वहाँ जाइये ॥६॥ मैं उसके मान, पराक्रम, बल, धैर्य, सत्य तथा पतिव्रत को उसके पास जाकर नष्ट कर दूँगा। हे सुरेश्वर ! वह क्या है ?॥७॥ कामदेव की वाणी को सुनकर इन्द्र ने कहा— तुम सुनो ! अधिक व्यर्थ न बोलो ॥८॥ वह सत्य के पराक्रम से सुदृढ है और धर्मकर्मो के कारण सुस्थिर है । यह सुकला अजेय है, वहाँ तुम्हारा पौरुष नहीं चल सकता है ॥९॥ इसबात को सुनकर क्रुद्ध हुए कामदेव ने इन्द्र से कहा— मैंने ऋषियों तथा देवताओं के भी बल को विनष्ट किया है ॥१०॥ इसका कितना बल है कि आप मुझको इस तरह से कह रहे हैं । हे देवेश आपके सामने हीं मैं उस स्त्री को भ्रष्ट बना दूँगा ॥११॥ जिस तरह नवनीत अग्नि के तेज को देखते ही द्रवित होने लगता है, उसी प्रकार मैं अपने रूप तथा तेज से उसे द्रवित कर दूँगा ॥१२॥ आप जाइये मेरे लिए तो यह बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हो गया है । त्रैलोक्य

विष्णुरुवाच

आकर्ण्य वाक्यं तु मनोभावस्य एतामसाध्यां तव कामजाने ।
धैर्यसमुद्यम्य च पुण्यदेहां पुण्येन पुण्यां बहुपुण्यचाराम् ॥१४॥
पश्यामि ते पौरुषमुग्रवीर्यमितो हि गत्वा तु धनुष्मता वै ।
तेनापि सार्थं प्रजगाम भूयो रत्या च दूत्या च पतिव्रतां ताम् ॥१५॥
एकां सुपुण्यां स्वगृहस्थितां तां ध्यानेनपत्युश्चरणे नियुक्ताम् ।
यथासुयोगी प्रविधाय चित्तं विकल्पहीनं न च कल्पयेत् ॥१६॥
अत्यद्भुतं रूपमनन्ततेजो युतं चकाराथ सती प्रमोहम् ।
नीलाञ्चितं भोगयुतं महात्मा झषध्वजश्चैव पुरन्दरश्च ॥१७॥
दृष्ट्वा सुलीलं पुरुषं महान्तं चरन्तमेवं परिकामभावम् ।
जाया हि वैश्यस्य महात्मनस्तु मेने न सारूपयुतं गुणज्ञम् ॥१८॥
अम्भोयथा पद्मदलेगतं वै प्रयाति मुक्ताफलकस्य कीर्तिम् ।
तद्वत्स्वभावःपरिसत्ययुक्तो जज्ञे च तस्यास्तु पतिव्रतायाः ॥१९॥
अनेन दूती परिप्रेषिता पुरा या मां युवत्याह गुणज्ञमेनम् ।
लीलास्वरूपं बहुधात्मभावं ममैष सर्बं परिदर्शयेच्च ॥२०॥
ममैव कालं प्रबलं विचिन्त्यागतो हि मे कान्त गुणैश्च सत्खलः ।
रत्या समेतस्तु कथं च जीवेत्सत्याश्मभारेण प्रमर्दितश्च ॥२१॥
ममापि भावं परिगृह्यकान्तो जीवेत्कियान्वापि सुबुद्धियुक्तः ।
शून्यो हि कायो मम चास्ति सद्यश्चेष्टाविहीनो मृतकल्प एव ॥२२॥

विनाशक मेरे पराक्रम की आप निन्दा क्यों कर रहे हैं ?॥१३॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— कामदेव की बातों को सुनकर और सुकला को काम के लिए असाध्य जानकर, धैर्य को धारण करके पवित्र शरीर वाली, अपने पुण्यों से पवित्र बनी हुयी तथा अत्यधिक पुण्यचाचरण करने वाली का मैं दर्शन यहाँ से जाकर करूँ। इसलिए धनुर्धारी कामदेव के दूसरी दूती के साथ इन्द्र उस पतिव्रता के पास गये ॥१४-१५॥ उस समय वह पुण्यवती अकेली अपने घर में विद्यमान थी और अपने पति के चरणों का ध्यान उसी तरह से कर रही थी जिस तरह से कोई योगी निर्विकल्पक योग मे अपने चित्त को लगा देता है ॥१६॥ उस समय कामदेव ने अनन्त तेज से युक्त अपना अद्भुत रूप बनाया जिससे कि कोई भी असती नारी मोहित हो जा सकती है । इन्द्र और काम दोनों नीला और अत्यन्त भोगयुक्त अपना रूप बनाये थे ॥१७॥ लीला पूर्वक संचरण करते हुए कामभाव से युक्त महापुरुष को देखकर वैश्य की पत्नी ने उसे अपने पति के समान गुणज्ञ नहीं माना । जिस तरह जल पद्मदल पर मुक्ताफल के समान प्रतीत होता है, उसी तरह सत्य से युक्त उस पतिव्रता का स्वभाव हो गया ॥१८-१९॥ इसीने पहले मेरे पास दूती को भेजा था । जिसने मुझे इसको गुणज्ञ वतलाया था । यह लीला स्वरूप अपने भावों को मुझे प्रदर्शित करता है ॥२०॥ मेरे समय को प्रबल जानकर यह दुष्ट मेरे पति के गुणों से युक्त हो गया है । सत्य रूपी पत्थर के भार से पिसा गया यह रति के साथ कैसे जीवित रह सकता है ॥२१॥ सुन्दर बुद्धि से युक्त मेरे पति मेरे भावों को ग्रहण करके कितने

कायस्य ग्रामस्य प्रजा:प्रनष्टा:सुविक्रियाख्यं परिगृह्यकर्म ।
ममाधिवेनापि समं सुकान्त सउर्ध्वशोभामनयच्चकाम: ॥२३॥
यदा मृतो बलवान्हर्षयुक्त:स्वयंदृशा वै परिवृत्यमान: ।
तथा अनेनापि प्रभाषयेद्भुतं यो मां हि वाञ्छत्यपि भोक्तुकाम: ॥२४॥
एवं विचार्यैव तदामहासती सत्याख्यरज्ज्वा दृढबद्धचेतना ।
गृहं स्वकीयं प्रविवेश सा तदा तत्तस्यभावं नियमेन वेत्तुम् ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे चतु:पञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

भावं विदित्वा सुरराट् च तस्या: प्रोवाच कामं पुरत:स्थितं स: ।
न चास्ति शक्या स्मर ते जयाय सत्यात्मकध्यान सुदंशिता सती ॥१॥
धर्माख्यचापं स्वकरे गृहीत्वा ज्ञानाभिधानं वरमेव बाणम् ।
योद्धं रणे सम्प्रति संस्थिता सती वीरो यथा दर्पित वीर्यभाव: ॥२॥
जिगीषयेयं पुरुषार्थमेव त्वमात्मन: कुरुषे पौरुषं तु ।
त्वामद्यजेतुं समरे समर्था यद्भाव्यमेवं तदिहैव चिन्त्यम् ॥३॥

समय तक जीवित रह सकते हैं। मेरा शरीर इस समय भागों से रहित तथा मरे हुए के समान चेष्टा विहीन हो गया ॥२२॥ शरीर रूपी ग्राम की सारी प्रजायें भी सुन्दर क्रिया नामक कर्मों को अपनाकर नष्ट हो गयी हैं। मुझसे भी अधिक सुन्दर कान्ति युक्त काम ने शोभा को बढ़ाया ॥२३॥ अधिक हर्ष से युक्त, स्वयं नेत्र से तृप्त होता हुआ काम मर गया। उसी तरह जो यह मेरा उपभोग करना चाहता है, वह भी मुझको अद्भुत बतलायेगा ॥२४॥ इस प्रकार से विचार कर सत्य रूपी रस्सी से जो अच्छी तरह से बंधा था। वह महासती उसके भाव को जानने के लिए गृह में प्रवेश कर गयी ॥२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५४॥

कामदेव का सुकला को मोहित करने के लिए इन्द्र तथा अपने सहायकों के साथ प्रस्थान

भगवान् विष्णु ने वेन से कहा— उसके भाव को जानकर देवराज सामने विद्यमान काम से कहे— कामदेव! इस पर तुम विजय नहीं प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि यह सती सत्यात्मक भाव से युक्त है ॥१॥ पराक्रम के भाव से युक्त रण में युद्ध करने के लिए उद्यत वीर के समान यह सती अपने हाथ में धर्मरूपी धनुष तथा ज्ञान रूपी बाण को धारण करके उद्यत है ॥२॥ इसको जीतने के लिए तुम अपना पौरुष

दग्धोऽसि पूर्वं त्वमिहैव शम्भुना महात्मना तेन समं विरोधम् ।
कृत्वाफलं तस्य विकर्मणश्च जातोऽस्यनङ्गःस्मरसत्यमेव ॥४॥
यथा त्वयाकर्मकृतं पुरा स्मर फलं तु प्राप्तं तु तथैव तीव्रम् ।
सुकुत्सितां योनिमवाप्स्यसि ध्रुवं साध्व्यानया सार्धमिहैव कथ्यसे ॥५॥
ये ज्ञानवन्तःपुरुषा जगत्त्रये वैरं प्रकुर्वन्ति महात्मभिःसमम् ।
भुञ्जन्ति ते दुष्कृतमेवतत्फलं दुःखान्वितं रूपविनाशनं च ॥६॥
व्याधुष्य आवां तु व्रजावकाम एनां परित्यज्य सतीं प्रयुज्य ।
सत्याःप्रसङ्गेन पुरा मया तु लब्धं फलं पापमयं त्वसह्यम् ॥७॥
त्वमेव जानासि चरित्रमेतच्छप्तोऽस्मि तेनापि च गौतमेन ।
जातश्च मेषवृषणःसदाह्यहं भवान्गतो मां तु विहाय तत्र ॥८॥
तेजःप्रभावो ह्यतुलःसतीनां धाता समर्थःसहितुं न सूर्यः ।
सुकुत्सितं रूपमिदं तु रक्षेत्पुरानसूया मुनिना हि शप्तम् ॥९॥
निरुध्य सूर्यं परिवेगवन्तमुद्यन्तमेवं प्रभया सुदीप्तम् ।
भर्तुश्च मृत्युं परिबाधमानं माण्डव्य शापस्य च कौण्डिनस्य ॥१०॥
अत्रेःप्रिया सत्यपतिव्रततया स्वपुत्रतां देवत्रयं हि नीतम् ।
न किं पुरा मन्मथते श्रुतं सदा संस्कारयुक्ताःप्रभवन्ति सत्यः ॥११॥
सावित्रीनाम्नी द्युमत्सेनपुत्री नीतं प्रियं सा पुनरानिनाय ।
यमादिहैवाश्वपतेःसुपुत्रं सतीत्वमेवं परिसंश्रुतं च ॥१२॥

प्रदर्शित करते हो किन्तु आज यह इस युद्ध में तुमको जीतने में समर्थ है, उसका परिणाम क्या होगा यह विचारणीय विषय है ॥३॥ तुमको महात्मा शम्भु ने तुम्हारे विरोध करने के कारण तुम्हें भस्म कर दिया था। उस बुरे कर्म का फल यह हुआ कि तुम अनङ्ग हो गये ॥४॥ काम ! तुमने जैसा कर्म किया उसका तुम्हें तीव्र फल प्राप्त हुआ । मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि इस साध्वी के साथ वैसा कर्म करके अत्यन्त निन्दित योनि को प्राप्त करोगे ॥५॥ त्रैलोक्य में जो ज्ञानी पुरुष भी हैं, वे यदि महापुरुषों के साथ वैर करते हैं तो वे भी उसका पाप रूपी फल भोगते हैं । उससे उनको कष्ट प्राप्त होता है, तथा उनका रूप विकृत हो जाता है॥६॥ हे काम ! हम दोनों इसको सती घोषित करके यहाँ से चल चलें । सती के प्रसङ्ग से मैं पहले असहय पापमय फल प्राप्त कर चुका हूँ ॥७॥ तुम भी इस चरित्र को जानते हो कि गौतम ने शाप दे दिया। उसके फल स्वरूप मेष का वृषण ही सदा के लिए मेरा वृषण (अण्डकोश) हो गया । उस समय तुम मुझको छोड़कर भाग गये थे ॥८॥ सतियों के तेज का प्रभाव अतुलनीय होता है । उसको न तो ब्रह्माजी सह सकते हैं और न सूर्य । प्राचीन काल में अनुसूया और अत्रि महर्षि के द्वारा शप्त सूर्य अभी भी अपने निन्दित रूप से युक्त हैं ॥९॥ परिवेश से युक्त तथा प्रभा से सुदीप्त कौण्डिन्य माण्डव्य महर्षि के शाप के कारण अपने पति की मृत्यु के भय से सती ने सूर्य को उदित होने से रोक दिया ॥१०॥ सत्य पतिव्रता महर्षि अत्रि की पत्नीं अनसूया ने त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) को अपना पुत्र बना दिया । कामदेव ! तुमने यह नहीं सुना है क्या ? कि संस्कार सम्पन्न सतियाँ समर्थ होती हैं ॥११॥ द्युमत् सेन की पुत्री

अग्ने शिखां कःपरिसंस्पृशेद्वैतरेद्धिकःसागरमेव मूढः ।
गले तु बद्ध्वा सुशिलां भुजाभ्यां को वा सतीं वश्यतिवीतरागाम् ॥१३॥
उक्ते तु वाक्ये बहुनीनितयुक्ते इन्द्रेणकामस्य सुशिक्षणार्थम् ।
आकर्ण्यवाक्यं मकरध्वजस्तु उवाचदेवेन्द्रमथैनमेव ॥१४॥
तवातिदेशादहमागतो वै धैर्यं सुहृत्वं पुरुषार्थमेव ।
त्यक्त्वा तदर्थं परिभाषसे मां निःसत्त्वरूपं बहुभीतियुक्तम् ॥१५॥
व्याबुद्धि यास्यामि यदा सुरेश स्याल्लोकमध्ये मम कीर्तिनाशः ।
ऊढिङ्करो मानविहीन एव सर्वे वदिष्यन्त्यनयाजितं माम् ॥१६॥
ये वै जिता देवगणाश्च दानवाःपूर्वमुनीन्द्रास्तपसाप्रयुक्ताः ।
हास्यं करिष्यन्ति ममापि सद्यो नार्याजितो मन्मथ एषभीमः ॥१७॥
तस्मात्प्रयाष्यामि त्वयैव सार्धमस्या बलं मानतमःसुरेशः ।
तेजश्च धैर्यं परिणाशयिष्ये कस्माद्भवानत्र बिभेति शक्र ॥१८॥
सम्बोध्य चैवं स सुराधिनाथं चापं गृहीतं सशरं सुपुष्पम् ।
उवाच क्रीडां पुरतःस्थितां तां विधाय मायां भवती प्रयातु ॥१९॥
वैश्यस्य भार्यां सुकलां सुपुण्यां सत्ये स्थितां धर्मविदां गुणज्ञाम् ।
इतो हि गत्वा कुरुकार्यमुक्तं साहाय्यरूपं च प्रिये सखे शृणु ॥२०॥
क्रीडां समाभाष्य ततो मनोभवस्त्वन्तेस्थितां प्रीतिमथाह्वयत्पुनः ।
कार्यं भवत्या मम कार्यमुत्तममेतां सुस्नेहैः परिभावय त्वम् ॥२१॥

सावित्री अपने सतीत्व के बल पर अश्वपति के पुत्र मरे हुए सत्यवान् को यम से लौटा लायी, यह बात सुनी जाती है ॥१२॥ अग्नि की शिखा को कौन छू सकता है, गले में पत्थर बाँधकर कौन मूर्ख सागर को तैर सकता है ? इसी तरह वीतराग सती को कौन अपना वशवर्ती बना सकता है ? इन्द्र की बातों को सुनकर कामदेव ने इन्द्र से कहा ॥१३-१४॥ **कामदेव ने कहा**— आपके ही विशेष आदेश के कारण मैं आया हूँ। आप धैर्य, मित्रता तथा पुरुषार्थ का परित्याग करके मुझको सत्त्वहीन तथा अत्यधिक भययुक्त आप कह रहे हैं ॥१५॥ हे सुरेश ! यदि मैं यहाँ से पराजित बुद्धि से चला जाऊँ तो संसार में मेरी कीर्ति का नाश हो जायेगा । सबलोग मुझे वहन कर्ता, और मान रहित तथा इस पतिव्रता से पराजित कहेंगे ॥१६॥ जिन देवताओं, दानवों तथा मुनीन्द्रों एवं तपस्वियों को मैंने पहले जीत लिया है वे हमारी हँसी करेंगे और कहेंगे कि इस काम को नारी ने ही परास्त कर दिया ॥१७॥ अतएव हे सुरेश ! मैं तुम्हारे ही साथ इसके बल को देखूँगा । हे इन्द्र मैं इसके तेज और धैर्य का नाश कर दूँगा, आप क्यों डरते हैं ॥१८॥ इस प्रकार से इन्द्र को संबोधित करके कामदेव ने अपने हाथ में पुष्पमय धनुष और बाण को धारण कर लिया । उसने सामने विद्यमान कीड़ा नामक माया का निर्माण करके उससे कहा कि तुम जाओ ॥१९॥ तुम पुण्यवती, सत्य पर स्थित, धर्म को जानने वाली, गुणज्ञ वैश्य की पत्नी के पास जाओ । यहाँ से जाकर तुम हे सखे! मेरी सहायता पूर्वोक्त कार्य में करो ॥२०॥ क्रीड़ा को कहने के बाद सन्निकट में विद्यमान प्रीति को उसने बुलाया और कहा कि तुम्हें मेरा उत्तम कार्य यह करना है कि उसको सुस्नेह से युक्त करो ॥२१॥ जिससे

इन्द्रं हि दृष्ट्वा सुकला यथा भवेत्स्नेहानुगा चारुविलोचनेयम् ।
तैस्तैः प्रभावैर्गुणवाक्ययुक्तैर्नयस्व वश्यं च प्रिये सखे शृणु ॥२२॥
भोभोः सखे साथय गच्छ शीघ्रं मायामयं नन्दनरूपयुक्तम् ।
पुष्पोपयुक्तं च फलप्रधानं घुष्टंरुतैः कोकिल षट्पदानाम् ॥२३॥
आहूय वीरं मकरन्दमेव रसायनं स्वादुगुणैरुपेतम् ।
सहानिलाद्यैर्निजकर्मयुक्तैः सम्प्रेषयित्वा पुनरेव कामम् ॥२४॥
एवं समादिश्य महत्ससैन्यं त्रैलोक्यसंमोहकरं तु कामः ।
चक्रे प्रयाणं सुरराजसार्धं संमोहनायैव महासतीं ताम् ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरिनत्रे पञ्चपञ्चशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥
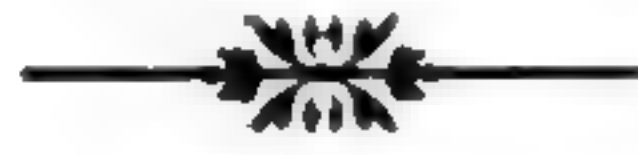
छप्पनवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

तस्याः सत्यविनाशाय मन्मथः ससुराधिपः । प्रस्थितः सुकलां तर्हि सत्योधर्ममथाब्रवीत् ॥१॥
पश्य धर्म महाप्राज्ञ मन्थस्य विचेष्टितम्। तवार्थमात्मनश्चैव पुण्यस्यापि महात्मनः ॥२॥
विसृजामि महास्थानं वास्तुरूपं सुखोदयम् । सत्याख्यं सा विप्राख्यं सुदेवाख्यं गृहोत्तमम्॥३॥
तमेव नाशयेन्नत्वा काम एष प्रमत्त धीः । रिपुरूपः सुदुष्टात्मा अस्माकं हि न संशयः ॥४॥

कि वह सुन्दर नेत्रों वाली सुकला इन्द्र को देखकर उनसे स्नेह करने लगे । हे सखे ! तुम विभिन्न प्रभावों तथा गुणयुक्त वाक्यों से उसको अपना वशवर्तिनी बनाओ ॥२२॥ उसने इन्द्र से कहा मित्र ! तुम मायामय नन्दन रूप से युक्त होकर शीघ्र प्रस्थान करो । पुष्पों के अनुकूल फल प्रधान कोयलों और भ्रमरों की ध्वनि से युक्त वीर मकरंद को बुलाकर रसायन और स्वादिष्ट गुणों से युक्त वीर मकरन्द को अपने कर्मों से युक्त वायु आदि को भेजा । इस तरह अपनी विशाल सेना को भेजकर त्रैलोक्य को मोहित करने वाले प्रस्थान को कामदेव ने इन्द्र के साथ उस महासती को मोहित करने के लिए किया ॥२३-२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५५।।

सुकला के विषय में धर्म और सत्य का परस्पर में संवाद तथा काम की दुष्टता का वर्णन

श्रीविष्णुभगवान् ने कहा— सुकला के सत्य का विनाश करने के लिए इन्द्र के साथ कामदेव ने प्रस्थान किया, उस समय सुकला के भीतर विद्यमान सत्य ने धर्म से कहा ॥१॥ हे महाप्राज्ञ धर्म ! काम की निन्दित चेष्टाओं को आप देखें । आपके लिए आत्मा के तथा महात्मा पुण्य के ॥२॥ सुखप्रद वास्तुरूप महास्थान को मैं त्यागता हूँ । सत्य, सुदेव तथा प्रिय नाम का जो उत्तम गृह है ॥३॥ उसी को यह पगलाया

पतिस्तपोधनो विप्रः सुसती या पतिव्रता। सुसत्यो भूपतिर्धर्म मम गेहा न संशयः ॥५॥
यत्राहं वृद्धिसम्पुष्टस्तत्र वासो हि ते भवेत्। तत्र पुण्यं समायाति श्रद्धया सह क्रीडते ॥६॥
क्षमा शान्ति समायुक्ता आयाति मम मन्दिरम् ।
यथा सत्योदमश्चैव दयासौहृदमेव च ॥७॥
प्रज्ञायुक्तः सनिर्लोभो यत्राहं तत्र संस्थितः । शुचिः स्वभावस्तत्रैव अमी च मम बान्धवाः ॥८॥
अस्तेयमप्यहिंसा च तितिक्षा वृद्धिरेव च । मम गेहे समायाता धन्य तां शृणु धर्मराट्॥९॥
गुरूणां चापि शुश्रूषा विष्णुर्लक्ष्म्या समावृताः ।
मद्गेहं तु समायान्ति देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥१०॥
मोक्षमार्गं प्रकाशेद्यो ज्ञानी दीप्त्यासमन्वितः ।
एतैः सार्धं वसाम्येव सतीषु धर्मवत्सु च ॥११॥
साधुष्वेतेषु सर्वेषु गृहरूपेषु मे सदा। उक्तेनापि कुटुम्बेन वसाम्येव त्वया सह ॥१२॥
ससत्त्वाः साधुरूपास्ते वेधसा मे गृहीकृताः । सञ्चरामि महाभागा स्वच्छन्देन च लीलया ॥१३॥
ईश्वरश्च जगत्स्वामी त्रिनेत्रो वृषवाहनः । ममगेहे स्वरूपेण वर्तते शिवयायुतः ॥१४॥
तदिदं संसृतेः सारं गृहरूपं महेश्वरम्। सदनं शङ्करेत्याख्यं नाशितं मन्मथेन वै॥१५॥
विश्वामित्रं महात्मानं तपन्तं तप उत्तमम्। मेनकां हि समाश्रित्य कामोऽयं जितवान्पुरा ॥१६॥
सती पतिव्रताहल्या गौतमस्य प्रिया शुभा। सुसत्याच्चालिता तेन मन्मथेन दुरात्मना ॥१७॥
मुनयः सत्यधर्मज्ञा नानास्त्रियः पतिव्रताः। मद्गृहास्ता इमाः सर्वा दीपिताः कामवह्निना ॥१८॥

हुआ काम जाकर विनष्ट कर देगा । निश्चित रूप से यह हमलोगों का शत्रु बन गया है ॥४॥ तपस्वी विप्र, सती, पतिव्रता, सत्य राजा तथा धर्म ये ही मेरे घर हैं ॥५॥ जहाँ पर मेरी वृद्धि होती है, मैं पुष्ट होता हूँ वहीं पर आपका भी निवास होता है । वही पुण्य श्रद्धा के साथ आकर क्रीड़ा करता है ॥६॥ शान्ति के साथ क्षमा भी मेरे गृह में आती है । सत्य, दम, दया, सौहार्द ॥७॥ तथा लोभ से रहित मैं प्रज्ञा के साथ वहीं रहती हूँ । पवित्र स्वभाव वाले ये मेरे बन्धुगण भी वहीं रहते हैं ॥८॥ अस्तेय, अहिंसा, तितिक्षा, तथा वृद्धि हे धर्मराज ! मेरे घर में आकर धन्य हो जाते हैं ॥९॥ गुरुजनों की सेवा तथा लक्ष्मीजी के साथ भगवान् विष्णु तथा अग्नि आदि सभी देवता मेरे घर में आते हैं ॥१०॥ दीप्ति से युक्त जो ज्ञान मोक्ष के मार्ग को प्रकाशित करता है । इन सबों के साथ मैं सतियों तथा धार्मिकों में निवास करता हूँ ॥११॥ मेरे गृह स्वरूप सभी साधु पुरुषों में मैं उपर्युक्त परिवार तथा आप (धर्म) के साथ निवास करता हूँ ॥१२॥ ब्रह्माजी ने सत्त्वगुण सम्पन्न साधुजनों को मेरा गृह बनाया है । हे महाभाग ! वहीं पर मैं लीला पूर्वक अपनी इच्छानुसार विचरण करता हूँ ॥१३॥ जगन्नियामक, जगत् के स्वामी वृषवाहन शङ्करजी मेरे घर में शिवा (पार्वती) जी के साथ स्वरूपतः विद्यमान रहते हैं ॥१४॥ इस सृष्टि के सारभूत गृहरूपी महेश्वर शङ्कर नामक गृह को कामदेव ने नष्ट कर दिया ॥१५॥ विश्वामित्र नामक महात्मा जो उत्तम तप कर रहे थे उनको मेनका को अपना आश्रय बनाकर काम ने जीत लिया ॥१६॥ सती तथा पतिव्रता अहल्या जो महर्षि गौतम की प्रिय पत्नी हैं, उनको दुष्ट काम ने सत्य पालन से विचलित कर दिया ॥१७॥ सत्य धर्म को जानने वाले मुनिगण तथा अनेक पतिव्रता स्त्रियाँ जो मेरा गृह स्वरूप हैं, उनको इस काम रूपी अग्नि ने जला दिया ॥१८॥ जो

दुर्धरो दुःसहो व्यापी योऽतिसत्येषु निष्ठुरः ।
मामेवं पश्यते नित्यं क्वसत्यःपरितिष्ठति ॥१९॥
स मां ज्ञात्वा समायाति बाणपाणिर्धनुर्धरः । नाशयेन्मद्गृहं पापो वीतिहोत्रैश्चनामकैः॥२०॥
पापलेशाश्च ये क्रूरा अन्ये पाषण्डसंश्रयाः । ते तु बुद्ध्याऽहि ताःसर्वे सत्यगेहं विशन्तिहि ॥२१॥
सेनाध्यक्षैरसत्यैस्तु छद्मना तेन साधितः । पातयेदर्दयेद्गेहं पापःशस्त्रैर्दुरात्मभिः ॥२२॥
मामेवं ताडयेत्पापो महाबल मनोभवः । अस्य धाम्ना प्रदग्धोऽहं शून्यतां हि व्रजामि वै॥२३॥
नूतनं गृहमिच्छामि स्त्रियाख्यं पतिभूषितम् । कृकलस्यहि पुण्यस्य प्रियेयं शिवमङ्गला ॥२४॥
तद्गृहं सुकलाख्यं मे दग्धुं पापःसमुद्यतः । अयमेष सहस्राक्षःकामेन सहितो बली॥२५॥
कामस्य कारणात्कस्मात्पूर्ववृत्तं न विन्दति । अहल्यायाः प्रसङ्गेन मेषोपस्थोव्यजायत ॥२६॥
पौरुषं हि मुनेर्दृष्ट्वा सत्याश्चैवप्रधर्षणात् । नष्टःकामस्य दोषेण सुरराट् तत्र संस्थिताः॥२७॥
भुक्तवान्दारुणं शापं दुःखेन महतान्वितः । कृकलस्य प्रियामेनां सुकलां पुण्यचारिणीम्॥२८॥
एष हन्तुं सहस्राक्ष उद्यतः कामसंयुतः । यथा चेन्द्रेण नायाति काम एष तथा कुरु॥२९॥
धर्मराज महाप्राज्ञ भवान्मतिमतां वरः ॥३०॥

धर्मराज उवाच

ऊनं तेजःकरिष्यामि कामस्य मरणं तथा। एकोपायो मया दृष्टस्तमिहैव प्रपश्यतु॥३१॥
प्रज्ञा चैषा महाप्राज्ञा शकुनी रूपचारिणी । भर्तुरागमनं पुण्यं शब्देनाख्यातु खे यतः ॥३२॥

दुर्धर तथा दुःसह एवं व्यापक है, तथा सत्य के विषय में निष्ठुर है, वह कामदेव मुझको इस प्रकार से (शत्रुतापूर्ण दृष्टि से) देखता है । वह सोचता है कि सत्य कहाँ रहता है ?॥१९॥ वह धनुष बाणधारी काम मुझको यहाँ जानकर आ रहा है । वह मेरे गृह को अग्नि से जला देगा ॥२०॥ जो क्रूर, पापी तथा पाखण्डी हैं, वे सबके सब बुद्धि के द्वारा आहित होकर सत्य के गृह में प्रवेश कर जाते हैं ॥२१॥ छलपूर्वक कामदेव के द्वारा जुटाये गये असत्य रूपी दुष्ट सेनापतियों तथा शास्त्रों से मेरे गृह को गिराकर नष्ट भ्रष्ट कर देता है॥२२॥ महाबलवान् पापी कामदेव इस प्रकार से मुझको दुःख देता है । इसके तेज से दग्ध होकर मैं शून्यता को प्राप्त कर जाता हूँ ॥२३॥ मैं स्त्रियों के पतिरूपी राजा को नवीन गृह को प्राप्त करना चाहता हूँ । यह कल्याणकारिणी मङ्गलमयी कृकल नामक वैश्य की पत्नी है ॥२४॥ उस सुकला नामक मेरे गृह को जलाने के लिए यह पापी तैयार हो गया है । यह बलवान् इन्द्र काम के साथ है ॥२५॥ काम के कारण हुए अपने पूर्व वृत्तान्त का स्मरण क्यों नहीं करता है ? अहल्या के प्रसङ्ग से इन्द्र मेष के उपस्थ वाला हो गया ॥२६॥ सती (अहल्या) को परास्त करने के कारण मुनि के पौरुष को देखकर काम के दोष के कारण इन्द्र विनष्ट हो गया ॥२७॥ उसके कारण शापित होकर उसने भयङ्कर कष्ट को सहा । पवित्र आचरण करने वाली कृकल की पत्नी सुकला को ॥२८॥ काम के साथ मिलकर यह इन्द्र मारना चाहता है । आप ऐसा करें कि काम इन्द्र के साथ यहाँ आ न सके ॥२९॥ हे महाप्राज्ञ धर्मराज ! आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं । **धर्मराज ने कहा**— मैं काम के तेज को कम करके उसको मार दूँगा ॥३०॥ मैंने एक उपाय सोच लिया है उसे आप सुनें । यह महाप्राज्ञा प्रज्ञा शकुनी (पक्षी) रूप से संचरण करने वाली है ॥३१॥ यह सुकला के पति के आगमन को आकाश से बतलाये । अपने स्वामी के आगमन रूप शकुन के प्रभाव से ॥३२॥

शकुनस्य प्रभावेन भर्तुश्चागमनेन च। दुष्टैर्नष्टा न भूयेत स्वस्थचिता न संशयः ॥३३॥
प्रज्ञा संप्रेषिता तेन गता सा सुकला गृहम्। प्रकुर्वती महच्छब्दं दृष्टदेवेनसा बभौ॥३४॥
पूजिता मानिता प्रज्ञा धूपदीपादिभिस्तदा। ब्राह्मणं सुकलाऽपृच्छत्किमेषा च वदेन्मम॥३५॥

ब्राह्मण उवाच

भर्तुश्चागमनं ब्रूते तवैव सुभगे स्थिरा। दिनसप्तकध्ये स आगमिष्यति नान्यथा॥३६॥
इत्येवमाकर्ण्य सुमङ्गलं वचःप्रहर्षयुक्ता सहसा बभूव ।
धर्मज्ञमेकं सगुणं हि कान्तं शकुनात्प्रदिष्टं हि समागतं तम् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे षट्पञ्चशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

क्रीडा सतीरूपधरा प्रभूत्वा गेहं गता चारुपतिव्रतायाः ।
तामगतां सत्यस्वरूपयुक्ता सा सादरं वाक्यमुवाच धन्या ॥१॥
वाक्यैःसुपुण्यैः परिपूजिता सा उवाच क्रीडा सुकलां विहस्य ।
मायानुगं विश्वविमोहनं सती प्रत्युत्तरं सत्यप्रमेययुक्तम् ॥२॥

सुकला स्वस्थ चित्त वाली हो जायेगी और ये दुष्ट उसको नष्ट नहीं कर पायेंगे । धर्म ने प्रज्ञा को भेजा और वह सुकला के घर गयी ॥३३॥ वह जोर-जोर से शब्द करती हुए देवताओं के द्वारा देखी गयी । उस समय धूप तथा दीप आदि से प्रज्ञा की पूजा की गयी ॥३४॥ सुकला ने ब्राह्मण से पूछा कि यह मेरे विषय में क्या कहती है ? **ब्राह्मण ने कहा—** हे सुभगे । यह स्थिर होकर तुम्हारे पति के आगमन को बतला रही है॥३५॥ तुम्हारे पति सात दिन के भीतर ही आ जायेंगे ॥३६॥ इस तरह की मङ्गलमयी वाणी को सुनकर सुकला सहसा अत्यन्त प्रसन्न हो गयी । पक्षी के द्वारा प्रदिष्ट (सूचित) उसके प्रधान धर्मज्ञ गुणवान् पति के आगमन के कारण हर्ष हुआ ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५६।।

क्रीड़ा द्वारा सुकला को मायामय वन में लाया जाना और काम द्वारा उसको मोहित करने के लिए प्रयास किया जाना

विष्णुभगवान् ने राजा वेन से कहा— क्रीड़ा सती का रूप धारण करके उस पतिव्रता के मनोहर घर में गयी । उस आयी हुयी क्रीड़ा से सत्य स्वरूप से युक्त धन्या सुकला ने बातें की ॥१॥ अत्यन्त पवित्र वाक्यों के द्वारा पूजित होकर क्रीड़ा ने हँसकर सुकला से कहा— उसने विश्व को मोहित करने वाला मायायुक्त सत्यप्रमेय से युक्त वाणी कहा ॥२॥ मेरे भी पति बहुत बड़े गुणज्ञ हैं, धीर, विद्वान एवं महिमा

ममापि भर्ता प्रबलो गुणज्ञो धीरःसविद्यो महिमाप्रयुक्तः ।
त्यक्त्वा गतः पापतरां सुपुण्यो मामेव नाथःशृणु पुण्यकीर्तिः ॥३॥
वाक्यैस्तु पुण्यैरबलास्वभावादाकर्ण्य सर्वं सुकला समुक्तम् ।
संशुद्धभावां च विचिन्त्य चाह कस्माद्गतःसुन्दरि तेऽद्यनाथः ॥४॥
विहाय ते रूपमतीव सत्यमाचक्ष्व सर्वं भवती सुभर्तुः ।
ध्यानोपयुक्ता सकलं करोति सखीस्वरूपा गृहमागता मे ॥५॥
क्रीडा बभाषे शृणु सत्यमेतं चरित्रभावं मम भर्त्तुरस्य ।
अहं प्रिये यस्य सदैवयुक्ता यमिच्छते तं प्रति सान्त्वयामि ॥६॥
कर्तुःसुपुण्यं वचनं सुभर्तुर्ध्यानोपयुक्ता सकलं करोमि ।
एकान्तशीला सगुणानुरूपा शुश्रूषयैकस्तमिहैव देवि ॥७॥
मम पूर्वविपाकोऽयं सम्प्रत्येवंप्रवर्तते। यतस्त्यक्त्वा गतो भर्त्ता मामेवंमन्दभागिनीम्॥८॥
सखेन धारये जीवं स्वकीयं कायमेव च। पत्याहीनाःकथं नार्यःसुजीवन्ति च निर्घृणाः॥९॥
रूपशृङ्गारसौभाग्यं सुखं सम्पत्तिरेव च। नारीणां हि महाभागो भर्ता शास्त्रेषु गीयते॥१०॥
तया सर्वंसमाकर्ण्य यदुक्तं क्रीडया तदा। सत्यभावं विदित्वा सा मेने सम्भाषितं तदा ॥११॥
विश्वस्ता सा महाभागा सुकला पतिदेवता। तामुवाच पुनःसर्वमात्मचेष्टानुगं वचः ॥१२॥
समासेन समाख्यातं पूर्ववृत्तान्तमात्मनः। यथा भर्ता गतो यात्रां पुण्यसाधनतत्परः ॥१३॥
आत्मदुःखं सुसत्यं च तप एवं मनस्विनी। बोधिता क्रीडया सा तु समाश्वास्य पतिव्रता ॥१४॥

सम्पन्न हैं । पवित्र कीर्ति सम्पन्न मेरे नाथ मुझ पापिनी को छोड़कर चले गये ॥३॥ नारी के स्वभाव वाली होने के कारण सुकला ने पवित्र वाक्यों से कहे जाने पर शुद्ध भावों वाली उसको (क्रीड़ा को) जानकर उससे पूछा— हे सुन्दरि ! तुम्हारे इस सुन्दर रूप को छोड़कर तुम्हारे स्वामी किस कारण से चले गये । इन सारी बातों को तुम बतलाओ । ध्यान के अनुकूल वे सबकुछ करते हैं तथा सखी रूप से मेरे घर आये हैं ॥४-५॥ **क्रीड़ा ने कहा—** तुम मेरे पति के सत्य चरित्र और भाव को सुनो । हे प्रिये ! जिसके साथ मैं सदा रहती हूँ, वे जिसको चाहते हैं उसको सन्त्वना प्रदान करती हूँ ॥६॥ कहने वाले के पवित्र वचनों को पतिदेव के ध्यानानुकूल करती हूँ । हे देवि ! एकान्तशील सुन्दर गुणों वाली मैं उनकी सेवा करती रहती हूँ । मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का इस समय परिणाम हो रहा है, जिसके कारण मन्द भाग्यों वाली मुझको छोड़कर मेरे पति चले गये ॥७-८॥ हे सखी ! पति से रहित मैं न तो अपना जीवन धारण कर सकती हूँ और न तो अपना जीवन धारण करूँगी और न तो अपना शरीर ही धारण करूँगी । पति से रहित अत्यन्त निष्ठुर नारियाँ न जाने कैसे जीवित रहती हैं ?॥९॥ रूप, शृङ्गार, सौभाग्य, सुख तथा सम्पत्ति सबकुछ शास्त्रों में नारी के पति ही बतलाये गये हैं ॥१०॥ क्रीड़ा के द्वारा कही गयी सारी बातों को सुनकर सुकला ने उन सारी बातों को सत्य भाव से कही गयी माना ॥११॥ पति को ही देवता मानने वाली विश्वस्त सुकला ने अपनी चेष्टानुसारिणी बातों को क्रीड़ा से कहा ॥१२॥ उसने संक्षेप में अपने वृत्तान्त को सुनाया । सुकला ने बतलाया कि किस प्रकार उसके पुण्यार्जन परायण पति तीर्थ यात्रा में गये ॥१३॥ हे मनस्विनि ! अपना दुःख तथा सत्य का पालन तप ही है, इस तरह से क्रीड़ा के द्वारा समझाये जाने पर वह पतिव्रता आश्वस्त

एकदा तु तया प्रोक्तं क्रीडया सुकलां प्रति ।
सखे पश्य वनं सौम्यं दिव्यवृक्षैरलङ्कृतम् ॥१५॥
तत्र तीर्थं परं पुण्यमस्ति पातकनाशनम्। नानावल्लीवितानैश्च सुपुष्पैःपरिशोभितम्॥१६॥
आवाभ्यामपि गन्तव्यं पुण्यहेतोर्वरानने। समाकर्ण्य तया सार्द्धं सुकला मायया तदा॥१७॥
प्रविवेश वनं दिव्यं नन्दनोपममेव सा। सर्वर्तुकुसुमोपेतं कोकिला शतनादितम् ॥१८॥
गीयमानं सुमूधुरैर्नादैर्मधुकरैरपि। कूजद्धिःपक्षिभिःपुण्यैःपुण्यध्वनि समाकुलम् ॥१९॥
चन्दनादिकवृक्षैश्च सौरभैश्च विराजितम्। सर्वभोगैःसुसम्पूर्णं माधव्या माधवेन वै ॥२०॥
रचितं मोहनायैव सुकलायाश्च कारणात् । तया सार्थं प्रविष्टा सा तद्वनं सर्वभावनम् ॥२१॥
ददर्श सौख्यदं पुण्यं मायाभावं न विन्दति। वीक्षमाणा वनं दिव्यं तया सह जनेश्वर ॥२२॥
शक्रोऽपि चाभ्ययात्तत्र देवमूर्ति विराजितः । तया दूत्या समं प्राप्तःकामस्तत्र समागतः॥२३॥
सर्वभोगपतिर्भूत्वा कामलीलासमाकुलः । काममाह समाभाष्य एषा सा सुकुलाऽऽगता ॥२४॥
प्रहरस्व महाभाग क्रीडायाःपुरतःस्थिताम्। मायां कृत्वा समानीतां क्रीडया तव सन्निधौ॥२५॥
पौरुषं दर्शयाद्यैव यद्यस्ति कुरु निश्चितम् ॥२६॥

काम उवाच

आत्मरूपं दर्शयस्व चतुरं लीलायान्वितम्। येनाहं प्रहराम्येतां पञ्चबाणैःसहस्रदृक्॥२७॥

इन्द्र उवाच

क्वास्ते ते पौरुषं मूढ येन लोकं विडम्बसे। मामाधार परोभूत्वा योद्धुमिच्छसि साम्प्रतम्॥२८॥

हो गयी ॥१४॥ **सूतजी ने कहा—** एक दिन क्रीड़ा ने सुकला से कहा— सखी ! दिव्य वृक्षों से अलंकृत इस सुन्दर वन को देखों ॥१५॥ उसमें सभी पापों को विनष्ट करने वाला अत्यन्त पवित्र जल हैं । वह अनेक प्रकार की लता समूह सुन्दर पुष्पों से सुशोभित है ॥१६॥ हे वरानने ! हमलोग भी पुण्यार्जन के लिए इस वन में चले । क्रीड़ा की मायामयी बातों को सुनकर सुकला उसके साथ उस वन में गयी । वह वन नन्दन वन के समान था । उसमें सभी ऋतुओं के पुष्प विकसित थे और कोकिलायें कुहक रही थीं॥१७-१८॥ भौंरे मधुर झंकार कर रहे थे । चहकने वाले पक्षियों की पवित्र ध्वनि से वह वन परिपूर्ण था॥१९॥ वह चन्दन आदि वृक्षों की पवित्र सुगन्धि से सुशोभित था । वसन्त की माधवी लता के सभी भोगों से वह वन भरा हुआ था ॥२०॥ वह सुकला को ही मोहित करने के लिए बनाया गया था । क्रीड़ा के साथ सुकला सब तरह से मनोहर उस वन में गयी ॥२१॥ उसने सुखप्रद माया के भावों को देखा किन्तु वह उस माया के भावों को नहीं ग्रहण करती थी । हे जनेश्वर ! वह क्रीड़ा के साथ उस वन को देखती थी॥२२॥ देवमूर्ति (शरीर) से सुशोभित इन्द्र भी उसके पास आये । उसी समय दूती के साथ कामदेव भी वहाँ आया ॥२३॥ वह सभी भोगों का स्वामी तथा भोग की लीला से समन्वित था । इन्द्र ने काम से कहा कि यह सुकला आयी है ॥२४॥ हे महाभाग ! वह क्रीड़ा के सामने स्थित है, तुम उस पर प्रहार करो । माया करके क्रीड़ा उसे तुम्हारे सामने लायी है ॥२५॥ यदि तुममें पौरुष है तो तुम अपना पौरुष दिखाओ। **काम ने कहा—** तुम चतुर लीला से युक्त अपना रूप दिखाओ ॥२६॥ जिससे कि मैं अपने पाञ्चों बाणों से इस पर प्रहार करूँ । **इन्द्र ने कहा—** अरे मूर्ख ! तुममें पौरुष कहाँ है जिससे कि तुमलोक में विडम्बना

काम उवाच

तेनापि देवदेवेन महादेवेन शूलिना। पूर्वमेव हृतं रूपं मम कायो न विद्यते ॥२९॥

इच्छाम्यहं यदा नारीं हन्तुं शृणुष्व साम्प्रतम् ।
पुंसां कायं समाश्रित्य आत्मरूपं प्रदर्शये ॥३०॥

पुमांसं वा सहस्राक्ष नार्याःकायं समाश्रये। पूर्वं दृष्टा यदा नारीं तामेव परिचिन्तयेत् ॥३१॥

चिन्त्यमानस्य पुंसस्तु नार्या रूपं पुनःपुनः। अदृष्टं तु समाश्रित्य पुंसमुन्मादयाम्यहम् ॥३२॥

तथाप्युन्मादयाम्येवं नारी रूपं न संशयः । संस्मरणात्स्मरो नाम मम जातं सुरेश्वर॥३३॥

तां दृष्ट्वा तादृशोरङ्ग वस्तुरूपं समाश्रये। आत्मतेजःप्रकाशेन बाध्यबाधकतां व्रजेत् ॥३४॥

नारीरूपं समाश्रित्य धीरं पुरुषंप्रमोहयेत्। पुरुषं तु समाश्रित्य भावयामि सुयोषितम् ॥३५॥

रूपहीनोऽस्मि हे इन्द्र अस्मद्रूपं समाश्रयेत्। तव रूपं समाश्रित्य तां साधयेयथेप्सिताम् ॥३६॥

एवमुक्त्वा स देवेन्द्रं कायं तस्यमहात्मनः। सखाऽसौ माधवस्यापि समाश्रित्य सुमायुधः॥३७॥

तामेव हन्तुं कुसुमायुधोऽपि साध्वीं सुपुण्यां कृकलस्य भार्याम् ।
समुत्सुकस्तिष्ठति बाणलक्ष्यं तस्याश्चकायं नयनैर्विलोक्य ॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

करते हो ॥२७॥ तुम मुझको अपना आधार बनाकर युद्ध करना चाहते हो । **काम ने कहा**— त्रिशूलधारी देवाधिदेव शङ्कर ने मेरे रूप का अपहरण कर लिया ॥२८॥ मेरे रूप का अपहारण पहले ही हो चुका है। मेरा शरीर नहीं है । आप मेरी बात सुनें, जब मैं किसी नारी को मारना चाहता हूँ तो ॥२९॥ पुरुषों के शरीर को अपना आश्रय बनाकर अपने रूप का प्रदर्शन करता हूँ यदि किसी पुरुष को मारना चाहता हूँ तो नारी के शरीर का सहारा लेता हूँ ॥३०॥ जब वह पूर्व दृष्ट नारी का चिन्तन करता है तो चिन्ता करने वाले पुरुष के नारी का अदृष्ट रूप का बार-बार आश्रय बनाकर मैं पुरुष को उन्मत्त बना देता हूँ । उसी तरह से मैं नारी के रूप को भी उन्मत्त बना देता हूँ ॥३१-३२॥ हे सुरेश्वर ! स्मरण किए जाने के कारण ही मेरा नाम स्मर है । उसको देखकर मैं उसी प्रकार के शरीर के रूप का आश्रयण करता हूँ ॥३३॥ वह अपने तेज के प्रकाश से वाध्य बाधक हो जाता है । नारी के रूप को आश्रय बनाकर वीर पुरुष को मैं मोहित करता हूँ ॥३४॥ पुरुष को आधार बनाकर मैं नारी को मोहित करता हूँ । हे इन्द्र ! मैं तो रूप हीन हूँ, आप मेरे रूप को अपनाएँ ॥३५॥ आपके रूप को आश्रय बनाकर मैं अपनी इच्छानुसार उसको मोहित करूँगा । इन्द्र को इस प्रकार कहकर तथा इन्द्र के शरीर को अपनाकर वसन्त का मित्र कामदेव उसको भी अपना आधार बनाया ॥३६-३७॥ इस प्रकार से साध्वी पुण्यवती सुकला को मारने के लिए कामदेव भी सुकला के शरीर को अपने नेत्रों से देखकर उत्सुक हो गया ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

क्रीडाप्रयुक्ता सुवनं प्रविष्टा वैश्यस्य भार्या सुकला सुतन्वी ।
ददर्श सर्वं गहनं मनोरमं तामेव पप्रच्छ सखीं सती सा ॥१॥
अरण्यमेतत्प्रवरंसुपुण्यं दिव्यं सखे कस्य मनोभिरामम् ।
सिद्धं सुकामैःप्रवरैःसमस्तैःपप्रच्छ हर्षात्सुकला सखीं ताम् ॥२॥

क्रीडोवाच

एतद्वनं दिव्यगुणैःप्रयुक्तं सिद्धस्वभावैःपरिभावनेन ।
पुष्पाकुलं कामफलोपयुक्तं विपश्य सर्वं मकरध्वजस्य ॥३॥

एवं वाक्यं ततःश्रुत्वा हर्षेण महतान्विता। समालोक्य महद्वृत्तं कामस्य च दुरात्मनः ॥४॥
वायुना नीयमानं तं समाघ्राति न सौरभम्। वाति वायुःस्वभावेन सौरभेण समन्वितः॥५॥
तद्घ्राणो विशतेनासा यथा तथा सुलीलया। स गन्धं नैव गृह्णाति पुष्पाणां च वरानना॥६॥
न चास्वादयते सातु सुरसान्सा महासती। स सखा कामदेवस्य रममाणो विनिर्जितः॥७॥
लज्जितःपरङ्मुखोभूत्वा भूपपातलवचच्छदैः ।
फलेभ्योहि सुपक्वेभ्यःपुष्पमञ्जरिसंस्कृतः ॥८॥
लवरूपोऽपतद्भूमौ रसस्त्वेष तयाजितः। मकरन्दःसुदीनात्मा फलाद्भूमिं ततःपुनः॥९॥
भक्ष्यते मक्षिकाभिश्च यथामृतो रणे तथा। मक्षिका भक्ष्यमाणस्तुप्रवाहेन प्रयाति सः ॥१०॥
मन्दं मन्दं प्रयात्येव तं हसन्ति च पक्षिणः। नानारुतैः प्रचलन्ति सुखमानन्द निर्भरैः ॥११॥

काम और इन्द्र का सुकला से पराजित होना

भगवान् विष्णु ने कहा— वैश्य कृकल की पत्नी सुकला क्रीड़ा के द्वारा प्रेरित होकर उस वन में उसने सम्पूर्ण मनोहर वन को देखा और उस सती ने अपनी सखी क्रीड़ा से पूछा ॥१॥ हे सखी ! अत्यन्त मनोहर यह दिव्य तथा पवित्र वन किसका है ? सभी मनोहर वस्तुओं से यह परिपूर्ण है, इस तरह से सुकला ने क्रीड़ा से पूछा ॥२॥ **क्रीड़ा ने कहा—** यह वन सिद्ध स्वभाव वाले, दिव्य गुणों वाले के द्वारा निर्मित है । यह कामदेव का वन सुन्दर पुष्पों और फलों से युक्त है, इसे देखो ॥३॥ उसके बाद इस वाक्य को सुनकर दुष्ट काम के महान् वृत्तान्त को देखकर हर्षित हुयी ॥४॥ वायु के द्वारा लायी जाने वाली सुगन्धि को उसने नहीं सूंघा । सुगन्धित से भरी हुयी हवा स्वाभाविक रूप से चल रही थी ॥५॥ काम का बाण किसी तरह उसके नाक में प्रवेश करता था किन्तु वह सुन्दरी पुष्पों की सुगन्धि को ग्रहण ही नहीं करती थी॥६॥ महासती सुन्दर रसों को भी ग्रहण नहीं करती थी । इस तरह कामदेव का मित्र वसंत पराजित हो गया ॥७॥ वह लज्जित होकर युद्ध पराङ्मुख हो गया और कणों के माध्यम से पृथिवी पर गिर पड़ा ॥८॥ पके हुए फलों तथा पुष्प मञ्जरी के संस्कार से संस्कृत वह लवरूपी से पृथिवी पर गिर पड़ा और कामदेव का रस बाण पराजित हो गया । अत्यन्त दीन बना हुआ मकरन्द भी पृथिवी पर गिर पड़ा ॥९॥ मक्खियाँ उस पर उसी तरह भिन-भिनाने लगीं जिस तरह प्रवाह से प्रवाहित मरे हुए पर मक्खियाँ भिन-भिनाती

प्रीत्या शकुनयस्तत्र वनमध्य नगस्थितः । सुकलया जितो ह्येष निम्नं पन्थानमाश्रितः ॥१२॥

प्रीत्या समेता रतिःकामभार्या गत्वा ब्रवीत्सा सुकलां विहस्य ।

स्वस्त्यस्तु ते स्वागतमेव भद्रे रमस्व प्रीत्या नयनाभिरामम् ॥१३॥

ते रूपमिष्टममलमिन्द्रस्यापि महात्मनः । यदेष्टं ते तदा ब्रूहि समानेष्ये न संशयः ॥१४॥

सूत उवाच

बदन्त्यो ते स्त्रियौ दृष्ट्वा श्रुत्वोवाच सुभाषितम् ।

रतिं प्रति गृहीत्वा मे गतो भर्त्ता महामति ॥१५॥

यत्र ते तिष्ठते भर्त्ता तत्राहं पतिसंयुता । तत्र कामश्च मे प्रीतिरयंकायो निराश्रयः ॥१६॥

द्वे अप्युक्तं समाकर्ण्य रतिप्रीतिविलज्जिते । व्रीडमाने गते ते द्वे यत्र कामो महाबलः ॥१७॥

ऊचतुस्तं महावीरमिन्द्रकायसमाश्रितम् । वाणमाकर्षमाणं तं नेत्रलक्ष्यं महाबलम् ॥१८॥

दुर्जयेयं महाप्राज्ञ त्यज पौरुषमात्मनः । पतिकामा महाभागा पतिव्रता सदैव सा ॥१९॥

काम उवाच

अनयालोक्य ते रूपमिन्द्रस्यास्य महात्मनः । यदि देवि तदा चाहं हनिष्यामि न संशयः ॥२०॥

अथ वेषधरो देवो महारूपःसुराधिपः । स तयानुगतस्तूर्णं परया लीलया तदा ॥२१॥

सर्वभोगसमाकीर्णःसर्वाभरणशोभितः । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥२२॥

तया रत्या समायातो यत्रास्ते पतिदेवता । प्रत्युवाचमहाभागां सुकलां सत्यचारिणीम् ॥२३॥

पूर्वं दूतीसमक्षं ते प्रीत्या च प्रहिता मया । कस्मान्नमन्यसे भद्रे भजन्तं त्वामिहागतम् ॥२४॥

हैं॥१०॥ वह धीरे-धीरे जा रहा था और पक्षिगण उसका उपहास कर रहे थे । वे सुख तथा आनन्द से भरे हुए तथा अवाज करते हुए चल रहे थे ॥११॥ वन में विद्यमान पर्वतों पर बैठे हुए पक्षी कह रहे थे, इस नीच मार्ग को अपनाने वाले को सुकला ने परास्त कर दिया ॥१२॥ काम की पत्नी रति प्रीति के साथ जाकर सुकला से हंस कर कही । हे भद्रे ! आपका कल्याण हो आपका स्वागत है । आप प्रीति पूर्वक यहाँ मनोहर वन में बिहार करें ॥१३॥ तुम्हारा निर्मल रूप इन्द्र को अभिप्रेत है, यदि तुम को अच्छा लगे तो बतलाओ मैं उनको यहाँ लाऊँ ॥१४॥ **सूतजी ने कहा**— बोलने वाली उन दोनों स्त्रियों को देखकर तथा उनकी वाणी को सुनकर उसने रति से कहा कि मेरे पति मेरे प्रेम को लेकर चले गये ॥१५॥ जहाँ पर मेरे पति हैं वहाँ पर ही मैं पति से संयुक्त हो सकती हूँ । वहीं पर मुझमें काम और प्रीति होगी, मेरा शरीर निराश्रय है ॥१६॥ उसकी बातों को सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गयीं । वे दोनों लज्जित होकर महाबलवान् काम के पास चली गयीं ॥१७॥ उन दोनों ने इन्द्र के शरीर में स्थित तथा अपनी आँखों से देखकर धनुष को विस्फारित करने वाले काम से कहा ॥१८॥ हे महाप्राज्ञ ! यह दुर्जय है, आप अपना पौरुष त्याग दीजिये । वह महाभाग सदैव पति की कामना से युक्त है ॥१९॥ **काम ने कहा**— हे देवि ! जब यह इन्द्र के सुन्दर रूप को देखेगी उसी समय मैं उस पर प्रहार करूँगा ॥२०॥ उसके बाद अत्यन्त सुन्दर वेष बनाकर देवराज इन्द्र गये । उनके पीछे रति भी गयी ॥२१॥ इन्द्र सभी आभरणों से भूषित, सभी भोगों से सम्पन्न, दिव्य माला तथा वस्त्र धारण किए हुए एवं दिव्य चन्दन लगाये हुए थे ॥२२॥ वे उस रति के साथ आकर पतिदेवता सत्य आचरण करने वाली सुकला से इन्द्र ने कहा ॥२३॥ पहले मैं तुम्हारे पास

सुकलोवाच

रक्षायुक्तास्मि भद्रं ते भर्तुः पुत्रैर्महात्मभिः । एकाकिनीसहायैश्च नैव कस्य भयं मम ॥२५॥
शूरैश्च पुरुषाकारैः सर्वत्र परिरक्षिता । नाति प्रस्तावये वक्तुं व्यग्राकर्मणि तस्य च ॥२६॥
यावत्प्रस्पन्दते नेत्रं तावत्कालं महामते । भवान्नलज्जते कस्माद्रममाणो मया सह ॥
भवान्को हि समायातो निर्भयो मरणादपि ॥२७॥

इन्द्र उवाच

त्वामेवं हि प्रपश्यामि वनमध्ये समागताम् । समाख्यातास्त्वया शूरा भर्तुश्च तनयाः पुनः ॥२८॥
कथं पश्याम्यहं तावद्दर्शयस्व ममाग्रतः ॥२९॥

सुकलोवाच

स निजसकलवर्गस्याधिपत्येनिवेश्य धृतिमतिगतिबुद्ध्याख्यैस्तुसन्यस्यसत्यम् ।
अचलसकलधर्मो नित्ययुक्तो महात्मा मदन सबल धर्मात्मा सदा मां जुगोप ॥३०॥
मामेवं परिरक्षतेदमगुणैः शौचैस्तु धर्मः सदा सत्यं पश्य समागतं ममपुरःशान्ति क्षमाभ्यांयुतम् ।
बोधश्चाति महाबलः पृथुयशा यो मां न मुञ्चेत्कदा बद्धाहंदृढबन्धनैः स्वगुणजः सान्निध्यमेवं गतः ॥३१॥
रक्षायुक्ताः कृत्वासर्वे सत्याद्या मम साम्प्रतम्। धर्मलाभादिकासर्वे दमबुद्धि पराक्रमाः ॥३२॥
मामेवं हि प्ररक्षन्ति किं मां प्रार्थयसे बलात् ।
कोभवान्निर्भयो भूत्वा दूत्यासार्धं समागतः ॥३३॥
सत्यं धर्मस्तथापुण्यं ज्ञानाद्याः प्रबलास्तथा । ममभर्तुः सहायाश्च ते मां रक्षन्ति वेश्मनि॥३४॥
अहं रक्षायुता नित्यं दमशान्तिपरायणा। न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः॥३५॥

दूति और रति को भेज चुका हूँ । हे भद्रे ! मैं तुमको चाहता हूँ, तुम मुझे क्यों नहीं चाहती हो ? मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥२४॥ **सुकला ने कहा—** मैं अपने पति के पुत्रों से रक्षित हूँ । मैं अकेली भी सहायकों के कारण मुझे किसका भय है ?॥२५॥ पुरुष के आकार वाले वीरों से मैं सर्वत्र रक्षित हूँ । मैं अपने पति के कामों में व्यग्र हूँ अतएव अब आप अधिक प्रस्ताव मत करें ॥२६॥ हे महामते ! जब तक नेत्रों ने आँसू वहता है तब तक आप मेरे साथ रमण करते हुए क्यों नहीं लज्जित होते हैं ?॥२७॥ आप कौन हैं ? आपको मृत्यु से भी भय नहीं लगता है क्या ? **इन्द्र ने कहा—** मैं तो इस वन में आयी हुयी केवल तुमको ही देखता हूँ ॥२८॥ तुमने अपने पति के वीर पुत्रों को कहा । मैं उन सबों को कैसे देखूँ ? उन्हे मेरे सामने दिखाओ ॥२९॥ **सुकला ने कहा—** हे इन्द्र ! वे सम्पूर्ण वर्ग के अधिपति रूप से धृति, मति, गति तथा बुद्धि के द्वारा सत्य को सौंप कर समस्त धर्मों में अचल वे महात्मा बलवान् धर्म मेरी सदा रक्षा करते हैं॥३०॥ इस तरह सत्य तथा पवित्र्य नामक गुणों वाले धर्म मेरी रक्षा करते हैं । देखो मेरे सामने सत्य आ गये हैं । उनके साथ शान्ति और क्षमा देवी भी हैं । अत्यन्त बलवान् ज्ञान मुझे कभी त्याग नहीं सकते हैं, इस तरह मैं अपने गुण जन्य बन्धनों से बद्ध हूँ । इस तरह वे मेरे सानिध्य में हैं ॥३१॥ इस समय सत्य इत्यादि मेरी रक्षा कर रहे हैं, धर्मलाभ, आदि तथा दम, बुद्धि एवं पराक्रम आदि मेरे रक्षक हैं ॥३२॥ वे सभी इसी प्रकार से मेरी रक्षा करते हैं आप कौन है, जो मुझको प्राप्त करना चाहते हैं । आप कौन हैं ? जो दूती के साथ निर्भय होकर यहाँ आये हैं ॥३३॥ सत्य, धर्म, पुण्य तथा ज्ञान आदि मेरे स्वामी के प्रवल

यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्। दंशिताहं सदासत्यं सत्यकेनैव नान्यथा ॥३६॥
निरर्थकास्तस्य बाणा भविष्यन्ति न संशयः ।
त्वामेवं हि हनिष्यन्ति धर्मादयो महाभटाः ॥३७॥
दूरं गच्छ पलायत्वमत्रमातिष्ठ साम्प्रतम् । वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि ॥३८॥
भार्त्रा विना निरिक्षेत ममरूपं यदा भवान् । यथा दारुदहेदग्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा ॥३९॥
एवं श्रुत्वा सहस्राक्षो मन्मथस्यापि संमुखम् ।
पश्य पौरुषमेतस्या युध्यस्व निजपौरुषैः ॥४०॥
यथा गतास्तथा सर्वे महाशापभयातुराः । स्वं स्वंस्थानं महाराज इन्द्राद्याःप्रयुयस्तदा ॥४१॥
गतेषु तेषु सर्वेषु सुकला सा पतिव्रता । स्वगृहं पुण्यसंयुक्ता पतिध्यानेन चागता ॥४२॥
स्वगृहं पुण्यसंयुक्तं सर्वतीर्थमयं तदा । सर्वयज्ञमयं राजन्सम्प्राप्ता पतिदेवता॥४३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे अष्टपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

कृकलःसर्वतीर्थानि साधयित्वा गृहं प्रति । प्रस्थितःसार्थवाहेन महानन्द समन्वितः ॥१॥

सहायक हैं, वे मेरी रक्षा घर में करते हैं ॥३४॥ दम और शान्ति में लगी हुयी मैं सदा रक्षा से युक्त हूँ । अतएव साक्षात् इन्द्र भी मुझे नहीं जीत सकते हैं ॥३५॥ पराक्रमी काम भी आ जायँ तो सदा सत्य का पालन करने वालो मैं सत्य से सुरक्षित हूँ ॥३६॥ निश्चित रूप से काम के बाण भी व्यर्थ हो जायेंगे । धर्म आदि महावीर तुमको ही मार डालेंगे ॥३७॥ तुम भाग कर दूर चले जाओ, यहाँ ठहरो मत, रोकने पर भी यदि तुम ठहरोगे तो भस्म हो जाओगे ॥३८॥ मेरे पति के बिना यदि तुम मेरे रूप को देखोगे तो फिर जिस तरह अग्नि काष्ठ को जला देती है, उसी तरह मैं भी तुम्हें जला दूँगी ॥३९॥ इस तरह से वातों को सुनकर इन्द्र ने कामदेव से कहा कि यदि तुममें पौरुष है तो तुम इसके साथ युद्ध करो । इसका पौरुष तुम देख लो॥४०॥ हे महाराज ! शाप के भय से भयभीत इन्द्र आदि सभी आये थे, उसी तरह लौट गये ॥४१॥ उन सबों के चले जाने पर पतिव्रता सुकला, पुण्य युक्त अपने पति का ध्यान करती हुयी अपने घर चली गयी ॥४२॥ हे राजन् ! सभी पुण्यों से युक्त, सुकला तीर्थ स्वरूप तथा सर्वयज्ञस्वरूप वह पतिव्रता अपने घर चली गयी ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित के अट्ठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५८।।

धर्मराज द्वारा भार्यातीर्थ का वर्णन

भगवान् विष्णु ने कहा— कृकल, समस्त तीर्थों में जाकर महा आनन्दपूर्वक अपने साथियों के साथ

एवं चिन्तयते नित्यं संसारः सकलो मम। तृप्ताःस्वर्गं प्रयास्यन्ति पितरो मम नान्यथा ॥२॥
तावत्प्रत्यक्षरूपेण बद्ध्वा तस्य पितामहान्। पुरतस्तस्य सम्ब्रूते न हि ते पुण्यमुत्तमम् ॥३॥
दिव्यरूपो महाकायःकृकलं वाक्यमब्रवीत्। तव तीर्थफलं नास्ति श्रममेव वृथा कृथाः ॥४॥
स्वयं सन्तोषमाप्नोषि न हि ते पुण्यमुत्तमम्। एवं श्रुत्वा ततो वैश्यःकृकलोदुःखपीडितः ॥५॥

भवान्कःसंवदस्येवं कस्माद्बद्धाः पितामहाः ।
केन दोषप्रभावेण तनमे त्वं कारणं वद ॥६॥
कस्मात्तीर्थफलंनास्ति मम यात्रा कथं न हि ।
सर्वमेव समाचक्ष्व यदि जानासि संस्फुटम् ॥७॥

धर्म उवाच

पूतां पुण्यतमां स्वीयां भार्यां त्यक्त्वा प्रयाति यः ।
तस्य पुण्यफलं सर्वं वृथा भवति नान्यथा ॥८॥

धर्माचारपरां पुण्यां साधुव्रतपरायणाम्। पतिव्रतरतां भार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम् ॥९॥
तामेवापि परित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति सः। वृथा तस्य कृतःसर्वो धर्मो भवति नान्यथा ॥१०॥
सर्वाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा। पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला ॥११॥
एवंगुणा भवेद्भार्या यस्य पुण्या महासती। तस्य गेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः ॥१२॥
पितरो गेहमध्यस्था श्रेयो वाञ्छन्ति तस्यच। गङ्गाद्याःपुण्यनद्यश्च सागरास्तत्र नान्यथा ॥१३॥
पुण्या सती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा। तत्र यज्ञाश्च गावश्च ऋषयस्तत्र नान्यथा ॥१४॥

घर की ओर लौटे ॥१॥ वे सोच रहे थे कि मेरा संसार सफल हो गया। मेरे पितृगण तृप्त होकर स्वर्ग में चले जायेंगे ॥२॥ उस समय उनके सामने ही उनके पितामहों को बाँधकर धर्म ने कहा— तुमने महान् पुण्य नहीं किया है ॥३॥ उस पुरुष का रूप दिव्य था, वह विशाल काय था उसने कृकल से कहा तुम्हारे तीर्थ का कोई फल नहीं है। तुम्हें केवल श्रम ही हाथ लगा ॥४॥ तुम केवल संतोष प्राप्त करते हो। तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं है। इस बात को सुनकर कृकल दुःख से पीड़ित हो गये। उन्होंने कहा आप कौन हैं और इस तरह से क्यों बोल रहे हैं? आप मेरे पितामहों को क्यों बाँधे हैं? किस दोष के प्रभाव से ऐसा हुआ? आप मुझे उस कारण को बतलायें ॥५-६॥ किस कारण से मुझको तीर्थ का फल नहीं मिला, मेरी यात्रा सफल क्यों नहीं है? यदि आप जानते हैं तो मुझे स्पष्ट रूप से बतलायें ॥७॥ **धर्म ने कहा**— जो व्यक्ति पवित्र तथा पुण्यमयी अपनी पत्नी को त्याग कर तीर्थ में जाता है, उसके पुण्य का सारा फल व्यर्थ हो जाता है ॥८॥ धर्माचरण करने वाली, अत्यन्त पवित्र तथा अच्छे व्रतों को करने वाली, पतिव्रता करने वाली, सुन्दर गुणों से युक्त, तथा पुण्यवत्सल पत्नी को छोड़कर जो पुण्यकर्म को करने के लिए जाता है, उसके द्वारा किया गया सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है ॥९-१०॥ समस्त भव्य आचरणों को करने वाली तथा सदा धर्म का साधन करने वाली, सदा पतिव्रत धर्म में लगी रहने वाली तथा ज्ञानवती जिसकी पत्नी होती है ॥११॥ इस प्रकार के गुणों से युक्त महासती जिसकी पत्नी होती है उसके घर में सदा महाओजस्वी देवताओं का निवास होता है ॥१२॥ उसके घर में रहने वाले पितृगण उसका कल्याण चाहते हैं। वहीं पर गङ्गा आदि नदियों एवं सागरों का निवास होता है ॥१३॥ जिसके घर में पवित्र सती तथा सत्य का पालन

तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
भार्यायोगेन तिष्ठन्ति सर्वाण्येतानि नान्यथा ॥१५॥

पुण्यभार्या प्रयोगेण गार्हस्थ्यंसम्प्रजायते । गार्हस्थ्यात्परमो धर्मो द्वितीयो नास्ति भूतले ॥१६॥
गृहस्थस्य गृहं पुण्यं सत्यपुण्यसमन्वितम् । तादृशं नैव पश्यामि अन्यमाश्रममुत्तमम्॥१७॥
मन्त्राग्निहोत्रं देवाश्च सर्वे धर्माःसनातनाः । दानाचाराःप्रवर्तन्ते यस्य पुंसश्च वै गृहे ॥१८॥
एवं यो भार्यया हीनस्तस्य गेहं वनायते । यज्ञाश्चवै न सिध्यन्ति दानानि विविधानि च ॥१९॥

भार्याहीनस्य पुंसोऽपि न सिध्यति महाव्रतम् ।
धर्मकर्माणि सर्वाणि पुण्यानि विविधानि च ॥२१॥

नास्ति भार्या समं तीर्थ धर्मसाधनहेतवे। श्रृणुष्व त्वं गृहस्थस्य नान्योधर्मो जगत्त्रये॥२२॥
यत्र भार्या गृहं तत्र पुरुषस्यापि नान्यथा। ग्रामे वाप्यथवारण्ये सर्वधर्मस्य साधनम् ॥२३॥

नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमंसुखम् ।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च ॥२४॥
धर्मयुक्तं सतीं भार्दां त्यक्त्वा यासि नराधम ।
गृहं धर्मं परित्यज्य क्वास्ते धर्मस्य ते फलम् ॥२५॥

तयाविना यदातीर्थे श्राद्धदानं कृतं त्वया। तेन दोषेण वै वद्धास्तव पूर्वपितामहाः ॥२६॥
भवांश्चौरो ह्यमीचौरा यैस्तु भुक्तं सुलोलुपैः। त्वया दत्तस्य श्राद्धस्य अन्नमेवं तया विना ॥२७॥

करने वाली नारी रहती है, उस घर में यज्ञों तथा गायों तथा ऋषियों का निवास होता है ॥१४॥ वहीं पर सभी तीर्थ तथा अनेक प्रकार के पुण्य रहते हैं । ये सभी भार्या के योग से रहते हैं, नहीं तो नहीं ॥१५॥ पवित्र पत्नी के प्रयोग से गार्हस्थ्य समृद्ध होता है । पृथिवी पर गार्हस्थ्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है॥१६॥ सत्य तथा पुण्य से युक्त गृहस्थ का घर ही पुण्य है । हे वैश्य ! वह सर्वतीर्थमय तथा सभी देवताओं से युक्त होता है ॥१७॥ गार्हस्थ्य का ही सहारा लेकर सभी जीव ज़ीवित रहते हैं । उसके समान उत्तम्‍ आश्रम मेरे संज्ञान में नहीं है ॥१८॥ जिस पुरुष के घर में दान तथा आचार का पालन होता है, उसके यहाँ मन्त्र, अग्निहोत्र, देवता तथा सभी धर्म तथा सनातन धर्म रहते हैं ॥१९॥ पत्नी से विहीन मनुष्य का घर वन बन जाता है । उसके द्वारा किए जाने वाले यज्ञ तथा दान का कोई फल नहीं होता है ॥२०॥ पत्नी से रहित पुरुष के महाव्रत की भी सिद्धि नहीं होती है । उसके सभी धार्मिक कार्य भी फलद नहीं होते हैं ॥२१॥ धर्म की सिद्धि के साधन भूत पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं है । सुनो तुम गृहस्थ्य हो तुम्हारे लिए त्रैलोक्य में कोई दूसरा धर्म नहीं है ॥२२॥ गृहस्थ की जहाँ पत्नी रहती है, वहीं उसका घर होता है। चाहे वह ग्राम हो अथवा अरण्य हो, सभी धर्म के साधन बन जाते हैं ॥२३॥ पत्नी के समान कोई न तो तीर्थ है और पत्नी के समान कोई सुख भी नहीं है । पत्नी के समान कोई तारने और कल्याण करने वाला पुण्य भी नहीं है ॥२४॥ हे नराधम ! धर्मिणी पत्नी का त्याग करके तुम जाते हो । गृह रूपी धर्म का परित्याग करके तुम्हे धर्म का कौन सा फल प्राप्त होगा ?॥२५॥ पत्नी के बिना तुमने जो तीर्थ में श्राद्ध और दान किया उसी पाप के कारण तुम्हारे पूर्वज बंध गये ॥२६॥ तुम चोर हो और भोजन करने वाले ये लोग भी चोर हैं, क्योंकि ये लोभी हैं । पत्नी के बिना तुम्हारे द्वारा जो श्राद्ध किया गया उसका अन्न इस

सुपुत्रःश्रद्धया युक्तःश्रद्धदानं ददाति यः । भार्यादत्तेन पिण्डेन तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥२८॥
यथाऽमृतस्य पानेन नृणां तृप्तिर्हि जायते । तथापितृणां श्राद्धेन सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२९॥
गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य भार्या भवति स्वामिनी ।
त्वयैषा वञ्चिता मूढ चौरकर्म कृतं वृथा ॥३०॥
अमी पिता महाश्चौरा यैर्भुक्तं तु तया विना ।
भार्या पचति चेदन्नं स्वहस्तेनामृतोपमम् ॥३१॥
तदन्नमेव भुञ्जन्ति पितरो हृष्टमानसाः । तेनैव तृप्तिमायान्ति सन्तुष्टाश्च भवन्ति ते॥३२॥
तस्माद्भार्या विना धर्मःपुरुषस्य न सिध्यति। नास्तिभार्यासमं तीर्थं पुंसां सुगतिदायकम्॥३३॥
भार्या विना च यो धर्मःस एव विफलो भवेत ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

कृकल उवाच

कथं मे जायते सिद्धिःकथं पितृविमोचनम्। एतन्मे विस्तरेणापि धर्मराज वदाधुना ॥१॥

प्रकार का बन गया ॥२७॥ जो सुपुत्र श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध और दान करता है । पत्नी के द्वारा दिए गये पिण्ड का जो फल होता है उसे मैं बतलाता हूँ ॥२८॥ जिस तरह से अमृत का पान करने से मनुष्यों को तृप्ति होती है, उस तरह से श्राद्ध के द्वारा पितरों की तृप्ति होती है । यह मैं सत्य बतलाता हूँ ॥२९॥ गार्हस्थ्य धर्म की स्वामिनी पत्नी होती है । हे मूढ़ ! तुमने उसको धोखा दे दिया; अतएव तुम चोर का कर्म किए हो ॥३०॥ ये तुम्हारे पूर्वज भी इसलिए चोर हैं कि इन सबों ने पत्नी के बिना ही उस अन्न का भोग किया है । यदि पत्नी अपने हाथ अन्न पकाती है तो वह अन्न अमृत के समान होता है ॥३१॥ उस अन्न को पितृगण प्रसन्न मन से खाते हैं । उसी से वे तृप्त होते हैं और उनकी सन्तुष्टि होती है ॥३२॥ अतएव पत्नी के बिना धर्म की सिद्धि नहीं होती है । पुरुष को सुन्दर गति प्रदान करने वाला पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं है ॥३३॥ पत्नी के बिना किया जाने वाला धर्म व्यर्थ होता है ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित के उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५९।।

पतिव्रता पत्नी के साथ ही पुण्यकर्म करना चाहिए

कृकल ने कहा— मुझे किस प्रकार से सिद्धि हो सकती है और किस प्रकार मेरे पितृगण मुक्त होंगे? हे धर्मराज ! आप इस बात को आप मुझे विस्तार से बतलाएँ ॥१॥ **धर्म ने कहा—** हे महाभाग ! आप अपने घर जाइये । आपके बिना आपकी पत्नी दुःखी है । तुम अपनी धर्मचारिणी पत्नी सुकला को

धर्म उवाच

गच्छ गेहं महाभाग त्वां विना दुःखमाचरत् ।
सम्बोधय त्वं सुकलां स्वपत्नीं धर्मचारिणीम् ॥२॥
श्राद्ध दानं गृहं गत्वा तस्या हस्तेन वै कुरु। स्मृत्वा पुण्यानि तीर्थानि यजस्वत्वं सुरोत्तमान् ॥३॥
तीर्थयात्राकृतासिद्धिस्तव चैव भविष्यति। भार्याविना तु यो लोकेधर्मसाधितुमिच्छति ॥४॥
स गार्हस्थ्यं विलोप्यैव एकाकी विचरेद्वनम् ।
विफलो जायते लोके तं न मन्यन्ति देवताः॥५॥
यज्ञाःसिद्धिं तदायान्ति यदास्याद्गृहिणी गृहे ।
एकाकी स समर्थो न धर्मार्थसाधनाय च ॥६॥

विष्णुरुवाच

एवमुक्त्वा च तं वैश्यं गतो धर्मो यथागतम् ।
कृकलोपि सधर्मात्मा स्वगृहं प्रति प्रस्थितः ॥७॥
स्वगृहं प्राप्य मेधावी दृष्ट्वा तां च पतिव्रताम् ।
सार्थवाहेन तेनापि स्वस्थानं प्राप्य बुद्धिमान् ॥८॥
तया समागतं दृष्ट्वा भर्तारं धर्मकोविदम्। कृतं सुमङ्गलं पुण्यं भर्तुरागमने तदा॥९॥
समाचष्ट स धर्मात्मा धर्मस्यापि विचेष्टितम्। समाकर्ण्य महाभागा भर्तुर्वाक्यं मुदावहम् ॥१०॥
धर्मवाक्यं प्रशस्याथ अनुमेने च तं तथा । अथो स कृकलो वैश्यस्तया सार्धं सुपुण्यकम्॥११॥
चकार श्रद्धया श्राद्धं देवता गृह संस्थितः । पितरो देवगन्धर्वा विमानैश्च समागताः ॥१२॥
तुष्टुवुस्तौ महात्मानौ दम्पती मुनयस्तथा । अहंचाऽपि तथा ब्रह्मा देव्यायुक्तो महेश्वरः ॥१३॥

सन्तुष्ट करो ॥२॥ घर जाकर श्राद्ध और दान उसके हाथ से ही करो । पवित्र तीर्थों का स्मरण करके तुम देवताओं का पूजन करो ॥३॥ ऐसा करने से तुमको तीर्थ यात्रा करने का फल प्राप्त हो जायेगा । जो व्यक्ति पत्नी के विना धर्म करना चाहता है ॥४॥ उसको चाहिए कि वह गार्हस्थ्य का परित्याग करके अकेले वन में विचरण करे । उसके द्वारा किया गया धर्म व्यर्थ होता है, उसको देवता नहीं मानते हैं ॥५॥ यज्ञों की सिद्धि तब ही होती है जबकि घर में पत्नी हो । वह अकेले धर्म की सिद्धि करने में समर्थ नहीं होता है॥६॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** इस तरह से उस वैश्य को कहकर धर्म जैसे आये थे उसी तरह से लौट गये और धर्मात्मा कृकल ने भी अपने घर के लिए प्रस्थान किया ॥७॥ वे मेधावी घर आकर और उस प्रतिव्रता को देखकर सार्थवाह के साथ अपने स्थान पर आये ॥८॥ सुकला भी धर्मवेत्ता पति को आये हुए देखकर पति के आने पर सुन्दर मङ्गल मनाया ॥९॥ उस धर्मात्मा ने धर्मराज की चेष्टाओं का वर्णन किया । महाभागा सुकला अपने पति के आनन्दप्रद वाक्य को सुनकर ॥१०॥ धर्मराज के वाक्यों की प्रशंसा करके कृकल को वैसा ही करने की अनुमति प्रदान की । **भगवान् विष्णु ने कहा—** उसके पश्चात् कृकल नामक वैश्य ने अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त पुण्यमय ॥११॥ देवता के गृह में बैठकर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया । उस समय विमान से पितृगण, देवता और गन्धर्व आये ॥१२॥ मुनियों ने उन दोनों पति-पत्नी की स्तुति की । मैं ब्रह्मा तथा देवी पार्वती के साथ महेश्वर ॥१३॥ सभी देवता तथा गन्धर्व विमानों से आये । उससे

सर्वे देवाः सगन्धर्वा विमानैश्च समागताः। अहमेव ततो ब्रह्मा देव्यायुक्तो महेश्वरः ॥१४॥
सर्वे देवाःसगन्धर्वास्तस्याःसत्येन तोषिताः। उचुश्च ते महात्मानौ धर्मज्ञौ सत्यपण्डितौ ॥१५॥
भार्यया सह भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ॥१६॥

कृकल उवाच

कस्य पुण्यप्रसङ्गेन तपसश्च सुरोत्तमाः। सभार्याय वंर दातुं भवन्तो हि समागतः॥१७॥

इन्द्र उवाच

एषा सती महाभागा सुकला चारुमङ्गला। अस्याःसत्येन तुष्टाःस्म दातुकामा वरं तव॥१८॥
समासेन तु तत्प्रोक्तं पूर्ववृत्तान्तमेव च। तस्याश्चरितं महात्म्यं श्रुत्वा भर्ता सहर्षितः॥१९॥
तया सह सधर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः। ननाम देवताःसर्वा उवाच च पुनःपुनः ॥२०॥
यदि तुष्टा महाभागा त्रयो देवाःसनातनः । अन्ये च ऋषयःपुण्याःकृपां कृत्वा ममोपरि ॥२१॥
जन्म जन्मनि देवानां भक्तिमेवं करोम्यहम्। धर्म सत्यरतिःस्यान्मे भवतां हि प्रसादतः ॥२२॥
पश्चाद्धि वैष्णवं लोकं सभार्यश्च पितामहैः। गन्तुमिच्छाम्यहं देवा यदि तुष्टा महौजसः ॥२३॥

देवा ऊचुः

एवमस्तु महाभाग सर्वमेव भविष्यति। सुकलेयं महापुण्या तव पत्नी यशस्विनी ॥२४॥

विष्णुरुवाच

पुष्पवृष्टिं ततश्चक्रुस्तयोरुपरि भूपते । जगुर्गीतं महापुण्यं ललितं सुस्वरं ततः ॥२५॥
गन्धर्वा गीततत्त्वज्ञा ननृतुश्चाप्सरोगणाः। तताःदेवाःसगन्धर्वाःस्वं ´ स्वंस्थानं नृपोत्तम॥२६॥
वरं दत्वा प्रजग्मुस्तेस्तूयमानाःपतिव्रताम्। नारीतीर्थं समाख्यातमन्यत्किंचिद्वदामिते॥२७॥

मैं, ब्रह्मा और पार्वती देवी के साथ विद्यमान महेश्वर सभी देवता और गन्धर्व उस सुकला के सत्य से सन्तुष्ट हो गये। सबों ने उन धर्मज्ञ तथा सत्यवक्ता महात्माओं को कहे ॥१४-१५॥ आपका कल्याण हो। आप अपनी पत्नी के साथ सुन्दर वर माँगें। **कृकल ने कहा—** हे देवताओं! किस पुण्य तथा तपस्या के प्रभाव से ॥१६॥ आपलोग हमदोनों पति-पत्नी को वरदान देने के लिए आपलोग आये हैं? **इन्द्र ने कहा—** यह महाभागा सुकला सती तथा सुन्दर मङ्गलमयी है ॥१७॥ इसी के सत्य से सन्तुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वरदान देना चाहते हैं। उन्होंने पहले के वृत्तान्त को संक्षेप में बतलाया ॥१८॥ उसके चरित्र के माहात्म्य को सुनकर पति बहुत प्रसन्न हुए। हर्ष से व्याकुल नेत्रों वालें वे धर्मात्मा उस पत्नी के साथ ॥१९॥ सभी देवताओं को प्रणाम किए और बार-बार कहे। यदि महाभाग आप तीनों सनातन देवता प्रसन्न है ॥२०॥ तथा दूसरे पवित्र ऋषिगण मेरे ऊपर कृपा करके प्रसन्न हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि हमलोगों की प्रत्येक जन्मों में इसी प्रकार की भक्ति हो ॥२१॥ आपलोगों की कृपा से मेरी धर्म तथा सत्य में प्रेम हो। उसके बाद मैं अपने पूर्वजों के साथ भगवान् विष्णु के लोक में ॥२२॥ जाना चाहता हूँ। यदि आप महाओजस्वी देवगण प्रसन्न हैं तो **देवताओं ने कहा—** हे महाभाग! ये सारी बातें ऐसी ही होंगी ॥२३॥ इसके बाद हे राजन् वेन! उन दोनों के ऊपर देवताओं के फूल की वृष्टि की। इसके बाद गीततत्त्व के ज्ञाता गन्धर्वों ने मनोहर स्वर में गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया। तदनन्तर हे नृपोत्तम! सभी देवताओं और गन्धर्व कृकल को वरदान देकर अपने-अपने स्थान पर उस पतिव्रता की स्तुति करते हुए चले गये। इस तरह मैंने तुम्हें नारी

एतत्ते सर्वमाख्यातं पुण्याख्यानमनुत्तमम् । यः शृणोति नरोराजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८॥
श्रद्धया शृणुते नारी सुकलाख्यानमुत्तमम् । सौभाग्येन तु सत्येन पुत्रपौत्रैर्न मुच्यते॥२९॥
मोदते धनधान्येन सहभर्त्रा सुखी भवेत् । पतिव्रता भवेत्सा च जन्मजन्ममि नान्यथा॥३०॥
ब्राह्मणोवेदविद्वांश्च क्षत्रियो विजयी भवेत् । धनधान्यं भवेच्चैव वैश्यगेहे न संशयः ॥३१॥
धर्मज्ञो जायते राजन्सदाचारःसुखी भवेत् । शूद्रःसुखमवाप्नोति पुत्रपौत्रैःप्रवर्धते ॥३२॥
विपुला जायते लक्ष्मीर्धनधान्यैरलङ्कृता ॥३३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥
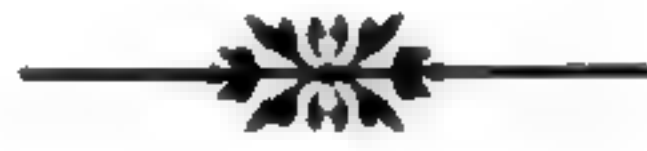
एकसठवाँ अध्याय

वेन उवाच

भार्यातीर्थं समाख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । पितृतीर्थं समाख्याहि पुत्राणां तारणं परम्॥१॥

विष्णुरुवाच

कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे कुण्डलो नामब्राह्मणः । सुकर्मानाम सत्पुत्रःकुण्डलस्य महात्मनः ॥२॥
गुरू तस्य महावृद्धौ धर्मज्ञौ शास्त्रकोविदो । द्वावेतौ तु महात्मानौ जरया परिपीडितौ॥३॥

तीर्थ का वर्णन सुनाया और भी कुछ मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥२४-२६॥ यह मैंने तुम्हें अत्यन्त पवित्र आख्यान सुनाया है । हे राजन् ! इसको सुनने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२७॥ सुकला के सुन्दर आख्यान को जो नारी श्रद्धा पूर्वक सुनती है, वह सौभाग्य, सत्य तथा पुत्रों एवं पौत्रों से सम्पन्न होती है ॥२८॥ वह धन-धान्य से सम्पन्न तथा अपने पति के साथ आनन्दानुभव करती है । वह प्रत्येक जन्मों में पतिव्रता होती है ॥२९॥ ब्राह्मण वेद का ज्ञाता हो जाता है, क्षत्रिय विजयी होता है तथा वैश्य अपने घर में धन-धान्य से सम्पन्न होता है ॥३०॥ राजा सदाचारी तथा सुखी हो जाता है । शूद्र सुखी होता है और पुत्र पौत्रों से समृद्ध होता है । उसके घर में धन-धान्य से अलंकृत लक्ष्मी विपुल मात्रा में होती है ॥३१-३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत सुकला चरित्र के साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६०।।

पिप्पल की तीन हजार वर्ष की तपस्या, पिप्पल का विद्याधरत्व की प्राप्ति, सारस द्वारा पिप्पल को कुण्डल पुत्र सुकर्मा के पास भेजा जाना

राजा वेन ने कहा— आपने मुझे उत्तमोत्तम भार्या तीर्थ का वर्णन सुनाया अब आप मुझे पुत्रों को तारने वाले पितृतीर्थ को बतलायें ॥१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** कुरुक्षेत्र नामक महान् क्षेत्र में कुण्डल नामक ब्राह्मण रहते थे । उन महात्मा कुण्डल के पुत्र सत्पुत्र का नाम सुकर्मा था ॥२॥ सुकर्मा के माता-पिता धर्म के जानकार, शास्त्रज्ञ तथा अत्यन्त वृद्ध थे । वे दोनों बुढ़ापे से अत्यन्त पीड़ित थे ॥३॥ सुकर्मा उन

तयो:शुश्रूषणं चक्रे भक्त्या च परया ततः। धर्मज्ञो भावसंयुक्तो अहर्निशमनारतम् ॥४॥
तस्माद्वेदानधीते स पितु:शास्त्राण्यनेकशः । सर्वाचारपरो दक्षो धर्मज्ञो ज्ञानवत्सलः ॥५॥
अङ्गसंवाहनं चक्रे गुर्वोश्च स्वयमेव सः । पादप्रक्षालनं चैव स्नानभोजनकां क्रियाम् ॥६॥
भक्त्याचैव स्वभावेन तद्ध्याने तन्मयो भवेत् ।
मातापित्रोश्च राजेन्द्रउपचर्यां प्रकारयेत् ॥७॥
तद्वर्तमानकाले तु बभूव नृपसत्तम । पिप्पलोनाम वै विप्र:कश्यपस्य महात्मनः ॥८॥
तपस्तेपे निराहारो जितात्मा जितमत्सरः। दयादान दमोपेत:कामं क्रोधं विजित्य सः ॥९॥
दशारण्यगतो धीमाञ्ज्ञानशान्तिपरायणः। सर्वेन्द्रियाणि संयम्य तपस्तेपे महामनाः ॥१०॥
तप:प्रभावतस्तस्य जन्तवो गतविग्रहाः । वसन्ति सुयुगो तत्र एकोदर गता इव ॥११॥
तत्तपस्तस्य मुनयो दृष्ट्वा विस्मयमाययुः। नेदृशं केनचित्तप्तं यथा सौ तप्यते मुनिः॥१२॥
देवाश्च इन्द्रप्रमुखापरं विस्मयमाययुः । अहो अस्य तपस्तीव्रं शमश्चेन्द्रियसंयमः ॥१३॥
निर्विकारो निरुद्वेग:कामक्रोधविवर्जितः। शीतवातातपसहो धराधर इवस्थितः ॥१४॥
विषये विमुखो धीरो मनसोऽतीत सङ्ग्रहम् ।
न शृणोति यथाशब्दं कस्यचिद्द्विजसत्तमः ॥१५॥
संस्थानं तादृशं गत्वा स्थित्वा एकाग्रमानसः ।
ब्रह्मध्यानमयो भूत्वा सानन्दमुखपङ्कजः ॥१६॥

दोनों की अत्यन्त भक्ति से सेवा करते थे । सुकर्मा भी धर्मज्ञ तथा भक्ति भाव से सम्पन्न थे । वे रात-दिन सदा माता-पिता की सेवा करते थे ॥४॥ वे अपने पिता से ही अनेक शास्त्रों को पढ़ते थे । सुकर्मा सभी आचारों का पालन करने वाले, निपुण धर्मज्ञ और ज्ञानी थे ॥५॥ वे स्वयं अपने माता-पिता के शरीर को दबाते थे तथा उनके पैर धोने, स्नान करने और भोजनादि क्रियाओं को करते थे ॥६॥ वे भक्तिपूर्वक स्वभावत: अपने माता-पिता का ध्यान करते थे । हे राजेन्द्र ! वे माता-पिता की पूजा उपचारों से करते थे॥७॥ **सूतजी ने ऋषियों से कहा—** हे राजन् ! उन कश्यप वंशीय महात्मा के समय में पिप्पल नामक एक विप्र हुए ॥८॥ वे अपने मन को वश में करके, बिना किसी मत्सर (द्वेष) के निराहार रहकर तपस्या करते थे । उन्होंने काम और क्रोध को जीत लिया था और दया, दान और दम गुण से वे सम्पन्न थे ॥९॥ ज्ञान तथा शान्ति परायण वे दशारण्य में गये । वहाँ अपनी सभी इन्द्रियों को संयमित करके तपस्या कर रहे थे ॥१०॥ उनकी तपस्या के प्रभाव से वहाँ के जीव विग्रह रहित होकर सहोदर के समान प्रेमपूर्वक रहते थे॥११॥ उनकी उस तपस्या को देखकर सभी मुनिजन आश्चर्यित थे और कहते थे जैसे ये मुनि तपस्या करते हैं उस तरह की तपस्या किसी ने नहीं की ॥१२॥ इन्द्र आदि देवता भी उन्हें देखकर अत्यन्त विस्मित थे वे कहते थे, इनकी तीव्र तपस्या, शम नामक गुण तथा इन्द्रयों का संयम सराहनीय है ॥१३॥ ये विकार और उद्वेग से रहित तथा काम एवं क्रोध से रहित हैं । ठंढी, वायु तथा धूम को सहते हैं तथा पर्वत के समान स्थित रहते थे ॥१४॥ सदा विषयों से विमुख रहने वाले धैर्य सम्पन्न हैं । वे मन से भी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करते हैं । लगता है ये द्विजश्रेष्ठ किसी के शब्द को सुनते ही न हों ॥१५॥ एकाग्रमन से ऐसे स्थान को प्राप्त कर लिया हैं कि ब्रह्मध्यान स्वरूप हो गये हैं । इनका मुख कमल के समान सानन्द

अश्मकाष्ठमयो भूत्वा निश्चेष्टो गिरिवत्स्थितः ।
स्थाणुवद्दृश्यते चासौ सुस्थिरो धर्मवत्सलः ॥१७॥

तपक्लिष्ट शरीरोऽतिश्रद्धावाननसूयकः। एवं वर्षसहस्रैकं सञ्जातं तस्य धीमतः ॥१८॥
पिपीलिकाभिर्वल्लीभिः कृतं मृद्भारसञ्चयम्। तस्योपरिमहाकायं वल्मीकं निजमन्दिरम् ॥१९॥
वल्मीकोदरमध्यस्थो जडीभूत इवस्थितः । स एवं पिप्पलो विप्रस्तपते सुमहत्तपः ॥२०॥
कृष्णसर्पैस्तु सर्वत्र वेष्टितो द्विजसत्तमः। तमुग्रतेजसं विप्रं प्रदशन्ति विषोल्बणाः ॥२१॥
सम्प्राप्य गात्रमर्माणि विषं तस्य न भेदयेत्। तेजसा तस्य विप्रस्य नागाःशान्तिमथागमन् ॥२२॥
तस्य कायात्समुद्भूता अर्चितो दीप्ततेजसः। नानारूपाःसुबहुशो दृश्यन्ते च पृथक्पृथक् ॥२३॥
यथावाह्नेःखरतरास्तथाविधा नरोत्तम । यथामोघोदरे सूर्यःप्रविष्टो भाति रश्मिभिः ॥२४॥

वल्मीकस्थस्तथा विप्रःपिप्पलो भाति तेजसा ।
सर्पा दशन्ति विप्रं तं सक्रोधा दशनैरपि ॥२५॥

न भिन्दन्ति च दंष्ट्राग्राच्चर्मभित्वा नृपोत्तम। एवं वर्षसहस्रैकं तप आचरतस्ततः ॥२६॥
गतं तु राजराजेन्द्र मुनेस्तस्य महात्मनः। त्रिकालं साध्यमानस्य शीतवर्षातपान्वितः ॥२७॥
गतःकालो महाराज पिप्पलस्य महात्मनः। तद्वच्चवायुभक्षं तु कृतं तेन महात्मना ॥२८॥
त्रीणिवर्षसहस्राणि गतानि तस्य तप्यतः। तस्य मूर्ध्नि ततो देवैःपुष्पवृष्टिःकृता पुरा ॥२९॥

ब्रह्मज्ञोऽसि महाभाग धर्मज्ञोऽसि न संशयः ।
सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं सञ्जातःस्वेनकर्मणा ॥३०॥

(प्रसन्न) है ॥१६॥ ये पत्थर और काष्ठ के समान होकर पर्वत के समान चेष्टा विहीन हैं । ये धर्मवत्सल स्थाणु (ठूठावृक्ष या शङ्कर) के समान स्थिर दिखायी देते हैं ॥१७॥ तपस्या से इनका शरीर सुख गया है, असूया रहित और अत्यन्त श्रद्धा से युक्त हैं । इस तरह से उन धैर्य सम्पन्न महर्षि के एक हजार वर्ष बीत गये ॥१८॥ उनके ऊपर अनेक चींटियों ने मिट्टी का भार लाद दिया । उनके ऊपर विशाल वल्मीक ही उनका मन्दिर वन गया ॥१९॥ उस बल्मीक के भीतर विद्यमान वे जड जैसे हो गये थे । इस तरह से पिप्पल नामक विप्र तपस्या कर रहे थे ॥२०॥ उन श्रेष्ठ ब्राह्मण के सम्पूर्ण शरीर में काले सर्प लिपट गये थे । उन उग्र तेजस्वी विप्र को अत्यन्त विषैले वे सब काट रहे थे ॥२१॥ किन्तु उनके शरीर में गया हुआ विष उनके मर्मस्थल का भेदन नहीं कर पाता था । उसके बाद उन विप्र के तेज से वे सर्प शान्त हो गये॥२२॥ उनके शरीर से अत्यन्त तेजोमयी चिनगारियाँ निकलने लगीं । वे सब अनेक प्रकार की कान्तियों वाली दिखायी देती थीं ॥२३॥ हे नरोत्तम ! वे अग्नि की चिनगारियों के समान अत्यधिक उष्ण थीं । वे अपनी कान्तियों से मेघ के भीतर प्रविष्ट सूर्य के समान सुशोभित होते थे ॥२४॥ वल्मीक के भीतर स्थित पिप्पल उसी तरह सुशोभित होते थे । सर्प उनको क्रोध पूर्वक अपने दाँतों से भी काटते थे ॥२५॥ किन्तु वे अपने दाँतों के अग्रभाग से उनके चमड़े को छेद नहीं पाते थे । हे राज राजेन्द्र ! इस तरह से तप करते हुए उन महात्मा महामुनि के एक हजार वर्ष वीत गये । शीत, वर्षा तथा आतप इन तीनों कालों में तपस्यारत रहते थे ॥२६-२७॥ हे महाराज ! महात्मा का इतना बड़ा समय बीत गया । उसी प्रकार से वे उतने समय तक वायु पीकर रहे ॥२८॥ तपस्या करते हुए उनके तीन हजार वर्ष बीत गये । उनके शिर पर

यं यं त्वं वाञ्छसे कामं तं तं प्राप्स्यसि नान्यथा ।
सर्वकामप्रसिद्धस्त्वं स्वत एव भविष्यसि ॥३१॥
समाकर्ण्य महद्वाक्यं पिप्पलोऽपि महामनाः ।
प्रणम्य देवताः सर्वा भक्त्यानमितकन्धरः ॥३२॥
हर्षेणमहताविष्टो वचनं प्रत्युवाच सः । इदंविश्वं जगत्सर्वं ममवश्यं यथाभवेत् ॥३३॥
तथा कुरुध्वं देवेन्द्रा विद्याधरो भवाम्यहम् । एवमुक्त्वा स मेधावी विरराम नृपोत्तम ॥३४॥
एवमस्त्विवति ते प्रोचुर्द्विजश्रेष्ठं सुरास्तदा । दत्त्वावंर महाभाग जग्मुस्तस्मै महात्मने ॥३५॥
गतेषु तेषु देवेषु पिप्पलो द्विजसत्तमः । ब्रह्मण्यं साधयेन्नित्यं विश्ववश्यं प्रचिन्तयेत् ॥३६॥
तदाप्रभृति राजेन्द्र पिप्पलो द्विजसत्तमः । विद्याधर पदं लब्ध्वा कामगामी महीयते ॥३७॥
एवं स पिप्पलो विप्रो विद्याधरपदं गतः । सञ्जातो देवलोकेशः सर्वशास्त्रविशारदः ॥३८॥
एकदा तु महातेजाःपिप्पलःपर्यचिन्तयत् । विश्वं वश्यं भवेत्सर्वं ममदत्तो वरोत्तमः ॥३९॥
तदर्थं प्रत्ययं कर्तुमुद्यतो द्विजपुङ्गवः । यं यं चिन्तयते कर्तुं तं तं हि वशमानयेत् ॥४०॥
एवं स प्रत्यये जाते मनसा पर्यकल्पयत् । द्वितीयो नास्ति वै लोके मत्समःपुरुषोत्तमः ॥४१॥
एवं हि कल्पमानस्य पिप्पलस्य महात्मनः । ज्ञात्वा मानसिकं भावं सारसस्तमुवाचह ॥४२॥
सरस्तीरगतो राजन्सुस्वरं व्यञ्जनान्वितम् । स्वनं सौष्ठवसंयुक्तमुक्तवान्पिप्पलं प्रति ॥४३॥
कस्मादुद्वहसे गर्वमेवं त्वं परमात्मकम् । सर्ववश्यात्मिकीं सिद्धिं नाहं मन्ये तवैव हि ॥४४॥

देवताओं ने पुष्पों की वृष्टि की ॥२९॥ देवताओं ने कहा— हे महाभाग ! आप ब्रह्मज्ञ और धर्मज्ञ हैं । आप अपने कर्म के द्वारा सर्वज्ञ हो गये हैं ॥३०॥ आप जिन-जिन वस्तुओं को चाहें उन सबों को प्राप्त करेंगे । आप स्वतः ही अवाप्त समस्त काम हो जायेंगे ॥३१॥ देवताओं के इस वाक्य को सुनकर महामना पिप्पल भी देवताओं को अपना कंधा झुकाकार प्रणाम किए ॥३२॥ अत्यन्त हर्षित होकर उन्होंने कहा । यह सम्पूर्ण विश्व जिस तरह से मेरे वश में हो जाय, हे देवेन्द्रों ! आपलोग वैसा ही कर दें और मैं विद्याधर हो जाऊँ। हे नृपोत्तम ! इस तरह से कहकर वे मेधावी चुप हो गयेक ॥३३-३४॥ उन श्रेष्ठ देवताओं ने कहा एवमस्तु । इस तरह से उन महात्मा को वरदान देकर वे देवता चले गये ॥३५॥ देवताओं के चले जाने पर द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विश्ववश्यता का चिन्तन करते हुए सदा ब्राह्मण की साधना करते थे ॥३६॥ हे राजेन्द्र ! उसी समय से द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विद्याधर के पद को प्राप्त करके कामगामी (स्वेच्छानुसार कहीं भी जाने वाला) होकर पूजित होते थे ॥३७॥ इस तरह वे पिप्पल नामक विप्र विद्याधर के पद को प्राप्त करके देवलोक के स्वामी तथा सभी शास्त्रों में निपुण हो गये ॥३८॥ एक बार महातेजस्वी पिप्पल ने सोचा कि सारा विश्व हमारे वश में होगा यह मुझको उत्तम वर प्राप्त हैं ॥३९॥ उस वरदान का विश्वास प्राप्त करने के लिए वे विप्र उद्यत हो गये । वे जिस जिसको वश में करना चाहते थे वह-वह उनके वश में हो जाता था ॥४०॥ इस प्रकार का विश्वास हो जाने पर उन्होंने मन में सोचा संसार में मेरे समान कोई दूसरा पुरुषोत्तम नहीं है ॥४१॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह कल्पना करने वाले महात्मा पिप्पल के मानसिक भाव को जानकर सारस पक्षी ने उनसे कहा ॥४२॥ हे राजन् ! जब पिप्पल सरोवर के तट पर गये तो सुन्दर स्वर एवं व्यञ्जन से युक्त ध्वनि की सुन्दरता के साथ सारस ने पिप्पल से कहा ॥४३॥ आप इस तरह से अपने को परमात्मा होने

वश्यावश्यमिदं कर्म अर्वाचीनं प्रशस्यते। पराचीनं न जानासि पिप्पलत्वं हि मूढधीः ॥४५॥
वर्षाणां तु सहस्राणि यावत्रीणि त्वया तपः ।
समाचीर्णं ततो गर्वं कुरुषे किं मुधा द्विज ॥४६॥
कुण्डलस्य सुतो धीरःसुकर्मानाम यःसुधीः ।
वश्यावश्यं जगत्सर्वं तस्यासीच्छृणुसाम्प्रतम् ॥४७॥
अर्वाचीनं पराचीनं स वै जानाति बुद्धिमान् ।
लोके नास्ति महाज्ञानी तत्समःशृणु पिप्पल ॥४८॥
न कुण्डलस्य पुत्रेण सदृशस्त्वं सुकर्मणा। न दत्तं तेन वै दानं न ज्ञानं परिचिन्तितम्॥४९॥
हुतयज्ञादिकं कर्म न कृतं तेन वै कदा। न गतस्तीर्थयात्रायां न च वह्नेरुपासनम् ॥५०॥
स कदा कृतवान्विप्र धर्मसेवार्थमुत्तमम् । स्वच्छन्दचारी ज्ञानात्मा पितृमातृसुहृत्सदा ॥५१॥
वेदाध्ययनसम्पन्नःसर्वशास्त्रार्थकोविदः । यादृशं तस्य वै ज्ञानं बालस्यापि सुकर्मणः ॥५२॥
तादृशं नास्ति ते ज्ञानं वृथात्वं गर्वमुद्वहेः ॥५३॥

पिप्पल उवाच

काभवान्पक्षिरूपेण मामेव परिकुत्सयेत्। कस्मान्निन्दति मे ज्ञानं पराचीनं तु कीदृशम् ॥५४॥
तन्मेविस्तरतो ब्रूहि त्वयि ज्ञानं कथं भवेत्। अर्वाचीनगतिं सर्वां पराचीनस्य साम्प्रतम् ॥५५॥
वदत्वमण्डजश्रेष्ठ ज्ञानपूर्वसु विस्तरम्। किंवा ब्रह्मा च विष्णुश्च किंवारुद्रो भविष्यसि॥५६॥

सारस उवाच

नास्ति ते तपसो भावःफलंनास्ति च तस्य तु ।
त्वया न परितप्तास्य तपसःसाम्प्रतंशृणु ॥५७॥

का गर्व क्यों करते हैं । मैं आपकी सर्ववश्यात्मिकी सिद्धि को नहीं मानता हूँ ॥४४॥ हे पिप्पल ! यह आपकी वश्य एवं अवश्य का कर्म अर्वाचीन है । आप मूर्ख हैं, आप अपने पराचीन को नहीं जानते हैं॥४५॥ हे द्विज ! आपने जो तीन हजार वर्ष तक तपस्या की है उसी के बल पर आप व्यर्थ ही गर्व करते हैं ॥४६॥ कुण्डल के जो सुकर्मा नामक धैर्य सम्पन्न पुत्र हैं उन्हीं के वश में सरा जगत् है ॥४७॥ वे बुद्धिमान् अर्वाचीन पराचीन सभी को जानते हैं । हे पिप्पल उनके सामने महाज्ञानी संसार में कोई भी नहीं है ॥४८॥ आप कुण्डल के पुत्र सुकर्मा के समान नहीं है । उन्होंने न तो दान किया है और न तो उन्होंने ज्ञान का ही परिचिन्तन किया है ॥४९॥ उन्होंने कभी होम तथा यज्ञ इत्यादि भी नहीं किया है । वे न तो तीर्थयात्रा में गये और न अग्नि की उपासना की ॥५०॥ हे विप्र ! उन्होंने कभी भी सेवा के लिए उत्तम धर्म नहीं किया । वे स्वच्छन्दचारी ज्ञानी तथा माता-पिता के सुहृत् हैं ॥५१॥ वे वेदाध्ययन सम्पन्न तथा सभी शास्त्रों के अर्थों के ज्ञाता हैं । उस बालक सुकर्मा का जैसा ज्ञान है, वैसा ज्ञान आपको नहीं है । आप व्यर्थ ही गर्वान्वित हैं । **पिप्पल ने कहा—** मुझको इस तरह से कोसने वाले पक्षी रूप में विद्यमान आप कौन है?॥५२-५३॥ तुम मेरे ज्ञान की निन्दा क्यों करते हो ? पराचीन कैसा है ? इस बात को आप विस्तार से बतलायें कि आप को ज्ञान कैसे हुआ ?॥५४॥ हे पक्षिश्रेष्ठ ! आप अर्वाचीन और पराचीन को ज्ञान पूर्वक विस्तार से बतलायें ॥५५॥ क्या आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में से कोई हैं ? **सारस ने**

कुण्डलस्यापि पुत्रस्य बालस्यापि यथागुणः ।
तथा तेनास्ति वै ज्ञानं परिज्ञातं न तत्पदम् ॥५८॥
इतोगत्वापि पृच्छत्वं ममरूपं द्विजोत्तम। स वदिष्यति धर्मात्मा सर्वज्ञानं तवैव हि॥५९॥

विष्णुरुवाच

एवमाकर्ण्यतत्सर्वं सारसेन प्रभाषितम्। निर्जमाम स वेगेन दशारण्यं महाश्रयम् ॥६०॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने एकषष्टितमोऽध्याय: ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

कुण्डलस्याश्रमं गत्वा:सत्यधर्मसमाकुलम्। सुकर्माणं ततो दृष्ट्वा पितृमातृपरायणम् ॥१॥
शुश्रूषन्तं महात्मानं गुरुसत्यपराक्रमम्। महारूपं महातेजं महाज्ञानं समाकुलम् ॥२॥
मातापित्रो:पदान्ते तमुपविष्टं ददर्श सः। महाभक्त्यान्वितं शान्तं सर्वज्ञानमहानिधिम् ॥३॥
कुण्डलस्यापि पुत्रेण सुकर्मणा महात्मना। आगतं पिप्पलं दृष्ट्वा द्वारदेशे महामतिम् ॥४॥
आसनात्तूर्णमुत्थाय अभ्युत्थानं कृतं पुनः। आगच्छ त्वं महाभाग विद्याधर महामते॥५॥
आसनं पाद्यमर्घं च ददौ तस्मै महामतिः। निर्विघ्नोऽसि महाप्राज्ञ कुशलेन प्रवर्त्तते॥६॥

कहा— आप में न तो तपस्या का भाव है और न तो आपको तपस्या का फल प्राप्त है ॥५६॥ आपने की गयी तपस्या का फल नहीं पाया। कुण्डल के बालक सुकर्मा जैसा आप में गुण भी नहीं है ॥५७॥ उसके समान आपका ज्ञान नहीं है। आपने उसके पद को नहीं प्राप्त किया है। यहाँ से आप जाकर मेरे रूप को पूछें तो ॥५८॥ वह आपके सम्पूर्ण ज्ञान को बता देगा। **भगवान् विष्णु ने कहा—** इस तरह से सारस से कही गयी सारी बातों को सुनकर ॥५९॥ वे वेगपूर्वक महाश्रम दशारण्य के लिए निकल पड़े ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६१।।

सुकर्मा पिप्पल संवाद, अर्वाचीन तथा पराचीन गति ज्ञान का वर्णन

भगवान् विष्णु ने राजा वेन से कहा— सत्य धर्म के आकुल बने हुए कुण्डल के आश्रम में जाकर माता-पिता की सेवा में संलग्न सुकर्मा को देखकर, जो सत्य पराक्रम सुकर्मा अपने माता-पिता की सेवा करता था, उस महारूप तथा महातेजस्वी, महाज्ञानी सुकर्मा को ॥१-२॥ माता-पिता के चरणों के सन्निकट वैठे हुए पिप्पल ने देखा। सुकर्मा महाभक्ति से युक्त, शान्त तथा सभी ज्ञानों के आकार थे ॥३॥ कुण्डल के पुत्र महात्मा सुकर्मा ने महाबुद्धिमान पिप्पल को द्वार पर आये हुए देखकर ॥४॥ अपने आसन से उठकर शीघ्र खड़े हो गये और कहे— विद्याधर महाभाग ! आप आइये ॥५॥ महामति सुकर्मा ने उनको सम्मान

निरामयं च पप्रच्छ पिप्पलं तं समागतम्। यस्मादागमनं तेऽद्य तत्सर्वं प्रवदाम्यहम् ॥७॥

वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि यावत्त्वया तपः ।
तप्तमेव महाभाग सुरेभ्यः प्राप्तवान्वरम् ॥८॥
वश्यत्वं च त्वया प्राप्तं कामचारस्तथैच च ।
तेनमत्तो न जानासि गर्वमुद्वहसे वृथा ॥९॥

दृष्टवा ते चेष्टितं सर्वं सारसेन महात्मना। ममाभिधानं कथितं ममज्ञानमनुत्तमम् ॥१०॥

पिप्पल उवाच

योऽसौ मां सारसो विप्र सरित्तीरे प्रयुक्तवान् ।
सर्वज्ञानं वदेन्मां हि स तु कः प्रभुरीश्वरः ॥११॥

सुकर्मोवाच

भवन्तमुक्तवान्यो वै सरित्तीरे तु सारसः। ब्रह्माणं त्वं महाज्ञानं तं विद्धि परमेश्वरम्॥१२॥
अन्यत्किं पृच्छसे ब्रूहि तमेवं प्रवदाम्यहम्। एवमुक्तः सधर्मात्मा सुकर्मा नृपनन्दन॥१३॥

पिप्पल उवाच

त्वयि वश्यं जगत्सर्वमिति शुश्रुम भूतले । तन्मे त्वं कौतुकं विप्र दर्शयस्व प्रयत्नतः ॥१४॥
पश्यकौतुकमेवाद्य त्वं वश्यावश्यकारणम्। तमुवाच सधर्मात्मा सुकर्मा पिप्पलंप्रति ॥१५॥
अथ सस्मार वै देवान्सुकर्मा प्रत्ययाय वै। इन्द्राद्यालोकपालाश्च देवाश्चाग्निपुरोगताः॥१६॥
समागताः समाहूता नानाविद्याधरास्तथा । सुकर्माणं ततः प्रोचुर्देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥१७॥
कस्मात्स्मृतास्त्वया विप्र ततोऽर्थकारणं वद ॥१८॥

पूर्वक आसन, अर्घ्य तथा पाद्य इत्यादि देकर उनका आदर किया और पूछा हे महाप्राज्ञ आप निर्विघ्न तो हैं? आपका कुशल है न ?॥६॥ उन्होंने पिप्पल के स्वास्थ के विषय में पूछा । आप जिस लिए यहाँ आये हैं मैं उन सारी बातों को बतलाता हूँ ॥७॥ हे महाभाग ! आपने तीन हजार वर्षों तक तपस्या करके देवताओं से वरदान प्राप्त किया ॥८॥ आपने वश्यत्व और कामगाभित्व भी प्राप्त कर लिया । उसीसे आप मदमत्त हो गये और आपको गर्व हो गया ॥९॥ आपकी चेष्टाओं को देखकर महात्मा सार ने मेरा नाम और मेरे ज्ञान के विषय में आपको बतलाया ॥१०॥ **पिप्पल ने कहा—** हे विप्र ! जो यह सारस नदी के तट पर मुझसे कहा वह कौन है ? क्या वह ईश्वर है ?॥११॥ **सुकर्मा ने कहा—** आपको नदी के तट पर जिसने बातें बतलायी उनको आप परमेश्वर ब्रह्मा जानें ॥१२॥ आप यदि कुछ पूछना चाहें तो पूछें उसे मैं बतलाऊँगा। **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे नृपनन्दन ! इस प्रकार से धर्मात्मा सुकर्मा ने कहा ॥१३॥ **पिप्पल ने कहा—** मैंने सुना है कि पृथिवी पर आपके वश में जगत् है । हे विप्र ! उसको आप प्रयत्न पूर्वक मुझको दिखाएँ ॥१४॥ धर्मात्मा सुकर्मा ने पिप्पल से कहा कि वश्या-वश्यत्व के कारणभूत वश्यावश्यत्व रूप कौतुक को आप देखें ॥१५॥ उसके बाद उनको विश्वास दिलाने के लिए सुकर्मा ने देवताओं का स्मरण किया । उनके द्वारा आहूत इन्द्र आदि लोकपाल तथा अग्नि इत्यादि देवता एवं अनेक विद्याधर आ गये । सुकर्मा से अग्नि आदि देवताओं ने कहा ॥१६-१७॥ हे विप्र ! आपने किस लिए स्मरण किया ? उसका कारण बतलायें **सुकर्मा ने कहा—** ये विद्याधर पिप्पल आये हैं ॥१८॥ वे मुझसे वश्यावश्यत्व का कारण

सुकर्मोवाच

अयमेष सुसम्प्राप्तो विद्याधरो हि पिप्पलः । मामेवं भाषत विप्र वश्यावश्यत्वकारणम् ॥१९॥
प्रत्ययार्थं समाहूता अस्यैव च महात्मनः । स्वं स्वं स्थानप्रगच्छध्वमित्युवाच सुरान्प्रति॥२०॥
तमूचुस्ते ततोदेवाःसुकर्माणं महामतिम्। अस्माकं दर्शन विप्र न मोघं जायते वरम् ॥२१॥
वरंवरय भद्रं ते मनसा यद्धि रोचते। तत्तेदद्मो न संदेहस्त्वेवमूचुःसुरोत्तमाः ॥२२॥
भक्त्या प्रणम्य तान्देवान्ययाचे स द्विजोत्तमः ।
अचलां दत्त देवेन्द्राःसुभक्तिं भावसंयुताम् ॥२३॥
मातापित्रोश्च मे नित्यं तद्वैवरमनुत्तमम् । पिता मे वैष्णवं लोकं प्रयात्वेतद्वरोत्तमम्॥२४॥
तद्वन्माता च देवेशा वरमन्यं न याचये ॥२५॥

देवा ऊचुः

पितृभक्तोऽसि विप्रेन्द्र भक्त्या तव वयं द्विज ।
सुकर्मञ्छूयतां वाक्यं प्रीत्या युक्ताःसदैव ते ॥२५॥
एवमुक्त्वा गता देवाःस्वर्लोकं नृपनन्दन। सर्वमैश्वर्यमेतेन तस्याग्रे परिदर्शितम् ॥२६॥
दृष्टं तु पिप्पलेनापि कौतुकं च महाद्भुतम्। तमुवाच सधर्मात्मा पिप्पलं कुण्डलात्मजम् ॥२७॥
अर्वाचीनं त्विदं रूपं पराचीनं च कीदृशम्। प्रभावमुभयोश्चैव वदस्व वदतांवर ॥२८॥

सुकर्मोवाच

पराचीनस्यरूपस्य लिङ्गमेव वदामि ते। येन लोकाःप्रमोदन्ते इन्द्राद्याःसचराचरा॥२९॥
अयमेव जगन्नाथःसर्वगो व्यापकःप्रभु। अस्यरूपं न दृष्टं हि केनाप्येव हि योगिना॥३०॥
श्रुतिरेव वदत्येवं तंवक्तं शङ्कितेवसा। अपाणिपादनासश्च अकर्णो मुखवर्जितः॥३१॥

पूछे । इन्हीं के विश्वास के लिए मैंने आपलोगों का आवाहन किया ॥१९॥ उन्होंने देवताओं से कहा कि आपलोग अपने-अपने स्थान पर चले जायँ । उसके बाद उन देवताओं ने सुकर्मा से कहा ॥२०॥ हे विप्र! हमलोगों का दर्शन व्यर्थ नहीं होता है अतएव आपको जो अच्छा लगे वह वरदान आप माँगें ॥२१॥ हमलोग निश्चित रूप से वह वरदान आपको देंगे इस तरह से श्रेष्ठ देवताओं ने सुकर्मा से कहा— सुकर्मा ने भक्तिपूर्वक देवताओं को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना किया— हे देवेन्द्र ! इत्यादि आपलोग मुझे माता-पिता की भावपूर्ण अचल भक्ति प्रदान करें । यही हमारे लिए श्रेष्ठ वरदान है ॥२२-२३॥ यह मेरे लिए उत्तम वर है कि मेरे पिता वैष्णव लोक में जायँ । उसी तरह मेरी माता भी, इससे भिन्न वरदान मैं नहीं माँगता हूँ ॥२४॥ **देवताओं ने कहा**— हे सुकर्मन् ! आप हमलोगों की बातों को सुनें आप पितृभक्त हैं । हे द्विज ! आपकी भक्ति से ही हमलोग सदा आपसे प्रसन्न रहते हैं ॥२५॥ हे नृपनन्दन ! इस तरह से कहकर वे देवता स्वर्गलोक चले गये । इन समस्त आश्चर्यो को सुकर्मा ने पिप्पल के सामने ही दिखाया॥२६॥ पिप्पल ने भी अद्भुत कौतुक को देखा । धर्मात्मा पिप्पल ने कुण्डल के पुत्र को कहा, यह तो अर्वाचीन रूप है, पराचीन रूप कैसा है ? हे बोलने वाले में श्रेष्ठ ! आप उन दोनों के प्रभाव को बतलाएँ ॥२७-२८॥ **सुकर्मा ने कहा**— मैं पराचीन रूप का चिह्न ही बतला देता हूँ । उसी के द्वारा सभी लोक तथा इन्द्र आदि चराचर प्रमुदित रहते हैं ॥२९॥ ये ही जगन्नाथ हैं, सर्वव्यापक हैं, स्वामी हैं किसी भी योगी ने इनके

सर्वं पश्यति वै कर्म कृतं त्रैलोक्यवासिनाम् ।
तेषामुक्तमकर्णश्च स शृणोति सुसाक्ष्यदः ॥३२॥
गतिहीनो व्रजेत्सोऽपि स हि सर्वत्र दृश्यते । पाणिहीनोऽपि गृह्णाति पादहीनःप्रधावति ॥३३॥
सर्वत्र दृश्यते विप्र व्यापकःपादवर्जितः । यं न पश्यन्ति देवेन्द्रा मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥
स च पश्यति तान्सर्वान्सत्यासत्यपदे स्थितान् ।
व्यापकं विमलं सिद्धं सिद्धिदं सर्वनायकम् ॥३५॥
यं जानाति महायोगी व्यासो धर्मार्थकोविदः ।
तेजोमूर्तिःस चाकाशमेकवर्णमनन्तकम् ॥३६॥
तदेतन्निर्मलंरूपं श्रुतिराख्याति निश्चितम् । व्यासश्चैव हि जानाति मार्कण्डेयश्चतत्पदम् ॥३७॥
अर्वाचीनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः । यदा संहृत्य भूतात्मा स्वयमेकःप्रगच्छति ॥३८॥
अप्सुशय्यां समास्थाय शेषभोगासनस्थितः । तमाश्रित्यस्वपित्येको बहुकालं जनार्दनः ॥३९॥
जलान्धकार सन्तप्तो मार्कण्डेयो महामुनिः।स्थानमिच्छन्सयोगात्मा निर्विण्णो भ्रमणेन सः॥४०॥
भ्रममाणस्स ददृशे शेषपर्यङ्कशायिनम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं दिव्याभरणभूषितम् ॥४१॥
दिव्यमाल्यांम्बरधरं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । योगनिद्रां गतं कान्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥४२॥
एकानारी महाभागा कृष्णाञ्जनचयोपमा । दंष्ट्राकरालवदना भीमरूपा द्विजोत्तम ॥४३॥
तयोक्तोऽसौ मुनिश्रेष्ठो माभैरिति महामुनिः। पद्मपत्रं सुविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम् ॥४४॥

रूप का दर्शन नहीं किया है ॥३०॥ उनका वर्णन करने में शङ्कित सी श्रुति भी इसी तरह से उनको कहती है । वह पाणिपाद, नासिकाकर्ण, मुख आदि से रहित है ॥३१॥ वह त्रैलोक्य में रहने वाले जीवों के समस्त कर्मो को देखता है । वह साक्ष्य दाता कर्ण रहित होने पर भी उन सबों की बातों को सुनता है ॥३२॥ वह गतिहीन है फिर भी चलता है, वह सर्वत्र दिखता है । पाणिहीन होकर भी वह ग्रहण करता है और चरणहीन होकर भी दौड़ता है ॥३३॥ हे विप्र ! पैर रहित वह सर्वत्र दिखायी देता है । उस पराचीन को तत्त्वदर्शी मुनिजन भी नहीं देख पाते हैं ॥३४॥ वह सत्य एवं असत्य पद पर स्थित सबों को देखता है, उस व्यापक, विमल, सिद्धि प्रदान करने वाला तथा सर्वनायक ॥३५॥ पराचीन को धर्मार्थ के ज्ञाता योगी व्यास ही जानते हैं । तेजोमूर्ति वे आकाश स्वरूप एक समान रूपवाले, अनन्त हैं ॥३६॥ इसी तरह से उन्हें वेद बतलाता है । उस रूप को महर्षि व्यास और मार्कण्डेय जानते हैं ॥३७॥ मैं अर्वाचीन को बतलाता हूँ उसे आप एकाग्रमन से सुनें । जब परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का संहार करके एक मात्र स्वयं रह जाते हैं ॥३८॥ वे ही जल के भीतर शेष शय्या को अपनाकर अकेले भगवान् जनार्दन, बहुत समय तक सोते हैं ॥३९॥ जल के अंधकार से संतप्त होकर महामुनि मार्कण्डेय, घूमते रहने के कारण थककर योगात्मा स्थान प्राप्त करना चाहते है तो ॥४०॥ भ्रमण करते हुए उन्होंने शेष शय्या पर शयन करने वाले, करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, दिव्य आभरणों से अलंकृत ॥४१॥ दिव्य वस्त्र धारण किए हुए, सर्वव्यापक, ईश्वर, देदीप्यमान, योगनिद्रा में स्थित, शङ्ख, चक्र और गदा को धारण किए हुए ॥४२॥ श्रीभगवान् को वे देखे तथा काजल समूह के समान काली एक नारी को देखे । उस नारी के दाँत डरावने थे और उसका रूप भयङ्कर था॥४३॥ उसने कहा हे महामुने ! डरो मत उस देवी ने पाँच योजन विस्तृत एक कमल पत्र पर महर्षि मार्कण्डेय को

तस्मिन्पत्रे महादेव्या मार्कण्डेयो निवेशितः। केशवे सति सुप्तेऽपि नास्त्यत्र च भयं तव ॥४५॥
तामुवाच स योगीन्द्रःका त्वं भवसि भामिनी।
अस्मिन्विनिर्जितेचैका भवती परिवृंहिता ॥४६॥
पृष्ठैवं मुनिना देवी सादरं प्राह भूसुर। नागभोगाङ्कपर्यङ्के स यःस्वपिति केशवः ॥४७॥
अस्याहं वैष्णवी शक्तिःकालरात्रिरिहोच्यते। मामेवं विद्धि विप्रेन्द्र सर्वमायासमन्वितम्॥४८॥
महामाया पुराणेषु जगन्मोहाय कथ्यते। इत्युक्त्वा सा गता देवी अन्तर्धानं हि पिप्पल॥४९॥
देव्यामनुगतायां तु मार्कण्डेयस्य पश्यतः। तस्य नाभ्यां समुत्पन्नं पङ्कजं हाटकप्रभम् ॥५०॥
तस्माज्जज्ञे महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। तस्माद्विजज्ञिरे लोका सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥५१॥
इन्द्राद्यालोकपालाश्च देवाश्चाग्निपुरोगमाः। अर्वाचीनं स्वरूपं तु दर्शितं हि मया नृप॥५२॥
अर्वाचीन स्वरूपोऽयं पराचीनो निराश्रयः। यदास दर्शयेत्कायं कायरूपा भवन्ति ते॥५३॥
ब्रह्माद्याःसर्वलोकाश्च अर्वाचीना हि पिप्पल। अर्वाचीना अमीलोका ये भवन्ति जगत्रये॥५४॥
पराचीनःसभूतात्मा यं सुपश्यन्ति योगिनः। मोक्षरूपं परंस्थानं परब्रह्मस्वरूपकम् ॥५५॥
अव्यक्तमक्षरं हंसं शुद्धं सिद्धिसमन्वितम्। पराचीनस्य यद्रूपं विद्याधरं तवाग्रतः ॥५६॥
सर्वमेव मयाख्यातमन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥५७॥

पिप्पल उवाच

कस्मादेतन्महाज्ञानमुद्भूतं तव सुव्रत। अर्वाचीनगतिं विद्वान्पराचीनगतिं तथा॥५८॥

बैठा दिया और कहा— केशव यद्यपि सोये हुए हैं, फिर भी तुमको कोई भय नहीं है ॥४४-४५॥ उससे महामुनि मार्कण्डेय ने पूछा, आप कौन है ? इस निर्जन में अकेली आप फैली हुयी हैं ॥४६॥ हे ब्राह्मणों! मुनि के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर उस देवी ने आदर पूर्वक कहा इस नार्गपर्यंक पर जो केशव सोते हैं ॥४७॥ इनकी मैं वैष्णवी शक्ति हूँ, मेरा नाम कालरात्रि है। हे विप्र श्रेष्ठ ! मुझको सम्पूर्ण मायाओं से युक्त जानो ॥४८॥ जगत् को मोहित करने के लिए मुझे पुराणों में महामाया कहा गया है। हे पिप्पल यह कहकर वह देवी अन्तर्धान हो गयी ॥४९॥ देवी के चले जाने के बाद महर्षि मार्कण्डेय के सामने ही भगवान् केशव की नाभि में सुवर्ण के समान चमकता हुआ कमल उत्पन्न हुआ ॥५०॥ उससे लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्हीं से स्थावर जङ्गमात्मक सभी लोक उत्पन्न हुए ॥५१॥ उसके बाद इन्द्र इत्यादि लोकपाल तथा अग्नि आदि देवता उत्पन्न हुए। हे नृप ! मैंने अर्वाचीन स्वरूप का निरूपण किया ॥५२॥ यही अर्वाचीन का स्वरूप है पराचीन का कोई आश्रय नहीं है। जब वह अपने शरीर का दर्शन कराता है तो वे सभी उस पराचीन के शरीर रूप हो जाते हैं ॥५३॥ हे पिप्पल ! ब्रह्मा आदि सभी लोक ये सबके सब जो अर्वाचीन है। त्रैलोक्य में रहने वाले सभी लोक अर्वाचीन लोक हैं ॥५४॥ पराचीन तो भूतात्मा है, उनका साक्षात्कार योगिजन ही किया करते हैं। वह मोक्ष स्वरूप, परंस्थान तथा परब्रह्म स्वरूप है ॥५५॥ वह अव्यक्त, अक्षर, हंस, शुद्ध तथा सिद्धि से युक्त है। इस तरह हे विद्याधर ! मैंने आपको पराचीन का रूप बतलाया ॥५६॥ इस तरह से मैंने आपको सारी बातें बता दी अब मैं आपको दूसरी कौन सी बात बतलाऊँ। **पिप्पल ने कहा—** हे सुव्रत ! आपको यह महाज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ ?॥५७॥ आपको अर्वाचीन, पराचीन की गति तथा त्रैलोक्य का श्रेष्ठ ज्ञान आपको है ॥५८॥ हे सुव्रत ! मैं आपकी तपस्या

त्रैलोक्यस्य परं ज्ञानं त्वय्येवं परिवर्त्तते। तपसो नैव पश्यामि परांनिष्ठां हि सुव्रत ॥५९॥
यजनं याजनं तीर्थं तपो वा कृतवानसि। तत्प्रभावं वदस्वैवं केन ज्ञानं तवाखिलम् ॥६०॥

सुकर्मोवाच

तप एव न जानामि न कृतं कायशोषणम्। यजनं याजनं वापि न जाने तीर्थसाधनम् ॥६१॥
न मया साधितं ध्यानं पुण्यकालं सुकर्मजम्।
स्फुटमेकं प्रजानामि पितृमातृ प्रपूजनम् ॥६२॥
उभयोरपि हस्तेन मातापित्रोस्तु नित्यशः। पादप्रक्षालनं पुण्यं स्वयमेव करोम्यहम् ॥६३॥
अङ्गसंवाहनं स्नानं भोजनादिकमेव च। त्रिकाले ध्यानसंलीनःसाययामि दिनेदिने ॥६४॥
पादोदकं तयोश्चैव मातापित्रोदिनेदिने। भक्तिभावेन विन्दामि पूजयामि सुभावतः ॥६५॥
गुरूमे जीवमानौ तु यावत्कालं हि पिप्पल। तावत्कालं हि मे लाभो ह्यतुलश्च प्रजायते ॥६६॥
त्रिकालं पूजयाम्येतौ शुद्धभावेन चेतसा। स्वच्छन्दलीलासञ्चारी वर्ताम्येव हि पिप्पल ॥६७॥
किं मे चान्येन तपसा किं मे कायस्य शोषणैः।
किं मे सुतीर्थयात्राभिरन्यैःपुण्यैश्च साम्प्रतम् ॥६८॥
मखानामेव सर्वेषां यत्फलं प्राप्यते द्विज। तत्फलं तु मया दृष्टं पितुःशुश्रूषणादपि ॥६९॥
मातुःशूश्रूषणं तद्वत्पुत्राणां गतिदायकम्। सर्वकर्मसु सर्वस्वं सारभूतं जगत्त्रये ॥७०॥
पुत्रस्य जायते लोको मातुःशुश्रूषणादपि। पितुःशुश्रूषणे तद्वन्महत्पुण्यं प्रजायते ॥७१॥
तत्र गङ्गा गयातीर्थं तत्र पुष्करमेव च। यत्र मातापिता तिष्ठेत्पुत्रस्यापि न संशयः ॥७२॥

में भी निष्ठा को नहीं देखता हूँ। आपने यदि यजन, याजन, तीर्थयात्रा, अथवा तपस्या की है ॥५९॥ तो आप उसके प्रभाव को बतलाइये, आपको किसके कारण यह सारा ज्ञान है? **सुकर्मा ने कहा—** मैंने न तो तपस्या की है और न तो मैंने अपने शरीर को सुखाया है ॥६०॥ मैं यजन, याजन तथा तीर्थ साधन को भी नहीं जानता हूँ। मैंने पुण्यकाल में सुन्दर कर्म जन्य ध्यान भी नहीं किया है ॥६१॥ मैं स्पष्ट रूप से केवल अपने माता-पिता की पूजा करना जानता हूँ। मैं प्रतिदिन अपने हाथ से इन माता-पिता के॥६२॥ पवित्र चरणों को धोता हूँ। और स्वयं मैं इनके शरीर को दबाता हूँ, स्नान और भोजन अपने हाथ से कराता हूँ ॥६३॥ प्रतिदिन मैं तीनों कालों (सुबह, दोपहर और शाम को) इनका ध्यान करता हूँ। अपने माता-पिता का मैं प्रतिदिन चरणोदक भक्तिभाव से पीता हूँ और सुन्दर भावना से इनकी पूजा करता हूँ। हे पिप्पल! जब तक मेरे माता-पिता जीवित हैं ॥६४-६५॥ उतने समय तक मुझको अतुलनीय लाभ मिलता है। मैं इन दोनों की तीनों कालों में शुद्ध अन्तःकरण से पूजा करता हूँ ॥६६॥ मैं स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी इच्छानुसार रसञ्चरण करता हूँ मुझे दूसरी तपस्या तथा शरीर को सुखाने से कौन सा लाभ है?॥६७॥ मुझे तीर्थ यात्रा तथा दूसरे पुण्यों को करने से कौन सा लाभ है? हे द्विज! सभी यज्ञों को करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥६८॥ उस फल की प्राप्ति मुझे अपने माता-पिता की सेवा करने से भी हो जाती है। इसी तरह का फल माता की सेवा करने से प्राप्त होता है ॥६९॥ त्रैलोक्य में सभी कर्मों का पुत्र के लिए सार सर्वस्व है माता पिता की सेवा करना ॥७०॥ माता की सेवा के ही समान पिता की सेवा करने से महान् पुण्य की प्राप्ति होती है जहाँ पर माता और पिता रहते हैं पुत्र के लिए वहीं पर गङ्गा तथा गया तीर्थ

अन्यानि तत्र तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
भवत्येतानि पुत्रस्य पितुःशुश्रूषणादपि ॥७३॥
पितुःशुश्रूषणात्तस्य दानस्य तपसःफलम्। सत्पुत्रस्य भवेद्विप्र अन्यधर्मःश्रमायते ॥७४॥
पितुःशुश्रूषणात्पुण्यं पुत्रःप्राप्नोत्यनुत्तमम्। स्वकर्मणस्तु सर्वस्वमिहैव च परत्र च ॥७५॥
जीवमानौ गुरूत्वेतौ स्वमातापितरौ तथा । शुश्रूषते सुतो भूत्वा तस्य पुण्य फलंशृणु॥७६॥
देवास्तस्यापि तुष्यन्ति ऋषयःपुण्यवत्सलाः। त्रयोलोकास्तु तुष्यन्ति पितुःशुश्रूषणादिह॥७७॥
मातापित्रोस्तु यःपादौ नित्यमेव हि क्षालयेत् ।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते ॥७८॥
पुण्यैर्मिष्टान्नपानैर्यःपितरं मातरं तथा। भक्त्या भोजयते नित्यं तस्य पुण्यंवदाम्यहम्॥७९॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं पुत्रस्य जायते। ताम्बूलैश्छादनैश्चैव पानैश्च शनकैस्तथा ॥८०॥
भक्त्याचान्नेन पुण्येन गुरू येनाभिपूजितौ। सर्वज्ञानी भवेत्सोऽपि यशःकीर्तिमवाप्नुयात् ॥८१॥
मातरंपितरं दृष्ट्वा हर्षात्सम्भाषयेत्सुतः। निधयस्तस्य सन्तुष्टास्तस्य गेहे वसन्ति ते ॥८२॥
गावःसौहृद्यमायान्ति पुत्रस्य सुखदाः सदा ॥८३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातृपितृतीर्थमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

का निवास है। वहीं पर दूसरे भी पवित्र तीर्थों का निवास होता है ॥७१-७२॥ पिता की सेवा करने से पुत्र को इन फलों की प्राप्ति होती है। पिता की ही सेवा करने से सत्पुत्र को दान करने और तपस्या करने के फल की प्राप्ति होती है। अतएव हे विप्र ! सत्पुत्र के लिए तो दूसरे धर्म श्रमकारक ही हैं। पिता की सेवा करने से पुत्र को सर्वश्रेष्ठ पुण्य की प्राप्ति होती है ॥७३-७४॥ वही इस लोक और परलोक में भी अपने कर्म का सर्वस्व है। उसी तरह से जीवित माता-पिता अपने माता-पिता की सेवा करते हैं ॥७५॥ वे भी पुत्र बन कर जो सेवा करते हैं उसका फल मैं बतलाता हूँ। उससे देवता तथा ऋषिगण सन्तुष्ट रहते हैं॥७६॥ पिता की सेवा करने वाले से त्रैलोक्य सन्तुष्ट हो जाता है। जो पुत्र माता-पिता के चरणों को प्रतिदिन धोता है ॥७७॥ उसको प्रतिदिन गङ्गा स्नान करने का फल प्रतिदिन प्राप्त होता है। जो पुत्र पवित्र मीठे अनन्न को माता-पिता को ॥८७॥ भक्तिपूर्वक खिलाता है उसका पुण्य मैं बतलाता हूँ। उस पुत्र को अश्वमेघ यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥७९॥ जो पुत्र भक्तिपूर्वक अपने माता-पिता की पूजा ताम्बूल, वस्त्र, पेयपदार्थ, तथा भोज्य पदार्थ से करता है ॥८०॥ वह सभी प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न हो जाता है तथा वह यश एवं कीर्ति को प्राप्त करता है। जो पुत्र माता-पिता को देखकर उनसे हर्षित होकर बातें करता है, उससे संतुष्ट होकर उसके घर में निधियाँ निवास करती हैं। उस पुत्र को सुख देने वाली गायें उसकी सुहृद बन जाती हैं ॥८१-८३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन नामक बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयोः । पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा ॥१॥
सर्वतीर्थसमं स्नानं पुत्रस्यापि सुजायते । पतितं विकलं बृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु ॥२॥
व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम् ।
उपाचरति यःपुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥३॥
विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः । प्रयाति वैष्णवं लोकं यदाप्राप्यं हि योगिभिः ॥४॥
पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धावेतौ गुरूसुतः । महागदेन सम्प्राप्तौ परित्यजति पापधीः ॥५॥
पुत्रो नरकमाप्नोति दारुणं कृमिङ्कुसलम् । वृद्धाभ्यां च समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम् ॥६॥
न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं बदाम्यहम् ।
विष्ठाशी जायते मूढो ग्रामघोणी न संशयः ॥७॥
यावज्जन्मसहस्त्रं तु पुनःश्वा चाभिजायते । पुत्रगेहेस्थितौ वृद्धौ माता च जनकस्तथा ॥८॥
अभोजयित्वा तावन्नं स्वयमति च यःसुतः । मूत्रं विष्ठां स भुंजीत यावज्जन्मसहस्त्रकम् ॥९॥
कृष्णासर्पो भवेत्पापी यावज्जन्मशतद्वयम् । मातरं पितरं वृद्धमवज्ञाय प्रवर्त्तते ॥१०॥
ग्राहोऽपि जायते दुष्टो जन्मकोटिशतैरपि । तावेतौ कुत्सते पुत्रःकटुकैर्वचनैरपि ॥११॥
स च पापी भवेद्व्याघ्रःपश्चाद्दृक्षःप्रजायते । मातरं पितरं पुत्रो यो न मन्येत दुष्टधीः ॥१२॥
कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युग सहस्त्रकम् । नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुःसमम् ॥१३॥

मातृपितृ तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

सुकर्मा ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! माता-पिता के स्नान करते समय यदि उस पानी का छींटा पुत्र के सम्पूर्ण शरीर पर पड़ जाता है तो उस पुत्र को सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है । गिरे हुए विकल, किसी काम को करने में असमर्थ ॥१-२॥ रोगी, तथा कुष्ठ रोग से ग्रस्त पिता तथा माता की जो पुत्र सेवा करता है, उसका पुण्य मैं बतलाता हूँ ॥३॥ उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते है; इसमें किसी भी प्रकार संशय नहीं है । वह योगियों के लिए भी अप्राप्य भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥४॥ जो पापी होता है वही, विकल, दीन, वृद्ध तथा महारोग से ग्रस्त माता-पिता को त्यागता है ॥५॥ वह पुत्र कृमियों से भरे हुए भयङ्कर नरक में जाता है । बूढ़े माता-पिता द्वारा बुलाये जाने पर जो उनके पास नहीं जाता है, उसको जो पाप लगता है उसे मैं बतलाता हूँ । वह मर कर गाँव का सूकर होता है और विष्ठा खाता है ॥६-७॥ इस तरह एक हजार बार सूकर होने के बाद वह कुत्ता होता है । पुत्र के घर में रहने वाले वृद्ध माता-पिता को ॥८॥ बिना भोजन कराये ही जो पुत्र भोजन कर लेता है, वह हजार जन्मों तक मल-मूत्रों को खाता है ॥९॥ वह दौ सौ जन्मों तक काला साँप होता है । जो पुत्र माता-पिता के साथ अपमान पूर्ण व्यवहार करता है ॥१०॥ वह सौ करोड़ वर्ष तक घड़ियाल होता है । जो अपने वृद्ध माता-पिता को कठोर वचनों से डाँटता है ॥११॥ वह पापी मरकर व्याघ्र होता है और उसके बाद वृक्ष होता है । जो दुष्ट बुद्धि वाला पुत्र माता-पिता का सम्मान नहीं करता है ॥१२॥ वह एक हजार युग पर्यन्त कुम्भीपाक नामक

तारणाय हितायैव इहैव च परत्र च। तस्मादहं महाप्राज्ञ पितृदेवं प्रपूजये ॥१४॥
मातृदेवं सर्वदेव योगयोगी तथाभवम्। मातृपितृ प्रसादेन सञ्जातं ज्ञानमुत्तमम् ॥१५॥
त्रिलोकीयं समस्ता तु संयाता ममवश्यताम्। अर्वाचीन गतिं जानेदेवस्यास्य महात्मनः ॥१६॥
वासुदेवस्य तस्यैव पराचीना महामते। सर्वज्ञानं समुद्भूतं पितृमातृ प्रसादतः ॥१७॥
को न पूजयते विद्वान्पितरं मातरं तथा। साङ्गोपाङ्गैरधीतैस्तैः श्रुतिशास्त्रसमन्वितैः ॥१८॥
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः। माता न पूजिता येन तस्य वेदानिरर्थकाः ॥१९॥
यज्ञैश्च तपसा विप्र किं दानैःकिं चपूजनैः। प्रयाति तस्य वैफल्यं न माता येन पूजिता ॥२०॥
न पिता पूजितो येन जीवमानो गृहेस्थितः। एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथातीर्थं नरेष्विह ॥२१॥
एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्मफलं शुभम्। एष पुत्रस्य वै यज्ञो दानमेव न संशयः ॥२२॥
पितरं पूजयेन्नित्यं भक्त्या भावेन तत्परः। तस्यजातं समस्तं तद्यदुक्तं पूर्वमेव हि ॥२३॥
दानस्यापि फलं तेन तीर्थस्यापिन संशयः। यज्ञस्यापि फलं प्राप्तं माता येनाप्युपासिता ॥२४॥

पिता येन सुभक्त्या च नित्यमेवाप्युपासितः।
तस्य सर्वास्सुसंसिद्धा यज्ञाद्याःपुण्यदाःक्रियाः ॥२५॥

एतदर्थं समाज्ञातं धर्मशास्त्रं श्रुतं मया। पितृभक्तिपरो नित्यं भवेत्पुत्रो हि पिप्पल ॥२६॥
तुष्टे पितरि सम्प्राप्तं यदुराज्ञा पुरासुखम्। रुष्टेपितरि च प्राप्त महत्पापं पुरा शृणु ॥२७॥

नरक में रहता है। माता-पिता के समान कोई भी तीर्थ पुत्रों को तारने वाला तथा कल्याण करने वाला न तो लोक में है और न परलोक में है। इसीलिए हे प्राज्ञ! मैं अपने माता-पिता की ही सेवा करता हूँ ॥१३-१४॥ मातृ देवता, सभी देवताओं में श्रेष्ठ है। भगवान् शिव तथा माता-पिता की कृपा से मुझे सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ ॥१५॥ यह सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे वश में ही गयी है। हे महामते! मैं भगवान् वासुदेव के अर्वाचीन और पराचीन दोनों रूपों को जानता हूँ। मुझको सारे ज्ञान माता-पिता की कृपा से ही प्राप्त हैं ॥१६-१७॥ कौन ऐसा विद्वान् होगा जो माता-पिता की पूजा न करे? हे विप्र! जो अपने माता-पिता की पूजा करता है, उसको समस्त श्रुतियाँ तथा शास्त्रों के साथ वेदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ हे विप्र! जिसने अपने माता-पिता की पूजा नहीं की उसको वेद पढ़ने से कोई लाभ नहीं है। जिसने अपनी माता की पूजा की उसका वेद पढ़ना व्यर्थ है ॥१९॥ जो अपनी माता की पूजा नहीं करता है, हे विप्र! उसका यज्ञ करना, तपस्या करना, दान करना तथा पूजन करना व्यर्थ हो जाता है ॥२०॥ घर में रहने वाले जीवित पिता की पूजा जिसने नहीं कि उस पुत्र का धर्म तथा तीर्थ सेवन व्यर्थ है ॥२१॥ पुत्र के लिए यही मोक्ष है, तथा जन्म का शुभ फल है तथा यही उसके लिए यज्ञ तथा दान है कि वह भक्ति पूर्वक पिता-माता की पूजा करे। पिता-माता की पूजा करने वाले को उपर्युक्त समस्त फल प्राप्त हो जाते हैं ॥२२-२३॥ जो अपनी माता की उपासना करता है वह दान, तीर्थ, यज्ञ तथा इन सबों के करने का फल प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ इसी तरह जो पिता की भक्तिपूर्वक उपासना करता है, उसको सभी यज्ञ आदि क्रियाओं को करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥२५॥ हे पिप्पल! मैंने धर्मशास्त्रों को सुनकर जाना है कि पुत्र को सदैव पितृभक्ति परायण होना चाहिए ॥२६॥ पूर्वकाल मे राजा यदु ने पिता के सन्तुष्ट हो जाने पर सुख को प्राप्त किया। और पिता के रुष्ट हो जाने के कारण प्राचीन काल में पिता के

रुरुणा पौरवेणापि पित्राशप्तेन भूतले। एवं ज्ञानंमया चाप्तं द्वावेतौ यदुपासितौ ॥२८॥
एतयोश्चप्रसादेन प्राप्तं फलमनुत्तमम् ॥२९॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

पिप्पल उवाच

पितुःप्रसादभावाद्वै यदुना सुखमुत्तमम्। कथंप्राप्तं सुभुक्तं च तन्मे विस्तरतो वद ॥१॥
कस्मात्पापप्रभावं च रुरुर्भुङ्क्ते द्विजोत्तम। सकलं विस्तरेणापि वद मे कुण्डलात्मज ॥२॥
श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं पापनाशनम्। नहुषस्य सुपुण्यस्य ययातेश्च महात्मनः ॥३॥
सोमवंशात्प्रभूतो हि नहुषो मेदिनीपतिः। दानधर्माननेकांश्च चकार ह्यतुलानपि ॥४॥
मखानामश्वमेधानामियाजशतमुत्तमम्। वाजपेयशतं चापि अन्यान्यज्ञानकेकधा ॥५॥
आत्मनःपुण्यभावेन इन्द्रलोकमवाप सः। पुत्रं धर्मगुणोपेतं प्रजापलं चकार सः ॥६॥
ययातिं सत्यसम्पन्नं धर्मवीर्यं महामतिम्। ऐन्द्रं पदं गतोराजा तस्य पुत्रःपदे स्वके॥७॥
ययातिःसत्यसम्पन्नःप्रजाधर्मेण पालयेत्। स्वयमेव प्रपश्येत्स प्रजाकर्माणि तान्यपि ॥८॥

द्वारा शापित होने के कारण पुरुवंशीय रुरु का महान् पाप लगा। इसी तरह से ज्ञान प्राप्त करके मैंने अपने माता-पिता दोनों की उपासना की ॥२७-२८॥ इनदोनों (माता-पिता) की कृपा से मैंने महान् फल प्राप्त किया ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।६३।।

मातृ पितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में नहुष तथा ययाति के चरित्र का वर्णन

पिप्पल ने कहा— आप मुझे विस्तार से बतलायें कि पिता की कृपा से यदु ने किस प्रकार से सुख को प्राप्त करके उसका उपभोग किया ॥१॥ हे द्विजोत्तम ! आप यह भी बतलायें कि किस पाप के प्रभाव से रुरु को उसे भोगना पड़ा ? हे कुण्डलात्मज ! इन सारी बातों को आप विस्तार से बतलायें ॥२॥ **सुकर्मा ने कहा**— आप सुनें मैं पुण्यवान नहुष तथा ययाति के पापनाशक चरित को बतलाता हूँ ॥३॥ सोमवंश में उत्पन्न नहुष पृथिवी के राजा हुए। उन्होंने अनेक प्रकार के बहुत से अतुलनीय दान धर्मों को किया ॥४॥ उन्होंने सौ अश्वमेघ यज्ञों को किया। उन्होंने सौ वाजपेय यज्ञों को भी किया तथा दूसरे भी यज्ञों को उन्होंने किया ॥५॥ अपने पुण्यों के प्रभाव से वे इन्द्रलोक को प्राप्त किए। उन्होंने अपने धार्मिक पुत्र ययाति को राजा बनाया ॥६॥ ययाति सत्य सम्पन्न, धर्म पराक्रम वाले तथा महाबुद्धिमान् थे। अपने पुत्र को अपने पद पर बैठाकर राजा नहुष ऐन्द्र पद को प्राप्त कर लिए ॥७॥ सत्यवक्ता ययाति प्रजा का पालन

याजयामास धर्मज्ञःश्रुत्वा धर्ममनुत्तमम्। यज्ञतीर्थादिकं सर्वं दानपुण्यं चकार सः ॥९॥
राज्यं चकार मेधावी सत्यधर्मेण वै तदा। यावदशीतिसहस्राणि वर्षाणां नृपनन्दनः ॥१०॥
तावत्कालं गतं तस्य ययातेस्तु महात्मनः। तस्य पुत्राश्च चत्वारस्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥११॥
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः। तस्यासीज्ज्येष्ठपुत्रस्तु तुरुर्नाम महाबलः ॥१२॥
पुरुर्नाम द्वितीयोऽभूत्कुरुश्चान्यस्तृतीयकः। यदुर्नाम सधर्मात्मा चतुर्थो नृपतेःसुतः ॥१३॥
एवं चत्वारःपुत्राश्च ययातेस्तु महात्मनः। तेजसापौरुषेणापि पितृतुल्यपराक्रमाः ॥१४॥
एवं राज्यं कृतं तेन धर्मेणापि ययातिना। तस्यकीर्तिर्यशोभावस्त्रैलोक्ये प्रचुरोऽभवत्॥१५॥

विष्णुरुवाच

एकदा तु द्विजश्रेष्ठो नारदो ब्रह्मनन्दनः। ऐन्द्रलोकं गतो राजन्द्रष्टुं चैव पुरन्दरम्॥१६॥
सहस्राक्षस्ततोऽपश्यद्धुताशन समप्रभम्। देवो विप्रं समायान्तं सर्वज्ञं ज्ञानपण्डितम् ॥१७॥
पूजितं मधुपर्काद्यैर्भक्त्या नमितकन्धरः। निवेश्य चासनेपुण्ये पप्रच्छमुनिपुङ्गवम् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

कस्मादागमनं तेऽद्य किमर्थमिह चागतः। किं ते हि सुप्रियं विप्र करोम्यद्य महामुने ॥१९॥

नारद उवाच

देवराज कृतं सर्वं भक्त्यायच्च प्रभाषितम्। सन्तुष्टोऽस्मि महाप्राज्ञ प्रश्नोत्तरं वदाम्यहम्॥२०॥
महीलोकात्सुसम्प्राप्तःसाम्प्रतं तव मन्दिरम्। त्वामन्वेष्टुं समायातो दृष्ट्वा नाहुषमेव च॥२१॥

धर्मपूर्वक करते थे। वे स्वयं प्रजाओं के कार्यों को भी देखते थे। उन्होंने सर्वोत्तम धर्म का श्रवण करके यजन किया। उन्होंने यज्ञ, तीर्थ तथा सभी प्रकार के दानों तथा पुण्यों को किया ॥८-९॥ वे मेधावी धर्म पूर्वक राज्य करते थे। उन्होंने अस्सी हजार वर्षों तक राज्य किया ॥१०॥ इस तरह महात्मा ययाति के इतने समय बीत गये। उनके चार पुत्र हुए जो उन्हीं के समान बल और पराक्रम वाले थे ॥११॥ मैं उन सबों के नामों को बतलाता हूँ आप एकाग्रमन से उसे सुनें। उनके बड़े पुत्र का नाम तुरु था, वह महाबलवान् था ॥१२॥ दूसरे पुत्र का नाम पुरु था तथा तीसरे पुत्र का नाम कुरु हुआ। राजा के चौथे पुत्र का नम यदु था ॥१३॥ इस तरह महात्मा ययाति के चार पुत्र हुए। वे तेज और पौरुष के द्वारा अपने पिता के ही समान पराक्रमी थे ॥१४॥ इस तरह से राजा ययाति ने धर्मपूर्वक राज्य किया। उनकी कीर्ति तथा यश त्रैलोक्य में फैल गया ॥१५॥ **भगवान् विष्णु ने वेन राजा से कहा**— एक बार ब्रह्माजी के पुत्र द्विजश्रेष्ठ नारदजी पुरन्दर इन्द्र से मिलने के लिए इन्द्र लोक में गये ॥१६॥ उसके बाद इन्द्र ने अग्नि के समान कान्ति वाले आते हुए सर्वज्ञ तथा ज्ञानी पण्डित विप्र को देखा ॥१७॥ उन्होंने भक्तिपूर्वक अपना कन्धा झुकाकर उनकी अर्घ्य आदि से पूजा की। फिर उन्होंने मुनि को पवित्र आसन पर बैठाकर उनसे पूछा॥१८॥ **इन्द्र ने कहा**— आपका आज आगमन कहाँ हो रहा है ? और आप यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं ? हे महामुने ! मैं आज आपका कौन प्रिय कार्य करूँ ?॥१९॥ **नारदजी ने कहा**— हे देवराज ! आपने जो भक्तिपूर्वक बातचित किया उसीसे सब पूरा हो गया। हे महाभाग ! मैं प्रसन्न हूँ। आपके प्रश्न का उत्तर मैं बतलाता हूँ ॥२०॥ मैं इस समय भूलोक से आपके यहाँ आया हूँ मैं आपको तथा नहुष के पुत्र ययाति को ही देखने के लिए यहाँ आया हूँ ॥२१॥ **इन्द्र ने कहा**— कौन सा राजा सत्य धर्म से प्रजाओं का पालन

इन्द्र उवाच

सत्यधर्मेण को राजा प्रजाःपालयते सदा। सर्वधर्मसमायुक्तःश्रुतवाञ्ज्ञानवान्गुणी ॥२२॥
पृथिव्यामस्ति को राजा वेदज्ञो ब्राह्मणप्रियः ।
ब्रह्मण्यो वेदविच्छूरो यज्वा दाता सुभक्तिमान् ॥२३॥

नारद उवाच

एभिर्गुणैस्तुसंयुक्तो नहुषस्यात्मजो बली। यस्य सत्येन वीर्येण सर्वे लोकाःप्रतिष्ठिताः॥२४॥
भवादृशो हि भूलोके ययातिर्नहुषात्मजः। भवान्स्वर्गेसचैवास्ति भूतले भूतिवर्धनः ॥२५॥
पितुःश्रेष्ठो महाराज हाश्वमेधशतं तथा। वाजपेयशतं चक्रे ययातिःपृथिवीपतिः ॥२६॥
दत्तान्यनेकरूपाणि दानानि तेन भक्तितः। गवां लक्षसहस्राणि गवां कोटिशतानि च॥२७॥
कोटिहोमांश्चकाराथ लक्षहोमांस्तथैव च। भूमिदानानि दानानिब्राह्मणेभ्योऽददाच्च यः॥२८॥
सर्वयेन स्वरूपं हि धर्मस्य परिपालितम्। एवं गुणैःसमायुक्तो ययातिर्नहुषात्मजः ॥२९॥
वर्षाणां तु सहस्राणि अशीतिर्नृपसत्तमः। राज्यं चकार सत्येन यथादिवि भवानिह ॥३०॥

सुकर्मोवाच

एवमाकर्ण्य देवेन्द्रो नारदात्समुनीश्वरात्। समालोच्य स मेधावी सम्भीतो धर्मपालनात्॥३१॥
शतयज्ञ प्रभावेन नहुषो हि पुरा मम। ऐन्द्रं पदं गतो वीरो देवराजोऽभवत्पुरा ॥३२॥
शचीबुद्धि प्रभावेन पदभ्रष्टो व्यजायत। तादृशोऽयं महाराजःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥३३॥
प्राप्स्यते नात्र सन्देहःपदमैन्द्रं न संशयः। येनकेनाप्युपायेन तं भूपं दिवमानये॥३४॥
इत्येवं चिन्तयामास तस्माद्भीतःसुरेश्वरः। भूपालस्य नृपश्रेष्ठ ययातेःसुमहद्भयात्॥३५॥

करता है ? कौन सभी धर्मों से युक्त वेदज्ञ, ज्ञानी तथा गुणी है ?॥२२॥ पृथिवी पर कौन राजा वेदज्ञ और ब्राह्मण प्रिय, ब्रह्मण्य वेदज्ञ, शूरवीर, यज्ञ करने वाला, दान करने वाला तथा भक्ति सम्पन्न है ?॥२३॥ **नारदजी ने कहा—** इन गुणों से तो नहुष के पुत्र ययाति ही सम्पन्न हैं, जो बलवान् हैं । उनके सत्य पराक्रम से सभी लोक प्रतिष्ठित हैं ॥२४॥ भूलोक में आपके ही समान नहुष के पुत्र ययाति हैं । आप स्वर्ग में तथा ययाति भूलोक में ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले हैं ॥२५॥ अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र ययाति ने सौ अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञों को किया । वे इस समय पृथिवी पति हैं ॥२६॥ उन्होंने भक्तिपूर्वक अनेक प्रकार के दानों को दिया है । उन्होंने एक लाख हजार तथा एक सौ करोड़ गायों का दान दिया है ॥२७॥ उन्होंने लाखों करोड़ होमों को किया है । उन्होंने ब्राह्मणों को भूमिदान आदि दानों को भी दिया है ॥२८॥ उन्होंने धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप का पालन किया है । इस प्रकार के गुण से युक्त नहुष के पुत्र ययाति हैं ॥२९॥ उन राज श्रेष्ठ ने सत्य धर्म के साथ अस्सी हजार वर्षों तक उसी तरह से राज्य किया है जिस तरह स्वर्ग में आप राज्य करते हैं ॥३०॥ **सुकर्मा ने कहा—** मुनीश्वर नारद से इस प्रकार की बात को सुनकर मेधावी इन्द्र धर्म का पालन करने के कारण भयभीत हो गये ॥३१॥ उन्होंने सोचा पूर्वकाल में सौ यज्ञों के प्रभाव से नहुष ऐन्द्रपद को प्राप्त करके इन्द्र हो गये थे ॥३२॥ शची की बुद्धि के प्रभाव से वह ऐन्द्र पद से भ्रष्ट हो गया था । यह ययाति भी अपने पिता के ही समान पराक्रम वाला है ॥३३॥ वह भी निश्चित रूप से ऐन्द्र पद को प्राप्त कर लेगा। अतएव मैं जिस किसी भी उपाय से उसे स्वर्गलोक में ले आता हूँ ॥३४॥ उससे

तमानेतुं ततो दूतं प्रेषयामास देवराट्। नहुषस्य विमानं तु सर्वकामसमन्वितम् ॥३६॥
सारथिं मातलिं नाम विमानेन समन्वितम् । गतो हि मातलिस्तत्र यत्रास्ते नहुषात्मजः ॥३७॥
प्रहितःसुरराजेन समानेतुं महामतिम्। सभायां वर्त्तमानस्तु यथा इन्द्रःप्रशोभते ॥३८॥
यथा ययाति धर्मात्मा स्वसभायां विराजते। तमुवाच महात्मानं राजानं सत्यभूषणम् ॥३९॥
सारथिर्देवराजस्य शृणु राजन्वचो मम। प्रहितो देवराजेन सकाशं तव साम्प्रतम् ॥४०॥
यद्बूते देवराजस्तु तत्सर्वं सुमनाःकुरु। आगन्तव्यं त्वया देव ऐन्द्रं लोकं हि नान्यथा ॥४१॥

पुत्रे राज्यं विसृज्यैव कृत्वा चान्त्येष्टिमुत्तमाम् ।
इलो राजा महातेजा वसते नहुषात्मज ॥४२॥

पुरूरवा महावीर्यो विप्रचित्तिर्महामनाः। शिबिर्वसति तत्रैव मनुरिक्ष्वाकु भूपतिः ॥४३॥
सागरोनाम मेधावी नहुषश्च पिता तव । ऋतवीर्यःकृतज्ञश्च शन्तनुश्च महामनाः ॥४४॥
भरतोयुवनाश्वश्च कार्तवीर्यो नरेश्वरः । यज्ञानाहृत्य बहुधा मोदन्ते दिवि भूभृतः ॥४५॥
अन्येचैव तु राजानो यज्ञकर्मसुतत्पराः। सर्वे ते दिवि चेन्द्रेण मोदन्ते स्वेन कर्मणा ॥४६॥
त्वं पुनःसर्वधर्मज्ञःसर्वधर्मेषु संस्थितः । शक्रेण सह मोदस्व स्वर्गलोके महीपते ॥४७॥

ययातिरुवाच

किं मया तत्कृतं कर्म येन मय्यर्थिता तव। इन्द्रस्य देवराजस्य तत्सर्वं मे वदस्व च ॥४८॥

मातलिरुवाच

यदशीतिसहस्राणि वर्षाणां हि त्वया नृप। दानपुण्यादिकं कर्म यज्ञैस्तु परिसाधितम् ॥४९॥

(ययाति से) भयभीत होकर इन्द्र इसी तरह से सोचने लगे। हे नृप श्रेष्ठ वेन ! इन्द्र को ययाति से बहुत अधिक भय हो गया ॥३५॥ इन्द्र ने ययाति को स्वर्ग लाने के लिए अपने दूत को भेजा। इन्द्र का विमान सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला था ॥३६॥ विमान के साथ मातलि नामक सारथि भी वहाँ गये जहाँ पर नहुष के पुत्र ययाति थे। महामति ययाति को लाने के लिए इन्द्र ने भेजा था। सभा में बैठे हुए ययाति इन्द्र के समान सुशोभित होते थे। उस समय ययाति सभा में विराज मान थे। मातलि ने उन महात्मा सत्यभूषण राजा से कहा ॥३७-३८॥ इन्द्र के सारथि ने कहा— राजन्! आप मेरी बात सुनें। इस समय इन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है ॥३९-४०॥ इन्द्र ने जो कहा है उसे आप प्रसन्न मन से सुनें। उन्होंने कहा है कि अन्त्येष्टि करके तथा अपने पुत्र को राज्य देकर, हे देव ! आप इन्द्र लोक में आ जायँ। हे नहुषात्मज महातेजस्वी इल यहाँ निवास करते हैं ॥४१-४२॥ महापराक्रमी पुरुरवा तथा महामना विप्रचिप्ति, महाराज शिवि, मनु, राजा इक्ष्वाकु, ॥४३॥ महाराज सगर, तुम्हारे पिता नहुष ऋतवीर्य, कृतज्ञ तथा महामना शन्तनु ॥४४॥ भरत, युवनाश्व, महाराज कार्तवीर्य ये सभी अनेक यज्ञों को करके यहाँ पर आनन्द का अनुभव करते हैं ॥४५॥ अन्य राजा भी यज्ञ कर्मों को करने में तत्पर हैं। वे सभी अपने कर्मों के प्रभाव से इन्द्र के साथ स्वर्ग में आनंदित हो रहे हैं ॥४६॥ हे धर्मज्ञ ! आप सभी धर्मों का पालन करने वाले हैं, हे राजन्! आप स्वर्ग लोक में इन्द्र के साथ आनन्द का अनुभव करें ॥४७॥ **ययाति ने कहा—** मैंने देवराज इन्द्र का कौन सा कर्म किया है कि आप हमें बुलाना चाहते है ? इन सारी बातों को आप बतलायें॥४८॥ **मातलि ने कहा—** हे राजन्! आपने जो दान, पुण्य तथा यज्ञ आदि कर्मों के द्वारा अस्सी हजार वर्षों तक बिताया

दिवं गच्छ महाराज कर्मणा स्वेन भूपते । सखित्वं देवराजेन कुरु गच्छ सुरालयम् ॥५०॥
पञ्चात्मकं शरीरं च भूमौ त्यज महामते। दिव्यरूपं समास्थाय भुङ्क्ष्व भोगान् मनोनुगान्॥५१॥
यथा यथा कृता भूमौ यज्ञदानं तपश्च ते । तथा तथा स्वर्गभोगाःप्रार्थयन्ते नरेश्वरम् ॥५२॥

ययातिरुवाच

येन कायेन सिध्येत सुकृतं दुष्कृतं भुवि । मातले तत्कथं त्यक्त्वा गच्छेल्लोकमुपार्जितम्॥५३॥

मातलिरुवाच

यत्रैवोपार्जितं कायं पञ्चात्मकमिदं नृप । तत्तत्रैव परित्यज्य दिव्येनैव व्रजन्ति तम् ॥५४॥
इतरे मानवाःसर्वे पापपुण्यप्रसाधकाः। तेऽपि कायं परित्यज्य अधऊर्ध्वं व्रजन्ति वै ॥५५॥

ययातिरुवाच

पञ्चात्मकेन कायेन सुकृतं दुष्कृतं नराः। उत्पाद्यैव प्रयान्त्येव अधऊर्ध्वं तु मातले ॥५६॥
को विशेषो हि धर्मज्ञ भूमौ कायं परित्यजेत् ।
पापपुण्यप्रभावाद्वै कायस्य पतनंभवेत् ॥५७॥
दृष्टान्तो दृश्यते सूत प्रत्यक्षं मर्त्यमण्डले। विशेषंनैव पश्यामि पापपुण्यस्य चाधिकम् ॥५८॥
सत्यधर्मादिकं कर्म येन कायेन मानवः। समर्जयति वै मर्त्यस्तं कस्माद्विप्रसर्जयेत्॥५९॥
आत्मा कायश्च द्वावेतौ मित्ररूपावुभावपि । कायं मित्रं परित्यज्य आत्मायाति सुनिश्चितः॥६०॥

मातलिरुवाच

सत्यमुक्तं त्वया राजन्कायं त्यक्त्वा प्रयाति सः ।
सम्बन्धो नास्ति तेनापि समं कायेन चात्मनः ॥६१॥

है ॥४९॥ हे महाराज ! आप अपने कर्म के ही प्रभाव से स्वर्ग चले । आप देवलोक में चलकर इन्द्र के साथ मित्रता कर लें ॥५०॥ हे महाराज ! हे महामते ! आप इस पाञ्चभौतिक शरीर को पृथिवी पर छोड़ दें और रूप को धारण करके आप अपने मनोऽकूल भोगों को भोगें ॥५१॥ हे नरेश्वर ! जैसे-जैसे आपने भूमि पर यज्ञ तथा दान तथा तपस्या की उस तरह से स्वर्ग के भोग आप को स्वर्ग में आने की प्रार्थना करते हैं॥५२॥ **ययाति ने कहा—** हे मातले ! जिस शरीर से भूलोक में पुण्य-पाप आदि कर्म किए जाते हैं, उस शरीर को छोड़कर कर्मोपार्जित लोक में कैसे जाया जा सकता है ?॥५३॥ **मातलि ने कहा—** हे नृप ! जहाँ पर यह पाञ्चभौतिक शरीर प्राप्त किया जाता है, वहीं पर इसको त्यागकर दिव्य शरीर से ही पुण्यवान् जीव स्वर्ग जाते हैं ॥५४॥ पाप पुण्य को करने वाले दूसरे सभी मनुष्य भी इस शरीर का परित्याग करके ही नीचे अथवा ऊपर के लोकों में जाते हैं ॥५५॥ **ययाति ने कहा—** हे मातले ! मनुष्य पाञ्चभौतिक शरीर से ही पुण्य तथा पाप को उत्पन्न करके ही नीचे अथवा ऊपर के लोकों में जाते हैं ॥५६॥ हे धर्मज्ञ ! इसमें कौन सी विशेषता है कि पृथिवी पर शरीर को त्याग दें । शरीर का पतन तो पाप और पुण्य के प्रभाव से होता है ॥५७॥ हे सूत ! प्रत्यक्ष दृष्टान्त भूलोक में देखा जाता है । इसमें पाप पुण्य की कोई विशेषता मुझे नहीं प्रतीत होती है ॥५८॥ मनुष्य जिस शरीर से सत्य धर्म आदि कर्म को अर्जित करता है उस शरीर को वह क्यों छोड़ दें ?॥५९॥ आत्मा और शरीर दोनों मित्र रूप से रहते हैं । शरीर रूपी मित्र का परित्याग करके आत्मा जाता है, यह निश्चित है ॥६०॥ **मातलि ने कहा—** राजन् ! आपने सत्य कहा कि आत्मा

यस्मात्पञ्चत्वरूपोऽयं सन्धिजर्जरित:सदा। जरयापीड्यामानस्तु व्याधिभिर्दूषित: सदा ॥६२॥

जरादोषै:प्रभग्नोऽसौ अत्रस्थातुं स नेच्छति ।

आकुल व्याकुलो भूत्वा जीवस्त्यक्त्वा प्रयाति स: ॥६३॥

सत्येन धर्मपुण्यैश्च दानैर्नियमसंयमै: । अश्वमेधादिभिर्यज्ञैस्तीर्थै:संयमनैस्तथा ॥६४॥

सुपुण्यै:सुकृतैश्चान्यैर्जरानैव प्रधार्यते। पातकैश्च महाराज द्रवते कायमेव सा ॥६५॥

ययातिरुवाच

कस्माज्जरा समुत्पन्ना कस्मात्कायं प्रपीडयेत् ।

मम विस्तरतस्त्वं च वक्तुमर्हसि सत्तम ॥६६॥

मातलिरुवाच

हन्त ते वर्णयिष्यामि जराया:परिकारणम्। यस्माच्चेयं समुद्भूता कायमध्ये नृपोत्तम ॥६७॥

पञ्चभूतात्मक:कयो विषयै:पञ्चभि:श्रित: । यदात्मा त्यजते राजन्सकाय:परियक्ष्यते ॥६८॥

वह्निना दीप्यमानस्तु सरसो ज्वलते नृप। तस्माद्विजायते धूपो धूमान्मेघाश्च जज्ञिरे ॥६९॥

मेघादाप:प्रवर्तन्ते अद्भय:पृथ्वी प्रकल्पते। जलमायाति साध्वी सा यथा नारीरजस्वला॥७०॥

तस्मात्प्रजायते गन्धो गन्धाद्रसो नृपोत्तम। रसात्प्रभवते चान्नमन्नाच्छुकं न संशय: ॥७१॥

शुक्राद्विजायते काय:कुरूप:काय एव च। यथा पृथ्वी सृजेद्गन्धान्रसैश्चरति भूतले॥७२॥

तथाकायश्चरेन्नित्यं रसाधरो हि सर्वश: । गन्धश्च जायते तस्माद्गन्धाद्रसोभवेत्पुन: ॥७३॥

तस्माज्जज्ञे महावह्निर्दृष्टान्तं पश्य भूपते । यथाकाष्ठाद्भवेद्वह्निपुन:काष्ठं प्रकाशयेत् ॥७४॥

शरीर को त्याग कर जाता है । उसी से सिद्ध हो जाता है कि आत्मा का शरीर से सम्बन्ध नहीं है ॥६१॥ चूँकि यह पाँच भौतिक शरीर संधियों के द्वारा सदा जर्जर है । यह जरा से पीड़ित होता है तया व्याधि से दूषित हो जाता है ॥६२॥ जरा रूपी दोष के कारण यह शरीर टूट जाता है और इस शरीर में आत्मा नहीं रहना चाहता है । उसके कारण आकुल-व्याकुल होकर जीव इसे त्याग कर चला जाता है ॥६३॥ हे महाराज ! सत्य, धर्म, पुण्य, दान, नियम, संयम, अश्वमेघ आदि यज्ञ तीर्थ तथा संयम के द्वारा ॥६४॥ सुपुण्य, सुकृत तथा दूसरे पुण्यों के कारण वह पातकों से लिप्त नहीं होता है और जरा शरीर से ही संलग्न होती है ॥६५॥ **ययाति ने कहा—** जरा किससे उत्पन्न हुयी है ? और वह शरीर को क्यों पीड़ित करती है ? इस वात को आप मुझे विस्तार से बतलायें ॥६६॥ **मातलि ने कहा—** अच्छा तो मैं तुम्हें जरा के कारण को बतलाता हूँ जिस कारण से यह शरीर में उत्पन्न होती है ॥६७॥ यह पञ्च भूतात्मक शरीर पाँच विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शव्द) पर आश्रित है । हे राजन् ! आत्मा जिस शरीर को त्याग देता है उस शरीर को जला दिया जाता है ॥६८॥ अग्नि से जलाया जाता हुआ शरीर रस के साथ जलता है। उससे धूम उत्पन्न होता है । धूम से मेघ उत्पन्न होते हैं ॥६९॥ मेघ से जल उत्पन्न होता है और जल से पृथिवी होती है । वह (पृथिवी) साध्वी जल में रजस्वला नारी के समान मिल जाती है ॥७०॥ उससे गन्ध की उत्पत्ति होती है, गन्ध से रस उत्पन्न होता है । रस से अन्न की उत्पत्ति होती है और अन्न से शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥७१॥ शुक्र से शरीर बनता है वह शरीर पृथिवी रूप होता है । जैसे पृथिवी गन्ध को उत्पन्न करती है और रसों के द्वारा शरीर पृथिवी पर सञ्चरण करता है ॥७२॥ उसी तरह से रस के आधार

कायमध्ये रसादग्निस्तद्वदेव प्रजायते। तत्र सञ्चरते नित्यं कायं पुण्णाति भूपते ॥७५॥
यावद्रसस्यचाधिक्यं तावजजीवःप्रशान्तिमान् ।
चरित्वा तादृशं वह्निः क्षुधारूपेणवर्तते ॥७६॥
अन्नमिच्छत्यसौतीव्रःपयसा च समन्वितम् । प्रदानं लभते चान्नमुदकं चापि भूपते ॥७७॥
शोणितं चरिते वह्निस्तद्वद्वीर्यं न संशयः । यक्ष्मारोगो भवेत्तस्मात्सर्वकायप्रणाशकः॥७८॥
रसाधिक्यं भवेद्राजन्नथ वह्निःप्रशाम्यति। रसेन पीड्यमानस्तु ज्वररूपोऽभिजायते॥७९॥
ग्रीवा पृष्ठं कटिं पायुं सर्वास्वेव तु सन्धिषु ।
आरुध्य तिष्ठते वह्निःकाये वह्निःप्रवर्तते ॥८०॥
तस्याऽऽधिक्यं चरेन्नित्यं कायं पुष्णाति सर्वतः ।
रसस्तु बन्धमायाति बलरूपोभवेत्तदा ॥८१॥
अतिरिक्तो बलेनैव वीर्यान्मर्माणि चालयेत्। तेनैव जायते कामःशल्यरूपोभवेन्नृप ॥८२॥
सकामाग्निःसमाख्यातो बलनाशकरो नृप। मैथुनस्यप्रसङ्गेन विनाशत्वं कलेवरम् ॥८३॥
नारीं च संश्रयेत्प्राणी पीडितःकामवह्निना। मैथुनस्य प्रसङ्गेन मूर्छितःकामकर्शितः॥८४॥
तेजोहीनो भवेत्कायो बलहानिश्च जायते। बलहीनो यदास्याद्वै दुर्बलो वह्निनेरितः॥८५॥
सवह्निःप्रचरेत्काये शोणितं शुक्रमेव च। शुक्रशोणितयोर्नाशाच्छून्यदेहोऽभिजायते ॥८६॥

स्वरूप शरीर संचरण करता है । उससे गन्ध उत्पन्न होता है फिर गन्ध से रस होता है ॥७३॥ उससे महाग्नि उत्पन्न होती है । हे राजन् ! आप यहाँ दृष्टान्त को देखें । जिस तरह काठ से अग्नि उत्पन्न होकर काष्ठ को प्रकाशित करता है ॥७४॥ हे देव ! उसी तरह शरीर में रस से अग्नि उत्पन्न होती है । हे राजन्! वहाँ पर अग्नि सदैव संचरण करती है और शरीर को पुष्ट बनाती है ॥७५॥ जब तक शरीर में रस की अधिकता होती है तव तक जीव को शान्ति मिलती है । संचरण करके वह अग्नि क्षुधारूप हो जाती है॥७६॥ उस समय यह जीव अन्न तथा जल प्राप्त करना चाहता है । हे राजन् ! वह अन्न और जल के प्रदान को प्राप्त करता है ॥७७॥ अग्नि शोणित तथा वीर्य को जलाने लगता है । उसके कारण सम्पूर्ण शरीर को विनष्ट करने वाला यक्ष्मारोग हो जाता है ॥७८॥ हे राजन् ! जब रस बढ़ जाता है तो वह अग्नि शान्त हो जाती है और प्राणी रस से पीड़ित हो जाता है । वह ज्वर ग्रस्त हो जाता है ॥७९॥ गर्दन, पीठ, कमर, वायुप्रदेश, तथा सभी जोड़ों में अग्नि रुककर स्थित हो जाती है और शरीर में अग्नि बनी रहती है॥८०॥ जब शरीर में अग्नि बढ़ जाती है तो वह शरीर का पोषण करती है । रस भी बंध जाता है और वही बल बन जाता है ॥८१॥ बल से अतिरिक्त रस वीर्य तथा मर्मस्थलों को चंचल बना देता है । हे राजन्! उसीसे कण्टक रूप काम उत्पन्न होता है ॥८२॥ राजन् ! वह कामाग्नि बल का नाश करती है । वह मैथुन के माध्यम से शरीर को विनष्ट करने का काम करता है ॥८३॥ कामाग्नि से पीड़ित होकर प्राणी नारी को अपनाता है । मैथुन के प्रसङ्ग में काम से दुर्बल बना हुआ वह मूर्छित हो जाता है ॥८४॥ उससे शरीर तेज से रहित हो जाता है और उसके बल की हानि हो जाती है । अग्नि से प्रेरित जब शरीर बलहीन होने के कारण दुर्बल हो जाता है ॥८५॥ वह अग्नि शरीर में संचरण करती हुयी शोणित (रक्त) तथा शुक्र (वीर्य) को सोखती है । शुक्र तथा शोणित का नाश हो जाने से प्राणि का शरीर शून्य हो जाता है ॥८६॥

अतीवजायते वायु:प्रचण्डो दारुणाकृतिः । विवर्णो दु:खसन्तप्तः शून्यबुद्धिस्ततोभवेत् ॥८७॥
दृष्टा श्रुता तु या नारी तच्चित्तोभ्रमते सदा। तृप्तिर्न जायते काये लोलुपे चित्तवर्त्मनि॥८८॥
विरूपश्च सुरूपश्च ध्यानान्मध्ये प्रजायते। बलहीनो यदा कामी मांसशोणितसंक्षयात् ॥८९॥
पलितं जायते काये नाशिते कामवह्निना। तस्मात्सञ्जायते कामी वृद्धो भूत्वा दिने दिने॥९०॥
सुरते चिन्तते नारीं यथा बार्द्धुषिकोनरः । तथा तथा भवेद्धानिस्तेजसोऽस्यनरेश्वर॥९१॥
तस्मात्प्रजायते कायो नाशरूपं समृच्छति । अग्निःप्रजायते भूयो जरारूपो न संशयः ॥९२॥
प्राणिनां क्षयरूपेण ज्वरो भवति दारुणः । स्थावराजङ्गमा:सर्वे ज्वरेणपरिपीडिताः ॥९३॥
नाशमायान्ति ते सर्वे बहुपीडाप्रपीडिताः। एतत्ते सर्वमाख्यातमन्यत्किं ते वदाम्यहम्॥९४॥
एवमुक्तो महाराजो मातलिं वाक्यमब्रवीत् ॥९५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातृपितृतीर्थकथने चतु:षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

ययातिरुवाच

धर्मस्य रक्षक:कायो मातलेचात्मना सह। नाकमेष न प्रयाति तन्मे कारणं वद॥१॥

उस स्थिति में शरीर में भयङ्कर प्रचण्ड आकार वाली वायु उत्पन्न हो जाती है । उसके कारण दुख से संतप्त जीव व्याकुल होकर बुद्धिशून्य हो जाता है ॥८७॥ उसका मन पूर्व दृष्ट और सुनी हुयी नारी में ही भ्रमण करता रहता है । लोलुप चित्त वाले को शरीर के विषय में तृप्ति नहीं होती है ॥८८॥ जब कामी जीव के मांस और शोणित का क्षय हो जाता है तो उस समय उसका सुन्दर रूप विरूप हो जाता है ॥८९॥ कामाग्नि से नष्ट होकर मनुष्य के बाल झड़ने लगते हैं । उसके फलस्वरूप कामी प्रतिदिन वृद्ध होता जाता है ॥९०॥ युवक के समान मनुष्य सुरत के समय अनुभूत नारी का चिन्तन करता है । उसी के अनुसार उसके तेज की हानि होती है ॥९१॥ उसके कारण शरीर नाश स्वरूप हो जता है । फिर बुढापा रूपी अग्नि उत्पन्न होती है ॥९२॥ प्राणियों के नाश रूप भयङ्कर ज्वर होता है । ज्वर के द्वारा स्थावर और जंगम सभी प्राणी पीड़ित होते हैं ॥९३॥ बहुत अधिक पीड़ा से पीड़ित होने के कारण उन सबों का नाश हो जाता है। इस तरह मैंने आपको सारी बातें बतलायी । अब मैं आपको दूसरी कौन सी बात बतलाऊँ ॥९४॥ मातलि के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर महाराज ययाति ने फिर कहा ॥९५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६४।।

मातलि द्वारा शरीर के दोष का वर्णन

ययाति ने कहा— हे मातले ! आत्मा के साथ विद्यमान शरीर धर्म का रक्षक है । फिर भी यह स्वर्ग

मातलिरुवाच

पञ्चानामपि भूतानां सङ्गतिर्नास्ति भूपते। आत्मना सह वर्तन्ते सङ्गत्या नैव पञ्च ते॥२॥
सर्वेषां तत्र सङ्घातःकायग्रामे प्रवर्तते। जरयापीडिताःसर्वेःस्वं स्वं स्थानं प्रयान्ति ते ॥३॥
यथा रसाधिका पृथ्वी महाराज प्रकल्पिता। रसैःक्लिन्ना ततःपृथ्वी मृदुत्वं याति भूपते ॥४॥
भिद्यते पिपीलिकाभिर्मूषिकाभिस्तथैव च । छिद्राण्येव प्रजायन्ते वल्मीकाश्चमहादेराः ॥५॥
तद्वत्काये प्रजायन्ते गण्डमाला विचर्चिकाः । कृमिभिर्भिद्यमानश्च काय एष नरोत्तम ॥६॥
गुल्मास्तत्र प्रजायन्ते सद्यःपीडाकरास्तदा। एभिर्दोषैःसमायुक्तःकायोऽयं नहुषात्मज॥७॥
कथं प्राणसमा योगाद्दिवं याति नरेश्वर। काये पार्थिवभागोऽयं समानार्थं प्रतिष्ठितः ॥८॥
न कायःस्वर्गमायाति यथापृथ्वी तथास्थितः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातां दोषौघैःपार्थिवस्य यः ॥९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

छियासठवाँ अध्याय

ययातिरुवाच

पापात्पतति कायोऽयं धर्माच्चश्रृणु मातले । विशेषं न च पश्यामि पुण्यस्यापि महीतले ॥१॥

नहीं जाता है, उसका कारण क्या है ?॥१॥ **मातलि ने कहा—** हे राजन् ! पाञ्चों भूतों का आपस में सङ्गति नहीं है । पाञ्चों आत्मा के साथ एक साथ मिलकर नहीं रहते हैं ॥२॥ उन सबों का समूह शरीरों में रहता है । जरा से पीड़ित होकर वे अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं ॥३॥ हे महाराज ! जैसे पृथिवी में रस की अधिकता होती है । हे राजन् ! रस से भिंगी हुयी पृथिवी मृदु हो जाती है ॥४॥ उसमें चिंटियाँ तथा चूहिया भी छिद्र बना देती हैं । उसी तरह उसमें छिद्र रूप बड़े-बड़े वल्मीक भी हो जाते हैं ॥५॥ उसी तरह शरीर में गण्डमाला तथा विचर्चिका आदि रोग हो जाते हैं । हे नरोत्तम ! इस शरीर को कृमि चाल डालते हैं ॥६॥ उसके कारण शरीर में दुःख देने वाले गुल्म उत्पन्न हो जाते हैं । हे नहुषात्मज ! शरीर इन दोषों से युक्त है अतएव यह प्राण के संयोग से स्वर्ग कैसे जा सकता है ?॥७॥ शरीर में पृथिवी का भाग उसकी समानता के लिए रहता है । वह पृथिवी के ही समान स्थित रहता है, स्वर्ग नहीं जाता है ॥८॥ इस तरह से मैंने आपको इस पार्थिव शरीर के दोषों को बतलाया ॥९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातापितृ तीर्थ के महात्म्य वर्णन रूप पैंसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।

शरीरोत्पत्ति पूर्वक शरीर की हेयता का वर्णन

ययाति ने कहा— हे मातले ! सुनें यह शरीर पाप तथा धर्म के कारण घूटता है । किन्तु भूलोक में मुझे पुण्य की कोई विशेषता नहीं प्रतीत होता है ॥१॥ जैसे शरीर का पहले पात हुआ रहता है, उसी

पुन:प्रजायते कायो यथाहि पतनं पुरा । कथमुत्पद्यते देहस्तन्मे विस्तरतो वद ॥२॥

मातलिरुवाच

अथ नारकिणां पुंसामधर्मादेव केवलात् । क्षणमात्रेण भूतेभ्य:शरीरमुपजायते ॥३॥
तद्वद्धर्मेण चैकेन देवानामौपपादिकम्। सद्य:प्रजायते दिव्यं शरीरं भूतसारत: ॥४॥
कर्मणाव्यतिमिश्रेण यच्छरीरं महात्मनाम्। तद्रूपं परिणामेन विज्ञेयं हि चतुर्विधम्॥५॥
उद्भिज्जा:स्थावरा ज्ञेयास्तृणगुल्मादिरूपिण:। कृमीकीट पतङ्गाद्या:स्वेदजा नाम देहिन: ॥६॥
अण्डजा:पक्षिण:सर्वे सर्पानक्राश्च भूपते। जरायुजाश्च विज्ञेया मानुषाश्च चतुष्पदा: ॥७॥
तत्र सिक्ताजलैर्भूमिरक्तस्योष्मविपाचिता। वायुनाधम्यमाना च क्षेत्रतां तु प्रपद्यते ॥८॥
तत्रचोप्तानि बीजानि संसिक्तान्यम्भसा पुन:। उपगम्य मृदुत्वं च मूलभावं व्रजन्ति च ॥९॥
तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिरङ्कुरात्पर्णसम्भव: । पर्णान्नालं तत:काण्डं काण्डाच्च प्रभव:पुन:॥१०॥
प्रभवाच्च भवेत्क्षीरं क्षीरात्तण्डुल सम्भव: । तण्डुलाच्च तत:पाक्वाभवन्त्योषधयस्तथा ॥११॥
यवाद्याशालीपर्यन्ता:श्रेष्ठास्सप्तदश स्मृता: । ओषध्य:फलसाराढ्या शेषा:क्षुद्रा:प्रकीर्तिता: ॥१२॥
एता लूनामर्दिताश्चमुनिभि: पूर्वसंस्कृता:। शूर्पोलूखल पात्राद्यै:स्थालिकोदक बह्निभि: ॥१३॥

षड्विधा हि स्वभेदेन परिणामं व्रजन्ति ता: ।
अन्योन्य रससंयोगादनेकस्वादतां गता: ॥१४॥
भक्ष्यं भोज्यं पेयलेह्यं चोष्यं खाद्यं च भूषते ।
तासां भेदा:षडङ्गाश्चमधुराद्याश्च षड्गुण: ॥१५॥

तरह से वह पुन: उत्पन्न होता है । यह शरीर क्यों उत्पन्न होता है ? उसे आप विस्तार से बतलायें ॥२॥ **मातलि ने कहा—** नारकी जीवों के केवल अधर्म के ही कारण क्षणमात्र में भूतों से शरीर की उत्पत्ति हो जाती है ॥३॥ उसी तरह से देवताओं का शरीर केवल धर्म से उपपदजन्य दिव्य शरीर भूतों के सारभाग से क्षणभर में उत्पन्न हो जाता है ॥४॥ जिन महात्माओं का शरीर कर्मों के मिश्रण के द्वारा उत्पन्न होता है, वह शरीर चार प्रकार का होता है ॥५॥ स्थावर शरीर को उद्भिज कहते हैं वे शरीर तृण, गुल्म इत्यादि रूप होते हैं । कृमि, कीट पतङ्ग आदि प्राणियों का शरीर स्वेदज होता है ॥६॥ हे राजन् ! सर्प, घड़ियाल तथा पक्षियों का शरीर अण्डज होता है । मनुष्यों तथा पशुओं का शरीर जरायुज कहलाता है ॥७॥ उसमें बालू और जल से भूमि होती है, रक्त में उष्मा से पाक होता है । वायु के द्वारा फूंके जाते हुए क्षेत्र में बीज पड़ता है ॥८॥ जिस तरह से मिट्टी में वोये गये बीज जल के द्वारा मृदुता को प्राप्त करके अपने मूल भाव को प्राप्त कर लेते हैं ॥९॥ उस मूल से अङ्कुर की उत्पत्ति होती है और अङ्कुर से पत्ते उत्पन्न होते हैं । पत्तों से नाल उत्पन्न होता है, उससे काण्ड उत्पन्न होता है । काण्ड से बाल उत्पन्न होता है ॥१०॥ उस बाली से दूध उत्पन्न होता है उस क्षीर से चावल की उत्पत्ति होती है । उस चावल से ओषधियाँ पक जाती हैं ॥११॥ यव से लेकर धान पर्यन्त श्रेष्ठ अन्न सत्रह हैं । ये अन्न फल के सार भाग से परिपूर्ण होते है । उनसे भिन्न अन्न क्षुद्र अन्न कहे जाते हैं ॥१२॥ इन अन्नों को मुनियों ने पहले काटा और मसला है तथा शूप, ओखली, पात्र, स्थाली जल तथा अग्नि के द्वारा संस्कार युक्त किया ॥१३॥ वे छह प्रकार के अपने भेद के द्वारा परिणत होते हैं । परस्पर के संयोग से वे अनेक प्रकार के स्वाद वाले हो जाते हैं ॥१४॥ वे भेद हैं भक्ष्य,

तदन्नं पिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तं च देहिभिः । अन्तःस्थूलाशये सर्वप्राणान्स्थापयति क्रमात् ॥१६॥
अपलं भुक्तमाहारं सवायुःकुरुते द्विधा। सम्प्रविश्यान्नमध्ये च पक्वंकृत्वा पृथग्गुणम् ॥१७॥
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं च जलोपरि। जलस्याधःस्वयं प्राणःस्थित्वाग्निं धमते शनैः ॥१८॥
वायुनाधम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णयोगेन समन्तात्पच्यते पुनः ॥१९॥
द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टंपृथग्रसः । मलैर्द्वादशभिःकिट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्व्रजेत् ॥२०॥

कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्तोष्ठप्रजनं गुदम् ।
मलान्स्त्रवेदथस्वेदोविण्मूत्रं द्वादशस्मृतः ॥२१॥

हत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यः समन्ततः। तासां मुखेषुतं सूक्ष्मं प्राणःस्थापयते रसम् ॥२२॥
रसेन तेन ता नाडीःप्राणःपूरयते पुनः । सन्तर्पयन्ति ता नाड्यः पूर्णा देहं समन्ततः ॥२३॥
तत सनाडीमध्यस्थःशरीरेणोष्मणा रसः । पच्यते पच्यमा नश्च भवेत्पाकद्वयं पुनः ॥२४॥

त्वग्मांसास्थिमज्जा मेदोरुधिरं च प्रजायते ।
रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाःस्नायुश्च मांसतः ॥२५॥
स्नायोर्मज्जा तथास्थीनि वसामज्जस्थि सम्भवा ।
मज्जाकारेण वैकल्यं शुक्रं च प्रसवात्मकम् ॥२६॥

इति द्वादश चान्नस्य परिणामाःप्रकीर्तिताः । शुक्रं तस्य परीणामःशुक्रादेहस्य सम्भवः ॥२७॥

भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य तथा खाद्य । उन सबों के ये भेद छह प्रकार के होते हैं । तथा उन सबों के मधुर आदि (अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त) ये छह गुण हैं ॥१५॥ शरीरधारियों के द्वारा पिण्डी, कवल रूप ग्रासों के द्वारा खाया जाकर अन्न मूलक आशय में सभी प्राणों को क्रमशः स्थापित करता है ॥१६॥ विना पका हुआ जो आहार खाया जाता है उसको वायु दो भागों में विभक्त कर देती है । उस अन्न में वायु प्रवेश करके पके हुए अन्न को दूसरे गुण से युक्त बनाकर ॥१७॥ अग्नि के ऊपर जल को स्थापित करके उस अन्न को जल के ऊपर कर देती है । जल के नीचे स्वयं प्राण स्थित होकर उसको धीरे-धीरे प्रज्ज्वलित करता है ॥१८॥ वायु के द्वारा प्रज्ज्वलित किया जाने वाला अग्नि जल को उत्पन्न उष्ण बना देता है । उष्णता का संयोग पाकर वह अन्न अच्छी तरह से पकता है ॥१९॥ वह पका हुआ अन्न दो भागों में विभक्त हो जता है । मल अलग हो जाता है और रस अलग हो जाता है । बारह प्रकार के मलों से भिन्न किट्ट शरीर से बाहर निकल जाता है ॥२०॥ कान, आँख, नामक, जीभ, दाँत, ओष्ठ, प्रजनन (लिङ्ग) गुदा (मल द्वार) इन सबों से निकलने वाले मल तथा पसीना, विष्ठा तथा मूत्र आदि से इस तरह से बारह मल कहे गये हैं ॥२१॥ शरीर की सभी नाड़ियों का संवन्ध हृदय कमल से होता है । उन सबों के मुख में प्राण उस सूक्ष्म रस को स्थापित कर देता है ॥२२॥ उस रस से प्राण उन नाडियों को भर देता है और वे नाड़ियाँ सम्पूर्ण शरीर को तृप्त कर देती हैं ॥२३॥ उसके बाद नाडी के बीच में विद्यमान रस शरीर की गर्मी से पकता है, और पकते हुए उसके दो पाक होते हैं ॥२४॥ रक्त से त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा, मेदा, तथा रुधिर उत्पन्न होते हैं । मांस से रोम, मांस, केश तथा स्नायु बनते हैं ॥२५॥ स्नायु से मज्जा तथा हड्डियाँ होती हैं और अस्थि से वसा और मज्जा होती है । मज्जा के रूप में प्रसवात्मक (उत्पन्न करने वाला) विकल शुक्र (वीर्य) उत्पन्न होता है ॥२६॥ इस तरह शान्त के बारह परिणाम होते हैं । उसका परिणाम शुक्र है,

ऋतुकाले यदाशुकं निर्दोषं योनिसंस्थितम् । तदा तद्वायुसंसृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतांव्रजेत्॥२८॥
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः। नित्यं प्रविशते योनिं कर्मभिस्वैर्नियन्तितः ॥२९॥
शुक्रस्य सहरक्तस्य एकाह्वात्कललं भवेत् । पञ्चरात्रेण कलले बुद्बुदत्वं ततो भवेत्॥३०॥
मांसत्वं मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः । ग्रीवाशिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥३१॥
पाणीपादौ तथापार्श्वौ कटिर्गात्रं तथैव च । मासद्वयेन पर्वाणि क्रमशःसम्भवन्ति च ॥३२॥
त्रिभिर्मासैःप्रजायन्ते शतशोऽङ्कुर सन्धयः । मासैश्चतुर्भिर्जायन्तेअङ्गुल्यादियथाक्रमम् ॥३३॥
मुखं नासा च कर्णौ च मासैर्जायन्ति पञ्चभिः ।
दन्तपङ्क्तिस्तथाजिह्वा जायते तु नखाः पुनः ॥३४॥
कर्णयोश्च भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरे पुनः। पायुर्मेढ्रमुपस्थं च शिश्नश्चाप्युपजायते॥३५॥
सन्धयो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सतभिः। अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णं शिरःकेशसमन्वितम् ॥३६॥
विभक्तावयवस्पष्टं पुनर्मासेऽष्टमे भवेत्। पञ्चात्मकसमायुक्तःपरिपक्वःस तिष्ठति ॥३७॥
मातुराहार वीर्येण षड्विधेनरसेन च । नाभिसूत्रानिबद्धेन वर्द्धते स दिने दिने॥३८॥
ततःस्मृतिं लभेज्जीवःसम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके। सुखंदुःखं विजानातिनिद्रांस्वप्नं पुराकृतम्॥३९॥
मृतश्चाहं पुनर्जातो जाताश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मयादृष्टान्यनेकधा ॥४०॥
अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च । ततःश्रेयःकरिष्यामि येन गर्भे न सम्भवः ॥४१॥
गर्भस्थश्चिन्तयत्येवमहंगर्भाद्विनिःसृतः । अध्येष्यामि परंज्ञानं संसार विनिवर्तकम् ॥४२॥

शुक्र से देह की उत्पत्ति होती है ॥२७॥ ऋतुकाल में जब निर्दोष वीर्य योनि में आहित होता है, उस समय वह वायु से संसृष्ट होकर स्त्री के शोणित के साथ मिल जाता है ॥२८॥ शुक्र के निकलने के समय कारण के साथ जीव, अपने कर्मों से नियन्त्रित होकर योनि में सदा प्रवेश करता है ॥२९॥ रक्तमिश्रित शुक्र में एक दिन तक कलल होता है । उसके बाद उस कलल में पाँच रात तक बुल-बुले निकलते रहते हैं ॥३०॥ इसके बाद वह एक मास में पाँच प्रकार का मांस बन जाता है । उसके बाद दो महीने तक ग्रीवा, शिर, कन्धा, मेरुदण्ड, पेट, दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनो बगल, कमर, शरीर ये सभी पर्व क्रमशः बन जाते हैं॥३१-३२॥ उसके बाद तीसरे मास में सैकड़ों संधियाँ बन जाती हैं । चौथे मास में क्रमशः अङ्गुलियाँ आदि भी बन जाती हैं । पाञ्चों मासों में मुख दोनों नाक और दोनों कान बन जाते हैं । उसके बाद दँत पंक्ति, जीभ तथा नख आदि बनते हैं ॥३३-३४॥ छठे मास के भीतर ही कानों के छिद्र बन जाते हैं । उसी समय तक, मलद्वार, अण्डकोश, तथा लिङ्ग भी बन जाते हैं ॥३५॥ सातवें मांस में अङ्गों की संधियाँ बन जाती हैं । उसके बाद आठवें महीनें में, शिर तथा केश से युक्त अङ्ग प्रत्यङ्ग से परिपूर्ण सारे अङ्ग स्पष्ट रूप से विभक्त हो जाते हैं । पाञ्चभौतिक शरीर से युक्त वह शरीर परिपक्व हो जाता है ॥३६-३७॥ माता के अहार के फल स्वरूप छह प्रकार के रसों से तथा उसके नाभि सूत्र से निबद्ध वह प्रतिदिन बढ़ता रहता है॥३८॥ उसके बाद जीव अपने सम्पूर्ण शरीर में स्मृति को प्राप्त कर लेता है । वह सुख, दुःख, निद्रा, स्वाप तथा पूर्वकृत कर्मों को जानता है ॥३९॥ गर्भस्थ जीव गर्भ में विद्यमान रहकर सोचता है मैं बार-बार मरकर जन्म लेता हूँ । मैंने अनेक प्रकार से हजारों प्रकार के अनेक योनियों में गया । इस बार उत्पन्न होते ही संस्कार प्राप्त करके इस प्रकार का पुण्य कार्य करूँगा कि मुझे फिर गर्भ में न जाना पड़े । गर्भ से निकल

अवश्यं गर्भदुःखेन महता परिपीडिताः । जीवःकर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयेत् ॥४३॥
यथागिरिवराक्रान्तःकश्चिद्दुःखेन तिष्ठति । तथाजरायुणा देही दुःखंतिष्ठति दुःखितः ॥४४॥
पतितः सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः । गर्भोदकेनसिक्ताङ्गस्तथास्ते व्याकुलात्मकः॥४५॥
लोहकुम्भे यथान्यस्तःपच्यते कश्चिदग्निना। गर्भकुम्भे तथाक्षिप्तःपच्यतेजठराग्निना ॥४६॥
सूचीभिरग्निवर्णाभिर्भिन्नागात्रो निरन्तरम्। यद्दुःखं जायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत् ॥४७॥
गर्भवासात्परंवासं कष्टंनैवास्ति कुत्रचित्। देहिनां दुःखमतुलं सुघोरमपिसङ्कटम् ॥४८॥
इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् । चरस्थिराणां सर्वेषात्मगर्भानुरूपतः ॥४९॥
गर्भात्कोटिगुणा पीडा योनियन्त्रनिपीडनात्। संमूर्च्छितस्य जायेत् जायमानस्य देहिनः ॥५०॥
इक्षुवत्पीड्यमानस्य पापमुद्गर पेषणात् । गर्भानिष्क्रममाणस्य प्रबलैःसूतिवायुभिः ॥५१॥
ज्ञायते सुमहद्दुःखं परित्राणं न विन्दति । यन्त्रेण पीड्यमानाःस्युर्निसाराश्च यथेक्षवः ॥५२॥
तथा शरीरं योनिस्थं पात्यते यन्त्र पीडनात्। अस्थिमद्वर्तुलाकारं स्नायुबन्धन वेष्टितम् ॥५३॥
रक्तमांसं वसालिप्तं विण्मूत्रद्रव्य भाजनम् । केशलोम नखाच्छन्नं रोगायतनमुत्तमम् ॥५४॥
वदनैक महाद्वारं गवाक्षाष्टक भूषितम्। ओष्ठद्वयकपाटं तु दन्तजिह्वागलान्वितम्॥५५॥
नाडीस्वेद प्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम्। जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानलेस्थितम् ॥५६॥

कर मैं संसार से मुक्त करने वाले परंज्ञान का अध्ययन करूँगा ॥४०-४२॥ गर्भ में होने वाले महान् कष्ट से पीड़ित जीव कर्म वश्य है और वह मोक्ष के उपाय को चिन्तन करता है ॥४३॥ जिस तरह से कोई पहाड़ से दवकर दुःखी रहता है, उसी तरह जरायु से दुःखित जीव दुःखी रहता है ॥४४॥ जिस तरह सागर में गिरा हुआ मनुष्य दुःख से व्याकुल रहता है, उसी तरह गर्भोदक से सिक्त अङ्गों वाला जीव व्याकुल रहता है ॥४५॥ जैसे किसी को लोहे के घड़े में रखकर पकाया जाय उसी तरह गर्भरूपी कुम्भ में पड़ा हुआ जीव जाठराग्नि से पकता रहता है ॥४६॥ जिस तरह अग्नि से संतप्त सूई से किसी को छेदा जाय और उसका जितना कष्ट होता है उसके आठ गुना कष्ट जीव के गर्भ में होता है ॥४७॥ शरीर धारियों के लिए गर्भ में निवास से होने वाले कष्ट से अधिक कष्ट कहीं नहीं होता है । गर्भ में जीव को अत्यन्त भयङ्कर कष्ट होता है ॥४८॥ इस तरह से गर्भ में होने वाले प्राणियों के कष्ट का वर्णन मैंने किया चाहे जङ्गम जीव हो या स्थावर सवों को अपने गर्भ के अनुसार कष्ट होता है ॥४९॥ जव शरीरधारी जन्म लेता है उस समय उसको गर्भ के कष्ट की अपेक्षा करोड़ गुना योनिद्वार में कष्ट होता है । उसके कारण वह जन्म के समय मूर्छित हो जाता है ॥५०॥ जब जीव गर्भ से निकलने लग जाता है उस समय वह प्रसूति वायु के द्वारा ईख के समान पेर दिया जाता है तथा पाप रूपी मुद्गर से दबाया जाता है ॥५१॥ उस समय जीव को बड़ा ही कष्ट होता है, उसका कोई रक्षक नहीं होता है । जिस तरह ईख मशीन में पेर दिया जाता है, उसी तरह वह उस समय पेर दिया जाता है ॥५२॥ उसी तरह योनि में रहने वाले शरीर यंत्र से होकर वह जमीन पर गिरता है । उस समय शरीर अस्थि से युक्त, गोल तथा स्नायु से बंधा रहता है ॥५३॥ वह रक्त, मांस तथा वसा से सना रहता है । यह शरीर, विष्ठा तथा मूत्र का पात्र है । यह केश, रोम और नख से युक्त रहता है, तथा रोगों का आश्रय है ॥५४॥ मुख ही केवल इसका महाद्वार है, इसमें आठ (दो नाक, दो कान, दो आँख, लिङ्ग तथा गुदामार्ग) खिड़कियाँ हैं । दोनों ओठ इस मुख रूपी द्वार की किवाड़ हैं यह दाँत, जीभ तथा गला से

कामक्रोधसमाक्रान्तं श्वसनैः श्वोपमर्दितम् । भोगतृष्णातुरं गूढं रागद्वेषवशानुगम् ॥५७॥
सवर्णिताङ्ग प्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम् । सङ्कटेनाविविक्तेन योनिमार्गेणनिर्गतम् ॥५८॥
विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं षट्कौशिक समुद्भवम् । अस्थिपञ्चरसङ्घातं यज्ञमस्मिन्कलेवरे ॥५९॥
शतत्रयं षष्ट्यधिकं पञ्चपेशी शतानि च । सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः ॥६०॥
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्याभिरन्ततः । एताभिर्मांसनाडीभिः कोटिभिस्ततसमन्वितम् ॥६१॥
प्रस्वेदमशुचिताभिरन्तरस्थं च तेन हि । द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ता विंशतिश्च नखाः स्मृताः ॥६२॥
पित्तस्य कुडवंज्ञेयं कफस्यार्धाढकं तथा । वसायाश्चपलित्रिंशत्तदर्धं कललस्य वा ॥६३॥
वातार्बुदपलं ज्ञेयं पलानि दशमेदसः । पलत्रयं महारक्तं मज्जारक्ताश्चतुर्गुणा ॥६४॥
शुक्रार्धं कुडवं ज्ञेयं तदर्धं देहिनां बलम् । मांसस्यचैकं पिण्डेन पलसाहस्रमुच्यते ॥६५॥
रक्तंपलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रं चाप्रमाणतः । इति देह गृहे राजन्वासःस्यान्नित्यमात्मनः ॥६६॥
अशुद्धं च दिशुद्धस्य कर्मबन्ध विनिर्मितम् ।
शुक्रशोणित संयोगाद्देहः सञ्जायते क्वचित् ॥६७॥
नित्यंविण्मूत्रसंयुक्तस्तेनायमशुचिःस्मृतः । यथा वै विष्ठयापूर्णः शुचिः सान्तर्बहिर्घटः ॥६८॥
शौचेन शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिर्भवेत् । यं प्राप्याति पवित्राणि पञ्चगव्य हवींषि च ॥६९॥
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु देहोऽयमशुचिस्ततः । हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्यसुरभीणिच ॥७०॥

युक्त है ॥५५॥ नाड़ियों से पसीना निकलता है, यह कफ तथा पित्त से भरा हुआ है । इसके भीतर जरा और शोक दोनों प्रवेश किए हुए हैं । यह काल के मुख से स्थित है ॥५६॥ यह काम तथा क्रोध से युक्त तथा वायु से मर्दित है । शरीर भोग की तृष्ण से आतुर रहता है । तथा राग एवं द्वेष के वश में रहता है॥५७॥ इस तरह से इस शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग का वर्णन किया गया तथा जरायु परिवेष्टित है । अत्यन्त सङ्करे योनि द्वार से निकलता है ॥५८॥ इसके सारे अङ्ग विष्ठा और मूत्र से भिङ्गे रहते हैं । यह षट्कोष से उद्भूत होता है । इस शरीर को अस्थिपंजर के समूह रूप ही जानना चाहिए ॥५९॥ इसमें नौ सौ मांस पेशियाँ रहती हैं । इस शरीर में साढे तीन करोड़ रोम हैं ॥६०॥ यह शरीर स्थूल एवं सूक्ष्म, दृश्य एवं अदृश्य तथा साढ़े तीन करोड़ मास नाड़ियों से युक्त हैं ॥६१॥ उन नाड़ियों से शरीर स्वेद युक्त एवं अशुचि (अपवित्र) तथा उसके भीतर बतीस दाँत तथा बीस नख विद्यमान होते हैं ॥६२॥ इस शरीर में पित्त एक कुडव रहता है तथा कफ एक आढ़क रहता है । इसमें पाँच पल मज्जा है तथा ढाई पल फलक रहता है॥६३॥ शरीर में रहने वाले पलों की संख्या पाँच अरब होती है । मेदा दश पल रहता है । तीन पल महारक्त रहता है और रक्त के चार गुणा मज्जा होती है ॥६४॥ शुक्र आधा कुडव रहता है और उसके आधा शरीर धारियों का बल होता है । मांस के एक पिण्ड में एक हजार पल हाते हैं ॥६५॥ शरीर में रक्त सौ पल होता है और विष्ठा तथा मूत्र की कोई मात्रा नहीं है । हे राजन् ! इस प्रकार के देह रूपी गृह में आत्मा का नित्य ही निवास होता है ॥६६॥ आत्मा विल्कुल शुद्ध है किन्तु वह कर्मो के बन्धन से अशुद्ध हो जाता है । कहीं पर तो शुक्र तथा शोणित संयोग से शरीर उत्पन्न होता है ॥६७॥ यह सदा विष्ठा तथा मूत्र से युक्त रहता है, इसीलिए शरीर को अपवित्र कहा गया है । जैसे कोई पवित्र घड़ा विष्ठा से भरा होने के कारण भीतर बाहर आधा पवित्र होता है, उसी तरह यह शरीर है ॥६८॥ शौच के द्वारा शोधन करने पर

अशुचित्वं प्रयान्त्याशु कोऽन्यःस्यादशुचिस्ततः ।
हे जनाःकिं न पश्यध्वं यन्निर्याति दिने दिने ॥७१॥

देहानुगो मलःपूतिस्तदाधारःकथं शुचिः। देहःसंशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्य कुशाम्बुभिः ॥७२॥
घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति। स्त्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्तिगिरेरिव ॥७३॥
कफमूत्राद्यमशुचिःसदेहःशुध्यते कथम्। सर्वाशुचि निधानस्य शरीरस्य न विद्यते॥७४॥
शुचिरेक प्रदेशोऽपि शुचिर्नस्यादृतेऽपि वा। दिवा वा यदिवारात्रौमृत्तोयैःशोध्यतेकरः ॥७५॥
तथापिशुचिभाङ्नस्यान्नविरज्यन्ति ते नराः । कायोऽयमग्र्यधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ॥७६॥

न जहाति स्वभावं हि श्वपुच्छमिव नामितम् ।
तथाजात्यैव कृष्णोर्णा न शुक्ला जातु जायते ॥७७॥

संशोध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला। जिघ्रन्नपिस्वदुर्गन्धं पश्यन्नपिमलंस्वकम् ॥७८॥

न विरज्यति लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ।
अहोमोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितं जगत् ॥७९॥

जिघ्रन्पश्यन्स्वकान्दोषान्कायस्य न विरज्यते। स्वदेहस्यविगन्धेन विरज्येत न योनरः ॥८०॥
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते। सर्वमेव जगत्पूतं देहमेवाशुचिःपरम् ॥८१॥
यन्मलावयवस्पर्शच्छुचिरप्य शुचिर्भवेत्। गन्धलेपापनोदाय शौचं देहस्य कीर्तितम् ॥८२॥

भी यह शरीर अपवित्र ही रहता है। जिस शरीर में जाकर अत्यन्त पवित्र पञ्चगव्य पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं। वह शरीर अत्यन्त अपवित्र है। हृदय को सुख देने वाले अन्न जल भी जिस शरीर में जाकर दुर्गन्धि युक्त ॥६९-७०॥ तथा अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीर से दूसरी कौन सी वस्तु अधिक अपवित्र हो सकती है? ऐ लोगों! इस शरीर से जो प्रतिदिन निकलता है उसे आपलोग क्यों नहीं देखते हैं ॥७१॥ देह के साथ रहने वाला तथा उसका अधारभूत मल एवं पूति कैसे पवित्र हो सकते है? पञ्चगव्य, कुश तथा जल से पवित्र किए जाने पर भी देह ॥७२॥ रगड़े जाते हुए अङ्गार के समान निर्मल नहीं होता है। जिसतरह पर्वत से जल के स्त्रोत प्रवाहित होते हैं, उसी तरह शरीर से मल प्रवाहित होते हैं ॥७३॥ कफ तथा मूत्र आदि के कारणभूत शरीर पवित्र कैसे हो सकता है? सम्पूर्ण अपवित्रों के आकरभूत शरीर में शुद्धता नहीं हो सकती है?॥७४॥ मिट्टी तथा जल से रात-दिन शुद्ध किए जाने पर भी शरीर शुद्ध नहीं हो पाता है। फिर भी लोग इस शरीर से विरक्त नहीं होते हैं। धूप आदि से प्रयत्न पूर्वक संशोधित करने पर भी यह ॥७५-७६॥ अपने स्वभाव को उसी तरह नहीं छोड़ता है जिस तरह कुत्ते की पूंछ सीधा कर दिये जाने भी पुनः टेढ़ी हो जाती है। जिस तरह से काली जाति का उन उजला नहीं होता है ॥७७॥ उसी तरह शुद्ध किए जाने पर भी शरीर निर्मल नहीं होता है। अपने शरीर की दुर्गंधि को सूंघकर तथा शरीर के मल को देखकर मनुष्य ॥७८॥ अपनी नाक को दबाये रहकर भी इस शरीर से उदासीन नहीं होता है। सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त मोह की यह बहुत बड़ी महिमा है कि मनुष्य अपने दोषों को सूंघकर तथा देखकर भी इस शरीर से उदासीन नहीं होता है। जो मनुष्य अपने शरीर की दुर्गंधि के कारण शरीर से उदासीन नहीं होता है ॥७९-८०॥ उसको वैराग्य के लिए किस दूसरे कारण का उपदेश दिया जाय। सारा संसार पवित्र है केवल अपना शरीर ही अत्यन्त अपवित्र है ॥८१॥ इस शरीर के मल के टुकड़े से स्पर्श हो जाने

द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुध्या विशुध्यति। गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गात्रलेपनैः ॥८३॥
मर्त्यो दुर्गन्धदेहोऽसौ भावदुष्टो न शुध्यति। तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शुध्यति॥८४॥
स्वमूर्तिःक्षालितातीर्थे न शुद्धिमधिगच्छति। अन्तर्भाव प्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्॥८५॥
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनंपरम्। भावशुद्धिःपरं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु॥८६॥

अन्यथा लिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा।
मनसाभिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ॥८७॥

अन्यथैव सती पुत्रं चिन्तयेदन्यथापतिम्। यथा यथा स्वभावस्य महाभाग उदाहृतम्॥८८॥

परिष्वक्तोऽपि यद्भार्या भावहीनां न कारयेत्।
नाद्याद्विविधमन्नाद्यं रस्यानि सुरभीणि च ॥८९॥

अभावेन नरस्तस्माद्भावःसर्वत्र कारणम्। चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः॥९०॥

भावतःशुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति।
ज्ञानामालम्भसा पुंसःसवैराग्यमृदा पुनः ॥९१॥

अविद्यारागविण्मूत्र लेपो नश्येद्विशोधनैः। एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचिं विदुः॥९२॥
विद्यादसार निःसारं कदलीसारसन्निभम्। ज्ञात्वैवं दोषवद्देहं यःप्राज्ञःशिथिली भवेत्॥९३॥
सोऽतिक्रामति संसारं दृढ़ग्राहोऽव तिष्ठति। एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्त्तितम्॥९४॥

से पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है। गन्ध और लेप को दूर करने के लिए देह की पवित्रता बतलायी गयी है ॥८२॥ इन दोनों के दूर हो जाने के बाद जीव भाव की शुद्धि से पवित्र होता है। सम्पूर्ण गङ्गाजल से तथा मिट्टी के शरीर में लगाने से ॥८३॥ यह दुर्गन्ध देह वाला मनुष्य भावदुष्ट होने पर शुद्ध नहीं होता है। दुष्ट मनुष्य तीर्थों में स्नान करने तथा तपस्या करने से भी शुद्ध नहीं होता है ॥८४॥ तीर्थ में अपने शरीर को धोने से भी शरीर शुद्ध नहीं होता है। जिसके भीतर के भाव दूषित हैं वह यदि अग्नि में भी प्रवेश कर जाय तो भी ॥८५॥ उसे न तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है और न तो मुक्ति मिलती है। वह केवल अपना शरीर जलाता है। सबसे बड़ी शुद्धि भाव की शुद्धि ही है, वही सभी कर्मों में प्रमाण है ॥८६॥ मनुष्य जब अपनी पत्नी का आलिङ्गन करता है उस समय उसका भाव दूसरा होता और जब वह अपनी पुत्री का आलिङ्गन करता है उस समय उसका भाव दूसरा होता है। इस तरह अभिन्न वस्तुओं के भी विषय में मन की वृत्ति भिन्न-भिन्न हो जाती है ॥८७॥ सती नारी पुत्र के विषय में दूसरे प्रकार से चिन्तन करती है और पति के बारे में दूसरे प्रकार से चिन्तन करती है। हे महाभाग! भाव स्वभाव के अनुसार ही होता है ॥८८॥ अतः संश्लिष्ट होकर भी पत्नी को भावहीन नहीं बनाना चाहिए। भाव भेद के बिना वह अनेक प्रकार के अन्न तथा रस एवं सुगन्धित पदार्थों का उपभोग न करे। सर्वत्र भाव की भिन्नता ही कारण होती है। अतएव आप अपने चित्त को प्रयत्न पूर्वक शुद्ध बनायें दूसरे प्रकार की बाह्य शुद्धि की क्या आवश्यकता है ?॥८९-९०॥ भाव की शुद्धि हो जाने पर शुद्ध मनुष्य स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है। ज्ञान रूपी स्वच्छ जल से तथा मिट्टी से ही वैराग्य होता है ॥९१॥ अविद्या (अज्ञान) राग, विष्ठा तथा मूत्र का लेप धोने से छूट जाता है। इस तरह यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र कहा गया है ॥९२॥ कदली के सार भाग के समान इस शरीर को असार तथा निःसार समझना चाहिए। प्राज्ञ पुरुष इस प्रकार से शरीर को दोष

पुंसामज्ञान्दोषेण नाना कर्मवशेन च। गर्भस्थस्य मतिर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति॥९५॥
सुमूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्र निपीडनात्। बाह्येन वायुना चास्य मोहसङ्गेन देहिनाम् ॥९६॥
स्पृष्टमात्रस्य घोरेण ज्वरःसमुपजायते। तेन ज्वरेण महता महामोहःप्रजायते॥९७॥
संमूढस्य स्मृतिभ्रंशःशीघ्रं सञ्जायते पुनः। स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेन च॥९८॥
रतिःसञ्जायते तस्य जन्तोस्तत्रैव जन्मनि। रक्तोमूढश्च लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्त्तते॥९९॥
नचात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्। न शृणोति परंश्रेयःस चक्षुरपि नेक्षते ॥१००॥
स मे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदेपदे। सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमनोबुधैरपि॥१०१॥
संसारे क्लिश्यते तेन नरो लोभवशानुगः। गर्भस्मृतेरभावे च शास्त्रमुक्तं शिवेन च ॥१०२॥
तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्ष प्रसाधकम्। येन तस्मिञ्छिवे ज्ञाते धर्मकामार्थसाधने॥१०३॥
न कुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्र महदद्भुतम्। अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः॥१०४॥
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं न सत्कृती। दन्तजन्ममहद्दुःखं लौल्येन वायुना तथा॥१०५॥
बालरोगैश्च विविधैःपीडा बालग्रहैरपि। तृड्वुभुक्षा परीताङ्गःक्वचित्तिष्ठति गच्छति॥१०६॥
विण्मूत्र भक्षणाद्यं च मोहाद्बालःसमाचरेत्। कौमारःकर्णविधेन मातापित्रोश्च ताडनैः ॥१०७॥

युक्त जानकर उसके प्रति उदासीन हो जाते हैं ॥९३॥ ऐसा ही करने वाला संसार को पार करता है, क्योंकि उसकी धारणा दृढ़ होती है। इस प्रकार से जन्म के समय में होने वाले महाकष्ट का वर्णन किया गया॥९४॥ गर्भस्थ जीव को जो ज्ञान होता है वह ज्ञान उत्पन्न होते ही मनुष्यों के अज्ञान दोष के कारण तथा अनेक प्रकार के कर्मों के कारण विनष्ट हो जाता है ॥९५॥ मूर्छाजन्य दुःख के कारण, योनि रूपी यन्त्र से पीड़ित होने के कारण, वाह्य वायु का संस्पर्श होने से तथा सम्बन्ध होने से ॥९६॥ शरीरधारियों के स्पर्श मात्र से शिशु को भयङ्कर ज्वर हो जाता है। उस महान् ज्वर से महामोह उत्पन्न हो जाता है ॥९७॥ अत्यन्त अज्ञानी वने उस जीव की स्मृति शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है। स्मृति का भ्रंश हो जाने के बाद पूर्वकर्म के कारण॥९८॥ उस जीव का उसी जन्म से प्रेम हो जाता है। अनुरक्त तथा मूढ़ बना हुआ यह संसार बुरे कार्यों में लग जाता है ॥९९॥ उसको आत्मा का अथवा दूसरे का या देवता का भी ज्ञान नहीं रहता है। वह परं कल्याण की बातें न तो सुनता है और न तो देखता है ॥१००॥ समतल मार्ग पर चलता हुआ भी वह पग-पग पर गिरता रहता है। बुद्धि रहने पर विद्वानों द्वारा बतलाये जाने पर भी वह ज्ञान को नहीं जानता है ॥१०१॥ उसके कारण लोभ अधीन होकर वह संसार में क्लेश का अनुभव करता है। गर्भ का स्मरण नहीं रहने पर शिव ने शास्त्र का उपदेश ॥१०२॥ उसके दुःख को बतलाने के लिए स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले शास्त्र का शिव ने उपदेश दिया। जिसके द्वारा धर्म, काम और अर्थ के साधनभूत अशिव का ज्ञान हो जाने पर भी इस लोक में अपनी आत्मा का कल्याण मनुष्य नहीं करता है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है, बाल्यावस्था में अत्यन्त कष्ट होता है, क्योंकि उस अवस्था में इन्द्रियाँ तथा बुद्धि व्यक्त नहीं होते हैं ॥१०३-१०४॥ अतएव चाहकर भी वालक न तो कुछ बोल पाता है और न सत्कार्य कर पाता है। दाँतों के निकलने में भी लौल्य वायु के द्वारा वहुत कष्ट होता है ॥१०५॥ वालग्रहों के कारण उत्पन्न अनेक वालरोगों से भी कष्ट होता है। वह भूख तथा प्यास से भी व्याकुल अङ्गों वाला जहाँ-तहाँ जाता रहता है ॥१०६॥ अज्ञान के कारण बालक विष्ठा और मूत्र भी खा लेता है। कुमारावस्था में कर्णवेध

अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखं गुर्वादि शासनात्। प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्च कामरागप्रपीडितः ॥१०८॥
रोगार्दितस्य सततं कुतःसौख्यं हि यौवने। ईर्ष्ययासु महद्दुखं मोहाद्दुखं प्रजायते ॥१०९॥
तत्रस्यात्कुपितस्यैव रागोदुःखाय केवलम् । रात्रौ न विन्दते निद्रांकामाग्निपरिखेदितः ॥११०॥
दिवा वापि कुतःसौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया । व्यवायाश्रितदेहस्य ये पुंसःशुक्रबिन्दवः ॥१११॥
न ते सुखाय मन्तव्याःस्वेदजा इव बिन्दवः। कृमिभिःपीड्यमानस्य कुष्ठिनःपामरस्य च॥११२॥
कण्डूयनाग्नितापेन यत्सुखं स्त्रीषुतद्विदुः । यादृशं मन्यते सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ॥११३॥
तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यमधिकं नैव विद्यते। मर्त्यस्य वेदना सैव यां बिना चित्तनिर्वृतिः ॥११४॥
ततोऽन्योन्यं पुरा प्राप्तमन्ते सैवान्यथा भवेत् ।
तदेवं जरयाग्रस्तमामया व्यपि न प्रियम् ॥११५॥
अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिपीडितम्। यःपश्यन्नविरज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥११६॥
जराभिभूतोऽपिजन्तुःपत्नीपुत्रादि बान्धवैः। अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यै परिभूयते ॥११७॥
न धर्ममर्थं कामं च मोक्षं च जरया युतः। शक्तःसाधयितुं तस्माद्युवायर्मं समाचरेत् ॥११८॥
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते । वातादीनां समूहेन देहोऽयं परिकीर्तितः ॥११९॥
तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः । वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां पञ्जरस्य च ॥१२०॥
रोगैर्नानाविधैर्याति देहिदुःखान्यनेकथा । तानि च स्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम्॥१२१॥

के द्वारा तथा माता-पिता के पीटने से भी और अक्षरों का अभ्यास करते समय गुरुजनों के प्रशासन से बालक को कष्ट होता है । काम और राग के कारण पीड़ित करने वाले प्रमत्त इन्द्रियों की वृत्ति से ॥१०७-१०८॥ सदर रोग से दुःखी मनुष्य को युवावस्था में कौन सा सुख मिलता है ? जवानी में इर्ष्या तथा मोह के कारण महादुःख होता है ॥१०९॥ उस अवस्था में क्रुद्ध सर्प के समान केवल दुःख ही मिलता है । कामाग्नि से खिन्न उसे रात्रि में नींद नहीं आती है ॥११०॥ सदा अर्थोपार्जन (धम कमाने) की चिन्ता से उसे दिन में भी सुख नहीं मिलता है । स्त्रियों के साथ अपने शरीर को थकाने से जो वीर्य के विन्दु निकलते हैं ॥१११॥ वे उसी प्रकार से सुखप्रद नहीं होते हैं जिस तरह पसीने की बूंद सुखद नहीं होती हैं, मूर्ख तथा कोढ़ी को कृमियों के काटते रहने के कारण तथा ॥११२॥ खुजलाने में जैसे थोड़ी देर के लिए सुख मिलता है उसी तरह स्त्रियों से प्राप्त होने वाले सुख क्षणिक होता है । अर्थोपार्जन की चिन्ता से जिस तरह का क्षणिक सुख मिलता है, उसी तरह का सुख स्त्रियों से मिलता है उससे अधिक नहीं । मनुष्य की वेदना वही है जिसके बिना चित्त की शान्ति नहीं होती है ॥११३-११४॥ अतएव पहले परस्पर में प्राप्त सुख अन्त में दुःख में परिणत हो जाता है । इस तरह बुढ़ापे से ग्रस्त रोग से व्याप्त, जरा से पीड़ित अपूर्ववत् अपने प्रिय शरीर को देखकर भी मनुष्य जो उससे विरक्त नहीं होता है, उससे बढ़कर दूसरा कौन जड़ है ?॥११५-११६॥ बुढ़ापे से परेशान भी मनुष्य असमर्थ होने के कारण पत्नी, पुत्र और दुष्ट बान्धवों के द्वारा पीड़ित होता रहता है ॥११७॥ जराग्रस्त मनुष्य चूँकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने में असमर्थ होता है अतएव उसे युवावस्था में ही धर्म कर लेना चाहिए ॥११८॥ वात, कफ और पित्त की विषमता ही रोग कहलाती है । वात आदि का समूह होने के कारण यह शरीर देह कहलाता है ॥११९॥ अतएव इस अपने शरीर को व्याधिमय जानना चाहिए । इसके वात आदि से अभिन्न होने के कारण यह

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः ॥१२२॥
येत्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥१२३॥
यदिवाऽपमृत्युर्नस्याद्विषास्वादादशङ्कितः । न चाति पुरुषस्तस्मादपमृत्योर्बिभेति सः ॥१२४॥
विविधा व्याधयस्तत्र सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा । विषाणि चाभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ॥१२५॥

पीडितं सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् ।
स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं न चान्यथा ॥१२६॥
नौषधं न तपो दानं न माता न च बान्धवाः ।
शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥१२७॥
रसायन तपो जाप्य योगसिद्धैर्महात्मभिः ।
अवान्तरित शान्तिः स्यात्कालमृत्युमवाप्नुयात् ॥१२८॥

जायते योनिकीटेषु मृतः कर्मवशात्पुनः । देहभेदेन यः पश्येद्वियोगं कर्म संक्षयात् ॥१२९॥
मरणं तद्विनिर्दिष्टं न नाशः परमार्थतः । महातमः प्रविष्टस्य छिद्यमानेषु मर्मसु ॥१३०॥
यद्दुःखं मरणेजन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् । हा तात मातः कान्तेति क्रन्दत्येवं सुदुःखितः ॥१३१॥
मण्डूक इव सर्पेण ग्रस्यते मृत्युना जगत् । बान्धवैः स परित्यक्तः प्रियैश्च परिवारितः ॥१३२॥
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यता । खट्वायां परिवृत्तो हि मुह्यते च मुहुर्मुहुः ॥१३३॥

शरीर व्याधि का पिंजड़ा है ॥१२०॥ अनेक प्रकार के रोगों के कारण शरीरधारी दुःखों का अनुभव करता है । और उन सभी दुःखों को अपने ही सहना पड़ता है, इससे भिन्न मैं क्या कहूँ ?॥१२१॥ इस शरीर में एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं । उनमें से एक तो वर्तमान काल में है और शेष (सौ) आने वाले हैं॥१२२॥ जो यहाँ पर आगन्तुक मृत्यु कहे गये हैं उनकी शान्ति तो दवा से हो जाती है । किन्तु जप, होम तथा दान आदि से काल मृत्यु की शान्ति नहीं होती है ॥१२३॥ बिना शङ्का के विष के खा लेने पर अपमृत्यु न हो, इसलिए मनुष्य विष नहीं खाता है, क्योंकि वह अपमृत्यु से डरता है ॥१२४॥ अनेक प्रकार की व्याधियाँ सर्प इत्यादि जीव, अनेक प्रकार के विष और अभिचार कर्म ये सब प्राणियों की मृत्यु के साधन हैं ॥१२५॥ अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित व्यक्ति को स्वयं धन्वन्तरि भी काल आ जाने पर स्वस्थ नहीं कर सकते हैं ॥१२६॥ काल से पीड़ित मनुष्य को औषधि, तपस्या, दान, माता तथा वन्धुजन कोई भी बचा पाने में समर्थ नहीं होता है ॥१२७॥ रसायन, तपस्या, तथा योगसिद्ध महात्मा पुरुष के द्वारा अवान्तरित शान्ति होती है, किन्तु काल आ जाने पर मृत्यु तो होती है ॥१२८॥ मरा हुआ पुरुष अपने कर्मवशात् योनिकीटों में जन्म लेता है । कर्म का क्षय हो जाने पर जो दूसरे शरीर के वियोग का अनुभव करता है ॥१२९॥ उसको मरण कहा गया है वस्तुतः वह नाश नहीं है । मरण में महातमस को प्राप्त जीव के मर्मस्थल विदीर्ण हो जाते हैं ॥१३०॥ जीव के मरने में जो कष्ट होता है उसकी उपमा किसी भी दुःख से नहीं दी जा सकती है । अत्यन्त दुःखी वह हाय-हाय पिताजी, हाय माताजी, हाय कान्त इत्यादि कहकर रोता है ॥१३१॥ जिस तरह साँप मेढक को पकड़ लेता है उसी तरह जगत् को मृत्यु ग्रस्त कर लेता है। अपने प्रियजनो से वह घिरा रहता है और बाँधव जन उसको छोड़ देते हैं ॥१३२॥ मृत्यु के समय वह गर्म-गर्म लम्बी श्वासं लेता है, उसका मुख सूख जाता है । खाट् पर छटपाता हुआ वह बार-बार बेहोश हो जाता

संमूढ:क्षिपतेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ।
खट्वातो वाञ्छते भूमिं भूमेःखट्वां पुनर्महीम् ॥१३४॥
विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः। याचमानश्च सलिलंशुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥१३५॥
चिन्तयानःस्ववित्तानि कस्यैतानि मृते मयि। यमदूतैर्नीयमानःकालपाशेन कर्षितः ॥१३६॥
म्रियते पश्यतामेवं गले घुरघुरायते। जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहं विशेत्क्रमात्॥१३७॥
प्राप्नोत्युत्तरमङ्गं च देहं त्यजति पूर्वकम्। मरणात्प्रार्थनादुःखमधिकं हि विवेकिनाम्॥१३८॥
क्षणिकं मरणे दुःखमनन्तं प्रार्थनाकृतम्। जगतां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः ॥१३९॥
अधिकःकोऽपरस्तस्माद्यो न यास्यति लाघवम् ।
ज्ञातं मयेदमधुना मृत्योर्भवति यद्गुरुः ॥१४०॥
न परं प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ।
आदौ दुःखं तथामध्ये दुःखमन्ते च दारुणम् ॥१४१॥
निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा। वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु॥१४२॥
न नरःशोचयेज्जन्म न विरज्यति तेन वै। अत्याहारान्महद्दुःखमल्पाहारात्तदन्तरम् ॥१४३॥
त्रुटते भोजने कण्ठो भोजने च कुतःसुखम् ।
क्षुधा हि सर्वरोगाणां व्याधिःश्रेष्टतमःस्मृतः ॥१४४॥
सकाम्यौषधलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति। क्षुद्व्याधि वेदना तीव्राः निःशेष बलकृन्तनी॥१४५॥

है ॥१३३॥ व्याकुल बना हुआ वह अपने हाथ पैर को इधर-उधर पटकता है । वह खाट से भूमि पर जाना चाहता है, फिर भूमि से खाट पर जाना चाहता है ॥१३४॥ विवश बना हुआ वह लज्जा छोड़ देता है, मूत्र तथा विष्ठा से लिपटा रहता है । उसके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख जाते हैं तथा वह पानी मांगता रहता है ॥१३५॥ वह अपने धनों के विषय में सोचता है कि मेरे मरने के बाद ये धन किसको मिलेगा । यमदूत उसको कालपाश में बाँधकर घसीटते हैं ॥१३६॥ सबलोगों के सामने वह मारने लगता है उसका गला घरघराने लगता है, जीव जोक के समान एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है ॥१३७॥ वह बाद के शरीर को प्राप्त कर लेता है और पहले के शरीर को छोड़ देता है । विवेकी पुरुषों को मृत्यु की अपेक्षा प्रार्थना करने में अधिक दुःख होता है ॥१३८॥ मृत्यु का क्षणिक दुःख याचना करने के कारण अनन्त हो जाता है । याचना करने के ही कारण भगवान् विष्णु वामन हो गये ॥१३९॥ उन भगवान् विष्णु से बढ़कर कौन है जो याचना करने के कारण लाघव को नहीं प्राप्त किया हो । मैंने इस वात को आप से जाना कि मृत्यु से तृष्णा महान् होती है ॥१४०॥ अतः दूसरे से याचना नहीं करनी चाहिए लाघव (हल्कापन) का कारण तृष्णा है, तृष्णा से आदि और मध्य में तो दुःख होता ही है अन्त में अत्यन्त भयङ्कर कष्ट होता है ॥१४१॥ यह सभी जीवों को स्वाभाविक रूप से होता है, यही दुःख की परम्परा है । ये जो वर्तमान और अतीत कालिक दुःख हैं ॥१४२॥ मनुष्य उसके विषय में न तो सोचता है और न जन्मों से विरक्त होता है । अत्यधिक भोजन करने से महान् दुःख होता है और उसके बाद अल्प आहार करने से भी दुःख होता है॥१४३॥ भोजन करने पर भूखे का कण्ठ फट जाता है, अतएव भोजन करने पर सुख कहाँ मिलता है? सभी रोगों में भूख ही सर्वश्रेष्ठ रोग है ॥१४४॥ भूख, व्याधि तथा तीव्र वेदना ये सभी बल को विनष्ट करने

तयाभिभूतोम्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्नरः। तद्रसेऽपिहि किं सौख्यं जिह्वाग्रपरिवर्तिनि ॥१४६॥
तत्क्षणादर्धकालेन कण्ठं प्राप्य निवर्तते। इति क्षुद्व्याधि तप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम्॥१४७॥
न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः। मृतोपमश्च यः शेते सर्वकार्यविवर्जितः॥१४८॥
तत्रापि च कुतःसौख्यं तमसा चोदितात्मनः। प्रबोधेऽपि कुतःसौख्यं कार्येषूपहतात्मनः ॥१४९॥
कृषिवाणिज्यसेवाद्य गोरक्षादि परिश्रमैः। प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया ॥१५०॥
तृप्ताःकाम्येन बाध्यन्ते निद्रया निशि जन्तवः।
अर्थस्योपार्जने दुःखं दुःखमर्जितरक्षणे ॥१५१॥
नाशे दुःखं व्यये दुःखमर्थस्यैव कुतःसुखम्।
चौरेभ्यःसलिलेभ्योऽग्नेःस्वजनात्पार्थिवादपि ॥१५२॥
भयमर्थवतांनित्यं मृत्योर्देहभृतामिव। खे यथा पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि॥१५३॥
जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्।
विमोहयन्ति सम्पत्सु वारयन्ति विपत्सु च ॥१५४॥
खेदयन्त्यर्जनिकाले कदार्थाःस्युःसुखावहाः। प्रागर्थपतिरुद्विग्नःपश्चात्सर्वार्थ निःस्पृहः ॥१५५॥
तयोरर्थपतिर्दुःखी सुखीमन्ये विरक्तधीः।
हेमन्ते शैशिरं दुःखं ग्रीष्मे तापस्य दारुणम् ॥१५६॥

वाले हैं ॥१४५॥ भूख से व्याकुल व्यक्ति उसी तरह मरता है जैसे दूसरी व्याधि से व्याकुल मनुष्य मरता है। जिह्वा के अग्रभाग में प्रतीत होने वाले भोजन के रस में कौन सा सुख है ?॥१४६॥ वह आधे क्षण तक कण्ठ में जाकर निवृत्त हो जाता है। अतएव भूख रूपी व्याधि से सन्तप्त जीवों के लिए अन्न को औषध के समान कहा गया है ॥१४७॥ सभी कार्यों को त्याग कर जो मरे हुए के समान सोए रहता है, उसको ज्ञानियों को सुखप्रद नहीं समझना चाहिए ॥१४८॥ अन्धकार व्याप्त आत्मा वाले को उसमें (सोने) में भी कहाँ से सुख मिलेगा ? जगने पर भी सुख इसलिए नहीं मिलता है कि उसका मन सदा कार्यो में ही लगा रहता है ॥१४९॥ कृषि, गोपालन, वाणिज्य आदि में होने वाले परिश्रमों से प्रातःकाल मल-मूत्र के द्वारा, दोपहर में भूख तथा प्यास से कष्ट होता है ॥१५०॥ तृप्त मनुष्य काम्य पदार्थों से बाधित होते हैं, और रात्रि में निद्रा से बाधित होते हैं। धन का उपार्जन करने से कष्ट होता है और उपार्जित धन की रक्षा करने में कष्ट होता है ॥१५१॥ अर्थ का नाश हो जाने पर तथा व्यय हो जाने पर भी कष्ट होता है। धनिकों को चोर, पानी, आग, स्वजन तथा राजा ॥१५२॥ इन सबों से सदैव भय बना रहता है। धनिकों के लिए देहधारी मृत्यु के समान ये सब प्रतीत होते हैं। जैसे आकाश में पक्षी तथा पृथिवी पर पशु मांसभक्षी होते हैं ॥१५३॥ जल में जैसे मछलियाँ मांस खा लेती हैं, उसी तरह से धनिक को सर्वत्र धन से भय है। धन सम्पत्तियों में परिश्रम कराते हैं, विपत्ति में रोकने का काम करते हैं ॥१५४॥ वे कमाने के समय खिन्न बनाते हैं अतएव धन से निन्दित सुख प्राप्त होता है। पहले तो धनिक उद्विग्न होता है और बाद में वह सभी अर्थों से निःस्पृह हो जाता है ॥१५५॥ अतएव दोनों में धनिक दुःखी ही रहता है वस्तुतः विरक्त पुरुष ही सुखी होता है। वसन्तु ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में संताप के द्वारा तथा भयङ्कर वर्षा के दिनों में, वायु, आतप तथा वृष्टि के द्वारा मनुष्य दुःखी होता है अतएव किसी भी विशेष में उसको कहाँ से सुख

प्रावृष्यत्यल्पवृष्टिभ्यां कालेऽप्येवं कुतःसुखम् ।
विवाहविस्तरे दुःखं तद्गर्भोद्वहने पुनः ॥१५७॥
सूतिवैषम्यदुःखैश्च दुःखं विष्ठादि कर्मभिः। दन्ताक्षिरोगेपुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम् ॥१५८॥
गावो नष्टाःकृषिर्भग्ना भार्या च प्रपलायिता ।
अमी प्राघूर्णिकाःप्राप्ता भयं मे शंसिनो गृहान् ॥१५९॥
बालापत्या च मे भार्या कःकरिष्यति रन्धनम् ।
विवाहकालेकन्यायाःकीदृशश्चवरो भवेत् ॥१६०॥
एतच्चिन्ताभिभूतानां कुतःसौख्यं कुटुम्बिनाम् ॥१६१॥
कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसःश्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।
अपक्वकुम्भे निहिता इवापःप्रयान्ति देहेन समं विनाशम् ॥१६२॥
राज्येऽपि हि कुतःसौख्यं सन्धिविग्रहचिन्तया ।
पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् ॥१६३॥
स्वजातीयाद्भयं प्रायःसर्वेषामेव देहिनाम्। एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम्॥१६४॥
न प्रविश्य वनं कश्चिन्नृपःख्यातोऽस्तिभूतले ।
निखिलं यस्तिरस्कृत्यसुखं तिष्ठति निर्भयः ॥१६५॥
युद्धे बाहुसहस्त्रं हि पातयामास भूतले। श्रीमतःकार्तवीर्यस्य ऋषिपुत्रःप्रतापवान् ॥१६६॥
ऋषिपुत्रस्य रामस्य रामो दशरथात्मजः। जघान वीर्यमतुलमूर्ध्वगं सुमहात्मनः ॥१६७॥
जरासन्धेन रामस्य तेजसा नाशितं यशः। जरासन्धस्य भीमेन तस्यापि पवनात्मजः॥१६८॥

मिलेगा ? इसी तरह विवाह के विस्तार में दुःख प्राप्त होता है । नारियों को गर्भ का वहन करने में दुःख होता है । प्रसव के विषम हो जाने पर उन्हें कष्ट होता है । विष्टा इत्यादि कर्मों के द्वारा कष्ट होता है । इस तरह पुत्र के दाँत, नेत्र आदि का रोग हो जाने पर नारी कहती है, हाय बड़ा ही कष्ट है, मैं क्या करूँ ?॥१५६-१५८॥ इसी तरह मनुष्य भी अनुभव करता है, कि मेरी गायें नष्ट हो गयीं, कृषि खराब हो गयी, मेरी पत्नी भाग गयी । ये सबके सब एकबाएक हो गये; मुझे तो अपना घर भी भयावना लगता है॥१५९॥ मेरी पत्नी पति से छोटी उम्र की है, भोजन बनाने का काम कौन करेगा ? पुत्री के विवाह के समय उसका पति न जाने कैसा मिलेगा ?॥१६०॥ इस प्रकार की चिन्ताओं के कारण कुटुम्बियों को कहाँ सुख मिलता है ?॥१६१॥ कुटुम्ब की चिन्ता से व्याकुल पुरुष के श्रवण तथा शीलन आदि सभी गुण कच्चे घड़े में रखे गये जल के समान शरीर के साथ ही विनष्ट हो जाते हैं । संधि तथा विग्रह की चिन्ता के कारण राज्य में भी कहाँ से सुख मिलेगा ? जिस राज्य में पुत्र से भी भय बना रहता है, उसमें सुख कहाँ है ॥१६२-१६३॥ जिस तरह एक ही द्रव्य को चाहने वाले कुत्तों को सुख नहीं मिलता है, उसी तरह से एक ही द्रव्य को चाहने वाले स्वजातीयों से भी सुख कहाँ मिल सकता है ?॥१६४॥ पृथिवी पर विख्यात राजा बुढ़ापे में वन में जाकर सम्पूर्ण जगत् का तिरस्कार करके निर्भय होकर सुख पूर्वक राज्य करता है ॥१६५॥ युद्ध में कार्तवीर्य की एक हजार भुजाओं को ऋषि के प्रतापी पुत्र ने काट कर गिरा दिया॥१६६॥ ऋषि के पुत्र महात्मा परशुराम के अतुलनीय ऊर्ध्वगामी पराक्रम को दशरथपुत्र श्रीराम ने

हनुमानपि सूर्येण विक्षिप्तःपतितःक्षितौ । निवातकवचान्सर्व दानवान्बलदर्पितान् ॥१६९॥
हतवानर्जुनः श्रीमान्गोपालैःस विनिर्जितः । सूर्यःप्रतापयुक्तोऽपि मेघैःसंछाद्यते क्वचित्॥१७०॥
क्षिप्यते वायुना मेघो वायोर्वीर्यं नगैर्जितम्। दह्यन्ते वह्निना शैलाःसवह्निःशाम्यते जलैः ॥१७१॥
तज्जलं शोष्यते सूर्यैस्तेसूर्याःसहवारिणा। त्रैलोक्येन समस्ताश्च नश्यन्ति ब्रह्मणोदिने ॥१७२॥
ब्रह्मापि त्रिदशैःसार्धमुपसंह्रियते पुनः । परार्धद्वय कालान्ते शिवेन परमात्मना ॥१७३॥
एवं नैवास्ति संसारे यच्च सर्वोत्तमं बलम् । विहायैकं जगन्नाथं परमात्मानमव्ययम् ॥१७४॥
ज्ञात्वा सातिशयं सर्वं मतिमानं विवर्जयेत्। एवं भूते जगत्यस्मिन्कःसुरःपण्डितोऽपिवा॥१७५॥

नह्यस्ति सर्ववित्कश्चिन्न वा मूर्खोऽपि सर्वतः ।
यावद्यस्तु विजानाति तावत्तत्र सपण्डितः ॥१७६॥

समाधाने तु सर्वत्र प्रभावःसदृशःस्मृतः। वित्तस्यातिशयत्वेन प्रभावःकस्यचित्क्वचित् ॥१७७॥
दानवैर्निर्जिता देवास्तेदेवैर्निर्जिता पुनः। इत्यन्योन्यंश्रितो लोको भाग्यैर्जयपराजयैः ॥१७८॥
एवं वस्त्रयुगं राज्ञां प्रस्थमात्राम्बु भोजनम्। यानं शय्यासनंचैव शेषं दुःखाय केवलम् ॥१७९॥
सप्तमेचापि भवने खट्वामात्र परिग्रहः। उदकुम्भ सहस्रेभ्यःक्लेशायास प्रविस्तरः ॥१८०॥
प्रत्यूषे तूर्यनिर्घोषःसमं पुरनिवासिभिः। राज्येऽभिमानमात्रं हि मामेदं वाद्यते गृहे ॥१८१॥
सर्वमाभरणं भारःसर्वमालेपनं मलम्। सर्वं प्रलपितं गीतं नृत्यमुन्मत चेष्टितम् ॥१८२॥

विनष्ट कर दिया ॥१६७॥ जरासंध ने अपने तेज से बलरामजी के यश को विनष्ट कर दिया और जरासंध के यश को भीम ने विनष्ट कर दिया । भीम के यश को पवनपुत्र हनुमान ने नष्ट कर दिया ॥१६८॥ सूर्य के द्वारा फेंके गये हनुमान भी पृथिवी पर गिर पड़े । बल से दृप्त बने सभी निवात कवच दानवों को अर्जुन ने मार दिया और अर्जुन को कोलभिल्लों ने परास्त कर दिया । प्रताप युक्त सूर्य को कभी-कभी मेघ ढँक लेते हैं ॥१६९-१७०॥ मेघों को वायु तितर-वितर कर देते हैं और वायु के पराक्रम को पर्वत जीत लेते हैं । अग्नि पर्वतों को जला देता है और अग्नि को जल शान्त कर देता है ॥१७१॥ उन जलों को सूर्य सूखा देते हैं और वे द्वादशादित्य भी जल तथा त्रैलोक्य के साथ ब्रह्माजी के दिन में नष्ट हो जाते हैं॥१७२॥ देवताओं के साथ ब्रह्माजी भी दो परार्द्ध के अन्तिम समय में परमात्मा शिव के द्वारा उपसंहृत कर लिए जाते हैं ॥१७३॥ इस तरह संसार में केवल अव्यय जगत् के स्वामी परमात्मा को छोड़कर किसी का भी सर्वोत्तम बल नहीं है ॥१७४॥ इस तरह से सबों को विनाशवान् जानकर अत्यन्त अभिमान को त्याग देना चाहिए। इस संसार में कोई भी देवता अथवा पण्डित सर्वज्ञ नहीं है । अथवा पूर्णरूप से कोई मूर्ख भी नहीं है । जो जितना जानता है, वह उतने में ही पण्डित है ॥१७५-१७६॥ समाधान करने पर सर्वत्र एक समान प्रभाव होता है किसी का कहीं पर प्रभाव धन की अधिकता के कारण है ॥१७७॥ कभी दानव देवताओं को परास्त करते हैं तो कभी देवता दानवों को परास्त करते हैं । इस तरह से संसार परस्पर में एक-दूसरे पर भाग्य तथा जय परायज के द्वारा आश्रित है ॥१७८॥ इस तरह राजागण दो वस्त्र धारण करते हैं और अंजलि भर जल पीते हैं और भोजन करते हैं । उसी तरह शय्या और आसन भी धारण करते हैं शेष सारी वस्तुएँ तो उनको दुःख ही देती हैं ॥१७९॥ सातवें मंजिल पर भी वे केवल एक ही खाट को ग्रहण करते हैं जल के हजारों घड़ों से तो केवल क्लेश का ही विस्तार होता है ॥१८०॥ प्रातःकाल वाद्यों का निर्घोष

इत्येवं राज्यसम्भोगैः कुतः सौख्यं विचारतः। नृपाणां विग्रहेचिन्ता वान्योन्य विजिगीषया॥१८३॥
प्रायेण श्रीमदालेपात्रहुषाद्या महानृपाः। स्वर्गं प्राप्तानि पतिताः कः श्रिया विन्दतेसुखम्॥१८४॥

स्वर्गेऽपि च कुतः सौख्यं दृष्ट्वा दीप्तां परश्रियम्।
उपर्युपरि देवानामन्योन्यातिशयस्थिताम् ॥१८५॥

नरैः पुण्यफलं स्वर्गे मूलच्छेदेन भुज्यते। न चान्यत्क्रियते कर्म सोऽत्र दोषः सुदारुणः॥१८६॥
छिन्नमूल तरुर्यद्वद्दिवसैः पतति क्षितौ। पुण्यस्य संक्षयात्तद्वन्निपतन्ति दिवौकसः॥१८७॥

सुखाभिलाषनिष्ठानां सुखभोगादि सम्प्लवैः।
अकस्मात्पतितं दुःखं कष्टं स्वर्गे दिवौकसाम् ॥१८८॥
इति स्वर्गेऽपिदेवानां नास्ति सौख्यं विचारतः।
क्षयश्चविषयासिद्धौस्वर्गेभोगायकर्मणाम् ॥१८९॥

तत्रदुःखं महत्कष्टं नरकाग्निषु देहिनाम्। घोरैश्च विविधैर्भावैर्वाङ्मनः कायसम्भवैः॥१९०॥
कुठारच्छेदनं तीव्रं वल्कलानां च तक्षणम्। पर्णशाखा फलानां च पातश्चण्डेन वायुना॥१९१॥
उन्मूलनान्नदीभिश्च गजैरन्यश्च देहिभिः। दावाग्नि हिमशोषैश्च दुःखं स्थावर जातिषु॥१९२॥

तद्वद्भुजङ्ग सर्पाणां क्रोधैः दुःखं च दारुणम्।
दुष्टानां घातनं लोके पाशेन च निबन्धनम् ॥१९३॥

पुरवासियों के साथ जो होता है वह केवल राज्य में अभिमान मात्र होता है कि मेरे घर में वाद्यों का घोष हो रहा है ॥१८१॥ सारे आभरण भार के समान है, सारे आलेप मैल के समान है। सारे प्रलाप युक्त गीत तथा नृत्य उन्मादमयी चेष्टा रूप हैं ॥१८२॥ इस तरह से यदि विचार किया जाय तो राज्य तथा राज्य के संभोगों से कहाँ सुख मिलता है ? राजाओं की तो परस्पर में एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा के कारण चिन्ता बनी रहती है ॥१८३॥ प्रायः ऐश्वर्य के मद से लिप्त होने के कारण नहुष आदि बड़े-बड़े राजा स्वर्ग को प्राप्त किए और वहाँ से भ्रष्ट हो गये। ऐश्वर्य से कौन सुख प्राप्त करता है ?॥१८४॥ स्वर्ग में भी एक दूसरे की अधिक श्री जो उत्तरोत्तर देवताओं में अधिक-अधिक होती जाती है, उसको देखकर जीवों को कहाँ सुख मिलता है ॥१८५॥ पुण्य के खत्म हो जाने पर मनुष्य स्वर्ग सुख को नहीं भोग पाते हैं। वहाँ पर जाकर दूसरा कोई कर्म भी नहीं किया जा सकता है, यह स्वर्ग का भयङ्कर दोष है ॥१८६॥ जिस तरह जिसकी जड़ कट गयी हो ऐसा पेड़ कुछ दिनों में पृथिवी पर गिर जाता है, उसी तरह से पुण्यों का क्षय हो जाने पर देवता भी स्वर्ग से गिर पड़ते हैं ॥१८७॥ जो सुख की अभिलाषा करते हैं, सुख तथा भोगों को संमिश्रण से देवताओं को अकस्मात कष्ट प्राप्त हो जाता है ॥१८८॥ इस तरह विचार की दृष्टि से स्वर्ग में भी सुख नहीं है। स्वर्ग में विषयों की सिद्धि (प्राप्ति) नहीं होने पर कर्मों का भोग करने के लिए क्षय भी होता है ॥१८९॥ नरक की अग्नियों में शरीरधारियों को अत्यधिक कष्ट वाणी, मन तथा शरीर जन्य अनेक प्रकार के भावों से होता है ॥१९०॥ कुल्हाड़ी से काटे जाने से छाल को छिले जाने से, भयङ्कर वायु के कारण पत्ते, शाखाएँ तथा फलों के गिराये जाने के कारण ॥१९१॥ नदियों, हाथियों तथा दूसरे शरीरधारियों द्वारा उखाड़ दिए जाने के कारण एवं दावाग्नि तथा हिमपात के कारण स्थावर जाति के जीवों को कष्ट मिलता है ॥१९२॥ उसी तरह भुजंग सर्पों को क्रोध करने से भयङ्कर कष्ट होता है। दुष्टों द्वारा मार दिए

अकस्माज्जन्ममरणं कीटानां च मुहुर्मुहुः । सरीसृप निकायानामेवं दुःखान्यनेकधा ॥१९४॥
पशूनामात्मशमनं दण्ड ताडनमेव च। नासावेधेन सन्त्रासःप्रतोदेन सुताडनम् ॥१९५॥
वेत्रकाष्ठादि निगडैरङ्कुशेनाङ्गबन्धम् । भावेन मनसा क्लेशैर्भिक्षायुवादि पीडनम् ॥१९६॥
आत्मयूथ वियोगैश्च बलान्नयन बन्धने । पशूनां सन्ति कायानामेवं दुःखान्यनेकशः ॥१९७॥
वर्षा शीतातपाद्दुःखं सुकष्टं ग्रहपक्षिणाम् । क्लेशमानाति कायानामेवं दुःखान्यनेकधा ॥१९८॥
गर्भवासे महद्दुखं जन्मदुःखं तथा नृणाम् । सुबाल्यदुःखं चाज्ञानं कौमारे गुरुशासनम् ॥१९९॥
यौवने कामरागाभ्यां दुःखंचैवेर्ष्यया पुनः । कृषिवाणिज्य सेवाद्यैर्गोरक्षादिक कर्मभिः ॥२००॥
वृद्धभावे च जरया व्याधिभिश्च प्रपीडनात् । मरणे च महद्दुखं प्रार्थनायां ततोऽधिकम् ॥२०१॥
राजाग्निजलदाघातचौरशत्रुभयं महत् । अर्थस्यार्जनरक्षायां भयं नाशे व्यये पुनः ॥२०२॥
कार्पण्यं मत्सरोक्ष्म्भो धनाधिक्ये भयंमहत् । अकार्ये सम्प्रवृत्तिश्च दुःखानि धनिनां सदा॥२०३॥
भृत्यवृत्ति कुसीदं च दासत्वं परतन्त्रता। इष्टानिष्टाभियोगश्च संयोगाश्च सहस्रशः ॥२०४॥
दुर्भिक्षं दुर्भगत्वं च मूर्खत्वं च दरिद्रता । अधरोत्तरभागश्च नारकं राजविक्रमम् ॥२०५॥

अन्योन्याभिभवं दुःखमन्योन्यतांभयं महत् ।
अन्योन्याच्च प्रकोपश्च राज्ञोदुःखं महीभृताम् ॥२०६॥

अनित्यतात्रभावानां कृतकाम्यस्य देहिनः। अन्योन्य मर्मभेदाच्च अन्योन्यकरपीडनात्॥२०७॥

जाने तथा पाश में बाँध दिए जाने से ॥१९३॥ अकस्मात् जन्म तथा मृत्यु के कारण कीड़ों को बार-बार दुःख होता है । इस तरह सरीसृप समूहों को अनेक प्रकार से दुःख प्राप्त होते हैं ॥१९४॥ शरीर को बाँध देने, दण्डे से मारने, नाक छेद देने से, कोड़े से मारने से पशुओं को दुःख मिलता है ॥१९५॥ बेत, काष्ठ आदि तथा हथकड़ी तथा अङ्कुश से अङ्ग को बान्धने से भाव तथा मन से क्लेश के द्वारा तथा भिक्षा युवा आदि को पीड़ित करने से ॥१९६॥ अपने यूथ से अलग कर देने से अथवा बलपूर्वक बाँध देने से पशुओं के शरीर को दुःख अनेक प्रकार के होते हैं ॥१९७॥ वर्षा, ठण्डी तथा धूप के कारण पक्षियों को भी अत्यधिक कष्ट होता है । इस तरह क्लेश से युक्त बड़े शरीर वाले जीवों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं॥१९८॥ मनुष्यों को गर्भवास के समय महान् कष्ट होता है, उसी तरह का जन्म के समय दुःख होता है, वाल्यावस्था में अज्ञान जन्य दुःख होता है, कुमारावस्था में गुरुजनों के प्रशासन से कष्ट होता है ॥१९९॥ युवावस्था में काम, राग तथा ईर्ष्या के कारण एवं कृषि, पशुपालन, व्यापार तथा सेवा (नौकरी) आदि के करने से कष्ट होता है ॥२००॥ वृद्धावस्था में बुढ़ापा और रोगों के कारण कष्ट होता है । मृत्यु के समय महान् दुःख होता है तथा याचना करने में तो उससे भी अधिक कष्ट होता है ॥२०१॥ राजा, अग्नि, मेघ के आघात, चोरों तथा शत्रुओं का भय होता है । धन के कमाने में, उसकी रक्षा करने में, धन का नाश हो जाने पर तथा उसका व्यय हो जाने पर भी कष्ट होता है ॥२०२॥ कृपणता, मत्सर (द्वेष) घमण्ड इत्यादि से धन का आधिक्य होने पर भय होता है । इसके अतिरिक्त बुरे कार्यों में प्रवृत्ति का होना इन सबों से धनिकों को भय रहता है ॥२०३॥ नौकरी करना, सदा कमाना, दासता, परतंत्रता हजारों प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिकूल अभियोग तथा संयोग ॥२०४॥ दुर्भिक्ष (अकाल पड़ना) दुर्भाग्य, मूर्खता दरिद्रता, नीचे तथा ऊपर के भाग, नरक प्रद राजाओं के पराक्रम ॥२०५॥ तथा एक दूसरे के अभिभूत करना (दबाना) तथा

लुब्धाश्च पापभेदेन अन्योन्यस्य च भक्षणम् ।
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्माद्भीतं चराचरम् ॥२०८॥
निरयादिमनुष्यान्तं तस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः। स्कन्धात्स्कन्धेनयद्भारं विश्रामं मन्यते यथा॥२०९॥
तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखं दुःखेन शाम्यति। अन्योन्यातिशयोपेताःसर्वदा भोगसम्प्लवाः ॥२१०॥
धर्मक्षयाच्च देवानां दिवि दुःखमवस्थितम्। नानायोनि सहस्त्रेषु सम्भवःपुण्य संक्षयात् ॥२११॥
रोगाश्च विविधाकारा देवलोकेऽपि संस्मृताः ।
यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नमश्विभ्यां संहितं पुनः ॥२१२॥
तेन दोषेण यज्ञस्य शिरोरोगःसदैव हि। मार्तण्ड भानोःकुष्ठं च वरुणस्य जलोदरम्॥२१३॥
पूष्णोदशनवैकल्यं भुजस्तम्भःशचीपतेः । सुमहान्क्षयरोगश्च सोमस्य परिकीर्तितः॥२१४॥
ज्वरश्च सुमहानासीद्दक्षस्यापि प्रजापतेः । कल्पे कल्पे च देवानां महतामपि संक्षयः ॥२१५॥
परार्धद्वय कालान्ते ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता। दक्षस्य दुहितां पौत्रीं ब्रह्मा कामितवान्पुनः ॥२१६॥
क्रोधेन च जयां देवीं योगज्ञां शप्तवान्प्रभुः। कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तदात्मकाः॥२१७॥
दुःखानि च समस्तानि संस्थितानि न संशय ।
विशीर्णजन्ममरणं सर्वाशित्वं हविर्भुजः ॥२१८॥
स्त्रीवधःकामसक्तिश्च सारथ्यं पाण्डवे बले । रुद्रेण त्रिपुरं दग्धं दक्षयज्ञो विनाशितः ॥२१९॥

इसी तरह के बहुत से भय होते हैं । राजाओं का एक दूसरे पर क्रोध करने से होने वाला दुःख ॥२०६॥ काम्य कर्मों को करने वाले मनुष्यों के भावों की संसार में अनित्य एक दूसरे के मर्मस्थल को पीड़ित करने तथा परस्पर में एक दूसरे को कर से पीड़ित करने से भी दुःख होता है ॥२०७॥ लोभी पुरुषों के द्वारा किए जाने वाले अनेक प्रकार के पाप से तथा एक-दूसरे के खाने से, इस तरह के कर्मों से होने वाले दुःखों से सम्पूर्ण चराचर भयभीत रहता है ॥२०८॥ नरक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सबों का ज्ञानी मनुष्य को त्याग देना चाहिए । जैसे एक कन्धे से भार हटाकर दूसरे कन्धे पर रख लेने से विश्राम की प्रतीति होती है॥२०९॥ उसी तरह संसार में यह सम्पूर्ण दुःख दूसरे से शान्त हो जाते हैं । भोगों का परस्पर में सम्मिश्रण परस्पर मे सदैव आतिशय्य से युक्त होता है ॥२१०॥ धर्म का क्षय हो जाने पर स्वर्ग लोक में देवताओं को कष्ट होता है । पुण्य का नाश होने से अनेकों हजार योनियों में जन्म लेना पड़ता है ॥२११॥ देवलोक में भी अनेक प्रकार के रोग बतलाये गये हैं । जब यज्ञ देवता का शिर कट गया था अश्विनी कुमारों ने उसे जोड़ने का काम किया ॥२१२॥ उस दोष के कारण यज्ञ को शिर का रोग सदैव बना रहता है । मार्तण्ड सूर्य कुष्ठ रोग से ग्रस्त हैं, वरुण देवता को जलोदर का रोग है ॥२१३॥ पूषा देवता के दाँत को वीरभद्र ने तोड़ दिया । इन्द्र की भुजाओं को महर्षि च्यवन ने स्तम्भित कर दिया । चन्द्रमा महान् क्षयरोग से ग्रस्त हैं ॥२१४॥ दक्ष प्रजापति महान् ज्वर से ग्रस्त हो गये । प्रत्येक कल्प में बड़े-बड़े देवताओं का भी नाश हो जाता है ॥२१५॥ दो परार्द्ध के अन्त में ब्रह्माजी की भी मृत्यु होती है । दक्ष की पुत्री तथा अपनी पौत्री को ब्रह्मा ने अपनी पत्नी बनाना चाहा ॥२१६॥ ब्रह्माजी ने क्रोध करके योगिनी चण्डिका देवी को शाप दे दिया । जहाँ कहीं भी काम अथवा क्रोध हैं, वहाँ काम तथा क्रोध रूप दोष होते हीं हैं ॥२१७॥ वहाँ पर निश्चित रूप से सभी प्रकार के दुःख स्थित रहते हैं । अग्नि का जन्म तथा मरण समाप्त हो गया किन्तु

स्कन्दस्य जन्म वै शुक्रात्क्रीडादीनां सहस्रशः ।
एवं त्रयोऽपि रागाद्यैर्दोषैर्देवाःसमन्विता ॥२२०॥
एभ्यःपरःप्रभुःशान्तःपरिपूर्णःसमुक्तिदः । एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयेस्थितम् ॥२२१॥
दुःखैराकुलितं ज्ञात्वा निर्वेदं परमं व्रजेत् । निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भवः ॥२२२॥
ज्ञानेन तत्परं ज्ञानं शिवं मुक्तिमवाप्नुयात् । समस्तदुःखनिर्मुक्तःस्वस्थात्मा स सुखी तदा॥
सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ॥२२३॥

मातलिरुवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् । धर्माधर्मविवेको हि सर्वज्ञानसमुद्भवः ॥२२४॥
इन्द्रलोके प्रगन्तव्यं देवराजस्य शासनात् ॥२२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृमातृतीर्थमाहात्म्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

ययातिरुवाच

अस्मद्भाग्यप्रङ्गेन भवतो दर्शनं मम। सञ्जातं शक्रसंवाह एतच्छ्रेयो ममातुलम् ॥१॥

अग्नि सर्वभोगी बन गये ॥२१८॥ पूतना नाम की स्त्री का वध करने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण की काम में आसक्ति तथा पाण्डव (अर्जुन) का सारथि होना पड़ा। रुद्र ने त्रिपुर को जला दिया और दक्ष के यज्ञ को विनष्ट कर दिया। (यह भी पाप ही है) ॥२१९॥ स्कन्द का जन्म शुक्र (वीर्य) से तथा अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से हुआ। इस तरह ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनों देवता पाप से युक्त हैं ॥२२०॥ इन सबों से श्रेष्ठ प्रभु परमात्मा, शवन्त, परिपूर्ण और मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। इस तरह सम्पूर्ण जगत् परस्पर में एक दूसरे से अतिशयता से युक्त हैं ॥२२१॥ और दुःखों से व्याप्त है, इस बात को जानकर संसार से उदासीन हो जाना चाहिए। संसार से निर्वेद हो जाने पर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वैराग्य से ज्ञान उत्पन्न होता है ॥२२२॥ ज्ञानसे कल्याणकारी परमज्ञान (उपासना रूप ज्ञान) उत्पन्न होता है और उससे मुक्ति हो जाती है। उस समय आत्मा सभी दुःखों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥२२३॥ इस अवस्था में वह सर्वज्ञ तथा परिपूर्ण हो जाता है और मुक्त कहलाता है। **मातलि ने कहा—** इस तरह से आपने जो पूछा था उन सारी बातों को मैंने बतला दिया ॥२२४॥ धर्म तथा अधर्म का विवेक (भेद पूर्वक ज्ञान) से ही सभी ज्ञानों की उत्पत्ति होती है। अतएव देवराज के कहने से आपको इन्द्रलोक में चलना चाहिए ॥२२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ महात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६६॥

मनुष्य कृत पाप कर्मों के परिणाम का वर्णन

ययाति ने कहा— हमारे सौभाग्य के कारण मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ। हे इन्द्र के सारथि !

मानवा मर्त्यलोके च पापं कुर्वन्ति दारुणम्। तेषां कर्मविपाकं च मातले वदसाम्प्रतम् ॥२॥

मातलिरुवाच

श्रूयतामभिधास्यामि पापाचारस्य लक्षणम्। श्रुते सति महज्ज्ञानमत्र लोके प्रजायते ॥३॥
वेदनिन्दां प्रकुर्वन्ति ब्रह्माचारस्य कुत्सनम्। महापातकमेवापि ज्ञातव्यं ज्ञानपण्डितैः ॥४॥
साधूनामपि सर्वेषां यःपीडां हि समाचरेत्। महापातकमेवापि प्रायश्चित्तेन हि व्रजेत् ॥५॥
कुलाचारं परित्यज्य अन्याचारं व्रजन्ति च। एतच्चपतकं घोरं कथितं कृत्यवेदिभिः ॥६॥
मातापित्रोश्च या निन्दा ताडनं भगिनीषु च। पितृष्वसुर्निन्दनं च तदेवपातकं ध्रुवम् ॥७॥

सम्प्राप्ते श्राद्धकालेऽपि पञ्चक्रोशान्तरेस्थितम् ।
जामातरं परित्यज्य तथा च दुहितुःसुतम् ॥८॥

स्वसारं चैव स्वस्रीयं परित्यज्य प्रवर्तते। कामात्क्रोधाद्भयाद्वापि अन्यं भोजयते यदा ॥९॥
पितरो नैव भुञ्जन्ति देवाश्चैव न भुञ्जते। एतच्च पातकं तस्य पितृघात समं कृतम् ॥१०॥

दानकालेऽपि सम्प्राते आगते ब्राह्मणे किल ।
भूरिदानं परित्यज्य कतिभ्यो हि प्रदीयते ॥११॥

एकस्मै दीयते दानमन्येभ्योऽपि न दीयते। एतच्च पातकं घोरं दानभ्रंशङ्करं स्मृतम् ॥१२॥
यजमानगृहे सेवा संस्थितान्ब्राह्मणान्निजान्। परित्यज्य हि यद्दानं न दानस्य च लक्षणम् ॥१३॥
समाश्रितं हि यं विप्रं धर्माचार समन्वितम्। सर्वोपायैःसुपुष्येत्तं सुदानैर्बहुभिर्नृप ॥१४॥
तं समभ्यर्च्य विद्वांसं प्राप्तविप्रं सदार्हयेत्। तं हि त्यक्त्वा ददेद्दानमन्यस्मै ब्राह्मणायैव ॥१५॥

यह मेरा अतुलनीय कल्याण है ॥१॥ मर्त्यलोक में मनुष्य भयङ्कर पाप करते हैं। आप मुझे उन पाप कर्मों का परिणाम बतलाइये ॥२॥ **मातलि ने कहा—** आप सुनें, मैं आपको पापाचरण का लक्षण बतलाता हूँ। उसको सुन लेने से इस लोक में महाज्ञान उत्पन्न होता है ॥३॥ जो वेद की निन्दा करता है तथा ब्रह्माचार को कोसता है, उसको विद्वानों को महापाप समझना चाहिए ॥४॥ जो किसी साधु (सज्जन) पुरुष को दुःख देता है तो उसको महापाप लगता है उसको उसका प्रायश्चित करना चाहिए ॥५॥ जो लोग अपने वंश के आचार को त्याग कर दूसरे के आचरण को अपना लेते हैं, तो इसको कर्मों के जानकारों ने घोर पाप कहा है ॥६॥ जो अपने माता-पिता की निन्दा करता है, बहनों को मारता है, पिता के बहन की निन्दा करता है, ये सब पाप हैं ॥७॥ श्राद्ध के समय कोश भर के भीतर रहने वाले, दामाद, नाती, बहन, बहन के लड़का को छोड़कर जो श्राद्ध कर्ता काम, क्रोध या भय के कारण दूसरे ब्राह्मण को खिलाता है ॥८-९॥ उसके श्राद्ध में न तो पितृगण खाते हैं और न देवता खाते हैं। उससे श्राद्ध करने वाले को पितृघात के समान पाप होता है ॥१०॥ दान के समय यदि कोई ब्राह्मण आ जाय उस समय भूरिदान को छोड़ कर दूसरे ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है, उसमें किसी एक को जितना दान दिया जाय और दूसरों को न दिया जाय तो इससे भयङ्कर पाप होता है और उससे दान भ्रंश हो जाता है ॥११-१२॥ यजमान के घर में रहने वाले अपने ब्राह्मणों की सेवा करना छोड़कर जो दान दिया जाता है, वह दान नहीं है ॥१३॥ धर्माचरण करने वाले अपने घर काम करने वाले ब्राह्मण का हर प्रकार से पालन करना चाहिए और दान देना चाहिए॥१४॥ हे राजन् ! विद्वान् को चाहिए कि वह मूर्ख को महत्त्व न दे और विप्र का अच्छी तरह से

दत्तं हुतं भवेत्तस्य निष्फलं नात्र संशयः। ब्राह्मणःक्षत्रियो वैश्यःशूद्रश्चापि चतुर्थकः ॥१६॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु संश्रितं पूजयेद् द्विजम्। मूर्खं वापि हि विद्वांसं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१७॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं तस्य प्रजायते । कस्माद्धिकारणाद्राजञ्छक्यं प्राप्य न कारयेत् ॥१८॥
अन्यो विप्रःसमायातस्तत्कालं श्राद्धकर्मणि। उभौ तौ पूजयेत्तत्र भोजनाच्छादनैस्ततः ॥१९॥
ताम्बूलदक्षिणाभिश्च पितरस्य तस्य हर्षिताः। श्राद्धभुक्ताय दातव्यं सदा दानं च दक्षिणा ॥२०॥
न ददेच्छाद्धकर्ता यो गोहत्यादि समं भवेत् ।
द्वावेतौ पूजयेत्तस्माच्छ्रद्धया नृपसत्तम ॥२१॥
निर्धनत्व प्रभावाद्वै तमेकं हि प्रपूजयेत्। व्यतीपातेपिऽसम्प्राप्ते वैधृतौ च नृपोत्तम ॥२२॥
अमावास्यां तथा राजन्क्षयाहेऽपरपक्षके। श्राद्धमेवं प्रकर्तव्यं ब्राह्मणादि त्रिवर्णकैः ॥२३॥
यज्ञे तथा महाराज ऋत्विजश्च प्रकारयेत्। तथा विप्राःप्रकर्तव्याःश्राद्धदानाय सर्वदा ॥२४॥
अविज्ञातःप्रकर्तव्यो ब्राह्मणो नैव जानता । यस्यापि ज्ञायते वंशःकुलं त्रिपुरुषं तथा ॥२५॥
आचाराश्च तथा राजन् तं विप्रं सन्निमन्त्रयेत् ।
कुलं न ज्ञायते यस्य आचारेण विचारयेत् ॥२६॥
श्राद्धदाने प्रकर्त्तव्ये विशुद्धो मूर्ख एव हि। अविज्ञातो भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२७॥
श्राद्धदानं प्रकर्त्तव्यं तस्माद्विप्रं निमन्त्रयेत्। आतिथ्यं तु प्रकर्तव्यमपूर्वं नृपसत्तम ॥२८॥
अन्यथा कुरुते पापी स याति नरकं धुव्रम्। तस्माद्विप्रःप्रकर्तव्यो दाने श्राद्धे च पर्वसु॥२९॥

पोषण सभी पुण्यों तथा अनेक प्रकार के दानों से करे ॥१५॥ उस विद्वान् की पूजा करके आये हुए विप्र की पूजा करे । यदि उसको छोड़कर दूसरे ब्राह्मण को वह दान देता है तो उसके द्वारा किए गये ॥१६॥ दान, होम इत्यादि सब निष्फल हो जाते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को चाहिए कि सभी पुण्य कालों के समय अपने अश्रित विप्र की पूजा करे । वह ब्राह्मण चाहे मूर्ख हो या विद्वान् हो उसकी पूजा का फल आप सुनें ॥१७-१८॥ उसकी पूजा करने वाले को अश्वमेघ यज्ञ करने का फल होता है । हे राजन्! किसी कारण से शक्य प्राप्य न करे ॥१९॥ यदि श्राद्ध करने के समय दूसरा ब्राह्मण तत्काल आ जाय तो उन दोनों (आये हुए तथा निमन्त्रित) ब्राह्मणों की पूजा भोजन तथा वस्त्र से करनी चाहिए ॥२०॥ उसके दिए गये ताम्बूल और दक्षिणा से पितृगण प्रसन्न होते हैं । श्राद्ध में भोजन को दान और दक्षिणा अवश्य देनी चाहिए ॥२१॥ जो श्राद्ध कर्ता दान-दक्षिणा नहीं देता है उसकी गोहत्या के समान पाप लगता है । अतएव हे नृपश्रेष्ठ ! इन दोनों की पूजा श्रद्धा पूर्वक करनी चाहिए ॥२२॥ यदि श्राद्धकर्ता निर्धन हो तो दोनों में एक की पूजा करनी चाहिए । व्यतीपात योग, वैधृतियोग, अमावस्या तिथि तथा पक्ष की क्षयाह्न तिथि को ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को इसी प्रकार से श्राद्ध करना चाहिए ॥२३-२४॥ हे महाराज ! यज्ञ में ऋत्विजों से श्राद्ध करायें । और श्राद्ध का दान देने के लिए विप्रों को निश्चित कर देना चाहिए ॥२५॥ ब्राह्मण को नहीं जानने वाले यजमान को अविज्ञात ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए । हे राजन्! जिसके तीन पीढ़ी के वंश तथा आचार का ज्ञान हो उसी ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित करें । जिस ब्राह्मण के वंश का ज्ञान न हो उसके आचार को देखकर विचार करना चाहिए ॥२६-२७॥ श्राद्ध के दान के समय अविज्ञात विशुद्ध मूर्ख ही वेद वेदान्त का विद्वान् हो जाता है ॥२८॥ अतएव श्राद्ध का दान करना चाहिए

आदौ परीक्षयेद्विप्रं श्राद्धेदाने प्रकारयेत्। नाश्नन्ति तस्य वै गेहे पितरोविप्रवर्जिताः ॥३०॥
शापं दत्त्वा ततो यान्ति श्राद्धाद्विप्रविवर्जितात् ।
महापापीभवेत्सोऽपिब्रह्महा स च कथ्यते ॥३१॥
पैत्राचारं परित्यज्य यो वर्तेत नरोत्तम। महापापी स विज्ञेयःसर्वधर्म बहिष्कृतः ॥३२॥
ये त्यजन्ति शिवाचारं वैष्णवं भोगदायकम्। निन्दन्ति ब्राह्मणं धर्म विज्ञेयाःपापवर्द्धनाः ॥३३॥
ये त्यजन्ति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषन्ति च ।
हरिं निन्दन्ति ये पापा ब्रह्मद्वेषकराःसदा ॥३४॥
आचारनिन्दका ये ते महापातक कृत्तमाः। आद्यं पूज्यं परं ज्ञानं पुण्यं भागवतं तथा ॥३५॥
वैष्णवं हरिवंशं वा मत्स्यं वा कूर्ममेव च। पाद्मं वा ये पूजयन्ति तेषां श्रेयो वदाम्यहम् ॥३६॥
प्रत्यक्षं तेन वै देवःपूजितो मधुसूदनः। तस्मात्प्रपूजयेज्ज्ञानं वैष्णवं विष्णुवल्लभम्॥३७॥
देवस्थाने च नित्यं वै वैष्णवं पुस्तकं नृप। तस्मिन्प्रपूजिते विप्र पूजितःकमलापतिः॥३८॥
असम्पूज्य हरेर्ज्ञानं ये गायन्ति लिखन्ति च। अज्ञाय तत्प्रयच्छन्ति शृणुवन्त्युच्चारयन्ति च ॥३९॥
विक्रीडन्ति च लोभेन कुज्ञान नियमेन च। असंस्कृत प्रदेशेषु यथेष्टं स्थापयन्ति च ॥४०॥
हरिज्ञानं यथाक्षेमं प्रत्यक्षाच्च प्रकाशयेत्। अधीते च समर्थश्च यःप्रमादं करोति च ॥४१॥
अशुचिश्चाशुचौ स्थाने यःप्रवक्ति शृणोति च ।
इति सर्वं समासेन ज्ञाननिन्दासमं स्मृतम् ॥४२॥

उसके लिए ब्राह्मण को निमन्त्रित करना चाहिए। हे नृपश्रेष्ठ ! (वेन) उसका अपूर्व आतिथ्य करना चाहिए॥२९॥ इसके विपरीत जो करता है वह पापी निश्चित रूप से नरक में जाता है। अतएव श्राद्ध, दान तथा पर्वों के अवसर पर विप्र को निमन्त्रित करना चाहिए ॥३०॥ पहले ब्राह्मण की परीक्षा ले ले और उसके बाद उस ब्राह्मण से श्राद्ध कराये। विप्रों के विना श्राद्ध करने वाले के घर में पितृगण भोजन नहीं करते हैं। यदि वह ब्राह्मण के सदृश हो तो वह महापापी होता है ॥३१-३२॥ पितरों के आचार को त्यागकर जो व्यवहार करता है, उसको महापापी, तथा सभी कर्मों के लिए बहिष्कृत (अयोग्य) समझना चाहिए ॥३३॥ जो लोग मङ्गलमय आचरण करने वाले वैष्णव की निन्दा करते हैं, तथा ब्राह्मण धर्म की निन्दा करते हैं, उनको पाप को बढ़ाने वाला जानना चाहिए ॥३४॥ जो शिव के आचार की निन्दा करते हैं तथा शिव के भक्तों की निन्दा करते हैं, तथा श्रीहरि की निन्दा करते हैं वे पापी सदा ब्रह्म से द्वेष करने वाले होते हैं ॥३५॥ आचार की निन्दा करने वाले सबसे बड़े पापी हैं। सर्व प्रथम श्राद्ध में परमज्ञान की पूजा करनी चाहिए। पवित्र भागवत पुराण, विष्णुपुराण, हरिवंश पुराण, मत्स्य, कूर्म अथवा पद्मपुराण की जो पूजा करते हैं उनको प्राप्त होने वाले पुण्य को मैं बतला रहा हूँ ॥३६-३७॥ ऐसा करने वाले को प्रत्यक्ष भगवान मधुसूदन की पूजा का फल मिलता है। अतएव भगवद् भक्त ज्ञानी वैष्णव की पूजा करनी चाहिए ॥३८॥ जो देवता के स्थान पर विष्णु पुराण को रखकर उसकी पूजा करते हैं उनको श्रीभगवान् की पूजा का फल मिलता है ॥३९॥ श्रीहरि की पूजा किए बिना जो गाते और लिखते हैं उसको जाने बिना दान देते हैं तथा उसका श्रवण करते हैं तथा उच्चारण करते हैं ॥४०॥ लोभ के कारण अथवा कुज्ञान के कारण बेंच देते हैं। अथवा अपनी इच्छा के अनुसार संस्कार हीन स्थान में उसको प्रतिष्ठित करते हैं ॥४१॥ श्रीहरि के ज्ञान को अपने कल्याण

गुरुपूजामकृत्वैव यः शास्त्रं श्रोतुमिच्छति । न करोति च शुश्रूषामाज्ञाभङ्गं च भावतः ॥४३॥
नाभिनन्दति तद्वाक्यमुत्तरं सम्प्रयच्छति । गुरुकर्मणि साध्ये च तदुपेक्षां करोति च ॥४४॥
गुरुमार्तमशक्तं च विदेशं प्रथितं तथा । अरिभिःपरिभूतं वा यःसन्त्यजति पापकृत् ॥४५॥
पठमानं पुराणं तु तस्य पापं वदाम्यहम् । कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४६॥
पठमानं गुरुं यो हि उपेक्षयति पापधीः । तस्यापि पातकं घोरं चिरं नरकदायकम् ॥४७॥
भार्या पुत्रेषु मित्रेषु यश्चावज्ञां करोति च । इत्येत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं महत् ॥४८॥
ब्रह्महा स्वर्णस्तेयी च सुरापी गुरुतल्पगः । महापातकिनश्चैते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥४९॥

क्रोधाद् द्वेषाद्भयाल्लोभाद् ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
मर्मातिकृन्तको यश्च ब्रह्मघ्नःस प्रकीर्तितः ॥५०॥

ब्राह्मणं यःसमाहूय याचमानमकिञ्चनम् । पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्स च वै ब्रह्महा नृप ॥५१॥
यस्तु विद्याभिमानेन निस्तेजयति वै द्विजम् । उदासीनं सभामन्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥५२॥
मिथ्यागुणैरथात्मानं नयत्युत्कर्षतां पुनः । गुरुं विरोधयेद्यस्तु स च वै ब्रह्महा स्मृतः ॥५३॥
क्षुत्तृषातप्तदेहानामन्नभोजनमिच्छताम् । यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥५४॥
पिशुनःसर्वलोकानां रन्ध्रान्वेषणतत्परः । उद्वेजनकरःक्रूरः स च वै ब्रह्महास्मृतः ॥५५॥
देवद्विजगवांभूमिं पूर्वदत्तां हरेत्तु यः । प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥५६॥

के अनुसार प्रत्यक्षतः प्रकाशित करे और अध्ययन करे, समर्थ व्यक्ति यदि प्रमण्ड करता है स्वयम् अपवित्र रहकर अपवित्र स्थान में उस पुराण का प्रवचन और श्रवण करता है ये सारी संक्षेप में ज्ञान की निन्दा करने के समान है ॥४२-४३॥ जो व्यक्ति गुरु (आचार्य) की पूजा किए बिना ही शास्त्र का श्रवण करना चाहता है और वह आचार्य की भक्तिभाव से सेवा नहीं करता है तथा उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता है ॥४४॥ उनकी बातों का अभिनन्दन न करके उन्हें (गुरु को) उत्तर देता है । गुरु के कार्यों के साध्य होने पर भी उसकी उपेक्षा कर देता है ॥४५॥ गुरु के आर्त, असमर्थ तथा विदेश जाने पर अथवा शत्रुओं के द्वारा गुरु के पीड़ित किए जाने पर जो उनको छोड़ देता है वह पापी होता है ॥४६॥ यदि वह पुराण गुरु से नहीं पढ़ता है तो उसको जो पाप लगता है उसे मैं बतला रहा हूँ । वह कुम्भीपाक नामक नरक में चौदह इन्द्रों के कालपर्यन्त निवास करता है ॥४७॥ पढ़ते हुए गुरु की जो उपेक्षा कर देता है उस पापी को दीर्घकाल तक नरक प्रदान करने वाला पाप लगता है ॥४८॥ जो पत्नी, पुत्र तथा मित्र का अपमान करता है उसको भी गुरु की निन्दा के समान महान् पाप लगता है ॥४९॥ ब्राह्मण को मारने वाला, सोना चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, गुरु की शय्या पर सोने वाला तथा इन सबों के साथ सम्बन्ध रखने वाला ये पाँचों पातकी हैं ॥५०॥ जो क्रोध, लोभ, द्वेष, भय, विशेष रूप से ब्राह्मण को मारता है, उसको ब्रह्मघ्न कहते हैं ॥५१॥ जो पहले ब्राह्मण को बुलाता है और उसके द्वारा याचना किए जाने पर उसे देने से इनकार कर जाता है, वह ब्रह्मघाती है ॥५२॥ जो अपनी विद्या के अभिमान में उदासीन ब्राह्मण को सभा में लज्जित कर देता है, वह ब्रह्मघाती कहा गया है ॥५३॥ जो मिथ्या गुणों के द्वारा अपने को उत्कृष्ट बनाकर गुरु का विरोध करता है वह ब्रह्मघाती कहा गया है ॥५४॥ भूख तथा प्यास से जिसका शरीर संतप्त है तथा जो अन्न भोजन प्राप्त करना चाहता है, उसके अन्न प्राप्त करने में जो विघ्न करता है, वह ब्रह्मघाती कहा गया

द्विजवित्तापहरणं न्यासेन समुपार्जितम्। ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं तस्यपातकमुत्तमम्॥५७॥
अग्निहोत्रं परित्यज्य पञ्चयज्ञादिकर्म च। मातापित्रोर्गुरूणां च कूटसाक्ष्यं च यश्चरेत् ॥५८॥
अप्रियं शिवभक्तानामभक्ष्याणां च भक्षणम्। वने निरपराधानां प्राणिनां च प्रमारणम् ॥५९॥
गवां गोष्ठे वने चाग्नेःपुरे ग्रामे च दीपनम् ।
इति पापानि घोराणि सुरापानसमानि तु ॥६०॥
दीनसर्वस्वहरणं परस्त्री गजवाजिनाम् । गो भूरजत वस्त्राणामौषधीनां रसस्य च ॥६१॥
चन्दनागुरुकर्पूर कस्तूरीपट्टवाससाम् । परन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्॥६२॥
कन्याया वरयोग्याया अदानं सदृशे वरे । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥६३॥
कुमारी साहसं घोरमन्त्यजस्त्री निषेवणम् । सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥६४॥
महापातक तुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यूनमुपपातकम्॥६५॥
द्विजायार्थं प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः । तत्र विस्मरते विप्रस्तुल्यं तदुपपातकम् ॥६६॥
द्विजद्रव्यापहरणं मर्यादाया व्यतिक्रमम्। अतिमानातिकोपश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता ॥६७॥
अन्यत्र विषयासक्तिः कार्पण्यं शाठ्यमत्सरम् ।
परदाराभिगमनं साध्वी कन्याभिदूषणम् ॥६८॥
परिवित्तिःपरिवेत्ता यया च परिविद्यते। तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥६९॥

है ॥५५॥ जो चुगुलखोर तथा सभी लोगों का छिद्रान्वेषण करता रहता है, उद्विग्न करने वाला एवं क्रूर होता है वह ब्रह्मघाती कहा गया है ॥५६॥ देवता, द्विज तथा गौ की भूमि का जो कालतिशय्या के कारण विनष्ट हो गयी है, उसका हरण करता है उसको ब्रह्मघाती कहा गया है ॥५७॥ न्यास, धरोहर के रूप में प्राप्त ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण कर लेना ब्रह्महत्या के समान सर्वाधिक पापकारी होता है ॥५८॥ जो अग्निहोत्र का परित्याग करके तथा पञ्चयज्ञीय कर्म को त्याग देता है । माता-पिता का जो कूटसाक्षी होता है॥५९॥ शिव के भक्तों का अप्रिय कार्य करना अभक्ष्य भक्षण करना, वन में जाकर निरपराध जीवों को मारना ॥६०॥ गायों की गोशाला में वन में, नगर में तथा ग्राम में आग लगाना ये सभी घोर पाप मदिरा पीने के समान है ॥६१॥ दीन व्यक्ति के सर्वस्व का हरण कर लेना, दूसरे की स्त्री, हाथी तथा घोड़ों को चुराना, गौ, पृथिवी, चाँदी, वस्त्र, औषधि, रसों ॥६२॥ चन्दन, अगुरु, कर्पूर, कस्तूरी, इत्र को चुराना, दूसरे के धरोहर को हड़प लेना ये सबके सब सोना चुराने के समान पापमय हैं ॥६३॥ वर के योग्य कन्या को उचित वर को नहीं प्रदान करना, पुत्र तथा मित्र के पत्नी के साथ सहगमन करना, बहन के साथ सहगमन करना ॥६४॥ कुमारी कन्या के साथ बलात्कार करना तथा शूद्र की स्त्री को अपनी स्त्री बनाना, सवर्णा के साथ सहगमन करना ये सबके सब गुरुतल्प के समान कहे गये हैं ॥६५॥ जो पाप महापातक के समान बतलाये गये हैं, उनकी पातक संज्ञा है, और उनसे जो कम पाप होते हैं उन्हें उपपातक कहते हैं॥६६॥ जो ब्राह्मण को देने के लिए प्रतिज्ञा करके उसे नहीं देता है, और ब्राह्मण भी उसे भूल जाता है तो वह इन दोनों को एक समान उपपातक लगता है ॥६७॥ ब्राह्मण के द्रव्य को चुराना, मर्यादा का अतिक्रमण करना, अत्यधिक घमण्ड करना, अत्यन्त क्रोध करना, दांभिकता तथा कृतघ्नता ॥६८॥ दूसरे विषयों में आसक्ति, कृपणता, शठता, द्वेष, दूसरे की स्त्री के साथ सहगमन, साध्वी कन्या को दूषित

पुत्रमित्र कलत्राणामभावे स्वामिनस्तथा। भार्याणां च परित्यागःसाधूनां च तपस्विनाम्॥७०॥
गवां क्षत्रिय वैश्यानां स्त्रीशूद्राणां च घातनम् ।
शिवायतन वृक्षाणां पुष्पारामविनाशनम् ॥७१॥
यःपीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि । तद्भृत्यपरिवर्गस्य पशुधान्य वनस्य च॥७२॥
वस्त्र धान्य पशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम्। यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयः ॥७३॥
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतानां च सुकर्मणाम्। स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभगात्यन्तजीविताः ॥७४॥
स्वधर्मं विग्रूयाद्यस्तु अधर्मं वर्णते नरः। परदोषप्रवादी च परच्छिद्रावलोककः ॥७५॥
परद्रव्याभिलाषी च परदारावलोककः। एते गोघ्नसमानाश्च ज्ञातव्या नृपनन्दन॥७६॥
यःकर्ता सर्वशास्त्राणां गोहर्तागोश्च विक्रयी। निर्दयोऽतीवभृत्येषु पशूनां दमकश्चयः॥७७॥
मिथ्या प्रवदते वाचमाकर्णयति यः परैः। स्वामिद्रोही गुरुद्रोही मायावी चपलःशठः ॥७८॥
यो भार्या पुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ।
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाऽश्नाति बुभुक्षितान् ॥७९॥
यस्तु मृष्टं समश्नाति नो वाप्यन्नं ददाति च। पृथक्पाकी सविज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥८०॥
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः। प्रवज्यागमितायैश्च संयुक्ता ये च मद्यपैः॥८१॥
ये चापि क्षयरोगार्ता गांपिपासा क्षुधातुराम्। न पालयन्ति यत्नेन ते गोघ्ना नरकाःस्मृताः ॥८२॥

करना॥६९॥ परिवित्ति (जिसका विवाह अपनी बड़ी बहन से पहले हो जाता है) परिवेत्ता (जिसका विवाह अपने बड़े भाई से पहले हो जाता है) का जिसके द्वारा विवाह किया जाता है, उन दोनों के द्वारा कन्या का दान किया जाना, उन दोनों के द्वारा यज्ञ कराया जाना ॥७०॥ पुत्रों तथा मित्रों के न रहने पर उनकी पत्नियों का त्याग कर देना, साधुओं, तपस्वियों, गायों, क्षत्रियों, वैश्यों, स्त्रियों और शूद्रों को मारना शिवमन्दिर के वृक्षों तथा पवित्र उद्यानों को विनष्ट करना भी पाप है ॥७१-७२॥ जो आश्रम में रहने वालों के भृत्यों के परिवार के, आश्रम के पशुओं, धान्यों तथा वन को थोड़ा सा भी पिड़ित करता है ॥७३॥ कर्ष, धान्य तथा पशुओं की चोरी, अयाज्य याजन, पुत्र, उद्यान, सरोवर, पत्नी तथा सन्तान को बेंचना ॥७४॥ तीर्थ यात्रा, उपवास, तथा व्रत आदि सुन्दर कर्मो को बेचना, स्त्री के धन से अपना जीवन चलाना, अपनी स्त्री से व्यभिचार करवाकर उससे जीविका चलाना ॥७५॥ तथा अपने को जो बेचता है तथा अधर्म का वर्णन करता है, दूसरे के दोषों को जो कहता है, जो दूसरे की कमी को देखता रहता है ॥७६॥ दूसरे के द्रव्य को प्राप्त करने की इच्छा करने वाला तथा दूसरे की पत्नी को चाहने वाला, हे नृपनंदन (वेन) ! इन सवों को गो हत्यारे के समान जानना चाहिए ॥७७॥ सभी शास्त्रों को बनाने वाला यदि गौओं को चुराता है तथा गौओं को बेंचता है, जो अपने भृत्यों के प्रति निर्दय होता है तथा जो पशुओं का दमन करता है ॥७८॥ झूठ बोलने वाला तथा जो दूसरे की बातों को सुनकर विश्वास करता है (कान का कच्चा) अपने स्वामी तथा गुरु से द्रोह करने वाला, मायावी, चपल, शठ ॥७९॥ जो भूखे पत्नी पुत्र, बालक, वृद्ध, कृश, आतुर, भृत्य, अतिथि तथा बांधवों को छोड़कर अपने खा लेता है ॥८०॥ जो अच्छी वस्तुएँ खा लेते हैं, और चाहने वाले को नहीं देते हैं, जो अपना भोजन अकेले बनाता है, ऐसे ब्रह्मवादियों को भी निन्दित जानना चाहिए ॥८१॥ जो अजितेन्द्रिय नियम करके स्वयं उसका त्याग कर देते हैं, संन्यासी होकर भी मद्यपों के

सर्वपापरता ये च चतुष्पात्क्षेत्रभेदकाः । साधून्विप्रान्गुरूंश्चैव यश्चागां हि प्रताडयेत् ॥८३॥
ये ताडयन्त्यदोषां च नारीं साधु पदे स्थिताम् ।
आलस्यबद्ध सर्वाङ्गो यःस्वपिति मुहुर्मुहुः ॥८४॥
दुर्बलांश्च न पुष्णन्ति नष्टान्नान्वेषयन्ति च । पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च ॥८५॥
सर्वपापरता ये च संयुक्ता ये च भुञ्जते । भग्नाङ्गीं क्षतरोगार्तां गोरूपां च क्षुधातुराम् ॥८६॥
न पालयन्ति यत्नेन ते जना नारकाःस्मृताः ।
वृषाणां वृषणो ये च पापिष्ठा घातयन्ति च ॥८७॥
बाधयन्ति च गोवत्सान्महानारकिणो नराः । आशयासमनुप्राप्तं क्षुत्तृषाश्रमपीडितम् ॥८८॥
ये चातिथिं न मन्यन्ते ते वै निरयगामिनः । अनाथं विकलं दीनं बालं वृद्धं भृशातुरम् ॥८९॥
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकार्णवम्। अजाविको माहिषिको यःशूद्रावृषलीपतिः ॥९०॥
शूद्रो विप्रस्य क्षत्रस्य ये आचारेण वर्तते । शिल्पिनः कारवो वैद्यास्तथादेवलकानराः ॥९१॥
भृतकामात्यकर्माणःसर्वे निरयगामिनः । यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया आहरेत्करम् ॥९२॥
नरकेषु सपच्येत यश्च दण्डं वृथा नयेत् । उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्चप्रपीड्यते ॥९३॥
यस्य राज्ञःप्रजा राज्ये पच्यते नरकेषु सः । ये द्विजाःप्रतिगृह्णन्ति नृपस्यन्यायवर्तिनः ॥९४॥
प्रयान्ति तेऽपि घोरेषु नरकेषु न संशयः। परदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य च ॥९५॥
भवत्यरक्षतो घोरो राज्ञस्तस्य परिग्रहः । अचोरं चौरवद्यश्च चौरं चाचौरवत्पुनः ॥९६॥

साथ रहने वाले तथा जो क्षयरोग से आर्त बनी हुयी स्त्री तथा गौ का यत्न पूर्वक पालन नहीं करते हैं, वे मनुष्य गोघाती एवं नारकी होते हैं ॥८२-८३॥ जो सभी प्रकार के पाप करने वाले होते हैं, पशुओं तथा खेत को जो काटते हैं, साधुओं, ब्राह्मणों, गुरुजनों तथा गौओं को मारने वाले निर्दोष तथा साधु पर स्थित नारी को जो मारते हैं, आलस्य से जिसके सारे अङ्ग भरे रहते हैं और जो बार-बार सोता है ॥८४-८५॥ जो दुर्बलों का पोषण नहीं करते हैं तथा भूले हुए को खोजते भी नहीं हैं, अत्यन्त भार प्रदान करके उन्हें पीड़ित करते हैं तथा जो कटे हुए पशुओं को नाधते हैं ॥८६॥ जो सभी प्रकार के पापों को करते रहते हैं, जो एक साथ भोजन करते हैं, जिसके अङ्ग टूट गये हैं, रोग से आर्त बनी हुयी, भूखी गौ को ॥८७॥ यत्नपूर्वक पालन नहीं करते हैं, वे मनुष्य नारकी बतलाये गये हैं । जो पापी वृषों के वृषणों (अण्डकोशों) को गिरा देते हैं ॥८८॥ गौओं के बछड़ो को दुःख देने वाले मनुष्य महानारकी हैं । आशान्वित तथा भूख-प्यास तथा श्रम से पीड़ित ॥८९॥ जो अतिथियों का सत्कार नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं । अनाथ, विकल, दीन, बल, वृद्ध, अत्यन्त आतुर ॥९०॥ इन सबों पर जो दया नहीं करते हैं वे मूर्ख नरक में जाते हैं । भेड़, बकरी तथा भैंस पालने, शूद्र तथा वेश्या के स्वामी ॥९१॥ इस प्रकार का शूद्र ब्रह्मण तथा क्षत्रिय के आचार का पालन करता है, शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, तथा देवान पर जीने वाले मनुष्य ॥९२॥ नौकरी करने वाले, मन्त्री का काम करने वाले, ये सबके सब नरकगामी होते हैं । जो राजा द्वारा कहे गये का उल्लंघन करके मनमाने ढंग से कर वसूलता है ॥९३॥ वह नरक में पकाया जाता है तथा जो व्यर्थ ही दण्ड देता है वह भी अधिकृत व्यक्ति घूस लेने वाले तथा चोरों से पीड़ित होता है ॥९४॥ जिस राजा के राज्य में प्रजाएँ नरकों में पकायी जाती हैं, वह तथा जो ब्राह्मण पापी राजा से दान लेते हैं ॥९५॥ वे भी

अविचार्य नृपः कुर्यात्सोऽपि वै नरकं व्रजेत्। घृत तैलान्नपानादि मधुमांस सुरासवम् ॥९७॥
गुडेक्षु क्षीर शाकादि दधिमूल फलानि च। तृणकाष्ठं पुष्पपत्रं कांस्यं रजतमेव च ॥९८॥
उपानच्छत्र कटक शिबिकामासनं मृदुः। ताम्रं सीसं त्रपुकांस्यं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् ॥९९॥
वादित्रं वेणुवंशाद्यं गृहोपस्करणानि च। ऊर्णाकार्पास कौशेय रङ्गपद्मोद्भवानि च ॥१००॥
तूलं सूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभेन हरन्ति च ।
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ॥१०१॥
नरकेषु द्रुतं गच्छेदपहृत्याल्पकान्यपि। यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ॥१०२॥
अपहृत्य नरो याति नरके नात्र संशयः। बह्वल्पकाद्यपि तथा परस्य ममता कृतम् ॥१०३॥
अपहृत्य नरो याति नरके नात्र संशयः। एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्ति समनन्तरम् ॥१०४॥
शरीर घातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात्। यमलोकं व्रजन्त्येते शरीरस्था यमाज्ञया ॥१०५॥
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिताः । देवतीर्यङ् मनुष्याणामधर्मनियतात्मनाम् ॥१०६॥
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः। विनयाचारयुक्तानां प्रमादान्मलिनात्मनाम् ॥१०७॥
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न च तैरीक्ष्यते यमः। पारदारिकचौराणामन्याय व्यवहारिणाम् ॥१०८॥
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां च धर्मराट्। तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१०९॥
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि। यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वानुमोदयेत् ॥११०॥

निश्चित रूप से घोर नरकों में जाते हैं। दूसरे की लड़कियों की चोरी करने वाले चोरों के जो पाप होते हैं उससे रक्षा नहीं करने वाले राजा का ही पाप होता है। उसको राजा ही ग्रहण करता है। जो राजा चोर नहीं है उसको चोर के समान तथा चोर को अचोर के समान ॥९६-९७॥ विना बिचार किए ही व्यवहार करता है, वह राजा भी नरक में जाता है। घी, तेल, अन्न, पान, मधु, मांस, सुरा, आसव ॥९८॥ गुड़, ईख, दुग्ध, शाक, दधि, मूल, फल, तृण, काष्ठ, पुष्प, पत्र, कांस्य पात्र ॥९९॥ उपानह, छत्र, कड़ा, शिविका, मुलायम आसन, ताम्बा, सीसा, रङ्गा, कांसा तथा जल से उत्पन्न होने वाले शङ्ख आदि पदार्थ ॥१००॥ वाद्य, वेणु, वांस आदि घर के सामान, ऊन, कपास, रेशम तथा कमल से उत्पन्न होने वाले पदार्थ॥१०१॥ रुई और पतले वस्त्र इन सबों को जो लोभ के कारण चुराते हैं। इस तरह के पदार्थ तथा दूसरे भी पदार्थों को थोड़ा सभी जो लोग चुराते हैं ॥१०२॥ वे शीघ्र ही नरकों में जाते हैं। जो कुछ भी सरसों के बराबर द्रव्यों को ॥१०३॥ थोड़ा सा भी चुराने वाला मनुष्य नरकों में जाता ही है। बहुत अथवा कम दूसरे की वस्तु को मोहवशात् ॥१०४॥ चुराने वाला मनुष्य निश्चित रूप से नरक में जाता है। इस तरह के पापों के कारण मनुष्य शरीर से निकलने के बाद ही ॥१०५॥ अपने पहले के आकार को प्राप्त कर लेता है जिससे कि उसके शरीर को पीटा जा सके। वे शरीरस्थ जीव यम की आज्ञा से यम के लोक में जाते हैं ॥१०६॥ यम के दूत उन सबों को बहुत दुःख देते हुए यमलोक में ले जाते हैं। अधर्म करने वाले देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों का प्रशासन यमराज करते हैं। वे उन सबों को अत्यन्त भयङ्कर दण्ड देते हैं। विनय तथा सदाचार का पालन करने वाले जीवों के द्वारा यदि प्रमाद वशात् पाप हो जाता है तो ॥१०७-१०८॥ उन पापों का प्रायश्चित्तों के द्वारा प्रशासन गुरु ही करते हैं उन जीवों को यमराज का दर्शन नहीं करना पड़ता है। अन्याय पूर्वक व्यवहार करने वाले पारिवारिक चोरों का ॥१०९॥ प्रशासक राजा को बतलाया गया है,

कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिःफलम् ।
इति संक्षेपतःप्रोक्ताःपापभेदास्त्रिधाऽधुना ॥१११॥
कथ्यन्ते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम्। एतत्ते नृपतेऽधर्मफलं प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥११२॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तन्मेब्रूहि नरोत्तम। अधर्मस्य फलं प्रोक्तं धर्मस्यापिवदाम्यहम् ॥११३॥
इत्याह मातलिस्तत्र राजानं सर्ववत्सलम् । तस्मिन्धर्मप्रसङ्गेन इत्याख्यातं महात्मना ॥११४॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे सप्तष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

ययातिरुवाच
अधर्मस्य फलं सूत श्रुतं सर्व मया विभो। धर्मस्यापि फलं ब्रूहि श्रोतुं कौतूहलं मम ॥१॥
मातलिरुवाच
अथ पापैरिमे यान्ति यमलोकं चतुर्विधा । सन्त्रासजननं घोरं विवशाःसर्वदेहिनः ॥२॥
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः। पुंस्त्रीनपुंसकैर्वृद्धैर्यातव्यं जन्तुभिस्ततः॥३॥
शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते। चित्रगुप्तादिभिःसर्वैर्मध्यस्थैःसर्वदर्शिभिः ॥४॥

किन्तु छिपकर रहने वालों के प्रशास्ता धर्मराज ही होते हैं । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह किए हुए पापों का प्रायश्चित अवश्य कर ले ॥११०॥ क्योंकि फल भोगे बिना कर्मों का नाश करोड़ों कल्प में भी नहीं होता है। जो स्वयं पाप करता है, या करवाता है अथवा पाप कर्म का समर्थन ॥१११॥ शरीर, मन अथवा वाणी से भी करता है, उसकी अद्योगति अवश्य होती है । इस तरह से संक्षेप में तीन तरह के पाप कर्म कहे गये हैं॥११२॥ पापी जीवों के कर्मों की विचित्र गतियाँ बतलायी गयी हैं । हे राजन् ! इस प्रकार से विस्तार से आपको अधर्म का फल मैंने बतलाया ॥११३॥ हे राजन् ! आप यह बतलायें कि मैं आपको और दूसरी कौन सी बात बतलाऊँ । मैंने आपको अधर्म का फल बतलाया अब धर्म का भी फल बतलाता हूँ । इस तरह सर्ववत्सल राजा को मातलि ने धर्म के प्रसङ्ग में इन सारी बातों को बतलाया ॥११४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत पितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्र के सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६७।।

पुण्य कर्मों के फलों का वर्णन

ययाति ने कहा— हे सूत ! हे विभो ! मैंने अधर्म का फल सुना आप धर्म का भी फल बतलायें उसको भी सुनने की मेरी उत्कण्ठा है ॥१॥ **मातलि ने कहा—** पापों के कारण ये चारों प्रकार के शरीरधारी जीव विवश होकर भय को उत्पन्न करने वाले भयङ्कर यमलोक में जाते हैं ॥२॥ गर्भ में विद्यमान, उत्पन्न होने वाले, बालक, युवा, मध्यमावस्था में विद्यमान, पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक एवं बृद्ध जीवों को जाना

न तेऽत्र प्राणिनःसन्ति येन यान्ति यमक्षयम् ।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचारितम् ॥५॥

ये तत्र शुभकर्माणःसौम्यचित्ता दयान्विताः। ते नरा यान्ति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ॥६॥
यःप्रदद्याच्च विप्राणामुपानत्काष्ठपादुके। स विमानेन महता सुखं याति यमालयम् ॥७॥
छत्रदानेन गच्छन्ति पथा साभ्रेणदेहिनः । दिव्यवस्त्र परीधाना यान्ति वस्त्रप्रदायिनः ॥८॥
शिबिकायाःप्रदानेन विमानेन सुखं व्रजेत् । सुखासनप्रदासनेन सुखं यान्ति यमालयम् ॥९॥
आरामकर्ता छायासु शीतलासु सुखं व्रजेत्। यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पाराम प्रदायिनः ॥१०॥
देवायतनकर्ता च यतीनामाश्रमस्य च। अनाथमण्डपानां च क्रीडन्याति गृहोत्तमैः ॥११॥
देवाग्नि गुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकः ॥१२॥

विप्रेषु दीनेषु गुणान्वितेषु यच्छ्रद्धया स्वल्पमपि प्रदत्तम् ।
तत्सर्वकामान्समुपैति लोके श्राद्धे च दानं प्रवदन्ति सन्तः ॥१३॥

श्रद्धादानेन विज्ञेयमपि बालाग्रमात्रकम् । यत्पात्रादि चतुष्टयं श्रद्धा तेषु सदा मम॥१४॥

श्रद्धीयते सदा तस्माच्छ्रद्धायास्तत्फलं भवेत् ।
गुणान्वितेषु दीनेषु यच्छत्यावसथान्यपि ॥१५॥

स प्रयाति सर्वकामं स्थानंपैतामहं नृप । श्रद्धया येन विप्राय दत्तं काकिणिमात्रकम् ॥१६॥

चाहिए ॥३॥ अव अच्छे तथा बुरे फलों का विचार करता हूँ । वहाँ पर सबकुछ जानने वाले चित्रगुप्त आदि जीव मध्यस्थ रहते हैं ॥४॥ संसार में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसको यमलोक न जाना पड़े । अतएव उनलोगों के द्वारा विचार किए गये कर्मों के फलों को अवश्य भोगना पड़ता है ॥५॥ जो जीव पुण्यकर्म करने वाले, दयालु तथा सौम्य चित्त वाले होते हैं, वे मनुष्य सौम्य (सुखद) मार्ग से यमलोक में जाते हैं॥६॥ जो लोग ब्राह्मणों को उपानह तथा काठ का खडाऊँ देते हैं, वे विमान के द्वारा सुखपूर्वक यमलोक में जाते हैं ॥७॥ ब्राह्मणों को छत्र दान करने वाले जीव मेघ के मार्ग से जाते हैं । वस्त्रों का दान करने वाले दिव्य वस्त्र धारण करके जाते हैं ॥८॥ शिविका का दान करने वाले विमान से सुख पूर्वक यमलोक जाते हैं । सुखद आसन दान करने वाले सुखपूर्वक यमलोक जाते हैं ॥९॥ उद्यान लगाने वाला सुखप्रद शीतल छाया वाले मार्ग से जाते हैं । फूलों के वगीचे का दान करने वाले पुष्पक यान से जाते हैं ॥१०॥ देवताओं का मन्दिर बनाने वाले, संन्यासियों के आश्रम का निर्माण करने वाले तथा अनाथों के निवास स्थान को बनाने वाले क्रीड़ा करते हुए उत्तम गृहों में जाते हैं ॥११॥ देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले मनुष्य ॥१२॥ ब्राह्मण, दीन तथा गुणी पुरुष को जो श्रद्धा पूर्वक थोड़ा सा भी दान देते हैं तथा जो श्राद्ध में दान करते हैं वे लोक में सारी वस्तुओं को प्राप्त करते हैं यह सन्तों का कहना है॥१३॥ बाल के अग्र भाग के समान भी जो श्रद्धा पूर्वक दान किया जाता है देश, काल, द्रव्य तथा पात्र ये चार जो हैं उनमें हमारी सदैव श्रद्धा रहती है ॥१४॥ चूँकि उनमें श्रद्धा होती है, अतएव श्रद्धा का फल होता है । गुणी पुरुष तथा दीन जीवों को जो रहने का स्थान प्रदान करता है ॥१५॥ हे राजन् ! वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले ब्रह्माजी के लोक में जाता है । जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण को कण मात्र

स स्याद्दिव्यातिथिर्भूप देवानां कीर्तिवर्धनः । तस्माच्छ्रद्धान्वितैदेयंतत्फलं भवतिध्रुवम् ॥१७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातृपितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

मातलिरुवाच

अथ धर्माःशिवेनोक्ताःशिवधर्मागमोत्तमाः । ज्ञेया बहुविधास्ते च कर्मयोग प्रभेदतः ॥१॥
हिंसादिदोषनिर्मुक्ताःक्लेशायासविवर्जिता । सर्वभूतहिताःशुद्धाःसूक्ष्मायासा महत्फलाः ॥२॥
अनन्तशाखाकलिताःशिवमूलैकसंश्रिताः । ज्ञानध्यानसुपुष्पाढ्याःशिवधर्माःसनातनाः ॥३॥
धारयन्ति शिवं यस्माद्धार्यते शिवभाषितैः । शिवधर्माःस्मृतास्तस्मात्संसारार्णवतारकाः ॥४॥
तथाऽहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीःश्रद्धेन्द्रियसंयमः । दानमिज्या तपोदानं दशकं धर्मसाधनम् ॥५॥
अथ व्यस्तैःसमस्तैर्वा शिवधर्मैरनुष्ठितैः । शिवैकरस्य सम्प्राप्तैर्गतिरेकैव कल्पिता ॥६॥
यथाभूःसर्वभूतानां स्थानं साधारणं स्मृतम् । तत्तथा शिवभक्तानां तुल्यं शिवपुरं स्मृतम् ॥७॥
यथेह सर्वभूतानां भोगाःसातिशयाःस्मृताः । नानापुण्यविशेषेण भोगाःशिवपुरे तथा ॥८॥

भी दान देता है ॥१६॥ हे राजन् ! वह देवताओं का अतिथि होता है । अतएव श्रद्धा पूर्वक दान करना चाहिए । उन दान का फल अवश्य होता है ॥१७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्र के अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६८।।

अनेक प्रकार के शिवधर्म का वर्णन

मातलि ने कहा— अब मैं शिवजी के द्वारा शिव धर्मागम में कहे गये धर्मों को बतलाता हूँ कर्मयोग के भेद पूर्वक उन धर्मों को जानना चाहिए ॥१॥ ये शिव धर्म हिंसा आदि दोषों से रहित, क्लेश तथा आयास से रहित, सभी जीवों का कल्याण करने वाले, शुद्ध, थोड़े से परिश्रम से बहुत अधिक फल देने वाले ॥२॥ अनन्त शाखाओं से युक्त केवल शिवरूपी मूल में रहने वाले, ज्ञान तथा ध्यान रूपी पुष्पों से परिपूर्ण तथा सनातन हैं ॥३॥ चूँकि धर्म शिव को ही धारण करते हैं, वेद शिव की उक्तियों के द्वारा ही धारण किय जाते हैं । इसीलिए वे शिव धर्म कहे जाते हैं । वे धर्म संसार सागर से पार उतारने वाले हैं॥४॥ इस धर्म के साधन दश हैं अंहिसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, दान, यज्ञ, तप और दान ॥५॥ इन सबों का व्यस्त (पृथक्-पृथक्) अथवा समस्त (सबों का एक साथ) अनुष्ठान करने से जीव का शिव स्वरूप हो जाना ही इन सबों की एक मात्र विशेषता बतलायी गयी है ॥६॥ जैसे पृथिवी को सभी जीवों का समान रूप से स्थान कहा गया है उसी तरह से समस्त शिवभक्तों का एकमात्र स्थान शिवलोक

शुभाशुभफलंचापि भुज्यते सर्वदेहिभि: । शिवधर्मस्य चैकस्य फलं तत्रोपभुज्यते ॥९॥
यस्य यादृग्भवेत्पुण्यं श्रद्धापात्र विशेषतः । भोगा:शिवपुरे तस्य ज्ञेया:सातिशया:शुभा: ॥१०॥
स्थानप्राप्ति:परं तुल्या भोगा:शान्तिमया:स्थिता: ।
कुर्यात्पुण्यं महत्तस्मान्महाभोगजिगीषया ॥११॥
सर्वातिशयमेवैकं भावितं च सुरोत्तमै: । आत्मभोगाधिपत्यंस्याच्छिव:सर्वजगत्पति: ॥१२॥
केचित्तत्रैव मुच्यन्ते ज्ञानयोगरता नरा: । आवर्तन्ते पुनश्चान्ये संसारेभोगतत्परा: ॥१३॥
तस्माद्विमुक्तिमिच्छंस्तु भोगासक्तिं च वर्जयेत् ।
विरक्त:शान्तिचित्तात्मा शिवज्ञानमवाप्नुयात् ॥१४॥
ये चापीशान्यहृदया यजन्तीशं प्रसङ्गत: । तेषामपि ददातीश:स्थानं भावानुरूपत: ॥१५॥
तत्रार्चयन्ति ये रुद्रं सकृदुच्छिन्न कल्मषा: । तेषां पिशाचलोकेषु भोगानीश:प्रयच्छति ॥१६॥
सन्तप्ता दु:खभारेण म्रियन्तेसर्वदेहिन: । अन्नद:पुण्यद:प्रोक्त:प्राणदश्चापि सर्वद: ॥१७॥
तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत् । त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च ॥१८॥
अन्नदानप्रद:सर्वमिहामुत्रफलं लभेत्। यस्यान्नपान पुष्टाङ्ग:कुरुते पुण्यसञ्चयम् ॥१९॥
अन्नप्रदातुस्तस्यार्धं कर्तुश्चार्धं न संशय: । धर्मार्थकाममोक्षाणां देह: परमसाधनम् ॥२०॥

बतलाया गया है ॥७॥ जिस तरह इस लोक में सभी जीवों के भोग समान रूप से बतलाये गये हैं उसी तरह शिवलोक में पुण्य विशेष के द्वारा न्यूनाधिक भोगों की प्राप्ति होती है ॥८॥ सभी शरीरधारी शुभ तथा अशुभ फलों को भोगते हैं । शिवलोक में केवल शिवधर्म का ही फल भोगा जाता है ॥९॥ जिस श्रद्धा के पात्र विशेष का जैसा पुण्य होता है, उसको शिवलोक में उसी तरह का न्यूनाधिक शुभ भोग प्राप्त होता है॥१०॥ किन्तु सबों को एक समान शान्तिमय स्थान की प्राप्ति होती है । अतएव महान् भोग जीत लेने की इच्छा से महान् शिवधर्म का पालन करना चाहिए ॥११॥ बड़े-बड़े देवताओं ने एक ही सर्वोत्कृष्ट पुण्य माना है कि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी शिव का ही अपने भोगों पर आधिपत्य हो जाय ॥१२॥ ज्ञानयोग में तत्पर रहने वाले कुछ मनुष्य वहीं मुक्त हो जाते हैं और कुछ भोगों को भोगने वाले जीव पुन: इस संसार में आते हैं ॥१३॥ संसार से मुक्ति चाहने वाले को भोगों में होने वाली आसक्ति को त्याग देना चाहिए । जो जीव विरक्त तथा शान्त चित्त वाला होता है वह शिव ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं ॥१४॥ वे भगवान् शिव को हृदय में रखकर प्रसङ्गवशात् शिवजी की पूजा करते हैं, उन जीवों को भी भगवान् शिव उनके भाव के अनुकूल स्थान प्रदान करते हैं ॥१५॥ अतएव निष्पाप पुरुष जो एक बार भी रुद्र की अर्चा करते हैं, उन जीवों को वे पिशाच लोकों में भोगों को प्रदान करते हैं ॥१६॥ सभी शरीरधारी दु:ख के भार से संतप्त होकर शरीर का त्याग करते हैं । अन्नदान को पुण्य प्रदान करने वाला, प्राण प्रदान करने वाला तथा सबकुछ प्रदान करने वाला कहा गया है ॥१७॥ अतएव मनुष्य अन्न दान करके सबकुछ दान करने का फल प्राप्त करता है । त्रैलोक्य में जो रत्न, भोग, स्त्री तथा वाहन इत्यादि हैं ॥१८॥ अन्न दान करने वाला इस लोक में तथा परलोक में सबों के दान का फल प्राप्त करता है । जिसके अन्न तथा जल से पुष्ट शरीर वाला होकर जीव पुण्यों का संचय करता है ॥१९॥ उसका आधा फल अन्न देने वाले को मिलता है और आधा फल पुण्य करने वाले को प्राप्त होता है । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन सबों का सर्वोत्तम साधन देह ही

स्थितिस्तस्यान्नपानाभ्यामतस्तत्सर्वसाधनम् । अन्नं प्रजापतिःसाक्षादन्नंविष्णुःशिवःस्वयम् ॥२१॥
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति। त्रयाणामपि लोकानामुदकं जीवनं स्मृतम् ॥२२॥
पवित्रमुदकं दिव्यं शुद्धं सर्वरसायनम् । अन्नपानाश्वगो वस्त्र शय्यासूत्रासनानि च॥२३॥
प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः । एवंदानविशेषेण धर्मराज पुरं नरः॥२४॥
यस्माद्यातिसुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् । ये पुनःक्रूरकर्माणःपापा दानविवर्जिताः ॥२५॥
भुञ्जते दारुणं दुःखं नरके नृपनन्दन। तथासुखं प्रभुञ्जन्ति दानकर्तार एव तु ॥२६॥
तेषां तु सम्भवेत्सौख्यं कर्मयोगरतात्मनाम्। अप्रमेयगुणैर्दिव्यैर्विमानैःसर्वकामकैः ॥२७॥
असङ्ख्यैस्तत्पुरंव्याप्तं प्राणिनामुपकारकैः । सहस्रसोमदिव्यं वा सूर्यतेजःसमप्रभम् ॥२८॥
रुद्रलोकमितिप्रोक्तमशेषगुणसंयुतम् । सर्वेषां शिवभक्तानां तत्पुरं परिकीर्तितम् ॥२९॥
रुद्रक्षेत्रे मृतानां च जङ्गमस्थावरात्मनाम् । अप्येकदिवसं भक्त्या यः पूजयति शङ्करम् ॥३०॥
सोऽपि याति शिवस्थानं किंपुनर्बहुशोऽर्चयन् ।
वैष्णवा विष्णुभक्ताश्च विष्णुध्यानपरायणाः ॥३१॥
तेऽपिगच्छन्ति वैकुण्ठे समीपं देवचक्रिणः । ब्रह्मवादी च धर्मात्मा ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥३२॥
पुण्यकर्तासु पुण्येन पुण्यलोकं प्रयाति च। तस्मादीशे सदाभक्तिं भावयेदात्मनात्मनि ॥३३॥
हरौ वापि महाराज युक्तात्मा ज्ञानवान्स्वयम् ।
तस्मात्सर्वविचारेण भाववदोष विचारतः ॥३४॥

है ॥२०॥ उस शरीर की स्थिति अन्न और जल से ही बनी रहती है, अतएव अन्न सबों का साधन है । अन्न साक्षात् प्रजापति है, वह विष्णु तथा शिव स्वरूप है ॥२१॥ अतएव अन्न दान के समान न तो कोई दान हुआ और न होगा । तीनों लोकों का जीवन जल को बतलाया गया है ॥२२॥ पवित्र तथा शुद्ध जल सभी प्रकार का दिव्य रसायन है । अन्न, जल, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, सूत्र तथा आसन ये आठों प्रकार के दान प्रेत लोक में प्रशस्त माने गये हैं । इस तरह विशेष धर्म के द्वारा मनुष्य धर्मराज के लोक में चूँकि सुखपूर्वक जाता है अतएव धर्म का आचरण करना चाहिए । जो क्रूरकर्म करने वाले पापी तथा दान नहीं करने वाले जीव हैं ॥२३-२५॥ हे नृपनंदन वेन ! वे जीव नरक में भयङ्कर दुःखों को सहते हैं । दान करने पर वे भी उसी तरह सुख का उपभोग करते हैं ॥२६॥ कर्मयोग मे लगे रहने वाले जीवों को सुख की प्राप्ति अगण्य गुणों वाले सर्वकामप्रद दिव्य विमानों के द्वारा होती है ॥२७॥ वह नगर असंख्य उपकारक प्राणियों से भरा रहता है । शिवलोक हजारों चन्द्रमा और सूर्य की कान्ति के समान कान्तिवाला होता है ॥२८॥ इस तरह मैंने समस्त गुणों से युक्त शिवलोक का वर्णन किया । उस लोक में सभी शिवभक्त जाते हैं ॥२९॥ रुद्रक्षेत्र में मरने वाले जङ्गम अथवा स्थावर जीवों ने यदि एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करता है॥३०॥ वह भी शिवलोक में ही जाता है जिसने अनेक बार शिव की अर्चना की है, उसके विषय में क्या कहना है ? जो वैष्णव भगवान् विष्णु के भक्त हैं तथा भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहते हैं ॥३१॥ वे भी भगवान् विष्णु के समीप वैकुण्ठ लोक में जाते हैं । जो ब्रह्मवादी धर्मात्मा होता है वह ब्रह्मलोक में जाता है ॥३२॥ पुण्य कर्मो को करने वाला अपने पुण्यों के कारण पुण्यलोकों में जाता है । अतएव सदैव भक्तिपूर्वक अपने हृदय में भगवान् शिव की भक्ति करनी चाहिए ॥३३॥ हे महाराज ! भगवान् विष्णु में भी

एवं विष्णुप्रभावेन विशिष्टेनापि कर्मणा। नरैःस्थानमवाप्येत देशभावानुरूपतः ॥३५॥
इत्येतदपरं प्रोक्त श्रीमच्छिवपुरं महत्। देहिनां कर्मनिष्ठानां पुनरावर्तकं स्मृतम् ॥३६॥
उद्‌र्ध्वं शिवपुराज्ज्ञेयं वैष्णवं लोकमुत्तमम् । वैष्णवा मानवा यान्ति विष्णुध्यानपरायणाः ॥३७॥
ब्राह्मणा ब्रह्मलोकं तु सदाचारा नरोत्तमाः। प्रयान्ति यज्विनः सर्वे पुरीं तां तत्त्वकोविदाः ॥३८॥
ऐन्द्रलोकं तथा यान्ति क्षत्रिया युद्धशालिनः ।
अन्ये च पुण्यकर्त्तारःपुण्यलोकान्प्रयान्ति ते ॥३९॥

इति श्रीपद्यमहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थे ययातिचरिते एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

मातलिरुवाच

यमपीडां प्रवक्ष्यामि महातीव्रां सुदारुणाम्। भुञ्जते पापिनःसर्वे क्रूरास्ते ब्रह्मघातकाः ॥१॥
क्वचित्पापाःप्रपच्यन्ते तीव्रेण करिषाग्निना। क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्दंशैःकीटैश्च दारुणैः ॥२॥
क्वचिन्महाजलौकाभिःक्वचिदाजगरैःपुनः । मक्षिकाभिश्च रौद्राभिःक्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ॥३॥
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोत्कृष्टैःप्रमाथिभिः । पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गै महावृषैः ॥४॥
महाशृङ्गैश्च महिषैर्दुष्टा गात्रप्रबाधकैः । डाकिनीभिश्च रोद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ॥५॥

ज्ञानी अपने मन को लगाये रखते हैं। अतएव हर प्रकार के भावों के दोषों के विचार की दृष्टि से ॥३४॥ भगवान् विष्णु के प्रभाव से तथा विशिष्ट कर्म के द्वारा मनुष्य देश तथा भाव के अनुरूप स्थान को प्राप्त करता है ॥३५॥ इस तरह से मैंने सर्वश्रेष्ठ महान् शिवलोक का वर्णन किया। कर्मनिष्ठ शरीरधारियों को पुनः इसलोक में आना पड़ता है ॥३६॥ शिवपुर के ऊपर उत्तम विष्णुलोक को जानना चाहिए। उस लोक में भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले, वैष्णव जन जाते हैं ॥३७॥ सदाचारी, उत्तम ब्राह्मण ब्रह्मलोक में जाते हैं। तत्त्वों के ज्ञाता यज्ञ करने वाले सभी जीव उसी पुरी में जाते हैं ॥३८॥ युद्ध करने वाले क्षत्रिय इन्द्रलोक में जाते हैं। दूसरे पुण्य करने वाले जीव पुण्यलोकों में जाते हैं ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्यमहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत पितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित के उनहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६९॥

अत्यन्त भयङ्कर यमलोक में प्राप्त होने वाली पीड़ाओं का वर्णन

मातलि ने कहा— अब मैं अत्यन्त तीव्र तथा भयङ्कर यमपीड़ा का वर्णन करता हूँ। उसको सभी ब्रह्मघाती पापीजन भोगते हैं ॥१॥ कहीं पर तो तीव्र करीष की अग्नि में पापियों को पकाया जाता है, कहीं पर सिंह, वृक, व्याघ्र तथा भयङ्कर कीड़ों के दंशों से ॥२॥ कहीं पर बड़ी-बड़ी जोंकों से, कहीं पर अजगरों से, कहीं भयङ्कर मक्खियों से, कहीं पर तीव्र विष वाले सर्पों से ॥३॥ कहीं अत्यन्त बलवान् मदमत्त हाथियों

व्याधिभिश्च महाघोरैःपीड्यमाना व्रजन्ति ते। महातुलांसमारूढा दह्यमाना दवानलैः ॥६॥
महावेगप्रधूतास्ते महाचण्डेन वायुना। महापाषाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः ॥७॥
पतद्भिर्वज्रनिर्घोषैरुल्कापातैश्च दारुणैः। प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमाना व्रजन्ति ते ॥८॥
महतापां सुवर्षेण पूर्यमाणा यमङ्गताः। ये नराःपापकर्माणःपापंभुञ्जन्ति दारुणम् ॥९॥
एवं पापविशेषेण पापिष्ठाःपापकारकाः। नरकं प्रतिभुञ्जन्ति बहुपीडा समाकुलम् ॥१०॥
एततेसर्वमाख्यातं विवेकं पुण्यपापयोः। अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ॥११॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने यायातिचरित्रे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

ययातिरुवाच

यत्त्वयासर्वमाख्यातं धर्माधर्ममनुत्तमम्। शृण्वतोऽथ ममश्रद्धा पुनरेव प्रवर्तते ॥१॥
देवानां लोकसंस्थानां वदसङ्ख्याःप्रकीर्तिताः ।
यस्यपुण्यप्रसङ्गेन येन प्राप्तं च मातले ॥२॥

के समूहों से, कहीं मार्ग को कुरेदने वाले तीक्ष्ण सींगों वाले महावृषों से ॥४॥ कहीं दुष्ट तथा शरीर को दुःख देने वाले बड़े-बड़े सींग वाले भैसों से, कहीं भयङ्कर डाकिनियों तथा विकराल राक्षसों द्वारा ॥५॥ तथा अत्यन्त भयङ्कर रोगों से पीड़ित होकर वे पापी जीव यमलोक जाते हैं। उन सबों को महातुला पर चढ़ाया जाता है और दावाग्नि में जलाया जाता है ॥६॥ भयङ्कर वायु के द्वारा झकझोर दिए जाते हैं। उनके ऊपर चारों ओर से बड़े-बड़े पत्थर गिरते रहते हैं ॥७॥ वज्र के समान शब्द करती हुई उनके ऊपर उल्लकाएँ गिरती हैं। कहीं पर जलते हुए अङ्गार गिरता है और वे चलते जाते हैं ॥८॥ कहीं पर जोर से होने वाली धूलि की वर्षा से उनका सारा अङ्ग भर जाता है। इसी तरह से पापी पुरुष अपने भयङ्कर पापों का फल भोगते हैं ॥९॥ इस तरह पाप विशेष से पाप करने वाले पापी जीव, बहुत अधिक पीड़ाओं से व्याकुल होकर नरकों को भोगते हैं ॥१०॥ इस तरह मैंने आपको पाप पुण्य का विवेक बतलाया। अव तैं तुम्हें दूसरा कौन सा सर्वोत्तम धर्मशास्त्र बतलाऊँ ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित के सत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७०॥

देवलोक के संस्थानों का वर्णन

ययाति ने कहा— आपने जो सर्वोत्तम धर्माधर्म की चर्चा की है उसको सुनने के लिए मेरी श्रद्धा और बढ़ती जाती है ॥१॥ आप देवलोकों के संस्थानों का वर्णन करें जिसको पुण्य प्रसङ्ग से जिसने प्राप्त

मातलिरुवाच

योगगुरुं प्रवक्ष्यामि तपसा यदुपार्जितम्। देवानां लोकसंस्थानं सुखभोगप्रदायकम् ॥३॥
धर्मभावं प्रवक्ष्यामि आयासैरर्जितं पृथक् । उपरिष्टाच्च लोकानां स्वरूपं चाप्यनुक्रमात् ॥४॥
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं पार्थिवं पिशिताशिनाम् ।
तस्मात्सद्योगतानां च नराणां तत्समं स्मृतम् ॥५॥
रक्षसां षोडशगुणं पार्थिवानां च तद्विधम् । एवं निरवशेषं च यच्छेषं कुलतेजसाम् ॥६॥
गन्धर्वाणां चा वायव्यं याक्षं च सकलं स्मृतम् ।
पाञ्चभौतिकमिन्द्रस्य चत्वारिंशद्गुणंमहत् ॥७॥
सोमस्य मानसं दिव्यं विश्वेशं पाञ्चभातिकम् ।
सौम्यं प्रजापतीशानामहङ्कारगुणाधिकम् ॥८॥
चतुष्षष्टिगुणं ब्राह्मं बौधमैश्वर्यमुत्ताम्। विष्णोःप्राधानिकं तन्त्रमैश्वर्यं ब्रह्मणःपदम् ॥९॥
श्रीमच्छिवपुरेदिव्ये ऐश्वर्यं सर्वकामिकम् । अनन्तगुणमैश्वर्यं शिवस्यात्मगुणं महत्॥१०॥
आदिमध्यान्तरहितं विशुद्धं तत्त्वलक्षणम् । सर्वावभासकं सूक्ष्ममनौपम्यं परात्परम्॥११॥
सुसम्पूर्णं जगद्वेषं पशुपाश विमोक्षणम् । यो यत्स्थानमनुप्राप्तस्तस्य भोगस्तदात्मकः ॥१२॥
विमानं तत्समानं च भवेदीश प्रसादतः । नानारूपाणि ताराणां दृश्यन्ते कोटयस्त्विमाः॥१३॥
अष्टाविंशतिरेवं ते सन्दीप्ताःसुकृतात्मनाम् । ये कुर्वन्ति नमस्कारमीश्वराय क्वचित्क्वचित् ॥१४॥
सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभात्तद्विमानं लभन्ति ते। नामसङ्कीर्तनाद्वापि प्रसङ्गेन शिवस्य यः ॥१५॥

किया है उसे आप बतलायें ॥२॥ **मातलि ने कहा**— योग से युक्त तथा तपस्या के द्वारा प्राप्त सुख तथा भोग को प्रदान करने वाले देवताओं के लोकसंस्थान को मैं बतलाऊँगा ॥३॥ मैं प्रयास के द्वारा उपार्जित धर्म भाव का पृथक् वर्णन करूँगा । उसके बाद मैं लोकों के स्वरूप को भी क्रमशः बतलाऊँगा ॥४॥ उनमें मांसभक्षी जीवों का पार्थिव ऐश्वर्य आठ गुना है । अतएव सद्यः गये हुए मनुष्यों का ऐश्वर्य उनके समान ही कहा गया है ॥५॥ मनुष्यों की अपेक्षा राक्षसों का ऐश्वर्य सोलह गुणा है । इस तरह से उन सबों की अवशिष्ट कुलतेज की सारी वस्तुएँ होती हैं ॥६॥ इसी तरह गन्धर्वो, यक्षों तथा वायु का एवं इन्द्र का सम्पूर्ण पाँच भौतिक ऐश्वर्य चालिस गुणा महान् होता है ॥७॥ सोम का मानस एवं दिव्य तथा विश्वेश का पाञ्चभौतिक सौम्य प्रजापतियों के अहङ्कार गुणा अधिक ऐश्वर्य होता है ॥८॥ ब्रह्माजी की बुद्धि का ऐश्वर्य चौसठ गुणा अधिक है । भगवान् विष्णु की माया के अधीन ब्रह्माजी का ऐश्वर्य मय पद है ॥९॥ ऐश्वर्य सम्पन्न शिवलोक में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला ऐश्वर्य है । शिव का ऐश्वर्य अनन्त गुणा है उनका आत्मगुण महान् है ॥१०॥ वह आदि, मध्य तथा अन्त रहित विशुद्ध तत्त्व स्वरूप है । वह सबकुछ प्रकाशित करने वाला सूक्ष्म, अनुपमेय तथा सर्वश्रेष्ठ है ॥११॥ वह परिपूर्ण जगत् के विरोधी पशुओं (जीवों) के पाश को विनष्ट करने वाला है । जो जिस स्थान को प्राप्त करता है, उसका भोग भी तदात्मक ही होता है ॥१२॥ उसी के समान ही शङ्करजी की कृपा से उसका विमान भी होता है । करोड़ों ताराओं के ये जो अनेक प्रकार के रूप दिखायी देते हैं ॥१३॥ इनमें से अट्ठाइस ही पुण्यवानों के तारे प्रकाशित होते हैं । जो लोग कहीं भी शिवजी को ॥१४॥ सम्पर्क या कौतुक, या लोभ के कारण प्रणाम करते हैं, वे उसी विमान को प्राप्त करते हैं अथवा जो प्रसङ्गवशात् शिवजी के नाम का संकीर्तन करते हैं या नमस्कार करते

कुर्याद्वापि नमस्कारं न तस्य विलयो भवेत् ।
इत्येता गतयस्तत्र महत्य:शिवकर्मणि ॥१६॥
कर्मणभ्यन्तरेणापि पुंसामीशानभावतः । प्रसङ्गेनापि ये कुर्युःशङ्करस्मरणं नराः ॥१७॥
तैर्लभ्यं त्वतुलं सौख्यं किंपुनस्तत्परायणैः । विष्णुचिन्तां प्रकुर्वन्ति ध्यानेन गतमानसाः॥१८॥
ते यान्ति परमं स्थानं तद्विष्णोःपरमं पदम् । शैवं च वैष्णवं रूपमेकरूपं नरोत्तम॥१९॥
द्वयोश्च अन्तरं नास्ति एकरूप महात्मनोः । शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे॥२०॥
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः । एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥२१॥
त्रयाणामन्तरंनास्ति गुणभेदाःप्रकीर्तिताः । शिवभक्तोऽसि राजेन्द्र तथा भागवतोऽसि वै ॥२२॥
तेन देवाःप्रसन्नास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सुप्रीता वरदा राजन्कर्मणस्तव सुव्रत ॥२३॥
इन्द्रादेशात्समायातःसन्निधौ तव मानद । ऐन्द्रमेनं पदं याहि पश्चाद्ब्राह्मं महेश्वरम् ॥२४॥
वैष्णवं च प्रयाहि त्वं दाहप्रलयवर्जितम् । अनेनापि विमानेन दिव्येन सर्वगामिना ॥२५॥
दिव्यमूर्तिरतोभुङ्क्ष्व दिव्यभोगान्मनोरमान् । समारुह्य विमानं त्वं पुष्पकं सुखगामिनम्॥२६॥

सुकर्मोवाच

एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठ मौनवान्मातलिस्तदा। राजनं धर्मतत्त्वज्ञं ययातिं नहुषात्मजम्॥२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भुमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थे ययातिचरित्रे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

हैं उनका विलय नहीं होता है । शिव के कर्म में ये महान् गतियाँ हैं ॥१५-१६॥ कर्म के भीतर भी मनुष्यों की शङ्करजी के प्रति जैसी भावना होती है तथा जो मनुष्य प्रसङ्गवशात् शङ्करजी का स्मरण करते हैं ॥१७॥ वे भी अतुलनीय सुख को प्राप्त करते हैं । जो शङ्करजी के भक्ति में ही लगे रहते हैं, उनके विषय में क्या कहना है ? जो लोग मन लगाकर भगवान् विष्णु का चिन्तन करते हैं ॥१८॥ वे लोग भगवान् विष्णु के प्रख्यात परमपद को प्राप्त करते हैं । हे नरोत्तम ! भगवान् विष्णु और शिव का रूप एक समान है ॥१९॥ उन एकरूप वाले महात्माओं में कोई भी अन्तर नहीं है । विष्णुरूप शिव को तथा शिव रूप विष्णु को नमस्कार है ॥२०॥ भगवान् विष्णु के हृदय शिव हैं और शिव के हृदय विष्णु हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनो देवताओं की मूर्ति एक ही है ॥२१॥ इन तीनों में कोई भेद नहीं है, इनके गुण भिन्न-भिन्न हैं । हे राजेन्द्र (वेन) ! आप शिव के भक्त तथा वैष्णव हैं ॥२२॥ इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ये तीनों देवता आप पर प्रसन्न हैं । हे सुव्रत ! तुम्हारे कर्म के कारण ये तीनों तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं और तुम्हें वर देने वाले हैं ॥२३॥ हे मानद ! इन्द्र के आदेश से मैं आपके पास आया हूँ । आप पहले इन्द्र के लोक में चलें उसके बांद ब्रह्मा, महेश्वर ॥२४॥ तथा भगवान् विष्णु के दाह और प्रलय रहित लोक में इस सर्वत्र जाने वाले विमान से चलें ॥२५॥ आप दिव्य शरीर धारण करके मनोहर दिव्य भोगों को भोगें । आप सुख पूर्वक चलने वाले इस पुष्पक विमान पर चढ़कर चलें ॥२६॥ **सुकर्मा ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह से धर्मतत्त्व के ज्ञाता, महाराज नहुष के पुत्र ययाति को कहकर मातलि चुप हो गये ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत एकहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

पिप्पल उवाच

मातलेश्च वचःश्रुत्वा स राजा नहुषात्मजः। किं चकार महाप्राज्ञस्तन्मे विस्तरतो वद ॥१॥
सर्वपुण्यमयीपुण्या कथेयं पापनाशिनी। श्रोतुमिच्छाम्यहं प्राज्ञ नैवतृप्यामिसर्वदा ॥२॥

सुकर्मोवाच

सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठो ययातिर्नृपसत्तमः। तमुवाचागतंदूतं मातलिं शक्रसारथिम् ॥३॥
शरीरं नैवत्यक्ष्यामि गमिष्ये न दिवं पुनः। शरीरेण विना दूत पार्थिवेन न संशयः ॥४॥
यद्यप्येवं महादोषाःकायस्यैव प्रकीर्तिताः। पूर्वं चापि समाख्यातं त्वया सर्वं गुणागुणम् ॥५॥
नाहं त्यक्षे शरीरं वै नगमिष्ये दिवंपुनः। इत्याचक्ष्व इतो गत्वा देवदेवं पुरन्दरम् ॥६॥
एकाकिना हि जीवेन कायेनापि महामते। नैवसिद्धिं प्रयात्येवं सांसारिकमिहैव हि ॥७॥

नैव प्राणं विना काये जीवःकायं विना न हि ।
उभयोश्चापि मित्रत्वं नयिष्ये नाशमिन्द्र न ॥८॥

यस्य प्रसादभावाद्वै सुखमश्नाति केवलम्। शरीरस्याप्ययं प्राणो भोगानन्यान्मनोऽनुगान् ॥९॥
एवं ज्ञात्वा स्वर्गभोग्यं न भोज्यं देवदूतक। सम्भवन्ति महादुष्टा व्याधयो दुःखदायकाः ॥१०॥
मातले किल्बिषाच्चैव जरादोषात्प्रजायते। पश्य मे पुण्यसंयुक्तं कायं षोडशवार्शिकम् ॥११॥
जन्मप्रभृति मे कायःशतार्धाब्दं प्रयाति च। तथापि नूतनोभावःकायस्यापि प्रजायते ॥१२॥

ययाति द्वारा शरीर की प्रशंसा और स्वर्ग लोक में जाने से इनकार और मातलि का इन्द्र के पास जाना

पिप्पल ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें कि मातलि की वाणी को सुनकर नहुष के पुत्र ययाति ने क्या किया ॥१॥ समस्त पुण्य स्वरूप यह कथा पापों का विनाश करने वाली है, हे प्राज्ञ ! इसे मैं सुनना चाहता हूँ उससे मुझे तृप्ति नहीं हुयी हैं ॥२॥ **सुकर्मा ने कहा—** सभी धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा ययाति उस आये हुए इन्द्र के दूत तथा सारथि मातलि से कहे ॥३॥ **ययाति ने कहा—** मैं न तो शरीर का त्याग करूँगा और न तो पार्थिव शरीर के बिना मैं स्वर्ग लोक जाऊँगा ॥४॥ यद्यपि शरीर के महान् दोष बतलाये गये हैं । पहले आपने भी शरीर के दोषों और गुणों का वर्णन किया है ॥५॥ मैं शरीर का त्याग नहीं करूँगा और न स्वर्ग जाऊँगा । आप यहाँ से जाकर देवराज इन्द्र को बतला दें ॥६॥ हे महामत्ते ! शरीर के बिना केवल जीवात्मा इस लोक में ही सिद्धि को नहीं प्राप्त करता है ॥७॥ प्राण के बिना शरीर नहीं रहता है और शरीर के बिना जीव नहीं रहता है । अतएव इन दोनों की मित्रता का मैं नाश नहीं करूँगा ॥८॥ जिस शरीर के प्रसन्न रहने पर यह प्राण सुख को तथा मनोनुकूल भोगों को प्राप्त करता है ॥९॥ हे देवूदत ! इस बात को जानकर स्वर्ग का भोग मुझे नहीं भोगना है । वहाँ भी भोगों से दुःख देने वाली भयङ्कर व्याधियाँ होती हैं ॥१०॥ हे मातले ! पाप के ही कारण बुढ़ापे का दोष होता है । आप मेरे पुण्य से युक्त षोडशवर्षीय शरीर को देखें ॥११॥ जन्म से लेकर आज तक मेरे शरीर पचास वर्ष का हो गया है फिर भी मेरा शरीर नवीन ही बना रहता है ॥१२॥ हे दूत ! मेरा समय इतना अधिक बीत गया

मम कालोगतो दूत अब्दानां शतमुत्तमम्। यथा षोडशवर्षस्य कायःपुंसःप्रशोभते ॥१३॥
यथा मे शोभते देहो बलवीर्यसमन्वितः। नैवग्लानिर्न मे हानिर्नश्रमो व्याधयो जरा ॥१४॥
मातले मम कायोऽपि धर्मोत्साहेन वर्द्धते। सर्वामृतमयं दिव्यमौषधं परमौषधम् ॥१५॥
पापव्याधि प्रणाशार्थं धर्माख्यंहि कृतम्पुरा। तेन मे शोधितःकायो गतदोषस्तु जायते॥१६॥
हृषीकेशस्य सन्धानं नामोच्चारणमुत्तमम्। एतद्रसायनं दूत नित्यमेव करोम्यहम् ॥१७॥
तेन मे व्याधयो दोषाः पापाद्याःप्रलयं गताः।
विद्यमाने हि संसारे कृष्णनाम्नि महौषधे ॥१८॥
मानवा मरणं यान्ति पापव्याधि प्रपीडिताः। न पिबन्तिमहामूढाःकृष्णनामरसायनम् ॥१९॥
तेन ध्यानेन ज्ञानेन पूजाभावेन मातले। सत्येन दानपुण्येन ममकायो निरामयः ॥२०॥
पापर्द्धेरामयाःपीडाःप्रभवन्ति शरीरिणः। पीडाभ्यो जायतेमृत्युःप्राणिनां नात्रसंशयः ॥२१॥
तस्माद्धर्मःप्रकर्तव्यःपुण्यसत्याश्रयैर्नरैः। पञ्चभूतात्मकःकायःशिरासन्धिविजर्जरः ॥२२॥
एवं सन्धीकृतोमर्त्यो हेमकारीव टङ्कणैः। तत्र भाति महानग्निर्द्धातुरेवचरःसदा॥२३॥
शतखण्डमये विप्रःय संधते स बुद्धिमान्। हरेर्नाम्ना च दिव्येन सौभाग्येनापि पिप्पलः॥२४॥
पञ्चात्मका हि ये खण्डाः शतसन्धिविवर्जराः।तेन सन्धारिताःसर्वे कायो धातुसमो भवेत्॥२५॥
हरेःपूजोपचारेण ध्यानेन नियमेन च। सत्यभावने दानेन नूत्नःकायो विजायते॥२६॥

है फिर भी सोलह वर्ष के पुरुष के शरीर के समान शोभता है ॥१३॥ मेरा शरीर बल और पराक्रम से युक्त है। न मुझको श्रान्ति होती है और न हानि होती है, मुझे न श्रम है, न व्याधि है और न जरा है ॥१४॥ हे मातले ! मेरे शरीर में धर्म सोत्साह बढ़ रहा है। धर्म सम्पूर्ण रूप से अमृत स्वरूप है, दिव्य औषध परमौषध है ॥१५॥ यह पहले से पापों तथा व्याधियों का विनाश करने के लिए बना है। उस धर्म से मैंने अपने शरीर का शोधन किया है उसके कारण मेरा शरीर दोष से रहित हो गया है ॥१६॥ भगवान् हृषीकेश का ध्यान और उनका नामोच्चारण यही उत्तम रसायन है। हे दूत ! मैं उसका नित्य सेवन करता हूँ ॥१७॥ उसके कारण मेरे रोग तथा दोष पाप आदि विनष्ट हो गये। संसार में जब कृष्ण का नाम रूपी महौषध विद्यमान है ॥१८॥ फिर भी जो मनुष्य पाप रूपी व्याधि से पीड़ित होकर मरते हैं। वे महामूर्ख हैं क्योंकि वे कृष्ण के नाम रूपी रसायन का पान नहीं करते हैं ॥१९॥ उस ध्यान, ज्ञान और पूजा के भाव से तथा सत्य, दान एवं पुण्य से मेरा शरीर नीरोग है ॥२०॥ पाप की वृद्धि होने पर शरीरधारियों को रोग और पीड़ा होती हैं। उन पीड़ाओं से प्राणियों की मृत्यु होती हैं, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२१॥ पुण्य तथा सत्य का आश्रय लेने वाले मनुष्यों को धर्म करना चाहिए। पाञ्चों भूतों से बना हुआ यह शरीर शिराओं की संधि (जोड़) से अत्यन्त जर्जर है ॥२२॥ इस तरह संधियों (जोड़ों) से निर्मित मनुष्य टंकणों के द्वारा सुवर्णकार के समान है। उसमें धातु के भीतर संचरण करने वाली अग्नि सुशोभित होती है ॥२३॥ हे विप्र! पिप्पल सैकड़ों टुकड़ों वाले इस शरीर को बुद्धिमान् पुरुष श्रीहरि के नाम रूप दिव्य सौभाग्य द्रव्य से जोड़ता है ॥२४॥ पञ्च भूतात्मक जो टुकड़े हैं जिनमें सैकड़ों जोड़ हैं, वे सब श्रीहरिनाम के द्वारा जुड़ जाते हैं और यह शरीर धातु के समान सुदृढ़ हो जाता है ॥२५॥ श्रीहरि की पूजा के उपचारों, ध्यान तथा नियम के द्वारा, सत्यभाव तथा दान से शरीर नवीन होता जाता है ॥२६॥ हे मातले ! उससे शरीर के दोष विनष्ट

दोषा नश्यन्ति कायस्य व्याधयःशृणु मातले ।
बाह्याभ्यन्तरशौचं हि दुर्गन्धिर्नैव जायते ॥२७॥
शुचिस्ततो भवेत्सूत प्रसादात्तस्य चक्रिणः। नाहं स्वर्गगमिष्यामिस्वर्गमत्रकरोम्यहम् ॥२८॥
तपसा चैव भावेन स्वधर्मेण महीतलम् । स्वर्गरूपं करिष्यामि प्रसादात्तस्य चक्रिणः ॥२९॥
एवं ज्ञात्वा प्रयाहि त्वं कथयस्व पुरन्दरम् ॥३०॥

सुकर्मोवाच

समाकर्ण्य ततः सूतो नृपतेःपरिभाषितम् । आशीर्भिरभिनन्द्याथ आमन्त्र्य नृपतिं गतः ॥३१॥
सर्वं निवेदयामास इन्द्राय च महात्मने । समाकर्ण्य सहस्राक्षो ययातेस्तु महात्मनः ॥३२॥
तस्याथ चिन्तयामासानयनार्थं दिवंप्रति ॥३३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थे ययातिचरिते द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

पिप्पल उवाच

गते तस्मिन्महाभागे दूत इन्द्रस्य वै पुनः । किं चकार सधर्मात्मा ययातिर्नहुषात्मजः ॥१॥

सुकर्मोवाच

तस्मिन्गते देववरस्य दूते सचिन्तयामास नरेन्द्रसूनुः ।
आहूयदूतान्प्रवरान्स सत्वरं धर्मार्थयुक्तं वच आदिदेशः ॥२॥

हो जाते हैं । उससे बाह्य तथा आभ्यन्तर शौच हो जाता है, शरीर की दुर्गन्धि समाप्त हो जाती है ॥२७॥ हे सूत ! भगवान् विष्णु की कृपा से मनुष्य पवित्र हो जाता है । मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा; पृथिवी पर ही स्वर्ग बनाऊँगा ॥२८॥ तपस्या, भाव तथा अपने धर्म के द्वारा पृथिवी को भगवान् विष्णु की कृपा से मैं स्वर्ग रूप बनाऊँगा ॥२९॥ इस तरह से जानकर आप जायें और इन्द्र से मेरी बातों को कह दें **सुकर्मा ने कहा**— राजा की बातों को सुनकर सारथि ने ॥३०॥ राजा को आशीर्वादों से अभिनंदित किया और राजा से विदा लेकर वे चले गये । उन्होंने जाकर सारी बातें इन्द्र को बतलाया । उसके बाद इन्द्र ययाति को स्वर्ग लाने के लिए उपाय सोचने लगे ॥३१-३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७२।।

ययाति द्वारा अपने राज्य में विष्णु सेवा की अनिवार्यता की घोषणा

पिप्पल ने कहा— इन्द्र के उस दूत के चले जाने के बाद नहुष के पुत्र धर्मात्मा ययाति ने क्या किया ? **सुकर्मा ने कहा**— देवराज के उस दूत के चले जाने के बाद नहुष के पुत्र ययाति ने शीघ्र ही श्रेष्ठ

गच्छन्तु दूताःप्रवराःपुरोत्तमे देशेषु द्वीपेष्वखिलेषु लोके ।
कुर्वन्तु वाक्यं मम धर्मयुक्तं व्रजन्तु लोकाःसुपथा हरेश्च ॥३॥
भावैःसुपुण्यैरमृतोपमानैर्ध्यानैश्चज्ञानैर्यजनैस्तपोभिः ।
यज्ञैश्च दानैर्मधुसूदनैकमर्चन्तु लोका विषयान्विहाय ॥४॥
सर्वत्र पश्यन्त्वसुरारिमेकं शुष्केषु चार्द्रेष्वपि स्थावरेषु ।
अभ्रेषु भूमौ सचराचरेषु स्वीयेषु कायेष्वपि जीवरूपम् ॥५॥
देवंतमुद्दिश्य दिशन्तु दानमातिथ्यभावैःपरिपैत्रिकैश्च ।
नारायणं देववरं यजध्वं दोषैर्विमुक्ता अचिराद्भविष्यथ ॥६॥
यो मामकं वाक्यमिहैव मानवो लोभाद्विमोहादपि नैव कारयेत् ।
स शास्यतां यास्यति निर्घृणो ध्रुवं ममापि चौरो हि यथानिकृष्टः ॥७॥
आकर्ण्य वाक्यं नृपतेश्चदूताःसंहृष्टभावाःसकलां च पृथ्वीम् ।
आचख्युरेवं नृपतेःप्रणीतमादेशभावं सकलं प्रजासु ॥८॥
विप्रादिमर्त्या अमृतं सुपुण्यमानीतमेवं भुवि तेन राज्ञा ।
पिबन्तु पुण्यं परिवैष्णवाख्यं दोषैर्विहीनं परिणाममिष्टम् ॥९॥
श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेवम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१०॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्वेव पिबन्तु लोकाः ॥११॥

दूतों को बुलाकर धर्म एवं अर्थ युक्त वाणी से उन सबों को आदेश दिया। हे दूतों ! नगर में, देशों में तथा संसार के समस्त द्वीपों में तुमलोग जाओ और कह दो कि संसार के सभी लोग मेरे आदेश का पालन करें और श्रीहरि की भक्ति करें ॥३॥ सभी लोग विषयों का परित्याग करके पवित्र भावों, अमृत के समान ध्यानों, ज्ञान, यजन, तपस्या, यज्ञ तथा दान के द्वारा केवल श्रीभगवान् मधुसूदन की अर्चना करें ॥४॥ सर्वत्र, सूखे, गीले, स्थावरों, मेघों तथा पृथिवी के चराचरात्मक जीवों में अपने शरीर के भीतर जीवरूप से विद्यमान केवल श्रीहरि का ही दर्शन करें ॥५॥ उन श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए दान दें, अतिथियों की सेवा करें, श्रद्धा करें, इस तरह से सभी लोग भगवान् नारायण की ही आराधना करें, ऐसा करने से सबलोग दोषों से ही मुक्त हो जायेंगे ॥६॥ इस संसार में जो मनुष्य मेरी इस आज्ञा का पालन किसी लोभ अथवा मोह के कारण नहीं करेगा वह निकृष्ट पुरुष चोर के समान मेरे द्वारा दण्डित किया जायेगा ॥७॥ राजा के आदेश को सुनकर सभी दूत अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक सम्पूर्ण पृथिवी की सारी प्रजाओं में राजा के आदेश का प्रचार कर दिए ॥८॥ उन सबों ने कहा— हे ब्राह्मण आदि मनुष्यों, महाराज पृथिवी पर अत्यनत पवित्र अमृत लाये हैं । आपलोग अनुकूल परिणाम प्रदान करने वाले, दोषों से रहित इस वैष्णवत्व रूपी अमृत का पान करें ॥९॥ भगवान् केशव, क्लेश को दूर करने वाले, श्रेष्ठ आनन्द स्वरूप, तथा परमार्थ स्वरूप हैं । उनके नाम रूपी अमृत को राजा ययाति पृथिवी पर लाये हैं, आपलोग उसका सदा पान करें॥१०॥ अपने हाथ में नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले, गुणों से युक्त श्रीनिवास तथा मधुसूदन

श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१२॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१३॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१४॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१५॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं बन्धस्य नाशमतिपङ्कजानाम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तु लोकाः ॥१६॥
नामामृतं सत्यमिदं सुपुण्यमधीत्य यो मानव विष्णुभक्तः ।
प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च ॥१७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने ययातिचरिते त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

नाम वाले सुरेश के नाम रूपी अमृत को महाराज लाये हैं, आपलोग उसका पान करें ॥११॥ श्रीपद्मनाभ, कमल के समान नेत्र वाले, संसार के आधार स्वरूप तथा सबके स्वामी श्रीभगवान् के दोषों को विनष्ट करने वाले नाम रूपी अमृत को महाराज पृथिवी पर लायें है । ऐ लोगों ! आपलोग उस अमृत का पान करें॥१२॥ पापों को विनष्ट करने वाले, व्याधि विनाशक, आनन्द स्वरूप, दानवों एवं दैत्यों का विनाश करने वाले दोषों को विनष्ट करने वाले नामामृत को महाराज पृथिवी पर लाये हैं, हे लोगों ! आपलोग उसका पान करें ॥१३॥ यज्ञ के अङ्ग स्वरूप चक्रपाणि पुण्यों के आकार स्वरूप तथा अनन्त सुख स्वरूप दोष विनाशक नानामृत को महाराज भूमि पर लाये हैं, आपलोग उसका पान करें ॥१४॥ सम्पूर्ण जगत् के आश्रय रूप, विमल, विश्राम स्वरूप राम नामक रमण करने वाले मुरारि के नाम रूपी अमृत को महाराज पृथिवी पर लायें हैं । आपलोग उसका पान करें ॥१५॥ आदित्य के समान सभी प्रकार के अन्धकारों को विनष्ट करने वाले बुद्धिरूपी कमलों के बन्धन को विनष्ट करने वाले श्रीहरि के नाम रूपी दोष विनाशक अमृत को महाराज पृथिवी पर लाए हैं, हे लोगों ! आपलोग उसका पान करें ॥१६॥ यह नानामृत सत्य, पुण्य प्रदान करने वाला है, इसका जो विष्णुभक्त मनुष्य नियम पूर्वक प्रातःकाल अध्ययन करता है, वह महात्मा मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान्नान्तर्गत पितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७३।।

चौहत्तरवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

दूतास्तु ग्रामेषु वदन्ति सर्वे द्वीपेषु देशेष्वथ पत्तनेषु ।
लोकाः शृणुध्वं नृपतेस्तदाज्ञां सर्वप्रभावैर्हरिमर्चयन्तु ॥१॥
दानैश्च यज्ञैर्बहुभिस्तपोभिर्धर्माभिलाषैर्यजनैर्मनोभिः ।
ध्यानन्तुलोका मधुसूदनं तु आदेशमेवं नृपतेस्तु तस्य ॥२॥
एवं सुघुष्टं सकलं तु पुण्यमाकर्ण्य तं भूमितलेषु लोकैः ।
तदा प्रभृत्येव जयन्ति विष्णुं ध्यायन्ति गायन्ति जपन्ति मर्त्याः ॥३॥
वेदप्रणीतैश्च सुसूक्तमन्त्रैः स्तोत्रैः सुपुण्यैरमृतोपमानैः ।
श्रीकेशवं तद्गतमानसास्ते व्रतोपवासैर्नियमैश्च दानैः ॥४॥
विहाय दोषान्निजकायचित्तवागुद्भवान्प्रेमरताः समस्ताः ।
लक्ष्मीनिवासं जगतां निवासं श्रीवासुदेवं परिपूजयन्ति ॥५॥
इत्याज्ञा तस्य भूपस्य वर्तते क्षितिमण्डले । वैष्णवेनापि भावेन जनाः सर्वे जयन्ति ते ॥६॥
नामभिः कर्मभिर्विष्णुं यजन्ते ज्ञानकोविदाः । तद्ध्यानास्तद्व्यवसिता यजन्ते ज्ञानकोविदाः ॥७॥
यावद्भूमण्डलं सर्वं यावत्तपति भास्करः । तावद्भिमानवा लोकाः सर्वे भागवता बभुः ॥८॥
विष्णोर्ध्यानप्रभावेन पूजास्तोत्रेणनामतः । आधिव्याधिविहीनास्ते सञ्जाता मानवास्तदा ॥९॥
वीतशोकाश्चपुण्याश्च सर्वे चैव तपोधनाः । सञ्जाता वैष्णवा विप्र प्रसादात्तस्य चक्रिणः ॥१०॥
आमयैश्च विहीनास्ते दोषैरोषैश्च वर्जिताः । सर्वैश्वय समापन्नाः सर्वरोगविवर्जिताः ॥११॥

राजा की आज्ञा सुनकर लोगों का भागवत धर्म स्वीकार करना

सुकर्मा ने कहा— दूतों ने सभी ग्रामों, द्वीपों, देशों तथा पत्तनों में जाकर कहा— हे लोगों ! आपलोग राजा की आज्ञा को सुनें । आप सभी लोग हर प्रकार से श्रीहरि की अर्चना करें ॥१॥ अनेक प्रकार के दानों, यज्ञों तपस्याओं, धर्मशब्द वाच्य यजनों तथा मनों से हे लोगों ! आपलोग भगवान् मधुसूदन का ध्यान करें, यह राजा की आज्ञा है ॥२॥ इस तरह से सम्पूर्ण पृथिवी पर पवित्र घोषणा कर दी गयी उसको सुनकर सभी मनुष्य उसी समय से भगवान् विष्णु का ध्यान, नाम सङ्कीर्तन तथा जप करने लगे ॥३॥ वेदों के द्वारा प्रणीत सुन्दर सूक्तों, मन्त्रों तथा अमृत के समान पवित्र स्तोत्रों से भगवान् केशव में ही मन लगाकर व्रतों, उपवासों, नियमों तथा दानों से ॥४॥ अपने शरीर, वाणी और मन में होने वाले दोषों का परित्याग कर प्रेमपूर्वक सभी लोग, लक्ष्मी निवास, संसार के आश्रय स्वरूप भगवान् वासुदेव की पूजा करने लगे॥५॥ इस तरह सम्पूर्ण पृथिवी पर उस राजा की आज्ञा का पालन किया जाने लगा । सभी लोग वैष्णव भाव से श्रीभगवान् की पूजा करने लगे ॥६॥ ज्ञानी पुरुष नामों तथा कर्मों के द्वारा भगवान् की पूजा करते थे । वे उन्हीं के ध्यान में सदा लगे रहते थे और सबलोग विष्णु पूजा परायण हो गये ॥७॥ सम्पूर्ण पृथिवी पर जहाँ तक सूर्य तपते हैं, वहाँ तक सभी मनुष्य भागवत हो गये ॥८॥ उस समय सभी मनुष्य भगवान् के ध्यान, पूजा, स्तोत्र तथा नामोच्चारण के प्रभाव से आधि तथा व्याधि से रहित हो गये ॥९॥ हे विप्र ! भगवान्

प्रसादात्तस्य देवस्य सञ्जाता मानवास्तदा । अमराःनिर्जराः सर्वे धनधान्यसमन्विताः ॥१२॥
मर्त्याविष्णुप्रसादेन पुत्रपौत्रैरलङ्कृताः। तेषामेव महाभाग गृहद्वारेषु नित्यशः ॥१३॥
कल्पद्रुमाःसुपुण्यास्ते सर्वकामफलप्रदाः । सर्वकामदुघा गावःसचिन्तामणयस्तथा ॥१४॥
सन्ति तेषां गृहे पुण्याःसर्वकामप्रदायकाः । अमरा मानवा जाताःपुत्रपौत्रैरलङ्कृताः ॥१५॥
सर्वदोषविहीनास्ते विष्णोश्चैव प्रसादतः। सर्वसौभाग्यसम्पन्नाः पुण्यमङ्गलसंयुताः ॥१६॥
सुपुण्या दानसम्पन्नाः ज्ञानध्यानपरायणाः। न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् ॥१७॥
तस्मिञ्शासति धर्मज्ञे ययातौ नृपतौ तदा । वैष्णवा मानवाःसर्वे विष्णुव्रतपरायणाः ॥१८॥
तद्ध्यानास्तन्नताःसर्वे सञ्जाता भावतत्पराः । तेषां गृहाणि दिव्यानि पुण्यानि द्विजसत्तम ॥१९॥

पताकाभिःसुशुक्लाभिःशङ्खयुक्तानि तानि वै ।
गदाङ्कितध्वजाभिश्च नित्यं चक्राङ्कितानि च ॥२०॥

पद्माङ्कितानि भासन्ते विमानप्रतिमानि च। गृहाणि भित्तिभागेषु चित्रितानि सचित्रकैः॥२१॥
सर्वत्र गृहद्वारेषु पुण्यस्थानेषु सत्तमाः। वनानि सन्ति दिव्यानि शाद्वलानि शुभानि च ॥२२॥

तुलस्या च द्विजश्रेष्ठ तेषु केशवमन्दिरैः ।
भासन्ते पुण्यदिव्यानि गृहाणि प्राणिनां सदा ॥२३॥

सर्वत्र वैष्णवो भावो मङ्गलो बहुदृश्यते। शङ्खशब्दाश्चभूलोके मिथःस्फोटरवैस्सखे ॥२४॥
श्रूयन्ते तत्र विप्रेन्द्र दोषपापविनाशकाः । शङ्खस्वस्तिकपद्मानि गृहद्वारेषु भित्तिषु॥२५॥

चक्रधारी की कृपा से सभी तपस्वी पुरुष शोक रहित और पवित्र हो गये ॥१०॥ वे सब रोग रहित तथा दोष एवं रोग से रहित हो गये । वे सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न तथा सभी प्रकार के रोगों से रहित हो गये ॥११॥ उस समय श्रीभगवान् की कृपा से सभी मनुष्य अमर, जरा रहित तथा धन-धान्य से सम्पन्न हो गये ॥१२॥ सभी मनुष्य भगवान् विष्णु के प्रभाव से पुत्रों तथा पौत्रों से अलंकृत हो गये । हे महाभाग ! उन सबों के घर के द्वार पर ॥१३॥ सभी अभिप्रेत वस्तु रूप फल को प्रदान करने वाले पवित्र कल्पवृक्ष जग गये । गायें सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हो गयीं, तथा सबों के घर में चिन्तामणियाँ हो गयीं ॥१४॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली ये सारी वस्तुएँ सबों के घर में हो गयीं । पुत्रों तथा पौत्रों से अलंकृत सभी मनुष्य अमर हो गये ॥१५॥ वे भगवान् विष्णु की कृपा से सभी दोषों से रहित सभी सौभोग्यों से सम्पन्न तथा पुण्य मङ्गल से युक्त हो गये ॥१६॥ सबके सब अत्यन्त पुण्यवान्, दान करने वाले, तथा ज्ञान, ध्यान परायण हो गये । उस समय दुर्भिक्ष, व्याधि तथा किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी ॥१७॥ धर्मज्ञ राजा ययाति के शासन काल में सभी मनुष्य वैष्णव तथा भगवान् विष्णु का व्रत करने वाले हो गये ॥१८॥ सभी लोग भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले, भगवत् परायण तथा भगवद् भक्ति भाव में तत्पर थे । हे द्विज श्रेष्ठ ! उन सबों के गृह दिव्य तथा पवित्र हो गये ॥१९॥ उन सबों के गृह गदा के चिह्न से युक्त, श्वेत ध्वजा पताकाओं से युक्त और घरों में शङ्ख, चक्र के चित्र बने थे ॥२०॥ कमल के चित्र से युक्त वे गृह विमान के समान प्रतीत होते थे । घरों की दिवालों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र बने थे ॥२१॥ सर्वत्र घरों के द्वारों पर तथा पवित्र स्थानों में दिव्य, शाद्वल (हरी घासों वाले) तथा दिव्य वन थे ॥२२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुलसी तथा भगवान् केशव के मन्दिरों से लोगों के गृह सदा पवित्र एवं दिव्य प्रतीत होते थे ॥२३॥ सर्वत्र वैष्णव

विष्णुभक्त्या च नारीभिर्लिखितानि द्विजोत्तम ।
गीतरागसुवर्णैश्च मूर्च्छनातानसुस्वरैः ॥२६॥
गायन्ति केशवं लोका विष्णुध्यानपरायणाः ॥२७॥
हरिं मुरारिं प्रवदन्ति केशवं प्रीत्याजितं माधवमेव चान्ये ।
श्रीनारसिहं कमलेक्षणं तं गोविन्दमेकं कमलापतिं च ॥२८॥
कृष्णं शरण्यं शरणं जपन्ति रामं च जप्यैःपरिपूजयन्ति ।
दण्डप्रणामैःप्रणमन्ति विष्णुं तद्ध्यानयुक्ताःपरिवैष्णवास्ते ॥२९॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने
ययातिचरिते चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

विष्णुं कृष्णं हरिं रामं मुकुन्दं मधुसूदनम् । नारायणं विष्णुरूपं नारसिंहं तमच्युतम् ॥१॥
केशवं पद्मनाभं च वासुदेवं च वामनम् । वाराहं कमठं मत्स्यं हृषीकेशं सुराधिपम् ॥२॥

भाव तथा अनेक प्रकार के मङ्गल दिखायी पड़ते थे । सर्वत्र ताली के शब्दों के साथ शङ्ख की ध्वनि सुनायी पड़ती थी जो दोषों और पापों को विनष्ट करने वाली थी । घरों के द्वारों और दिवारों पर शङ्ख, स्वास्तिक और कमल के चिह्न बने थे ॥२४-२५॥ वे भगवान् विष्णु की भक्ति के कारण नारियों द्वारा बनाये गये थे। भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले लोग सुन्दर राग और वर्णों तथा मूर्छना एवं स्वरों से युक्त भगवान् केशव का गीत गाते थे ॥२६-२७॥ कुछ लोग हरि और मुरारि कहते थे और कुछ लोग प्रेम पूर्वक माधव का नाम लेते थे । कुछ लोग श्रीनारसिंह नाम को तथा कुछ लोग गोविन्द तथा कमलापति नाम को जपते थे । कुछ लोग शरण्य कृष्ण के नाम को जपते थे तथा कुछ लोग मन्त्रों द्वारा रक्षक राम का नाम जपते थे और उनकी पूजा करते थे । जो परम वैष्णव थे वे भगवद् ध्यान करते हुए भगवान् विष्णु को साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे ॥२८-२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७४।।

वैष्णव धर्म का पालन करने से ययाति का सदा तरुण बने रहना और उनकी प्रजाओं का रोग तथा मृत्यु से रहित होना

सुकर्मा ने पिप्पल से कहा— सभी मनुष्य सदा विष्णु, कृष्ण, हरि, राम, मुकुन्द, मधुसूदन, नारायण विष्णु, नारसिंह, अच्युत ॥१॥ केशव, पद्मनाभ, वासुदेव, वामन, कर्मठ, मत्स्य, हृषीकेश, सुराधिप, विश्वेश,

विश्वेशं विश्वरूपं च अनन्तमनघंशुचिम्। पुरुषं पुष्कराक्षं च श्रीधरंश्रीपतिं हरिम्॥३॥
श्रीदं श्रीशं श्रीनिवासं माधवं मोक्षदं प्रभुम्। इत्येवं हि समुच्चारं नामभिर्मानवाःसदा॥४॥
प्रकुर्वन्ति नराःसर्वे बालवृद्धाःकुमारिकाः। स्त्रियो हरिं सुगायन्ति गृहकर्मरताः सदा॥५॥
आसने शयने याने ध्याने वचसि माधवम्। क्रीडमानास्तथा बाला गोविन्दं प्रणमन्ति ते॥६॥
दिवारात्रौ सुमधुरं ब्रुवन्ति हरिनाम च। विष्णूच्चारोहि सर्वत्र श्रूयते द्विजसत्तम॥७॥
वैष्णवेन प्रभावेन मर्त्या वर्तन्ति भूतले। प्रासादकलशाग्रेषु देवतायतनेषु च॥८॥
यथा सूर्यस्य बिम्बानि तथा चक्राणि भान्ति च।
वैकुण्ठे दृश्यते भावस्तद्भावं जगतीतले॥९॥
तेन आज्ञाकृतं विप्र पुण्यं चापि महात्मना। विष्णुलोकस्य समतां तथानीतं महोतलम्॥१०॥
नहुषस्यापि पुत्रेण वैष्णवेन ययातिना। उभयोर्लोकयोर्भावमेकीभूतं महीतलम्॥११॥
भूतलस्यापि विष्णोश्च अन्तरं नैव दृश्यते। विष्णूच्चारं तु वैकुण्ठे यथा कुर्वन्ति वैष्णवाः॥१२॥
भूतले तादृशोच्चारं प्रकुर्वन्ति च मानवाः। उभयोर्लोकयोर्विप्र एकभावः प्रदृश्यते॥१३॥
जरारोगभयं नास्ति मृत्युहीना नराबभुः। दानभोगप्रभावश्च अधिको दृश्यते भुवि॥१४॥
पुत्राणां तु सुखं पुण्यमधिकं पौत्रजं नराः। प्रभुञ्जन्ति सुखेनापि [illegible]वा भुवि सत्तम॥१५॥
विष्णोःप्रसाददानेन उपदेशेन तस्य च। सर्वव्याधिविनिर्मुक्ता मानवा वैष्णवाःसदा॥१६॥
स्वर्गलोकप्रभावो हि कृतो राज्ञा महीतले। पञ्चविंशप्रमाणेन वर्षाणि नृपसत्तम॥१७॥

विश्वरूप, अनन्त, अनघ, शुचि पुरुष, पुष्कराक्ष, श्रीधर, श्रीपति, श्रीहरि ॥२-३॥ निवास, पीताम्बरधारी, माधव, मोक्षद, प्रभु इस तरह श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण सभी, बालक, वृद्ध और कुमारियाँ करती थीं। सदैव गृहकार्यो को करती हुयी स्त्रियाँ श्रीहरि का गायन करती थीं ॥४-५॥ आसन, शय्या, यान तथा ध्यान में एवं बातों में बालक क्रीड़ा करते हुए भगवान् माधव और गोविन्द को प्रणाम करते थे ॥६॥ सबलोग दिन-रात श्रीहरि के मधुर नामों का उच्चारण करते थे। हे द्विजश्रेष्ठ ! सर्वत्र भगवान् विष्णु के ही नाम का उच्चारण सुनायी पड़ता था ॥७॥ मनुष्य पृथिवी पर वैष्णव प्रभाव से व्यवहार करते थे। भवनों के कलशों के अग्रभाग में तथा मन्दिरों पर ॥८॥ सूर्य बिम्ब के समान चक्र सुशोभित होते थे। पृथिवी पर वैकुण्ठ के ही समान भाव दिखायी देता था ॥९॥ हे विप्र ! राजा ययाति ने इतना पुण्य किया कि उन्होंने पृथिवी को वैकुण्ठ के समान बना दिया ॥१०॥ नहुष के पुत्र ययाति वैष्णव थे। उन्होंने ऐसा किया कि वैकुण्ठ तभा भूलोक इन दोनों लोकों का भाव एक समान हो गया था ॥११॥ पृथिवी लोक और भगवान् विष्णु के लोक में कोई अन्तर नहीं दिखता था। जिस तरह विष्णुलोक में वैष्णवजन भगवान् विष्णु का नामोच्चारण करते हैं ॥१२॥ उसी तरह भूतल पर मनुष्य सदा भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण करते थे। हे विप्र ! (पिप्पल) दोनों लोकों में एक ही भाव दिखता था ॥१३॥ सभी मनुष्य जरा और रोग के भय से रहित तथा मृत्यु के भय से रहित हो गये। पृथिवी पर दान और भोग का प्रभाव अधिक दिखता था॥१४॥ लोग पुत्र जन्य सुख का अनुभव अपने पौत्रों को देखकर करते थे ॥१५॥ उस राजा के द्वारा भगवान् विष्णु की कृपा के प्रदान के द्वारा और उपदेश के द्वारा पृथिवी पर सभी वैष्णव मनुष्य सभी प्रकार के रोगों से रहित हो गये थे ॥१६॥ राजा श्रेष्ठ ययाति ने पृथिवी पर पच्चीस वर्षों में स्वर्ग का प्रभाव पृथिवी

वेदविज्ञा नराः सर्वे ज्ञानध्यानपरायणाः । यज्ञदानपराः सर्वे दयाभावाश्च मानवाः ॥१८॥
उपकाररताः पुण्या धन्यास्ते कीर्तिभाजनाः। सर्वेधर्मपराविप्र विष्णुध्यानपरायणाः॥१९॥
राज्ञा तेनोपदिष्टास्ते सञ्जाता वैष्णवा भुवि । श्रूयतां नृपशार्दूल विष्णुभक्तश्च नाहुषिः ॥२०॥
सर्वधर्मपरो नित्यं विष्णुभक्तश्च नाहुषिः । अब्दानां तत्र लक्षं हि तस्याप्येवं गतं भुवि॥२१॥
नूतनो दृश्यते कायःपञ्चविंशाब्दिको यथा । पञ्चविंशाब्दिको भाति रूपेण वयसा तदा ॥२२॥
प्रबलःप्रौढिसम्पन्नःप्रसादात्तस्य चक्रिणः । मानुषा भुवमास्थाय यमं नैव प्रयान्ति ते ॥२३॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ताःक्लेशपाशविवर्जिताः । सुखिनो दानपुण्यैश्च सर्वधर्मपरायणाः॥२४॥
विस्तारं ते जनाःसर्वे सन्तत्यापि गता नृप । यथा दूर्वा वटाश्चैव विस्तारं यान्ति भूतले ॥२५॥
तथा ते मानवाःसर्वे पुत्रपौत्रैःप्रविस्तृताः । मृत्युदोषविहीनास्ते चिरं जीवन्ति वै जनाः ॥२६॥
स्थिरकायाश्च सुखिनो जरारोगविवर्जिताः। पञ्चविंशाब्दिकाःसर्वे नरा दृश्यन्ति भूतले॥२७॥
सत्याचारपराःसर्वे विष्णुध्यानपरायणाः । एवं सर्वे च मर्त्यास्ते प्रसादात्तस्य चक्रिणः ॥२८॥
सञ्जाता मानवाः सर्वे दानभोगपरायणाः । मृतो न श्रूयते लोके मर्त्यःकोऽपि नरोत्तम ॥२९॥
शोकं नैव प्रपश्यन्ति दोषं नैव प्रयान्ति ते। यद्रूपं स्वर्गलोकस्य तद्रूपं भूतलस्य च ॥३०॥
सञ्जातं मानवश्रेष्ठ प्रसादात्तस्य चक्रिणः । विभ्रष्टा यमदूतास्ते विष्णुदूतैश्च ताडिताः ॥३१॥
रुदमाना गताःसर्वे धर्मराजं परस्परम्। तत्सर्वं कथितं दूतैश्चेटितं भूपतेस्तु तैः ॥३२॥

पर ला दिया ॥१७॥ सबलोग व्याधि रहित तथा ज्ञान एवं ध्यान में रत रहते थे । सभी मनुष्य यज्ञ तथा दान करने वाले और दया के भाव से सम्पन्न हो गये थे ॥१८॥ हे विप्र ! सभी मनुष्य उपकार करने वाले पुण्यवान्, धन्य और यश के पात्र हो गये थे सभी धार्मिक थे और भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहते थे॥१९॥ राजा का उपदेश सुनकर सभी लोग पृथिवी पर वैष्णव हो गये थे । **भगवान् विष्णु ने राजा से कहा—** हे राजन् ! आप राजा ययाति के चरित्र को सुनें ॥२०॥ ययाति सभी धर्मों का सदैव पालन करते थे और भगवान् विष्णु के भक्त थे । इस तरह से राजा ययाति के एक लाख वर्ष बीत गये ॥२१॥ किन्तु उनका शरीर उसी तरह से नवीन दिखता था जैसे वे पच्चीस वर्ष के हों । वे रूप और अवस्था से देखने में पच्चीस वर्ष के लगते थे ॥२२॥ भगवन् विष्णु की कृपा से उनका शरीर प्रबल तथा प्रौढ़ि से युक्त था लोग पृथिवी पर ही रहते थे कोई भी यमलोक में नहीं जाता था ॥२३॥ सबलोग राग, द्वेष और क्लेश से रहित थे । सभी धार्मिक हो गये थे और दान एवं धर्म करते रहते थे ॥२४॥ उन लोगों के सन्तान का विस्तार उसी तरह हो गया जैसे पृथिवी पर दूर्वा और वट वृक्ष का विस्तार हो जाता है ॥२५॥ सभी मनुष्यों के पुत्रों और पौत्रों का विस्तार हो गया था । लोग मृत्यु के दोष से रहित और दीर्घकाल तक जीवित रहते थे ॥२६॥ उनका जरा और रोग से रहित शरीर स्थिर था और वे सुखी थे । पृथिवी पर सभी मनुष्य पच्चीस वर्ष की अवस्था वाले प्रतीत होते थे ॥२७॥ सभी लोग सदाचारी सव्य भाषी और भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले थे । सभी मनुष्य इस तरह से भगवान् विष्णु की कृपा से हो गये थे ॥२८॥ दान धर्म करने वाले लोगों के हो जाने से किसी की भी मृत्यु नहीं सुनायी पड़ती थी ॥२९॥ उनको न तो शोक होता था और न उनमें कोई दोष आता था । स्वर्ग का जैसा रूप था उसी तरह का रूप भूलोक का भी हो गया था॥३०॥ भगवान् विष्णु की कृपा से सभी मनुष्य इस प्रकार के हो गये थे । भगवान् विष्णु के दूतों ने

अमृत्युभूतलं जातं दानभोगेने भास्करे । नहुषा स्यात्मजेनापि कृतं देव ययातिना ॥३३॥
विष्णुभक्तेन पुण्येन स्वर्गरूपं प्रदर्शितम्। एवमाकर्णितं सर्वं धर्मराजेन वै तदा॥३४॥
धर्मराजस्तदा तत्र दूतेभ्य:श्रुतविस्तरः । चिन्तयामास सर्वार्थं श्रुत्यैवं नृपचेष्टितम् ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने यायतिचरित्रे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

सौरिर्दूतैस्तथा सर्वै:सह स्वर्ग जगाम सः । द्रष्टुं तत्र सहस्राक्षं देववृन्दैःसमावृतम् ॥१॥
धर्मराजं समायान्तं ददर्श सुरराट् तदा । समुत्थाय त्वरा युक्तो दत्त्वा चार्घमनुत्तमम् ॥२॥
पप्रच्छागमनं तस्य कथयस्व ममाग्रतः । समाकर्ण्य महद्वाक्यं देवराजस्य भाषितम् ॥३॥
धर्मराजोऽब्रवीत्सर्वं ययातेश्चरितं महत् । श्रूयतां देवदेवेश यस्मादागमनं मम ॥४॥
कथयाम्यहमत्रापि येनाहमागतस्तव । नहुषस्यात्मजेनापि वैष्णवेन महात्मना॥५॥
वैष्णवाश्च कृता मर्त्या ये वसन्ति महीतले । वैकुण्ठस्य समं रूपं मर्त्यलोकस्य वै कृतम् ॥६॥

यमदूतों को मारकर भगा दिया ॥३१॥ रोते हुए वे सभी यमदूत यमराज के पास गये और महाराज ययाति के द्वारा किए जाने वाले कर्मो को उन्हें बतलाया ॥३२॥ हे यमराज ! दान और भोग से परिपूर्ण भूलोक, मृत्यु रहित हो गया है । नहुष के पुत्र ययाति ने पृथिवी को इस तरह का बना दिया है ॥३३॥ विष्णु के भक्त ययाति ने पृथिवी को स्वर्ग के समान बना दिया है । इन सारी वातों को जब यमराज ने सुना ॥३४॥ तो दूतों के द्वारा विस्तार पूर्वक सारी बातें सुनकर उन्होंने राजा के कर्मो पर विचार किया ॥३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्रान्तर्गत पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७५।।

धर्म की इन्द्र से प्रार्थना इन्द्र द्वारा ययाति को स्वर्ग लाने के लिए प्रयास किया जाना

सुकर्मा ने कहा— सभी दूतों के साथ यमराज स्वर्गलोक में देवताओं से घिरे हुए इन्द्र से मिलने के लिए गये ॥१॥ आते हुए यमराज को देखकर इन्द्र शीघ्रता से खड़े होकर श्रेष्ठ अर्घ प्रदान किए ॥२॥ उन्होंने यमराज से कहा कि आप अपने आगमन का कारण वतलायें । इन्द्र की वातों को धर्मराज ने सुना और उन्होंने उन्हें ययाति के चरित का विस्तार से वर्णन किया । **धर्मराज ने कहा—** हे देवराज ! मैं जिसलिए यहाँ आया हूँ उसको आप सुनें ॥३-४॥ मैं जिस प्रयोजन से आपके पास आया हूँ उसे वतलाता हूँ । नहुष के वैष्णव तथा महात्मा पुत्र ने ॥५॥ पृथिवी पर रहने वाले सभी मनुष्यों को वैष्णव वना दिया

अमरा मानवा जाता जरारोगविवर्जिताः। पापमेव न कुर्वन्ति असत्यं न वदन्ति ते॥७॥
कामक्रोधविहीनास्ते लोभमोहविवर्जिताः। दानशीला महात्मानःसर्वे धर्मपरायणाः ॥८॥
सर्वधर्मैःसमर्चन्ति नारायणमनामयम्। तेन वैष्णवधर्मेण मानवा जगतीतले ॥९॥
निरामया वीतशोकाःसर्वे च स्थिरयौवनाः। दुर्वा वटा यथा देव विस्तारं यान्ति भूतले॥१०॥
तथा ते विस्तरं प्राप्ताःपुत्रपौत्रैःप्रपौत्रकैः। तेषां प्रपौत्रैश्च वंशाद्वंशान्तरं गताः ॥११॥
एवं हि वैष्णवः सर्वो जरामृत्युविवर्जितः। मर्त्यलोकःकृतस्तेन नहुषस्यात्मजेन वै॥१२॥
पदभ्रष्टोऽस्मि सञ्जातो व्यापारेण विवर्जितः। एतत्सर्वं समाख्यातं मम कर्म विनाशनम् ॥१३॥
एवं ज्ञात्वा सहस्राक्ष लोकस्यास्य हितं कुरु ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथापृष्टोऽस्मि वै त्वया ॥१४॥
एतस्मात्कारणादिन्द्र आगतस्तवसन्निधौ ॥१५॥

इन्द्र उवाच

पूर्वमेव मयादूत आगमाय महात्मनः। प्रेषितो धर्मराजेन्द्र दूतेनास्यापि भाषितम्॥१६॥
नाहं स्वर्गसुखस्यार्थी नागमिष्ये दिवं पुनः। स्वर्गरूपं करिष्यामि सर्वं तद्भूमिमण्डलम्॥१७॥
इत्याचचक्षे भूपालःप्रजापाल्यं करोति सः। तस्य धर्मप्रभावेण भीतस्तिष्ठामि सर्वदा॥१८॥

धर्म उवाच

येन केनाप्युपायेन तमानय सुभूपतिम्। देवराज महाभाग यदीच्छसि मम प्रियम् ॥१९॥

है। उन्होंने मर्त्यलोक को वैकुण्ठ लोक के समान बना दिया है ॥६॥ जरा और रोग से रहित सभी मनुष्य अमर हो गये हैं। वे न तो झूठ बोलते हैं और न पाप करते हैं ॥७॥ वे सभी काम एवं क्रोध तथा लोभ एवं मोह से रहित हो गये हैं। सभी महात्मा हैं, दान करते हैं तथा सब धार्मिक हैं ॥८॥ वे सभी धर्मों से निर्दोष भगवान् नारायण की पूजा करते हैं। उस वैष्णव धर्म के कारण पृथिवी के मनुष्य ॥९॥ रोग रहित शोक रहित तथा स्थिर यौवन वाले हो गये हैं। हे देव ! वे पृथिवी पर दूर्वा तथा वट वृक्ष के समान फैल रहे हैं ॥१०॥ वे अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ इसी प्रकार से फैल गये हैं। उन सबों का पुत्रों तथा पौत्रों से एक वंश से दूसरा वंश बन गया है ॥११॥ इस तरह सभी वैष्णव जरा और मृत्यु से रहित हो गये हैं। इस तरह का मर्त्यलोक को नहुष के पुत्र ययाति ने बना दिया है ॥१२॥ मेरा अब कोई काम नहीं रह गया है, मैं पद भ्रष्ट हो गया हूँ। इस तरह से मेरे कर्मों को विनष्ट करने वाले कारणों को मैंने आपको बतला दिया ॥१३॥ हे इन्द्र ! इस बात को जानकर आप इस (स्वर्ग) लोक का कल्याण करें। आपने जो पूछा था वह मैंने बतला दिया ॥१४॥ हे इन्द्र ! इसी कारण से मैं आपके पास आया हूँ **इन्द्र ने कहा—** मैं पहले उनके यहाँ आने के लिए दूत भेजा था ॥१५॥ उन्होंने मेरे दूत को यह कहकर भेज दिया कि मैं स्वर्ग का सुख नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ; अतएव मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा ॥१६॥ मैं सम्पूर्ण भूमि मण्डल को स्वर्ग के समान बना दूँगा। उस राजा ने इस प्रकार से कहा है और वह प्रजाओं का पालन कर रहे है ॥१७॥ उस राजा के धर्म के प्रभाव से मैं सदा भयभीत रहता हूँ। **धर्म ने कहा—** आप किसी भी उपाय से उस

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य धर्मस्यापि सुराधिपः। चिन्तयामास मेधावी सर्वतत्त्वेनभूपते॥२०॥
कामदेवं समाहूय गन्धर्वांश्च पुरन्दरः। मकरन्दं रतिं देव आनिनाय महामनाः॥२१॥
तथाकुरुत वै यूयं यथाऽऽगच्छति भूपतिः। यूयं गच्छन्तु भूलोकं मयादिष्टा न संशयः॥२२॥

काम उवाच

युवयोस्तु प्रियं पुण्यं करिष्यामि न संशयः।
राजानं पश्य मां चैव स्थितं चैव समायुधि॥२३॥
एवमुक्त्वा गताः सर्वे यत्र राजा स नाहुषि।
नटरूपेण ते सर्वे कामाद्याः कर्मणा द्विज॥२४॥

आशीर्भिरभिनन्द्यैव ते च ऊचुःसुनाटकम्। तेषां तद्वचनंश्रुत्वा ययातिःपृथिवीपतिः॥२५॥
सभां चकार मेधावी देवरूपां सुपण्डितैः। समायातःस्वयं भूयो ज्ञानविज्ञानकोविदः॥२६॥
तेषां तु नाटकं राजा पश्यमानः सनाहुषिः। चरितं वामनस्यापि उत्पत्तिं विप्ररूपिणः॥२७॥
रूपेणाप्रतिमालोके सुस्वरं गीतमुत्तमम्। गायमाना जराराजन्नार्यारूपेण वै तदा॥२८॥
तस्याःगीतविलासेन हास्येन ललितेन च। मधुरालापतस्तस्य कन्दर्पस्य च मायया॥२९॥
मोहितस्तेन भावेन दिव्येन चरितेन च। बलेश्चैव यथारूपं विन्ध्यावल्या यथा पुरा॥३०॥
वामनस्य यथा रूपं चक्रे मारोथ तादृशम्। सूत्रधारःस्वयंकामो वसन्तःपारिपार्श्वकः॥३१॥
नटीवेषधरा जाता सा रतिर्हृष्टवल्लभा। नेपथ्यान्तश्चरी राजन्सा तस्मिन्नृत्यकर्मणि॥३२॥

राजा को स्वर्गलोक में लायें ॥१८॥ यदि आप मेरा कल्याण करना चाहते हैं तो ऐसा ही करें। धर्म की इस तरह की बातों को सुनकर मेधावी इन्द्र ने हर प्रकार से विचार किया। उन्होंने कामदेव को बुलाया ॥१९-२०॥ साथ ही मकरन्द और रति को भी बुलाया। इन्द्र ने उन सबों से कहा कि आपलोग ऐसा करें कि राजा ययाति स्वर्गलोक में आ जायँ ॥२१॥ आपलोग मेरे आदेश से भूलोक में चले जायँ। **कामदेव ने कहा**— मैं आप दोनों को प्रिय पुण्य कार्य करूँगा ॥२२॥ आप मेरे तथा राजा ययाति युद्ध को देखें। इस तरह से वे सब राजा ययाति के पास चले गये ॥२३॥ हे द्विज (पिप्पल)! वे नाट के रूप में वहाँ आये। उन सबों ने राजा को आशीर्वाद दिया और नाटक करने को कहे ॥२४॥ सबों की बातों को सुनकर राजा ने पण्डितों के साथ देव रूपिणी सभा किया। उस सभा में ज्ञान-विज्ञान में दक्ष राजा स्वयं आये। नहुष पुत्र राजा ययाति स्वयं उन सबों के नाटक को देख रहे थे ॥२५-२६॥ उन सबों ने वामन चरित का नाटक किया और वामन की उत्पत्ति का भी नाटक किया। उस नाटक में अप्रतिम सुन्दरी नारी का रूप बना कर जरा ने सुन्दर स्वर से गीत गाया। उसके सुन्दर गीत के भाव और हास्य के द्वारा ॥२७-२८॥ उसके मधुर आपलाप तथा काम की माया से राजा जरा भाव तथा दिव्य चरित से मोहित हो गये ॥२९॥ कामदेव ने राजा बलि, विन्ध्यावली तथा वामन के ही समान रूप बनाया ॥३०॥ उस नाटक में स्वयं कामदेव सूत्रधार थे, वसन्त उसका परिपार्श्वक (सहायक) था। प्रसन्न तथा प्रसन्न रहने वाली रति नटी का वेष बनायी थी॥३१॥ उस नाटक में नेपथ्य के अन्त में रति ही नृत्य करती थी। महाप्राज्ञ मकरन्द ने राजा को मोहित

मकरन्दो महाप्राज्ञः क्षोभयामास भूपतिम् ।
यथा यथा पश्यति नृत्यमुत्तमं गीतं समाकर्णति स क्षितीशः ॥३३॥
तथातथामोहितवान्सभूपतिं नटीप्रणीतेन महानुभावः ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थे ययातिचरिते षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

कामस्य गीतलास्येन हास्येन ललितेन च। मोहितो राजराजेन्द्रो नटरूपेण पिप्पल॥१॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं च स राजा नहुषात्मजः । अकृत्वा पादयोःशौचमासने उपविष्टवान् ॥२॥
तदनन्तरं तु सम्प्राप्य सञ्चार जरानृपम्। कामेनापि नृपश्रेष्ठं इन्द्रकार्यं कृतं हितम्॥३॥
निवृत्ते नाटके तस्मिन्गतेषु तेषु भूपतिः। जराभिभूतो धर्मात्मा कामसंसक्तमानसः॥४॥
मोहितः काममोहेन विह्वलो विकलेन्द्रियः । अतीव मुग्धो धर्मात्मा विषयैश्चापवाहितः॥५॥
एकदा तु गतो राजा मृगया व्यसनातुरः । वने च क्रीडते सोऽपि मोहरागवशं गतः ॥६॥

किया ॥३२॥ राजा जैसे-जैसे उस नृत्य को देखते थे और उत्तम गीत को सुनते थे वैसे-वैसे राजा को नटी ने अपने महाप्रभाव से मोहित कर दिया ॥३३-३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमि खण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग ययाति चरितान्तर्गत छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७६।।

नृत्यगीत परायण राजा के शरीर में अशौच के कारण जरा का प्रवेश, ययाति का आखेट के लिए किसी सरोवर के तट पर जाना, ययाति का विशाला के मुख से अश्रु विन्दुमती का चरित्र सुनना, ययाति को विशाला द्वारा बतलाया जाना कि उनके शरीर में जरात्व आ गया है

सुकर्मा ने कहा— हे पिप्पल ! कामदेव के मनोहर गीत, नृत्य तथा हास्य एवं नटरूप के द्वारा राजराज ययाति मोहित हो गये ॥१॥ नहुष के पुत्र राजा मलमूत्र का त्याग करके अपने पैरों को पवित्र किए बिना ही अपने आसन पर बैठ गये ॥२॥ उसी समय अवसर प्राप्त करके राजा जरा ने ययाति के शरीर में प्रवेश किया और कामदेव ने भी इन्द्र का काम पूरा कर दिया ॥३॥ नाटक समाप्त हो जाने के बाद जब वे सब चले गये तो धर्मात्मा राजा वार्द्धक्य से अभिभूत हो गये । उनका मन काम में ही लगा था ॥४॥ काम के मोह से मोहित अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियों वाले राजा विषयों के द्वारा आकृष्ट होकर अत्यन्त मोहित हो गये ॥५॥ आखेट के व्यसन से आतुर बने हुए राजा एक बार मोह तथा राग के वशवर्ती होकर वन में गये और आखेट करने लगे ॥६॥ सरस क्रीड़ा करने वाले राजा के समक्ष एक चार सींगों वाला अत्यन्त सुन्दर

सरसंक्रीडमानस्य नृपतेश्च महात्मनः । मृगश्चैकः समायातश्चतुःशृङ्गोह्यनौपमः ॥७॥
सर्वाङ्गसुन्दरो राजन्हेमरूप तनुरुहः । रत्नज्योतिः सुचित्राङ्गो दर्शनीयो मनोहरः ॥८॥
अभ्यधावत्सवेगेन बाणपाणिर्धनुर्द्धरः । इत्यमन्यत मेधावी कोऽपि दैत्यःसमागतः ॥९॥
मृगेण च स तेनापि दूरमाकर्षितो नृपः । गतः स रथवेगेन श्रमेण परिखेदितः ॥१०॥
वीक्षमाणस्य तस्यापि मृगश्चान्तरधीयत । स पश्यति वनं तत्र नन्दनोपममद्भुतम् ॥११॥
चारुवृक्षसमाकीर्णं भूतपञ्चकशोभितम् । गुरुभिश्चन्दनैः पुण्यैः कदलीखण्डमण्डितैः ॥१२॥
बहुलाशोकपुन्नागैर्नालिकेरैश्च तिन्दुकैः । पूगीफलैश्च खर्जूरैःकुमुदैः सप्तपर्णकैः ॥१३॥
पुष्पितैः कर्णिकारैश्च नानावृक्षैः सदाफलैः । पुष्पितामोदसंयुक्तैः केतकैः पाटलैस्ततः ॥१४॥
वीक्षमाणो महाराजो ददर्श सर उत्तमम् । पुण्योदकेन सम्पूर्णं विस्तीर्णं पञ्च योजनम् ॥१५॥
हंसकारण्डवाकीर्णं जलपक्षिविनादितम् । कमलैश्चापि मुदितं श्वेतोत्पलविराजितम् ॥१६॥
रक्तोत्पलैः शोभमानं हाटकोत्पलमण्डितम् । नीलोत्पलैःप्रकाशितं कह्लारैरतिशोभितम् ॥१७॥
मत्तैर्मधुकरैश्चापि सर्वत्रपरिनादितम् । एवं सर्वगुणोपेतं ददर्श सर उत्तमम् ॥१८॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दशयोजनदीर्घकम् । तडागं सर्वतोभद्रं दिव्यभावैरलङ्कृतम् ॥१९॥
रथवेगेन संखिन्नःकिंचिच्छ्रमनिपीडितः । निषसाद तटे तस्य चूतच्छायां सुशीतलाम् ॥२०॥
स्नात्वा पीत्वा जलं शीतं पद्मसौगन्ध्यवासितम् ।
सर्वश्रमोपशमनममृतोपममेवतत् ॥२१॥

मृग आया ॥७॥ उस मृग के सभी अङ्ग सुन्दर थे, उसके रोएँ सुवर्ण के समान चमकते थे । उस मृग की ज्योति रत्न के समान थी उसके अङ्ग अद्भुत तथा मनोहर थे ॥८॥ उसको देखकर मेधावी राजा ने समझा कि लगता है कि कोई दैत्य आ गया है । वे धनुष बाण धारण करके वेग से दौड़े ॥९॥ उस मृग के पीछे राजा रथ के साथ वेग से दौड़ते हुए दूर आ गये और वे थक गये ॥१०॥ राजा को देखते-ही-देखते वह मृग भी अन्तर्धान हो गया । राजा ने वहाँ पर नन्दन वन के समान सुन्दर वन को देखा ॥११॥ उस वन में सुन्दर वृक्ष भरे थे वह पञ्चभूतों से सुशोभित था । बड़े-बड़े पवित्र चन्दन के वृक्ष थे, कदली वन था॥१२॥ वह वन बकुल, अशोक, पुन्नाग, नारियल, तिंदुक, सुपारी, खजूर, कुमुद, सप्तपर्ण, विकसित कर्णिकार, सदा फलों से युक्त रहने वाले अनेक प्रकार के वृक्ष, विकसित तथा सुगन्धित केवड़ा तथा गुलाब के पेड़ लगे थे ॥१३-१४॥ इन सबों को देखते हुए महाराज ने एक मनोहर सरोवर को देखा, उसमें पवित्र जल भरा था और उसका विस्तार पाँच योजन था ॥१५॥ उसमें भरे हुए हंस तथा कारण्डव पक्षियों की ध्वनि से वह सरोवर ध्वनित हो रहा था । वह सरोवर विकसित कमलों तथा श्वेत कमलों से सुशोभित था॥१६॥ वह रक्त कमल तथा स्वर्णिम कमलों से भी सुशोभित था । उसमें नील कमल तथा कह्लार सुशोभित हो रहे थे ॥१७॥ चारों ओर मदमत्त भौंरें गुंजार कर रहे थे । इस तरह से सभी गुणों से युक्त उत्तम सरोवर को उन्होंने देखा । वह सरोवर पाँच योजन चौड़ा और दश योजन लम्बा था । इस तरह का वह सरोवर हर तरह से मनोहर तथा दिव्य भावों से अलंकृत था ॥१८-१९॥ रथ के वेग से कुछ थके हुए राजा उस सरोवर के तट पर आम की शीतल छाया में बैठ गये ॥२०॥ उन्होंने अमृत के समान सभी प्रकार के श्रम को दूर करने वाले जल में स्नान किया तथा कमल की सुगन्धि से सुगन्धित जल का पान भी

वृक्षच्छाये ततस्तस्मिन्नुपविष्टेन भूभृता। गीतध्वनिःसमाकर्णि गीयमानो यथातथा॥२२॥
यथा स्त्री गायते दिव्या तथायं श्रूयते ध्वनिः ।
गीतप्रियो महाराज एवं चिन्तां परां गतः ॥२३॥
चिन्ताकुलस्तुधर्मात्मा यावच्चिन्तयते क्षणम्। तावन्नारीवरा काचित्पीनश्रोणीपयोधरा ॥२४॥
नृपतेः पश्यतस्तस्य वने तस्मिंस्समागता। सर्वाभरणशोभाङ्गी शीललक्षणसम्पदा ॥२५॥
तस्मिन्वनेसमायाता नृपतेः पुरतः स्थिता। तामुवाच महाराजः काहि कस्य भविष्यसि ॥२६॥
किमर्थं हि समायाता तन्मे त्वं कारणं वद। पृष्टा सती तदा तेन न किंचिदपि पिप्पल॥२७॥
शुभाशुभं च भूपालं प्रत्यवोचद्वरानना। प्रहस्यैव गता शीघ्रं वीणादण्डकराऽबला॥२८॥
विस्मयेनापि राजेन्द्रो महता व्यापितस्तदा। मया सम्भाषिता चेयं मां न ब्रूतेस्म सोत्तरम्॥२९॥
पुनश्चिन्तां समापेदे ययातिः पृथिवीपतिः। यो वै मृगो मया दृष्टश्चतुःशृङ्गःसुवर्णकः ॥३०॥
तस्मान्नारी समुद्भूता तत्सत्यं प्रतिभाति मे। माया रूपमिदं सत्यं दानवानां भविष्यति॥३१॥
चिन्तयित्वा क्षणं राजा ययातिर्नहुषात्मजः। यावच्चिन्तयते राजा तावन्नारी महावने॥३२॥
अन्तर्धानं गता विप्र प्रहस्य नृपनन्दनम्। एतस्मिन्नन्तरे गीतं सुस्वरं पुनरेव तत् ॥३३॥
शुश्रुवे परमं दिव्यं मूर्छनातानसंयुतम्। जगाम सत्वरं राजा यत्र गीतध्वनिर्महान्॥३४॥
जलान्ते पुष्पकरं चैव सहस्रदलमुत्तमम्। तस्योपरि वरा नारी शीलरूपगुणान्विता॥३५॥
दिव्यलक्षणसम्पना दिव्याभरणभूषिता। दिव्यैर्भावैःप्रभात्येका वीणादण्डकराबिला॥३६॥

किया ॥२१॥ उसके बाद वृक्ष की छाया में बैठे हुए राजा ने सुन्दर गीत की ध्वनि को सुना ॥२२॥ राजा सोचने लगे कि जैसे कोई दिव्य स्त्री गीत गा रही हो उसी प्रकार की यह ध्वनि सुनायी देती है ॥२३॥ इस तरह से जब वे धर्मात्मा गीत प्रिय राजा सोच ही रहे थे, उसी समय उस राजा के समक्ष एक युवती आयी उसके श्रोणी प्रदेश और स्तन पुष्ट थे । वह समस्त अलङ्कारों से अलंकृत थी तथा वह शील तथा सुन्दर लक्षणों से सुशोभित थी ॥२४-२५॥ वह उस वन में राजा के सामने आयी और खड़ी हो गयी । राजा ने उससे पूछा तुम कौन हो ? और किसकी पत्नी हो ?॥२६॥ तुम क्यों यहाँ आयी हो अपने आने का कारण बतलाओ राजा के द्वारा पूछे जाने पर भी उस सुन्दरी ने अच्छा बुरा कुछ भी नहीं कहा । अपने हाथ में बीणा ली हुयी वह जोर से हँसकर वहाँ से शीघ्र चली गयी ॥२७-२८॥ यह देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यित हो गये । वे सोचे, उससे मैंने पूछा किन्तु उसने मुझे उत्तर नहीं दिया ॥२९॥ उसके बाद राजा फिर चिन्तित हो गये । वे सोचने लगे, मैंने जिस चार सींगों वाले सुवर्ण मृग को देखा ॥३०॥ लगता है, वही यह नारी बन गया है, लगता है कि यही सत्य है सत्य है कि यह दानवों का कोई मायावी रूप है॥३१॥ इस तरह से विचार करके नहुष पुत्र ययाति जब तक सोचते ही रहें उसी समय वह नारी उस महावन में ॥३२॥ राजा पर जोर से हँसकर अन्तर्धान हो गयी । उसी समय राजा ने पुनः उस सुन्दर स्वर वाले गीत को सुना ॥३३॥ वह गीत दिव्य तथा मूर्छना एवं तान से युक्त था । राजा शीघ्रता से वहाँ गये जहाँ से वह सुन्दर स्वर वाले गीत की ध्वनि आ रही थी ॥३४॥ जल के भीतर उत्तम सहस्रदल कमल था, उसके ऊपर वह श्रेष्ठ रूप, गुण तथा शील से युक्त नारी विराजमान थी ॥३५॥ वह दिव्य लक्षणों से युक्त थी तथा समस्त आभरणों से भूषित थी । वह अपने हाथ में बीणा धारण की थी तथा अपने दिव्य भावों से

गायन्ती सुस्वरं गीतं तालमानलयान्वितम्। तेन गीतप्रभावेन मोहयन्ती चराचरान् ॥३७॥
देवान्मुनिगणान्सर्वान्दैत्यान्गन्धर्वकिन्नरान् । तां दृष्ट्वा स विशालाक्षीं रूपतेजोपशालिनीम्॥३८॥
संसारे नास्ति चैवान्या नारीदृशी चराचरे। पुरा नटो जरा युक्तो नृपतेःकायमेव हि ॥३९॥

सञ्चारितो महाकामस्तदाऽसौ प्रकटोऽभवत् ।
घृतंस्पृष्ट्वा यथावह्नी रश्मिवान्सम्प्रजायते ॥४०॥
तां च दृष्ट्वा तथाकामस्तत्कायात्प्रकटोऽभवत् ।
मन्मथाविष्टचित्तोऽसौ तां दृष्ट्वा चारुलोचनाम् ॥४१॥

ईदृग्रूपा न दृष्टा मे युवतीविश्वमोहिनी। चिन्तयित्वा क्षणं राजा कामसंसक्तमानसः ॥४२॥
तस्याःस विरहेणापि लुब्धोऽभून्नृपतिस्तदा। कामाग्निना दह्यमानःकामज्वरेण पीडितः ॥४३॥

कथं स्यान्मम चैवेयं कथं भावो भविष्यति ।
यदा मां गूहते बाला पद्मास्यं पद्मलोचना ॥४४॥

यदीयं प्राप्यते तर्हि सफलं जीवितं भवेत्। एवं विचिन्त्य धर्मात्मा ययातिःपृथिवीपतिः ॥४५॥

तामुवाच वरारोहां कात्वं कस्यापि वा शुभे ।
पूर्वं दृष्टा तु या नारी सादृष्टा पुनरेव च ॥४६॥
तां पप्रच्छ स धर्मात्मा का चेयं तव पार्श्वगा ।
सर्वं कथय कल्याणि अहं हि नहुषात्मजः ॥४७॥

सोमवंशप्रसूतोऽहं सप्तद्वीपाधिपःशुभे। ययातिर्नाम मे देवि ख्यातोऽहं भुवनत्रये॥४८॥
तव सङ्गमने चेतो भावमेवं प्रवाञ्छते। देहि मे सङ्गमं भद्रे कुरु सुप्रियमेव हि॥४९॥

देदीप्यमान थी ॥३६॥ वह ताल तथा लय से युक्त सुन्दर स्वर से गीत गा रही थी । उस गीत के प्रभाव से वह देवता, मुनिगण, दैत्य, गन्धर्व तथा किन्नर इत्यादि सम्पूर्ण चराचरों को मोहित कर रही थी । उस विशालाक्षी तथा रूप एवं तेज से सुशोभित उस नारी को देखकर ॥३७-३८॥ राजा ने सोचा चराचर में इस तरह की कोई दूसरी नारी नहीं है । पहले ही जरा से युक्त नट ने राजा के शरीर में ॥३९॥ महान् काम का संचार कर दिया था । वह उस समय प्रकट हो गया था । जिस तरह घी का स्पर्श होते ही अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है ॥४०॥ उसी तरह से उस नारी को देखकर उसके शरीर से काम प्रकट हो गया । उस सुन्दर नेत्र वाली को देखकर राजा का मन कामार्त हो गया ॥४१॥ राजा ने सोचा, मैने इस तरह की रूप वाली विश्वमोहिनी नारी को कभी नहीं देखा है । इस तरह से क्षणभर विचार करके राजा का मन काम से सन्तप्त हो गया ॥४२॥ उसके विरुद्ध के कारण भी राजा व्याकुल हो गये थे । उनको कामाग्नि जलाने लगी थी और वे कामज्वर से पीड़ित हो गये थे ॥४३॥ यह कमल के समान मुखड़े तथा कमल के समान नेत्रों वाली बाला मुझको कब आलिङ्गित करेगी ? यह मेरी कैसे बन सकती है ? मुझमें इसका भाव कैसे बनेगा ?॥४४॥ यदि यह मुझे मिल जाती है तो मेरा जीवन सफल हो जाय । इस प्रकार से विचार करके धर्मात्मा राजा ॥४५॥ ने उस सुन्दरी से कहा— तुम कौन हो ? मैंने जिस नारी को पहले देखा था वही तुम पुनः दिखायी पड़ी ॥४६॥ हे कल्याणि ! इन सारी बातों को तुम बतलाओ मैं तो महाराज नहुष का पुत्र हूँ ॥४७॥ मैं सोमवंश में उत्पन्न हूँ और सातो द्विपों का स्वामी हूँ । हे देवि ! मैं त्रैलोक्य में ययाति

यं यं हि वाञ्छसे भद्रे तद्ददामि न संशयः। दुर्जयेनापि कामेन हतोऽहं वरवर्णिनि॥५०॥
तस्मात्त्राहि सुदीनं मां प्रपन्नं शरणं तव। राज्यं च सकलामुर्वी शरीरमपि चात्मनः॥५१॥
सङ्गमे तव दास्यामि त्रैलोक्यमिदमेव ते। तस्य राज्ञो वचःश्रुत्वा सास्त्री पद्मनिभानना॥५२॥

विशालां स्वसखीं प्राह ब्रूहि राजानमागतम्।
नाम चोत्पत्तिस्थानं च पितरं मातरं शुभे॥५३॥
ममापि भावमेकाग्रमस्याग्रे च निवेदय।
तस्याश्च वाञ्छितं ज्ञात्वा विशाला भूपतिं तदा॥५४॥

उवाच मधुरालापैःश्रूयतां नृपनन्दन ॥५५॥

विशालोवाच

काम एष पुरा दग्धो देवदेवेन शम्भुना। रुरोद सा रतिर्दुःखाद्भर्त्रा हीनाऽपि सुस्वरम्॥५६॥
अस्मिन्सरसि राजेन्द्र सा रतिर्न्यवसत्तदा। तस्य प्रलापमेवं सा सुस्वरं करुणान्वितम्॥५७॥
समाकर्ण्य ततो देवाःकृपया परयान्विताः। सञ्जाता राजराजेन्द्र शङ्करं वाक्यमब्रुवन्॥५८॥
जीवयस्व महादेव पुनरेव मनोभवम्। वराकीयं महाभागा भर्तृहीनाहि कीदृशी॥५९॥
कामेनापि समायुक्तामस्मत्स्नेहात्कुरुष्व हि। तच्छुत्वा च वचःप्राह जीवयामि मनोभवम्॥६०॥
कायेनापि विहीनोऽयं पञ्चबाणो मनोभवः। भविष्यति न सन्देहो माधवस्य सखा पुनः॥६१॥
दिव्येनापि शरीरेण वर्तयिष्यति नान्यथा। महादेव प्रसादाच्च मीनकेतुःसजीवितः॥६२॥

के नाम से विख्यात हूँ ॥४८॥ मैं भाव पूर्वक तुम्हारे साथ सङ्गम करना चाहता हूँ। हे भ्रदे ! मेरे साथ सङ्गम करो और मुझे अपना प्रिय बनाओ ॥४९॥ हे भद्रे ! तुम जो-जो चाहोगी वह मैं अवश्य प्रदान करूँगा। हे सुन्दरि ! मेरे ऊपर दुर्जय काम ने प्रहार कर दिया है ॥५०॥ अतएव शरणागत और दीन बने हुए मेरी रक्षा तुम करो। तुम्हारे साथ सङ्गम हो जाने पर मैं तुमको राज्य, सारी पृथिवी, अपना शरीर तथा इस त्रैलोक्य को प्रदान करूँगा। उस राजा की वाणी को सुनकर कमल के समान मुखड़े वाली ने अपनी विशाला नामक सखी से कहा कि तुम इन आये हुए राजा से बातें करो। मेरा नाम, मेरा उत्पत्ति स्थान, तथा मेरे माता-पिता को इन्हें बतलाओं ॥५१-५३॥ इनके समक्ष मेरे एकाग्र भाव को तुम इन्हें बतलाओ। उसके अभिप्रेत अर्थ को जानकर विशाला ने राजा से कहा ॥५४॥ उसने मधुर स्वर में कहा— हे राजन् ! आप मेरी बात सुनें **विशाला ने कहा—** पूर्वकाल में शम्भु ने काम को जला दिया ॥५५॥ अपने पति के दुःख के कारण उसकी पत्नी रति सुन्दर स्वर से रोने लगी। हे राजेन्द्र ! वह रति इसी सरोवर पर निवास करती थी ॥५६॥ उसका रुदन ऐसी ही सुन्दर स्वर वाला और करुण था। उसको सुनकर देवगण अत्यधिक कृपा से युक्त हो गये। और देवताओं ने शङ्करजी से कहा हे महादेव ! आप पुनः कामदेव को जीवित कर दें ॥५७-५८॥ हे महाभाग ! बेचारी पति के बिना न जाने कैसी हो गयी है ? हमलोगों पर कृपा करके आप इसे काम से संयुक्त कर दें ॥५९॥ देवताओं की बाणी सुनकर शङ्करजी ने कहा कामदेव को जीवित कर दे रहा हूँ। शरीर से रहित होकर यह मनोभाव काम पाञ्च बाणों वाला ॥६०॥ हो जायेगा, उसका मित्र वसन्त होगा। वह अपने दिव्य शरीर से व्यवहार करेगा ॥६१॥ शङ्करजी की कृपा से वह कामदेव जीवित हो गया। हे नरोत्तम ! अपने आशीर्वादों के द्वारा देवी रति और काम का अभिनन्द करके

आशीर्भिरभिनन्द्यैवं देव्याःकामं नरोत्तम । गच्छ काम प्रवर्तस्व प्रियया सह नित्यशः ॥६३॥
एवमाह महातेजाःस्थितिसंहारकारकः । पुनःकामसरःप्राप्तो यत्रास्ते दुःखिता रतिः ॥६४॥
इदं कामसरो राजन्रतिरत्र सुसंस्थिता । दग्धे सति महाभागे मन्मथे दुःखधर्षिता ॥६५॥
रत्याःकोपात्समुत्पन्नःपावको दारुणाकृतिः । अतीव दग्धा तेनापि सा रतिर्मोहमूर्छिता ॥६६॥
अश्रुपातं मुमोचाथ भर्तृहीना नरोत्तम। नेत्राभ्यां हि जले तस्याःपतिता अश्रुबिन्दवः ॥६७॥

तेभ्योजातो महाशोकःसर्वसौख्यप्रणाशकः ।
जरापश्चात्समुपन्ना अश्रुभ्यो नृपसत्तम ॥६८॥
वियोगो नाम दुर्मेधास्तेभ्यो जज्ञे प्रणाशकः ।
दुःखसन्तापकौ चोभौ जज्ञाते दारुणौ तदा ॥६९॥

मूर्छा नाम ततो जज्ञे दारुणा सुखनाशिनी। शोकाज्जज्ञे महाराज कामज्वरोऽथ विभ्रमः ॥७०॥
प्रलापो विह्वलश्चैव उन्मादो मृत्युरेव च । तस्याश्च अश्रुबिन्दुभ्यो जज्ञिरे विश्वनाशकाः ॥७१॥
रत्याःपार्श्वे समुत्पन्नाःसर्वे तापाङ्गधारिणः। मूर्तिमानो महाराज सद्भावगुणसंयुताः ॥७२॥
काम एष समायातःकेनाप्युक्तं तदानृप। महानन्देन संयुक्ता दृष्ट्वा कामं समागतम् ॥७३॥
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां पतिता अश्रुबिन्दवः । अप्सुमध्ये महाराज चापल्याज्जज्ञिरे प्रजाः ॥७४॥
प्रीतिर्नाम तदा जज्ञे ख्यातिर्लज्जा नरोत्तम। तेभ्यो जज्ञे महानन्दःशान्तिश्चान्या नृपोत्तम ॥७५॥
जज्ञाते द्वे शुभे कन्ये सुखसम्भोगदायिके। लीलाक्रीडा मनोभाव संयोगस्तु महानृप ॥७६॥
रत्यास्तु वामनेत्राद्वै आनन्दादश्रुबिन्दवः । जलान्ते पतिता राजंस्तस्माज्जज्ञे सुपङ्कजम् ॥७७॥

जगत् की स्थिति और संहार करने वाले शङ्करजी ने कहा काम जाओ ! तुम सदैव अपनी पत्नी के साथ रहो॥६२-६३॥ उसके बाद उस सरोवर पर आये जहाँ पर रति विद्यमान थी । हे राजन् ! यह कामसरोवर है । यहाँ पर रति का निवास है ॥६४॥ कामदेव के दगध हो जाने पर दुखिता रति के कोप से भयङ्कर अग्नि उत्पन्न हुयी ॥६५॥ उस अग्नि ने भी रति को अत्यन्त जला दिया और रति मूर्छित हो गयी । हे नरोत्तम ! पतिविहिन रति ने अश्रुपात किया ॥६६॥ उसके आँसुओं की बूंदे जल में गिरी उन सबों से सभी प्रकार के सुखों को नष्ट करने वाला महाशोक उत्पन्न हुआ ॥६७॥ हे राजन् ! उसके पश्चात् उन आंसुओं से जरा उत्पन्न हुयी । उन सबों से वियोग नामक नाश करने वाला मूर्ख उत्पन्न हुआ ॥६८॥ उसके बाद दुःख और संताप उत्पन्न हुए । ये दोनों भयङ्कर थे, उसके बाद सुखों का विनाश करने वाली मूर्छा उत्पन्न हुयी ॥६९॥ हे महाराज ! शोक से कामज्वर, विभ्रम, प्रलाप, विह्वल, उन्माद और मृत्यु उत्पन्न हुए । ये सभी रति के अश्रुविन्दुओं से ही उत्पन्न हुए और ये विश्व का विनाश करने वाले हैं । वे सभी रति के पास शरीरधारी के रूप में उत्पन्न हुए ॥७०-७१॥ हे महाराज ! वे सब शरीरधारी तथा सद्भाव नामक गुण से युक्त उत्पन्न हुए । किसी के बतलाने से वहाँ काम आया ॥७२॥ आये हुए काम को देखकर रति महान् आनन्द से सम्पन्न हो गयी और उसकी अश्रुपूर्ण आँखों से आनन्दश्रु के बिन्दु जल में गिरे । उससे हे नरोत्तम! प्रीति, ख्याति तथा लज्जा की उत्पत्ति हुयी ॥७३-७४॥ उन सबों से महानन्द तथा शान्ति की उत्पत्ति हुयी । वे दोनों से सुख तथा सम्भोग प्रदान करने वाली कन्यायें हुयीं ॥७५॥ हे राजन् ! लीला, क्रीड़ा, मनोभाव संयोग से रति के बायें नेत्र जन्य आनन्द से अश्रुविन्दु के रूप में जल में गिरे । उससे

तसमात्सुपङ्कजाज्जाता इयं नारी वरानना । अश्रुबिन्दुमती नाम रतिपुत्री नरोत्तम ॥७८॥
तस्याःप्रीत्या सुखं कृत्वा नित्यं वर्त्ते समीपगा ।
सखीभावस्वभावेन संहृष्टा सर्वदा शुभा ॥७९॥
विशाला नाम मे ख्यातं वरुणस्य सुता नृप ।
अस्याश्चान्ते प्रवर्तामि स्नेहात्स्निग्धास्मि सर्वदा ॥८०॥
एत्तते सर्वमाख्यातमस्याश्चात्मन एव ते । तपश्चचार राजेन्द्र पतिकामा वरानना ॥८१॥

राजोवाच

सर्वमेव त्वयाऽऽख्यातं मया ज्ञातं शुभे शृणु ।
मामेवं हि भजत्वेषा रतिपुत्री वरानना ॥८२॥
यमेषा वाञ्छतेबाला तत्सर्वं तु ददाम्यहम् ।
तथा कुरुष्व कल्याणि यथा मे वश्यतां व्रजेत् ॥८३॥

विशालोवाच

अस्या व्रतं प्रवक्ष्यामि तदाकर्णय भूपते । पुरुषं यौवनोपेतं सर्वज्ञं वीरलक्षणम् ॥८४॥
देवराजसमं राजन्धर्माचारसमन्वितम् । तेजस्विनं महाप्राज्ञं दातारं यज्विनांवरम् ॥८५॥
गुणानां धर्मभावस्य ज्ञातारं पुण्यभाजनम् । लोक इन्द्रसमं राजन्सुयज्ञैर्धर्मतत्परम् ॥८६॥
सर्वैश्वर्यसमोपेतं नारायणमिवापरम् । देवानां सुप्रियं नित्यं ब्राह्मणानामतिप्रियम् ॥८७॥
ब्रह्मण्यं वेदतत्त्वज्ञं त्रैलोक्ये ख्यातविक्रमम् । एवं गुणैःसमुपेतं त्रैलोक्येन प्रपूजितम् ॥८८॥
सुमतिं सुप्रियं कान्तं मनसा वरमीप्सति ॥८९॥

सुन्दर कमल की उत्पत्ति हुयी । उस सुन्दर कमल से यह सुन्दरी नारी उत्पन्न हुयी ॥७६-७७॥ यह रति की पुत्री है और इसका नाम अश्रुविन्दुमती है । इसके प्रेम के कारण मैं सुख पूर्वक इसकी समीपवर्ती बनी रहती हूँ ॥७८॥ अपनी सखी के स्वभाव से मैं सदा प्रसन्न रहती हूँ । राजन् मैं वरुण की पुत्री हूँ । मेरा नाम विशाला है ॥७९॥ स्नेह के कारण मैं इसके साथ रहती हूँ । मैं इसकी स्निग्ध सखी हूँ । इस तरह से मैंने इसका और अपना पूरा परिचय बतला दिया ॥८०॥ इस सुन्दरी ने पति प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या की । **राजा ने कहा—** शुभे ! तुमने जो कहा उन सारी बातों को मैंने जान लिया ॥८१॥ अब तुम मेरी बात सुनो । यह रति की पुत्री मुझे ही अपना पति बना ले । यह जो चाहेगी उन सारी वस्तुओं को मैं प्रदान करूँगा ॥८२॥ हे कल्याणि ! तुम ऐसा करो कि यह मेरी वशवर्तिनी हो जाय । **विशाला ने कहा—** हे राजन् ! मैं इसके व्रत को बतलाती हूँ उसे आप सुनें ॥८३॥ यह युवक सर्वज्ञ, वीर के लक्षण से सम्पन्न, इन्द्र के समान धर्माचरण करने वाले ॥८४॥ तेजस्वी, महाप्राज्ञ, दान करने वाले, श्रेष्ठ यज्ञकर्ता, गुणों के धर्मभाव को जानने वाले, पुण्य करने वाले ॥८५॥ लोक में इन्द्र के समान सुन्दर यज्ञों द्वारा धर्म करने वाले, दूसरे नारायण के समान सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न ॥८६॥ देवताओं को अत्यन्त प्रिय तथा ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय ब्राह्मण्य (ब्राह्मणों के भक्त) वेद के तत्त्वों के ज्ञाता, त्रैलोक्य में प्रख्यात पराक्रम वाले ॥८७॥ इस तरह के गुणों से युक्त, त्रैलोक्य में पूजित सुन्दर बुद्धि वाले, प्रिय तथा मनोहर पुरुष को अपने पति के रूप में प्राप्त करना चाहती है ॥८८॥ **ययाति ने कहा—** तुम इसी प्रकार के गुणों से युक्त आये हुए मुझको

ययातिरुवाच

एवंगुणैःसमुपेतं विद्धि मामिह चागतम्। अस्यानुरूपो भर्त्ताहं सृष्टो धात्रा न संशयः ॥९०॥

विशालोवाच

भवन्तं पुण्यसंवृद्धं जाने राजञ्जगत्त्रये ।
पूर्वोक्ता ये गुणाःसर्वे मयोक्ताःसन्ति ते त्वयि ॥९१॥

एकेनापि च दोषेण त्वामेषा हि न मन्यते । एष मे संशयो जातो भवान्विष्णुमयो नृप॥९२॥

ययातिरुवाच

समाचक्ष्व महादोषं यमेषा नानुमन्यते । तत्त्वेन चारुसर्वाङ्गी प्रसाद सुमुखीभव ॥९३॥

विशालोवाच

आत्मदोषं न जानासि कस्मात्त्वं जगतीपते । जरया व्याप्तकायस्त्वमनेनेयं न मन्यते ॥९४॥
एवं श्रुत्वा महद्वाक्यमप्रियं जगतीपतिः। दुःखेन महताविष्टस्तामुवाच पुनर्नृपः॥९५॥
जरादोषो न मे भद्रे संसर्गात्कस्यचित्कदा। समुद्भूतं ममाङ्गे वै तं न जाने जरागमम्॥९६॥

यं यं हि वाञ्छते चैषा त्रैलोक्ये दुर्लभं शुभे ।
तमस्यैदातुकामोऽहं व्रियतां वर उत्तमः ॥९७॥

विशालोवाच

जराहीनो यदास्यास्त्वं तदा ते सुप्रिया भवेत् ।
एतद्विनिश्चितं राजन्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥९८॥

श्रुतिरेवं वदेद्राजन्पुत्रे भ्रातरिभृत्यके । जरासङ्क्रम्यते यस्य तस्याङ्गे परिसञ्चरेत् ॥९९॥

तारुण्यं तस्य वैगृह्य तस्मै दत्त्वा जरां पुनः ।
उभयोःप्रीतिसंवादःसुरुचा जायते शुभः ॥१००॥

जानो । निःसन्देह ब्रह्मा ने इसके अनुरूप प्रति के रूप में मेरी सृष्टि की है ॥८९॥ **विशाला ने कहा**— हे राजन् ! मैं आपको त्रैलोक्य में गुणों सम्पन्न जानती हूँ, मैंने पहले जिन गुणों को कहा है वे सभी गुण आपमें हैं ॥९०॥ यह मानती है कि आपके कोई भी दोष नहीं है । राजन् ! मुझको यह संशय है कि आप तो विष्णुमय हैं ॥९१॥ **ययाति ने कहा**— तुम उस दोष को वतलाओ जिसे यह नहीं चाहती हैं । हे सर्वाङ्ग सुन्दरि ! तुम तत्त्वतः प्रसन्न हो जाओ ॥९२॥ **विशाला ने कहा**— हे जगत् के स्वामिन् ! क्या आप अपना दोष नहीं जानते हैं ? आपका शरीर जरा (वार्द्धक्य) से व्याप्त हो गया है, इसीलिए यह आपको नहीं मानती है ॥९३॥ इस तरह अपने अत्यन्त प्रतिकूल वाक्य को सुनकर राजा अत्यन्त दुःखी हो गये । उसके वाद राजा ने उससे फिर कहा ॥९४॥ किसी के भी संसर्ग से मुझको जरा दोष नहीं आया । इसीलिए अपने अङ्गों में उत्पन्न जरा को मैं नहीं जानता हूँ । हे शुभे ! यह जिन-जिन वस्तुओं को चाहती है, उन्हें मैं देना चाहता हूँ । अतएव तुम उन वस्तुओं को बताओ ॥९५-९६॥ **विशाला ने कहा**— जव आप जराहीन हो जायेंगे तो यह आपकी पत्नी बन जायेगी । हे राजन् ! मैं सत्य कहती हूँ और यह निश्चित है॥९७॥ हे राजन् ! श्रुति कहती है कि पुत्र, भाई, भृत्य इन सवों में जिसके अङ्ग में जरा का संक्रमण कराया जाता है, उसी के अङ्ग में जरा चली जाती है ॥९८॥ उसकी जवानी को लेकर तथा उसे अपनी

तथात्मदानपुण्यस्य कृपया यो ददाति च । फलं राजन्हि तत्तस्य जायते नात्र संशयः ।।१०१।।
दुःखेनोपार्जितं पुण्यमन्यस्मै हि प्रदीयते। सुपुण्यं तद्भवेत्तस्य पुण्यस्य फलमश्नुते ।।१०२।।
पुत्राय दीयतां राजंस्तस्मात्तारुण्यमेव च। प्रगृह्यैव समागच्छ सुन्दरत्वेन भूपते।।१०३।।
यदात्वमिच्छसे भोक्तुं तदात्वं कुरु भूपते। एवमाभाष्य सा भूपं विशाला विरराम ह।।१०४।।

सुकर्मोवाच

एवमाकर्ण्य राजेन्द्रो विशालामवदत्तदा ।।१०५।।

राजोवाच

एवमस्तु महाभागे करिष्ये वचनं तव। कामासक्तस्य मूढस्तु ययातिःपृथिवीपतिः ।।१०६।।
गृहं गत्वा समाहूय सुतान्वाक्यमुवाच ह। तुरूं पूरुं कुरुं राजा यदुं च पितृवत्सलम्।।१०७।।
कुरुध्वं पुत्रकाःसौख्यं यूयं हि मम शासनात् ।।१०८।।

पुत्रा ऊचुः

पितृवाक्यं प्रकर्तव्यं पुत्रैश्चापि शुभाशुभम्। उच्यतां तात तच्छीघ्रं कृतं विद्धि न संशयः।।१०९।।
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं पुत्राणां पृथिवीपतिः। आचचक्षे पुनस्तेषु हर्षेणाकुलमानसः।।११०।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

बुढ़ापा देकर, उसके बाद पति-पत्नी का संवाद सुरुचि पूर्ण होता है ।।९९।। हे राजन् ! जिस तरह से कोई कृपा करके अपने पुण्य का दान करता है तो उस पुण्य का फल उसको ही प्राप्त होता है ।।१००।। दुःख से अर्जित पुण्य जैसे दूसरे को दिया जाता है तो उसका ही वह पुण्य बन जाता है और उस पुण्य का फल उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है ।।१०१।। अतएव हे राजन् ! आप अपनी बुढ़ापा अपने पुत्र को दे दीजिये और उससे आप उसकी जवानी ले लें और उसके बाद सुन्दर बन कर आइये ।।१०२-१०३।। राजन् ! यदि आप इसका उपभोग करना चाहते हैं तो आप ऐसा ही करें । इस तरह से राजा को कहकर विशाला चुप हो गयी।।१०४।। **सुकर्मा ने कहा**— इस तरह से सुनकर राजा ने विशाला से कहा **राजा ने कहा**— हे महाभागे ! ठीक है, मैं तुम्हारे कथनानुसार ही करूँगा । काम में आसक्त तथा मूढ़ बने हुए राजा ययाति अपने घर गये और अपने पुत्रों को बुलाकर उन्होंने कहा **राजा ने कहा**— तुरु, पुरु, कुरु तथा यदु नामक पितृभक्त पुत्रों से कहा— पुत्रों ! तुम लोग मेरी आज्ञा से सुख प्राप्त करो ।।१०५-१०८।। **पुत्रों ने कहा**— पुत्रों को चाहिए कि वे पिता की आज्ञा चाहे अच्छी हो या बुरी उसका पालन करें । अतएव आप शीघ्र कहें और समझें हमलोग उसका पालन करेंगे ।।१०९।। अपने पुत्रों की इस तरह की बातों को सुनकर राजा ने प्रसन्नमन से उन सबों से कहा ।।११०।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्रान्तर्गत सत्तहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७७।।

अठहत्तरवाँ अध्याय

ययातिरुवाच

एकेन गृह्यतां पुत्रा जरा मे दुःखदायिनी। धीरेण भवतां मध्ये तारुण्यं मम दीयताम् ॥१॥
स्वकीयं हि महाभागःस्वरूपमिदमुत्तमम्। सन्तप्तं मानसं मेऽद्य स्त्रियां सक्तं सुचञ्चलम्॥२॥
भाजनस्था यथापश्च आवर्त्तयति पावकः। तथा मे मानसं पुत्राःकामानलसुचालितम्॥३॥
एको गृह्णातु मे पुत्रा जरां दुःखप्रदायिनीम्। स्वकं ददातु तारुण्यं यथाकामं चराम्यहम् ॥४॥
यो मे जरापसरणं करिष्यति सुतोत्तमः। स च मे भोक्ष्यते राज्यं धनुर्वंशं धरिष्यति ॥५॥
तस्य सौख्यं सुसम्पत्तिर्धनं धान्यं भविष्यति। विपुला सन्ततिस्तस्य यशःकीर्तिर्भविष्यति ॥६॥

पुत्रा ऊचुः

भवान्धर्मपरो राजन्प्रजासत्ये न पालकः। कस्मात्तेहीदृशो भावो जातःप्रकृतिचापलः ॥७॥

राजोवाच

आगतानर्तकाःपूर्वं पुरं मे हि प्रनर्तकाः। तेभ्यो मे कामसंमोहे जातो मोहश्च ईदृशः ॥८॥
जरया व्यापितःकायो मन्मथाविष्टमानसः। सम्बभूव सुतश्रेष्ठाःकामेन च समाकुलः ॥९॥
काचिद् दृष्टा मया नारी दिव्यरूपा वरानना। मया सम्भाषिता पुत्राःकिंचनोवाच मां सती ॥१०॥
विशाला नाम तस्याश्च सखीचारुविचक्षणा। सा मामाह शुभं वाक्यं मम सौख्यप्रदायकम्॥११॥

आज्ञा भङ्ग करने वाले अपने तीन पुत्रों को शाप देकर तथा पुरु से उसकी जवानी को प्राप्त करके ययाति का अश्रुविन्दुमति के पास जाना

ययाति ने कहा— पुत्रों ! तुमलोगों में से कोई एक मुझे दुःख देने वाली जरा को मुझसे ले ले और अपनी जवानी मुझे दे दे ॥१॥ और अपना उत्तम स्वरूप जो धैर्य सम्पन्न हो वह भी मुझे दे दे । आज मेरा मन स्त्री में आसक्त होकर चंचल हो गया है और सन्तप्त हो गया है ॥२॥ जिस तरह से पात्र में रखे हुए जल को अग्नि उबालने का काम करती है उसी तरह हे पुत्रों ! मेरे मन को कामाग्नि ने संतप्त कर दिया है ॥३॥ पुत्रों तुमलोगों में से कोई एक दुःख देने वाली मेरी जरा को स्वीकार कर ले और अपनी जवानी मुझे प्रदान कर दे जिससे कि मैं अपनी इच्छानुसार विचरण करूँ ॥४॥ जो मेरी जरा को ग्रहण करेगा वही मेरे राज्य, मेरे धनुष और मेरे वंश को धारण करेगा ॥५॥ उसी को ही सौख्य सम्पत्ति तथा धन-धान्य की प्राप्ति होगी । उसकी विपुल मात्रा में सन्तानें होंगी, उसी को यश और कीर्ति की प्राप्ति होगी ॥६॥ **पुत्रों ने कहा—** राजन् ! आप धर्मपरायण, प्रजा तथा सत्य का पालन करने वाले हैं आपका इस तरह का प्रकृति चंचल भाव कैसे हो गया ?॥७॥ कुछ समय पहले मेरे नगर में नर्तक ओर प्रनर्तक आये थे । उन सबों के द्वारा काम का जो सम्मोहन किया गया उसके कारण मुझको ऐसा मोह हो गया है ॥८॥ मेरे शरीर में जरा का प्रवेश हो गया और मन में काम का आवेश हो गया । मेरे श्रेष्ठ पुत्रों ! उसके कारण मेरा मन आकुल-व्याकुल हो गया ॥९॥ मैंने एक दिव्य रूप वाली सुन्दरी नारी को देखा मैंने उससे बातें की किन्तु वह कुछ नहीं बोली ॥१०॥ उसकी विशाला नाम की सुन्दर तथा चतुर सखी है । उसने मुझसे मुझे सुख देने वाली बातें की । उसने कहा जब आप जरा से रहित हो जायँ तो यह आपकी पत्नी बन जायेगी । इस

जराहीनो यदास्यास्त्वं तदा ते सुप्रियाभवेत्। एवमङ्गीकृतं वाक्यं तयोक्तं गृहमागतः ॥१२॥
मया जरापनोदार्थं तदेवं समुदाहृतम्। एवं ज्ञात्वा प्रकर्तव्यं मत्सुखं हि सुपुत्रकाः ॥१३॥

तुरुरुवाच

शरीरं प्राप्यते पुत्रैःपितुर्मातुःप्रसादतः । धर्मश्च क्रियते राजञ्छरीरेण विपश्चिता ॥१४॥
पित्रोःशुश्रूषणं कार्यं पुत्रैश्चापि विशेषतः। न च यौवनदानस्य कालोऽयं मे नराधिप ॥१५॥
प्रथमे वयसि भोक्तव्यं विषयं मानवैर्नृप । इदानीं तन्नकालोऽयं वर्तते तव साम्प्रतम् ॥१६॥
जरां तात प्रदत्त्वा वै पुत्रेतातमहद्गतम्। पश्चात्सुखं प्रभोक्तव्यं न तुस्यात्तव जीवितम् ॥१७॥
तस्माद्वाक्यं महाराज करिष्येनैव ते पुनः । एवमाभाषत नृपं तुरुर्ज्येष्ठसुतस्तदा॥१८॥
तुरोर्वाक्यं तु तच्छ्रुत्वा क्रुद्धो राजा बभूव सः ।
तुरुं शशाप धर्मात्मा क्रोधेनारुणलोचनः ॥१९॥
अपध्वस्तस्त्वयाऽऽदेशो ममायं पापचेतन । तस्मात्पापी भवस्व त्वं सर्वधर्मबहिष्कृत ॥२०॥
शिखया त्वंविहीनश्च वेदशास्त्रविवर्जितः। सर्वाचारविहीनस्त्वं भविष्यसि न संशयः॥२१॥
ब्रह्मघ्नस्त्वं देवदुष्टःसुरापःसत्यवर्जितः । चण्डकर्मप्रकर्ता त्वं भविष्यसि नराधमः ॥२२॥
सुरालीनःक्षुधीपापी गोघ्नश्च त्वं भविष्यसि। दुश्चर्मामुक्तकच्छश्च ब्रह्मद्वेष्टा निराकृतिः॥२३॥
परदाराभिगामित्वं महाचण्डःप्रलम्पटः । सर्वभक्षश्च दुर्मेधाःसदात्वं च भविष्यसि ॥२४॥
सगोत्रां रमसे नारीं सर्वधर्मप्रणाशकः । पुण्यज्ञानविहीनात्मा कुष्ठवांश्च भविष्यसि ॥२५॥
तव पुत्राश्च पौत्राश्च भविष्यन्ति न संशयः। ईदृशाःसर्वपुण्यघ्ना म्लेच्छाःसुकलुषीकृताः ॥२६॥

तरह से उसकी बातों को सुनकर मैं अपने घर आया हूँ ॥११-१२॥ मैंने अपनी बुढ़ापा दूर करने के लिए तुमलोगों से ऐसी बातें की है । इस तरह से जानकर पुत्रों तुमलोगों को मेरे लिए सुखद कार्य करना चाहिए॥१३॥ **तुरु ने कहा—** माता-पिता की कृपा से पुत्र शरीर को प्राप्त करते हैं । हे राजन् ! ज्ञानी पुरुष शरीर से ही धर्म करते हैं ॥१४॥ पुत्रों को विशेष रूप से माता-पिता की सेवा करनी चाहिए । हे राजन् ! अपनी जवानी देने का यह मेरा समय नहीं है ॥१५॥ राजन् ! युवावस्था में ही मनुष्यों को विषयों का भोग करना चाहिए । इस समय आपका वह समय नहीं है ॥१६॥ हे तात ! पुत्र को अपनी बुढ़ापा देकर उसके बाद सुख का भोग करना चाहिए किन्तु वह आपका जीव नहीं रहेगा ॥१७॥ अतएव हे महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन मैं नहीं करूँगा । इस तरह से उनके ज्येष्ठ पुत्र तुरु ने कहा ॥१८॥ तुरु की उस बात को सुनकर राजा क्रुद्ध हो गये । उन्होंने क्रोध से आँखें लाल करके तुरु को शाप दिया ॥१९॥ अरे पापी ! तुमने मेरे आदेश का उल्लंघन किया है, अतएव तुम सभी धर्मों से बहिष्कृत पापी हो जाओ ॥२०॥ अतएव शिखा विहीन तथा वेद की शाखा से विहीन सम्पूर्ण सदाचार से विहीन तुम हो जाओगे ॥२१॥ तुम ब्रह्मघाती, देवताओं के लिए दुष्ट, मदिरा पीने वाले, असत्य भाषी, भयङ्कर कर्मों को करने वाला, तथा नराधम हो जाओगे ॥२२॥ मदिरा में ही लीन रहने वाले, भूखे, पापी गौ को मारने वाले, हो जाओ । तुम्हारे चमड़े खराब हो जायेंगे, कक्ष को खोलकर रखने वाला, ब्राह्मणों से द्वेष करने वाला, पापी ॥२३॥ दूसरे की पत्नी के साथ सहगमन करने वाला, तथा भयङ्कर लम्पट हो जाओगे । सर्वभक्षी और दुर्बुद्धि हो जाओगे ॥२४॥ अपने गोत्र की स्त्री से रमण करोगे तुम सभी धर्मों का विनाश करने वाले होओगे ।

एवं तुरुं सुशप्त्वैव यदुं पुत्रमथाब्रवीत् । जरां वै धारयस्वेह भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥२७॥
वद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा यदू राजानमब्रवीत्। जराभारं नशक्नोमि वोढुं तात कृपां कुरु ॥२८॥
शीतमध्याकदन्नं च वयोऽतीताश्च योषितः। मनसःप्रातिकूल्यं च जरायाःपञ्चहेतवः ॥२९॥
जरादुःखं न शक्नोमि नवे वयसि भूपते। कःसमर्थो हि वै धर्तुं क्षमस्वत्वं ममाधुना॥३०॥
यदुं क्रुद्धो महाराजःशशाप द्विजनन्दन । राजार्हो न च ते वंशःकदाचिद्वै भविष्यति ॥३१॥
बलतेजःक्षमाहीनःक्षत्रधर्म विवर्जितः । भविष्यति न सन्देहो मच्छासन पराङ्मुख ॥३२॥

यदुरुवाच

निर्दोषोऽहं महाराज कस्माच्छप्तस्त्वयाधुना। कृपांकुरुष्व दीनस्य प्रसादसुमुखो भव ॥३३॥

राजोवाच

महादेवःकुले ते वै स्वांशेनापि हि पुत्रकः । करिष्यति विसृष्टिं च तदापूतं कुलं तव ॥३४॥

यदुरुवाच

अहंपुत्रो महाराज निर्दोषःशापितस्त्वया। अनुग्रहो दीयतां मे यदि मे वर्त्तते दया॥३५॥

राजोवाच

यो भवेज्ज्येष्ठपुत्रस्तु पितुर्दुःखापहारकः। राज्यदायं सभुङ्क्ते च भारवोढा भवेत्सहि॥३६॥
त्वयाधर्मं न प्रवृत्तमभाष्योऽसि न संशयः। भवतानाशिताज्ञा मे महादण्डेनघातिना ॥३७॥
तस्मादनुग्रहो नास्ति यथेष्टं च तथा कुरु ॥३८॥

पुण्यज्ञान से रहित तथा कोढ़ी हो जाओगे ॥२५॥ तुम्हारे पुत्र और पौत्र इसी प्रकार के हो जायेंगे वे सभी पुण्यों को विनष्ट करने वाले, म्लेच्छ, और कलुषित होंगे ॥२६॥ इस तरह से शाप देकर उन्होंने अपने यदु नामक पुत्र से कहा तुम मेरी बुढ़ापा को धारण करके अकण्टक राज्य करो ॥२७॥ यदु ने हाथ जोड़कर राजा से कहा **यदु ने कहा—** हे तात ! आप कृपा करें, मैं जरा के भार को नहीं ढो सकता हूँ ॥२८॥ बुढ़ापे के पाँच कारण होते हैं शीतलमार्ग पर चलना कदन्न को खाना, स्त्रियाँ तथा मन की प्रतिकूलता॥२९॥ हे राजन् ! इन नवीन अवस्था में मैं बुढ़ापे के भार को नहीं ढो सकता हूँ । बुढ़ापे को कौन धारण कर सकता है, आप मुझे क्षमा करें ॥३०॥ क्रुद्ध होकर राजा ने यदु को शाप दिया कि तुम्हारी सन्तान कभी राज्य करने के योग्य नहीं होंगी ॥३१॥ बल, तेज तथा क्षमा से रहित तथा क्षत्रिय के धर्म से रहित, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले, तुम हो जाओगे ॥३२-३३॥ **यदु ने कहा—** महाराज ! मैं निर्दोष हूँ, आपने मुझे शाप क्यों दिया ? आप मुझ दीन पर कृपा करें और प्रसन्न हो जायँ । **राजा ने कहा—** तुम्हारे वंश में भगवान् अपने अंश से अवतीर्ण होंगे । वे विशेष सृष्टि करेंगे । उस समय तुम्हारा वंश पवित्र हो जायेगा ॥३४॥ **यदु ने कहा—** महाराज ! मैं आपका निर्दोष पुत्र हूँ किन्तु आपने मुझे शाप दे दिया यदि आप की मुझ पर दया है तो आप मुझे अनुग्रह (शाप का अन्तकाल) प्रदान करें ॥३५॥ **राजा ने कहा—** जो ज्येष्ठ पुत्र होता है वही पिता के दुःख को दूर करता है । वही राज्य दाय का भोग करता है और भार का वहन करता है ॥३६॥ तुमने धर्म का पालन नहीं किया, तुम बात करने के योग्य भी नहीं हो । तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है अतएव तुम्हें महादण्ड देना चाहिए ॥३७॥ अतएव तुम्हारे शाप का अनुग्रह नहीं है, जो मन हो सो करो । **यदु ने कहा—** राजन् ! आपने चूकि मेरे राज्य, वंश और रूप को

यदुरुवाच

यस्मान्मे नाशितं राज्यं कुलं रूपं त्वया नृप ।
तस्माद्दुष्टो भविष्यामि तववंशपतिर्नृप ॥३९॥
तव वंशे भविष्यन्ति नानाभेदास्तु क्षत्रियाः । तेषांग्रामान्सुदेशांश्च स्त्रियोरत्नानि यानि वै ॥४०॥
भोक्ष्यनिन्त च न सन्देहो अतिचण्डा महाबलाः ।
मम वंशात्समुत्पन्नास्तुरुष्का म्लेच्छरूपिणः ॥४१॥
त्वया ये नाशिताः सर्वे शप्ताःशापैःसुदारुणैः ।
एवं बभाषे राजानं यदुःक्रुद्धो नृपोत्तम ॥४२॥
अथ क्रुद्धो महाराजः पुनश्चैवं शशाप ह । मत्प्रजानाशकाः सर्वे वंशजास्ते शृणुष्व हि ॥४३॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च पृथ्वीनक्षत्रतारकाः। ताबन्म्लेच्छाः प्रपक्ष्यन्ते कुम्भीपाके च रौरवे ॥४४॥
कुरुं दृष्ट्वा ततो बालं क्रीडमानं सुलक्षणम् ।
समाह्वयति तं राजा न सुतं नृपनन्दनः ॥४५॥
शिशुंज्ञात्वा परित्यक्तःसकुरुस्तेन वै तदा । शर्मिष्ठायाःसुतं पुण्यं तं पूरुं जगदीश्वरः ॥४६॥
समाहूय वभाषे च जरा मे गृह्यता पुनः। भुङ्क्ष्वराज्यं मयादत्तं सुपुण्यं हतकण्टकम् ॥४७॥

पूरुरुवाच

राज्यंदेवेन भोक्तव्यं पित्राभुक्तं यथातव। त्वदादेशं करिष्यामि जरा मे दीयतां नृप ॥४८॥
तारुण्येन ममाद्यैव भूत्वा सुन्दररूपदृक्। भुङ्क्ष्व भोगान्सुकर्माणि विषयासक्तचेतनः ॥४९॥
यावदिच्छा महाभाग विहरस्व तयासह । यावज्जीवाम्ह्यहं तात जरां तवाधराम्यहम् ॥५०॥

नष्ट किया है ॥३८॥ अतएव आपके वंश का स्वामी मैं दुष्ट हो जाऊँगा । आपके वंश में अनेक भेद वाले क्षत्रिय होंगे ॥३९॥ उन सबों के ग्रामों, देशों, स्त्रियों तथा रत्नों का उपभोग महाबलवान् चाण्डाल करेंगे॥४०॥ मेरे ही वंश में उत्पन्न तुर्क तथा म्लेच्छ जिन सबों को शाप देकर आपने विनष्ट कर दिया है, वे भयङ्कर पुरुष ही उन सबों का उपभोग करेंगे ॥४१॥ इस तरह से क्रुद्ध होकर यदु ने राजा ययाति से कहा । इसके बाद क्रुद्ध होकर ययाति पुनः इस प्रकार से शाप दे दिये ॥४२॥ मेरी प्रजा का नाश करने वाले तुम्हारे वंश वाले जब तक चन्द्रमा, सूर्य, पृथिवी, तारे, ये सभी रहेंगे तब तक ये सबके सब म्लेच्छ कहलायेंगे ॥४३॥ और वे कुम्भीपाक तथा रौरव नरक में जायेंगे । उसके बाद बालक तथा क्रीड़ा करने वाले कुरु को देखकर राजा ने उसे नहीं बुलाया । कुरु को बालक मानकर उन्होंने छोड़ दिया ॥४४-४५॥ उसके बाद शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु को बुलाकर राजा ने कहा— तुम मेरी बुढ़ापा को धारण करो ॥४६॥ और मेरे द्वारा प्रदत्त अकण्टक राज्य का उपभोग करो । **पुरु ने कहा—** महाराज ! आप भी उसी तरह राज्य का भोग करें जिस तरह आपके पिता ने राज्य किया ॥४७॥ मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । आप मुझे अपनी बुढ़ापा दे दें । आज ही मेरी जवानी को अपनाकर आप सुन्दर रूप वाले बन जायँ ॥४८॥ आप अपने विषयासक्त अन्तःकरण से सुन्दर कर्मजन्य भोगों को भोगें । महाराज आपकी जब तक इच्छा हो तब तक उस स्त्री के साथ विहार करें ॥४९॥ मैं अपने जीवन पर्यन्त आपकी बुढ़ापा को धारण करूँगा । इस तरह से पुरु के द्वारा कहे जाने पर महाराज ने ॥५०॥ अत्यन्त हर्षित होकर अपने उस पुत्र से कहा वत्स ! चूकि तुमने मेरी

एवमुक्तस्तु तेनापि पूरुणा जगतीपतिः। हर्षेणमहता विष्टस्तंपुत्रं प्रत्युवाच सः ॥५१॥
यस्माद्वत्स ममाज्ञा वै न हता कृतवानिह। तसमादहं वियास्यामि बहुसौख्यप्रदायकम् ॥५२॥
यस्माज्जरा गृहीता मे दत्तं तारुण्यकं स्वकम् ।
तेन राज्यं प्रभुङ्क्ष्वत्वं मयादत्तं महामते ॥५३॥
एवमुक्तःसपूरुश्च तेन राज्ञा महीपते। तारुण्यं दत्तवानस्मै जग्राहास्माज्ज्रां नृप ॥५४॥
ततःकृते विनियमे वसयोस्तातपुत्रयोः । तस्माद्वृद्धतरःपूरुःसर्वाङ्गेषु व्यदृश्यत ॥५५॥
नूतनत्वं गतोराजा यथाषोडशवार्षिकाः। रूपेणमहताविष्टो द्वितीयइवमन्मथः ॥५६॥
धनूराज्यं च छत्रं च व्यजनंवासनं गजम्। कोशंदेशंबलंसर्वं चामरंस्यन्दनं तथा ॥५७॥
ददौ तस्य महाराजःपूरोश्चैव महात्मनः । कामासक्तश्च धर्मात्मा तां नारीमनुचिन्तयन् ॥५८॥
तत्सरः सागरप्रख्यं कामाख्यं नहुषात्मजः। अश्रुबिन्दुमतीयत्र जगाम लघुविक्रमः ॥५९॥
तां दृष्ट्वा तु विशालाक्षीं चारुपीनपयोधराम् ।
विशालां च महाराजकन्दर्पाकृष्टमानसः ॥६०॥

राजोवाच

आगतोऽस्मि महाभागे विशालेचारुलोचने । जरात्यागःकृतोभद्रे तारुण्येनसमन्वितः ॥६१॥
युवाभूत्वा समायतो भवत्वेषा ममाधुना। यं यं हि वाञ्छतेचैषा तं तं दद्मि न संशयः ॥६२॥

विशालोवाच

यदाभवान्समायातो जरां दुष्टां विहाय च । दोषेणैकेनलिप्तोऽसि भवन्तं नैवमन्यत ॥६३॥

आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है ॥५१॥ अतएव मैं तुम्हें अत्यधिक सौख्य प्रदान करने वाला कार्य करूँगा। चूकि तुमने मेरी बुढ़ापा को लेकर अपनी जवानी को मुझे प्रदान किया है ॥५२॥ इसी लिए तुम मेरे द्वारा प्रदत्त राज्य का उपमोग करो । हे राजन् ! राजा ययाति से इस प्रकार से कहे जाने पर पुरु ॥५३॥ अपनी जवानी राजा को देकर बुढ़ापा को ले लिये । इस तरह से पिता पुत्र दोनों के परस्पर में अवस्थाओं के अदला-बदली कर लेने पर ॥५४॥ पुरु अपने पिता से भी अधिक वृद्ध दिखने लगे और राजा ऐसे नवीन हो गये जैसे वे सोलह वर्ष के हों ॥५५॥ महान् रूप से विशिष्ट वे दूसरे कामदेव के समान लगते थे । राजा ने पुरु को ही धनुष, राज्य, छत्र, व्यजन, आसन, हाथी, कोश, देश, सारी सेना, चामर तथा रथ उस पुरु को ही दे दिया ॥५६-५७॥ कामासक्त वे उसी नारी का चिन्तन कर रहे थे । सागर के समान विस्तृत उस काम सरोवर की उन्हें याद आ रही थी ॥५८॥ वे वहाँ गये जहाँ पर अश्रुविन्दुमती विद्यमान थीं । मनोहर पुष्ट स्तनों वाली उस विशालाक्षी को देखकर, कामाकृष्ट मन वाले महाराज ने विशाला से कहा । **राजा ने कहा—** हे सुन्दर नेत्रों वाली विशाले ! मैं जरा का त्याग करके और तारुण्य से समन्वित होकर आया हूँ । मैं युवक होकर आया हूँ अब यह मेरी बन जाय ॥५९-६१॥ यह जो कुछ भी इच्छा करेगी वह-वह मैं निःसन्देह दूँगा । **विशाला ने कहा—** आप दुष्टा जरा का त्याग करके जब आये हैं ॥६२॥ आप

राजोवाच

मम दोषं वदस्वत्वं यदिजानासि निश्चितम्। तं तु दोषंपरित्यक्ष्ये गुणरूपं न संशयः ॥६४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थ वर्णने ययातिचरितं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

उन्नासीवाँ अध्याय

विशालोवाच

शर्मिष्ठा यस्य वै भार्या देवयानी वरानना। सौभाग्यं तत्र वै दृष्टमन्यथा नास्ति भूपते ॥१॥
तत्कथं त्वं महाभाग अस्याःकार्यवशोभवेः। सपत्नजेन भावेन भवान्भर्ता प्रतिष्ठितः ॥२॥
ससर्पोऽसि महाराज भूतले चन्दनं यथा। सर्पैश्च वेष्टितो राजन्महाचन्दन एव हि ॥३॥
तथात्वं वेष्टितःसर्पैः सपत्नीसंज्ञकैर्नृप। वरमग्निप्रवेशश्च शिखाग्रात्पतनं वरम् ॥४॥
रूपतेजःसमायुक्तं सपत्नीसहितं प्रियम्। न वरं तादृशं कान्तं सपत्नीविषसंयुतम् ॥५॥
तस्मान्नमन्यते कान्तं भवन्तं गुणसागरम् ॥६॥

राजोवाच

देवयान्या न मेकार्यं शर्मिष्ठया वरानने। इत्यर्थं पश्य मे कोशं सत्त्वधर्मसमन्वितम् ॥७॥

एक दोष से युक्त हैं, उसे आप नहीं मानते हैं क्या ? **राजा ने कहा—** यदि तुम मेरे दोष को जानती हो तो बतलाओ ॥६३॥ उस गुण रूपी दोष का भी मैं त्याग कर दूँगा ॥६४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के ययाति चरित्रान्तर्गत अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७८॥

ययाति का अश्रुविन्दुमति के साथ गान्धर्व विधि से विवाह करना

विशाला ने कहा— शर्मिष्ठा और देवयानी दोनों पत्नियाँ है, उनमें ही आपका स्नेह होगा, अन्यत्र तो हो नहीं सकता ॥१॥ ऐसी स्थिति में हे महाभाग ! आप इसके कार्य को वश में आप कैसे हो सकते है ? इसके प्रति वे सब शत्रुता करेंगी ही ॥२॥ हे महाराज ! आप सर्प से युक्त चन्दन वृक्ष के समान है। हे राजन् ! महान चन्दन का वृक्ष सर्पों से वेंष्टित रहता है ॥३॥ उसी तरह आप सौत रूपी सर्प से वेष्टित हैं। अग्नि में प्रवेश कर जाना अथवा पर्वत के ऊपरी शिखर से गिर जाना ठीक है ॥४॥ रूप एवं तेज से युक्त तथा सपत्नी (सौत) के साथ रहने वाला प्रिय पति ठीक इसलिए नहीं है कि वह सौत रूपी विष से युक्त है ॥५॥ यही कारण है कि गुणों के सागर स्वरूप आपको अपना पति नहीं मानती है । **राजा ने कहा—** हे वरानने ! मुझको देवयानी अथवा शर्मिष्ठा से कोई भी मतलब नहीं है ॥६॥ मेरा सत्त्व तथा धर्म

अश्रुविन्दुमत्युवाच

अहं राज्यस्यभोक्त्री च तवकायस्य भूपते। यद्यद्वदाम्यहं भूप तत्तत्कार्यं त्वया ध्रुवम् ॥८॥
इत्यर्थे मम देहि स्वं करं त्वं धर्मवत्सल। बहुधर्मसमोपेतं चारुलक्षणसंयुतम् ॥९॥

राजोवाच

अन्यभार्यां नविन्दामि त्वां बिना वरवर्णिनि। राज्यं च सकलामुर्वीममं कायं वरानने ॥१०॥
सकोशंभुङ्क्ष्व चार्वाङ्गि एष दत्तःकरस्तव। यदेवभाषसे भद्रे तदेवं तु करोम्यहम् ॥११॥

अश्रुबिन्दुमत्युवाच

अनेनापि महाभाग तव भार्या भवाम्यहम्। एवमाकर्ण्य राजेन्द्रो हर्षव्याकुललोचनः ॥१२॥
गान्धर्वेण विवाहेन ययातिः पृथिवीपतिः। उपयेमे सुतां पुण्यां मन्मथस्य नरोत्तम ॥१३॥
तया सार्द्धं महात्मा वै रमते नृपनन्दनः। सागरस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ॥१४॥
पर्वतेषु च रम्येषु सरित्सु च तया सह। रमते राजराजेन्द्रस्तारुण्येन महीपतिः ॥१५॥
एवं विंशत्सहस्राणि गतानि निरतस्य च। भूपस्य तस्य राजेन्द्र ययातेस्तु महात्मनः ॥१६॥

विष्णुरुवाच

एवं तया महाराजो ययाति र्मोहितस्तदा। कन्दर्पस्य प्रपञ्चेन इन्द्रस्यार्थे महामते ॥१७॥

सुकर्मोवाच

एवं पिप्पलराजासौ ययातिःपृथिवीपतिः। तस्या मोहेन कामेन रतेन ललितेन च ॥१८॥
न जानाति दिनं रात्रिं मुग्धःकामस्य कन्यया।
एकदा मोहितं भूपं ययातिं कामनन्दिनी ॥
उवाच प्रणत्तं नम्रं वशगं चारुलोचना ॥१९॥

से युक्त कोश इसके लिए है। **अश्रुबिन्दुमती ने कहा—** हे राजन्! मैं आपके शरीर तथा राज्य का भोग करने वाली रहूँगी ॥७॥ मैं जो-जो कहूँगी आपको वह-वह अवश्य करना होगा। हे धर्मवत्सल! इस बात को स्वीकार करके आप मुझे अपना ॥८॥ मनोहर लक्षणों से तथा अनेक धर्मों से युक्त हाथ प्रदान करें। **राजा ने कहा—** हे सुन्दरि! तुमको छोड़कर मैं दूसरी पत्नी को नहीं स्वीकार करूँगा ॥९॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरि! मेरा राज्य, सारी पृथिवी, मेरा शरीर तथा कोश, इन सबों का तुम उपभोग करो, मैं अपना हाथ तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥१०॥ हे भद्रे! तुम जो कहोगी मैं वही करूँगा। **अश्रुविन्दुमती ने कहा—** हे महाराज! इसी प्रतिज्ञा के साथ मैं आपकी पत्नी बन रही हूँ ॥११॥ इस बात को सुनकर महाराज ययाति ने प्रसन्न होकर गन्धर्व विवाह की विधि से कामदेव की पुत्री के साथ विवाह कर लिया। उन्होंने उसके साथ रमण किया ॥१२-१३॥ उन्होंने उसके साथ सागर के तट में, वनों, उपवनों, मनोहर पर्वतों और नदियों के तटों में तारुण्य से युक्त राज राजेन्द्र ययाति रमण करते थे। इस तरह रमण करते हुए राज राजेन्द्र महात्मा ययाति के तीस हजार वर्ष बीत गये। भगवान् विष्णु ने कहा— हे महामते वेन! इन्द्र का कार्य करने के लिए काम की माया द्वारा मोहित राजा राजेन्द्र महाराज ययाति उसके साथ रमण करते थे। **सुकर्मा ने कहा—** हे पिप्पल! पृथिवी के स्वामी ययाति ॥१४-१७॥ उस नारी के मोह में पड़कर काम, रमण तथा लालित्य के द्वारा मोहित कामकन्या के साथ सदैव रहते थे और उन्हें रात-दिन का पता ही नहीं चलता

अश्रुबिन्दुमत्युवाच

सञ्जातं दोहदं कान्त तन्मे कुरु मनोरथम्। अश्वमेधं मखश्रेष्ठं यजस्व पृथिवीपते ॥२०॥

राजोवाच

एवमस्तु महाभागे करोमि तव सुप्रियम्। समाहूय सुतश्रेष्ठं राज्यभोगे विनिःस्पृहम्॥२१॥
समाहूतःसमायातो भक्त्यानमितकन्धरः। बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणाममकरोत्तदा॥२२॥
तस्याःपादौ ननामाथ भक्त्यानमितकन्धरः। आदेशोदीयतां राजन्येनाहूतःसमागतः ॥२३॥
किं करोमि महाभाग दासस्ते प्रणतोऽस्मि च ॥२४॥

राजोवाच

अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्भारं कुरु पुत्रक। समाहूय द्विजान्पुण्यानृत्विजो भूमिपालकान्॥२५॥
एवमुक्तो महातेजाःपूरुःपरमधार्मिकाः। सर्वं चकार सम्पूर्णं यथोक्तं तु महात्मना ॥२६॥
तया सार्धं स जग्राह सुदीक्षां कामकन्यया। अश्वमेधयज्ञवाटे दत्त्वा दानान्यनेकधा ॥२७॥
ब्राह्मणेभ्यो महाराज भूरिदानमनन्तकम्। दीनेषु च विशेषेण ययातिःपृथिवीपतिः ॥२८॥
यज्ञान्ते च महाराजस्तामुवाच वराननाम्। अन्यत्ते सुप्रियंबाले किंकरोमि वदस्व मे ॥
तत्सर्वं देवि कर्तास्मि साध्यासाध्यं वरानने ॥२९॥

सुकर्मोवाच

इत्युक्तातेन साराज्ञा भूपालं प्रत्युवाच ह। जातो मे दोहदो राजंस्तत्कुरुष्व ममानघ ॥३०॥
इन्द्रलोकं ब्रह्मलोकं शिवलोकं तथैव च। विष्णुलोकं महाराज द्रष्टुमिच्छामि सुप्रियम्॥३१॥

था॥१८॥ एक वार सुन्दर नेत्रों वाली कामपुत्री मोहित तथा अपने वशवर्ती राजा ययाति से कहा ॥१९॥ **अश्रुबिन्दुमती ने कहा—** हे कान्त ! मैं गर्भवती हूँ। मुझको दोहद उत्पन्न हो गया है, आप मेरे मनोरथ को पूरा करें। हे राजन् ! आप यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करें ॥२०॥ **राजा ने कहा—** ठीक है महाभागे ! मैं तुम्हारा प्रिय कार्य कर रहा हूँ। उन्होंने राज्य के भोग की स्पृहा से रहित अपने श्रेष्ठ पुत्र पुरु को बुलाया॥२१॥ बुलाये जाते ही भक्तिपूर्वक अपना कन्धा झुकाये हुए तथा हाथ जोड़कर आकर पुरु ने अपने पिता को प्रणाम किया ॥२२॥ उन्होंने अश्रुबिन्दुमती के चरणों की वन्दना की। पुरु ने कहा— महाराज ! आपने मुझे जिसलिए बुलाया है, वह आदेश दें ॥२३॥ महाराज ! मैं आपका दास हूँ। मैं आपका कौन सा कार्य करूँ ? **राजा ने कहा—** पुत्र ! तुम अश्वमेध यज्ञ की तैयारी करो ॥२४॥ तुम पवित्र ब्राह्मणों, ऋत्विजों तथा राजाओं को बुलाओ। इस तरह से कहने पर परम धार्मिक महातेजस्वी पुरु ने ॥२५॥ राजा ने जैसा आदेश दिया था वैसा ही सभी कार्यों को किया। राजा ने अश्रुबिन्दुमती के साथ यज्ञ की दीक्षा ली॥२६॥ अश्वमेध यज्ञ की यज्ञशाला में राजा ने अनेक प्रकार का दान दिया। राजा ने ब्राह्मणों को अनन्त भूरिदान दिया॥२७॥ राजा ययाति ने दीनों को विशेष रूप से दान दिया। यज्ञ के अन्त में महाराज ने उस सुन्दरी से कहा ॥२८॥ हे सुन्दरि ! बतलाओ तुम्हारा मैं दूसरा कौन सा प्रिय कार्य करूँ ? हे वरानने ! मैं तुम्हारे साध्य तथा असाध्य सभी कार्यों को करूँगा ॥२९॥ **सुकर्मा ने कहा—** राजा के इस प्रकार कहने पर उसने राजा से कहा हे राजन् ! मुझको जो दोहद उत्पन्न हुआ है, उसको आप पूरा करें ॥३०॥ हे महाराज ! मैं इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोक को देखना चाहती हूँ ॥३२॥ **राजा ने कहा—** हे सुन्दरि ! तुम

दर्शयस्व महाभाग यदहं सुप्रिया तव। एवमुक्तस्तया राजा तामुवाच स सुप्रियाम् ॥३२॥
साधु-साधु वरारोहे पुण्यमेव प्रभाषसे ।
स्त्रीस्वभावाच्च चापल्यात्कौतुकाच्च वरानने ॥३३॥
यत्तवोक्तं महाभागे तदसाध्यं विभाति मे। तत्साध्यं पुण्यदानेन यज्ञेन तपसापि च ॥३४॥
अन्यथा न भवेत्साध्यंयत्त्वयोक्तं वरानने। असाध्यं तु भवत्या वै भाषितं पुण्यमिश्रितम्॥३५॥
मर्त्यलोकाच्छरीरेण अनेनापि च मानवः। सुतो दृष्टो न मेऽद्यापि गतःस्वर्गं सुपुण्यकृत्॥३६॥
ततोऽसाध्यं वरारोहे यत्त्वयाभाषितं मम। अन्यदेवकरिष्यामि प्रियं ते तद्वद प्रिये ॥३७॥

देव्युवाच

अन्यैश्च मानुषै राजन्नसाध्यं स्यान्नसंशयः । त्वयि साध्यं महाराज सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥३८॥
तपसा यशसा क्षात्रैर्दानैर्यज्ञैश्च भूपते। नास्तिभवादृशश्चान्यो मर्त्यलोके च मानवः ॥३९॥
क्षात्रं बलं सुतेजश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मादेवं प्रकर्तव्यं मत्प्रियं नहुषात्मज॥४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थ वर्णने ययातिचरित्रे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

पिप्पल उवाच

कामकन्यां यदाराज्ञा उपयेमे द्विजोत्तम। किं चक्राते तदाते द्वे पूर्वभार्ये सुपुण्यके॥१॥

स्त्रीस्वभाव, चपलता तथा कौतुकवशात् पवित्र कर्मों को ही करने के लिए कहती हो ॥३३॥ हे महाभागे ! तुमने जो कहा है, वह मुझको असाध्य सा प्रतीत होता है । वह पवित्र दान, यज्ञ तथा तपस्या से ही साध्य हो सकता है ॥३४॥ हे वरानने ! इन सबों से भिन्न प्रकार से वह साध्य नहीं है । तुमने पुण्य युक्त असाध्य कार्य को कहा है ॥३५॥ मैंने आज तक यह नहीं सुना है और न देखा है कि कोई पुण्यवान् मनुष्य इस शरीर से स्वर्गलोक में गया हो ॥३६॥ अतएव हे वरारोहे ! तुमने जो कहा है वह असाध्य कार्य है । अतएव हे देवि ! तुम अपना दूसरा प्रिय कार्य बतलाओ उसे मैं करूँ ॥३७॥ **देवी ने कहा**— हे राजन् ! मैं सत्य कह रही हूँ कि यह कार्य दूसरे मनुष्यों के लिए अवश्य असाध्य होगा किन्तु आपके लिए तो यह साध्य है ॥३८॥ इस मर्त्यलोक में आपके समान कोई भी मनुष्य आपके समान तपस्या, यश, क्षात्रकर्म, दान तथा यज्ञ करने वाला नहीं है ॥३९॥ आप में क्षत्रियोचित बल और तेज विद्यमान है, अतएव हे नहुषात्मज ! आपको मेरा यह प्रिय कार्य करना चाहिए ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत उनासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७९॥

शर्मिष्ठा और देवयानी के व्यवहार का वर्णन

पिप्पल ने कहा— हे द्विजोत्तम ! जब राजा ने उस काम कन्या के साथ विवाह कर लिया तो उनकी

देवयानी महाभागा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। तयोश्चरितं तत्सर्वं कथयस्व ममाग्रतः ॥२॥

सुकर्मोवाच

यदानीता कामकन्या स्वगृहं तेन भूभुजा। अत्यर्थं स्पर्धते सा तु देवयानी मनस्विनी ॥३॥
तस्यार्थे तु सुतौ शप्तौ क्रोधेनकुलितात्मजा। शर्मिष्ठां च समाहूय शब्दं चक्रे यशस्विनी ॥४॥
रूपेण तेजसा दानैःसत्यपुण्यव्रतैस्तथा। शर्मिष्ठा देवयानी च स्पर्धेतेस्म तया सह ॥५॥
दुष्टभावं तयोश्चापि साऽज्ञासीत्कामजा तदा।
राज्ञे सर्वंतया विप्र कथितं तत्क्षाणादिह ॥६॥
अथक्रुधो महाराजःसमाहूयाब्रवीद्यदुम्। शर्मिष्ठावध्यतां गत्वा शुक्रपुत्रीं तथापुनः ॥७॥
सुप्रियं कुरु मे वत्स यदिश्रेयो हि मन्यसे। एवमाकर्ण्य तत्तस्य पितुर्वाक्यं यदुस्तदा ॥८॥
प्रत्युवाच नृपेन्द्रं तं पितरं प्रति मानद। नाहं तु घातये तात मातरौ दोषवर्जिते ॥९॥
मातृघाते महादोषःकथितो वेदपण्डितैः। तस्माद्घातं महाराज एतयोर्न करोम्यहम् ॥१०॥
दोषाणां तु सहस्रेण माता लिप्ता यदा भवेत्।
भगिनी च महाराज दुहिता च तथापुनः ॥११॥
पुत्रैर्वा भ्रातृभिश्चैव नैव वध्या भवेत्कदा। एवं ज्ञात्वा महाराज मातरौ नैव घातये ॥१२॥
यदोर्वाक्यं तदाश्रुत्वा राजा क्रुद्धो बभूवह। शशाप तं सुतं पश्चाद्ययातिःपृथिवीपतिः ॥१३॥
यस्मादाज्ञाहतावद्य त्वया पापिसमोऽपि हि। मातुरंशं भजस्व त्वं मच्छाप कलुषीकृतः ॥१४॥
एवमुक्त्वा यदुंपुत्रं ययातिःपृथिवीपतिः। पुत्रं शप्त्वा महाराजस्तयासार्द्धमहायशाः ॥१५॥

पहले की जो दो पत्नियाँ थी उनदोनों ने क्या किया ?॥१॥ हे महाभाग ! देवयानी तथा वृषपर्णा की पुत्री शर्मिष्ठा इन दोनों के चरित को आप मुझे बतलायें ॥२॥ **सुकर्मा ने कहा**— जब महाराज ययाति उस काम कन्या को अपने घर लाये तो देवयानी ने उसके साथ अत्यधिक स्पर्धा की ॥३॥ उसके कारण व्याकुल राजा ययाति ने क्रुद्ध होकर अपने दो पुत्रों को शाप दे दिया। मनस्विनी देवयानी ने शर्मिष्ठा को बुलाकर सारी बातों को कहा। रूप, तेज तथा दान के द्वारा शर्मिष्ठा तथा देवयानी अश्रुबिन्दुमति से अत्यधिक स्पर्धा करने लगीं ॥४-५॥ उस काम पुत्री ने उन दोनों के दुष्टतापूर्ण भाव को जान लिया। उसने उन सारी बातों को राजा को बतला दिया ॥६॥ उसके बाद राजा ने यदु नामक अपने पुत्र को बुलाकर कहा— तुम शर्मिष्ठा और देवयानी दोनों का बध कर दो ॥७॥ हे वत्स ! यदि तुम इसको पुण्य समझते हो तो यह मेरा प्रिय कार्य करो। अपने पिता की इस बात को सुनकर यदु ने कहा ॥८॥ उसने अपने पिता नृपश्रेष्ठ ययाति से कहा मैं अपनी दोनों निर्दोष माताओं को नहीं मार सकता हूँ ॥९॥ वेद के पण्डितों ने माता के मारने का बहुत बड़ा पाप बतलाया है। इसी तरह का पाप बहन और पुत्री को भी मारने का होता है। अतएव हे महाराज ! मैं इनदोनों का वध नहीं कर रहा हूँ ॥१०॥ यदि माता बहन और पुत्री में हजारों दोष हो तो भी पुत्रों अथवा भाइयों को इन सबों का वध नहीं करना चाहिए। इस बात को जानकर हे महाराज ! मैं अपनी दोनों माताओं का वध नहीं कर रहा हूँ ॥११-१२॥ यदु की बात को सुनकर राजा क्रुद्ध हो गये। उसके बाद उन्होंने अपने पुत्र यदु को शाप दिया कि ॥१३॥ तुमने चूकि मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है अतएव तुम पापी हो। अतएव मेरे शाप के कारण पापी बने हुए तुम अपनी माता के अंश को प्राप्त करो ॥१४॥

रमते सुखभोगेन विष्णोर्ध्यानेन तत्परः। अश्रुबिन्दुमती सा च तेन सार्द्धं सुलोचना॥१६॥
बुभुजेचारुसर्वाङ्गी पुण्यान्भोगान्मनोऽनुगान्। एवंकालोगतस्तस्य ययातेस्तुमहात्मनः॥१७॥
अक्षया निर्जराःसर्वा अपरास्तु प्रजास्तथा। सर्वेलोका महाभाग विष्णुध्यानपरायणाः॥१८॥
तपसा सत्यभावेन विष्णोर्ध्यानेन पिप्पल। सर्वेलोका महाभागसुःखिनःसाधुसेवकाः॥१९॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रेऽशीतितमोऽध्यायः॥८०॥

एकास्सीवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

यथेन्द्रोऽसौ महाप्राज्ञःसदा भीतो महात्मनः। ययातेर्विक्रमं दृष्ट्वा दानपुण्यादिकं बहु॥१॥
मेनकां प्रेषयामास अप्सरां दूतकर्मणि। गच्छ भद्रे महाभागे ममादेशं वदस्व हि॥२॥
कामकन्यामितो गत्वा देवराज वचो वद। येनकेनाप्युपायेन राजानं त्वमिहानय॥३॥
एवंश्रुत्वा गतासा च मेनका तत्रप्रेषिता। समाचष्ट तु तत्सर्वं देवराजस्य भाषितम्॥४॥
एवमुक्ता गतासा च मेनका तत्रचोदिता। गतायां मेनकायां तु रतिपुत्री मनस्विनी॥५॥
राजानं धर्मसङ्केतं प्रत्युवाच यशस्विनी। राजंस्त्वयाहममानीता सत्यवाक्येन वै पुरा॥६॥

इस तरह से यदु को कहकर पृथिवीपति उस काम पुत्री के ही साथ रमण करने लगे ॥१५॥ वे विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए सुखपूर्वक भोगों को भोगते हुए रमण करते रहे। सुन्दर नेत्रों वाली अश्रुबिन्दुमती भी उस राजा के साथ रहती थी ॥१६॥ अपने मनोनूकूल वह सर्वाङ्ग सुन्दरी भोगों को भोगती थी। इस तरह राजा ययाति का बहुत समय बीत गया ॥१७॥ हे महाभाग! अक्षय तथा जरा रहित सम्पूर्ण दूसरी प्रजायें इत्यादि सभी लोग भगवान् विष्णु के ही ध्यान में लगे रहते थे ॥१८॥ हे महाभाग पिप्पल! तपस्या, सत्यभाव तथा भगवान् विष्णु के ध्यान के कारण सभी लोग सुखी तथा साधुजनों के सेवक हो गये थे॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्रान्तर्गत अस्सीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८०॥

इन्द्र की आज्ञा से मेनका का अश्रुबिन्दुमती के पास जाना

सुकर्मा ने कहा— ययाति के द्वारा किए जाने वाले बहुत से पुण्य कर्मों को देखकर इन्द्र सदा उनसे भयभीत रहा करते थे ॥१॥ इन्द्र ने मेनका को अपना दूती बनाकर कामकन्या के पास भेजा और कहा कि उससे यह कहना कि वह किसी भी उपाय से ययाति को स्वर्ग में लाये; यह इन्द्र का आदेश है ॥२-३॥ इन्द्र की बातों को सुनकर मेनका उस काम कन्या के पास गयी और उसने इन्द्र के द्वारा कही गयी सारी बातों को उसे सुनाया ॥४॥ उसके बाद रति की पुत्री ने मेनका को भेज दिया और उसके बाद उसने धर्म

स्वकरश्चान्तरेदत्तो भवनं च समाहृता। यद्यद्वदाम्यहं राजंस्तत्तत्कार्यं हि वै त्वया॥७॥
तदेवं हि त्वया वीर न कृतं भाषितं मम। त्वामेवं तु परित्यक्ष्ये यास्यामि पितृमन्दिरम्॥८॥

राजोवाच

यथोक्तं हि त्वया भद्रे तत्ते कर्त्ता न संशयः।
असाध्यं तु परित्यज्य साध्यं देवि वदस्व मे॥९॥

अश्रुविन्दुमत्युवाच

एतदर्थे महीकान्त भवानिह मया वृतः। सर्वलक्षणसम्पन्नःसर्वधर्मसमन्वितः॥१०॥
सर्वसाध्यमिति ज्ञात्वा सर्वधर्तारमेव च। कर्त्तारं सर्वधर्माणां स्रष्टारं पुण्यकर्मणाम्॥११॥
त्रैलोक्यसाधकं ज्ञात्वा त्रैलोक्येऽप्रतिमं च वै।
विष्णुभक्तमहं जाने वैष्णवानां महावरम्॥१२॥
इत्याशया मया भर्त्ता भवानङ्गीकृतः पुरा। यस्यविष्णुप्रसादोऽस्ति स सर्वत्र परिव्रजेत्॥१३॥
दुर्लभं नास्ति राजेन्द्र त्रैलोक्ये सचराचरे। सर्वेष्वेव सुलोकेषु विद्यते तव सुव्रत॥१४॥
विष्णोश्चैव प्रसादेन गगनेगतिरुत्तमा। मर्त्यलोकं समासाद्य त्वयैव वसुधाधिप॥१५॥
जरापलितहीनास्तु मृत्युहीना जनाःकृताः। गृहद्वारेषु सर्वेषु मर्त्यानां च नरर्षभ॥१६॥
कल्पद्रुमा अनेकाश्च त्वयैव परिकल्पिताः। एषां गृहेषु मर्त्यानां मुनयःकामधेनवः॥१७॥
त्वयैव प्रेषिता राजन्स्थिरीभूताःसदाकृताः। सुखिनःसर्वकामैश्च मानवाश्च त्वया कृताः॥१८॥
गृहैकमध्ये साहस्रं कुलीनानां प्रदृश्यते। एवं वंशविवृद्धिश्च मानवानां त्वया कृता॥१९॥

सङ्केत राजा ययाति से कहा राजन् ! आपने सत्य वाक्य के बल पर पहले विवाह किया था ॥५-६॥ आपने मुझे अपना हाथ थमाया और अपने घर लाकर आपने मेरा समादर भी किया। मैंने जो-जो कहा उसको आपने पूरा भी किया है ॥७॥ आपने कभी भी इस प्रकार की बात नहीं कहा। ऐसा करने पर तो मैं आपको छोड़कर अपने पिता के घर चली जाऊँगी ॥८॥ **राजा ने कहा—** भद्रे ! तुम जैसा कहोगी मैं वैसा ही करूँगा इसमें कोई भी संशय नहीं है। तुम असाध्य कार्य को छोड़कर साध्य कार्य बतलाओ। **अश्रुविन्दुमती ने कहा—** इसीलिये मैंने आपसे विवाह किया था। आप सभी लक्षणों से सम्पन्न और सभी धर्मों से समन्वित है ॥१०॥ सर्वसाध्य ही जानकर सबकुछ धारण करने वाले, सभी धर्मों को करने वाले पुण्य कर्मों की सृष्टि करने वाले ॥११॥ आपको त्रैलोक्य साधक तथा त्रैलोक्य में सर्वश्रेष्ठ आपको मैं वैष्णवों में सबसे श्रेष्ठ भगवान् विष्णु का भक्त मानती हूँ ॥१२॥ इसी अभिप्राय से मैंने पहले आपको अपना पति बनाया। जिस पर भगवान् विष्णु की कृपा है वह सर्वत्र जा सकता है ॥१३॥ हे राजन् ! चराचरात्मक त्रिलोकी में आपके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे सुव्रत ! सभी लोकों में भगवान् विष्णु की कृपा से आपकी गति सम्भव है। मर्त्यलोक में आकर हे राजन् ! आप ही सभी लोगों को जरा और पलित से रहित बना दिये हैं। सभी मनुष्यों के द्वार पर हे नरश्रेष्ठ !॥१५-१६॥ आपने अनेक कल्पवृक्षों को जमा दिया है। उन मनुष्यों के घर में आपने मुनियों तथा कामधेनुओं को भेज दिया है ॥१७॥ और उन सबों को वहाँ पर स्थिर बना दिया है। आपने सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करके उन्हें सुखी बना दिया है ॥१८॥ हजारों कुलीनों के घर में आपने इसतरह से मानवों के वंशों की विशिष्ट वृद्धि की है ॥१९॥ हे नरोत्तम ! यमराज

यमस्यापि विरोधेन इन्द्रस्य च नरोत्तम। व्याधिपापविहीनस्तु मर्त्यलोकस्त्वया कृतः ॥२०॥
स्वतेजसाऽहङ्कारेण स्वर्गरूपं तु भूतलम्। दर्शितं हि महाराज त्वत्समो नास्ति भूपतिः ॥२१॥
नरो नैव प्रसूतो हि नोत्पत्स्यति भवादृशः। भवन्तमित्यहं जाने सर्वधर्मप्रभाकरम् ॥२२॥
तस्मान्मयाकृतो भर्ता वदस्वैवं ममाग्रतः। नर्ममुक्त्वा नृपेन्द्रत्वं वद सत्यं ममाग्रतः ॥२३॥
यदि ते सत्यमस्तीह धर्मश्चास्ति नराधिप। देवलोकेषु मे नास्ति गगने गतिरुत्तमा ॥२४॥

सत्यं त्यक्त्वा यदा च त्वं नैव स्वर्गं गमिष्यसि।
तदावृतं तव वचो भविष्यति न संशयः ॥२५॥

पूर्वं कृतं हि यच्छ्रेयो भस्मीभूतं भविष्यति ॥२६॥

राजोवाच

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे साध्यासाध्यं न चास्ति मे।
सर्वसाध्यं सुलोकं मे सुप्रसादाज्जगत्पतेः ॥२७॥

स्वर्गं देवि यतो नैमि तत्र मे कारणं शृणु। भागं तु तेन दास्यन्ति मम मृत्युश्च देवताः ॥२८॥
ततो मे मानवाःसर्वे प्रजाःसर्वा वरानने। मृत्युयुक्ता भविष्यन्ति मया हीना न संशयः ॥२९॥
गन्तुं स्वर्गं न वाञ्छामि सत्यमुक्तं वरानने ॥३०॥

देव्युवाच

लोकान्दृष्ट्वा महाराज आगमिष्यसि वै पुनः।
पूरयस्व ममाद्यत्वं जातां श्रद्धां महातुलाम् ॥३१॥

राजोवाच

सर्वमेवं करिष्यामि यत्त्वयोक्तं न संशयः। समालोक्य महातेजा ययातिर्नहुषात्मजः ॥३२॥

तथा इन्द्र के विरोध के कारण आपने मर्त्यलोक को व्याधि तथा पाप से रहित बना दिया है ॥२०॥ हे महाराज ! आपने अपने तेज तथा अहङ्कार के द्वारा भूलोक को स्वर्ग के समान बना दिया। आपके समान कोई भी दूसरा राजा नहीं है ॥२१॥ आपके समान कोई मनुष्य न तो उत्पन्न हुआ और न उत्पन्न होने वाला है। मैं आपको सभी धर्म को प्रकाशित करने वाला मानती हूँ ॥२२॥ इसीलिए मैंने आपको अपना पति बनाया है। हे राजन् ! आप हँसी करना छोड़कर सत्य-सत्य बात मुझे बतलायें ॥२३॥ यदि आप सत्य और धर्म को मानते है तो आप बतलायें कि क्या आपकी देवलोकों में गति नहीं हैं ?॥२४॥ आप यदि सत्य का परित्याग करके स्वर्ग नहीं ही जायेंगे तो यह आपकी वाणी छलमयी हो जायेगी, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२५॥ उसके कारण पहले आपने जो पुण्य किया है, वह भस्म हो जायेगा **राजा ने कहा—** हे भद्रे ! तुमने सत्य कहा है कि कोई भी कार्य मेरे लिए असाध्य नहीं है ॥२६॥ जगत्पति श्रीभगवान् की कृपा के कारण मेरे लिए सब कुछ साध्य है ॥२८॥ हे वरानने ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ये प्रजायें मेरे बिना मृत्यु से युक्त हो जायेंगी, इसीलिए मैं स्वर्ग नहीं जाना चाहता हूँ ॥२९॥ **देवी ने कहा—** महाराज उन लोकों को देखकर मैं पुनः आ जाऊँगी। आज आप मेरे इस अतुलनीय श्रद्धा को पूरा करें ॥३०॥ **राजा ने कहा—** तुमने जो कहा उन सारी बातों को मैं करूँगा। इस तरह से नहुष के पुत्र राजा ययाति अपनी प्रियतमा को कहकर विचार करने लगे। मछली जल के भीतर रहती है किन्तु वह भी जाल में बँध

एवमुक्त्वा प्रियां राजाचिन्तयामास वै तदा। अन्तर्जलचरोमत्स्य:सोऽपिजालेन बध्यते ॥३३॥
मरुत्समानवेगोऽपि मृगः प्राप्नोति बन्धनम्। योजनाना सहस्रस्थमामिषं वीक्षते खगः ॥३४॥
सकण्ठलग्नपाशं च न पश्यद्दैवमोहितः। सवैषम्यकरःकालःसैवसम्मानहानिदः ॥३५॥
परिभावकरःकालो यत्रकुत्रापि तिष्ठतः। नरंकरोति दातारं याचितारं च वै पुनः ॥३६॥

भूतानि स्थावरादीनि दिवि वा यदि वा भुवि ।
सर्वं कालयेत्कालःकालोह्येक इदंजगत् ॥३७॥

अनादिनिधनो धाता जगतःकारणंपरम्। लोकान्कालःसपचति वृक्षे फलमिवाहितम् ॥३८॥

न मन्त्रा न तपोदानं न मित्राणि न बान्धवाः ।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥३९॥

त्रयःकालकृताःपाशाःशक्यन्ते नातिवर्तितुम्। विवाहोजन्ममरणं यदायत्र तु येन च ॥४०॥
यथा जलधराव्योम्नि भ्राम्यन्ते मातरिश्वना। तथेदं कर्मयुक्तेन कालेन भ्राम्यते जगत् ॥४१॥

सुकर्मोवाच

कालोऽयं कर्मयुक्तस्तु यो नरैःसमुपासितः। कालस्तुप्रेरयेत्कर्म तं तं कालःकरोतिसः ॥४२॥
उपद्रवा घातदोषाःसर्पाश्चव्याधयस्ततः। सर्वेकर्मनियुक्तास्ते प्रचरन्ति च मानुषे ॥४३॥
सुखस्य हेतवो ये च उपायाःपुण्यमिश्रिताः। ते सर्वे कर्मसंयुक्ता नपश्येयुःशुभाशुभम् ॥४४॥

कर्मदा यदि वा लोके कर्मसम्बन्धि बान्धवाः ।
कर्माणि चोदयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः ॥४५॥

जाती है ॥३१-३२॥ वायु के समन वेग वाला मृग बन्धन में पड़ जाता है। पक्षी हजारों योजन दूर से ही मांस को देख लेते हैं ॥३३॥ किन्तु भाग्य से मोहित मनुष्य अपने गले में पड़े हुए पाश को नहीं देख पाता है। काल ही सम को विषम बना देता हे। काल ही सम्मान और हानि प्रदान करता है ॥३४॥ जहाँ कहीं भी रहने वाला काल ही किसी का तिस्कार करता है। काल ही मनुष्य को दाता और याचक बना देता है॥३५॥ स्थावार आदि भूतों को अकेला काल ही कवलित कर लेता है चाहे वहे जीव द्युलोक में हो अथवा भूलोक में। यह सारा जगत् कालकृत ही है ॥३६॥ काल अनादि-निधन है, धाता (धारण करने वाला) है तथा जगत् का सर्वश्रेष्ठ कारण है। वृक्ष में लगे हुए फल के समान, काल जीवों को पकाने का काम करता है ॥३७॥ काल से पीडित मनुष्य को मन्त्र, तपस्या, दान, मित्र अथवा बन्धुजन इनमें से कोई भी नहीं बचा सकता है ॥३८॥ काल ने तीन पाशों को बनाया है विवाह, जन्म और मृत्यु ये जब जहाँ और जिसके साथ होने वाले होते हैं, उसी समय वहाँ पर तथा उसी के द्वारा होते हैं, इन सबों का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥३९॥ जिस तरह मेघों को वायु आकाश में घुमाती रहती है, उसी तरह काल के द्वारा कर्म से युक्त मानव घुमाया जाता है ॥४०॥ **सुकर्मा ने कहा—** कर्म से युक्त काल की मनुष्य उपासना करता है। काल ही कर्म को प्रेरित करता है, काल उस कर्म को करता है ॥४१॥ उपद्रव, घात, दोष, सर्प तथा व्याधियाँ ये सबके सब कर्म के द्वारा नियुक्त होकर मनुष्यलोक में विचरण करते हैं ॥४२॥ सुख के जो पुण्य मिश्रित उपाय हैं, वे सब-के-सब कर्ममिश्रित हाते हैं। उसके बिना जीवों को शुभ तथा अशुभ की प्राप्ति नहीं होती है ॥४३॥ यदि लोक में कर्म प्रदान करने वाले सभी कर्म सम्बन्धी बाँधव हैं तो वे पुरुष को तथा

सुवर्णरजतंवापि यथारूपंविनिश्चितम् । तथानिबध्यते जन्तुःस्वकर्मणि वशानुगः ॥४६॥
पञ्चैतानीहसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः । आयुःकर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ॥४७॥
यथामृत्पिण्डतःकर्ता कुरुते यद्यदिच्छति । तथापूर्वकृतंकर्म कर्तारमनुगच्छति॥४८॥

देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षिता तथा ।
तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं च प्राप्यते च स्वकर्मभिः ॥४९॥

सएवतथाभुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना । आत्मनाविहितंदुःखं चात्मनाविहितंसुखम् ॥५०॥
गर्भशय्यामुपादाय भुञ्जते पूर्वदैहिकम् । सन्त्यजन्तिस्वकंकर्म न क्वचित्पुरुषा भुवि ॥५१॥
बलेन प्रज्ञया वापि समर्थाःकर्तुमन्यथा । सुकृतान्युपभुञ्जन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥५२॥
हेतुं प्राप्य नरोनित्यं कर्मबन्धैस्तु बध्यते । यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम् ॥५३॥
तथाशुभाशुभंकर्म कर्तारमनुगच्छति । उपभोगादृते यस्य नाशएव न विद्यते ॥५४॥
प्राक्तनं बन्धनंकर्म कोऽन्यथाकर्तुमर्हति । सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति॥५५॥
शेते सह शयानेन पुराकर्म यथाकृतम् । उपतिष्टति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ॥५६॥
करोति कुर्वतःकर्म च्छायेवानुविधीयते । यथाछायातपौनित्यं सुसम्बद्धौपरस्परम् ॥५७॥
तद्वत्कर्म च कर्ता च सुसम्बद्धौ परस्परम् । ग्रहारोगाविषाःसर्पाःशाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥५८॥

सुख दुःख को कर्म ही प्रेरित करते हैं ॥४४॥ जिस तरह सोना अथवा चाँदी का रूप लोक में निश्चित है, उसी तरह मनुष्य अपने कर्मों के बंधन में बँध जाते हैं ॥४५॥ जीव जब गर्भ में ही रहते हैं उसी समय उनकी इन पाँच वस्तुओं की सृष्टि कर दी जाती है । आयु, कर्म, वित्त, विद्या तथा मृत्यु ॥४६॥ जिस तरह से कुम्हार मिट्टी के पिण्ड से जो-जो चाहता है, वही-वही बर्तन बनाता है । उसी तरह पूर्व जन्म में किए गये कर्म कर्मकर्ता के साथ लगे रहते हैं ॥४७॥ जीव अपने कर्म के द्वारा ही देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, पक्षित्व, तिर्यक्त्व तथा स्थावरत्व को प्राप्त करता है ॥४८॥ जीव ने जैसा कर्म किया है उसी के अनुसार वह फल भोगता है । अपने से ही जीव सुख करता है और अपने से ही दुःख भोगता है ॥४९॥ गर्भरूपी शय्या को प्राप्त करके जीव पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगता है । लोग संसार में कहीं भी अपने कर्मो का त्याग नहीं कर सकते हैं ॥५०॥ बल अथवा बुद्धि के द्वारा कर्म को बदल देने में समर्थ भी जीव अपने द्वारा किए गये सुखों तथा दुःखों को भोगते हैं ॥५१॥ मनुष्य नित्य ही हेतुओं को प्राप्त करके कर्मों के बन्धनों में बँध जाता है । जिस तरह बछड़ा हजारों गायों के बीच में विद्यमान अपनी माँ को खोज लेता है॥५२॥ उसी तरह पाप-पुण्य अपने कर्ता का ही अनुगमन करते हैं । फल भोगे बिना कर्म का नाश नहीं होता है ॥५३॥ पूर्वजन्म के कर्मकृत वन्धन को कोई नहीं मिटा सकता है । अत्यन्त तेज दौड़ने वाला भी भाग्य के ही पीछे दौड़ता है ॥५४॥ पहले जन्म में जैसा कर्म किया गया रहता है वह कर्म अपने कर्ता पुरुष के साथ ही सोता है, वह कर्ता पुरुष के बैठने पर बैठता है और उसके चलने पर उसके साथ चलता रहता॥५५॥ उसके किसी काम को करते रहने पर वह भी करता है, इस तरह कर्मजीव का अनुगमन उसकी छाया के समान करता है । जिस तरह छाया और धूप एक दूसरे से संबद्ध हाते हैं ॥५६॥ उसी तरह कर्म और कर्ता परस्पर में एक दूसरे से संबद्ध रहते हैं । ग्रह, रोग, विष, सर्प, शाकिनी तथा राक्षस तो मनुष्य को बाद में पीड़ित करते हैं, पहले तो मनुष्य अपने कर्मों से ही पीड़ित होता है । जिसको जिसके द्वारा जहाँ

पीडयन्ति नरं पश्चात्पीडितं पूर्वकर्मणा। येन यत्रोपभोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेव वा ॥५९॥
स तत्रबद्ध्वारज्ज्वा वै बलाद्दैवेन नीयते। दैवःप्रभुर्हिभूतानां सुखदुःखोपपादने ॥६०॥
अन्यथा चिन्त्यतेकर्म जाग्रता स्वपताऽपि वा ।
अन्यथा स तथा प्राज्ञ दैव एव जिघ्रांसति ॥६१॥
शस्त्राग्नि विषदुर्गेभ्यो रक्षितव्यं च रक्षति। अरक्षितं भवेत्सत्यं तदेवं दैवरक्षितम् ॥६२॥
दैवेन नाशितं यत्तु तस्य रक्षा न दृश्यते। यथा पृथिव्यां वीजानि उप्तानि च धनानि च ॥६३॥
तथैवात्मनि कर्माणि तिष्ठन्ति प्रभवन्ति च। तैलक्षयाद्यथादीपो निर्वाणमधिगच्छति ॥६४॥
कर्मक्षयात्तथा जन्तुःशरीरान्नाशमृच्छति। कर्मक्षयात्तथामृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहृतः ॥६५॥
विविधाःप्राणिनस्तस्य मृत्यो रोगाश्च हेतवः ।
तथा मम विपाकोऽयं पूर्वकृतस्य नान्यथा ॥६६॥
सम्प्राप्तो नात्र सन्देहःस्त्रीरूपोऽयं न संशयः ।
क्व मे गेहं समायाता नाटका नटनर्तकाः ॥६७॥
तेषां सङ्गप्रसङ्गेन जरादेहं समाश्रिता। सर्वं कर्मकृतं मन्ये यन्मे सम्भावितं ध्रुवम् ॥६८॥
तस्मात्कर्मप्रधानं च उपायाश्च निरर्थकाः। पुरा वै देवराजेन मदर्थे दूतसत्तमः ॥६९॥
प्रेषितो मातलिर्नाम न कृतं तस्य तद्वचः। तस्य कर्मविपाकोऽयं दृश्यते साम्प्रतं मम ॥७०॥
इति चिन्तापरोभूत्वा दुःखेन महतान्वितः। यद्यस्यहि वचःप्रीत्या न करोमि हि सर्वथा ॥७१॥
सत्यधर्मावुभावेतौ यास्यतस्तौ न संशयः। सदृशं च समायातं यद्दुष्टं मम कर्मणा ॥७२॥

पर सुख अथवा दुःख भोगना रहता है ॥५७-५८॥ उसको भाग्य वहाँ पर उस कर्म रूपी रस्सी से बाँधकर पहुँचा देता है। जीवों को सुख अथवा दुःख की प्राप्ति का मुख्य नियामक भाग्य ही है ॥५९॥ हे प्राज्ञ! जागते और सोते समय कर्म दूसरी तरह सोचता है और जीव दूसरी तरह सोचता है। इसी तरह भाग्य जीव को मारने का काम करता है ॥६०॥ भाग्य के द्वारा रक्षित ही रक्षितव्य वस्तु को मनुष्य शस्त्र, अग्नि, विष तथा दुर्ग से रक्षा कर पाता है, अन्यथा वह अरक्षित हो जाता है, सत्य ही है कि भाग्य के द्वारा रक्षित की ही रक्षा कोई कर पाता है ॥६१॥ जिसका भाग्य ने नाश कर दिया है उसकी रक्षा नहीं हो पाती है। पृथिवी में वोये गये बीज और गाड़े गये धन के समान ॥६२॥ आत्मा में कर्म रहते हैं और उत्पन्न होते हैं। जिस तरह तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बूझ जाता है। उसी तरह कर्मों का क्षय हो जाने पर जीव मर जाता है, इसीलिए तत्त्वज्ञ पुरुषों ने 'कर्मों का क्षय हो जाने पर ही मृत्यु होती है' यह बतलाया है ॥६३-६४॥ अनेक प्राणियों की मृत्यु का कारण जैसे रोग हो जाते हैं, उसी तरह से यह मेरे पूर्वकृत कर्म का परिणाम है ॥६५॥ यह स्त्री रूप से मुझे प्राप्त हुआ है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। न जाने कहाँ से मेरे घर नाटक नट और नर्तक आये ॥६६॥ उन सबों के साथ संग होने के कारण मेरे शरीर में जरा आ गयी। यह सब मेरे पूर्वकृत कर्म जन्य हैं, ऐसा मैं मानता हूँ ॥६७॥ अतएव प्रधान कर्म ही है। उपाय तो र्थ हैं। पहले देवराज ने मेरे पास अपने श्रेष्ठ दूत मातलि को भेजा था किन्तु मैंने उनकी बात को नहीं माना उसी कर्म का परिणाम मुझे इस समय भोगना पड़ रहा है ॥६८-६९॥ अत्यन्त दुःखी राजा इस तरह से चिन्तन करते हुए सोचे कि यदि मैं प्रेम पूर्वक इसकी बात नहीं मानता हूँ तो ॥७०॥ मेरे सत्य तथा धर्म

भविष्यति न सन्देहो दैवो हि दुरतिक्रमः। एवंचिन्तापरोभूत्वा ययातिःपृथिवीपतिः ॥७३॥
कृष्णं क्लेशापहं देवं जगाम शरणं हरिम्। ध्यात्वा नत्वा ततःस्तुत्वा मनसा मधुसूदनम् ॥७४॥
त्राहि मां शरणं प्राप्तस्त्वामहं कमलाप्रिय ॥७५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

बयासीवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

एवं चिन्तयते यावद्राजा परमधार्मिकः । तावत्प्रोवाच सा देवी रतिपुत्री वरानना ॥१॥
किमुचिन्तयसे राजंस्त्वमिहैव महामते । प्रायेणापि स्त्रियःसर्वाश्चपलाःस्युर्न संशयः॥२॥
नाहं चापल्यभावेन त्वामेवं प्रविचालये । नाहं हि कारयाम्यद्य भवत्पार्श्वं नृपोत्तम ॥३॥
अन्यस्त्रियो यथा लोके चपलत्वाद्वदन्ति च । अकार्यं राजराजेन्द्र लाभान्मोहाच्च लम्पटाः ॥४॥
लोकानां दर्शनायैव जाता श्रद्धा ममोरसि। देवानां दर्शनं पुण्यं दुर्लभं हि सुमानुषैः ॥५॥

दोनों विनष्ट हो जायेंगे । यह तो मेरे कर्मों के अनुसार ही मुझे फल प्राप्त हुआ है ॥७१॥ यही होने वाला था कोई भी भाग्य का अतिक्रमण नही कर सकता है । इस तरह से सोचकर पृथिवीपति ययाति ॥७२॥ क्लेशों को दूर करने वाले भगवान् की शरणागति की । उन्होंने मन से भगवान् मधुसूदन का ध्यान किया, उनको प्रणाम किया और उनकी स्तुति की और कहा— हे भगवन् ! लक्ष्मीपति आप मेरी रक्षा करें, मैं आपके शरण में हूँ ॥७३-७५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत एक्यासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८१॥

अश्रुबिन्दुमती के स्वर्ग जाने का आग्रह देखकर राजा ययाति का पुरु को राज्य देकर उन्हें उनकी जवानी को लौटाना और अपनी बुढ़ापा को लेना

सुकर्मा ने कहा— जब महाराज ययाति इस प्रकार से विचार ही कर रहे थे उसी समय रति की पुत्री उस देवी ने महाराज से कहा ॥१॥ हे महामते ! महाराज आप क्या चिन्ता कर रहे हैं ? प्रायः सभी स्त्रियाँ स्वभावतः चंचल होती है ॥२॥ मैं अपनी चंचलता के कारण आपसे इस तरह की बात नहीं कह रहीं हूँ। हे नृपोत्तम ! मैं आज आपके पार्श्व में नहीं हूँ ॥३॥ जिस तरह लोक में दूसरी स्त्रियाँ चपलता के कारण हे राजराजेन्द्र ! लोभ तथा मोह के कारण लम्पट बनी हुयी अकार्य (निन्दित कार्य) करने के लिए कहती हैं वैसा मैं नहीं कर रही हूँ ॥४॥ लोगों को दिखलाने के ही लिए मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुयी कि मनुष्यों

तेषां च दर्शनं राजन्कारयामि वदस्व मे। दोषं पापकरं यत्तु मत्सङ्गादिह चेद्भवेत् ॥६॥
कथं चिन्तयसे दुःखं यथान्यःप्राकृतो जनः ।
महाभयाद्यथा भीतो मोहगर्ते गतो यथा ॥७॥
त्यज चिन्तां महाराज न गन्तव्यं त्वया दिवि ।
येन ते जायते दुःखं तन्न कार्यं मया कदा ॥८॥
एवमुक्तस्तथा राजा तामुवाच वराननाम्। चिन्तितं यन्मया देवि तच्छृणुष्व हि साम्प्रतम्॥९॥
मानभङ्गो मया दृष्टो नैव स्वस्यमनः प्रिये। मयि स्वर्गगते कान्ते प्रजादीना भविष्यति॥१०॥
त्रासयिष्यति दुष्टात्मा यमस्तु व्याधिभिःप्रजाः ।
त्वया सार्धं प्रयास्यामि स्वर्गलोकं वरानने ॥११॥
एवमाभाष्य तां राजा समाहूय सुतोत्तमम् ।
पूरुं तं सर्वधर्मज्ञं जरायुक्तं महामतिम् ॥१२॥
एह्येहि सर्वधर्मज्ञ धर्मं जानासि निश्चितम्। ममाज्ञया हि धर्मात्मन्धर्मःसम्पालितस्त्वया ॥१३॥
जरा मे दीयतां तात तारुण्यं गृह्यतां पुनः । राज्यं कुरु ममेदं त्वं सकोश बलवाहनम्॥१४॥
आसमुद्रां प्रभुङ्क्ष्व त्वं रत्नपूर्णां वसुन्धराम् ।
मया दत्तां महाभाग सग्रामवनपत्तनाम् ॥१५॥
प्रजानां पालनं पुण्यं कर्तव्यं च सदानघ। दुष्टानां शासनं नित्यं साधूनां परिपालनम्॥१६॥
कर्तव्यं च त्वया वत्स धर्मशास्त्रप्रमाणतः । ब्राह्मणानां महाभाग विधिनापि स्वकर्मणा ॥१७॥
भक्त्या च पालनं कार्यं यस्मात्पूज्या जगत्त्रये ।
पञ्चमे सप्तमे धस्रे कोशं पश्य विपश्चितः ॥१८॥

को देवताओं का दर्शन दुर्लभ है ॥५॥ उन सबों का दर्शन मैं कराता हूँ यह आप कहें । जैसे मेरे सङ्ग के कारण पापकारी दोष उत्पन्न हो गया हो इस तरह से सामान्य मनुष्यों के समान जैसे कोई महाभय से भयभीत होकर चिन्ता में पड़ जाता है, वैसे आप सोच रहे हैं ॥६-७॥ महाराज यदि आप न जाना चाहें तो आप चिन्ता करना बन्द कीजिये । जिसके कारण आपको दुःख हो उस कार्य को मुझे कभी नहीं करना चाहिए ॥८॥ उसके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा ने उस सुन्दरी से कहा— हे देवि ! मैंने जो विचार किया उसको तुम सुनो ॥९॥ प्रिये ! मैंने अपने मन का मानभङ्ग नहीं देखा । हे कान्ते ! मेरे स्वर्ग चले जाने पर प्रजा दीन हो जायेगी ॥१०॥ दुष्ट यमराज ! प्रजाओं को व्याधियों के द्वारा दुःख देगा । हे वरानने ! मैं तुम्हारे साथ स्वर्ग लोक जाऊँगा ॥११॥ इस तरह से कहकर राजा ने अपने सर्वोत्तम, सभी धर्मों के ज्ञाता, जरा युक्त महाज्ञानी पुरु को कहा ॥१२॥ हे सर्व धर्मज्ञ ! तुम धर्म के ज्ञाता हो जाओ । हे धर्मात्मन् ! तुमने मेरी आज्ञा से धर्म का पालन किया ॥१३॥ हे तात ! तुम मेरी जरा दे दो और अपनी जवानी ले लो । तुम मेरे कोश, सेना, और वाहन के साथ राज्य करो ॥१४॥ तुम समुद्र पर्यन्त की रत्नों से भरी हुयी पृथिवी का भोग करो । हे महाभाग ! तुम्हें मैंने ग्राम, वन एवं नगरों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी को दे दिया है ॥१५॥ तुम्हें प्रजाओं का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए । तुम सदा दुष्टों का प्रशासन करना और सज्जनों का पालन करना ॥१६॥ धर्मशास्त्र के प्रमाणों के अनुसार तुम इन सब कार्यों को करना। अपने कर्म के द्वारा ब्राह्मणों का विधिपूर्वक पालन भक्तिभाव से करना ॥१७॥ क्योंकि ब्राह्मण त्रैलोक्य में पूज्य हैं । तुम्हें पाञ्चवें अथवा आठवें दिन कोश का निरीक्षण करना चाहिए ॥१८॥ सेना का तुम

बलं च नित्यं सम्पूज्यं प्रसादधनभोजनैः। चारचक्षुर्भवस्व त्वं नित्यं दानपरो भव॥१९॥
भवस्व नियतो मन्त्रे सदागोप्यः सुपण्डितैः। नियतात्मा भवस्व त्वं मागच्छ मृगयां सुत॥२०॥
विश्वासः कस्य नो कार्यः स्त्रीषु कोशे महाबले।
पात्राणां त्वं तु सर्वेषां कलानां कुरु सङ्ग्रहम्॥२१॥
यजयज्ञैर्हृषीकेशं पुण्यात्मा भव सर्वदा। प्रजानां कण्टकान्सर्वान्मर्दयस्व दिने दिने॥२२॥
प्रजानां वाञ्छितं सर्वं मर्षयस्व दिने दिने। प्रजासौख्यं प्रकर्तव्यं प्रजाः पोषय पुत्रक॥२३॥
स्वको वंशः प्रकर्तव्यः परदारेषु मा कृथाः। मतिं दुष्टां परस्वेषु पूर्वानन्वेहि सर्वदा॥२४॥
वेदानां हि सदा चिन्ता शास्त्राणां हि च सर्वदा।
कुरुष्वैवं सदावत्स शस्त्राभ्यासरतो भव॥२५॥
सन्तुष्टः सर्वदा वत्स स्वशय्यानिरतोभव। गजस्य वजिनोऽभ्यासं स्यन्दनस्य च सर्वदा॥२६॥
एवमादिश्य तं पुत्रमाशीर्भिरभिनन्द्य च। स्वहस्तेन च संस्थाप्य करे दत्तं स्वमायुधम्॥२७॥
स्वां जरां तु समागृह्य दत्त्वा तारुण्यमस्य च।
गन्तुकामस्ततः स्वर्गं ययातिः पृथिवीपतिः॥२८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थ वर्णने ययातिचरित्रे द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥
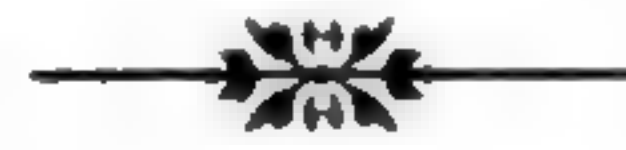
सदा अपनी प्रसन्नता, धन और भोजन से सम्मान करना। तुम सदा दूतों से हर बात का पता लगाना और सदा दान करते रहना॥१९॥ पण्डितों से विचार करके उनके साथ की गयी मन्त्रणा को गुप्त रखना। तुम अपने मन को वश में रखना और आखेट करने मत जाना॥२०॥ अपनी पत्नी, कोश तथा महासेना के विषय में किसी दूसरे का विश्वास नहीं करना। तुम सभी पात्रों तथा कलाओं का संग्रह करना॥२१॥ यज्ञों के द्वारा भगवान् हृषीकेश का पूजन करना तथा सदा पुण्यात्मा बने रहना। तुम प्रजाओं के कष्ट को प्रतिदिन विनष्ट करना॥२२॥ प्रजाओं को जो अभिप्रेत हो वह उनको प्रतिदिन प्रदान करना। हे पुत्र! प्रजाओं को सुखी बनाकर उनका पोषण करना चाहिए॥२३॥ तुम्हें अपनी सन्तान पैदा करनी चाहिए दूसरे की स्त्री में सन्तान नहीं उत्पन्न करना। दूसरों की सम्पति के विषय में होने वाली अपहरण की दुष्ट बुद्धि हो जाय तो अपने पूर्वजों का अनुसरण करना। अर्थात् दूसरे की सम्पत्ति का हरण नहीं करना॥२४॥ हे वत्स! तुम शास्त्राभ्यास परायण रहना और वेदों तथा शास्त्रों के अर्थों का चिन्तन करना॥२५॥ हे वत्स! तुम सदा सन्तुष्ट रहकर अपनी ही शय्या (पत्नी) से प्रेम करना। सदा हाथी, घोड़े और रथ का अभ्यास रखना॥२६॥ इस तरह से अपने उस पुत्र को आदेश देकर तथा उसे अनेक प्रकार का आशीर्वाद प्रदान करके, अपने हाथों उसे राजसिंहासन पर बैठाकर तथा उसे आयुध प्रदान करके॥२७॥ अपनी बुढ़ापा उससे लेकर तथा उसकी जवानी उसे लौटाकर स्वर्ग जाने की इच्छा वाले पृथिवी पति ययाति हो गये॥२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरितान्तर्गत बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

समाहूय प्रजाःसर्वा द्वीपानां वसुधाधिपः । हर्षेण महताविष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥
इन्द्रलोकं ब्रह्मलोकं रुद्रलोकमतःपरम्। वैष्णवं सर्वपापघ्नं प्राणिनां गतिदायकम् ॥२॥
व्रजाम्यहं न सन्देहो हानया सह सत्तमाः। ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसशूद्राश्च प्रजा मम॥३॥
सुखेनापि सुकुटुम्बैःस्थातव्यं तु महीतले । पूरुरेष महाभागो भवतां पालकस्त्विह ॥४॥
स्थापितोऽस्ति मया लोका राजा धीरःसदण्डकः ।
एवमुक्तास्तु ताःसर्वाःप्रजा राजानमब्रुवन् ॥५॥
श्रूयते सर्ववेदेषु पुराणेषु नृपोत्तम। धर्मएवं यतोलोके न दृष्टःकेन वै पुरा ॥६॥
दृष्टोऽस्माभिरसौ धर्मो दशाङ्गःसत्यवल्लभः ।
सोमवंशसमुत्पन्नो नहुषस्य महागृहे ॥७॥
हस्तपादमुखैर्युक्तःसर्वाचारप्रचारकः । ज्ञानविज्ञानसम्पन्नःपुण्यानां च महानिधि ॥८॥
गुणानां हि महाराज आकरःसत्यपण्डितः । कुर्वन्ति च महाधर्मं सत्यवन्तो महौजसः ॥९॥
तं धर्मं दृष्टवन्तःस्म भवन्तं कामरूपिणम् । भवन्तं कामकर्तारमीदृशं सत्यवादिनम्॥१०॥
कर्मणा त्रिविधेनापि वयं त्यक्तुं न शक्नुमः। यत्र त्वं तत्र गच्छामःसुसुखं पुण्यमेव च ॥११॥
नरकेऽपि भवान्यत्र वयं तत्र न संशयः। किंदारैर्धनभोगैश्च किंजीवैर्जीवितेन च॥१२॥
त्वां विना सुमहाराज तेन नास्त्यत्र कारणम् ।
त्वयैव सह राजेन्द्र वयं यास्याम नान्यथा ॥१३॥

राजा ययाति का अपनी सारी प्रजाओं और अश्रुबिन्दुमती के साथ श्रीविष्णुलोक में जाना

सुकर्मा ने कहा— पृथिवीपति ययाति ने सभी द्वीपों की सभी प्रजाओं को बुलाकर अत्यधिक हर्ष पूर्वक कहा ॥१॥ हे श्रेष्ठ पुरुषों ! मैं अपनी इस पत्नी के साथ इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, रुद्रलोक तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाले सद्गति प्रदान करने वाले विष्णुलोक में जाऊँगा । सभी ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को अपने परिवार के साथ सुख पूर्वक पृथिवी पर रहना चाहिए । आपलोगों का इस लोक में राजा पुरु रहेगा ॥२-४॥ मैंने इसे दण्ड के साथ राजा के पद पर स्थापित किया है । इस तरह से कहकर उसकी स्तुति की प्रजाओं ने राजा से कहा ॥५॥ हे राजन् ! सभी वेदों तथा पुराणों में कहा गया है कि लोक में किसी ने पहले ऐसा धर्म नहीं देखा ॥६॥ हमलोगों ने दशों अङ्गों से युक्त सत्य से परिपूर्ण धर्म को देखा है । जो धर्म सोमवंशीय महाराज नहुष के घर में उत्पन्न हुआ था ॥७॥ वह हाथ, पैर, मुख इत्यादि अङ्गों से युक्त तथा समस्त सदाचारों के प्रचारक, ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न, सद्गुणों का महान् खजाना॥८॥ गुणों का आकार, सत्यपण्डित है । सत्य का पालन करने वाला महाओजस्वी पुरुष महाधर्म को करते हैं॥९॥ उस धर्मस्वरूप कामनाओं को पूर्ण करने वाले आपको हमलोगों ने देखा है । कामनाओं को पूर्ण करने वालें तथा इस प्रकार से सत्य बोलने वालें ॥१०॥ तीनों प्रकार के कर्मों से युक्त आपको हमलोग नहीं छोड़ सकते हैं । जहाँ पर आप जायेंगे वहीं हमलोग भी सुखपूर्वक जायेंगे ॥११॥ आप जहाँ नरक में भी

एवं श्रुत्वा वचस्तासां प्रजानां पृथिवीपतिः । हर्षेण महाविष्टःप्रजावाक्यमुवाच ह ॥१४॥

आगच्छन्तु मया सार्द्धं सर्वे लोकाः सुपुण्यकाः ।
नृपोरथं समारूह्य तथा वै कामकन्यया ॥१५॥

रथेन हंसवर्णेन चन्द्रबिम्बानुकारिणा । चामरैर्व्यजनैश्चापि वीज्यमानो गतव्यथः ॥१६॥
केतुना तेन पुण्येन शुभ्रेणापि महीयसा । शोभमानो यथा देवो देवराजःपुरन्दरः ॥१७॥
ऋषिभिःस्तूयमानस्तु बन्दिभिश्चारणैस्तथा । प्रजाभिःस्तूयमानश्च ययातिर्नहुषात्मजः ॥१८॥
प्रजाःसर्वास्ततो यानैःसमायाता नरेश्वरम् । गजैरश्वैरथैश्चान्यैःप्रस्थिताश्च दिवं प्रति॥१९॥

ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याःशूद्राश्चान्ये पृथग्जनाः ।
सर्वे च वैष्णवा लोका विष्णुध्यानपरायणाः ॥२०॥

तेषां तु केतवःशुक्ला हेमदण्डैरलङ्कृताः । शङ्खचक्राङ्किताःसर्वे सदण्डाःसपताकिनः ॥२१॥
प्रजावृन्देषु भासन्ते पताका मारुतेरिताः । दिव्यमालाधरास्सर्वे शोभितास्तुलसीदलैः ॥२२॥
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गा दिव्यगन्धानुलेपनाः । दिव्यवस्त्रकृताशोभा दिव्याभरणभूषिताः ॥२३॥
सर्वे लोकाःसुरुपास्ते राजानमुपजग्मिरे। प्रजाशतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥२४॥
अर्वखर्वसहस्राणि तेजनाःप्रतिजग्मिरे । ते तु राज्ञा समं सर्वे वैष्णवाःपुण्यकारिणः ॥२५॥
विष्णुध्यानपराःसर्वे जपदानपरायणाः ॥२६॥

जायेंगे, वहीं पर हमलोग भी जायेंगे इसमें कोई संशय नहीं है । हमलोगों को पत्नी, धन का भोग, तथा जीवन से कोई मतलब नहीं है ॥१२॥ हे महाराज ! आपके विना हमलोगों का इन वस्तुओं से कोई प्रयोजन नहीं है । निश्चित है कि हमलोग आपके ही साथ जायेंगे ॥१३॥ उन सबों की इस प्रकार की वाणी को सुनकर राजा ययाति अत्यन्त हर्षित होकर प्रजाओं से कहे ॥१४॥ सुन्दर पुण्य से युक्त आप सभी लोग मेरे साथ चलें । उस समय प्रजाएँ राजा की स्तुति कर रही थीं । ऐसे महाराज नहुष के पुत्र ययाति उस कामपुत्री अश्रुबिन्दुमती के साथ रथ पर बैठ गये । वह रथ हंस के समान श्वेतवर्ण का तथा चन्द्रमण्डल के समान मनोहर था । व्यथा रहित राजा को चामर तथा व्यजन झला जा रहा था । उनके श्वेतवर्ण के पताके देवराज इन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे । ऋषिगण, वन्दिजन तथा चारण उनकी स्तुति कर रहे थे ॥१५-१८॥ उसके बाद सारी प्रजायें सवारी पर महाराज के पास आयीं । वे सब हाथी, घोड़े तथा रथ से स्वर्ग के लिए प्रस्थान किए ॥१९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे लोग सबके सब वैष्णव थे तथा भगवान् विष्णु के ध्यान में लगे रहते थे ॥२०॥ उनलोगों के पताके श्वेत तथा सुवर्ण के दण्ड से अलंकृत थे । सबके सब पताके शङ्ख चक्रांकित दण्डों से सुशोभित थे ॥२१॥ वायु के द्वारा प्रेरित पताकाएँ प्रजाओं में सुशोभित हो रही थीं । सबके सब दिव्य मालाएँ धारण किए थे तथा तुलसी दल से सुशोभित थे ॥२२॥ सबलोगों के अङ्ग में दिव्य चन्दन लगा था और सब दिव्य गन्ध तथा अनुलेपन लगाये थे । वे दिव्य वस्त्र तथा दिव्य भूषणों से सुशोभित थे ॥२३॥ सबलोग सुन्दर रूप वाले थे, वे सब राजा के पास आ गये । प्रजाओं की संख्या सैकड़ों हजार, सैकड़ों लाख, सैकड़ों करोड़, सैकड़ों अरब तथा सैकड़ों खरब थी । वे सबके सब राजा के पास गयीं । वे सब राजा के ही समान वैष्णव तथा पुण्य करने वाले थे ॥२४॥ सबके सब भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले तथा जप एवं दान करने वाले थे । **सुकर्मा ने कहा—** इस प्रकार वे

सुकर्मोवाच

एवं ते प्रस्थिताः सर्वे हर्षेण महतान्विताः । पूरुं पुत्रं महाराज स्वराज्ये परिषिच्य तम् ॥२७॥
ऐन्द्रं लोकं जगामाथ ययातिः पृथिवीपतिः। तेजसा तस्य पुण्येन धर्मेण तपसा तदा ॥२८॥
ते जनाः प्रस्थिताः सर्वे वैष्णवं लोकमुत्तमम्। ततो देवाः सगन्धर्वाः किन्नराश्च रणास्तथा ॥२९॥
सहितादेवराजेन आगताः संमुखं तदा। तस्यैवापि नृपेन्द्रस्य पूजयन्तो नृपोत्तम॥३०॥

इन्द्र उवाच

स्वागतं ते महाराज मम गेहं समाविश ।
अत्रभोगान्प्रभुङ्क्ष्व त्वं दिव्यान्कामान्मनोऽनुगान् ॥३१॥

राजोवाच

सहस्राक्ष महाप्राज्ञ तव पादाम्बुजद्वयम्। नमस्करोम्यहं देव ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम् ॥३२॥
देवैः संस्तूयमानश्च ब्रह्मलोकं जगाम ह। पद्मयोनिर्महातेजाः सार्धमुनिवरैस्तथा ॥३३॥
आतिथ्यं च चकारस्य पाद्यार्घादिसुविष्टरैः ।
उवाच विष्णुलोकं हि प्रयाहि त्वं स्वकर्मणा ॥३४॥
एवमाभाषिते जगाम शिवमन्दिरम्। चक्रे आतिथ्यपूजां च उमया सह शङ्करः ॥३५॥
तस्यैवापि नृपेन्द्रस्य राजानमिदमब्रवीत् ।
कृष्णभक्तोऽसि राजेन्द्र ममापि सुप्रियो भवान् ॥३६॥
ततो ययातेराजेन्द्र वसत्वं मममन्दिरे। सर्वान्भोगान्प्रभुङ्क्ष्व त्वं दुःखप्राप्यान्हि मानुषैः॥३७॥
अन्तरं नास्ति राजेन्द्र ममविष्णोर्न संशयः ।
योऽसौ विष्णुस्वरूपेण स वै रुद्रो न संशयः ॥३८॥

सबलोग अत्यन्त हर्षित होकर प्रस्थान किए ॥२५-२६॥ अपने पुत्र को अपने राज्य पर अभिषिक्त करके पृथिवीपति महाराज ययाति इन्द्र के लोक में गये ॥२७॥ राजा के तेज, पुण्य तथा धर्म के कारण वे सब लोग भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥२८॥ उस समय गन्धर्व, किन्नर तथा चारणों के साथ देवराज इन्द्र उनके समक्ष आये ॥२९॥ सबों ने उन राजा ययाति की पूजा की । **इन्द्र ने कहा—** महाराज ! आपका स्वागत है आप मेरे घर में आइये ॥३०॥ यहाँ पर आप अपने मनोनुकूल दिव्य भोगों को भोगें । **राजा ने कहा—** हे महाप्राज्ञ इन्द्र ! मैं आपके दोनों चरणों में प्रणाम करता हूँ ॥३१॥ मैं ब्रह्माजी के लोक में जा रहा हूँ । उसके बाद देवताओं से स्तुति किये जाते हुए महाराज ययाति ब्रह्माजी के लोक में गये ॥३२॥ उस समय महातेजस्वी ब्रह्माजी श्रेष्ठ मुनियों के साथ राजा ययाति का पाद्य, अर्घ्य तथा विष्टर के द्वारा आतिथ्य सत्कार किए ॥३३॥ ब्रह्माजी ने कहा कि तुम अपने कर्म के ही बल से भगवान् विष्णु के लोक में चले जाओ । ब्रह्माजी के इस तरह से कहने पर राजा भगवान् शिव के लोक में गये ॥३४॥ वहाँ पर पार्वतीजी के साथ भगवान् शिव ने उनका आतिथ्य किया और राजा से उन्होंने कहा ॥३५॥ हे राजन् ! आप मुझसे अत्यन्त भगवान् विष्णु के भक्त हैं, अतएव हे राजेन्द्र ययाति ! आप मेरे यहाँ निवास करें ॥३६॥ मनुष्यों के द्वारा कठिनाई से प्राप्त किए जाने वाले समस्त भोगों को आप भोगें । हे राजेन्द्र ! मुझमें और भगवान् विष्णु में कोई अन्तर नहीं है ॥३७॥ जो भगवान् विष्णु हैं, वही स्वरूपतः भगवान् शिव हैं । हे राजन् ! जो रुद्र हैं,

यो रुद्रो विद्यते राजन्स च विष्णुःसनातनः ।
उभयोरन्तरं नास्ति तस्माच्चैव वदाम्यहम् ॥३९॥

विष्णुभक्तस्य पुण्यस्य स्थानमेव ददाम्यहम् । तस्मादत्रमहाराज स्थातव्यं हि त्वयानघ ॥४०॥
एवमुक्तःशिवेनापि ययातिर्हरिवल्लभः । भक्त्याप्रणम्य देवेशं शङ्करं नतकन्धरः ॥४१॥
एतत्सर्वं महादेव त्वयोक्तमिह साम्प्रतम्। युवयोरन्तरं नास्ति एकामूर्तिर्द्विधा भवत् ॥४२॥

वैष्णवं गन्मतुमिच्छामि पादौ तव नमाम्यहम् ।
एवमस्तु महाराज गच्छ लोकं तु वैष्णवम् ॥४३॥

समादिष्टःशिवेनापि प्रतस्थे वसुधाधिपः । पृथ्वीशस्तैर्महापुण्यैर्वैष्णवैर्विष्णुवल्लभैः ॥४४॥
नृत्यमानैस्ततस्तैस्तु पुरतस्तस्य भूपतेः । शङ्खशब्दैःसुपापघ्नैःसिंहनादैःसुपुष्कलैः ॥४५॥
जगाम निःस्वनै राजा पूज्यमानःसुचारणैः । सुस्वरैर्गीयमानस्तु पाठकैःशास्त्रकोविदैः ॥४६॥
गायन्ति पुरतस्तस्य गन्धर्वा गीततत्पराः । ऋषिभिःस्तूयमानश्च वेदवृन्दैःसमन्वितैः ॥४७॥
अप्सरोभिःसुरूपाभिःसेव्यमानःसनाहुषिः । गन्धर्वैःकिन्नरैःसिद्धैश्चारणैःपुण्यमङ्गलैः ॥४८॥
साध्यैर्विद्याधरैराजा मरुद्भिर्वसुभिस्तथा । रुद्रैश्चादित्यवर्गैश्च लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥४९॥
स्तूयमानो महाराजस्त्रैलोक्येन समन्ततः। ददृशे वैष्णवं लोकमनौपम्यमनामयम् ॥५०॥
विमानैःकाञ्चनै राजा सर्वशोभा समाविलैः। हंसकुन्देन्दुधवलैर्विमानैरुपशोभितैः ॥५१॥
प्रासादैःशतभौमैश्च मेरुमन्दरसन्निभैः । शिखिरैरुल्लिखद्भिश्च स्वर्व्योमहाटकान्वितैः ॥५२॥
जाज्वल्यमानैःकलशैःशोभते सुपुरोत्तमम्। तारागणैर्यथाऽकाशं तेजःश्रिया प्रकाशते ॥५३॥

वे ही सनातन विष्णु हैं ॥३८॥ दोनों में कोई अन्तर नहीं है, इसीलिए मैं ऐसा कहता हूँ, मैं पवित्र विष्णु भक्त का स्थान बतलाता हूँ ॥३९॥ अतएव हे निष्पाप महाराज ! आपको यहाँ रहना चाहिए । इस तरह से शङ्करजी के द्वारा कहे जाने पर भगवान् श्रीहरि के प्रिय राजा ययाति ने ॥४०॥ भक्ति पूर्वक शङ्करजी को अपना कन्धा झुकाकर प्रणाम किया और कहा हे महादेव ! आपने इन सारी बातों को बिल्कुल ठीक कहा है ॥४१॥ आप दोनों एक हैं । एक ही मूर्ति दो हो गयी है । मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ । मैं विष्णुलोक में जाना चाहता हूँ ॥४२॥ शङ्करजी ने कहा ठीक है महाराज आप विष्णुलोक में जायँ । शङ्करजी से विदा लेकर राजा ने प्रस्थान किया ॥४३॥ उस समय अत्यन्त पुण्यमय भगवान् विष्णु के भक्त श्रीवैष्णवजन उस राजा के आगे नृत्य कर रहे थे ॥४४॥ वे पापों को विनष्ट करने वाले शङ्खनाद तथा अत्यधिक सिंहनाद कर रहे थे । चारणों के द्वारा पूजित होते हुए राजा ध्वनि के बीच प्रस्थान किए ॥४५॥ शास्त्र पाठकगण सुन्दर स्वर में गीत गा रहे थे । उनके सामने गीत गाने वाले गन्धर्व गीत गा रहे थे । सुन्दर रूपवाली अप्सराएँ महाराज ययाति की सेवा में थीं ॥४६-४७॥ गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, साध्यगण, विद्याधर, मरुद्गण, वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण तथा देवताओं के स्वामी लोकपाल ये सभी चारों ओर से राजा की स्तुति करते थे उसी समय राजा ययाति ॥४८-४९॥ समस्त दोषों से रहित तथा अनुपमेय वैष्णव लोक का दर्शन किये । वह वैष्णव लोक हर प्रकार की शोभा से युक्त सुवर्ण निर्मित विमानों ॥५०॥ हंस, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के विमानों से सुशोभित सुमेरु तथा मंदराचल पर्वत के समान ऊँचे सतमंजिले भवन जो अपने शिखरों से स्वर्गीय आकाश को छू रहे थे, चमकते हुए सुवर्ण निर्मित कलशों से वह उत्तम

प्रज्वलत्तेजोज्वालाभिर्लोचनैरिव लोकते। नानारत्नैर्हरेर्लोकः प्रहसद्दशनैरिव ॥५४॥
समाह्वयति तान्पुण्यान्वैष्णवान्विष्णुवल्लभान् ।
ध्वजव्याजेन राजेन्द्र चलिताग्रैः सुपल्लवैः ॥५५॥
श्वसनान्दोलितैस्तैश्च ध्वजाग्रैश्चमनोहरैः । हेमदण्डैश्च घण्टाभिः सर्वत्र समलङ्कृतम् ॥५६॥
सूर्यतेजःप्रकाशैश्च गोपुराट्टालकैस्ततः । गवाक्षैर्जालमालैश्च वातायनमनोहरैः ॥५७॥
प्रतोलीनां प्रकाशैश्च प्राकारैर्हेमरूपकैः । तोरणैः सुपताकाभिर्नानाशब्दैः सुमङ्गलैः ॥५८॥
कलशाग्रैश्चक्रबिम्बै रविबिम्बसमप्रभैः । सुभोगैः शतकक्षैश्च निर्जलाम्बुदसन्निभैः ॥५९॥
दण्डच्छत्रसमाकीर्णैः कलशैरुपशोभितैः । प्रावृट्कालाम्बुदाकारैर्मन्दिरैरुपशोभितैः ॥६०॥
कलशैः शोभामानैस्तैर्ऋक्षैर्द्यौरिव भूतलम्। दण्डजालपताकाभिर्ऋक्षजालसमप्रभैः ॥६१॥
तादृशैः स्फाटिकाकारैः कान्तिशङ्खेन्दुसन्निभैः। हेमप्रासादसम्बाधैर्नानाधातुमयैस्ततः ॥६२॥
विमानैरर्बुदसङ्ख्यैः शतकोटिसहस्रकैः । सर्वभोगयुतैश्चैव शोभते हरिपत्तनम् ॥६३॥
यैः समाराधितो देवः शङ्खचक्रगदाधरः। तेप्रसादात्तस्य तेषु निवसन्ति गृहेषु च ॥६४॥
सर्वपुण्येषु दिव्येषु भोगाढ्येषु च मानवाः । वैष्णवाः पुण्यकर्माणो निर्धूताशेषकल्मषाः ॥६५॥
एवंविधैर्गृहैःपुण्यैः शोभितं विष्णुमन्दिरम् । नानावृक्षैः समाकीर्णं वनैश्चन्दनशोभितैः ॥६६॥
सर्वकामफलैराजन्सर्वत्र समलङ्कृतम् । वापीकुण्डतडागैश्च सारसैरूपशोभितैः ॥६७॥

नगर सुशोभित हो रहा था ॥५१-५२॥ श्रीहरि के वह लोक में विद्यमान अनेक प्रकार के चमकते हुए रत्न आकाश में चमकने वाले तारों के समान अपनी कान्ति से प्रकाशित हो रहे थे। लगता था जैसे वे सब रत्न वैकुण्ठ लोक के दाँत हों और वैकुण्ठ लोक हँस रहा हो। और भगवान् विष्णु के भक्त वैष्णवों को बुला रहा हो ॥५३-५४॥ हे राजेन्द्र वेन ! श्रीहरि का वह नगर ध्वजाओं के व्याज से चञ्चल बने हुए सुन्दर पल्लवों, वायु के द्वारा, कंपाये गये ध्वजाओं के मनोहर अग्रभागों के द्वारा सुवर्ण निर्मित दण्डों से सुशोभित था। सूर्य के तेज के समान प्रकाश वाले गोपुरों तथा अट्टालिकाओं से सुशोभित था ॥५५-५६॥ मनोहर वातायनों (खिड़कियों) में लगे जाल समूहों, प्रतोलियों में लगे हुए सोने चाँदी के प्रकाशों से तोरणों से॥५७॥ सुन्दर पताकाओं और मङ्गलमय शब्दों से कलशों के अग्रभाग में विद्यमान सूर्यमण्डल के सदृश कान्ति सम्पन्न चक्र विम्बों के द्वारा ॥५८॥ जल रहित मेघ के समान धवल सैकड़ों कक्षों (कमरों) दण्डों एवं छत्रों से भरे हुए कलशों से सजायें गये ॥५९॥ वर्षाकाल के छोटे-छोटे मेघों के समान मन्दिरों से सुशोभित कलश आकाश में चमकने वाले तारों के समान उस लोक के भूतल को सुशोभित कर रहे थे ॥६०॥ दण्ड समूह तथा पताकाओं से जिनकी कान्ति ताराओं के समान थी उनसे, उसीतरह के स्फटिक मणि के समान आकार वाले शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान कान्ति वाले ॥६१॥ जिनमें बहुत अधिक सुवर्ण के भवन बने थे ऐसे हजारों करोड़ तथा अरबों की संख्या में विद्यमान विमानो से, सभी प्रकार के भोगों से युक्त श्रीहरि का वह नगर सुशोभित हो रहा था। जिन सबों से शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले श्रीहरि सुशोभित होते हैं ॥६२-६३॥ श्रीभगवान् की कृपा से पवित्र तथा सभी प्रकार के भोगों से परिपूर्ण उन गृहों में पुण्यकर्मों को करने वाले पापों से रहित श्रीवैष्णव मनुष्य निवास करते हैं। इस प्रकार के पवित्र गृहों से भगवान् विष्णु का मन्दिर सुशोभित है ॥६५॥ अनेक प्रकार के वृक्षों से भरे हुए चन्दन से सुशोभित सभी प्रकार के फलों

हंसकारण्डवाकीर्णैः कल्हारैरुपशोभितैः । शतपत्रैर्महापद्मैः पद्मोत्पलविराजितैः ॥६८॥
कनकोत्पलवर्णैश्च सरोभिश्च विराजते । वैकुण्ठं सर्वशोभाढ्यं देवोद्यानैरलङ्कृतम् ॥६९॥
दिव्यशोभासमाकीर्णं वैष्णवैरुपशोभितम् । वैकुण्ठं ददृशे राजा मोक्षस्थानमनुत्तमम् ॥७०॥
देववृन्दैः समाकीर्णं ययातिर्नहुषात्मजः । प्रविवेश पुरं रम्यं सर्वदाहविवर्जितम् ॥७१॥
ददृशे सर्वक्लेशघ्नं नारायणमनामयम् । विमानैरुपशोभन्तं सर्वाभरणशालिनम् ॥७२॥
पीतवस्त्रं जगन्नाथं श्रीवत्साङ्कं महाद्युतिम् । वैनतेयसमारूढं श्रिया युक्तं परात्मपरम् ॥७३॥
सर्वेषां देवलोकानां यो गतिः परमेश्वरः । परमानन्दरूपेण कैवल्येन विराजते ॥७४॥
सेव्यमानं महालोकैः सुपुण्यैर्वैष्णवैर्हरिम् । देववृन्दैः समाकीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ॥७५॥
अप्सरोभिर्महात्मानं दुःखक्लेशापहं हरिम् । नारायणं ननामाथ स्वपत्न्या सह भूपतिः ॥७६॥
प्रणेमुर्मानवाः सर्वे वैष्णवा मधुसूदनम् । गता ये वैष्णवाः सर्वे सह राज्ञा महामते ॥७७॥
पादाम्बुजद्वयं तस्य नेमुर्भक्त्या महामते । प्रणमन्तं महात्मानं राजानं दीप्ततेजसम् ॥७८॥
तमुवाच हृषीकेशस्तुष्टोऽहं तव सुव्रत ।
वरं वरय राजेन्द्र यत्ते मनसि वर्तते । तत्ते ददाम्यसन्देहं मद्भक्तोऽसि महामते ॥७९॥

राजोवाच

यदि त्वं देवदेवेश तुष्टोऽसि मधुसूदन । दासत्वं देहि सततमात्मानश्च जगत्पते ॥८०॥

से जो सर्वत्र समलङ्कृत है ॥६६॥ वह वापी, कूप, तड़ागों से, सारस पक्षियों से सुशोभित, हंस तथा कारण्डव पक्षियों से भरे हुए, कल्हारों से सुशोभित, शतदल कमलों, कमलों तथा नील कमलों से सुशोभित, सुवर्ण कमलों से भरे हुए सरोवरों से वह वैकुण्ठलोक सुशोभित होता है ॥६७-६८॥ इस प्रकार का वैकुण्ठ सभी प्रकार की शोभाओं से परिपूर्ण, देवोद्यानों से अलंकृत, दिव्य शोभा से परिपूर्ण तथा वैष्णवों से उपशोभित है ॥६९॥ नहुष के पुत्र राजा ययाति ने सर्वोत्तम मोक्ष प्राप्ति के स्थान वैकुण्ठ को देखा । वह देव समूह से परिपूर्ण था ॥७०॥ उन्होनें सभी प्रकार के संतापों से रहित वैकुण्ठ में प्रवेश किया और सभी क्लेशों को विनष्ट करने वाले अनामय भगवान् नारायण का दर्शन किया ॥७१॥ विमानों से सुशोभित तथा सभी अलङ्कारों से अलंकृत पीताम्बर धारण किए श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित अत्यधिक कान्ति सम्पन्न भगवान् का उन्होंने दर्शन किया । परात्पर तत्त्व श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ गरुड़ पर बैठे थे । जो भगवान् सभी देवलोकों के एक मात्र प्राप्य एवं परमेश्वर हैं ॥७२-७३॥ वे केवल परमानन्द रूप से विराजते हैं । अत्यन्त पुण्यवान् श्रीवैष्णवजन उनकी सेवा करते हैं ॥७४॥ देवसमूह से भरे हुए तथा गन्धर्वों तथ अप्सराओं के द्वारा सेवित दुःखों तथा क्लेशों को दूर करने वाले श्रीहरि का राजा ने दर्शन किया ॥७५॥ राजा ने अपनी पत्नी के साथ भगवान् नारायण को प्रणाम किया । सभी वैष्णव मनुष्यों ने भगवान् मधुसूदन को प्रणाम किया ॥७६॥ हे महामते ! जो वैष्णव मनुष्य राजा ययाति के साथ गये थे उन लोगों ने श्रीभगवान् के दोनों चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥७७॥ अपने तेज से देदीप्यमान राजा ययाति को प्रणाम करते हुए देखकर भगवान् नारायण ने कहा— हे सुव्रत ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ ॥७८॥ हे राजेन्द्र ! आप के मन में जो हो वरदान माँग लीजिये । हे महामते ! आप मेरे भक्त हैं, मैं आपको अभिप्रेत वरदान दूँगा ॥७९॥ **राजा ने कहा**— हे जगत्पते ! भगवान् मधुसूदन ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप अपनी निरन्तर निरन्तराय दासता

विष्णुरुवाच

एवमस्तु महाभाग मम भक्तो न संशयः। लोके मम महाराज स्थातव्यमनया सह ॥८१॥
एवमुक्तो महाराजो ययातिःपृथिवीपतिः। प्रसादात्तस्य देवस्य विष्णुलोकं प्रसाधितम् ॥८२॥
निवसत्येष भूपालो वैष्णवं लोकमुत्तमम् ॥८३॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे ययातेः स्वर्गारोहणंनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

सुकर्मोवाच

एत्तते सर्वमाख्यातं चरित्रं पापनाशनम्। पुत्राणां तारकं दिव्यं बहुपुण्यप्रदायकम् ॥१॥
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके ययातिचरितं श्रुतम्। पूरुणाप्तं महद्राज्यं दुर्गतिं गतवांस्तुरुः ॥२॥
पितृप्रसादात्कोपाच्च यथा जातं तथा पुनः। पुत्राणां तारकंपुण्यं यशस्यं धनधान्यदम् ॥३॥
शापयुक्ताविमौ चोभौ तुरुश्च यदुरेव च। पितृमातृसमं नास्ति अभिष्टफलदायकम् ॥४॥
साभिलाषेण भावेन पितापुत्रं समाह्वयेत्। माता च पुत्रपुत्रीति तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥५॥
समाहूतो यथा पुत्रःप्रयाति मातरं प्रति। यो याति हर्षयुक्तो गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥६॥

मुझे प्रदान करें ॥८०॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** तुम मेरे भक्त हो अतएव ऐसा होगा, इसमें कोई संशय नहीं है। हे महाराज! तुम मेरे लोक में अपनी इस पत्नी के साथ निवास करो ॥८१॥ इस तरह से कहने पर पृथिवीपति ययाति भगवान् विष्णु की कृपा से उनके ही लोक में निवास किए ॥८२॥ राजा ययाति आज भी विष्णुलोक में निवास करते हैं ॥८३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यनान्तर्गत मातृपितृतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्र वर्णनान्तर्गत तिरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८३॥

पितृतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

सुकर्मा ने कहा— इस तरह से मैंने आपको पाप विनाशक चरित्र को सुनाया। यह दिव्य चरित्र पुण्यप्रद तथा पुत्रों को तारने वाला है ॥१॥ ययाति चरित में सुना गया तथा लोक में प्रत्यक्षतः दृष्ट पुरु ने विशाल राज्य को प्राप्त किया और तुरु ने दुर्गति प्राप्त की ॥२॥ पुरु पर पिता ने कृपा की और तुरु पर कोप किया था इसीलिए ऐसा हुआ। यह चरित्र पुत्रों को तारने वाला है, यश प्रदान करने वाला है तथा धन-धान्य को प्रदान करने वाला है ॥३॥ तुरु और यदु दोनों पिता के शाप से युक्त हो गये। पिता-माता के समान कोई भी अभिप्रेत फल प्रदान करने वाला नहीं है ॥४॥ पिता पुत्र को अभिलाषा के भाव से बुलाये

पादप्रक्षालनं यस्तु कुरुते च महायशाः। सर्वतीर्थफलं भुङ्क्ते प्रसादात्तु तयोः सुतः ॥७॥
अङ्गसंवाहनाच्चान्यदश्वमेधफलं लभेत् । भोजनाच्छादनस्नानैर्गुरुं यः पोषयेत्सुतः ॥८॥
पृथ्वीदानसमं पुण्यं तत्पुत्रे हि प्रजायते । सर्वतीर्थमयी गङ्गा तथा माता न संशयः ॥९॥
बहुपुण्यमयःसिन्धुर्यथालोके प्रतिष्ठितः। अस्मिल्लोके पिता तद्वत्पुराणकवयो विदुः ॥१०॥
भ्रंशते क्रोशते यस्तु पितरं मातरं पुनः । स पुत्रो नरकंयाति रौरवाख्यं न संशयः ॥११॥
मातरं पितरं वृद्धौ गृहस्थौ यो न पोषयेत् । सं पुत्रो नरकं याति वेदनां प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१२॥
कुत्सते पापकर्ता यो गुरुं पुत्रःसुदुर्मतिः । निष्कृतिर्नैव दृष्टा वै पुराणैःकविभिःकदा ॥१३॥
एवं ज्ञात्वा ह्यहं विप्र पूजयामि दिने दिने। मातरं पितरं नित्यं भक्त्यानमितकन्धरः ॥१४॥
कृत्याकृत्यं वदेच्चैव समाहूय गुरुर्मम। तत्करोम्यविचारेण शक्त्यास्वस्य च पिप्पल ॥१५॥
तेन मे परमं ज्ञानं सञ्जातं गतिदायकम्। एतयोश्च प्रसादेन संसारे परिवर्तते ॥१६॥

यच्च किंचित्प्रकुर्वन्ति मानवा भुवि संस्थिताः ।
गृहस्थस्तदहं जाने यच्च स्वर्गे प्रवर्तते ॥१७॥
नागानां च इहस्थोऽपि चारं जानामि पिप्पल ।
एतयोश्च प्रसादेन ज्ञानं मे जातमुत्तमम् ॥१८॥

गच्छविद्याधरश्रेष्ठ भवानर्चतु माधवम् ॥१९॥

और माता उसको पुत्र पुत्र कहे तो उसका फल सुनो ॥५॥ माता के द्वारा बुलाये जाने पर जो पुत्र उसके समक्ष भक्तिपूर्वक जाता है उसको गङ्गा स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥६॥ जो पुत्र अपने माता-पिता के पैरों को धोता है वह महायशस्वी पुत्र समस्त तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है ॥७॥ जो पुत्र अपने माता-पिता को स्नान कराकर उन्हें वस्त्र प्रदान करता है तथा उनके शरीर को दबाता है उसको अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है तथा उसको पृथिवी दान करने के समान पुण्य फल होता है । जिस तरह गङ्गाजी सर्वतीर्थमयी हैं, उसी तरह माता भी सर्वतीर्थमयी होती है ॥८-९॥ जिस तरह संसार में सागर अत्यधिक पुण्यमय है उसी तरह संसार में पिता भी अत्यधिक पुण्यमय होते हैं, यह प्राचीन ब्रह्म ज्ञानियों ने कहा है ॥१०॥ **सुकर्मा ने कहा—** जो पुत्र पिता माता की निन्दा करता है तथा अपमान करता है वह पुत्र रौरव नरक में जाता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥११॥ जो गृहस्थ अपने वृद्ध माता-पिता का पालन नहीं करता है वह पुत्र नरक में जाकर घोर कष्ट को प्राप्त करता है ॥१२॥ जो पापी अपने माता-पिता को कोसता है, उसका पाप से कभी निस्तार नहीं होता है । यह प्राचीन ज्ञानी पुरुषों ने कहा है ॥१३॥ हे विप्र! इस बात को जानकर मैं भक्ति पूर्वक अपने कन्धे को झुकाकर प्रतिदिन माता-पिता की पूजा करता हूँ॥१४॥ मेरे माता-पिता मुझे बुलाकर जो कुछ कृत्या-कृत्य का आदेश देते हैं, हे पिप्पल ! उस पर बिना विचार किए ही मैं अपनी शक्ति के अनुसार पालन करता हूँ ॥१५॥ हे पिप्पल ! उसी के कारण मुझे परमज्ञान हो गया जो मुक्ति प्रदान करने वाला है । माता-पिता की कृपा से ही मुझे संसार का ज्ञान है ॥१६॥ पृथिवी के मनुष्य जो कुछ भी करते हैं । घर में रहने वालों की भी बात मैं जानता हूँ तथा जो स्वर्ग में होता है उसे भी मैं जानता हूँ ॥१७॥ हे पिप्पल ! यहीं रहकर मैं नागों की भी गति को जानता हूँ । माता-पिता की ही कृपा से त्रैलोक्य मेरे वश में है ॥१८॥ हे विद्याधर श्रेष्ठ ! आप भगवान् माधव की पूजा करने के लिए

विष्णुरुवाच

एवंसञ्चोदितस्तेन पिप्पलो हि स्वकर्मणा। आनम्य तं द्विजश्रेष्ठं लज्जितोऽपि दिवं ययौ ॥२०॥
सुकर्मा सोऽपि धर्मात्मा गुरुं शुश्रूषते नृप । एतत्ते सर्वमाख्यातं पितृतीर्थानुगं मया॥२१॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि वदवेन महामते ॥२२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थ माहात्म्यवर्णनंनाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

पचासीवाँ अध्याय

वेन उवाच

भगवन्देवदेवेश प्रसादाच्च मम त्वया। भार्यातीर्थं समाख्यातं पितृतीर्थमनुत्तमम् ॥१॥
मातृतीर्थं हृषीकेश बहुपुण्यप्रदायकम् । प्रसादसुमुखोभूत्वा गुरुतीर्थं वदस्व मे ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

कथयिष्याम्यहं राजन्गुरुतीर्थमनुत्तमम्। सर्वपापहरं प्रोक्तं शिष्याणां गतिदायकम्॥३॥
शिष्याणां परमं पुण्यं धर्मरूपं सनातम्। परं तीर्थं परं ज्ञानं प्रत्यक्षफलदायकम्॥४॥
यस्यप्रसादाद्राजेन्द्र इहैव फलमश्नुते। परलोके सुखंभुङ्क्ते यशःकीर्तिमवाप्नुयात् ॥५॥
प्रसादाद्यस्य राजेन्द्र गुरोश्चैव महात्मनः। प्रत्यक्षं दृश्यते शिष्यैस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥६॥

गये । **भगवान् विष्णु ने वेन से कहा—** अपने कर्मों के प्रभाव से सुकर्मा द्वारा इस तरह कहे जाने पर पिप्पल ॥१९॥ उस द्विज श्रेष्ठ को प्रणाम करके लज्जित होकर द्युलोक चले गये । हे राजन् ! धर्मात्मा सुकर्मा अपने माता-पिता की सेवा करने लगे ॥२०॥ इस तरह से मैंने आपको पितृतीर्थ से संबद्ध सारी बातें बतलायी । हे महामते वेन ! आप पूछें मैं दूसरी बाते भी बतलाऊँगा ॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत मातृपितृ तीर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में चौरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८४।।

गुरुतीर्थ के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्र का वर्णन

वेन ने कहा— हे देवदेवेश भगवन् ! आपने मेरे ऊपर कृपा करके भार्यातीर्थ और मातृ-पितृ तीर्थ का वर्णन सुनाया ॥१॥ हे भगवन् हृषीकेश ! मातृ पितृ तीर्थ अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाला है । अब आप प्रसन्नता पूर्वक गुरु तीर्थ का वर्णन सुनायें ॥२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे राजन् ! मैं सर्वोत्तम गुरुतीर्थ का वर्णन करूँगा । वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है और शिष्यों को गति प्रदान करने वाला है ॥३॥ गुरुतीर्थ शिष्यों को अत्यन्त पुण्य प्रदान करने वाला तथा सनातन धर्म स्वरूप है । यह सर्वश्रेष्ठ तीर्थ तथा परंज्ञान प्रत्यक्ष फल देने वाला है ॥४॥ हे राजेन्द्र ! उस गुरुतीर्थ की कृपा से शिष्य

व्यवहारं च लोकानामाचारं नृपनन्दन। विज्ञानं विन्दते शिष्यो मोक्षं चैव प्रयाति च ॥७॥
सर्वेषामेवलोकानां यथासूर्यःप्रकाशकः। गुरुःप्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः ॥८॥
रात्रावेवप्रकाशेच्च सोमो राजा नृपोत्तम। तेजसा नाशयेत्सर्वमन्धकारं नृपोत्तम॥९॥
गृहे प्रकाशयेद्दीपःसमूहं नृपसत्तम। तेजसा नाशयेत्सर्वमन्धकारं घनाविलम्॥१०॥
अज्ञानतमसा व्याप्तं शिष्यं द्योतयते गुरुः। शिष्यप्रकाश उद्द्योतैरुपदेशैर्महामते ॥११॥
दिवाप्रकाशकःसूर्यःशशी रात्रौप्रकाशकः। गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकरःसदा ॥१२॥
रात्रौ दिवा गृहस्यान्ते गुरुःशिष्यं सदैव हि। अज्ञानाय तमस्तस्य गुरुसर्वं प्रणाशयेत्॥१३॥
तस्माद्गुरुःपरं तीर्थं शिष्याणामवनीपते। एवं ज्ञात्वा ततःशिष्यःसर्वदा तं प्रपूजयेत् ॥१४॥
गुरुं पुण्यमयंज्ञात्वा त्रिविधेनापि कर्मणा। इत्यर्थे श्रूयते राजन्नितिहासःपुरातनः॥१५॥
सर्वपापहरःप्रोक्तश्च्यवनस्य महात्मनः। भार्गवस्य कुले जातश्च्यवनो मुनिसत्तमः ॥१६॥
तस्य चिन्तासमुत्पन्ना एकदा तु नृपोत्तम। कदाहं ज्ञानसम्पन्नो भविष्यामि महीतले ॥१७॥
दिवा रात्रौ चिन्तयन्स ज्ञानार्थी मुनिसत्तमः। एवं तु चिन्तमानस्य मतिरासीन्महात्मनः ॥१८॥
तीर्थयात्रां प्रयास्यामि अभीष्टफलदायिनीम्। गृहक्षेत्रादि सन्त्यज्य भार्यां पुत्रं धनं ततः ॥१९॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन अटते मेदनीं तदा। लोमानुलोमयात्रां स गङ्गायाःकृतवान्नृप ॥२०॥

संसार में ही फल प्राप्त कर लेता हैं। वह परलोक में सुख भोगता है तथा यश एवं कीर्ति को प्राप्त करता है ॥५॥ हे राजेन्द्र ! जिस गुरु की कृपा से शिष्य चराचरात्मक त्रैलोक्य का साक्षात्कार कर लेते हैं ॥६॥ हे नृपनन्दन ! लोकों के व्यवहार तथा आचार को जान जाते हैं। उसीसे शिष्य विज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥७॥ जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण लोकों के प्रकाशक हैं, उसी तरह गुरु अपने शिष्यों की उत्तम गति के प्रदर्शक हैं ॥८॥ हे नृपोत्तम ! चन्द्रमा तो रात्रि में ही प्रकाश करने काम करते हैं और अपने तेज से चराचर को अधिक प्रकाशित करते है ॥९॥ हे राजश्रेष्ठ ! दीपक घर के भीतर ही वस्तु समूह को प्रकाशित करता हैं। वह अपने तेज से घने अन्धकार को नष्ट करता है ॥१०॥ गुरु अज्ञानान्धकार से व्याप्त शिष्य को प्रकाशित करने का काम करते हैं। हे महामते ! वे अपने उपदेश रूपी किरणों से शिष्यों का प्रकाशन करते हैं ॥११॥ सूर्य दिन में प्रकाश करने का काम करते हैं और चन्द्रमा रात्रि में प्रकाशित करने का काम करते हैं। दीपक घर को प्रकाशित करके अन्धकार को विनष्ट करता है ॥१२॥ गुरु शिष्य को रात-दिन तथा घर के भीतर भी सदैव प्रकाशित करते हैं। गुरु शिष्य के अज्ञान नामक अन्धकार को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देते हैं ॥१३॥ हे राजन् ! उपर्युक्त कारणों से गुरु (शिष्यों) का सबसे वड़ा तीर्थ हैं, इस तरह से जानकर शिष्यों को गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥१४॥ गुरु को पुण्यमय जानकर शिष्य को अपने कथिक, वाचिक एवं मानसिक तीनों प्रकार के कर्मो के द्वारा गुरु की पूजा करनी चाहिए। हे विप्र ! इस विषय में एक पुराना महर्षि च्यवन का इतिहास सुना जाता है वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है। वे मुनिश्रेष्ठ भृगुवंश में उत्पन्न थे ॥१५-१६॥ राजन् ! महर्षि च्यवन को एक बार चिन्ता हुयी कि मैं कब पृथिवी पर ज्ञान सम्पन्न हो जाऊँगा ॥१७॥ ज्ञान को चाहने वाले वे मुनिश्रेष्ठ रात-दिन चिन्ता करते रहते थे। इस तरह चिन्ता करने वाले महर्षि को मन में बात आयी कि ॥१८॥ मैं अभिप्रेत फल प्रदान करने वाली तीर्थों की यात्रा करूँगा। उसके बाद वे गृह, क्षेत्र, पत्नी तथा पुत्र आदि का परित्याग करके ॥१९॥

स तद्वन्नर्मदायाश्च सरस्वत्या मुनीश्वरः । गोदावर्यादि सर्वासां नदीनां सागरस्य च ॥२१॥
अन्येषां सर्वतीर्थानां क्षेत्राणां च नृपोत्तम । देवानां पुण्यलिङ्गानां यात्राव्याजेन सोऽभ्रमत् ॥२२॥
भ्रममाणस्य तस्यापि तीर्थेषु परमेषु च । कायश्च निर्मलो जातः सूर्यतेजः समप्रभः ॥२३॥
च्यवनःकाशते दीप्त्या पूतात्मानेनकर्मणा। भ्रममाणःसमायातःक्षेत्राणामुत्तमं तदा॥२४॥
नर्मदादक्षिणेकुले नाम्नाअमरकण्टकम्। ददर्श सुमहालिङ्गं सर्वेषां गतिदायकम् ॥२५॥

नत्वा स्तुत्वा तु सम्पूज्य सिद्धनाथं महेश्वरम् ।
ज्वालेश्वरं ततो दृष्ट्वा दृष्ट्वा चाप्यमरेश्वरम् ॥२६॥

ब्रह्मेशं कपिलेशं च मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् । एवं यात्रां ततःकृत्वा ओङ्कारं समुपागतः ॥२७॥

वटच्छायां समाश्रित्य शीतलां श्रमनाशिनीम् ।
सुखेन संस्थितो विप्रश्च्यवनो भृगुनन्दनः ॥२८॥

तत्र स्वनं स शुश्राव समुक्तं पक्षिणा तदा । दिव्यभाषासमायुक्तं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ॥२९॥
शुकश्च एकस्तत्रास्ते बहुकालप्रजीवकः । कुञ्जलो नाम धर्मात्मा चतुष्पुत्रः सभार्यकः॥३०॥
आसंस्तस्य हि पुत्राश्च चत्वारःपितृनन्दनाः । तेषां नामानि राजेन्द्र कथियिष्ये तवाग्रतः ॥३१॥

ज्येष्ठस्तु उज्ज्वलो नाम द्वितीयस्तु समुज्जवलः ।
तृतीयोविज्वलो नाम चतुर्थश्च कपिञ्जलः ॥३२॥

एवं पुत्रास्तु चत्वारःकुञ्जलस्य महामते । शुकस्य तस्य पुण्यस्य पितृमातृपरायणः ॥३३॥
भ्रमन्ति गिरिकुञ्जेषु द्वीपेषु च समाहिताः । भोजनार्थं तु संक्षुब्धाःक्षुधया परिपीडिताः ॥३४॥

तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से पृथिवी पर भ्रमण करने लगे । हे राजन् ! उन्होंने अनुलोम तथा विलोम दोनों प्रकार से गङ्गा की यात्रा की ॥२०॥ इसी प्रकार से उन्होंने नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी आदि सभी नदियों तथा सागर की यात्रा की ॥२१॥ वे यात्रा के व्याज से दूसरे सभी तीर्थो, क्षेत्रों तथा पवित्र मूर्ति वाले देवताओं का दर्शन किये ॥२२॥ तीर्थों में भ्रमण करते हुए उन महर्षि का शरीर निर्मल हो गया । उनकी कान्ति सूर्य के समान हो गयी ॥२३॥ इस कर्म से पवित्रात्मा च्यवन अपनी कान्ति से प्रकाशित होते थे । भ्रमण करते हुए वे सर्वोत्तम क्षेत्र अमरकण्टक में आये, जो नर्मदा के दक्षिण तट पर अवस्थित है । वहाँ उन्होंने सबों को सुगति प्रदान करने वाले लिङ्ग का दर्शन किया ॥२४-२५॥ वहाँ सिद्धनाथ महेश्वर को प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करके उन्होंने ज्वालेश्वर तथा अमरेश्वर का दर्शन किया ॥२६॥ ब्रह्मेश्वर, कपिलेश्वर तथा माकण्डेश्वर की यात्रा करके वे ओंकारेश्वर का दर्शन करने गये ॥२७॥ एक बट वृक्ष की सुखद छाया के नीचे भृगुनन्दन महर्षि च्यवन सुख पूर्वक बैठ गये ॥२८॥ वहाँ पर उन्होंने पक्षी के द्वारा कहे गये शब्द को सुना । उस शब्द की भाषा दिव्य तथा ज्ञान विज्ञान से युक्त थी ॥२९॥ वहाँ पर बहुत काल से जीवित रहने वाला एक शुक पक्षी था । उसका नाम कुंजली था । वह अपनी पत्नी तथा चार पुत्रों के साथ वहाँ रहता था ॥३०॥ उसके चारों पुत्र अपने पिता को आनन्द प्रदान करने वाले थे । हे राजेन्द्र ! उन सबों का नाम मैं आपको बतलाता हूँ ॥३१॥ ज्येष्ठ पुत्र का नाम उज्ज्वल था, दूसरे का नाम समुज्ज्वल था । तीसरे का नाम विज्वल था और चौथे का नाम कपिञ्जल था ॥३२॥ इस तरह से कुञ्जल के चारों पुत्र अपने माता-पिता के भक्त थे ॥३३। वे भोजन प्राप्त करने के लिए भूख से व्याकुल होकर पर्वत के कुंजों तथा द्वीपों में

स्वोदरस्थांक्षुधां सौम्यफलैरमृतसन्निभैः। अमृतस्वादुतोयेन शमयन्ति नृपोत्तम ॥३५॥
नित्यंचैव रसाढ्यानि आहारार्थं सुपुत्रकाः। नीत्वा फलानि दम्पत्योर्निक्षिपन्ति प्रयत्नतः ॥३६॥
मातुरर्थे महाभागा भक्तिभावसमन्विताः। तुष्टा आहारमुत्पाद्य भक्षयन्ति पठन्ति च ॥३७॥
तत्र क्रीडारताःसर्वे विलसन्ति रमन्ति च। सन्ध्याकालं समाज्ञाय पितुरन्तिकमुत्तमम् ॥३८॥
आयान्ति भक्ष्यमादाय गुर्वर्थं तु प्रयत्नतः। पश्यतस्तस्य विप्रस्य च्यवनस्य महात्मनः ॥३९॥
आगतास्त्वण्डजाःसर्वे पितुर्नीडं सुशोभनम्। पितरं मातरं चोभौ प्रणेमुस्ते महामते ॥४०॥
ताभ्यां भक्ष्यं समासाद्य उपतस्थुस्तयोःपुरः। सर्वे सम्भाषिताः पित्रा मानितास्ते सुतोत्तमाः ॥४१॥
मात्रा च कृपया राजन्वचनैःप्रीतिसंमितैः। पक्षवातेन शीतेन मातापित्रोश्च ते तदा ॥४२॥
तेषामाप्यायनं तौ द्वौ चक्राते पक्षिणौ नृप। आशिर्भिरभिनन्द्यैव द्वाभ्यामपि सुपुत्रकान् ॥४३॥
तैश्च दत्तं सुसम्पुष्टमाहारममृतोपमम्। तावेव हि सुसम्प्रीतिं चक्राते द्विजसत्तम ॥४४॥
पिबतो निर्मलं तोयं तीर्थकोटिसमुद्भवम्। स्वस्थानं तु समाश्रित्य सुखसन्तुष्टमानसौ ॥४५॥

चक्राते च कथां दिव्यां सुपुण्यां पाननाशिनीम्।
पित्रा तु कुञ्जलेनापि पृष्टउज्ज्वल आत्मजः ॥४६॥
क्व गतोऽस्यद्य पुत्र त्वं किमपूर्वं त्वया पुनः।
तत्र दृष्टं श्रुतं पुण्यं तन्मे कथय नन्दन ॥४७॥
कुञ्जलस्य पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य सउज्ज्वलः।
पितरं प्रत्युवाचाथ भक्त्या नमितकन्धरः ॥४८॥

भ्रमण करते थे ॥३४॥ हे नृपोत्तम वे अपने पेट की भूख को तो अमृत के समान फलों तथा अमृत के समान स्वादिष्ट जलों से मिटा लेते थे ॥३५॥ आम के पके हुए फल वे अपने माता-पिता के खाने के लिए प्रयत्न पूर्वक लाकर दते थे ॥३६॥ भक्तिभाव से युक्त वे अपनी माता के लिए सन्तुष्ट होकर आहार देकर खाते और बढ़ते रहते थे ॥३७॥ वे सब क्रीड़ा करते हुए विलास करते थे और रमण करते थे। सायंकाल की बेला जानकर अपने पिता के पास उन दोनों के लिए उत्तम भक्ष्य पदार्थ लेकर आते थे। महर्षि च्यवन के सामने वे सभी पक्षी अपने पिता के घोसले में आये। हे महामते ! उन सबों ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया ॥३८-४०॥ उन दोनों को भक्ष्य पदार्थ प्रदान करके वे सब अपने माता-पिता के समक्ष खड़े हो गये। पिता ने सबों से बातें की और उन सबों का सम्मान किया ॥४१॥ हे राजन् ! उन सबों की माता ने भी अपन वचनों से तथा अपने पङ्खो की हवा से सान्त्वना प्रदान किया और वे सव भी अपने पङ्खों की हवा से अपने माता को सम्मानित किया ॥४२॥ हे नृप ! उन दोनों ने अपने पुत्रों को प्रसन्न किया। और उन दोनों ने अपने पुत्रों को आशिर्वादों से अभिनंदित किया ॥४३॥ उन सबों के द्वारा प्रदत्त अमृत के समान पुष्ट अहार के द्वारा वे दोनों अपने पुत्रों से अत्यन्त प्रेम करते थे ॥४४॥ वे दोनों करोड़ों तीर्थों के निर्मल जल को पीते थे और अपने स्थान पर सन्तुष्ट मन वाले वे सुख पूर्वक रहते थे ॥४५॥ वे दोनों दिव्य और पवित्र तथा पापनाशिनी कथा को कहते थे। **भगवान् विष्णु ने कहा—** पिता कुंजल ने अपने उज्ज्वल नामक पुत्र से पूछा ॥४६॥ पुत्र ! तुम आज कहाँ गये थे और वहाँ पर तुमने कौन सी अपूर्व वस्तु को देखा और सुना ? उसे मुझे सुनाओ ॥४७॥ अपने पिता कुंजल के वाक्य को सुनकर उज्ज्वल ने भक्तिपूर्वक

प्रणाममकरोन्मूर्ध्ना कथां चक्रे मनोहराम् ॥४९॥

उज्ज्वल उवाच

प्लक्ष द्वीपं महाभाग नित्यमेव व्रजाम्यहम्। महता उद्यमेनापि आहारार्थं महामते॥५०॥
प्लक्षे द्वीपे महाराज सन्ति देशा अनेकशः। पर्वताः सरिदुद्यान वनानि च सरांसि च॥५१॥
ग्रामाश्च पत्तनाश्चान्ये सुप्रजाभिः प्रमोदिताः। सदा सुखेन सन्तुष्टा लोका हृष्टा वसन्ति ते॥५२॥
दानपुण्यजपोपेताः श्रद्धाभाव समन्विताः। प्लक्षद्वीपे महाराज आसीत्पुण्यमतिः सदा ॥५३॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा तत्सुतासीदनूपमा। गुणरूपसमायुक्ता सुशीला चारुमङ्गला ॥५४॥

दिव्या देवीति विख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
पित्रा विलोकिता सा तु रूपलावण्यसंयुता ॥५५॥

प्रथमे वयसि सा च वर्त्तते चारुमङ्गला। स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्यादेवीं सुतां तदा॥५६॥
कस्मै प्रदीयते कन्या सुवराय महात्मने । इति चिन्तापरो भूत्वा समालोक्य नरोत्तमः ॥५७॥
रूपदेशस्य राजानं समालोक्य महीपतिः । चित्रसेनं महात्मानं समाहूय नरोत्तमः ॥५८॥
कन्यां ददौ महात्मासौ चित्रसेनाय धीमते। तस्या विवाहकाले तु सम्प्राप्ते समये नृप॥५९॥
मृतोऽसि चित्रसेनस्तु कालधर्मेण वै किल। दिवोदासस्तु धर्मात्मा चिन्तयामास भूपतिः ॥६०॥
सुब्राह्मणान्समाहूय पप्रच्छ नृपनन्दनः । अस्या विवाहकाले तु चित्रसेनो दिवं गतः ॥६१॥
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्यति वदन्तु मे ॥६२॥

ब्राह्मणाउचुः

विवाहो दृश्यते राजन्कन्यायास्तु विधानतः ।
पतिर्मृत्युंप्रयात्यस्या नोचेत्सङ्गं करोति च ॥६३॥

अपना कन्धा झुकाकर पिता से कहा ॥४८॥ उसने शिर से प्रणाम किया और मनोहर कथा कहने लगा । **उज्जवल ने कहा**— हे महाभाग ! मैं प्रतिदिन, प्लक्ष द्वीप में जाता हूँ ॥४९॥ हे महामते ! आहार प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास करके जाता हूँ । हे महाराज ! प्लक्ष द्वीप में अनेक देश हैं ॥५०॥ पर्वत, नदियाँ, उद्यान, वन और सरोवर, ग्राम और नगर ये सबके सव सुन्दर प्रजाओं से आनन्दित हैं ॥५१॥ मैंने देखा कि वहाँ पर रहने वाले लोग सदा सन्तुष्ट रहते हैं और सुखी हैं । वे दान; पुण्य, जप, श्रद्धा तथा भाव से युक्त हैं ॥५२॥ हे महाराज (वेन) उन सबों की सदैव बुद्धि पुण्यमयी रहती है । वहाँ दिवोदास नामक धर्मात्मा राजा थे और उनकी पुत्री अनुपमेय सुन्दरी थी ॥५३॥ वह गुणों और रूपों से युक्त, सुशील तथा सुन्दर मङ्गलमयी थी । वह पृथिवी पर अप्रतिम सुन्दरी थी और उसका नाम दिव्या देवी था ॥५४॥ उसके पिता ने उसे रूष तथा तारुण्य से युक्त देखा । उस समय वह कुमारावस्था में थी ॥५५॥ उसको देखकर दिवोदोस ने विचार किया कि सुमङ्गला का किसके साथ विवाह किया जाय । इसके लिए सुन्दर वर कौन है ?॥५६॥ इस तरह से विचार करके वे नरोत्तम रूप देश के राजा को देखकर ॥५७॥ उन्होंने चित्रसेन को बुलाकर उनको अपनी कन्या प्रदान कर दी ॥५८॥ उसके विवाह का जब समय आया तो कालधर्म से व्याकुल चित्रसेन की मृत्यु हो गयी ॥५९॥ राजा दिवोदास इससे चिन्तित हो गये । उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर कहा ॥६०॥ इसके विवाह के समय चित्रसेन की मृत्यु हो गयी । आपलोग बतलायें कि इसका कर्म कैसा है ?॥६१॥ **ब्राह्मणों ने कहा**— हे राजन् ! कन्या का विवाह विधि पूर्वक होता है । यदि सङ्गम किए बिना पति की मृत्यु हो जाती है ॥६२॥ अथवा वह महान् आधि-व्याधि से ग्रस्त होकर यदि सङ्ग त्यागकर चला जाता है तो हे राजन् ! वह धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रव्राजित हो जाता है ॥६३॥ ऐसी

महाधिव्याधिना ग्रस्तस्त्यागं कृत्वा प्रयाति च ।
प्रव्राजितो भवेद्राजन्धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥६४॥
अनुद्वाहितायाः कन्याया उद्वाहः क्रियते बुधैः । नस्याद्रजस्वला यावदन्यः पतिर्विधीयते ॥६५॥
विवाहं तु विधानेन पिता कुर्यान्न संशयः । एवं राजन्समादिष्टं धर्मशास्त्रं बुधैर्जनैः ॥६६॥
विवाहः क्रियतामस्या इत्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः । दिवोदासस्तु धर्मात्मा द्विजवाक्यप्रणोदितः ॥६७॥
विवाहार्थं महाराज उद्यमं कृतवान्नृप । पुनर्दत्ता तु दानेन दिव्यादेवी द्विजोत्तम ॥६८॥
रूपसेनाय पुण्याय तस्मै राज्ञे महात्मने। मृत्युधर्मं गतो राजा विवाहे तु महीपतिः ॥६९॥
यदा यदा महाभाग दिव्यादेव्याश्च भूपतिः । भर्ता च म्रियते काले प्राप्ते लग्नस्य सर्वदा॥७०॥
एकविंशति भर्तारः काले काले मृताः पितः । ततो राजा महादुःखी सञ्जातः ख्यातविक्रमः ॥७१॥
समालोच्य समाहूय समामन्त्र्य समन्त्रिभिः । स्वयंवरे महाबुद्धिं चकार पृथिवीपतिः ॥७२॥
प्लक्षद्वीपस्य राजानः समाहूता महात्मना। स्वयंवरार्थमाहूतास्तथा ते धर्मतत्पराः ॥७३॥
तस्यास्तु रूपसंमुग्धा राजानो मृत्युनोदिताः । सङ्ग्रामं चक्रिरे मूढास्ते मृताः समराङ्गणे॥७४॥
एवं तात क्षयोजातः क्षत्त्रियाणं महात्मनाम् । दिव्यादेवी सुदुःखार्ता गता सा वनकन्दरम्॥७५॥
रुरोद करुणं बाला दिव्या देवी मनस्विनी। एवं तात मया दृष्टमपूर्वं तत्र वै तदा ॥७६॥
तन्मे सुविस्तरं तात तस्याः कथय कारणम् ॥७७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थेच्यवनोपाख्याने पञ्चशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

स्थिति में विवाह नहीं होने के कारण पुनः विवाह कर दिया जाता है । यदि वह रजस्वला नहीं हुयी हो तब॥६४॥ पिता को चाहिए कि कन्या का विवाह विधिपूर्वक करे । हे राजन् ! इस तरह से धर्मशास्त्रों तथा विद्वानों के द्वारा कहा गया है ॥६५॥ अतएव आप इसका विवाह करें । इस तरह से उन ब्राह्मण श्रेष्ठों ने कहा । ब्राह्मणों के वाक्य से प्रेरित धर्मात्मा दिवोदास ने ॥६६॥ विवाह करने की तैयारी की । हे द्विजोत्तम! उन्होंने दिव्यादेवी को पुनः दान दे दिया ॥६७॥ उन्होंने राजा रूपसेन को उसे प्रदान किया था । विवाह का अवसर आने पर रूपसेन की भी मृत्यु हो गयी ॥६८॥ जब-जब दिव्यादेवी के विवाह की तैयारी राजा करते थे, तब-तब लग्न के समय उसके पति मर जाते थे ॥६९-७०॥ इस तरह समयानुसार इक्कीस पतियों की मृत्यु हो गयी । उसके कारण प्रख्यात पराक्रम वाले राजा दिवोदास अत्यन्त दुःखी हो गये ॥७१॥ उन्होंने विचार किया और अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा की और राजा ने स्वयम्बर करने का विचार किया ॥७२॥ उन महात्मा ने प्लक्ष द्वीप के सभी राजाओं को आहूत किया स्वयम्बर के लिए बुलाये गये वे सभी राजा धर्मात्मा थे॥७३॥ मृत्यु के द्वारा प्रेरित किए गये वे सभी उसके रूप पर मोहित थे । वे सब परस्पर में युद्ध करने लगे और सबके सब युद्ध में मारे गये ॥७४॥ हे पिताजी ! इस तरह से उन महात्मा क्षत्रियों का विनाश हो गया । इसके कारण अत्यन्त दुःखी दिव्यादेवी वन की कन्दरा में चली गयी ॥७५॥ वह मनस्विनी बाला करुण क्रन्दन करने लगी । हे पिताजी ! मैंने इस प्रकार से वहाँ पर अपूर्व देखा ॥७६॥ हे पिताजी ! मुझको विस्तार पूर्वक उसका कारण आप बतलाइये ॥७७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरु तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवनोपाख्यानान्तर्गत पचासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८५॥

छियासीवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

तस्यास्तु चेष्टितं वत्स दिव्या देव्या वदाम्यहम् ।
पूर्वजन्मकृतं सर्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥१॥

अस्ति वाराणसी पुण्या नगरीपापनाशिनी। तस्यामास्ते महाप्राज्ञः सुवीरो नाम नामतः ॥२॥
वैश्यजात्यां समुत्पन्नो धनधान्यसमाकुलः । तस्य भार्या महाप्राज्ञ चित्रा नाम सुविश्रुता॥३॥
कुलाचारं परित्यज्य अनाचरेण वर्तते । न मन्यते हि भर्तारं स्वैरवृत्त्या प्रवर्तते ॥४॥
धर्मपुण्यविहीना तु पापमेव समाचरेत् । भर्तारं कुत्सते नित्यं नित्यं च कलहप्रिया ॥५॥
नित्यं परगृहे वासो रमते सा गृहे गृहे। परच्छिद्रं समापश्येत्सदा दुष्टा च प्राणिषु॥६॥

साधुनिंदा परा दुष्टा सदा हास्यकरी च सा ।
अनाचारां महापापां ज्ञात्वा वीरोऽपि नन्दनः ॥७॥

स तां त्यक्त्वा महाप्राज्ञ उपयेमे महामतिः । अन्यवैश्यस्य वै कन्यां तया सह प्रवर्तते ॥८॥
धर्माचरेण पुण्यात्मा सत्यधर्ममतिःसदा। निरस्ता तेन सा चित्रा प्रचण्डा भ्रमते महीम् ॥९॥
दुष्टानां सङ्गतिं प्राप्ता नराणां पापिनां सदा। दूतीकर्म चकाराथ सा तेषां पापनिश्चया॥१०॥
गृहभङ्गं चकाराथ साधूनां पापकारिणी । साध्वीं नारीं समाहूय पापवाक्यैःसुलोभयेत् ॥११॥

कुञ्जल द्वारा दिव्यादेवी के पूर्वजन्म के पापों का वर्णन तथा दिव्या देवी के वर को जीवित रहने के लिए भगवद् ध्यान का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— हे वत्स ! मैं उस दिव्यादेवी की चेष्टाओं को तुम्हें बतलाता हूँ । उसने जो पूर्वजन्म में कर्म किया था उसे मैं कह रहा हूँ, उसे तुम सुनो ॥१॥ पापों को विनष्ट करने वाली वाराणसी नामक नगरी में महाप्राज्ञ सुवीर रहते थे ॥२॥ वे वैश्य वंश में उत्पन्न तथा धन-धान्य से सम्पन्न थे । हे महाप्राज्ञ ! उनकी पत्नी का नाम चित्रा था ॥३॥ वह अपने वंश के आचार का परित्याग करके अनाचार करती रहती थी । वह अपने पति को नहीं मानती थी । स्वेच्छाचारिणी हो गयी थी ॥४॥ वह कभी धर्म तथा पुण्य नहीं करती थी केवल पाप कर्मों को ही करने में लगी रहती थी । वह अपने पति की सदा निन्दा करती रहती थी और कलह करना उसको प्रिय था ॥५॥ वह सदा दूसरों के घर में रहती थी और वह घर-घर घूमा करती थी । वह जीवों के विषय में दुष्ट स्वभाव की थी तथा दूसरों में छिद्रान्वेषण किया करती थी॥६॥ वह दुष्टा सदा सज्जनों की निन्दा करती थी और उनका उपहास करती रहती थी । उसको दुराचारिणी महापापिनी जानकर वीर ने उसकी निन्दा की ॥७॥ वे महामति उसका परित्याग करके दूसरी स्त्री से विवाह कर लिए । दूसरे वैश्य की कन्या से विवाह करके उसी के साथ रहने लगे ॥८॥ वे धर्माचरण करने वाले धर्मात्मा सत्य तथा धर्म का पालन करते थे । उनके द्वारा परित्यक्त होकर चित्रा पृथिवी पर सदा घूमती रहती थी ॥९॥ वह सदा पापियों और दुष्ट पुरुषों की सङ्गति में रहती थी । वह पापिनी उन दुष्टों की दूती का काम करती थी ॥१०॥ वह पापिनी सज्जन पुरुषों के घर में फूट डालने का काम करती थी । वह साध्वी नारियों को बुलाकर उन सबों को पापमय वाक्यों द्वारा प्रलोभन देने का काम करती थी ॥११॥ वह अपने

धर्मभङ्गं चकाराथ वाक्यैःप्रत्ययकारकैः। साधूनां सा स्त्रियं चित्रा अन्यस्मै प्रतिपादयेत्॥१२॥
एवं गृहशतं भग्नं चित्रया पापनिश्चयात्। सङ्ग्रामं सा महादुष्टाऽकारयत्पतिपुत्रकैः ॥१३॥
मनांसि चालयेत्पापा पुरुषाणां विवर्धनम्। अकारयच्च सङ्ग्रामं यमग्राम विवर्धनम् ॥१४॥
एवं गृहशतं भङ्क्त्वा पश्चात्सा निधनं गता।
शासिता यमराजेन बहुदण्डैःसुनन्दन ॥१५॥
अभोजयत्सुनरकान्रौरवांस्तरणेःसुतः। पाचिता रौरवे चित्रा चित्राःपीडाःप्रदर्शिताः॥१६॥
यादृशं क्रियते कर्म तादृशं परिभुज्यते। तया गृहशतं भग्नं चित्रया पापनिश्चयात्॥१७॥
तत्तत्कर्मविपाकोऽयं तया भुक्तो द्विजोत्तम। यस्माद् गृहशतं भग्नं तस्माद्दुःखं प्रभुञ्जति॥१८॥
विवाहसमये प्राप्ते दैवं च पाकतां गतम्। प्राप्ते विवाहसमये भर्ता मृत्युं प्रयाति च॥१९॥
यथा गृहशतंभग्नं तथा वरशतं मृतम्। स्वयंवरे तदा वत्स विवाहे चैकविंशतिः॥२०॥
दिव्या देव्या मयाख्यातं यथा मे पृच्छितं त्वया।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तस्याःपूर्वविचेष्टितम् ॥२१॥

उज्ज्वल उवाच

दिव्यादेव्यास्त्वया ख्यातं यत्पूर्वपूर्वचेष्टितम्। तथा पापं कृतं घोरं गृहभङ्गाख्यमेव च॥२२॥
प्लक्षद्वीपस्य भूपस्य दिवोदासस्य वै सुता। केनपुण्यप्रभावेन तया प्राप्तं महाकुलम्॥२३॥
एष मे संशयस्तात तदेतत्प्रब्रवीतु मे। एवं पापसमाचारा कथं जाता नृपात्मजा॥२४॥

विश्वास दिलाने वाले वाक्यों के द्वारा उन सबों को धर्मभङ्ग करने का काम करती थी। वह सज्जन पुरुषों की स्त्री को दूसरे पुरुषों के हाथों में दे देती थी॥१२॥ इस तरह से पापिनी चित्रा ने सैकड़ों घरों में फूट डाल दी। वह महादुष्टा पतियों और पुत्रों से लड़ाई कराने का काम करती थी। वह पापिनी पुरुषों के मन को स्त्रियों के प्रति चञ्चल बना देती थी। वह युद्ध करवाती थी और यमराज के घर को भरने का काम करती थी॥१३-१४॥ इस तरह से सैकड़ों घरों को विनष्ट करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। हे राजन्! यमराज ने उसको अनेक प्रकार के दण्डों से दण्डित किया॥१५॥ यमराज ने उसे रौरव आदि नरकों का भोग भोगाया। रौरव नरक में पड़ी हुयी चित्रा को विचित्र प्रकार की पीड़ाओं को सहना पड़ा॥१६॥ जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल भोगना पड़ता है। उस पापिनी चित्रा ने सैकड़ों गृहों में फूट डाला था॥१७॥ हे द्विजोत्तम! उन्हीं कर्मों का परिणाम उसको भोगना पड़ा। चूँकि उसने सैकड़ों गृहों को फोड़ने का काम किया था इसीलिए वह इस समय भी दुःख भोगती है॥१८॥ विवाह के समय आने पर उसका दैव परिणाम प्रदान करता है और विवाह के समय उसका पति मर जाता है॥१९॥ जिस तरह उसने सैकड़ों घरों में फूट डालने का काम किया उसी तरह उसके सैकड़ों पति स्वयम्बर के समय तथा इक्कीस और पति मर गये॥२०॥ दिव्या देवी के विषय में तुमने जो पूछा था उसको मैंने बतला दिया॥२१॥ **उज्ज्वल ने कहा—** दिव्या देवी के पूर्व जन्मों के चरित के विषय में आपने जो कहा है, कि उसने घरों को फोड़ना रूपी उसी प्रकार का पाप कर्म किया था॥२२॥ प्लक्ष द्वीप के राजा दिवोदास की पुत्री ने अपने किस पुण्य के प्रभाव से महान् कुल में जन्म पाया था?॥२३॥ हे तात! मुझको यह संशय है, उसे आप बतलाएँ इस तरह के पापकर्मों को करने वाली राजकुमारी कैसे हो गयी?॥२४॥ **कुञ्जल ने कहा—** चित्रा

कुञ्जल उवाच

चित्रायाश्चेष्टितं पुण्यं तत्सर्वं प्रवदाम्यहम्। श्रूयतामुज्ज्वलसुत चित्रया यत्कृतं पुरा ॥२५॥
भ्रममाणो महाप्राज्ञःकश्चित्सिद्धःसमागतः। कुचैलो वस्त्रहीनश्च संन्यासी स च दण्डधृक् ॥२६॥
कौपीनेन समायुक्तःपाणिपात्रो दिगम्बरः। गृहद्वारं समाश्रित्य चित्रायाः परिसंश्रितः ॥२७॥
स मौनी सर्वमुण्डस्तु विजितात्मा जितेन्द्रियः।
निराहारो जिताहारः सर्वतत्त्वार्थदर्शकः ॥२८॥
दूराध्वानपरिश्रान्त आतपाकुलमानसः। श्रमेण खिद्यमानश्च तृषाक्रान्तः सुपुत्रक ॥
चित्राद्वारं समाश्रित्य च्छायामाश्रित्य संस्थितः ॥२९॥
तया दृष्टो महात्मा स चित्रया श्रमपीडितः। सेवां चक्रे च चित्रा सा तस्यैव सुमहात्मनः ॥३०॥
पादप्रक्षालनं कृत्वा दत्वा आसनमुत्तमम्। आस्यतामासने तात सुखेनापि सुकोमले ॥३१॥
क्षुधापनोदनार्थं हि भुज्यतामन्नमुत्तमम्। स्वेच्छया परितुष्टश्च शीतलं सलिलं पिब ॥३२॥
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा देववत्पूज्य तं सुत। अङ्गसंवाहनं कृत्वा नाशितश्रम एव च ॥३३॥
तयोक्तो हि महात्मा स भुक्त्वा पीत्वा द्विजोत्तम ॥३४॥
एवं सन्तोषितःसिद्धस्तया तत्वार्थदर्शकः।
सन्तुष्टः सर्वधर्मात्मा किंचित्कालं स्थिरोऽभवत् ॥३५॥
स्वेच्छया स गतो विप्रो महायोगी यथागतम् ॥
गते तस्मिन्महाभागे सिद्धे चैव महात्मनि। सा चित्रा मरणं प्राप्ता स्वकर्मवशमागता ॥३६॥
शासिता धर्मराजेन महादण्डैःसुदुःखदै। सा चित्रा नरकं प्राप्ता वेदनाव्रातदायकम् ॥३७॥

ने जो पुण्य कर्म किया था उसको मैं बतला रहा हूँ। हे पुत्र ! उज्जव ! तुम चित्रा के द्वारा पूर्वजन्म में किए गये पुण्यों को सुनो ॥२५॥ एक बार कोई घूमते हुए सिद्ध पुरुष आये, वे मैला वस्त्र पहने थे, वस्त्रहीन संन्यासी थे। वे दण्ड धारण किए थे ॥२६॥ केवल उनके पास कौपीन (लंगोटी) था। हाथ में ही उनका पात्र था और वे दिगम्बर थे। वे चित्रा के घर के द्वारा पर आकर वहीं रुक गये ॥२७॥ वे मौनी थे, शिर झुकायें थे, अपने मन को वश में रखने वाले तथा जितेन्द्रिय थे। वे निराहार तथा आहार पर विजय प्राप्त किये थे तथा समस्त तत्त्वों को जानने वाले थे ॥२८॥ वे दूर से रास्ता में चलने के कारण थके हुए तथा धूप से सन्तप्त थे। श्रम के कारण थक गये थे और प्यासे हुए थे ॥२९॥ वे चित्रा के द्वार पर आकर छाया में बैठ गये। उस चित्रा ने उन श्रम से पीड़ित महात्मा को देखा ॥३०॥ उसने उस महात्मा की सेवा की उसने उनका पैर धोया और उन्हें उत्तम आसन प्रदान किया ॥३१॥ उसने कहा— तात ! आप इस कोमल आसन पर सुख पूर्वक बैठ जाइये। आप अपनी भूख मिटाने के लिए उत्तम भोजन कीजिए ॥३२॥ अपनी इच्छानुसार संतुष्ट होकर शीतल जल पीजिये। इस तरह से उसने ऐसा ही करके उनकी देवता के समान पूजा की ॥३३॥ उनके शरीर को दबाकर उसने उनके श्रम को दूर किया। उसके द्वारा कहे जाने पर वे महात्मा भोजन करके तथा जल पीकर ॥३४॥ तत्त्वों को जानने वाले वे उससे सन्तुष्ट हुए। सभी धर्मों के ज्ञाता वे वहाँ कुछ देर तक रूके इसके बाद ॥३५॥ अपनी इच्छा के अनुसार वे योगी महात्मा जैसे आये थे उसी तरह चले गये। उन सिद्ध महाभाग के चले जाने के बाद ॥३६॥ वह चित्रा अपने कर्मों के अनुसार

भुङ्क्ते दुःखंमहाराज सा वै युग सहस्त्रकम्। भोगान्ते तु पुनर्जन्म सम्प्राप्तं मानुषस्य च॥३८॥
पूर्वं सम्पूजितः सिद्धस्तया पुण्यवतांवरः। तस्य कर्मविपाकोऽयं प्राप्ता पुण्यवतां कुले॥३९॥
क्षत्रियाणां महाराज्ञो दिवोदासस्य वै गृहे। दिव्यादेवीवरापत्यं सञ्जातं तस्य मानद॥४०॥
सा हि दत्तवती चान्नं पानं पुण्यं महात्मने। तस्य दानस्य सा भुङ्क्ते महत्पुण्यफलोदयम्॥४१॥
पीबते शीतलं तोयं मिष्टान्नं च भुनक्ति वै। दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जाना वर्तते पितृमन्दिरे॥४२॥
सिद्धस्यास्य प्रभावाच्च राजकन्या व्यजायत। पापकर्मप्रभावाच्च गृहभङ्गान्महामते॥४३॥
विधवात्वं भुञ्जते सा दिव्यादेवी सुपुत्रक। एतत्ते सर्वमाख्यातं दिव्यादेव्या विचेष्टितम्॥४४॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि यत्त्वं पृच्छसि माम् हि॥४५॥

उज्ज्वल उवाच

कथं सा मुच्यते शोकान्महादुःखाद्वदस्व मे। सा स्याच्च कीदृशी बाला महादुःखेन पीडिता॥४६॥
तत्सुखं कीदृशं तस्माद्विपाकश्च भविष्यति। एवं मे संशयं तात साम्प्रतं छेत्तुमर्हसि॥४७॥
कथं सा लभते मोक्षं तं चोपायं वदस्व मे। एकाकिनी महाभागा महारण्ये प्ररोदिति॥४८॥

विष्णुरुवाच

पुत्रवाक्यं महच्छ्रुत्वा क्षणमेकं विचिन्त्य सः।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञः कुञ्जलः पुत्रकं प्रति॥४९॥

श्रृणु वत्स महाभाग सत्यमेतद्वदाम्यहम्। पापयोनिं तु सम्प्राप्य पूर्वकर्मसमुद्भवम्॥५०॥
तिर्यक्त्वेन च मे ज्ञानं नष्टं सम्प्रति पुत्रक। अस्य वृक्षस्य सङ्घ प्रयतस्य महात्मनः॥५१॥

मर गयी। यमराज ने उसको अत्यन्त दुःख देने वाले दण्ड से दण्डित किया ॥३७॥ वह कष्ट देने वाले नरकों में गयी। इस तरह से उसने हजारों वर्ष तक दुःखों को भोगा ॥३८॥ भोगों के अन्त में उसे मनुष्य का जन्म मिला। उसने पूर्व जन्म में जो श्रेष्ठ सिद्ध पुरुष की सेवा की थी ॥३९॥ उसी के परिणाम स्वरूप उसको महान् कुल में जन्म मिला। वह क्षत्रियों में महाराज दिवोदास के घर में जन्म पायी ॥४०॥ हे नरोत्तम! उसका नाम दिव्यादेवी हुआ उसने महात्मा को अन्न और जल प्रदान किया था ॥४१॥ उससे जो पुण्य हुआ सी का वह महान् पुण्यमय फल प्राप्त कर रही है। उसको पीने के लिए शीतल जल मिलता है और खाने के लिए अच्छा भोजन मिलता है ॥४२॥ वह अपने पिता के घर में रहकर दिव्य भोगों को भोगती है। उस सिद्ध के ही प्रभाव से वह राजा की पुत्री हुयी। हे राजन्! वेन गृहभङ्ग रूपी पाप कर्मों के कारण वह दिव्या देवी विधवात्व दोष को भोग रही है ॥४३-४४॥ इस तरह से मैंने दिव्यादेवी की चेष्टाओं को बतलाया। इसके अतिरिक्त जो तुम मुझसे पूछो उसे मैं बतलाऊँ ॥४५॥ **उज्ज्वल ने कहा—** आप यह बतलायें कि वह किस प्रकार इस महान् दुःख से मुक्ति प्राप्त करेगी। वह महान् दुःख से पीड़ित बाला कैसी हो जायेगी ?॥४६॥ उसको वह सुख कैसे होगा ? और उसका परिणाम क्या होगा ? हे तात! मेरे इस संशय को आप दूर करें ॥४७॥ आप मुझे उस उपाय को बतलायें जिससे कि वह दुःख से छुटकारा प्राप्त करेगी। अकेली वह महाभागा वन में रो रही है ॥४८॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** अपने पुत्र के वाक्य को सुनकर वह कुञ्जल ने एक क्षण तक विचार किया। उसके बाद कुंजल ने अपने पुत्र से कहा ॥४९॥ हे वत्स! सुनो, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। पूर्व जन्म के कर्मों के कारण पापयोनि को प्राप्त

रेवायाश्च प्रसादेन विष्णोश्चैव प्रसादतः। येन सा लभते ज्ञानं मोक्षस्थानं निवर्तते ॥५२॥
उपदेशं प्रवक्ष्यामि मोक्षमार्गमनुत्तमम्। यास्यते कल्मषान्मुक्ता यथाहेम हुताशनात् ॥५३॥
शुद्धं च जायते वत्स सङ्गाद्वह्नेःस्वरूपवत्। हरेर्ध्यानान्महाप्राज्ञ शीघ्रं तस्य महात्मनः ॥५४॥
जपहोमव्रतात्पापं नाशं याति हि पापिनाम्। मदंत्यजेद्यथा नागो भयात्सिंहस्य सर्वदा ॥५५॥

नामोच्चारेण कृष्णस्य तत्प्रयाति हि किल्विषम्।
तेजसा वैनतेयस्य विषहीना इवोरगाः ॥५६॥

ब्रह्महत्यादिकाःपापाःप्रलयं यान्ति नान्यथा। नामोच्चारेण तस्यापि चक्रपाणेः प्रयान्ति ते ॥५७॥
यदा नाम शतं पुण्यमघराशि विनाशनम्। सा जपेत् स्थिरा भूत्वा कामक्रोधविवर्जिता ॥५८॥
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य आत्मज्ञानेन गोपयेत्। तस्य ध्याने प्रविष्टा सा एकभूता समाहिता॥५९॥
सा जपेत्परमं ज्ञानं तदामोक्षं प्रयाति च। तन्मनास्तत्पदे लीना योगयुक्ता तदा भवेत् ॥६०॥

उज्ज्वल उवाच

वद तात परं ज्ञानं परमं मम साम्प्रतम्। पश्चाद् ध्यानं व्रतं पुण्यं नाम्नां शतमिहैव च ॥६१॥

कुञ्जल उवाच

परं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि यन्नदृष्टं तु केनचित्। श्रूयतां पुत्र कैवल्यं केवलं मलवर्जितम् ॥६२॥

यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः।
प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते ॥६३॥

करके ॥५०॥ तिर्यक् होने के कारण इस समय मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है। इस वृक्ष के सम्बन्ध के कारण, संयतेन्द्रिय महात्मा के ॥५१॥ रेवा नदी की कृपा से, भगवान् विष्णु की कृपा से जिसके द्वारा वह ज्ञान को प्राप्त करती है और मोक्ष स्थान को वह प्राप्त करेगी ॥५२॥ मैं उसको मोक्ष प्राप्ति के सर्वोत्तम मार्ग का उपदेश करूँगा। उससे वह उसी तरह पाप से मुक्त हो जायेगी। जिस तरह सुवर्ण अग्नि के सम्पर्क से अपने मल का त्याग कर देता है ॥५३॥ और अग्नि के सम्बन्ध से शुद्ध स्वरूप वाला हो जाता है। हे महाप्राज्ञ ! श्रीहरि का ध्यान करने से शीघ्र ही जप, होम, व्रत तथा दान से पापियों के पाप का नाश हो जाता है। जिस तरह गजराज सिंह के भय से अपने मद का परित्याग कर देता है ॥५४-५५॥ उसी तरह चक्रपाणि भगवान् कृष्ण के नाम का उच्चारण करने से वे पाप विनष्ट हो जाते हैं। जिस तरह गरुड़ के तेज से सर्प विषहीन हो जाते हैं तथा ब्रह्म हत्या इत्यादि पाप भगवन्नामोच्चारण से विनष्ट हो जाते हैं ॥५६-५७॥ जब वह पाप समूह का विनाश करने वाले श्रीभगवान् के पवित्र सौ नामों का जप स्थिर होकर तथा काम एवं क्रोध का परित्याग करके, इन्द्रियों संयम पूर्वक करेगी। और आत्मज्ञान के द्वारा उसकी रक्षा करेगी। उसी के ध्यान में प्रवेश करके वह समाहित होकर एकरूप हो जायेगी ॥५८-५९॥ जब वह परम ज्ञान का जप करेगी तो वह मुक्ति को प्राप्त कर लेगी। जब उसका मन भगवान् में ही लग जायेगा तो वह उनके ही चरणों में लीन होकर योगयुक्त हो जायेगी ॥६०॥ **उज्ज्वल ने कहा—** हे तात् ! इस समय आप मुझको वह परम ज्ञान का उपदेश कीजिये। उसके बाद ध्यान, व्रत तथा शतनाम का आप उपदेश करें ॥६१॥ **कुंजल ने कहा—** जिसको कोई भी नहीं जानता है मैं उस परमज्ञान को बतला रहा हूँ। हे पुत्र ! उसे तुम सुनो। वह निर्दोष शुद्ध स्वरूप कैवल्य रूप है ॥६२॥ **सूतजी ने कहा—** हे महामते ! जिस तरह वायु

तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः। निराशो निर्मलो वत्स न मित्रं न रिपुं कदा ॥६४॥
न शोको न च हर्षश्च न लोभो न च मत्सरः ।
एकोविषादहर्षैश्च सुखदुःखैर्विमुच्यते ॥६५॥
विषयैश्चापि सर्वैश्च इन्द्रियाणि स संहरेत्। तदा स केवलो जातः केवलत्वं प्रजायते ॥६६॥
अग्निकर्मप्रसङ्गेन दीपस्तैलं प्रशोषयेत्। वर्त्याधारेण राजेन्द्र निःसङ्गोवायुवर्जितः ॥६७॥
कज्जलं वमते पश्चात्तैलस्यापि महामते। कृष्णासौ दृश्यते रेखा दीपस्याग्रे महामते ॥६८॥
स्वयमाकृष्यते तैलं तेजसा निर्मलो भवेत्। कायवर्तिस्थितस्तद्वत्कर्मतैलं प्रशोषयेत् ॥६९॥
विषयान्कज्जलीकृत्य प्रत्यक्षं सम्प्रदर्शयेत् । जनयेन्निर्मलो भूत्वा स्वयमेव प्रकाशयेत् ॥७०॥
क्रोधादिभिः क्लेशसंज्ञैर्वायुभिःपरिवर्जितः ।
निःस्पृहो निश्चलो भूत्वा तेजसा स्वयमुज्ज्वलेत् ॥७१॥
त्रैलोक्यं पश्यते सर्वं स्वस्थानस्थःस्वतेजसा ।
केवल ज्ञानरूपोऽयं मया ते परिकीर्तितः ॥७२॥
ध्यानं तस्य प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः ।
केवलज्ञानरूपेण दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ॥७३॥
योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः। यं पश्यन्ति विनिद्रास्तु यत्तपःसर्वदर्शकम् ॥७४॥
हस्तपादविहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति। सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं सुत ॥७५॥
नासामुखविहीनस्तु घ्रातिजक्षिति पुत्रक। अकर्णःशृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥७६॥

रहित स्थान में स्थित दीपक निश्चल होकर जलता हुआ सम्पूर्ण अन्धकार को विनष्ट कर देता है ॥६३॥ उसी तरह निर्दोष आत्मा निराश्रय हो जाता है । वह निराशा, तथा निर्मल होकर न तो किसी का मित्र होता है और न शत्रु होता है ॥६४॥ उसको न शोक होता है, न हर्ष होता है, न लोभ होता है और न मत्सर होता है । अकेला वह विषाद, हर्ष, सुख तथा दुःख से रहित हो जाता है ॥६५॥ वह अपनी इन्द्रियों को सभी विषयों से उपसंहृत कर लेता है । उस समय वह अकेला होकर एकत्व (केवलत्व) को प्राप्त कर लेता है ॥६६॥ जिस तरह अग्नि के सम्पर्क से दीपक तेल को सोख लेता है केवल बत्ती को आधार बनाकर निर्वात दीपक तेल सोखने के बाद तेल के कज्जल को छोड़ देता है वह दीप के अग्रभाग में काली रेखा के रूप में दिखायी देता है ॥६७-६८॥ स्वयम् आकृष्ट होकर तेल तेज के द्वारा निर्मल हो जाता है । इसी तरह शरीर रूपी बाती में स्थित कर्म रूपी तेल को भगवद् ध्यान रूपी तेज सोख लेता है ॥६९॥ और वह विषयों को काजल बनाकर प्रत्यक्ष प्रदर्शित करता है । इस तरह से निर्मल होकर वह जीव को स्वयं प्रकाशित करता है ॥७०॥ वह क्रोध आदि क्लेश संज्ञक वायुओं से रहित निःस्पृह और निश्चल होकर अपने तेज से स्वयं प्रकाशित होता है ॥७१॥ वह अपने ही स्थान पर स्थित रहकर त्रैलोक्य देखने लगता है । मैंने केवल ज्ञान रूप आत्मा का वर्णन तुमको सुनाया ॥७२॥ उन चक्रधारी भगवान् का ध्यान दो प्रकार का होता है, उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । वह परमात्मा केवल ज्ञाननेत्र के द्वारा केवल ज्ञान से ही दिखता है॥७३॥ ज्ञानी तथा परमार्थ परायण योगिजन उस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, और तपस्या ही उसको प्रदर्शित करने वाली है ॥७४॥ हाथ, पैर आदि से रहित भी वह परमात्मा सर्वत्र जाता है । हे पुत्र ! वह

अरुणोरुपसम्बद्धः पञ्चवर्ग वशंगतः । सर्वलोकस्य यःप्राणःपूजितःसचराचरैः ॥७७॥
अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रानुगं सुतः । अत्वचःस्पर्शनं चापि सर्वेषामेव जायते ॥७८॥
सदानन्दो विरक्तात्मा एकरूपो निराश्रयः । निर्जरो निर्मनो न्यायी सगुणो निर्ममोऽमलः ॥७९॥
अवश्यःसर्ववश्यात्मा सर्वदःसर्ववित्तमः । तस्य ध्याता न चैवास्ति सवै सर्वमयो विभुः ॥८०॥
एवं सर्वमयं ध्यानं पश्यते यो महात्मनः । स याति परमं स्थानममूर्तममृतोपमम् ॥८१॥
द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि अस्य ध्यानं महात्मनः। मूर्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम् ॥८२॥
ब्रह्माण्डं सर्वमतुलं वासितं यस्य वासना । स तस्माद्वासुदेवेतिःउच्यते मम नन्दन ॥८३॥
वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्णं तस्य तद्भवेत् । सूर्यतेजःप्रतीकाशं चतुर्बाहुं सुरेश्वरम्॥८४॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः । सूर्यविम्बसमाकारं चक्रं पद्मं प्रतिष्ठितम् ॥८५॥
कौमोदकीगदा तस्य महासुर विनाशिनी। वामे च शोभते वत्स हस्ते तस्य महात्मनः ॥८६॥
महापद्मं सुगन्धाढ्यं तस्य दक्षिण हस्तगम् । शोभमानःसदैवास्ते सायुधःकमलप्रियः ॥८७॥
कम्बुग्रीवं वृत्तमास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम्। राजमानं हृषीकेशं दशनै रत्नसन्निभैः ॥८८॥
गुडाकेशाःसन्ति यस्य अधरो विद्रुमाकृतिः। शोभते पुण्डरीकाक्षःकिरीटेनापि पुत्रक ॥८९॥

स्थावरजङ्गम रूप से सम्पूर्ण जगत् को ग्रहण करता है ॥७५॥ हे पुत्र ! वह नाक और मुख से रहित है किन्तु वह सूंघता भी है और खाता भी है । वह कान से रहित है किन्तु सब कुछ सुनता है । वह सबों का साक्षी और जगत् का स्वामी है ॥७६॥ रूप रहित भी वह रूप से संबद्ध है तथा वर्ग के वश में रहता है। वह सम्पूर्ण जीवों का प्राण है तथा चराचर उसकी पूजा करता हैं ॥७७॥ हे पुत्र ! वह जिह्वा से रहित है किन्तु वह वेद शास्त्रानुकूल सारी बातों को कहता है । वह त्वचा रहित है किन्तु वह सबके स्पर्श का विषय वनता है ॥७८॥ वह सदा आनन्द स्वरूप, सबसे विरक्त, एक समान रहने वाला तथा आश्रय रहित है । वह जरा रहित, ममता रहित, न्याय करने वाला, दिव्य गुणों से युक्त, निर्मल तथा अमल है ॥७९॥ वह किसी के भी वश में नहीं रहता है और वह सर्ववश्य है । वह सब कुछ देने वाला और तथा सर्ववेत्ता है। उसका कोई धारक नहीं है, वह सर्वमय तथा सर्वव्यापक है ॥८०॥ इस तरह से सर्वमय ध्यान स्वरूप परमात्मा का जो साक्षात्कार करता है, वह अमूर्त तथा अमृत के समान सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है॥८१॥ मैं परमात्मा के दूसरे प्रकार के ध्यान को बतलाता हूँ । उसका विषयभूत परमात्मा मूर्त आकार वाला साकार निराकार और निरामय है ॥८२॥ उसी की वासना से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वासित है । हे पुत्र ! इसी कारण से वह परमात्मा वासुदेव शब्द से अभिहित किया जाता है ॥८३॥ वर्षा करने वाले मेघ के रूप के समान श्याम वर्ण का उसका रूप है । सूर्य के तेज के समान उस परमात्मा का तेज है । उसकी चार भुजाएँ हैं और वह देवताओं का स्वामी है ॥८४॥ उसके दाहिने हाथ में सुवर्ण तथा रत्न से भूषित शङ्ख सुशोभित होता है । परमात्मा का चक्र सूर्य-मण्डल के समान आकार वाला है । और परमात्मा का पद्म प्रतिष्ठित है ॥८५॥ उस परमात्मा की कौमोदकी नाम की गदा बड़े-बड़े असुरों का विनाश करने वली है, वह परमात्मा के बायें हाथ में सुशोभित होती है ॥८६॥ सुगन्ध से परिपूर्ण महापद्म परमात्मा के दायें हाथ में रहता है । इस तरह लक्ष्मीपति सदा आयुधों के साथ सुशोभित होते हैं ॥८७॥ उनकी ग्रीवा शङ्ख के आकार का है, मुख गोल है । उनके नेत्र कमलदल के समान मनोहर हैं, भगवान् हृषीकेश रत्न के सदृश दंतपंक्ति से

विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुवर्चसा। कौस्तुभेनाङ्कितेनैव राजमानो जनार्दनः ॥९०॥

सूर्यतेजःप्रतीकाशः कुण्डलाभ्यां प्रभाति च।
श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजते हरिः ॥९१॥

केयूरकङ्कणैहरिर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभैः। वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतांवरः ॥९२॥

भ्राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा। मुद्रिका रत्नयुक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजते ॥९३॥

सर्वायुधैःसुसपूर्णैर्दिव्यैराभरणैर्हरिः। वैनतेय समारूढो लोककर्ता जगत्पतिः ॥९४॥

एवं तं ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥९५॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानमेव जगत्पतेः। व्रतंचैव प्रवक्ष्यामि सर्वपाप निवारणम् ॥९६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थवर्णने षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

सत्तासीवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

व्रतभेदान्प्रवक्ष्यामि यैयैश्चापराधितो हरिः। जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥१॥

सुशोभित होते हैं ॥८८॥ उनके केश रात्रि के समान काले हैं और उनके ओष्ठ विद्रुमके (मूँगा) के समान आकार वाले हैं। हे पुत्र! भगवान् पुण्डरीकाक्ष किरीट के द्वारा सुशोभित होते हैं ॥८९॥ जनार्दन भगवान् केशव विशाल रूप से तथा अपनी सुन्दर कान्ति से तथा कौस्तुभ मणि के द्वारा शोभते हैं ॥९०॥ वे दोनों कुण्डलों के द्वारा सूर्य के तेज के समान प्रतीत होते हैं। श्रीहरि श्रीवत्साङ्क चिह्न के द्वारा सदैव सुशोभित होते हैं ॥९१॥ तारों के समान देदीप्यमान केयूर, कंकण, तथा मोती के हार से विजयी पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् अपने शरीर से सुशोभित होते हैं ॥९२॥ भगवान् गोविन्द सुवर्ण के समान पीताम्बर के द्वारा देदीप्यमान रहते हैं। वे रत्नजटित मुद्रिकाओं वाली अङ्गुलियों से विराजते हैं ॥९३॥ समस्त आयुधों तथा सम्पूर्ण दिव्य आभरणों से युक्त जगत्कर्ता श्रीहरि गरुड़ पर बैठे रहते हैं ॥९४॥ इस प्रकार से जो मनुष्य अनन्यमना होकर श्रीहरि का ध्यान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥९५॥ इस तरह से मैंने जगत्पति भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण ध्यान को मैंने तुम्हें बतलाया। अब मैं तुम्हें सभी पापों को विनष्ट करने वाले व्रत को भी बतलाऊँगा ॥९६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८६॥

अशून्य शयन व्रत का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— जिन सबों से भगवान् श्रीहरि की आराधना की जाती है उन व्रतों का मैं वर्णन कर रहा हूँ। हे पुत्र! एकादशी के अनेक भेद हैं। जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी ॥१॥ त्रिस्पृशा,

त्रिस्पृशा वञ्जुली चान्या तिलदग्धा तथापरा ।
अखण्डाचारकन्या च मनोरथा सुपुत्रक ॥२॥
दिव्यप्रभावाःसन्त्यन्यास्तिथयःपुत्रपौत्रदाः । अशून्यशयनं चान्यज्जन्माष्टमी महाव्रतम् ॥३॥
एतैर्व्रतैर्महापुण्यैःपापं दूरं प्रयाति च। प्राणिनां नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥४॥
स्तोत्रं तस्य प्रवक्ष्यामि पापराशिं विनाशकम् ।
सुपुत्र शतनामाख्यं नराणां गतिदायकम् ॥५॥
तस्य देवस्य कृष्णस्य शतनामाख्यमुत्तमम्। सम्प्रत्येव प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व सुतोत्तम॥६॥
विष्णोर्नामशतस्यापि ऋषिं छन्दो वदाम्यहम् ।
देवं चैव महाभाग सर्वपाप विशोधनम् ॥७॥
विष्णोर्नामशतस्यापि ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः। विष्णुस्तु देवताप्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्तथैव च ॥
सर्वकामिक संसिद्ध्यै मोक्षे च विनियोगकः ॥८॥
नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम् ॥९॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं ततः। विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वाधारं सुरार्चितम्॥१०॥
अनघं त्वघहन्तारं नरसिंहं श्रियःप्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥११॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम् । सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वदं सर्वनायकम्॥१२॥
हरिं मुररिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञाननायकम्॥१३॥
अच्युतं सबलं चन्द्रं चक्रपाणिं परावरम् । युगाधरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम् ॥१४॥

वंजुली, तिलदग्धा, अखण्डाचारकन्या तथा मनोरथा अशून्य शयन व्रत तथा महाव्रत जन्माष्टमी ॥२-३॥ इन अत्यन्त पवित्र व्रतों से प्राणियों का पाप दूर भाग जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥४॥ **कुञ्जल ने कहा—** श्रीभगवान् के मैं उन स्तोत्रों को बतलाता हूँ जो पाप समूह को विनष्ट कर देते हैं। हे पुत्र ! शतनाम स्तोत्र मनुष्यों को सुगति प्रदान करने वाला है । इसमें भगवान् के उत्तम सौ नामों का वर्णन है । हे पुत्र ! मैं उसका वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनो ॥५-६॥ भगवान् विष्णु के शतनाम स्तोत्र के ऋषि और छन्द को मैं बतलाता हूँ । इस स्तोत्र के देवता सभी पापों को विनष्ट करने वाले हैं ॥७॥ श्रीविष्णु शतनाम स्तोत्र के ऋषि ब्रह्माजी हैं । इसके देवता ओङ्कार हैं तथा इसका अनुष्टुप् छन्द है । इस स्तोत्र का विनियोग सभी कामनाओं की पूर्ति तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है ॥८॥ मैं हृषीकेश, केशव तथा मधुसूदन भगवान् को नमस्कार करता हूँ । सभी दैत्यों को मारने वाले अनामय नारायण ॥९॥ जयन्त, विजय, कृष्ण, अनन्त, वामन, विष्णु, विश्वेश्वर, पवित्र तथा देवताओं द्वारा पूजित विश्वाधार भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥ अनघत्व, अनघ, अघ का विनाश करने वाले, नरसिंह, लक्ष्मीपति, श्रीपति, श्रीधर, श्रीद, श्रीनिवास तथा महोदय भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥११॥ श्रीराम, माधव, मोक्ष, क्षमा स्वरूप, जनार्दन भगवान् को नमस्कार है । सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वद तथा सर्वनायक भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१२॥ श्रीहरि, मुरारि, गोविन्द, पद्मनाभ, प्रजापति, आनन्दा, ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानद तथा ज्ञान नायक

मुकुन्दं तं सुवैकुण्ठमेकरूपं जगत्पतिम्। वासुदेवं महात्मानं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥१५॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्द्धनम्। यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥१६॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। अव्यक्तं तं महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम् ॥१७॥
पुरुषं पुष्काराक्षं तु वराहं धरणीधरम् । प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासं व्यालमहेश्वरम् ॥१८॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं मोक्षं च परमेश्वरम्। योगरूपं महाज्ञानं योगिनां गतिदं प्रियम्॥१९॥
मुरारिं लोकपालं तं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाभुजम्॥२०॥
नमामि निश्चलं नित्यं मनोवाक्काय कर्मभिः ॥२१॥

नाम्नां शतेनापि सुपुण्य कर्ता यःस्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण ।
सयाति लोकं मधुसूदनस्य विहाय लोकनिहपुण्यपूतः ॥२२॥

नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनन्। जपेदनन्यमनसा ध्यायेद्ध्यान समन्वितम्॥२३॥
नित्यमेव नरःपुण्यैर्गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरोभूत्वा समाहितमना जपेत् ॥२४॥
त्रिकालं च जपेन्मर्त्यो नियतो नियमेस्थितः। अश्वमेधफलं तस्य जायते नात्रसंशयः ॥२५॥
एकादश्यामुपोष्यैव पुरतो माधवस्य यः। जागरे प्रजपेन्मर्त्यस्तस्यपुण्यं वदाम्यहम् ॥२६॥
पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः। तुलसी सन्निधौ स्थित्वा मनसा यो जपेन्नरः ॥२७॥
राजसूय फलं भुङ्क्ते वर्षेणापि च मानवः। शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावतीशिला॥२८॥

भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१३॥ अच्युत, सबल, चन्द्र, चक्रपाणि, परावर, युगाधार, जगद्योनि, ब्रह्मरूप तथा महेश्वर भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ मुकुन्द, वैकुण्ठ, एकरूप, जगत्पति, महात्मा वासुदेव, ब्रह्मण्य तथा ब्राह्मणप्रिय भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५॥ गोप्रिय, गोहित, यज्ञ, यज्ञांग, यज्ञवर्द्धन, यज्ञभोक्ता, वेदवेदाङ्गपारंगत, भगवान् को नमस्कार है ॥१६॥ वेदज्ञ, वेदरूप, विद्यावास, सुरेश्वर, अव्यक्त, महाहंस, शङ्खपाणि और पुरातन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७॥ पुरुष, पुष्कराक्ष, वाराह, धरणीधर, प्रद्युम्न, कामपाल, व्यास, व्याल और महेश्वर भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ सर्वसौख्य महासौख्य मोक्ष तथा परमेश्वर, योगरूप, महाज्ञानं तथा योगियों को प्रिय गति प्रदान करने वाले भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१९॥ सुरारि, लोकपाल, पद्महस्त, गदाधर, गुहावास, सर्ववास, पुण्यवास तथा महाभुज भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥ जो व्यक्ति अपने मन को स्थिर करके इन सौ नामों के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करता है वह इस लोक में ही पुण्य से पवित्र होकर भगवान् मधुसूदन के लोक में जाता है ॥२१-२२॥ यह शतनाम स्तोत्र महापुण्यमय तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । इसका अनन्यमना होकर जप करना चाहिए और सावधानी पूर्वक ध्यान करना चाहिए ॥२३॥ ऐसा करने वाला मनुष्य नित्य ही अपने पुण्यों के द्वारा गङ्गा स्नान के फल को प्राप्त करता है । अतएव सुस्थिर होकर समाहित मन से इस स्तोत्र का जप करना चाहिए ॥२४॥ मनुष्य को इसका तीनों कालों में सदा जप करना चाहिए और उसे निश्चित रूप से नियम का पालन करना चाहिए । ऐसा करने वाले को अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं हैं ॥२५॥ जो मनुष्य एकादशी तिथि को उपवास करके भगवान् मधुसूदन के समय रात्रि में जागरण करके इस स्तोत्र का जप करता है मैं उसको प्राप्त होने वाले फल को बतलाता हूँ ॥२६॥ उस मनुष्य को पुण्डरीक यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है । तुलसी वृक्ष के सन्निकट स्थित रहकर जो इस स्तोत्र का पाठ मन से करता है, वह राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता

उभयोः सन्निधौ जाप्यं कर्त्तव्यं सुखमिच्छता ।
बहुसौख्यं प्रभुक्त्वैव कुलानां शतमेव च ।।२९।।
एकेनवाधिकं मर्त्य आत्मना सह तारयेत्। कार्तिके स्नानकर्ता यःपूजयेन्मधुसूदनम् ।।३०।।
यःपठेत्प्रयतःस्तोत्रं प्रयाति परमां गतिम्। माघस्नायी हरिं पूज्य भक्त्या च मधुसूदनम् ।।३१।।
ध्यायेच्चैव हृषीकेशं जपेद्वाथ शृणोति वा। सुरापानादिकं पापं विहाय परमं पदम्।।३२।।
विना विघ्नं नरः पुत्र सम्प्रयाति जनार्दनम्। श्राद्धकाले हि यो मर्त्यो विप्राणां भुञ्जतां पुरः।।३३।।
यो जपेच्च शतंनाम्नां स्तोत्रं पातकनाशनम्। पितरस्तुष्टिमायान्ति तृप्तायान्ति परां गतिम् ।।३४।।
ब्राह्मणो वेदविद्वान्स्यात्क्षत्रियोविन्दते महीम्। धनऋद्धिं प्रभुञ्जीत वैश्यो जपतियःसदा ।।३५।।
शूद्रःसुखं प्रभुङ्क्तेऽथ ब्राह्मणत्वं च गच्छति। प्राप्यजन्मान्तरं वत्स वेदविद्यां प्रविन्दति ।।३६।।
सुखदं मोक्षदं स्तोत्रं जप्तव्यं च न संशयः। केशवस्य प्रसादेन सर्वसिद्धो भवेन्नरः ।।३७।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थवर्णने च्यवनचरित्रे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

है । जहाँ पर शालग्राम शिला रहती है तथा जहाँ पर गोमती चक्र रहता है ।।२७-२८।। उन दोनों के सन्निकट में सुख चाहने वाले को इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य बहुत अधिक सुख का भोग करके अपना तथा अपने एक सौ एक पूर्वजों का उद्धार कर देता है ।।२९।। कार्तिक के महीनें में प्रातःकाल स्नान करके जो भगवान् मधुसूदन की पूजा करता है ।।३०।। और नियम पूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । माघ के महीने में स्नान करके भक्तिपूर्वक श्रीहरि मधुसूदन की पूजा करके ।।३१।। जो भगवान् हृषीकेश का ध्यान करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह मदिरापान जन्य पाप विनष्ट करके परम पद को ।।३२।। बिना किसी विघ्न के प्राप्त कर लेता है तथा भगवान् जनार्दन को प्राप्त करता है । श्राद्ध के समय भोजन करने वाले ब्राह्मणों के समक्ष जो इस पाप नाशक स्तोत्र का पाठ करता है ।।३३।। उसके पितृगण तुष्ट हो जाते हैं और तुष्ट होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ।।३४।। इस स्तोत्र का सदा जप करने वाला ब्राह्मण वेद का विद्वान् हो जाता है, क्षत्रिय पृथिवी को प्राप्त करता है, तथा वैश्य धन की समृद्धि का उपभोग करता है ।।३५।। शूद्र सुख का उपभोग करता है तथा ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है । हे वत्स ! वह दूसरे जन्म को प्राप्त करके वेद विद्या को प्राप्त करता है ।।३६।। इस सुखद तथा मोक्ष प्रदान करने वाले स्तोत्र का अवश्य जप करना चाहिए भगवान् केशव की कृपा से इसका जप करने वाला मनुष्य सर्वसिद्ध हो जाता है ।।३७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत सत्तासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधरचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८७।।

अट्ठासीवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

व्रतं स्तोत्रं महाज्ञानं ध्यानंचैव सुपुत्रक । मया ख्यातं तवाग्रे वै विष्णोःपापप्रणाशनम् ॥१॥
एवं चतुष्टयं सा हि यदापुण्यं समाचरेत् । प्रयाति वैष्णवं लोकं देवानामपि दुर्लभम् ॥२॥
इतो गत्वा व्रतं वत्स दिव्यादेवीं प्रबोधय । अशून्यशयनं नाम व्रतराजं वदस्व ताम्॥३॥
समुद्धर महापापाद्राजकन्यां यशस्विनीम् । त्वया पृष्टं मया ख्यातं पुण्यदं पापनाशनम् ॥४॥
गच्छ गच्छ महाभाग इत्युक्त्वा विरराम सः ॥५॥

श्रीविष्णुरुवाच

उज्जलोऽप्येव मुक्तस्तु स पित्रा कुञ्जलेन हि ।
प्रणम्य पादौ धर्मात्मा मातापित्रोर्महामतिः ॥६॥
जगाम त्वरितो राजन्प्लक्षद्वीपं स उज्जवलः ।
तं गिरिं सर्वतोभद्रं नानाधातु समाकुलम् ॥७॥

नानारत्नमयैस्तुङ्गैःशिखरैरुपशोभितम् । नानाप्रवाह सम्पूर्णैरुदकैरुज्ज्वलैर्नृप॥८॥
नद्यःसन्ति स्वच्छनीरास्तस्मिन्गिरिवरोत्तमे । किन्नरास्तत्र गायन्ति गन्धर्वाःसुस्वरैर्नृप ॥९॥
अप्सरोभिःसमाकीर्णं देववृन्दैरुपावृतम् । सिद्धचारणसङ्घुष्टं मुनिवृन्दैरलङ्कृतम् ॥१०॥
नानापक्षिनिनादैश्च सर्वत्र परिनादितम् । एवं गिरिं समासाद्य उज्ज्वलोऽलघुविक्रमः॥११॥

प्लक्ष द्वीप में जाकर उज्ज्वल द्वारा दिव्यादेवी को व्रत और स्तोत्र का उपदेश

कुञ्जल ने कहा— हे पुत्र ! मैंने तुम्हें भगवान् विष्णु का व्रत, स्तोत्र, महाज्ञान तथा ध्यान को बतलाया, ये पापों का प्रणाश करने वाले हैं ॥१॥ इस तरह से जब वह (दिव्यादेवी) इन चारो पुण्यों को करेगी तो वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ भगवान् विष्णु के लोक में जायेगी ॥२॥ हे वत्स ! यहाँ से जाकर तुम दिव्यादेवी को इस व्रत को बतलाओ । उसको तुम अशून्यशयन नामक व्रतराज को बतलाओ॥३॥ तुम यशस्विनी राजकन्या का महापाप से उद्धार करो । तुमने जो पूछा वह मैंने पुण्य प्रदान करने वाले और पापों का विनाश करने वाले उपाय का वर्णन किया ॥४॥ हे महाभाग ! तुम अवश्य जाओ, इस बात को कहकर कुञ्जल चुप हो गये । **श्रीविष्णु भगवान् ने राजा वेन से कहा—** अपने पिता कुञ्जल के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर महामति उज्ज्वल भी ॥५॥ माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके शीघ्र ही प्लक्ष द्वीप में चला गया ॥६॥ वह उस पर्वत पर गया जहाँ पर वह कन्या रो रही थी । वह पर्वत हर तरह से सुन्दर था । और वह अनेक प्रकार के धातुओं से भरा हुआ था । वह अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त उन्नत शिखरों से सुशोभित था । हे राजन् वेन ! वहाँ पर अनेक प्रकार के स्वच्छ झरने प्रवाहित होते थे । उस श्रेष्ठ पर्वत स्वच्छ जलों वाली अनेक नदियाँ प्रवाहित होती थीं । हे राजन् ! वहाँ पर सुन्दर स्वर से किन्नर और गन्धर्व गीत गाते रहते थे । वहाँ पर अप्सराएँ रहती थीं तथा देवताओं का समूह वहाँ निवास करता था । वहाँ सिद्ध तथा चारणगण घोष करते रहते थे तथा मुनि समूह से अलंकृत था । वह सर्वत्र अनेक प्रकार के निनादों से निनादित था । इस प्रकार के पर्वत पर पराक्रमशाली उज्ज्वल आया । वहीं पर वह राज कन्या रोती

सुस्वरेणापि सा कन्या गिरौ तस्मिन्प्ररोदिति ।
रोरूयमाणां स प्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत् ॥१२॥
का त्वं भवसि कल्याणि कस्माद्रोदिषि साम्प्रतम् ।
कमाश्रिता महाभागे केन ते विप्रियं कृतम्। समाचक्ष्व ममाद्यैव सर्वदुःखस्य कारणम्॥१३॥
विपाको हि महाभाग कर्मणां मम साम्प्रतम् ।
इह तिष्ठामि दुःखेन वैधव्येन समन्विता ॥१४॥
भवान्को हि महाभाग कृपया मम पीडितः। पक्षिरूपधरो वत्स सोत्सवं परिभाषते॥१५॥
एवमाकर्ण्य तत्सर्वं भाषितं राजकन्यया। अहं पक्षी महाभागे कृपया तव पीडितः ॥१६॥
पक्षिरूपधरो भद्रे नाहं सिद्धो न ज्ञानवान्। रुदमानां महालापैर्भवतींदृष्टवानिह ॥१७॥
ततःपृच्छाम्यहं देवि वद मे कारणंत्विह। पितुर्गेहे यथावृत्तमात्मवृत्तान्तमेव हि ॥१८॥
तया निवेदितं सर्वं यथासङ्ख्येन दुःखदम्। समासेन समाकर्ण्य उज्ज्वलस्तु महामनाः ॥१९॥
तामुवाच महापक्षी दिव्यादेवीं सुदुःखिताम्। यथा विवाहकाले ते भर्तारो मरणं गताः॥२०॥
स्वयंवर निमित्तं ते क्षयं याताश्च क्षत्रियाः। एतत्ते चेष्टितं सर्वं मया पितरि भाषितम्॥२१॥
अन्यजन्मकृतं कर्म तव पापं सुलोचने। मम पित्रा ममाग्रे तु कृपया परिभाषिताम्॥२२॥
तेन दोषेण सम्पुष्टा लिप्ता जाता वरानने। एतावत्कारणं सर्वं तातेन परिभाषितम्॥२३॥
पूर्वकर्म विपाकं तु भुङ्क्ष्व त्वं च समाश्व स ।
एवं सा भाषितं तस्य श्रुत्वा कन्योज्ज्वलस्य तत् ॥२४॥
प्रत्युवाच महात्मानं ब्रुवन्तं पक्षिणं पुनः। प्रणता दीनया वाचा कुरु पक्षिन्कृपां मम॥२५॥

थी ॥७-११॥ रोती हुयी उससे उज्ज्वल ने कहा— हे कल्याणि ! तुम कौन हो और किस कारण से रोती हो ?॥१२॥ हे महाभागे ! तुम किसके आश्रय में हो ? किसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? तुम आज अपने समस्त दुःखों का कारण बतलाओ ॥१३॥ **दिव्या देवी ने कहा**— हे महाभाग ! मेरे कर्मों का परिणाम इस समय दुःखद वैधव्य के रूप में मुझे प्राप्त हो रहा है । यहाँ पर मैं वैधव्य दुःख से दुःखी होकर निवास करती हूँ । हे महाभाग ! आप कौन है ? जो मेरे दुःख से दुःखी हो गये हैं ? हे वत्स ! पक्षी का रूप धारण करके आप उत्सव पूर्वक बातें करते हैं ॥१४-१५॥ इस तरह से राजकन्या की बातों को सुनकर **उज्ज्वल ने कहा**— हे महाभागे ! मैं पक्षी हूँ और तुम्हारे दुःख से दुःखी हूँ ॥१६॥ हे भद्रे ! पक्षी का रूप धारण किए हुए न तो कोई सिद्ध हूँ और न ज्ञानी हूँ । मैंने आपको जोर-जोर से रोती हुयी देखा ॥१७॥ इसीलिए मैं आपसे पूछता हूँ कि आप अपने रोने का कारण बतलायें ॥१८॥ उसके बाद उस देवी ने उस सम्पूर्ण दुःखद वृत्तान्त को क्रमशः सुनाया । उसको संक्षेप में सुनकर महामना उज्ज्वल ने ॥१९॥ उस अत्यन्त दुःख दिव्या देवी से कहा— जिस तरह विवाह के समय तुम्हारे पति मरे तथा स्वयम्बर के कारण जैसे वे क्षत्रियगण मरे, आपकी इन सभी चेष्टाओं को मैंने अपने पिताजी को सुनाया ॥२०-२१॥ हे भद्रे ! आपने अपने पूर्व जन्म में जिन पापों को किया है उन सबों को उन्होंने मुझे बतलाया ॥२२॥ हे वरानने ! उसी पाप के कारण आप इस जन्म को ग्रहण की, उन सभी कारणों को मेरे पिता ने बतलाया ॥२३॥ तुम धैर्य धारण करो और पूर्वजन्म के किए कर्मों के फलों को भोगो । उज्ज्वल की वाणी को सुनकर उस कन्या

कथयस्व प्रसादेन तस्य पापस्य निष्कृतिम्। प्रायश्चित्तं सुपुण्यं च मम पातक शोधनम् ॥२६॥
येन व्रजाम्यहं पुण्यं विशुद्धा धौतकल्मषा। प्रायश्चितं महाभाग वद मे त्वं प्रसादतः ॥२७॥

उज्ज्वल उवाच

तवार्थं तु महाभागे पितरं पृष्टवानहम्। समाख्यातमतःपित्रा प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥२८॥
तत्त्वं कुरु महाभागे सर्वपातकशोधनम्। ध्यायस्व हि हृषीकेशं शतनाम जपस्व च ॥२९॥
भव ज्ञानपरा नित्यं कुरु व्रतमनुत्तमम्। अशून्यशयनं पुण्यं व्रतं पाप प्रणाशकम् ॥३०॥
समाचष्ट सधर्मात्मा सर्वज्ञानप्रकाशकम्। ज्ञानस्तोत्रं व्रतं ध्यानं विष्णोश्चैव महात्मनः ॥३१॥

विष्णुरुवाच

तस्मात्सा हि प्रजग्राह संस्थिता निर्जने वने। सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्ता सञ्जाता तपसि स्थिता॥३२॥
व्रतं चक्रे जिताहारा निराधारा सुदुःखिता। कामक्रोधविहीना सा वर्गसंयम्य नित्यशः ॥३३॥
इन्द्रियाणां महाराजा महामोहं निरस्य सा। अब्दे चतुर्थकेप्राप्ते सुप्रसन्नो जनार्दनः ॥३४॥
तस्यै वरं दातुकामश्चायातो वरनायकः। तस्यै सन्दर्शयामास स्वरूपं वरदःप्रभुः ॥३५॥
इन्द्रनील घनश्याम शङ्खचक्रगदाधरम्। सर्वाभरणशोभाढ्यं पद्महस्तं महेश्वरम्॥३६॥
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा वेपमाना निराश्रया। उवाच गद्गदैर्वाक्यैः प्रणता मधुसूदनम् ॥३७॥
तेजसा तव दिव्येन स्थातुं शक्नोमि नैव हि। दिव्यरूपो भवेःकस्त्वं कृपया मम चाग्रतः ॥३८॥

ने ॥२४॥ उन महात्मा पक्षी से कहा— उसने प्रणत होकर दीन वाणी से कहा— हे पक्षी ! मेरे ऊपर आप कृपा कीजिए ॥२५॥ आप कृपा करके उस पाप के प्रायश्चित को बतलाइये। आप उस प्रायश्चित को बतलाइये जिससे कि मेरे पाप का शोधन हो जाय ॥२६॥ जिससे पापों का प्रक्षालन करके मैं विशुद्ध हो जाऊँ। आप कृपा करके मुझे उस प्रायश्चित को बतलाइयें ॥२७॥ **उज्ज्वल ने कहा—** हे महाभागे ! तुम्हारे ही लिए मैंने अपने पिता से पूछा था और मेरे पिता ने उसका सर्वोत्तम प्रायश्चित भी बतलाया ॥२८॥ हे महाभागे ! तुम उन समस्त पापों को विनष्ट करने वाले उस प्रायश्चित को करो। तुम भगवान् हृषीकेश का ध्यान करो तथा विष्णु शतनाम स्तोत्र का पाठ करो ॥२९॥ सदा ज्ञानवान् बने रहे और उस सवोत्तम व्रत को करो। अशून्यशयन नामक व्रत सभी पापों को नष्ट करने वाला है ॥३०॥ इस तरह से उस धर्मात्मा ने सभी ज्ञानों के प्रकाशक ज्ञान, भगवान् विष्णु के स्तोत्र, व्रत और ध्यान को बतलाया ॥३१॥ **विष्णु भगवान् ने राजा वेन से कहा—** उससे उस बात को सुनकर दिव्या ने उसे ग्रहण किया और उस निर्जन वन में स्थित रही। तपस्या में संलग्न वह सभी द्वन्दों से मुक्त हो गयी ॥३२॥ उसने आहार पर संयम रखकर तथा निराहार रहकर व्रत को किया। अपनी इन्द्रियों को संयमित करके वह सदा काम तथा क्रोध से रहित हो गयी ॥३३॥ हे महाराज ! वह इन्द्रियों के महामोह को दूर कर दी थी। चौथे वर्ष के आने पर उस पर भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो गये ॥३४॥ वे भगवान् उस दिव्यादेवी को ही वरदान देने की इच्छा से आये। वरदान देने वाले श्रीहरि उसे अपने स्वरूप का दर्शन कराये ॥३५॥ **सूतजी ने कहा—** इन्द्र नीलमणि तथा मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले, समस्त आभूषणों की शोभा से सम्पन्न कमल धारण किए हुए ॥३६॥ आश्रय विहीन, काँपती हुयी तथा हाथ जोड़े हुए दिव्यादेवी ने महेश्वर भगवान् मधुसूदन से कही ॥३७॥ हे भगवन् ! मैं आपके दिव्य तेज के कारण स्थिर नहीं रह सकती हूँ मेरे

कथयस्व प्रसादेन किमत्र तव कारणम्। सर्वमेव प्रसादेन प्रब्रवीहि महामते ॥३९॥
देवमेवं विजानामि तेजसा इङ्गीतैस्तव। ज्ञानहीना जगन्नाथ न जाने रूपनामनी ॥४०॥
किं ब्रह्मा वा भवान्विष्णु:किं वा शङ्कर एव हि।
एवमुक्त्वा प्रणम्यैव दण्डवद्धरणीं गता ॥४१॥
तामुवाच जगन्नाथ:प्रणतां राजनन्दिनीम् ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

त्रयाणामपि देवानामन्तरं नास्ति शोभने। ब्रह्मा समर्चितो येन शङ्करो वा वरानने॥४३॥
तेनाहमर्चितो नित्यं नात्र कार्या विचारणा। एतौ ममाभिन्नतरौ नित्यं चापि त्रिरूपवान् ॥४४॥
अहं हि पूजितो यैश्च तावेतौ तै:सुपूजितौ। अहं देवो हृषीकेश:कृपया तव चागत: ॥४५॥
स्तवेनानेन पुण्येन व्रतेन नियमेन च। सञ्जाता कल्मषैर्हीना वरं वरय शोभने ॥४६॥

दिव्यादेव्युवाच

विजयस्व हृषीकेश कृष्ण क्लेशापहारक। नामामि चरणद्वन्दं मामुद्धर सुरेश्वर ॥४७॥
वरं मे दातुकामोऽसि चक्रपाणे प्रसीद मे। आत्मपादयुगस्यापि भक्तिं देहि ममानघ ॥४८॥
दर्शयस्व जगन्नाथ मोक्षमार्गं निरामयम्। दासत्वं देहि वैकुण्ठ यदि तुष्टो जनार्दन॥४९॥

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु महाभागे गच्छ निर्धूतकल्मषा। वैष्णवं परमं लोकं दुर्लभं योगिभि:सदा॥५०॥

सामने दिव्य रूप धारण करने वाले आप कौन हैं ?॥३८॥ आप कृपा करके मुझे बतलाइये, आपका यहाँ कौन सा प्रयोजन है ? हे महामते ! आप इन सारी बातों को कृपा करके बतलायें ॥३९॥ आपकी चेष्टाओं को देखकर मैं आपको देवता मानती हूँ। हे जगन्नाथ ! मैं अज्ञानी हूँ, आपके रूप और नाम को मैं नहीं जानती हूँ ॥४०॥ आप क्या ब्रह्मा हैं ? या विष्णु हैं ? शङ्कर हैं ? इस तरह से कहकर वह पृथिवी पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम की ॥४१॥ उस शरणागत राजकुमारी से जगत् के स्वामी ने कहा **श्रीभगवान् ने कहा—** हे शोभने ! तीनों देवों में कोई भी अन्तर नहीं है ॥४२॥ हे वरानने ! जिसने ब्रह्माजी अथवा शङ्करजी की पूजा की है, उसके द्वारा मैं सदा पूजित होता हूँ। इसके विषय में कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥४३॥ ये दोनों मुझसे अत्यन्त अभिन्न हैं। मैं सदैव तीनों रूपों वाला हूँ। जिन लोगों ने मेरी पूजा की है, उसके द्वारा भी ये दोनों पूजित हो जाते हैं ॥४४॥ मैं हृषीकेश नामक देव हूँ, तुम पर कृपा करने के लिए आया हूँ। इस पवित्र स्तोत्र, व्रत तथा नियम का पालन करने के कारण तुम निष्पाप हो गयी हो। हे शोभने ! तुम वरदान माँगो। **दिव्यादेवी ने कहा—** हे क्लेशों को दूर करने वाले कृष्ण, हे हृषीकेश ! आपकी जय हो ॥४५-४६॥ हे सुरेश्वर ! मैं आपके दोनों चरणों में प्रणाम करती हूँ। आप मेरा उद्धार करें। हे चक्रपाणे प्रभो ! आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो आप मुझ पर प्रसन्न होएँ ॥४७॥ हे अनघ ! आप मुझे अपने चरणयुगल की भक्ति प्रदान करें। हे जगन्नाथ ! आप मुझे निरामय मोक्षमार्ग को दिखाएँ ॥४८॥ हे जनार्दन ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी दासता प्रदान करें। श्रीभगवान् ने कहा— हे महाभागे ! ऐसा ही हो, पापों से रहित तुम योगियों के भी लिए दुर्लभ श्रीविष्णु लोक में जाओ। तुम मेरे कृपा से सर्वश्रेष्ठ लोक में जाओ ॥४९-५०॥ श्रीभगवान् के इस तरह से कहते ही दिव्यादेवी दिव्य हो गयी। उसकी

गच्छ गच्छ परं लोकं प्रसादान्मम साम्प्रतम् ।
एवमुक्ते ततो वाक्ये माधवेन महात्मना ॥५१॥
दिव्यादेवी अभूद्दिव्या सूर्यतेजःसमप्रभा। पश्यतां सर्वलोकानां दिव्याभरणभूषिता ॥५२॥
दिव्यमालान्विता सा च दिव्यहाराविम्बिनी। गता सा वैष्णवं लोकं दाहप्रलयवर्जितम् ॥५३॥
पुनःपक्षी समायातःस्वगृहं हर्षसंयुतः। तत्सर्वं कथयामास पितरं प्रति सत्तमः ॥५४॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थच्यवनचरित्रेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

नवासीवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

कुञ्जलस्तु सुतं वाक्यं समुज्ज्वलमथाब्रवीत्। भवान्कथय भोःपुत्र किमपूर्वं तु दृष्टवान् ॥१॥
तन्मे कथय सुप्रीतःश्रोतुकामोऽस्मि साम्प्रतम् ।
एवमादिश्य तं पुत्रं विरराम सकुञ्जलः ॥२॥
पितरं प्रत्युवाचाथ विनयावनतस्सुतः ॥३॥

समुज्ज्वल उवाच

हिमवन्तं नगश्रेष्ठं देववृन्दसमन्वितम्। आहारार्थं प्रगच्छामि भवतश्चात्मनःपितः ॥४॥

कान्ति सूर्य की कान्ति के समान हो गयी ॥५१॥ सबालोगों की आँखों के सामने ही वह दिव्य आभरणों से भूषित दिव्य माला तथा दिव्य हार से समलंकृत हो गयी ॥५२॥ वह दाह तथा प्रलय से रहित श्रीविष्णुलोक में चली गयी। उसके बाद वह पक्षी (उज्ज्वल) हर्षित होकर अपने स्थान पर आ गया ॥५३॥ उसने सारा वृत्तान्त अपने पिता को सुनाया ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत अट्ठासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८८॥

समुज्ज्वल द्वारा नर्मदा के तट पर कृष्ण हंसों की कथा का वर्णन

श्रीभगवान् विष्णु ने वेन से कहा— अपने पुत्र की बातों को सुनकर कुञ्जल ने अपने समुज्ज्वल नामक पुत्र से कहा— हे पुत्र ! तुम बतलाओ कि तुमने क्या अपूर्व देखा ?॥१॥ तुम प्रसन्नता पूर्वक उसे मुझे सुनाओ, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। इस तरह से उस पुत्र को आदेश देकर कुञ्जल चुप हो गया ॥२॥ उसके बाद विनयावनत उस समुज्ज्वल नामक पुत्र ने अपने पिता से कहा **समुज्ज्वल ने कहा—** देवसमूह से युक्त हिमवान् नामक पर्वत है ॥३॥ हे पितः ! मैं आपके और अपने आहार के लिए वहाँ गया था। वहाँ पर मैंने एक ऐसा कौतुक देखा जो मैंने तो कभी देखा न था और न सुना था ॥४॥ वह प्रदेश ऋषिसमूह

पश्यामि कौतुकं तत्र न दृष्टं न श्रुतं पुरा । प्रदेशमृषिभिः कीर्णमप्सरोभिः प्रशोभितम् ॥५॥
बहुकौतुकशोभाढ्यं मङ्गल्यं मङ्गलैर्युतम् । बहुपुण्यफलोपेतैर्वनैर्नानाविधैस्ततः ॥६॥
अनेक कौतुकभरैर्मनसः परिमोहनम् । तत्र दृष्टं मया तात अपूर्वं मानसान्तिके ॥७॥
बहुहंसैः समाकीर्णो हंस एकः समागतः । स च कृष्णो महाभाग त्रयोऽप्यन्ये समागताः ॥८॥
सितेतरैश्च चञ्चुपादैरन्यतः शुक्लविग्रहाः । तादृशास्ते च नीला वै अन्ये शुभ्रा महामते ॥९॥
चतस्त्रस्तत्र वै नार्यो रौद्राकारा विभीषणाः । दंष्ट्राकरालसङ्क्रूरा ऊर्ध्वकेश्यो भयानकाः ॥१०॥
पश्चात्तास्तु समायातास्तस्मिन्सरसि मानसे । कृष्णाहंसास्तु संस्नाता मानसे तात मत्पुरः ॥११॥
विभ्रान्ताः परितश्चान्ये न स्नातास्तत्र मानसे। कृष्णान्हंसास्तु संस्नाताञ्जहसुस्ताः स्त्रियस्तदा ॥१२॥
तस्मात्तडागान्निष्कान्ता हंस एको महातनुः । पश्चात्त्रयो विनिष्क्रान्तास्तैश्चाहं समुपेक्षितः ॥१३॥
याताः आकाशमार्गेण विवदन्तः परस्परम् । तास्तु स्त्रियो महाभीमाः समन्तात्परिबभ्रमुः ॥१४॥

विन्ध्यस्य शिखरे पुण्ये वृक्षच्छाया सुपक्षिणः ।
निषण्णास्तत्र ते सर्वे दग्धादुःखैः सुदारुणैः ॥१५॥

तेषां सुवीक्षमाणानां भिल्ल एकः समागतः । मृगान्सपीडयित्वा तु बाणपाणिर्धनुर्द्धरः ॥१६॥
शिलातलं समाश्रित्य निषसाद सुखेन वै । पश्चाद्भिल्ली समायाता अन्नमादाय सोदकम् ॥१७॥
स्वयं प्रियं वीक्षते राज्ञा मुदितैर्लक्षणैर्युतम् । अन्यादृशं समावीक्ष्य स्वकान्तं तेजसा वृतम् ॥१८॥

दिव्यतेजः समाक्रान्तं यथासूर्यः दिवि स्थितम् ।
नरमन्यं परिज्ञाय तं परित्यज्य सा ययौ ॥१९॥

से तथा अप्सराओं से सुशोभित है । अनेक प्रकार के कौतुक की शोभा से परिपूर्ण, मङ्गलमय मङ्गलों से युक्त है ॥५॥ वह अनेक प्रकार के फलों से युक्त अनेक प्रकार के वनों से युक्त है अनेक प्रकार के कौतुक समूह से वह मन को मोहित करने वाला है ॥६॥ हे तात ! वहाँ पर मैंने मान सरोवर के सन्निकट अपूर्व वस्तु को देखा । वहाँ पर अनेक हंसों के साथ एक हंस आया ॥७॥ हे महाभाग ! वहाँ पर दूसरे काले हंस भी आये । उनके चोंच और पैर काले थे । दूसरी ओर से उजले शरीर वाले हंस आये ॥८॥ उसी तरह से नील वर्ण के तथा धवल वर्ण के दूसरे भी हंस आये । वहाँ पर भयङ्कर तथा रौद्र आकार वाली चार नारियाँ थीं ॥९॥ उनके दाँत भयङ्कर थे, केश ऊपर की ओर उठे थे, वे क्रूर आकार वाली भयानक थीं । सबों के बाद वे उस मानसरोवर पर आयीं ॥१०॥ हे तात । मेरे सामने ही काले हंसों ने स्नान किया । किन्तु दूसरे हंसों ने उस मानसरोवर में स्नान नहीं किया ॥११॥ हे तात ! वे स्त्रियाँ भयङ्कर अट्टहास करके हँसने लगीं । उस सरोवर से एक विशालकाय हंस निकला ॥१२॥ उसके बाद तीन और हंस निकले और उन सबों ने उस हंसी उपेक्षा कर दी । वे परस्पर में विवाद करते हुए आकाश मार्ग से चले गये ॥१३॥ वे अत्यन्त भयङ्कर स्त्रियाँ चारों ओर घूम रही थीं । विन्ध्य पर्वत के पवित्र शिखर पर वृक्षों की छाया में बैठे हुए सभी पक्षीगण भयङ्कर दुःखों से दग्ध हो गये । उन सबों के सामने एक भिल्ल आया ॥१४-१५॥ अपने हाथ में धनुष बाण धारण किए हुए वह मृगों को मारकर एक शिला पर आकर सुखपूर्वक बैठ गया॥१६॥ उसके बाद भिल्ल की पत्नी अन्न और जल लेकर आयी । उसने राजाओं के लक्षण से युक्त अपने प्रियतम को देखा ॥१७॥ तेज से युक्त अपने प्रियतम को आकाशस्थित सूर्य के समान दिव्य तेज से

व्याध उवाच

एह्येहि त्वं प्रिये चात्र कस्मान्मां त्वं न पश्यसि ।
क्षुधया पीड्यमानोऽहं त्वामहं चावलोकये ॥२०॥
तस्यवाक्यं समाकर्ण्य शीघ्रं व्याधी समागता ।
भर्तुःपार्श्वं समासाद्य विस्मिता सा भवत्तदा ॥२१॥
कोऽयं तेजःसमाचारो देवोऽयं मां समाह्वयेत् ।
तमुवाच ततो व्याधी भर्तारं दीप्ततेजसम् ॥
अत्र किं ते कृतं वीर भवान्को दिव्यलक्षणः ॥२२॥

समुज्ज्वल उवाच

एवमाभषितो व्याध्या व्याधःप्रियामभाषत। अहं ते वल्लभःकान्ते भवती च मम प्रिया ॥२३॥
कस्मात्त्वं मां न जानासि कथं शङ्का प्रवर्तते ।
क्षुधया पीड्यामानेन पयश्चान्नं प्रतीक्ष्यते ॥२४॥

व्याध्युवाच

बर्बरःकृष्णवर्णश्च रक्ताक्षःकृष्णकञ्चुकः। ईदृशश्चास्ति मे भर्ता सर्वसत्त्वभयङ्करः ॥२५॥
भवान्को दिव्यदेहस्तु प्रियेत्युक्त्वा समाह्वयेत् ।
एष मे संशयो जातो वद सत्यं ममाग्रतः ॥२६॥
कुलं नाम स्वकं ग्रामं क्रीडां लिङ्गं सुतं सुताम् ।
समाचष्ट प्रियाग्रे तु तस्याःप्रत्ययहेतवे ॥२७॥
प्रत्युवाच स्वभर्तारं सा व्याधी हृष्टमानसा। कस्मात्ते ईदृशःकायःश्वेतकञ्चुकधारकः ॥२८॥

युक्त होने के कारण उसे अन्य प्रकार का देखकर वह ॥१८॥ उसको दूसरा पुरुष समझकर उसे छोड़कर चली गयी । **व्याध ने कहा—** हे प्रिये ! तुम आओ, तुम मुझे क्यों नहीं देखती हो ?॥१९॥ मैं भूख से पीड़ित हूँ और तुमको ही देख रहा हूँ । उसकी बातों को सुनकर व्याध की पत्नी शीघ्र आ गयी ॥२०॥ वह अपने पति के पास आकर अत्यन्त अश्चर्यित हुयी । वह सोच रही थी कि तेज से युक्त यह कौन देवता है जो मुझको बुला रहा है ?॥२१॥ उस तेज से देदीप्यमान व्याध से व्याधी ने कहा— हे वीर ! यहाँ आपने क्या किया है ? आप दिव्य दिखायी देते हैं, आप कौन हैं ?॥२२॥ **सूतजी ने कहा—** व्याधी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर व्याध ने उससे कहा— हे प्रिये ! मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम मेरी प्रिया हो ॥२३॥ तुम मुझे क्यों नहीं पहचान रही हो ? क्यों तुम्हें शङ्का हो रही है ? मैं भूख से पीड़ित हूँ, अन्न और जल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ॥२४॥ **व्याधी ने कहा—** मेरे पति तो बर्बर स्वभाव वाले, काले शरीर वाले, लाल आँखों वाले, तथा काले कुर्ते वाले हैं तथा सभी जीवों को भयङ्कर लगने वाले हैं ॥२५॥ दिव्य शरीर वाले आप कौन हैं ? और मुझको प्रिये ! कहकर बुला रहे हैं । यह मुझको संशय है इसे आप मुझे बतलायें॥२६॥ उसको विश्वास दिलाने के लिए उसने अपना कुल, अपना नाम, अपना ग्राम, क्रीड़ा, चिह्न, अपने पुत्र और पुत्री को उसे बतलाया ॥२७॥ इसके बाद प्रसन्न होकर व्याधी ने अपने पति से कहा— तो फिर तुम्हारा शरीर श्वेत कुर्ता धारण करने वाला इस प्रकार का कैसे हो गया ?॥२८॥ यह सब कैसे हो गया ? मुझे

कथं जात:समाचक्ष्व ममाश्चर्यं प्रवर्तते ॥२९॥

समुज्ज्वल उवाच

एवं सम्पृच्छमानस्तु भार्यया मृगघातकः ।
प्रत्युवाच ततः श्रुत्वा तां प्रियां प्रश्रयान्विताम् ॥३०॥
नर्मदा उत्तरे कूले सङ्गमश्चास्ति सुव्रते। आतपेनाकुलो जीवो मम जातोऽति सुप्रिये ॥३१॥
अस्मिन्वै सङ्गमे कान्ते श्रमश्रान्तो हि सत्वरः ।
गत:स्नात्वा जलं पीत्वा पश्चाच्चाहं समागतः ॥३२॥
तदा प्रभृति मे कायः ईदृशस्तेजसा वृतः । सञ्जातो वस्त्र संयुक्तः कञ्चुक:शुभ्रतांगतः ॥३३॥
पूर्वोक्तलिङ्गसंस्थानै:कुलै:स्थानेन वै तथा ।
स्वप्रियं लक्षयित्वा तु ज्ञात्वा पुण्यस्य सम्भवम् ॥३४॥
प्रत्युवाचाथ भर्तारं सङ्गमं मम दर्शय। तव पश्चात्प्रदास्यामि भोजनं पानसंयुतम् ॥३५॥
इत्युक्त:प्रियया व्याध:सत्वरेण जगाम ह । सङ्गमो दर्शितस्तेन ततोऽग्रे पापनाशनः ॥३६॥
समुड्डीना महाभाग पक्षिणो लघु विक्रमाः । तया सार्द्धं ययु:सर्वे रेवासङ्गममुत्तमम्॥३७॥
तेषां तु वीक्षमाणानां पक्षिणां ममपश्यतः ।
तया हि स्नापितो भर्ता पुन:स्नाता हि सा स्वयम् ॥३८॥
दिव्यदेहधरौ चोभौ द्दिव्यकान्तिसमन्वितौ । सञ्जातौ पक्षिणां श्रेष्ठ दिव्यवस्त्रानुलेपनौ॥३९॥
दिव्यमालाम्बरधरौ दिव्यगन्धानुलेपनौ। वैष्णवं यानमासाद्य मुनिगन्धर्व पूजितौ॥४०॥
गतौ तौ वैष्णवं लोकं वैष्णवै:परिपूजितौ। स्तूयमानौ महात्मानौ दम्पती दृष्टवानहम् ॥४१॥

आश्चर्य हो रहा है । पत्नी के द्वारा पूछे जाने पर मृगों को मारने वाले व्याध ने ॥२९॥ **सूतजी ने कहा—** उसकी वाणी को सुनकर व्याध ने अपनी पत्नी से कहा— हे सुव्रते ! नर्मदा नदी के उत्तर तट पर संगम स्थल है ॥३०॥ हे प्रिये ! धूप से संतप्त होकर मेरा जी व्याकुल हो गया । हे कान्ते ! परिश्रम करने के कारण थका हुआ मैं उस सङ्गम स्थल में गया ॥३१॥ वहाँ स्नान करके और जल पीकर उसके बाद यहाँ आया हूँ । उसी समय मेरा शरीर इस प्रकार के तेज से युक्त हो गया ॥३२॥ और वस्त्र तथा कंचुक श्वेत हो गये । पूर्वोक्त चिह्नों संस्थानों तथा स्थान से उसे अपना प्रियतम जानकर उसने जान लिया कि यह सबकुछ पुण्य से ही सम्भव है । उसके बाद उसने अपने पति से कहा, उस सङ्गम स्थल को तुम मुझे दिखाओ ॥३३-३४॥ उसके बाद ही मैं तुमको भोजन, अन्न तथा जल दूंगी । अपनी व्याधी के इस प्रकार से कहे जाने पर व्याध्र शीघ्र उस सङ्गम स्थल पर गया ॥३५॥ उसके बाद उसने उस पाप नाशक सङ्गम स्थल को दिखाया। हे महाभाग ! वहाँ पर पक्षीगण उड़ रहे थे ॥३६॥ उसके साथ सभी उस रेवा नदी के उत्तम सङ्गम स्थल पर गये । मेरे तथा उन पक्षियों के सामने ही ॥३७॥ उसने अपने पति को स्नान कराया और स्वयं भी उसके बाद उस व्याधी ने स्नान किया । उसके कारण वे दोनों दिव्य देह तथा दिव्य कान्ति से सम्पन्न हो गये ॥३८॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ ! वे दोनों दिव्य वस्त्र एवं अनुलेपन से युक्त हो गये । वे दोनों दिव्य माला, वस्त्र तथा दिव्य चन्दन को धारण किए हुए हो गये ॥३९॥ वे दोनों मुनियों तथा गन्धर्वों से पूजित होकर तथा वैष्णव विमान पर चढ़कर वैष्णवों से पूजित होकर वैष्णवलोक में चले गये । मैंने देखा कि उन दोनों पति-पत्नी की स्तुति की जा रही थी । स्वर्ग के मार्ग से जाते हुए उन दोनों को देखकर

व्रजन्तौ स्वर्गमार्गेण कूजन्ते पक्षिणस्तथा। तीर्थराजं परं दृष्ट्वा हर्षव्यक्ताक्षरैस्तदा॥४२॥
चत्वारः कृष्णहंसास्ते सङ्गमे पापनाशने।
स्नात्वा वै भावशुद्धास्ते प्राप्ता उज्ज्वलतां पुनः॥४३॥
स्नात्वा पीत्वा जलं ते तु पुनर्बहिर्विनिर्गताः।
तावत्यस्ताः स्त्रियः कृष्णा मृतास्तत्स्नानमात्रतः॥४४॥
क्रन्दमाना विचेष्टन्त्यो हाहाकारविकम्पिताः। यमलोकं गतास्तास्तुः तातदृष्टा मया तदा॥४५॥
उड्डीनास्तु ततो हंसाःस्वस्थानं प्रतिजग्मिरे। एवं तात मया दृष्टं प्रत्यक्षं कथितं तव॥४६॥
कृष्णपक्षा महाकाया धार्तराष्ट्रास्तु तास्त्रियः। कथयस्व प्रसादेन के भविष्यन्ति वै पितः॥४७॥
निर्गतान्मानसान्मध्याद्धार्तराष्ट्रान्वदस्व मे। के भविष्यन्ति ते तात कथय त्वं तु साम्प्रतम्॥४८॥
कस्मात्सुकृष्णतां प्राप्ता हंसाःशुद्धाश्च ते पुनः।
सञ्जातास्तत्क्षणात्तात कस्मान्मृतास्तु ताःस्त्रियः॥४९॥
एष मे संशयस्तात सञ्जातो दारुणो हृदि। छेत्तुमर्हसि अद्यैव भवान्ज्ञानविचक्षणः॥५०॥
प्रसादसुमुखो भूत्वा प्रणतस्य सदैव मे। एवं सम्भाष्य पितरं विरराम समुज्ज्वलः॥
ततःप्रवक्तुमारेभे सशुकःकुञ्जलाभिधः॥५१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थवर्णने च्यवनचरित्रे एकोननवतितमोऽध्यायः॥८९॥

पक्षिगण कूजन कर रहे थे॥४०-४१॥ उसके बाद उस तीर्थ राज को देखकर जिनके नेत्र हर्ष से व्याकुल थे, वे चारों काले हंस उस पाप विनाशक तीर्थ में स्नान करके श्वेत हो गये। वे स्नान करके तथा जल पीकर फिर उससे बाहर निकले॥४२-४३॥ उतने में ही वे काली स्त्रियाँ उन सबों के स्नान करने मात्र से मर गयीं। उस समय वे हाहाकार करके काँपती हुयी रोती हुयी छटपटा रहीं थीं॥४४॥ हे तात! मैंने देखा कि वे सब यमलोक में चली गयीं। उसके बाद उड़कर वे हंस अपने स्थान पर चले गये। हे तात! इसी प्रकार से मैंने अपनी आँखों के सामने देखा जो कि मैंने आपको सुना दिया। काले पंखों तथा विशाल शरीर वाली हंसों की वे पत्नियाँ॥४५-४६॥ कौन थीं? हे पिताजी! आप कृपा करके मुझे बुतलाइये और आप मानसरोवर से निकले हुए उन हंसों के विषय में मुझे बतलाइये॥४७॥ आप बतलायें कि वे हंस कौन थे? वे काले क्यों हो गये थे और स्नान करने के बाद वे शुद्ध (श्वेत) हो गये?॥४८॥ और किस कारण से उन हंसों के शुद्ध होते ही वे सब स्त्रियाँ मर गयीं। हे तात! मेरे हृदय में यह बहुत बड़ा संशय है॥४९॥ आप ज्ञान विचक्षण हैं। मेरे इस संशय को आप दूर करें। मैं आपके सामने प्रणाम करता हूँ। आप प्रसन्न होकर इस बात को बतलायें॥५०॥ इस तरह से अपने पिता से कहकर समुज्ज्वल चुप हो गया। उसके पश्चात् कुञ्जल नामक शुक ने कहना प्रारम्भ किया॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत नवासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥८९॥

नबेवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

एवमाकर्ण्य तत्सर्वं समुज्ज्वलस्य भाषितम्। कुञ्जलःस हि धर्मात्मा प्रत्युवाच सुतं प्रति॥१॥

कुञ्जल उवाच

सम्प्रवक्ष्याम्यहं तात श्रूयतां स्थिरमानसः। सर्वसन्देह विध्वंसं चरित्रं पापनाशनम् ॥२॥
इन्द्रलोके प्रववृते संवादो देवकौतुकः। सभायां तस्य देवस्य इन्द्रस्यापि महात्मनः ॥३॥
देवंद्रष्टुं सहस्राक्षं नारदस्त्वरितं ययौ। समागतं सहस्राक्षःसूर्यतेजःसमप्रभम् ॥४॥
तं दृष्ट्वा हर्षमायातःसमुत्थाय महामतिः। ददावर्घं च पाद्यं च भक्त्या प्रणतमानसः ॥५॥
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणाममकरोत्तदा। आसने कोमले पुण्ये विनिवेश्य द्विजोत्तमम् ॥६॥
पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा श्रद्धया परया युतः। कस्मच्चागमनं तेद्य कारणं वद साम्प्रतम् ॥७॥
इत्युक्तो देवराजेन प्रत्युवाच महामुनिः। भवन्तं द्रष्टुमायातःपृथिव्यास्तु पुरन्दर ॥८॥
स्नात्वा पुण्यप्रदेशेषु तीर्थेषु च सुश्रद्धया। देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य दृष्ट्वा तीर्थान्यनेकशः ॥९॥
एतते सर्वमाख्यातं यत्त्वया पृच्छितं पुरा ॥१०॥

देवेन्द्र उवाच

दृष्टानिपुण्यतीर्थानि सुक्षेत्राणि त्वया मुने। किं तीर्थं प्राप्यमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया ॥११॥
सुरापो मुच्यते पापाद्गोघ्नो हेमापहारकः। स्वामीद्रोहान्महाभाग नारीहन्ता कथं सुखी॥१२॥

कुज्जल द्वारा कृष्ण हंसों की कथा का विस्तार से वर्णन

सूतजी ने कहा— इस तरह से समुज्ज्वल की सारी बातों को सुनकर धर्मात्मा कुञ्जल ने अपने पुत्रों को उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥१॥ **कुञ्जल ने कहा—** हे तात ! मैं समस्त संदेहों को दूर करने वाले पाप विनाशक चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ । उसे स्थिर मन से तुम सुनो ॥२॥ इन्द्रलोक में महात्मा इन्द्र की सभा में देवताओं के कौतुक से युक्त संवाद हुआ ॥३॥ एक बार देवराज इन्द्र से मिलने के लिए देवर्षि नारदजी गये । सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न नारदजी को आये हुए देखकर महाबुद्धिमान् खड़े होकर भक्ति पूर्वक उन्हें अर्घ तथा पाद्य आदि प्रदान किये ॥४-५॥ उसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर देवर्षि को प्रणाम किया और उनको पवित्र कोमल आसन पर बैठाया ॥६॥ उसके बाद अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक उन्होंने पूछा— आप अपने आगमन का कारण बतलायें ॥७॥ इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर नारदजी ने कहा— हे पुरन्दर ! भूलोक से मैं आपसे मिलने के लिए आया हूँ ॥८॥ पुण्यप्रदेशों के तीर्थों में स्नान करके श्रद्धा पूर्वक देवताओं और पितरों की पूजा करके तथा अनेक तीर्थों का दर्शन करके मैं आपके यहाँ आया हूँ॥९॥ आपने जो पूछा उसका उत्तर मैंने दे दिया **इन्द्र ने कहा—** हे महामुने ! आपने सुन्दर तीर्थों और क्षेत्रों का दर्शन किया है ॥१०॥ किस तीर्थ में जाकर ब्रह्मघाती ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है, मदिरा पीने वाला तथा गोहत्यारा पाप से मुक्त हो जाता है । सुवर्ण चुराने वाला, अपने स्वामी से द्रोह करने वाला तथा नारी का वध करने वाला कैसे सुखी हो जा सकता है ? **नारदजी ने कहा—** हे सुरेश्वर ! गया इत्यादि जितने भी तीर्थ हैं ॥११-१२॥ उन सबों में से मैं किसी विशेष रूप से पापनाशक तीर्थ को नहीं जानता हूँ । सभी

नारद उवाच

यानि कानि च तीर्थानि गयादीनि सुरेश्वर । तेषां नैव प्रजानामि विशेषं पापनाशनम् ॥१३॥

सुपुण्यानि सुदिव्यानि पापघ्नानि समानि च ।
सर्वाण्येव सुतीर्थानि जानाम्यहं पुरन्दर ॥१४॥

अविशेषं विशेषं वै नैव जानामि साम्प्रतम्। प्रत्ययं क्रियतां देव तीर्थानां गतिदायकम् ॥१५॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं नारदस्य महात्मनः। समाहूतानि चेन्द्रेण तीर्थानि भूगतानि च॥१६॥

मूर्तिमन्ति च दिव्यानि समायातानि शासनात् ।
वद्धाञ्जलीनि दिव्यानि भूषितानि सुभूषणः ॥१७॥
दिव्याम्बराणि स्निग्धानि तेजोवन्ति च सुव्रत ।
स्त्रीपुंसोश्च स्वरूपाणि कृतानि च विशेषतः ॥१८॥

हंसचन्द्र प्रकाशानि दिव्यरूपधराणि च । मुक्ताफलस्य वर्णेन प्रभासन्ते नरेश्वर ॥१९॥
तप्तकाञ्चनवर्णानि सारुण्यानि च तत्र वै । कान्त्या शुक्लसुपीतानि प्रभावन्ति सभान्तरे ॥२०॥
कानि पद्मनिभान्येव मूर्तिमन्ति च तानि तु । सूर्यतेजःप्रकाशानि तडित्तेजःसमानि च ॥२१॥
पावकाभानि चान्यानि प्रभासन्ते सभान्तरे। सर्वाभरणशोभाढ्यैःप्रशोभन्ते नरेश्वर ॥२२॥
हारकङ्कणकेयूर मालाभिस्तु सुचन्दनैः । दिव्यचन्दनदिग्धानि सुरभीणि गुरूणि च ॥२३॥
कमण्डलुकराण्येव आयातानि सभान्तरे। गङ्गा च नर्मदा पुण्या चन्द्रभागा सरस्वती ॥२४॥

देविका बिम्बिका कुब्जा कुञ्जला मञ्जुला श्रुता ।
रम्भा भानुमती पुण्या पारा चैव सुघर्धरा ॥२५॥

तीर्थ समान रूप से दिव्य हैं तथा पापों का विनाश करने वाले हैं ॥१३॥ हे पुरन्दर ! मैं सभी तीर्थो को सुतीर्थ जानता हूँ । उस समय मुझे उन सवों में विशेष और सामान्य का ज्ञान नहीं है ॥१४-१५॥ हे देव! आप सभी तीर्थों की गतिप्रदायकत्व में विश्वास करें । नारदजी की बातों को सुनकर इन्द्र ने पृथिवी के सभी तीर्थों का आवाहन किया । इन्द्र की आज्ञा से वे सभी तीर्थ शरीर धारण करके आये ॥१६॥ वे सब हाथ जोड़े हुए दिव्य तथा भूषणों से भूषित थे । हे सुव्रत ! वे सब दिव्य वस्त्र धारण किए हुए तथा दिव्य तेज से समन्वित थे ॥१७॥ वे विशेष रूप से स्त्री और पुरुष का रूप बनाये हुए थे । दिव्य रूप धारण किए हुए वे सुवर्ण चन्दन के समान प्रकाशित हो रहे थे ॥१८॥ हे नरेश्वर ! वे मोती के समान प्रकाशित होते थे । उनका रूप तप्त सुवर्ण के समान था और वे सब तारुण्य से युक्त थे ॥१९॥ उनमें से कुछ श्वेत तथा कुछ पीले, सभा के भीतर प्रकाशित होते थे । उनमें से कुछ कमल के समान वर्ण वाले थे ॥२०॥ वे सब सभा में सूर्य के तेज के समान, कुछ विद्युत् के समान कान्ति वाले तथा कुछ अग्नि के समान तेज से प्रकाशित होते थे ॥२१॥ हे नरेश्वर ! वे सब आभरणों की शोभा से प्रकाशित होते थे । वे सब हार, कंकण, केयूर, माला तथा सुन्दर चन्दन से सुशोभित होते थे ॥२२॥ वे सब सभा में दिव्य चन्दन को धारण किए हुए, अत्यधिक सुगन्धि युक्त तथा हाथ में कमण्डलु धारण करके आये थे ॥२३॥ गङ्गा, नर्मदा, पवित्र चन्द्रभागा, सरस्वती, देविका, विम्बिका, कुब्जा, कुञ्जला, मञ्जुला, श्रुता ॥२४॥ रम्भा, पवित्र भानुमती, पारा, वसुन्धरा, शोणसिंधु, सौबीरा, काबेरी, कपिला ॥२५॥ कुमुदा, पवित्र वेदनदी, अत्यन्त पुण्यवती

शोणा च सिन्धुसौवीरा कावेरी कपिला तथा ।
कुमुदा वेदनदी पुण्या सुपुण्या च महेश्वरी ॥२६॥
चर्मण्वती तथाख्याता लोपा चान्या सुकौशिकी ।
सुहंसी हंसपादा च हंसवेगा मनोरथा ॥२७॥
सुरुथा स्वारुणा वेगा भद्रवेणासुपद्मिनी। वाहिनी सरघा चान्या पुण्या चान्या पुलिन्दिका॥२८॥
हेमा मनोरथा दिव्या चन्द्रिका वेदसङ्क्रमा। ज्वालाहुताशनी स्वाहा काला चैव कपिञ्जला॥२९॥
स्वधा च सुकला लिङ्गा गम्भीरा हिमवाहिनी ।
देवद्रीची वीरवाहा लक्षहोमा अघापहा ॥३०॥
पाराशरीहेमगर्भा सुभद्रा वसुपुत्रिका। एता नद्यो महापुण्या मूर्तिमत्यो नरेश्वर ॥३१॥
सर्वाभरणशोभाढ्याःकुम्भहस्ताःसुपूजिताः । प्रयागःपुष्करश्चैव सर्वतीर्थमनोरमः ॥३२॥
वाराणसी महापुण्या ब्रह्महत्याव्यपोहिनी। द्वारावती प्रभासश्च अवन्ती नैमिषस्तथा॥३३॥
चण्डकश्च महारत्नो महेश्वर कलेश्वरौ। कलिञ्जरो ब्रह्मक्षेत्रं माथुरो मानवाहकः॥३४॥
माया कान्ती तथान्यानि दिव्यानि विविधानि च ।
अष्टषष्टिःसुतीर्थानि नदीनां शतकोटयः ॥३५॥
गोदावरीमुखाःसर्वाःसमायातास्तदाज्ञया । द्वीपानां तु समस्तानि सुतीर्थानि महान्ति च ॥३६॥
मूर्तिलिङ्गधराण्येव सहस्राक्षं सुरेश्वरम्। समाजग्मुःसमस्तानि तदादेशकराणि च॥३७॥
प्रणेमुर्देवदेवेशं नतशीर्षाणि सर्वशः। तैः प्रोक्तं तु महातीर्थैर्देवराजस्तु सादरम्॥३८॥

महेश्वरी, प्रख्यात चर्मण्वती, लोपा, कौशिकी ॥२६॥ हंसी, हंसपादा, हंसवेगा, मनोरथा, सुरुथा, स्वारुणा, वेणा, भद्रवेणा, पद्मनी ॥२७॥ नाहली, सुमरी तथा पवित्र पुलिन्दिका, हेमा, मनोरथा, दिव्या चन्द्रिका, वेद संक्रमा ॥२८॥ ज्वाला, हुताशनी, स्वाहा, काला, कपिञ्जला, स्वधा, सुकला, लिङ्गा, गम्भीरा, भीमवाहिनी॥२९॥ देवद्रीची, वीरवाहा, लक्षहोमा, अघापहा, पाराशरी, हेमगर्भा, सुभद्रा, वसुपुत्रिका ॥३०॥ हे नरेश्वर ! ये सभी अत्यन्त पवित्र नदियाँ मूर्तिमान थी । ये सभी आभूषणों से भूषित सुपूजित तथा अपने हाथ में कलश लिए थीं ॥३१॥ प्रयाग, पुष्कर, अर्घदीर्घ, मनोरथ, अत्यन्त पवित्र ब्रह्महत्या को दूर करने वाली वाराणसी ॥३२॥ द्वारावती (द्वारका) प्रभास क्षेत्र, अवन्तीपुरी तथा नैमिष, चण्डक क्षेत्र, महारत्न क्षेत्र, महेश्वर तथा कलेश्वर॥३३॥ कलिञ्जर, ब्रह्मक्षेत्र, मान से युक्त मंथरा क्षेत्र, माया तीर्थ, क्रान्ति तीर्थ तथा दूसरे विविध ॥३४॥ अड़सठ तीर्थ, सौ करोड़ नदियाँ, तथा गोदावरी आदि नदियाँ इन्द्र की आज्ञा से आ गयीं ॥३५॥ सभी द्वीप तथा सभी बड़े-बड़े तीर्थ अपनी मूर्ति तथा चिह्न को धारण करके देवराज इन्द्र के पास आये क्योंकि वे सब इन्द्र की आज्ञा का पालन करने वाले थे । वे सब आकर अपना शिर झुकाकर देवराज इन्द्र को प्रणाम किए ॥३६-३७॥ **सूतजी ने कहा—** उन महान् तीर्थों ने यशस्वी इन्द्र से कहा हे देवराज ! आपने क्यों हमलोगों का स्मरण किया है । इसे हमें बतलाइयें ॥३८॥ हे देवराज ! आपको नमस्कार है, आप अपने

कस्मात्त्वया समाहूता देवदेव वदस्व नः । ब्रूहि नःकारणं सर्वं नमस्तुभ्यं सुराधिपः ॥३९॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं देवराजोऽभ्यभाषत। कः समर्थो महातीर्थो ब्रह्महत्यां व्यपोहितुम् ॥४०॥
गोवधाख्यं महापापं स्त्रीवधाख्यमनुत्तमम्। स्वामिद्रोहाच्च सम्भूतं सुरापानाच्च दारुणम् ॥४१॥
हेमस्तेयात्तथाजातं गुरुनिन्दा समुद्भवम्। भ्रूणहत्यां महाघोरां कः समर्थो निवर्तितुम्॥४२॥
राजद्रोहान्महापापं बहुपीडाप्रदायकम् । मित्रद्रोहात्तथाचान्यदन्यद्विश्वासघातकम् ॥४३॥
देवभेदं तथाचान्यं लिङ्गभेदमतःपरम्। वृत्तिच्छेदं च विप्राणां गोप्रचारप्रणाशनम् ॥४४॥
आगारदहनं चान्यद् गृहदीपनकं तथा। षोडशैते महापापा अगम्यागमनं तथा ॥४५॥
स्वामित्यागात्समुद्भूतं रणस्थानात्पलायनात् । एतानि नाशयेत्को वै समर्थस्तीर्थउत्तमः ॥४६॥
समर्थो भवतां मध्ये प्रायश्चित्तं विना ध्रुवम्। पश्यतां देवतानां च नारदस्य च पश्यतः ॥४७॥
ब्रुवन्तु सर्वे सञ्चिन्त्य विचार्यैवं सुनिश्चितम्। एवमुक्ते शुभे वाक्ये देवराज्ञा महत्मना ॥
संमन्त्र्य तीर्थराजेन प्रोचुःशक्रं सभागतम् ॥४८॥

तीर्थान्यूचुः

श्रूयतामभिधास्यामो देवराज नमोऽस्तुते। सन्ति वै सर्वतीर्थानि सर्वपापहराणि च ॥४९॥
ब्रह्महत्यादिकान्यांश्च त्वया प्रोक्तान्सुरेश्वर। महाघोरान्सुदीप्तांश्च नाशितुं नैव शक्नुमः ॥५०॥
प्रयागःपुष्करश्चैव अर्घतीर्थमनुत्तमम्। वाराणसी महाभाग समर्था पापनाशिनी ॥५१॥
महापातकनाशार्थे चत्वारोऽमितविक्रमाः । उपपातकनाशार्थं चत्वारोऽमितविक्रमाः ॥५२॥

बुलाने का कारण बतलायें उन सबों की बातों को सुनकर इन्द्र ने कहा ॥३९॥ कौन सा महातीर्थ ब्रह्महत्या को, गोवध नामक महापाप को, स्त्रीवध नामक पाप को, स्वामिद्रोह से उत्पन्न होने वाले पाप को, मदिरा पीने से होने वाले भयङ्कर पाप को, सुवर्ण चुराने से होने वाले पाप को, गुरुजनों की निन्दा करने से उत्पन्न पाप को ॥४०-४१॥ तथा भ्रूण हत्या से होने वाले पाप को नाश करने में समर्थ है । राजद्रोह से उत्पन्न बहुत अधिक कष्ट देने वाले पाप को ॥४२॥ मित्रद्रोह तथा विश्वासघात जन्य पाप को, देवभेद तथा लिङ्गभेद जन्य पाप को, ब्राह्मणों की वृत्ति का विनाश करने से उत्पन्न पाप को, तथा गोचर भूमि को विनष्ट करने से उत्पन्न पाप को, किसी के घर को जला देने तथा घर में आग लगाने से उत्पन्न पाप को ॥४३-४४॥ ये जो सोलह महापाप हैं, उनको तथा अगम्यागमन जन्य पाप को, स्वामी का त्याग करने से उत्पन्न पाप को तथा युद्ध से पलायन जन्य पाप को, इन सभी पापों को कौन समर्थ तीर्थ नाश कर सकता है । आपलोगों में से कौन सा तीर्थ प्रायश्चित नहीं करने पर भी इन पापों का निश्चित रूप से नाश कर सकता है ?॥४५-४६॥ देवताओं तथा नारदजी के समक्ष विचार करके आपलोग बतलायें । इन्द्र के द्वारा इस तरह के शुभ वाक्य के कहने पर तीर्थराज से मन्त्रणा करके तीर्थों ने देवराज की सभा में कहा ॥४७-४८॥ **तीर्थों ने कहा—** हे देवराज ! आपको नमस्कार है । आप सुनें । सभी पापों को विनष्ट करने वाले सभी तीर्थ हैं ॥४९॥ किन्तु हे सुरेश्वर ! आपने जिन ब्रह्म हत्या इत्यादि अत्यन्त भयङ्कर तथा अत्यन्त दीप्तिमान् पाप के बारे में कहा है, उन सबों को विनष्ट करने में हमलोग समर्थ नहीं हैं ॥५०॥ हे महाभाग ! प्रयाग, पुष्कर, सर्वोत्तम अर्घतीर्थ, पापों का नाश करने में समर्थ वाराणसी ॥५१॥ ये चारों तीर्थ महापापों का नाश करने में

सृष्टा धात्रा च देवेन्द्र पुष्कराद्या महाबलाः। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं तीर्थानां सुरराट् ततः ॥५३॥
हर्षेण महताविष्टस्तेषां स्तोत्रं चकार सः ॥५४॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

एकानबेवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

ब्रह्महत्याभिभूतस्तु सहस्राक्षो यदा पुरा। गौतमस्य प्रियासङ्गादगम्यागमनं महत् ॥१॥
सञ्जातं पातकं तस्य त्यक्तो देवैश्च ब्राह्मणैः ।
सहस्राक्षस्तपस्तेपे निरालम्बो निराश्रयः ॥२॥
तपोऽन्ते देवताःसर्वा ऋषयो यक्षकिन्नराः। देवराजस्य पूजार्थमभिषेकं प्रचक्रिरे ॥३॥
देशं मालवकं नीत्वा देवराजं सुरोत्तम । चक्रे स्नानं महाभाग कुम्भैरुदकपूरितैः ॥४॥
स्नापितुं प्रथमं नीतो वाराणास्या स्वयं ततः ।
प्रयागे तु सहस्राक्ष अर्घतीर्थे ततःपुनः ॥५॥
पुष्करेण महात्माऽसौ स्नापितःस्वयमेव हि ।
ब्रह्मादिभिःसुरैःसर्वैर्मुनिवृन्दैर्द्विजोत्तम ॥६॥

अत्यधिक शक्ति सम्पन्न हैं । ये चारों उपपातकों का नाश करने में पराक्रम युक्त हैं ॥५२॥ हे देवेन्द्र ! ब्रह्माजी ने पुष्कर आदि महाबलवान् तीर्थों की सृष्टि की है । इस तरह से तीर्थों के वाक्य को सुनकर देवराज अत्यधिक हर्ष से युक्त होकर उन तीर्थों की स्तुति किए ॥५३-५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में तीर्थ महात्म्य के च्यवन चरितान्तर्गत नब्बेवाँ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९०।।

ब्रह्म हत्या अग्म्यागम्य दोष से दूषित इन्द्र का वाराणसी आदि तीर्थों में स्नान और चार महापातकियों का कालंजर गिरि पर जाना

कुञ्जल ने कहा— प्राचीनकाल में जब इन्द्र ब्रह्महत्या से अभिभूत हो गये थे । गौतम महर्षि की पत्नी के साथ सङ्गम करने से अगम्या गमन जन्य महान पाप हुआ । उसको देवताओं और ब्राह्मणों ने मिलकर इन्द्र से दूर किया । इन्द्र ने उस समय आलम्वन और आश्रय विहीन होकर तपस्या की ॥१-२॥ तपस्या के अन्त में सभी देवताओं, ऋषियों, यक्षों तथा किन्नरों ने मिलकर इन्द्र की पूजा के लिए उनका अभिषेक किया ॥३॥ हे पुत्र ! इन्द्र को मालव देश लाकर जल भरे कलशों से सवों ने स्नान कराया ॥४॥ इन्द्र को स्नान कराने के लिए सर्वप्रथम वाराणसी में लाया गया । उसके वाद उनको प्रयाग में लाया गया

नागैर्वृक्षैर्नागसर्पैर्गन्धर्वैस्तु सकिन्नरैः। स्नापितो देवराजस्तु वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतः ॥७॥
मुनिभिः सर्वपापघ्नै तस्मिन्काले द्विजोत्तम। शुद्धे तस्मिन्महाभागे सहस्राक्षे महात्मनि ॥८॥
ब्रह्महत्यागता तस्य अगम्यागमनं तथा। ब्रह्महत्या ततो नष्टा अगम्यागमनेन च ॥९॥
पापेन तेन घोरेण सार्द्धमिन्द्रस्य भूतले । सुप्रसन्नः सहस्राक्षस्तीर्थेभ्यो हि वरं ददौ ॥१०॥
भवन्तस्तीर्थराजानो भविष्यथ न संशयः । मत्प्रसादत्पवित्राश्च यस्मादहं विमोक्षितः ॥११॥
सुघोरात्किल्विषादत्र युष्माभिर्विमलैरहम् । एवं तेभ्यो वरं दत्त्वा मालवाय वरं ददौ ॥१२॥
यस्मात्त्वया मलं मेऽद्य विधृतं श्रमदायकम्। तस्मात्त्वमन्नपानैश्च धनधान्यैरलङ्कृतः॥१३॥
भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादान्न संशयः । सुदुष्कालैर्विना त्वं तु भविष्यसि सुपुण्यवान् ॥१४॥
एवं तस्मै वरं दत्त्वा देवराजः पुरन्दरः । क्षेत्राणि सर्वतीर्थानि देशो मालवकस्तथा ॥१५॥
आखण्डलेन सार्द्धं ते स्वस्थानं प्रतिजग्मिरे। तदाप्रभृति चत्वारः प्रयागः पुष्करस्तथा ॥१६॥
वाराणसी चार्घतीर्थं प्राप्ता राजत्वमुत्तमम् ॥१७॥
अस्ति पाञ्चालदेशेषु विदुरो नाम क्षत्रियः। तेन मोहप्रसङ्गेन ब्राह्मणो निहतः पुरा॥१८॥
शिखासूत्रविहीनस्तु तिलकेन विवर्जितः । भिक्षार्थमटते सोऽपि ब्रह्मघ्नोऽहं समागतः ॥१९॥
ब्रह्मघ्नाय सुरापाय भिक्षाचान्नं प्रदीयताम् । गृहेष्वेवं समस्तेषु भ्रमते याचते पुरा ॥२०॥
एवं सर्वेषु तीर्थेषु अटित्वैव समागतः। ब्रह्महत्या न तस्यापि प्रयाति द्विजसत्तम ॥२१॥

और उसके बाद उनको अर्घतीर्थ में लाया गया ॥५॥ पुष्कर तीर्थ ने इन्द्र को स्वयं स्नान कराया । ब्रह्मा आदि सभी देवताओं, सभी मुनि वृन्दों, नागों, वृक्षों सभी गन्धर्वों तथा किन्नरों ने इन्द्र को वेदमन्त्रों से स्नान कराया । हे द्विजोत्तम ! मुनियों ने सभी पापों को विनष्ट करने वाले वेद मन्त्रों से इन्द्र को स्नान कराया । जब महाभाग सहस्राक्ष इन्द्र शुद्ध गये ॥६-८॥ उसके कारण इन्द्र की ब्रह्म हत्या तथा अगम्यागमन जन्य घोर पाप दोनों इस पृथिवी पर ही विनष्ट हो गये । उसके बाद प्रसन्न होकर इन्द्र ने तीर्थों को वरदान दिया कि ॥९-१०॥ आपलोग तीर्थराज होंगे इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । आप लोग मेरी कृपा से पवित्र रहेंगे क्योंकि भयङ्कर पाप से अत्यन्त पवित्र आपलोगों ने मुझे मुक्त करके पाप रहित बना दिया है । इस तरह से उन तीर्थों को वरदान देकर इन्द्र ने मालवा क्षेत्र को वरदान दिया ॥११-१२॥ चूकि आपने आज मुझे श्रान्त करने वाले मेरे पाप को धारण किया है, अतएव आप सदा अन्न, जल तथा धन-धान्य से सदा मेरी कृपा से अलंकृत रहेंगे, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं हैं । अत्यन्त पुण्यवान् आपके क्षेत्र में कभी दुष्काल नहीं होगा ॥१३-१४॥ इन्द्र ने इस तरह से मालवा क्षेत्र को वरदान दिया और उसके बाद सभी क्षेत्र, तीर्थ तथा मालवा देश सबके सब, इन्द्र के साथ अपने-अपने स्थान पर चले गये । **सूतजी ने कहा—** उसी समय से प्रयाग, पुष्कर ॥१५-१६॥ वाराणसी तथा अर्घ तीर्थ ये चारों तीर्थ राजत्व को प्राप्त कर लिए ॥१७॥ **कुञ्जल ने कहा—** पाञ्चल देश में विदुर नामक क्षत्रिय रहते थे । उन्होंने पहले मोहवशात् एक ब्राह्मण का वध कर दिया ॥१८॥ उसके कारण शिखा तथा सूत्र (यज्ञोपवीत) से रहित होकर तथा तिलक से रहित होकर वे भिक्षा माँगने के लिए यह कहकर घूमते रहते थे कि मैं ब्रह्मघाती हूँ ॥१९॥ ब्रह्मघ्न तथा महापापी मुझको आपलोग अन्न की भिक्षा दीजिये । इस तरह से वे घर-घर घूमते हुए भिक्षा माँग रहे थे ॥२०॥ इस तरह से सभी तीर्थों में वे भ्रमण किये किन्तु हे द्विजश्रेष्ठ ! उनकी ब्रह्महत्या उनसे दूर नहीं

वृक्षच्छायां समाश्रित्य दह्यमानेन चेतसा। संस्थितो विदुरःपापो दुःखशोकसमन्वितः ॥२२॥
चन्द्रशर्मा ततो विप्रो महामोहेन पीडितः। न्यवसन्मागधे देशे गुरुघातकरश्च सः॥२३॥
स्वजनैर्बन्धुवर्गैश्च परित्यक्तो दुरात्मवान्। स हि तत्र समायातो यत्रासौ विदुरःस्थितः॥२४॥
शिखासूत्रविहीनस्तु विप्रलिङ्गैर्विवर्जितः। तदासौ पृच्छितस्तेन विदुरेण दुरात्मना॥२५॥
भवान्को हि समायातो दुर्भगो दग्धमानसः। विप्रलिङ्गविहीनस्तु कस्मात्त्वं भ्रमसे महीम्॥२६॥
विदुरेणोक्तमात्रस्तु चन्द्रशर्मा द्विजाधमः। आचष्टे सर्वमेवापि यथापूर्वकृतं स्वकम्॥२७॥
पातकं च महाघोरं वसता च गुरोर्गृहे। महामोहगतेनापि क्रोधेनाकुलितेन च॥२८॥

गुरोर्घातःकृतःपूर्वं तेन दग्धोऽस्मि साम्प्रतम्।
चन्द्रशर्मा च वृत्तान्तमुक्त्वा सर्वमपृच्छत॥२९॥
भवान्को हि सुदुःखात्मा वृक्षच्छायां समाश्रितः।
विदुरेण समासेन आत्मपापं निवेदितम्॥३०॥

अथ कश्चिद् द्विजःप्राप्तस्तृतीयःश्रमकर्षितः। वेदशर्मेति वै नाम बहुपातकसञ्चयः॥३१॥

द्वाभ्यामपि सुसम्पृष्टःकोभावान्दुःखिताकृतिः।
कस्माद् भ्रमसि वै पृथ्वीं वद भावं त्वमात्मनः॥३२॥

वेदशर्मा ततःसर्वमात्मचेष्टितमेव च। कथयामास ताभ्यां वै ह्यगम्यागमनं कृतम्॥३३॥
धिक्कृतःसर्वलोकैश्च अन्यैःस्वजनबान्धवैः। तेन पापेन सँल्लिप्तो भ्रमाम्येवं महीमिमाम्॥३४॥

जाती थी ॥२१॥ उनका अन्तःकरण सदा दुःखी रहता था, और वे पापी विदुर दुःख तथा शोक से युक्त होकर वृक्ष की छाया में निवास करते थे ॥२२॥ उस समय मगध देश में गुरु को मारने वाले चन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण रहते थे। वे महामोह से पीड़ित थे ॥२३॥ उन दुष्ट को उनके स्वजनों तथा बान्धवों ने त्याग दिया था। वे भी वहीं आये जहाँ पर वे विदुर रहते थे ॥२४॥ वे भी विप्र के चिह्न शिखा तथा सूत्र से विहीन थे। उन ब्राह्मण से दुरात्मा विदुर ने पूछा ॥२५॥ आप दुर्भाग्य युक्त और सन्तप्त मन वाले लगते हैं, कहाँ से आये हैं ? आप ब्राह्मण के चिह्न से रहित होकर पृथिवी पर क्यों भ्रमण कर रहे हैं ?॥२६॥ विदुर के द्वारा पूछे जाने पर वे द्विजाधम चन्द्रशर्मा ने अपने पूर्वकृत समस्त कर्मों को बतलायें ॥२७॥ मैंने अपने गुरु के घर में रहते हुए भयङ्कर पाप किया है। मैं अत्यधिक मोह तथा क्रोध से व्याकुल होकर॥२८॥ अपने गुरु के साथ घात किया। उसी के कारण मैं इस समय दग्ध हो रहा हूँ। इस तरह अपना सारा वृतान्त कहकर चन्द्रशर्मा ने विदुर नामक उस क्षत्रिय से पूछा ॥२९॥ आप कौन हैं ? अत्यन्त दुःखी होकर इस वृक्ष की छाया में निवास करते हैं। उसके बाद विदुर ने भी संक्षेप में अपने पाप को बतलाया ॥३०॥ उसके बाद वहीं पर थके हुए ब्राह्मण आ गये। उनका नाम वेदशर्मा था और वे बहुत बड़े पापी थे ॥३१॥ उनको देखकर उन दोनों ने पूछा आप कौन है ? और दुःखी हैं ? आप पृथिवी पर क्यों भ्रमण कर रहे हैं, आप अपने वृतान्त को बतलाइयें ॥३२॥ उसके बाद वेदशर्मा ने अपने सारे कर्मों को बतलाया। उन्होंने बतलाया कि मैंने अगम्या गमन जन्य पाप किया है ॥३३॥ उसके कारण सबलोग मेरी निन्दा करते हैं तथा मेरे बान्धवों ने भी मेरा धिक्कार किया है। उसी पाप से लिप्त होकर मैं इस पृथिवी पर भ्रमण करता हूँ॥३४॥ उसके बाद वहाँ पर बञ्जुल नामक वैश्य जो मदिरा पीने वाला था वह भी आ गया। वह विशेष

वञ्जुलो नाम वैश्योऽथ सुरापायी समागतः ।
सगोघ्नश्च विशेषेण तैश्च पृष्टो यथापुरा ॥३५॥
तेन आवेदितं सर्वं पातकं यत्पुराकृतम्। तैराकर्णितमन्यैश्च सर्वं तस्य प्रभाषितम् ॥३६॥
एवं चत्वार:पापिष्ठा एकस्थानं समागताः। कःकस्यापि न सम्पर्कं भोजनाच्छादनेन च॥३७॥
करोति च महाभाग वार्ता चक्रुःपरस्परम्। न विशन्त्यासने चैके न स्वपन्त्येक संस्तरे॥३८॥
एवं दुःखसमाविष्टा नानातीर्थेषु वै गताः। तेषां तु पापकाघोरा न नश्यन्ति च नन्दन॥३९॥
सामर्थ्यं नास्ति तीर्थानां महापातकनाशने। विदुराद्यास्ततस्ते तु गताःकालञ्जरं गिरिम् ॥४०॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

बानबेवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

कालञ्जरं समासाद्य निवसन्ति सुदुःखिताः। महापापैस्तु सन्दग्धा हाहाभूता विचेतनाः॥१॥
तत्र कश्चित्समायातःसिद्धश्चैव महायशाः। तेन पृष्टाःसुदुःखार्ता भवन्तःकेन दुःखिताः॥२॥

रूप से गौ को मारा था उससे भी उन तीनों ने पहले के ही समान पूछा ॥३५॥ उसने भी अपने उन सारे पापों को बतलाया जिन पापों को उसने पहले किया था। उसकी बातों को उन तीनों ने तथा दूसरे लोग जो वहाँ थे उन लोगों ने भी सुना ॥३६॥ इस तरह से चार अत्यन्त पापी एक ही स्थान पर आ गये। इनमें से किसी का भी किसी से भोजन और वस्त्र के विषय में कोई भी सम्पर्क नहीं था ॥३७॥ हे महाभाग! वे सव परस्पर में बातें करते थे। वे न तो एक आसन पर बैठते थे और न एक विस्तर पर सोते थे ॥३८॥ इस तरह से वे अत्यन्त दुःखी होकर अनेक तीर्थों में गये, किन्तु उन सबों का वह घोर पाप विनष्ट नहीं होता था ॥३९॥ किसी भी तीर्थ का महापातक को विनष्ट करने वाला सानर्थ्य नहीं था। इसके बाद वे विदुर इत्यादि कालञ्जर गिरि पर गये ॥४०॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एकानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९१॥

किसी सिद्ध के उपदेश से उपयुक्त चारो पापियों का वाराणसी आदि तीर्थों में जाना और स्नान करने से मुक्ति रेवा तथा कुब्जा के सङ्गम का माहात्म्य

कुञ्जल ने कहा— वे सब कालञ्जर पर्वत पर आकर अत्यन्त दुःखी होकर निवास करते थे। वे सव महापाप से दग्ध तथा हाय-हाय करते हुए दुःखी रहते थे ॥१॥ वहाँ पर एक महायशस्वी सिद्ध आये उन्होंने पूछा— आप लोग किस दुःख के कारण अत्यन्त दुःखी हैं ॥२॥ उन सबों ने महाज्ञान से सम्पन्न उन

स तैःप्रोक्तो महाप्राज्ञःसर्वज्ञानविशारदः ।
तेषां ज्ञात्वा महापापं कृपां चक्रे सुपुण्यभाक् ॥३॥

सिद्ध उवाच

अमासोम समायोगे प्रयागःपुष्करश्च यः। अर्घतीर्थं तृतीयं तु वाराणसी चतुर्थिका ॥४॥
गच्छन्तु तत्र वै यूयं चत्वारःपातकाविलाः। गङ्गाम्भसि यदा स्नातास्तदा मुक्ता भविष्यथ॥५॥
पातकेभ्यो न सन्देहो निर्मलत्वं गमिष्यथ। आदिष्टास्तेन वै सर्वे प्रणेमुस्तं प्रयत्नतः॥६॥
कालञ्जरात्ततो जग्मुःसत्वरं पापपीडिताः। वाराणसीं समासाद्य स्नात्वा चैव द्विजोत्तमाः॥७॥
प्रयागं पुष्करश्चैव अर्घतीर्थं तु सत्तम । अमासोमं सुसम्प्राप्य जग्मुस्ते च महापुरीम्॥८॥
विदुरश्चन्द्रशर्मा च वेदशर्मा तृतीयकः। वैश्यो वज्जुलकश्चैव सुरापःपापचेतनः॥९॥

तस्मिन्पर्वणि सम्प्राप्ते स्नाता गङ्गाम्भसि द्विज ।
स्नानमात्रेण मुक्तास्तु गोवधाद्यैश्च किल्विषैः ॥१०॥

ब्रह्महत्या गुरोर्हत्यासुरापानादि पातकैः। लिप्तानि तानि तीर्थानि परिभ्रमन्ति मेदिनीम्॥११॥
पुष्करश्चार्घतीर्थस्तु प्रयागःपापनाशनः। वाराणसी चतुर्थी तु लिप्ता पापैर्द्विजोत्तम॥१२॥
कृष्णत्वं पेदिरे सर्वे हंसरूपेण बभ्रमुः। सर्वेष्वेव सुतीर्थेषु स्नानं चक्रुर्द्विजोत्तमाः॥१३॥
कृष्णत्वं नैव गच्छेत तेषां पापेन चागतम्। सुतीर्थेषु महाराज स्नाताःसर्वेषु वै पुनः॥१४॥
यं यं तीर्थं प्रयान्त्येते सर्वे तीर्था द्विजोत्तम। हंसरूपेण वै यान्ति तैःसार्द्धं सुदुःखिताः॥१५॥
भार्याःपातकरूपाश्च भ्रमन्ति परितस्तथा। अष्टषष्टि सुतीर्थानि हंसरूपेण बभ्रमुः॥१६॥
तैःसार्द्धं सुमहाराज महातीर्थैःसमं पुनः। मानसं चागतास्ते च पातका कुलमानसाः॥१७॥

महाप्राज्ञ को अपना सारा पाप बतलाया । उन सबों के पापों को जान कर वे महात्मा उन सबों से सिद्ध पुरुष ने कहा जब सोमवती अमावस्या का योग आये तो प्रयाग, पुष्कर, अर्घतीर्थ तथा वाराणसी इन चारों तीर्थों में आप चारो पापी जायँ । वहाँ पर जब आपलोग गङ्गाजल में स्नान करेंगे तब ही आप सबों की मुक्ति होगी॥३-५॥ निःसन्देह आपलोग इन पापों से मुक्त हो जायेंगे । उस सिद्ध का आदेश प्राप्त करके वे सब उन सिद्ध पुरुष को प्रणाम किए ॥६॥ उसके बाद पाप से पीड़ित वे सब कालञ्जर गिरि से शीघ्र ही चले गये । उन सबों ने वाराणसी में जाकर गङ्गा में स्नान किया । उसके बाद सोमवती आमावस्या के योग में वे सब प्रयाग, पुष्कर तथा अर्घतीर्थ में वे सभी विदुर, चन्द्रशर्मा, वेदशर्मा तथा बञ्जुल नामक वैश्य गये । वे सभी सुरापायी तथा पापी थे ॥७-९॥ हे द्विज ! उस पर्व के आने पर उन सबों ने स्नान किया और स्नान करने मात्र से वे सब गोवध आदि पापों से मुक्त हो गये ॥१०॥ ब्राह्मण की हत्या, गुरु की हत्या तथा सुरापान जन्य पापों से युक्त होकर वे तीर्थ पृथिवी पर भ्रमण करने लगे ॥११॥ हे द्विजोत्तम ! पुष्कर, अर्घतीर्थ पापनाशक प्रयाग और वाराणसी ये चारो तीर्थ पापों से लिप्त हो गये । उनका रूप काला हो गया और वे हंस रूप से भ्रमण करने लगे । उन चारो हंस रूपधारी तीर्थों ने सभी तीर्थों में स्नान किया ॥१२-१३॥ किन्तु उन सबों में पाप के कारण जो कालिमा आ गयी थी वह दूर नहीं होती थी । उन सबों ने हे महाराज वेन ! सभी प्रख्यात तीर्थों में स्नान किया । हे तीर्थ ! ये चारो तीर्थ हंस का रूप धारण किए हुए जिन-जिन तीर्थों में जाते थे उन सबों के साथ उनकी अत्यन्त दुःखी पत्नियाँ भी जाती थीं । इस तरह उन चारों

तत्रस्नाता महाराज न जहाति च पातकः। लज्जयाविष्ट मनसा मानसो हंसरूपधृक् ॥१८॥
सञ्जातःकृष्णकायस्तु यं त्वं वै दृष्टवान्पुरा। रेवातीरं ततोजग्मुरुत्तरं पापनाशनम् ॥१९॥
कुब्जायाःसङ्गमे ते तु सुरसिद्धनिषेविते। स्नानमात्रेण मुक्तास्ते पापेभ्यो द्विजसत्तम ॥२०॥
विहाय वर्णमेवैतं शुद्धत्वं प्रतिजग्मिरे। यं यं तीर्थं प्रयान्त्येते हंसाःस्नानं प्रचक्रमुः ॥२१॥

जहसुस्ताःस्त्रियो दृष्ट्वा पातकं नैव गच्छति ।
तोयानलेन कुब्जायाःपातकं वरमेव च ॥२२॥

भस्म वशेषं सञ्जातं तदामृतास्तु ताःस्त्रियः। ब्रह्महत्या गुरोर्हत्या सुरापानागमागमाः ॥२३॥

भस्मीभूतास्तु सञ्जाता रेवायाःकुब्जया हताः ।
तास्तु हता महाभाग या मृतास्तु सरित्तटे ॥२४॥

अष्टषष्टि सुतीर्थानां हंसरूपेण तानि तु। सार्द्धं हंसःसमायातो विद्धि तं त्वंतु मानसम् ॥२५॥
चत्वारःकृष्णहंसाश्च तेषां नामानि मे शृणु। प्रयागःपुष्करश्चैव अर्घतीर्थमनुत्तमम् ॥२६॥
वाराणसी चतुर्थी च चत्वारःपापनाशनाः। ब्रह्महत्याभिभूतानि चत्वारि परिबभ्रमुः ॥२७॥
तीर्थान्येतानि दुःखेन तीर्थेषु च महामते। न गतं पातकं घोरं तेषां तु भ्रमतां सुत ॥२८॥

कुब्जायाःसङ्गमे शुद्धा विमुक्ताःकिल्बिषात्किल ।
तीर्थानामेव सर्वेषां पुण्यानामिहसंमतः ॥२९॥

राजा प्रयागःसञ्जात इन्द्रस्य पुरतःकिल। तावद्गर्जन्तु तीर्थानि यावद्रेवा न दृश्यते ॥३०॥
ब्रह्महत्यादि पापानां विनाशाय प्रतिष्ठिता। कपिलासङ्गमे पुण्ये रेवायाःसङ्गमे तथा ॥३१॥

तीर्थों ने अड़सठ अत्यन्त पवित्र तीर्थों में हंस रूप से भ्रमण किया ॥१४-१६॥ हे महाराज ! उन महातीर्थों के साथ वे आकुल मन वाले पाप भी मानसतीर्थ में गये ॥१७॥ हे महाराज ! वहाँ स्नान करने पर भी उन सबों को पाप नहीं छोड़ता था । लज्जित मन वाला मानस भी हंस का रूप धारण करके ॥१८॥ काले शरीर वाला हो गया जिसको तुमने पहले देखा था । उसके बाद वे रेवा नदी के उत्तर तट पर गये जहाँ पर पापों को विनष्ट करने वाला ॥१९॥ देवताओं तथा सिद्ध पुरुषों से सेवित कुब्जा नदी के सङ्गम स्थल था। हे द्विजसत्तम ! वे सब स्नान करते ही पापों से मुक्त हो गये ॥२०॥ वे सब अपने इस रूप को त्याग कर पुण्य के पास गये । जिस-जिस तीर्थ में हंस जाते थे उन सबों में वे स्नान करते थे ॥२१॥ उन सबों को देखकर वे स्त्रियाँ इसलिए हँसती थीं कि उनको पाप नहीं छोड़ता था । कुब्जा नदी के जल रूपी अग्नि से वह महान् पाप ॥२२॥ भस्म हो गया और उस समय वे स्त्रियाँ मर गयीं । ब्रह्म हत्या, गुरु की हत्या, मदिरापान तथा अगम्यागमन ॥२३॥ ये चारों हत्यायें रेवा तथा कुब्जा के द्वारा मार दिये जाने के कारण भस्म हो गयें। और सतियाँ मरकर भस्म हो गयीं । वे सभी मरकर नदी के तट में भस्म हो गयी । हंस रूपधारी अड़सठ तीर्थों के साथ जो हंस आया था उसे मानस तीर्थ तुम जानो ॥२४॥ चार जो काले हंस थे उन सबों के नाम हैं— प्रयाग, पुष्कर, अर्घतीर्थ और वाराणसी । ये चारों तीर्थ पापों को विनष्ट करने वाले हैं । वे सब ब्रह्महत्या से अभिभूत होकर भ्रमण किये ॥२५-२७॥ ये चारो तीर्थ दुःखी होकर तीर्थों में गये किन्तु उन सबों का पाप नहीं विनष्ट हुआ ॥२८॥ वे सव कुब्जा नदी के सङ्गम पर जाकर पाप से शुद्ध हो गये । यह सङ्गम स्थल सभी पवित्र तीर्थों के लिए समस्त है ॥२९॥ इन्द्र के सामने तीर्थराज प्रयाग पहले

मेघनाद समायोगे तथाचैवोरुसङ्गमे। महापुण्या महाधन्या रेवा सर्वत्र दुर्लभा ॥३२॥
साचोङ्कार भृगुक्षेत्रे नर्मदाकुब्जसङ्गमे। दुष्प्राप्या मानवैरेवा माहिष्मत्यां सुरोत्तमैः ॥३३॥
विटङ्कासङ्गमे पुण्या श्रीकण्ठे मङ्गलेश्वरे। सर्वत्र दुर्लभा रेवा सुरपुण्या समाकुला ॥३४॥
तीर्थमाता महादेवी अघराशि विनाशिनी। उभयोःकूलयोर्मध्ये यत्र तत्र सुखीनरः ॥३५॥
अश्वमेध फलं भुङ्क्ते स्नानेनैकेन मानवः। एत्तते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥३६॥
सर्वपापापहं पुण्यं गतिदं चापि शृण्वताम्। एवमुक्त्वा महाप्राज्ञ तृतीयं पुत्रमब्रवीत् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

तिरानबेवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

किं विज्वल त्वया दृष्टमपूर्वं भ्रमतो महीम्। आश्चर्येण समायुक्तं तन्मे कथय सुव्रत ॥१॥
इतःप्रयासि कं देशमाहारार्थं तु सोद्यमः। यद्दृष्टं त्वया चित्रं समाख्याहि सुतोत्तम ॥२॥

गये और कहे दूसरे तीर्थ तब तक ही गर्जना करें जब तक रेवा नहीं आ जाती है ॥३०॥ वह ब्रह्महत्या आदि पापों को विनष्ट करने के लिए प्रख्यात है । कपिला और रेवा नदी के सङ्गम स्थल पर ॥३१॥ मेघनाद सङ्गम जैसे बड़ सङ्गम स्थल पर महापुण्यवती तथा महाधन्या रेवा सर्वत्र दुर्लभ है ॥३२॥ वह रेवा नदी ओंङ्कारेश्वर, क्षेत्र, भृगुक्षेत्र तथा कुब्जा सङ्गम स्थल पर रेवा मनुष्यों के लिए दुष्प्राप्य है । माहिष्मती में तो वह देवाताओं के भी लिए दुष्प्राप्य है ॥३३॥ वह विटंका सङ्गम स्थल पर तथा श्रीकंठ क्षेत्र एवं मङ्गलेश्वर में इन सभी स्थलों में रेवा दुर्लभ है, वह देवताओं के लिए भी पुण्यवती है ॥३४॥ वह महादेवी तीर्थों की माता है । वह पाप समूह को विनष्ट करने वाली है । उसके दोनों तटों पर रहने वाले लोग सुखी हैं ॥३५॥ वहाँ एक बार भी स्नान कर लेने से मनुष्य अश्वमेघ याग करने का फल प्राप्त करता है । तुमने जो कुछ पूछा था वह मैंने सब तुम्हें बतला दिया ॥३६॥ यह समस्त पापों को विनष्ट करने वाला तथा सुनने वालों को पवित्र गति प्रदान करने वाला वृतान्त है । इस तरह से कहकर महाप्राज्ञ कुञ्जल ने अपने तीसरे पुत्र से कहा ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग च्यवन चरित्रान्तर्गत बानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९२।।

आनन्द वन में राजा सुबाहु का अपनी पत्नी के साथ अपने शव का मांस खाना

कुञ्जल ने कहा— हे विज्वल ! पृथिवी पर भ्रमण करते हुए तुमने क्या अद्भुत देखा ? जो आश्चर्यकारी हो, उसे तुम मुझे बतलाओ ॥१॥ तुम यहाँ से उद्यम पूर्वक आहार प्राप्त करने के लिए कहाँ जाते हो ? तुमने जिन-जिन विचित्र वस्तुओं को देखा है, उन सबों को मुझे बतलाओ ॥२॥ **विज्ज्वल ने**

विज्वल उवाच

अस्ति मेरुगिरेः पृष्टे आनन्दंनाम काननम् । दिव्यवृक्षैः समाकीर्णं फलपुष्पमयैः सदा ॥३॥
देववृन्दैः समाकीर्णं मुनिसिद्धसमन्वितम् । अप्सरोभिः सुरूपाभिर्गन्धर्वैः किन्नरोरगैः ॥४॥
वापीकूपतडागैश्च नदीप्रस्रवणैस्तथा । आनन्दकाननं पुण्यं दिव्यभावैः प्रभासते ॥५॥
विमानैः कोटिसङ्ख्यैश्च हंसकुन्देन्दुसन्निभैः । गीतकोलाहले रम्यैर्मेघध्वनि निनादितम् ॥६॥
षट्पदानां निनादेन सर्वत्र मधुरायते । चन्दनैश्चूतवृक्षैश्च चम्पकैः पुष्पितैर्वृतम् ॥७॥
नानावृक्षैः प्रभात्येवमानन्दवनमुत्तमम् । नानापक्षिनिनादेन बहुकोलाहलान्वितम् ॥८॥
एवमानन्दनं दृष्टं मया तत्र सुशोभनम् । विमलं च सरस्तात शोभते सागरोपमम् ॥९॥
सम्पूर्णं पुण्यतोयेन पद्मसौगन्धिकैः शुभैः । जलजैस्तु समाकीर्णं हंसकारण्डवान्वितम् ॥१०॥
एवमासीत्सरस्तस्य सुमध्ये काननय हि । देवगन्धर्व सम्बाधैर्मुनिरवृन्दैरलङ्कृतम् ॥११॥
किन्नरोरगगन्धर्वैश्चारणौश्च सुशोभते । तत्राश्चर्यं मया दृष्टं वक्तुं तात न शक्यते ॥१२॥
विमानेनापि दिव्येन कलशैरुपशोभते । छत्रदण्डपताकाभि राजमानेन सत्तम ॥१३॥
सर्वभोगाविलेनापि गीयमानेऽथ किन्नरैः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च शोभमानोऽथ सुव्रत ॥१४॥
स्तूयमानो महासिद्ध ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः । रूपेणाप्रतिमो लोके न दृष्टस्तादृशः क्वचित् ॥१५॥
सर्वाभरणशोभाङ्गो दिव्यमाला विशोभितः । महारत्न कृतामाला यस्योरसि विराजते ॥१६॥
तत्समीपे स्थिता चैका नारी दृष्टा वरानना । हेमहारैश्च मुक्तानां वलयैः कङ्कणैर्युता ॥१७॥

कहा— सुमेरु पर्वत के ऊपर आनन्द नामक वन है । वह सदैव फलों तथा फलों एवं पुष्पों से भरे तथा दिव्य वृक्षों से भरा हुआ है ॥३॥ वह देव समूहों से भरा हुआ है तथा उस पर सिद्ध मुनियों का निवास है। सुन्दर रूप वाली अप्सराओं, गन्धर्वों, किन्नरों, सर्पों ॥४॥ छोटे जलाशयों, कूपों, सरोवरों, नदियों, झरनों से पवित्र आनन्द वन दिव्य भावों से सुशोभित है ॥५॥ हंस, चन्द्रमा तथा कुन्द के समान श्वेत वर्ण के करोड़ों विमानों से तथा गीतों की कल-कल ध्वनियों तथा मेघों की ध्वनियों से वह ध्वनित रहता है ॥६॥ वह भ्रमरों की गुंजन से सर्वत्र मधुर प्रतीत होता है । वह चन्दन, आम तथा विकसित पुष्पों वाले चम्पा के वृक्षों से भरा हुआ है ॥७॥ इस तरह से आनन्द वन अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित होता है । वह अनेक पक्षियों की ध्वनि से ध्वनित होता रहता है ॥८॥ इस तरह से आनन्दप्रद आनन्दवन को मैंने देखा है । हे तात ! वहाँ पर सागर के समान स्वच्छ सरोवर सुशोभित होता है ॥९॥ उस वन के बीच में एक जल से भरा हुआ सरोवर था । उसमें मनोहर तथा सुगन्धित विकसित कमल भरे हुए थे । हंस तथा कारण्डव आदि पक्षियों से वह परिपूर्ण है ॥१०॥ वह पर देव, गन्धर्वों तथा मुनि समूह से अलंकृत है॥११॥ वह किन्नर, उरग, गन्धर्व तथा चारणगणों से सुशोभित है । हे तात ! मैंने जो वहाँ पर आश्चर्यमय वस्तु देखा उसका मैं वर्णन भी नहीं कर सकता हूँ ॥१२॥ वह दिव्य विमान तथा कलशों से सुशोभित छत्र दण्ड तथा पताकाओं से सुशोभित ॥१३॥ सभी प्रकार के भोगों से परिपूर्ण जिसका किन्नरगण गान कर रहे थे । हे सुव्रत ! गन्धर्वों तथा अप्सराओं से वह सरोवर सुशोभित था ॥१४॥ तत्त्ववेत्ता तथा महासिद्ध ऋषिगण जिसकी स्तुति कर रहे थे । ऐसा एक पुरुष वहाँ पर आया । उसके रूप की तुलना इस संसार में किसी से नहीं की जा सकती है । वैसा पुरुष मैंने कहीं नहीं देखा ॥१५॥ वह दिव्य माला से सुशोभित था तथा

दिव्यवस्त्रैश्च गन्धैश्च चन्दनैश्चारुलेपनैः । स्तूयमानो गीयमानःपुरुषस्तत्र चागतः ॥१८॥
रतिरूपा वरारोहा पीनश्रोणि पयोधरा। सर्वाभरणशोभाङ्गी तादृशी रूपसम्पदा॥१९॥
द्वावेतौ तौ मया दृष्टौ विमानेनापि चागतौ । रूपलावण्यमाधुर्यौ सर्वशोभासमाविलौ ॥२०॥
समुतीर्णौ विमानात्तावागतौ सरसोऽन्तिके । स्नातौ तात महात्मानौ स्त्रीपुंसौ कमलेक्षणौ ॥२१॥
प्रगृह्य तौ महाशस्त्रौ दम्पती तु परम्परम् । तादृशौ च शवो तत्र पतितौ सरसस्तटे॥२२॥
प्रभासेते तदा तौ तु स्त्रीपुंसौ कमलेक्षणौ। रूपेणापि महाभाग तादृशावेव तौ शवौ ॥२३॥
देवरूपोपमस्तात यथा पुंसस्तथा शवः। यथारूपं हि तस्यापि तादृशस्तत्र दृश्यते ॥२४॥
यथारूपं तु भार्यायास्तथा शवो द्वितीयकः। स्त्रीशवस्य तु यन्मांसं शस्त्रेणोत्कृत्य सा ततः ॥२५॥
भक्षते तस्य मांसानि रक्ताप्लुतानि तानि तु। पुरुषो भक्षते तद्वच्छवमांसं समातुरः॥२६॥

क्षुधया पीड्यमानौ तौ भक्षेते पिशितं तयोः ।
यावतृप्तिं समायातौ तावन्मांसं प्रभक्षितम् ॥२७॥
सरस्यथ जलं पीत्वा सञ्जातौ सुखितौ पितः ।
कियत्कालंस्थितौ तत्र विमानेन गतौ पुनः ॥२८॥

अन्येद्वे तु स्त्रियौ तात मयादृष्टे च तत्र वै। रूपसौभाग्यसम्पन्ने ते स्त्रियौ चारुलक्षणे॥२९॥
ताभ्यां प्रभुक्षितं मांसं यदा तात महावने। प्रहसेते तदा ते द्वे हास्यैरट्टाकैःपुनः ॥३०॥
भक्षेते च स्वमांसानि तावेतौ परिनित्यशः। कृत्वा स्नानादिकं मांसं पश्यतो मम तत्र हि॥३१॥

उसके सारे अङ्ग आभरणों से सुशोभित थे । महान् रत्नों से निर्मित माला उसके वक्षस्थल पर सुशोभित होती थी ॥१६॥ उसके सन्निकट एक सुन्दरी नारी दिखायी पड़ी । वह सुवर्ण के हार, तथा मोतियों के कङ्कण को धारण की थी ॥१७॥ दिव्य वस्त्रों तथा गन्धों से तथा सुन्दर लेपों वाले चन्दनों से युक्त स्तुत किया जाता हुआ वह पुरुष वहाँ पर आया ॥१८॥ उस सुन्दरी स्त्री का रूप रति के समान था उसके सभी अङ्ग सभी आभरणों तथा रूप से सुशोभित थे ॥१९॥ मैंने इन दोनों को देखा कि विमान से आये । वे दोनों रूप, लावण्य तथा माधुर्य इत्यादि सभी प्रकार के शोभाओं से समन्वित थे ॥२०॥ विमान से उतरकर वे सरोवर के सन्निकट आये । कमल के समान नेत्र वाले वे दोनों स्नान किए ॥२१॥ वे दोनों पति-पत्नी शस्त्र लेकर वहाँ पर गये जहाँ उन दोनों के ही समान दो शव पड़े हुए थे । वे भी कमल के समान नेत्र वाले शोभते थे । हे महाभाग ! इन दोनों शवों का रूप भी उन दोनों के समान था ॥२२-२३॥ हे तात ! जिस तरह वह पुरुष देवता के समान प्रतीत होता था, उसी तरह का वह शव भी देवता के ही समान था । उस नारी का जैसा रूप था उसी तरह का रूप नारी शव का भी था ॥२४॥ पत्नी के रूप के ही समान उस दूसरे शव का रूप था । स्त्री शव के मांस को निकाल कर वह स्त्री ॥२५॥ खा रही थी । वे मांस के टुकड़े भी खून से सने थे । उसी तरह आतुर होकर वह पुरुष भी शव का मांस खा रहा था ॥२६॥ भूख से व्याकुल वे दोनों पति-पत्नी दोनों शवों को खा रहे थे । वे तब तक माँस को खाते रहे जब तक कि उन दोनों की तृप्ति नहीं हो गयी ॥२७॥ हे पिताजी ! वे दोनों सरोवर के जल को पीकर सुखी हो गये । वे दोनों कुछ समय तक वहाँ रूके इसके बाद वे विमान से चले गये । हे तात ! मैंने वहाँ पर दो दूसरी स्त्रियों को देखा। वे दोनों स्त्रियाँ रूप तथा सौभाग्य से सम्पन्न तथा देखने में सुन्दर थीं ॥२८-२९॥ हे तात ! जब उन दोनों ने उस महाबन में मांस को खाया उस समय वे दोनों अट्टहास करके हँस रही थीं ॥३०॥ मेरे सामने ही वे

अन्येस्त्रियौ महाभाग रौद्राकार समन्विते। दंष्ट्राकरालवदने तत्रैवाति विभीषणे ॥३२॥
ऊचतुस्तौ तदाते तु देहिदेहीति वै पुनः। एवं दृष्टं मया तात वसता वनसन्निधौ ॥३३॥
नित्यमुत्कीर्यभक्ष्येते तौ द्वौ तु मांसमेवच। जायेतेच सुसम्पूर्णौ कायौ च शवयो पुनः॥३४॥
नित्यमुत्तीर्यतावेवं ते चाप्यन्ये च वै पितः। कुर्वन्ति सदृशीं चेष्टां पूर्वोक्तां मम पश्यतः ॥३५॥
एतदाश्चर्य सञ्जातं दृष्टं तात मया तदा। भवता पृच्छितं तात दृष्टमाश्चर्यमेव च॥३६॥
मया ख्यातं तवाग्रे वै सर्वं सन्देहकारणम्। कथयस्व प्रसादाच्च प्रीयमाणेन चेतसा॥३७॥

विमानेनागतो योऽसौ स्त्रिया सार्द्धं द्विजोत्तम।
दिव्यरूपधरोयस्तु स कस्तु कमलेक्षणः ॥३८॥

का च नारी महाभाग महामासं प्रभक्षति। स कश्चाप्यागतस्तात सा चैवाभ्येत्य भक्षति ॥३९॥
प्रहसेते तदा ते द्वे स्त्रियौ तात वदस्व नः। ऊचतुस्तौ तथा चान्ये देहिदेहीति वा पुनः ॥४०॥
ते द्वे त्वं मे समाचक्ष्व महाभीषणके स्त्रियौ। एतन्मे संशयं तात च्छेत्तुमर्हसि सुव्रत ॥४१॥
एवमुक्त्वा महाराज विरराम स चाण्डजः। एवं पृष्टस्तृतीयेन विज्वलेनात्मजेन सः ॥४२॥
प्रोवाच सर्वं वृत्तान्तं च्यवनस्यापि शृण्वतः ॥४३॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

दोनों स्नान आदि करके प्रतिदिन अपने मांसों को खाते थे ॥३१॥ हे महाभाग ! भयङ्कर आकार वाली दो स्त्रियों को मैंने देखा। उन दोनों के दाँत और मुख भयङ्कर थे। वे दोनों भयानक थीं ॥३२॥ उस समय वे दोनों उन दोनों को कहती थी दो-दो। हे तात ! वन के सन्निकट में रहकर मैंने इसी तरह का आश्चर्य देखा ॥३३॥ वे दोनों प्रतिदिन मांस को काटकर मांस को ही खाते थे उसके बाद उन दोनों शवों का शरीर पूर्ण हो जाता था ॥३४॥ वे दोनों नित्य ही विमान से उतरकर मांस खाते थे और वे दोनों स्त्रियाँ उसी प्रकार की चेष्टायें करती थी ॥३५॥ हे तात ! मैंने यही आश्चर्य वहाँ पर देखा। हे तात ! आपने देखे हुए आश्चर्य के विषय में पूछा ॥३६॥ मैंने आपके समक्ष सन्देह के समस्त कारणों को कह दिया। आप प्रसन्न हृदय से बतलायें कि ॥३७॥ जो स्त्री के साथ विमान से आया वह कमल के समान नेत्र वाला पुरुष कौन था ? और वह नारी कौन थी ? जो उस महामांस को खाती थी वे दोनों जो आकर मांस को खाते थे वे कौन थे ?॥३८-३९॥ अन्य जो दो स्त्रियाँ हँसती थीं वे कौन थी ? और वे दोनों स्त्रियाँ जो दो-दो कहती थीं और भयङ्कर आकार वाली थीं, कौन थीं ? इसे आप मुझे बतलायें, हे तात ! यही मुझको संशय है, इस संशय को आप दूर करें ॥४०-४१॥ हे महाराज ! इस प्रकार से कहकर विज्ज्वल नामक पक्षी चुप हो गया। अपने तीसरे पुत्र विज्ज्वल के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर वह ॥४२॥ कुञ्जल सारे वृत्तान्त को बतलाया जिसे च्यवन महर्षि भी सुन रहे थे ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत तिरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९३।।

चौरानबेवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि तत्सर्वं कारणं सुत। यस्मात्तौ तादृशौ जातौ स्वमांस परिभक्षकौ ॥१॥
सर्वत्र कारणं कर्म शुभाशुभं न संशयः। पुण्येन कर्मणा पुत्र नरःसौख्यं प्रभुञ्जति ॥२॥
दुष्कृतं भुञ्जते चात्र पापयुक्तेन कर्मणा। सूक्ष्मवर्त्म विचार्यैवं शास्त्रज्ञानेन चक्षुषा ॥३॥
स्थूलधर्मं प्रदृष्ट्वैव सुविचार्य पुनःपुनः । समारभेन्नरःकर्म मनसा निपुणेन च ॥४॥
समूर्तिकारकःशिल्पी रसमावर्त्तयेद्यथा । अग्नेश्चतेजसा पुत्र ज्वालाभिश्च समन्ततः ॥५॥
द्रवीभूतो भवेद्धातुर्वह्निना तापितःशनैः। यादृशं वत्स भक्ष्यं तु रसपक्वं निषेच्यते ॥६॥
तादृशं जयते वत्स रूपं चैव न संशयः। यादृशं क्रियते कर्म तादृशं परिभुज्यते ॥७॥
कर्म एव प्रधानं यद्वर्षारूपेण वर्त्तते। क्षेत्रेषु यादृशं बीजं वपते कृषिकारकः ॥८॥
तादृशं भुञ्जते तात फलमेव न संशयः। यादृशं क्रियते कर्म तादृशं परिभुज्यते ॥९॥
विनाशहेतुःकर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम् । कर्मदायादका लोके कर्मसम्बन्धिबान्धवाः ॥१०॥
कर्माणि चोदयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः । सुवर्णं रजतं वापि यथारूपं निषिच्यते ॥११॥
तथा निषिच्यते जन्तु पूर्वकर्मवशानुगः। पञ्चैतानिह दृश्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥१२॥
आयुःकर्म च वित्तं च विद्यानिधनमेव च। यथा मृत्पिण्डतःकर्त्ता कुरुते यद्यदिच्छति ॥१३॥
तथा कर्मकृतं चैव कर्त्तारं प्रतिपद्यते। देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षितां तथा ॥१४॥

कर्म की महिमा का वर्णन तथा जैमिनि द्वारा दान धर्म का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— हे पुत्र ! सुनो उन सबों का कारण मैं बतलाता हूँ। जिसके कारण वे दोनों अपने ही मांस के भक्षक हो गये ॥१॥ निःसन्देह रूप से सभी कार्यो का कोई-न-कोई पुण्य अथवा पाप रूप कर्म ही कारण होता है । हे पुत्र ! पुण्य कर्मो के द्वारा मनुष्य सुखों को भोगता है ॥२॥ पाप युक्त कर्मो के फल रूप से मनुष्य दुःखों को भोगता है । इस तरह शास्त्र ज्ञान रूप नेत्र के द्वारा सूक्ष्म मार्ग का विचार करके॥३॥ तथा स्थूल धर्म को देखकर और बार-बार विचार करके मनुष्य को चाहिये कि वह अच्छे कर्मो को शुद्ध मन से करे ॥४॥ मूर्ति को बनाने वाला शिल्पी जिस प्रकार के रस का आधान उसमें करता है, वही अग्नि की ज्वाला तथा तेज से द्रवीभूत होकर तथा अग्नि के द्वारा तपाया जाकर धातु भी वही धातु बन जाता है । हे वत्स ! भक्ष्य पदार्थ जिस प्रकार के रस से सींचकर पकाया जाता है ॥५-६॥ उसका रूप वैसा ही हो जाता है । जिस तरह का कर्म किया जाता है, उसी तरह का फल भी भोगा जाता है ॥७॥ कर्म ही प्रधान है, वही वर्षा रूप है । मनुष्य के विनाश का कारण कर्म ही है, हम सभी कर्माधीन हैं । लोक में कर्मानुरूप दायाद होते हैं, और सभी बन्धु भी कर्म सवन्धी ही होते हैं ॥८-१०॥ मनुष्य के सुख एवं दुःख दोनों के प्रेरक उसके कर्म ही हैं । रूप के ही अनुसार सुवर्ण अथवा रजत चढ़ाये जाते हैं ॥११॥ उसी तरह जीव भी अपने पूर्वकृत कर्मो के द्वारा ही अभिषिक्त होता है । गर्भ में विद्यमान जीव की पाँच चीजें देखी जाती हैं ।.आयु, कर्म, वित्त, विद्या एवं मृत्यु । जैसे मिट्टी के पिण्ड से कुम्हार जो-जो चाहता है, वहीं-वहीं बनता है ॥१२-१३॥ उसी तरह से कर्म भी कर्म कर्ता जीव को प्राप्त होते हैं । जीव अपने कर्मो के ही

तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं वा याति जन्तुःस्वकर्मभिः ।
स एव तु तथाभुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मनः ॥१५॥
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् ।
गर्भशय्यामुपादाय भुञ्जते पूर्वदेहिकम् ॥१६॥
पूर्वदेह कृतं कर्म न कश्चित्पुरुषोत्तमः । बलेन प्रज्ञया वापि समर्थःकर्तुमन्यथा॥१७॥
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ति दुःखानि च सुखानि च ।
हेतुतःकारणैर्वापि सोऽहङ्कारेण बाध्यते ॥१८॥
यथा धेनु सहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तद्वच्छुभाशुभं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥१९॥
उपभोगादृते यस्य नाश एव न विद्यते। प्राक्तनं बन्धनं कर्म कोऽन्यथा कर्तुमर्हति ॥२०॥
सुशीघ्रमनुधावन्तं विधानमनुधावति । शोभते सन्निपातेन यथाकर्म पुराकृतम् ॥२१॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति । करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते ॥२२॥
यथा छायातपौनित्यं सुसम्बद्धौ परस्परम् । उपसर्गा हि विषया उपसर्गा जरादयः ॥२३॥
पीडयन्ति नरं पश्चात्पीडितं पूर्वकर्मणा। येन यत्रोपभोक्तव्यं दुःखं वा सुखमेव च ॥२४॥
स तत्र बद्ध्वारज्ज्वेव बलाद्दैवेन नीयते। दैवं प्राहुश्च भूतानां सुखदुःखोपपादनम्॥२५॥
अन्यथा कर्मतच्चिन्त्यं जाग्रतःस्वपतोऽपिवा। अन्यथा ह्युद्यतेदैवं बध्यते च जिघांसति ॥२६॥
शस्त्राग्नि विषदुर्गेभ्यो रक्षितव्यं सुरक्षति। यथा पृथिव्यां बीजानि वृक्षगुल्मतृणान्यपि॥२७॥

देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, पक्षित्व ॥१४॥ तिर्यक्त्व, अथवा स्थावरत्व, को प्राप्त करता है । और अपने लिए विहित कर्मों का ही सहाभोग करता है ॥१५॥ अपने ही द्वारा विहित सुख तथा दुःख को जीव गर्भशय्या को प्राप्त करके पूर्वदैहिक कर्मों को भोगता है ॥१६॥ पूर्व शरीर में जो कर्म किए जा चुके हैं, उन सवों को कोई भी अपने वल अथवा बुद्धि के द्वारा नहीं वदल सकता है ॥१७॥ जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के ही अनुसार सुख तथा दुःख को भोगते हैं । वह हेतु अथवा कारणों के द्वारा अहङ्कार से बाधित होता है॥१८॥ जिस तरह हजारों गायों के बीच में विद्यमान अपनी माँ को वछड़ा खोज लेता है पुण्य तथा पाप उसी तरह कर्म भी अपने करने वाले का ही अनुगमन करते हैं ॥१९॥ उपभोग किए विना कर्म का नाश होता ही नहीं है अतएव प्राचीन बन्धन स्वरूप कर्म को कौन विनष्ट कर सकता है ?॥२०॥ अत्यन्त तेजी के साथ दौड़ने वाले के भी पीछे कर्म दौड़ता रहता है और पूर्वकृत कर्म के अनुसार वह सम्वन्ध के द्वारा शोभित होता है ॥२१॥ उस जीव के वैठने पर उसका कर्म वैठ जाता है, जव वह चलता है तो उसका पूर्वकृत कर्म उसके पीछे-पीछे चलता है । यदि वह कोई काम करता है तो वह भी उस काम को करता है अतएव पूर्वकृत कर्म जीव का छाया के समान अनुगमन करता है ॥२२॥ जिस तरह छाया और धूप एक दूसरे से सदा संवद्ध रहते हैं उपसर्ग ही विषय हो जाते हैं और उपसर्ग ही जरा आदि वन जाते हैं ॥२३॥ वे उपसर्ग (दुःख आदि उपद्रव) पहले कर्म के द्वारा पीड़ित होकर वाद में मनुष्य को पीड़ित करते हैं । जिसको जहाँ पर सुख अथवा दुःख भोगना रहता है, वह कर्म रूपी रस्सी से वँधा हुआ वहाँ पहुँच जाता है । दैव (भाग्य) को ही जीवों को सुख दुःख देने वाला कहा गया है ॥२४-२५॥ मनुष्य सोते तथा जागते समय दूसरे कर्म करना चाहता है किन्तु उसका दैव दूसरे प्रकार से उदित है और वह उसको उसी से

तथैवात्मनि कर्माणि तिष्ठन्ति प्रभवन्ति च। तैलक्षयाद्यथादीपो निर्वाणमधिगच्छति॥२८॥
कर्मक्षयात्तथा जन्तोःशरीरं नाशमृच्छति। कर्मक्षयात्तथा मृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहतम्॥२९॥
विविधाःप्राणिनां रोगाःस्मृतास्तेषां च हेतवः।
तस्मात्तत्व प्रधानं तु कर्मएव हि प्राणिनाम्॥३०॥
यत्पुरा क्रियते कर्म तदिहैव प्रभुज्यते। यत्त्वया दृष्टमेवापि पृच्छ तं तात साम्प्रतम्॥३१॥
तस्यार्थं तु मया प्रोक्तं भुञ्जाते तौ हि साम्प्रतम्।
आनन्दे कानने दृष्टं तयो कर्म सुदारुणम्॥३२॥
तयोश्चेष्टां प्रवक्ष्यामि शृणु वत्स प्रभाषतः। कर्मभूमिरियं तात अन्याभोगार्थभूमय॥३३॥
सर्गादीनां महाप्राज्ञ तासु गत्वा सुभुञ्जति। चौलदेशे महाप्राज्ञः सुवाहुर्नाम भूमिपः॥३४॥
रूपवान्गुणवान्धीरःपृथिव्यां नास्ति तादृशः। विष्णुभक्तो महाप्राज्ञो वैष्णवानां च सुप्रियाः॥३५॥
कर्मणा त्रिविधेनापि प्रध्यायन्मधुसूदनम्। अश्वमेधादिकान्यज्ञान्यजेत सकलान्नृप॥३६॥
पुरोधास्तस्य चैवास्ति जैमिनिर्नाम ब्राह्मणः। स चाहूय सुवाहु तमिदं वचनमब्रवीत्॥३७॥
राजन्देहि सुदानानि यैः सुखं तु प्रभुज्यते। दानैस्तु तरते लोकान्दुर्गान्प्रेत्यगतो नरः॥३८॥
दानेन सुखमाप्नोति यशःप्राप्नोति शाश्वतम्। दानेन चातुलाकीर्तिर्जायते मृत्युमण्डले॥३९॥

बाँधकर मार देता है ॥२६॥ रक्षणीय वस्तु की ही शस्त्र, अग्नि, विष तथा दुर्ग के द्वारा रक्षा की जाती है ठीक उसी तरह जिस तरह पृथिवी में डाले गये बीज, वृक्ष, गुल्म तथा तृण की रक्षा होती है ॥२७॥ उसी तरह से कर्म भी आत्मा में रहते हैं और उत्पन्न होते हैं। जिस तरह तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है ॥२८॥ उसी तरह कर्मों का क्षय हो जाने पर शरीर का भी नाश हो जाता है। कर्मवेत्ताओं ने कहा है कि उसी तरह कर्मों का नाश हो जाने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ॥२९॥ उन सबों के कारण प्राणियों के अनेक रोग बतलाए गये हैं, किन्तु वास्तविकता यही है, उन सबों का प्रधान कारण कर्म ही है॥३०॥ पहले जो कर्म किया गया रहता है उसका फल इस जन्म में ही भोगा जाता है। हे तात ! तुमने जो पहले देखा है उसको इस समय पूछो ॥३१॥ उसका अर्थ मैंने बतलाया कि वे दोनों कर्मों का ही फल भोगते हैं। तुमने आनन्द वन में भयङ्कर कर्म देखा ही है ॥३२॥ हे वत्स ! उन दोनों के कर्मों को मैं बतलाता हूँ उसे तुम सुनो। हे तात ! यह भारत की भूमि है, कर्म भूमि है और दूसरी भोग भूमियाँ हैं॥३३॥ हे महाप्राज्ञ ! अतएव उन भूमियों में जाकर जीव सृष्टि आदि के फल को भोगता है। **सूतजी ने कहा—** चोल देश में एक सुबाहु नामक राजा था। उसके जैसे पृथिवी पर रूपवान्, गुणवान् तथा धैर्यवान् कोई नहीं था। वह महाप्राज्ञ भगवान् विष्णु का भक्त तथा वैष्णवों का अत्यन्त प्रिय था ॥३४-३५॥ वह तीनों प्रकार के कर्मों के द्वारा सदा भगवान् मधुसूदन का ध्यान करता रहता था। उस राजा ने अश्वमेध आदि सारे यज्ञों को किया ॥३६॥ उसके पुरोहित जैमिनि नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने सुबाहु को बुलाकर कहा॥३७॥ हे राजन् ! आप सुन्दर दानों को करें जिन सबों के द्वारा मनुष्य सुख को प्राप्त करता है। मरने के बाद परलोक में गया हुआ मनुष्य दान के ही द्वारा कठिन लोकों को पार करता है ॥३८॥ दान के द्वारा मनुष्य सुख को प्राप्त करता है और शाश्वत यश को प्राप्त करता है। दान से मृत्यु मण्डल (भूलोक) में अतुलनीय कीर्ति होती है ॥३९। उसका यश जब तक इसलोक में रहता है तब तक वह कर्ता स्वर्ग लोक में निवास

यावत्कीर्तिःस्थिताचात्र तावत्कर्ता दिवं वसेत् ।
तद्दानं दुष्करं प्राहुर्दातुं नैव प्रशक्यते ॥४०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्यं मानवैःसदा ॥४१॥

सुबाहुरुवाच

दानाच्च तपसो वापि द्वयोर्मध्ये सुदुष्करम् । किं वा महत्फलं प्रेत्य तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम॥४२॥

जैमिनिरुवाच

दानान्न दुष्करतरं पृथिव्यामस्ति किंचन। राजन्प्रत्यक्षमेवैकं दृश्यते लोकसाक्षिकम् ॥४३॥
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्धनार्थं लोभमोहिताः । प्रविशन्ति नरा लोके समुद्रमटवीं तथा॥४४॥
सेवामन्ये प्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिति या स्थिता । हिंसाप्रायां बहुक्लेशं कृषिं चैव तथा पुरा ॥४५॥
तस्य दुःखार्जितस्यापि प्राणेभ्योपि गरीयसः ।
अर्थस्य पुरुषव्याघ्र परित्यागःसुदुष्करः ॥४६॥
विशेषतो महाराज तस्य न्यायार्जितस्य च। श्रद्धया विधिवत्पात्रे दत्तस्यान्तो न विद्यते॥४७॥
श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वतारिणी । सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी ॥४८॥
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः । निष्किञ्चनास्तु मुनयःश्रद्धा धर्माद्दिवंगताः ॥४९॥
सन्ति दानान्यनेकानि नानाभेदैर्नृपोत्तम। अन्नदानात्परं नास्ति प्राणिनां गतिदायकम् ॥५०॥
तस्मादन्नं प्रदातव्यं पयसा च समन्वितम् । मधुरेण विपुण्येन वचसा च समन्वितम् ॥५१॥
नास्त्यन्नात्तु परं दानमिहलोके परत्र च । तारणाय हितायैव सुखसम्पत्तिहेतवे ॥५२॥

करता है । उस दान को दुष्कर कहा गया है उसको नहीं दिया जा सकता है ॥४०॥ अतएव हर प्रकार के प्रयास के द्वारा मनुष्यों को दान करना चाहिए । **सुबाहु ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! आप मुझे यह वतलाइये कि दान तथा तपस्या इन दोनों में अत्यन्त दुष्कर कौन है ? और इन दोनों में से किसका फल महान् होता है ? **जैमिनि ने कहा—** दान से बढ़कर पृथिवी में दुष्कर कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है ॥४१-४२॥ हे राजन् ! संसार में यह प्रत्यक्षतः देखा जाता है तथा इस में संसार ही साक्षी है कि लोग धन प्राप्त करने के लिए लोभ तथा मोह से मोहित होकर अपने प्रिय प्राणों की परवाह किए विना ही समुद्र तथा अरण्य में प्रवेश कर जाते हैं । दूसरे लोग जिसे कुत्ते की वृत्ति कहा गया है उस नौकरी को करने लगते हैं ॥४३-४४॥ पहले जैसे लोग हिंसा प्रधान कृषि को करते है कृषि करने में वहुत ही कष्ट होता है । वह धन जो बड़े कष्ट से कमाया जाता है, वह प्राण से भी अधिक प्रिय होता है ॥४५॥ हे पुरुष व्याघ्र ! उस अर्थ का परित्याग बड़ा ही कठिन होता है विशेष रूप से न्यायपूर्वक कमाये हुए धन का त्याग तो अत्यन्त दुष्कर होता है॥४६॥ योग्य पात्र को श्रद्धा और विधि पूर्वक दिए गये दान के फल का कोई भी अन्त नहीं है । श्रद्धा देवी धर्म की पुत्री हैं वह पवित्र तथा विश्व का उद्धार करने वाली हैं ॥४७॥ वे ही सावित्री प्रसवित्री तथा संसार सागर से पार उतारने वाली हैं । धर्म की प्राप्ति श्रद्धा तथा विभिन्न प्रकार के धनों से होती हैं ॥४८॥ मुनिजन जो अकिञ्चन होते हैं वे श्रद्धा धर्म का पालन करके स्वर्ग चले गये । हे नृपोत्तम ! अनेक प्रकार के भेदों से युक्त दान अनेक प्रकार के हैं ॥४९॥ किन्तु कोई भी दान अन्न दान से बढ़कर मनुष्यों को गति प्रदान करने वाला नहीं है । अतएव अन्न और जल का दान करना चाहिए ॥५०॥ उस दान को मधुर वाणी पूर्वक करना चाहिए । इसलोक तथा परलोक में अन्न दान से बढ़कर कोई भी दान नहीं है ॥५१॥ संसार

श्रद्धया विधिवत्पात्रे निर्मलेनापि चेतसा। अन्नैकस्य प्रदानस्य फलं भङ्क्ते निरन्तरम्॥५३॥
प्रासाद्ग्रासं प्रदातव्यं मुष्टिप्रस्थं न संशयः। अक्षयं जायते तस्य दानस्यापि महाफलम्॥५४॥
न च प्रस्थं न वा मुष्टिं नरस्य हि न सम्भवेत्।
अनास्तिक्य प्रभावेण पर्वणि प्राप्य मानवः॥५५॥
श्रद्धया ब्राह्मणं चैकं भक्त्याचैवं प्रभोजयेत्।
एकस्यापि प्रधानस्य अन्नस्यापि प्रजेश्वर॥५६॥
जन्मान्तरं सुसम्प्राप्य नित्यं चान्नं प्रभुञ्जति। पूर्वजन्मनि यद्दतं भक्त्यापात्रे सकृन्नरैः॥५७॥
जन्मान्तरं सुसम्प्राप्य नित्यमेव भुनक्ति च। अन्नदानं प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यो हि नित्यशः॥५८॥
मिष्टान्नपानं भुञ्जन्ति ते नरा अन्नदायिनः। अन्नमेव वदत्येत ऋषयो वेदपारगाः॥५९॥
प्राणभूतं न सन्देहममृताब्धि समुद्भवम्। प्राणास्तेन प्रदत्ता हि येन चान्नं समर्पितम्॥६०॥
अन्नदानं महाराज देहि त्वं तु प्रयत्नतः। एममाकर्ण्य वै राजा जैमिनेस्तु महात्मनः॥
पुनःपप्रच्छ तं विप्रं जैमिनिं ज्ञानपण्डितम्॥६१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमहात्म्ये च्यवनचरित्रे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

से उद्धार के लिए, कल्याण प्राप्त करने के लिए तथा सुख संपत्ति प्राप्त करने के लिए, श्रद्धा तथा विधि पूर्वक योग्य पात्र को निर्मल अन्तःकरण के द्वारा केवल किए गये अन्नदान का ही फल मनुष्य भोगता है। अतएव भोजन के बाद वस्त्र देना चाहिए तथा मुट्ठी भर या एक पसर अन्न दान देना चाहिए॥५२-५३॥ उस दान का भी निश्चित रूप से अक्षय फल होता है। मुट्ठी भर अथवा एक प्रसर अन्न दान करना मनुष्य के लिए असंभन नहीं है॥५४॥ आस्तिकता के प्रभाव से पर्व के दिन मनुष्य को चाहिए कि वह किसी ब्राह्मण को प्राप्त करके श्रद्धा भक्ति पूर्वक उसे भोजन कराये॥५५॥ हे प्रजेश्वर! केवल प्रधान भूत अन्न दान करने वाला मनुष्य दूसरे जन्म में नित्य ही भोजन प्राप्त करता है॥५६॥ मनुष्य पूर्वजन्म में जो कुछ एकबार भी भक्तिपूर्वक दान करता है, उसको वह अपने दूसरे जन्म में नित्य ही भोगता है॥५७॥ जो लोग ब्राह्मणों को प्रतिदिन अन्न का दान करते हैं वे अन्न दान करने वाले मनुष्य प्रतिदिन मधुर अन्न, जल का भोग करते है॥५८॥ वेद पराङ्गत ऋषियों का कहना कि अन्न अमृत से उत्पन्न है और सबों का प्राण है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है॥५९॥ जो व्यक्ति अन्न दान करता है, वह प्राण ही प्रदान करता है, अतएव हे महाराज! आप प्रयत्न पूर्वक अन्न दान करें॥६०॥ महात्मा जैमिनि के इस तरह के वाक्यों को सुनकर राजा फिर उस ज्ञानी पण्डित जैमिनि से पूछे॥६१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ के माहात्म्य के वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरितान्तर्गत चौरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥९४॥

पच्चानबेवाँ अध्याया

सुबाहुरुवाच

स्वर्गस्य मे गुणान्ब्रूहि साम्प्रतं द्विजसत्तम। एतत्सर्वं द्विजश्रेष्ठ करिष्यामि स्वभाविकम् ॥१॥

जैमिनिरुवाच

नन्दनादीनि रम्याणि दिव्यानि विविधानि च। तत्रोद्यानानि पुण्यानि सर्वकामयुतानि च॥२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैः शोभनानि समन्ततः। विमानानि सुदिव्यानि सेवितान्यप्सरोगणैः ॥३॥
सर्वत्रैव विचित्राणि कामगानि वशानि च। तरुणादित्य वर्णानि मुक्ताजालान्तराणि च ॥४॥
चन्द्रमण्डल शुभ्राणि हेमशय्यासनानि च । सर्वकामसमृद्धाश्च सर्वदुःखविवर्जिताः ॥५॥
नराःसुकृतिनस्तेषु विचरन्ति यथा भुवि । न तत्र नास्तिका यान्ति नस्तेना नाजितेन्द्रियाः ॥६॥
न नृशंसा न पिशुना न कृतघ्ना न मानिनः। सत्यास्तपःस्थिताःशूरा दयावन्तःक्षमापराः ॥७॥
यज्वानो दानशीलाश्च तत्र गच्छन्ति ते नराः।न रोगो न जरा मृत्युर्न शोको न हिमातपौ॥८॥
न तत्रक्षुत्पिपासा च कस्य ग्लानिर्नि विद्यते। एते चान्ये च बहवो गुणाःस्वर्गस्य भूपते ॥९॥

दोषास्तत्रैव ये सन्ति ताञ्छृणुष्व च साम्प्रतम् ।
शुभस्य कर्मणःकृत्स्नं फलं तत्रैव भुज्यते ॥१०॥
न चात्र क्रियते भूयःसोऽत्र दोषो महान्स्मृतः ।
असन्तोषश्च भवति दृष्ट्वा दीप्तां परां श्रियम् ॥११॥

सुखव्याप्ता मनस्कानां सहसा पतनं तथा। इह यत्क्रियते कर्म फलं तत्रैव भुज्यते॥१२॥

स्वर्ग के गुणों का वर्णन तथा दान धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

राजा सुबाहु ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझे आप स्वर्ग के गुणों को बतलाइये । इन सबों को मैं स्वाभाविक रूप से करूँगा ॥१॥ **जैमिनि ने कहा—** स्वर्ग में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले नन्दन आदि मनोहर तथा दिव्य अनेक पवित्र उद्यान हैं ॥२॥ वे सभी अभिप्रेत फल देने वाले वृक्षों से सुशोभित हैं । वहाँ पर दिव्य विमान हैं जिसमें अप्सराएँ रहती हैं ॥३॥ वे विचित्र विमान हैं तथा इच्छा के अनुसार जहाँ कहीं भी जाते हैं उनका वर्ण दोपहर के सूर्य के समान है तथा उन विमानों के भीतर मोतियों के जाल लगे हुए हैं ॥४॥ वे चन्द्रमण्डल के समान श्वेत हैं, उन सबों में स्वर्ण रचित शय्या और आसन है । स्वर्ग में जिनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हैं, तथा सभी दुःखों से रहित पुण्यवान् मनुष्य विचरण करते हैं । नास्तिक, चोरी करने वाले तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य नहीं जाते हैं ॥५-६॥ वहाँ नृशंस (क्रूर कर्म करने वाले) चुगुलखोर, कृतघ्न तथा घमण्डी मनुष्य भी नहीं जाते हैं । जो लोग सत्य बोलने वाले, तपस्वी, शूरवीर, दयालु, क्षमा करने वाले ॥७॥ यज्ञ करने वाले, दान करने वाले ही मनुष्य जाते हैं । वहाँ पर रोग, जरा, मृत्यु, शोक, अधिक ठण्डी अथवा अधिक गर्मी नहीं होते हैं ॥८॥ वहाँ किसी को भूख, प्यास और ग्लानि (श्रान्ति) नहीं होती है । हे राजन् ! इसके अतिरिक्त स्वर्ग के दूसरे बहुत से गुण है ॥९॥ वहाँ पर जो दोष हैं, उन सबों को मैं बतलाता हूँ, उनको आप सुनें । सम्पूर्ण पुण्य कर्मों का फल वहीं पर भोगा जाता है ॥१०॥ स्वर्ग का महान् दोष है कि वहाँ पर कोई नया पुण्य नहीं किया जाता है । वहाँ पर दूसरे की विशाल सम्पत्ति को

कर्मभूमिरियं राजन्फलभूमिरसौ स्मृता ॥१३॥

सुबाहुरुवाच

महान्तस्तु इमे दोषास्त्वया स्वर्गस्य कीर्तिताः ।
निर्दोषाःशाश्वता येऽन्ये तांस्त्वं लोकान्वद द्विज ॥१४॥

जैमिनिरुवाच

आब्रह्मसदनादेव दोषाःसन्ति च वै नृप । अतएव हि नेच्छन्ति स्वर्गप्राप्तिं मनीषिणः ॥१५॥
आब्रह्मसदनादूर्ध्वं तद्विष्णोःपरमं पदम् । शुभं सनातनं ज्योतिःपरंब्रह्मेति तद्विदुः ॥१६॥
न तत्र मूढा गच्छन्ति पुरुषा विषयात्मकाः । दम्भ मोहभयद्रोह क्रोधलोभैरभिद्रुताः ॥१७॥
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वास्संयतेन्द्रियाः । ध्यानयोगरताश्चैव तत्र गच्छन्ति साधवः ॥
एत्तते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१८॥

कुञ्जल उवाच

एवं स्वर्गगुणं श्रुत्वा सुबाहुःपृथिवीपतिः। तमुवाच महात्मानं जैमिनिं वदतां वरम् ॥१९॥
नाहं स्वर्गं गमिष्यामि न चैवेच्छाम्यहं मुने । यस्माच्च पतनं प्रोक्तं तत्कर्म न करोम्यहम् ॥२०॥
दानमेकं महाभाग नाहं दास्ये कदा ध्रुवम् । दानाच्च फललोभाच्च तस्मात्पतति वै नरः ॥२१॥
इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा सुबाहुःपृथिवीपतिः। ध्यानयोगेन देवेशं यजिष्ये कमलाप्रियम्॥२२॥
दाहप्रलयसंवर्जं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ॥२३॥

देखकर मन में असन्तोष भी होता है ॥११॥ सुख से व्याप्त मन वालों का सहसा पतन हो जाता है । इसलोक में जो पुण्य कर्म किए जाते हैं उनका फल स्वर्ग में ही प्राप्त होता है ॥१२॥ हे राजन् ! यह भूलोक कर्म भूमि है और स्वर्गलोक फल भूमि है **सुबाहु ने कहा**— आपने स्वर्ग के इन महान् दोषों को बतलाया ॥१३॥ हे द्विज ! आप उन लोकों का वर्णन करें जो दोष रहित तथा शाश्वत हैं । **जैमिनि ने कहा**— हे राजन् ! ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने दोष हैं वे सबके सब दोष युक्त हैं ॥१४॥ इसीलिए मनीषी पुरुष स्वर्गलोक को प्राप्त करना नहीं चाहते हैं । ब्रह्माजी के लोक के ऊपर प्रख्यात भगवान् विष्णु का परंपद है ॥१५॥ उसको ही ज्ञानी पुरुष शुभ तथा सनातन ज्योति तथा परब्रह्म कहते हैं । उस लोक में विषयी तथा अज्ञानी जीव नहीं जाते हैं ॥१६॥ दम्भ, मोह, भयद्रोह, क्रोध तथा लोभ से दूषित जीव भी नहीं जाते हैं। वहाँ पर निर्मम (ममता रहित) अहङ्कार रहित, द्वन्द रहित, जितेन्द्रिय ॥१७॥ ध्यान योग परायण साधु (सज्जन) पुरुष ही वहाँ जाते हैं । इस तरह से आपने जो मुझसे पूछा वह मैंने आपको बतला दिया ॥१८॥ इस तरह से स्वर्ग के गुणों को सुनकर राजा सुबाहु उन बोलने वाले में श्रेष्ठ महात्मा जैमिनि से कहा॥१९॥ **सुबाहु ने कहा**— हे मुने ! मैं स्वर्ग जाना नहीं चाहता हूँ अतएव मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा, क्योंकि स्वर्ग से पतन होता है अतएव मैं स्वर्गोपयोगी कर्मों को नहीं करूँगा । हे महाभाग ! मैं कभी भी दान नहीं करूँगा। दान तथा फल के ही लोप से मनुष्य स्वर्ग से गिरता है ॥२०-२१॥ इस तरह से कहकर धर्मात्मा राजा सुबाहु ने कहा मैं ध्यान योग के द्वारा कमलापति श्रीहरि की आराधना करूँगा ॥२२॥ मै दाह और प्रलय से रहित विष्णु लोक में जाऊँगा । **जैमिनि ने कहा**— राजन् ! आपने सत्य ही कहा है । आपका कथन समस्त कल्याणों से युक्त है ॥२३॥ धार्मिक राजगण महायज्ञों के द्वारा यजन करते हैं । हे नृपनंदन ! वे यज्ञों में

जैमिनिरुवाच

सत्यमुक्तं त्वया भूपः सर्वश्रेयःसमाकुलम्। राजानो धर्मशीलाश्च महायज्ञैर्यजन्ति ते॥२४॥
सर्वदानानि दीयन्ते यज्ञेषु नृपनन्दन। आदावन्नं तु यज्ञेषु वस्त्रं ताम्बूलमेव च॥२५॥
काञ्चनं भूमिदानं च गोदानं प्रददन्ति च। सुयज्ञैर्वैष्णवंलोकं ते प्रयान्ति नरोत्तमाः॥२६॥
दानेन तृप्तिमायान्ति सन्तुष्टाःसन्ति भूमिपाः। तपस्विनो महात्मानो नित्यमेवं यजन्ति ते॥२७॥
सुभिक्षां याचयित्वा तु स्वस्थानं तु समागताः।
भिक्षार्थं तस्य भागानि प्रकुर्वन्ति च भूपते॥२८॥
ब्राह्मणाय विभागैकं गोग्रासं तु महामते। सुपार्श्ववर्तिनां चैकं प्रयच्छन्ति तपोधनाः॥२९॥
तस्यान्नस्य प्रदानेन फलं भुञ्जन्ति मानवाः। क्षुधातृषाविहीनास्ते विष्णुलोकं व्रजन्ति वै॥३०॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र देहि न्यायार्जितं धनम्। दानाज्ज्ञानं ततःप्राप्य ज्ञानात्सिद्धिं प्रयास्यसि॥३१॥
य इदं शृणुयान्मर्त्यः पुण्याख्यानमनुत्तमम्। विमुक्तःसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५॥

सभी प्रकार के दानों को देते हैं॥२४॥ यज्ञ के प्रारम्भ वे अन्न, वस्त्र, ताम्बूल, सुवर्ण, भूमिदान तथा गोदान करते हैं॥२५॥ उन सुन्दर यज्ञों के द्वारा वे भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं। वे राजागण दान के द्वारा तृप्त और सन्तुष्ट रहते हैं॥२६॥ तपस्वी और महात्मागण प्रतिदिन इस तरह से यजन करते हैं। वे भिक्षा माँग कर अपने स्थान पर आते हैं॥२७॥ हे राजन्! वे भिक्षा के अन्न में से कई भाग करते हैं। एक भाग ब्राह्मण को देने के लिए करते हैं उसके बाद गोग्रास निकालते हैं॥२८॥ वे तपस्वी अपने सन्निकट में रहने वाले जीवों का उसका एक भाग देते हैं। उस अन्न का दान करने से मनुष्य उस दान का फल भोगते हैं॥२९॥ वे भूख तथा प्यास से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं। इसलिए हे राजेन्द्र! आप भी अपने न्यायार्जित धन का दान करें॥३०॥ दान से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस पवित्र कथा का श्रवण करता है॥३१॥ उसको सभी प्रकार की सिद्धि होती है और उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। सभी पापों से रहित होकर वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत पंचानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥९५॥

छियानबेवाँ अध्याय

सुबाहुरुवाच

कीदृशैःकर्मभिःप्रेत्य गच्छन्ति नरकं नराः। स्वर्गं तु कीदृशैःप्रेत्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥१॥

जैमिनिरुवाच

ब्रह्मण्यं पुण्यमुत्सृज्य ये द्विजा लोभमोहिताः ।
कुकर्माण्युपजीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥२॥

नास्तिका भिन्नमर्यादाःकन्दर्पविषयोन्मुखाः। दाम्भिकाश्च कृतघ्नश्च ते वै निरयगामिनः ॥३॥
ब्राह्मणेभ्यःप्रतिश्रुत्य न प्रयच्छन्ति ये धनम्। ब्रह्मस्वानां च हर्तारो नरा निरयगामिनः ॥४॥
पुरुषाः पिशुनाश्चैव मानिनोऽनृतवादिनः। असम्बद्ध प्रलापाश्च ते वै निरयामिनः ॥५॥
य परस्वापहर्तारःपरदूषणसूचकाः। परस्त्रीगामिनो ये च ते वै निरयगामिनः ॥६॥
प्राणिनां प्राणहिंसायां ये नरा निरताःसदा। परनिन्दारता ये वै ते वै निरयगामिनः ॥७॥
सुकूपानां तडागानां प्रपानां च परन्तप। सरसां चैव भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥८॥
विपर्यस्यन्ति ये दाराञ्छिशून्भृत्यातिथींस्तथा। उत्सन्नपितृदेवेज्या नरा निरयगामिनः ॥९॥
प्रवज्या दूषका राजन्ये चैवाश्रमदूषकाः। सखीनां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥१०॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोक महेश्वरम्। न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः॥११॥
प्रयाजानां मखानां च कन्यानां सुहृदां तथा। साधूनां च गुरूणां च दूषका निरयङ्गमाः॥१२॥

नरकगामी तथा स्वर्गगामी जीवों का वर्णन

राजा सुबाहु ने कहा— किस प्रकार के कर्म को करने वाले मनुष्य मरने के बाद नरक में जाते हैं तथा किस प्रकार के कर्मो को करने वाले मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं, इसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ **जैमिनि ने कहा—** जो ब्राह्मण ब्राह्मण के कर्मो का परित्याग करके लोभ के कारण मोहित होकर कुकर्म के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥२॥ नास्तिक, मर्यादा का उल्लंघन करने वाले तथा कामुक विषयों में प्रवृत्त रहने वाले, दम्भ करने वाले तथा कृतघ्न भी नरकगामी होते हैं ॥३॥ ब्राह्मणों को दान देने की प्रतिज्ञा करके जो उन सबों को नहीं देते हैं, जो ब्राह्मण की सम्पत्ति को हड़प लेते हैं, ऐसे मनुष्य नरकगामी हैं ॥४॥ ऐसे पुरुष जो किसी की चुगली करते हैं, घमण्ड करने वाले, झूठ बोलने वाले, असम्बद्ध बातें करने वाले, ये सब नरक में जाते हैं ॥५॥ जो दूसरे की सम्पत्ति को हड़पते हैं दूसरे के दोष को सूचित करते हैं, परस्त्रीगमन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥६॥ जो दूसरे जीवों की हिंसा करने में सदा लगे रहते हैं तथा सदा दूसरों की निन्दा करने वाले, नरकगामी होते हैं ॥७॥ कूपों, जलाशयों, प्याऊ और सरोवर को विनष्ट करने वाले लोग नरक में जाते हैं ॥८॥ जो पत्नियों, बच्चों, नौकरों और अतिथियों को बदलने का काम करते हैं, वे नरकगामी होते हैं । जो पितरों तथा देवताओं की पूजा करना छोड़ देते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥९॥ हे राजन् ! जो संन्यास को दूषित करते हैं, जो आश्रमों को दूषित करते हैं, जो अपने मित्रों को दूषित करते हैं, वे सभी नरकगामी होते हैं ॥१०॥ जो आद्य पुरुष सम्पूर्ण जगत् के प्रशासक तथा सबों के स्वामी भगवान् विष्णु की चिन्ता (ध्यान पूजन आदि) नहीं करते हैं, वे नरकगामी होते

काष्ठैर्वा शङ्कुभिर्वापि शूलैरश्मभिरेव वा। ये मार्गानुपरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः॥१३॥
सर्वभूतेष्वविश्वस्ताःकामेनार्तास्तथैव च। सर्वभूतेषु जिह्माश्च ते वै निरयगामिनः॥१४॥
आगतान्भोजनार्थं तु ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान्। प्रतिषेधं च कुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः॥१५॥
क्षेत्रवृत्तिं गृच्छेदं प्रीतिच्छेदं च ये नराः। आशाच्छेदं प्रकुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः॥१६॥
शस्त्राणां चैव कर्त्तारःशल्यानां धनुषां तथा। विक्रेतारश्च राजेन्द्र नरा निरयगामिनः॥१७॥
अनाथं विक्लवं दीनं रोगार्त्तं वृद्धमेव च। नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरयगामिनः॥१८॥
नियमान्पूर्वमादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः। अतिक्रामन्ति चाञ्चल्यात्ते वै निरयगामिनः॥१९॥
इत्येते कथिता राजन्नरा निरयागामिनः। स्वर्गलोकस्य गन्तारो ये जनास्तान्निबोध मे॥२०॥
सत्येन तपसा क्षान्त्या दानेनाध्ययनेन च। ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराःस्वर्गगामिनः॥२१॥
ये च होमपराध्यान देवतार्चनतत्पराः। आददाना महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२२॥
शुचयश्च शुचौ देशे वासुदेवपरायणः। पठन्ति विष्णुं गायन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः॥२३॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां ये कुर्वन्ति सदादृताः। वर्जयन्ति दिवास्वप्नं ते नराःस्वर्गगामिनः॥२४॥
सर्वहिंसा निवृत्ताश्च साधुसङ्गाश्च ये नराः। सर्वस्यापि हिते युक्तास्तेनराः स्वर्गगामिनः॥२५॥
सर्वलोभनिवृत्ताश्च सर्वसाहाश्च ये नराः। सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराःस्वर्गगामिनः॥२६॥
शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च गुरूणां मानदा नराः। प्रतिग्रहनिवृत्ता ये ते नराःस्वर्गगामिनः॥२७॥

हैं ॥११॥ प्रजायों तथा यज्ञों, कन्याओं, मित्रों, साधुपुरुषों तथा गुरुजनों को दूषित करने वाले लोग नरकगामी होते हैं ॥१२॥ काठों, कीलों अथवा शून्यरस्सियों से जो रास्ते को बन्द कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥१३॥ जो किसी भी जीव पर विश्वास नहीं करते, जो सदा कामुक बने रहते हैं तथा जो सभी लोगों से छल छद्म करते हैं, वे जीव नरकगामी होते हैं ॥१४॥ जिनकी कोई भी वृत्ति नहीं है, ऐसे भोजन करने के लिए आये हुए ब्राह्मणों का निषेध कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥१५॥ खेतों को काटने वाले, किसी के घर को विनष्ट करने वाले, किसी की जीविका छुड़ा देने वाले, दो लोगों की मित्र को तोड़वा देने वाले, तथा किसी को आशा देकर उसे निराश करने वाले ये सभी नरकगामी होते हैं ॥१६॥ शस्त्रों को बनाने वाले, बाणों, धनुषों को बेंचने वाले हे राजेन्द्र ! नरकगामी होते हैं ॥१७॥ अनाथ, व्याकुल, दीन बने हुए रोगी और वृद्ध इन सवों पर जो लोग दया नहीं करते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥१८॥ जो अजितेन्द्रिय लोग पहले तो कोई नियम करना प्रारम्भ कर देते हैं; किन्तु बाद में उसका पालन अपनी चंचलता के कारण नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥१९॥ हे राजन् ! इस तरह से मैंने नरक में जाने वाले जीवों का वर्णन किया, अब आप उन लोगों को सुनें जो स्वर्ग में जाते हैं ॥२०॥ सत्यभाषण, तपस्या, क्षमा करना, दान तथा अध्ययन के द्वारा जो धर्म का अनुगमन करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ॥२१॥ जो होम, ध्यान तथा देवताओं की पूजा करते रहते हैं तथा जो दान करते रहते हैं, वे मनुष्य नरकगामी होते हैं ॥२२॥ जो लोग स्वयं पवित्र रहकर पवित्र स्थान में भगवान् वासुदेव की सेवा करने वाले तथा भगवान् विष्णु की स्तुति करने वाले होते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥२३॥ जो लोग आदर पूर्वक अपने माता-पिता की सेवा करते हैं। दिन में नहीं सोते है वे लोग स्वर्ग में जाते हैं ॥२४॥ जो मनुष्य किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते हैं तथा सज्जनों की सङ्गति करते हैं, सबों का कल्याण करते रहते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥२५॥ जो मनुष्य सभी

सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः। त्रातारश्च सहस्राणां ते नराःस्वर्गगामिनः ॥२८॥

भयात्कामात्तथाऽऽशोकाद्दारिद्र्यात्पूर्वकर्मणः ।
न कुत्सन्ति च ये नूनं ते नराःस्वर्गगामिनः ॥२९॥

आत्मस्वरूपवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत। ये वै जितेन्द्रियाधीरास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३०॥

सुवर्णस्य च दातारो गवां भूमेश्च भारत । अन्नानां वाससां चैव ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३१॥

ये याचिताःप्रहृष्यन्ति प्रियं दत्त्वा वदन्ति च। त्यक्तदानफलेच्छाश्च ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३२॥

निवेशनानां धान्यानां नराणां च परन्तप। स्वयमुत्पाद्य दातारःपुरुषाःस्वर्गगामिनः ॥३३॥

द्विषतामपि ये दोषन्नवदन्ति कदाचन। कीर्तयन्ति गुणान्ये च ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३४॥

ये परेषां श्रियं दृष्ट्वा न वितप्यन्ति मत्सरात् ।
प्रहृष्टाश्चाभिनन्दन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३५॥

प्रवृतौ च निवृतौ च श्रुतिशास्त्रोक्तमेव च। आचरन्ति महात्मानस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३६॥

ये नराणां वचो वक्तुं न जानन्ति च विप्रियम् ।
प्रियवाक्यैकविज्ञातास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३७॥

ये नाम भागान्कुर्वन्ति क्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः। हन्तकारस्य कर्तारस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३८॥

वापीकूपतडागानां प्रपानां चैव वेश्मनाम्। आरामाणां च कर्तारस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥३९॥

प्रकार के लोभ से रहित और सबकुछ सहने वाले हाते हैं, तथा जो सबों को आश्रय प्रदान करते हैं वे लोग स्वर्ग में जाते हैं ॥२६॥ जो लोग सेवा तथा तपस्या के द्वारा अपने गुरुजनों को सम्मान प्रदान करते हैं तथा जो किसी प्रकार का दान नहीं लेते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ॥२७॥ जिसको हजारों लोग घेरे रहते हैं तथा जो हजारों दान देते हैं तथा जो हजारों की रक्षा करते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥२८॥ जो लोग भय से, पाप से, संताप से, शोक से, दारिद्र्य से तथा व्याधि से दुःखी जीवों को दुःखों से मुक्त करते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥२९॥ जो मनुष्य आत्मा के स्वरूप से सम्पन्न रहते हैं तथा युवावस्था में भी जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं ॥३०॥ हे भारत ! जो सुवर्ण, भूमि तथा गौ का दान करते हैं तथा जो लोग अन्नों एवं वस्त्रों का दान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ॥३१॥ कुछ याचना करने पर जो लोग प्रसन्न होते है और प्रिय वाणी पुरस्सर प्रदान करते हैं, वे लोग स्वर्गगामी होते हैं । जो लोग दिये गये दान का फल नहीं चाहते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥३२॥ हे परंतप ! जो धान्यों के निवेश से धन स्वयं उत्पन्न करके लोगों को प्रदान करते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥३३॥ जो लोग अपने शत्रुओं के भी दोषों को नहीं बतलाते हैं, तथा उनके गुणों का वर्णन करते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥३४॥ जो लोग दूसरों के ऐश्वर्य सम्पत्ति को देखकर द्वेष से संतप्त नहीं होते हैं, अपितु प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥३५॥ किसी भी कार्य को करने में तथा किसी कार्य का परित्याग करने में श्रुतियों तथा शास्त्रों में कहे गये नियमों का पालन करते हैं, वे लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥३६॥ जो मनुष्य किसी को भी अप्रिय वाक्य नहीं कहते हैं और केवल प्रिय वाक्य ही बोलते हैं, ऐसे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥३७॥ जो भूख-प्यास से पीड़ित भी रहकर तत्-तत् भागों को विभक्त करते हैं तथा जो हन्तकार करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥३८॥ वापी, कूप, तडाग, प्रपा (प्याऊ) गृह तथा उद्यानों का जो

असत्येष्वपि ये सत्या ऋजवो नार्जवेष्वपि । रिपुष्वपि हिता ये च ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४०॥
यस्मिन्कस्मिन्कुले जाता बहुपुत्राःशतायुषः । सानुक्रोशाःसदाचारास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४१॥
कुर्वन्त्यवन्ध्यं दिवसं धर्मेणैकेन सर्वदा। व्रतं गृह्णन्ति ये नित्यं ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४२॥
आक्रोशन्तं स्तुवन्तं च तुल्यं पश्यन्ति ये नराः ।
शान्तात्मानो जितात्मानस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४३॥
ये चापि भयसन्त्रस्तान्ब्राह्मणांश्च तथा स्त्रियः ।
सार्थान्वा परिरक्षन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४४॥
गङ्गायां पुष्करेतीर्थे गयायां च विशेषतः । पितृपिण्डप्रदातारस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४५॥
न वशे चेन्द्रियाणां च ये नराःसंयमे स्थिताः ।
त्यक्तलोभभयक्रोधास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४६॥
यूकामत्कुणदंशादीन्ये जन्तूंस्तुदतस्तनुम्। पुत्रवत्परिरक्षन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४७॥
अज्ञानाच्च यथोक्तेन विधिनासञ्ज्ञपन्ति च । सर्वद्वन्द्वसहालोके ते नराःस्वर्गगामिनः॥४८॥
ये पूताःपरदारांश्च कर्मणा मनसा गिरा। रमयन्ति न सत्वस्थास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥४९॥
निन्दितानि न कुर्वन्ति कुर्वन्ति विहितानि च ।
आत्मशक्तिं विजानन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥५०॥
एवं ते कथितं सर्वं मया तत्त्वेन पार्थिव। दुर्गतिःसद्गतिश्चैव प्राप्यते कर्मभिर्यथा ॥५१॥

निर्माण करते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥३९॥ जो लोग असत्य भाषियों से भी सत्य बोलते हैं, तथा कुटिलों के प्रति भी जो ऋजु रहते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं । जो अपने शत्रुओं का भी कल्याण करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ॥४०॥ किसी भी कुल में उत्पन्न होकर जो अनेक पुत्रों वाले तथा सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं, दयालु स्वभाव वाले तथा सदाचार का पालन करने वाले मनुष्य स्वर्गलोक जाते हैं ॥४१॥ जो प्रतिदिन कोई-न-कोई धर्म करते हैं जो प्रतिदिन व्रत धारण करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥४२॥ जो मनुष्य निन्दा करने वाले तथा प्रशंसा करने वाले दोनों को एक समान देखते हैं शान्त मन वाले तथा अपने मन को वश में रखने वाले स्वर्ग में जाते हैं ॥४३॥ जो लोग भयभीत ब्राह्मणों, स्त्रियों अथवा अपने साथ रहने वालों की रक्षा करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥४४॥ गङ्गातट पर गया में, तथा पुष्कर तीर्थ में जाकर अपने पितरों का पिण्डदान करने वाले मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ॥४५॥ अपनी इन्द्रियों को संयमित रखने वाले जो मनुष्य कभी इन्द्रियों के वश में नहीं होते हैं तथा जिन लोगों ने भय, लोभ तथा क्रोध का परित्याग कर दिया है, वे स्वर्ग में जाते हैं ॥४६॥ जो लोग अपने शरीर में काटने वाले ढील, खटमल तथा मच्छरों की रक्षा अपने पुत्र के समान करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥४७॥ जो लोग अज्ञानवशात् कहे गये का विधि के अनुसार संग्रह करते हैं तथा जो सभी प्रकार के द्वन्दों को सहते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥४८॥ जो पवित्र पुरुष मन, वाणी तथा कर्म से भी दूसरों की स्त्रियों के साथ रमण नहीं करते हैं, वे स्वर्ग लोक में जाते हैं॥४९॥ जो लोग कभी भी निन्दित कर्मों को नहीं करते हैं तथा सदा विहित कर्मों को ही करते हैं तथा जो अपनी आत्मा की शक्ति को जानते हैं, वे लोग स्वर्ग जाते हैं ॥५०॥ हे राजन् ! इस तरह मैंने आपके समक्ष सारी बातों का तत्त्वतः दुर्गति तथा सद्गति का निरूपण किया जो कर्म के द्वारा प्राप्त होती है ॥५१॥ जो

नराः परेषां प्रति कूलमाचरन्प्रयातिघोरं नरकं सुदारुणम् ।
सदानुकूलस्य नरस्य जीविनःसुखावहा मुक्तिदूरसंस्थिता ॥५२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमहात्म्ये च्यवनचरित्रे षण्णवतितमोऽध्याय ॥९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

एवमाकर्ण्य तां राजा मुनिनाभाषितां तदा। धर्माधर्मगतिं सर्वां तं मुनि समभाषत ॥१॥

सुबाहुवाच

सोऽहं धर्मं करिष्यामि सोऽहं पुण्यं द्विजोत्तम ।
वासुदेवं जगद्योनिं यजिष्ये नितरां मुने ॥२॥

होमेन तु जपेनैव पूजयेन्मधुसूदनम्। यष्ट्वा यज्ञं तपस्तप्त्वा विष्णुलोकं स भूपतिः ॥३॥
पूजितःसर्वकामैश्च प्राप्तवान्सत्वरं मुदा। गते तस्मिन्महालोके देवदेवं न पश्यति ॥४॥
क्षुधा जाता महातीव्रा तृष्णा चातिप्रवर्तते। तयोश्चापि महाप्राज्ञ जीवपीडाकराबहु॥५॥
राजापि प्रियया सार्द्धं क्षुधातृष्णाप्रपीडितः। न पश्यति हृषीकेशं दुःखेन महतान्वितः ॥६॥

मनुष्य दूसरों के प्रतिकूल आचरण करता है, वह घोर नरक में जाता है जो सबों के सदा अनुकूल ही आचरण करता है, उस मनुष्य के लिए सुखद मुक्ति सदा सन्निकट ही बनी रहती है ॥५२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत छयानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९६।।

तपस्या के प्रभाव से राजा सुबाहु का विष्णुलोक में जाने पर भी भगवान् विष्णु का दर्शन नहीं होना

कुञ्जल ने कहा— मुनि जैमिनि के द्वारा इस प्रकार से कही गयी धर्म एवं अधर्म की गति को सुनकर राजा ने मुनि से कहा ॥१॥ **सुबाहु ने कहा—** हे मुने ! हे द्विजोत्तम ! मैं धर्म एवं पुण्य करूँगा और जगत् के कारण भूत भगवान् वासुदेव का मैं पूजन करूँगा ॥२॥ होम और जप के द्वारा भगवान् मधुसूदन की पूजा करते हुए यज्ञ करके तथा तपस्या करके वे राजा भगवान् विष्णु के लोक में चले गये। उन राजा की सारी कामनाएँ पूर्ण थी । वे उस लोक में भी जाकर भगवान् विष्णु का दर्शन नहीं कर पाये॥३-४॥ वहाँ पर राजा और उनकी पत्नी को अत्यन्त तीव्र भूख तथा प्यास लगी, उससे उन दोनों को बहुत अधिक पीड़ा हुयी ॥५॥ राजा अपनी पत्नी के साथ भूख से व्याकुल हो गये अत्यन्त दुःख से दुःखी राजा भगवान् हृषीकेश का दर्शन नहीं पाते थे ॥६॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से वे राजा श्रेष्ठ अपनी

कुञ्जल उवाच

एवं सदुःखितो राजा प्रियया सह सत्तम। आकुलव्याकुलो जातःपीडितःक्षुधया भृशम् ॥७॥
इतश्चेतश्च वेगैश्च धावते वसुधाधिपः। सर्वाभरणशोभाङ्गो वस्त्रचन्दनभूषितः ॥८॥
पुष्पमालाप्रशोभाङ्गो हारकुण्डलकङ्कणैः । रत्नदीप्तिप्रशोभाङ्गःप्रययौ स महीपतिः ॥९॥
एवं दुःखसमाचारःस्तूयमानश्च पाठकैः । दुःखशोकसमाविष्टःस्वप्रियां वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥
विष्णुलोकमहं प्राप्तस्त्वया सह सुशोभने। ऋषिभिःस्तूयमानोऽपि विमानेनापि भामिनि॥११॥
कर्मणा केन मे चेयं क्षुधाऽतीव प्रवर्द्धते। विष्णुलोकं च सम्प्राप्य न दृष्टो मधूसूदनः॥१२॥
तत्किं हि कारणं भद्रे न भुनज्मि महत्फलम् ।
कर्मणाथ निजेनापि एतद्दुःखं प्रवर्त्तते ॥१३॥
सैवं श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजानमिदमब्रवीत् ।
सत्यमुक्तं त्वया राजन्नास्ति धर्मस्य वै फलम् ॥१४॥
वेदशास्त्रपुराणेषु ये पठन्ति च ब्राह्मणाः। दुःखशोकौ विधूयेह सर्वदोषैःप्रमुच्यते ॥१५॥
नामोच्चारेण देवस्य विष्णोश्चैव सुचक्रिणः। पुण्यात्मानो महाभागा ध्यायमाना जनार्दनम् ॥१६॥
त्वयैवाराधितो देवःशङ्खचक्रगदाधरः। अन्नादिदानं विप्रेभ्यो न प्रदत्तं द्विजोदितम् ॥१७॥
फलं तस्य प्रजानामि न दृष्टो मधुसूदनः। क्षुधा मे बाधते राजंस्तृष्णा चैव प्रशोषयेत्॥१८॥

कुञ्जल उवाच

एवमुक्तस्तु प्रियया राजा चिन्ताकुलेन्द्रियः। ततो दृष्ट्वा महापुण्यमाश्रमं श्रमनाशनम्॥१९॥

पत्नी के साथ भूख से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण आकुल व्याकुल हो गये ॥७॥ राजा वेगपूर्वक इधर-उधर भाग रहे थे। उनके सारे अङ्ग आभरणों से सुशोभित थे तथा वे सभी भूषणों को धारण किए थे ॥८॥ उनके अङ्गों की शोभा पुष्पमाला से भी हो रही थी। हार, कुण्डल तथा कंकण के द्वारा तथा रत्न कान्ति से अत्यन्त सुशोभित अङ्गवाले राजा विष्णुलोक में गये ॥९॥ इस तरह से दुःखी तथा स्तुति करने वालों से स्तुति किए जाते हुए वे दुःख तथा शोक से संतप्त होकर अपनी पत्नी से कहे ॥१०॥ हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारे साथ विष्णु लोक में ऋषियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए विमान से आया ॥११॥ किन्तु न जाने किस कर्म के कारण मुझको अत्यन्त भूख लग रही है। विष्णुलोक में आकर भी भगवान् मधुसूदन का दर्शन नहीं हुआ ॥१२॥ हे भद्रे ! वह कौन सा कारण है कि मैं महान् फल को नहीं प्राप्त कर रहा हूँ ? अपने ही किसी कर्म के कारण मुझको यह दुःख हो रहा है ॥१३॥ रानी ने राजा की वाणी को सुनकर कहा॥१४॥ **पत्नी ने कहा—** हे महाराज ! आपने सत्य कहा है। यह धर्म का फल नहीं है। ब्राह्मण वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों में पढ़ते हैं कि इस लोक में जीव दुःख तथा शोक को दूर करके सभी दोषों से मुक्त हो जाते हैं। पुण्यात्मा महाभाग पुरुष भगवान् जनार्दन का ध्यान करते हुए भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करने मात्र से ही सभी दोषों से मुक्त हो जाते हैं। आपने शङ्ख, चक्र एवं गदा को धारण करने वाले श्रीभगवान् की आराधना की है ॥१५-१७॥ ब्राह्मण ने आपको कहा था किन्तु आपने ब्राह्मणों को अन्न इत्यादि का दान नहीं दिया था। मैं समझती हूँ कि उसी का फल है कि आपको भगवान् मधुसूदन का दर्शन नहीं हुआ ॥१८॥ हे राजन् ! मुझको भूख तथा प्यास अत्यन्त दुःख दे रहे हैं। **कुञ्जल ने कहा—** पत्नी

दिव्यवृक्षसमाकीर्णं तडागैरुपशोभितम् । वापीकुण्डतडागैश्च पुण्यतोय प्रपूरितैः ॥२०॥
हंसकारण्डवाकीर्णं कह्लारैरूपशोभितम्। आश्रमःशोभते पुत्र मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥२१॥
दिव्यवृक्षसमाकीर्णं मृगवातैश्च शोभितम्। नानापुण्य समाकीर्णं हृद्यगन्ध समाकुलम् ॥२२॥
द्विजसिद्धैः समाकीर्णमृषिशिष्यैः समाकुलम् ।
योगियोगेन्द्र सङ्घुष्टं देववृन्दैरलङ्कृतम् ॥२३॥
कदलीवनसम्बाधैःसुफलैःपरिशोभितम् । नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वकामसमन्वितम् ॥२४॥
श्रीखण्डैश्चारुगन्धैश्च सुफलैःशोभितं सदा । एवं पुण्यं समाकीर्णं ब्रह्मलक्ष्य समायुतम् ॥२५॥
स सुबाहुस्ततो राजा तया सुप्रियया सह । प्रविवेश महापुण्यं तद्वनं सर्वकामदम् ॥२६॥
भासमानो दिशःसर्वा यत्रास्ते सूर्यसन्निभः। राजमानो महादीप्त्या परया सूर्यसन्निभः ॥२७॥
योगासनसमारूढो योगपट्टेनसंवृतः । वामदेव ऋषिश्रेष्ठो वैष्णवानां वरस्तथा॥२८॥
ध्यायमानो हृषीकेशं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । वामदेवं महात्मानं तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमम् ॥२९॥
आशीर्भिरभिनन्द्यैव राजानं प्रिययान्वितम् । वामदेवस्ततो दृष्ट्वा प्रणतं राजसत्तमम्॥३०॥
आशीर्भिरभिनन्द्यैव राजानं प्रिययान्वितम् । उपवेश्यासने पुण्ये सुबाहुं राजसत्तमम् ॥३१॥
आसनादि ततःपाद्यैरर्घपूजादिभिस्तथा। मुनिना पूजितो भूपःप्रियया सह चागतः ॥३२॥
अथ प्रपच्छ राजानं महाभागवतोत्तमम् ॥३३॥

के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियों वाले ॥१९॥ राजा ने श्रम को दूर करने वाले अत्यन्त पवित्र एक आश्रम को देखा । उसमें दिव्य वृक्ष भरे हुए थे तथा वह जलाशय से समन्वित था॥२०॥ वह पवित्र जल से परिपूर्ण वापी, कूप तथा जलाशयों से सुशोभित था । उसमें हंस तथा कारण्डव पक्षी विद्यमान थे । कमल उसमें सुशोभित हो रहे थे ॥२१॥ वह आश्रम तत्त्वज्ञ मुनियों से सुशोभित हो रहा था । उसमें दिव्य वृक्ष लगे थे और मृग समूहों से वह आश्रम सुशोभित था ॥२२॥ उसमें अनेक प्रकार के पुष्प खिले थे और उनसे मनोहर सुगन्धि आ रही थी । उसमें सिद्ध ब्राह्मण तथा मुनि के शिष्य विद्यमान थे॥२३॥ योगियों तथा योगेन्द्र से ध्वनित वह आश्रम देवता समूह से सुशोभित था । कदली फल से भरा हुआ वह आश्रम शोभा पा रहा था ॥२४॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस आश्रम में अनेक प्रकार के वृक्ष भरे पड़े थे । सदैव सुन्दर गन्ध वाले चन्दन वृक्षों तथा सुन्दर वृक्षों से वह सुशोभित था ॥२५॥ इस तरह से पुण्य से भरा हुआ वह ब्रह्म के लक्षणों से युक्त आश्रम था । उसके बाद अपनी पत्नी के साथ राजा सुबाहु ॥२६॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस पवित्र आश्रम में प्रवेश किए । उस आश्रम में सूर्य के समान सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले तथा अपनी तीव्र कान्ति के द्वारा सूर्य के समान सुशोभित होने वाले, योगासन पर आरूढ़ तथा योग पट्ट से आवृत ॥२७-२८॥ वैष्णवों में श्रेष्ठ महर्षि वामदेव भोग तथा मुक्ति को प्रदान करने वाले भगवान् हृषीकेश का ध्यान करते हुए विराजमान थे ॥२९॥ मुनियों में श्रेष्ठ महात्मा वामदेव को देखकर अपनी प्रियतमा के साथ शीघ्र जाकर राजा सुबाहु ॥३०॥ महर्षि को प्रणाम किए अपनी पत्नी के साथ प्रणाम करने वाले उस राजा सुबाहु को महर्षि अपने आशीर्वचनों से अभिनंदित किये ॥३१॥ उन्होंने राजा को उत्तम आसन पर बैठाया तथा उनका आसन तथा अर्घ प्रदान आदि के द्वारा उनका सम्मान किया ॥३२॥ अपनी पत्नी के साथ समागत राजा के महर्षि के द्वारा समादृत होने के बाद

वामदेव उवाच

त्वामहं विष्णुर्मज्ञं विष्णुभक्तं नरोत्तमम्। जाने ज्ञानेन राजेन्द्र दिव्येन चोलभूमिपम्॥३४॥
निरामयश्चागतोऽसि तार्क्ष्यया भार्यया सह ॥३५॥

राजोवाच

निरामयश्चागतोऽसि प्राप्तो विष्णोःपरंपदम् ।
मया हि परया भक्त्या देवदेवोजनार्दनः ॥३६॥
आराधितो जगन्नाथो भक्तिप्रीतःसुरेश्वरम्। कस्मात्पश्याम्यहं तात न देवं कमलापतिम्॥३७॥
क्षुधा मे बाधते तात तृष्णातीव सुदारुणा। ताभ्यां शान्ति न गच्छाव सुखं विन्दाव नैव च॥३८॥
एतन्मे कारणं दुःखं सञ्जातं मुनिसत्तम। तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि प्रसादात्सुमुखो भव ॥३९॥

वामदेव उवाच

त्वं तु भक्तोऽसि राजेन्द्र श्रीकृष्णस्य सदैव हि ।
आराधितस्त्वया भक्त्या परया मधुसूदनः ॥४०॥
भक्त्योपचारैःस्नानाद्यैर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा । न पूजितोऽथ नैवेद्यैःफलैश्च जगतांपतिः ॥४१॥
दशमीं प्राप्य राजेन्द्र त्वयैव च सदा कृतम् ।
एकभक्तं न दत्तं तु ब्राह्मणाय सुभोजनम् ॥४२॥
एकादशीं तु सम्प्राप्य न कृतं भोजनं त्वया ।
विष्णुमुद्दिश्य विप्राय न दत्तं भोजनं त्वया ॥४३॥
अन्नं चामृतरूपेण पृथिव्यां संस्थितं सदा। अन्नदानं विशेषेण कदादत्तं न हि त्वया॥४४॥

भागवतों में श्रेष्ठ राजा से महर्षि ने पूछा ॥३३॥ **महर्षि वामदेव ने कहा—** हे राजन् ! मैंने अपने दिव्य ज्ञान नेत्र के द्वारा जान लिया है कि आप विष्णुधर्म को जानने वाले भगवान् विष्णु के भक्त हैं। आप चोल देश के राजा हैं ॥३४॥ आप बिना किसी कष्ट के ही यहाँ अपनी पत्नी के साथ आये हैं । **राजा ने कहा—** मैं निरामय आया हूँ और मैंने भगवान् विष्णु के परमपद को प्राप्त भी कर लिया है ॥३५॥ मैंने भक्ति से प्रसन्न होने वाले देवश्रेष्ठ भगवान् जनार्दन की भक्ति पूर्वक आराधना भी की है ॥३६॥ हे तात ! मैंने किसी कारण से लक्ष्मीपति श्रीभगवान् का दर्शन नहीं पाया । हे तात ! मुझे अत्यन्त भयङ्कर भूख तथा प्यास वाधित करते हैं ॥३७॥ उन सबों के कारण न तो हमलोगों को सुख मिलता है औ न शान्ति प्राप्त होती है । हे मुनि श्रेष्ठ ! यह मेरे दुःख का कारण बना हुआ है ॥३८॥ आप मुझ पर प्रसन्न होकर उस कारण को बतलायें । **महर्षि वामदेव ने कहा—** हे राजेन्द्र ! आप तो सदैव भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त रहे हैं ॥३९॥ आपने अपनी परमा भक्ति के द्वारा भगवान् मधुसूदन की पूजा भक्ति पूर्वक स्नान, गंध, चन्दन तथा पुष्प आदि उपचारों से की है ॥४०॥ किन्तु आपने जगत् स्वामी की पूजा नैवेद्य तथा फलों से नहीं की है । हे राजन् ! सदैव आपने दशमी तिथि का व्रत किया है ॥४१॥ किन्तु आपने किसी भी अच्छे ब्राह्मण को एक शाम भी भोजन नहीं कराया है । आपने एकादशी के दिन भोजन नहीं किया ॥४२॥ भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए आपने किसी ब्राह्मण को भोजन नहीं कराया है । अन्न तो पृथिवी पर सदा अमृत रूप से रहता है ॥४३॥ आपने कभी भी विशेष रूप से अन्न दान नहीं किया है । हे महाराज ! अन्न तो अनेक

ओषध्यश्च महाराज नानाभेदास्तु ताः शृणु। कटुतिक्तकषायाश्च मधुराम्लाश्च क्षारकाः ॥४५॥
हिङ्ग्वाद्योपस्कराः सर्वे नानारूपाश्च भूपते। अमृताज्जज्ञिरे सर्वा ओषध्यःपुष्टिहेतवः॥४६॥
अन्नमेव सुसंस्कृत्य औषधव्यञ्जनान्वितम्। देवेभ्यो विष्णुरूपेभ्य इति सङ्कल्प्य दीयते ॥४७॥
पितृभ्यो विष्णुरूपेभ्यो हस्ते च ब्राह्मणस्य हि ।
अतिथिभ्यस्ततो दत्त्वा परिजनं प्रभोजयेत् ॥४८॥
स्वयं तु भुञ्जते पश्चात्तदन्नममृतोपमम्। प्रेत्यदुःखं न चैवास्ति तस्य सौख्यं तु भूपते॥४९॥
ब्राह्मणाः पितरो देवाःक्षेत्ररूपाश्च भूपते। यथा हि कर्षकःकश्चित्सुकृषिं कुरुते सदा॥५०॥
तद्वन्मर्त्यःकृषिं कुर्यात्क्षेत्रे विप्रास्यके नृप। स्वभावलाङ्गलेनापि श्रद्धाशस्त्रेण भेदयेत्॥५१॥
वृषभौ तु मतौ नित्यं बुद्धिश्चैव तपस्तथा। सत्यज्ञानानुभावीशःशुद्धात्मा तु प्रतोदकः ॥५२॥
विप्रनाम्नि महाक्षेत्रे नमस्कारैर्विसर्जयेत्। स्फोटयेत्कल्मषं नित्यं कृषको हि यथानृप॥५३॥
क्षेत्रस्य उद्यमेयुक्तो विष्णुकामःप्रसादयेत्। तद्वद्वाक्यैःशुभैःपुण्यैर्विप्रांश्चापि प्रसादयेत् ॥५४॥
पर्वतीर्थाप्तिकालश्च घनरूपोऽभिवर्षणे। वस्तुकामो भवेत्क्षेत्री ततःक्षेत्रे प्रवापयेत् ॥५५॥
तद्वद्भूपप्रसन्नाय विप्राय परिदीयते। क्षेत्रस्य उप्तवीजस्य यथाक्षेत्रीं प्रभुञ्जति॥५६॥
फलमेव महाराज तथा दाता भुनक्ति च। प्रेत्य चात्रैव नित्यं च तृप्तो भवति नान्यथा ॥५७॥
ब्राह्मणाः पितरो देवाःक्षेत्ररूपा न संशयः। मानवानां महाराजा वापिताःप्रददन्ति च ॥५८॥

प्रकार के हैं, उनको मैं बतलाता हूँ ॥४४॥ हे राजन् ! कटु, तीता, कषाय, मधुर, खट्टा, नमकीन, ये सभी अन्न हिगु आदि साधनों के द्वारा सबके सब अनेक प्रकार के हो जाते हैं ॥४५॥ पुष्टि के साधनभूत ये सभी अन्न अमृत से उत्पन्न हुए हैं अन्न को ही व्यञ्जन के साथ अच्छी तरह से पकाकर ॥४६॥ विष्णु स्वरूप देवताओं को सङ्कल्प करके प्रदान किया जाता है। विष्णु स्वरूप पितरों को ब्राह्मण के हाथ से दिया जाता है ॥४७॥ उसके बाद अतिथियों को अन्न प्रदान करके अपने परिजनों को भोजन कराना चाहिए। उसके बाद जो अन्न भोजन किया जाता है, वह अन्न अमृत के समान होता है ॥४८॥ हे राजन् ! ऐसा करने वाले को मृत्यु के पश्चात् कष्ट नहीं होता है और उसे सुख की प्राप्ति होती है। हे राजन् ! ब्राह्मण, पितृगण और देवता क्षेत्र स्वरूप हैं ॥४९॥ जैसे कोई किसान सुन्दर कृषि करता है उसी तरह मनुष्यों को चाहिए कि वे ब्राह्मणों के मुख में कृषि करे ॥५०॥ स्वभाव रूपी हल तथा श्रद्धा रूपी शस्त्र से ब्राह्मण के मुख रूपी क्षेत्र को खने। उस कृषि के बुद्धि तथा तपस्या ही दोनो बैल हैं ॥५१॥ सत्य, ज्ञान तथा परमात्मा का अनुभव तथा शुद्ध आत्मा ही उस कृषि के जल हैं। ब्राह्मण नामक महाक्षेत्र में इन सबों को नमस्कार पूर्वक डालें॥५२॥ कृषक के ही समान पाप रूपी घासों को उससे विनष्ट करें। क्षेत्र के प्रयास में लगा हुआ मानव ब्राह्मण को प्रसन्न करें ॥५३॥ विष्णु के ही समान सुन्दर मधुर वाक्यों से ब्राह्मणों को प्रसन्न करें। पर्व तथा तीर्थ रूपी वर्षा काल में वर्षा होने पर ॥५४॥ जिस तरह बीज वपन करने की इच्छा वाला किसान बीज बोता है, उसी तरह हे राजन् ! प्रसन्न ब्राह्मण को अन्न दान दिया जाना चाहिए ॥५५॥ जिस तरह बोए गये खेत के बीज के फल को खेत का मालिक उपभोग करता है, उसी तरह हे महाराज ! अन्नदाता ही दान का फल भोगता है ॥५६॥ ऐसा करने वाला लोक तथा परलोक में सदा तृप्त रहता है। ब्राह्मण, पितृगण और देवता ये क्षेत्र स्वरूप हैं ॥५७॥ हे महाराज ! जो मनुष्य दानरूप बीज बोता है, उसको वे प्रदान करते हैं।

फलमेवं न सन्देहो यादृशं तादृशं ध्रुवम्। कटुकाद्वि न जायेत राजन्मधुर एव च ॥५९॥
तद्वच्चमधुराख्याच्च न जायेत कटुकःपुनः। यादृशं वपतेबीजं तादृशं फलमश्नुते ॥६०॥
न वापयति यःक्षेत्रं न स भुञ्जति तत्फलम्। तद्वद्विप्राश्च देवाश्च पितरःक्षेत्ररूपिणः ॥६१॥
दर्शयन्ति फलंराजन्दत्तस्यापि न संशयः। यादृशं हि कृतं कर्म त्वयैव च शुभाशुभम् ॥६२॥
तादृशं भुङ्क्ष्व वै राजन्नन्यथा तन्नजायते। न पुरा देव विप्रेभ्यःपितृभ्यश्च कदाचन ॥६३॥
मिष्टान्नपानमेवापि दत्तं सुमनसा तदा। सुभोज्यैर्भोजनैर्मृष्टैर्मधुरैश्चोष्यपेयकैः ॥६४॥
सुभक्ष्यैरात्मनाभुक्तं कस्मै दत्तं न च त्वया। स्वशरीरं त्वया पुष्टमन्नैरमृतसन्निभैः ॥६५॥
यस्मात्कृतं महाराज तस्मात्क्षुधा प्रवर्तते। कर्मैव कारणं राजन्नराणां सुखदुःखयोः ॥६६॥
जन्ममृत्योर्महाभाग भुङ्क्ष्व तत्कर्मणःफलम्।
पूर्वेऽपि च महात्मानो दिवं प्राप्ताःस्वकर्मणा ॥६७॥
पुनःप्रयाता भूलोकं कर्मणःक्षयकालतः। नलो भगीरथश्चैव विश्वामित्रो युधिष्ठिरः॥६८॥
कर्मणैव हि सम्प्राप्तःस्वर्गं राजन्स्वकालतः। दिष्टं हि प्राक्तनं कर्म तेन दुःखं सुखं लभेत् ॥६९॥
तदुल्लङ्घयितुं राजन्कःसमर्थोऽपि हीश्वरः। अथ तस्मान्नृपश्रेष्ठ स्वर्गतस्यापि तेऽभवत् ॥७०॥
क्षुत्तृष्णासम्भवोवेगस्ततोदुष्टं हि कर्म ते। यदि ते क्षुत्प्रतीकारोह्यभीष्टो नृपसत्तम॥७१॥

अन्नदाता जैसा दान किए रहता है, उसी के अनुसार उसे फल प्रदान करते हैं ॥५८॥ वह फल कभी कटु नहीं होता है, वह सदा मधुर ही होता है। जिस तरह से मधुर बीज से कभी कटु फल नहीं उत्पन्न होता है, उसी तरह दान का फल सदा मीठा ही होता है ॥५९॥ मनुष्य जैसा बीज बोता है, वैसी ही वह फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य अन्न दान रूपी बीज बोता ही नहीं है, उसको फल नहीं मिलता है ॥६०॥ हे राजन्! इसी प्रकार से पितृगण, देवता तथा ब्राह्मण क्षेत्र स्वरूप हैं। हे राजन्! वे किए गये दान का फल अवश्य देते हैं ॥६१॥ राजन् आपने जैसा अच्छा या बुरा कर्म किया है, वैसा ही आप फल भोगें ॥६२॥ आपने पहले कभी भी प्रसन्नता पूर्वक देव, ब्राह्मण और पितरों को मधुर अन्न तथा जल नहीं प्रदान किया है ॥६३॥ आपने स्वयं सुन्दर भोज्य भोजनों मधुर पेय पदार्थों तथा सुभक्ष्य पदार्थों का उपभोग किया है किन्तु किसी को उसे प्रदान नहीं किया है ॥६४॥ आपने अमृत के समान अन्न के द्वारा अपने शरीर को पुष्ट किया है, उसी के कारण आपको भूख और प्यास कष्ट देते हैं ॥६५॥ हे राजन्! मनुष्य को जो सुख तथा दुःख की प्राप्ति होती है, उसका कारण उसके द्वारा पूर्वकृत कर्म ही होता है। मनुष्य के जन्म तथा मृत्यु का भी कारण उसका कर्म ही होता है। अतएव तुम अपने किए हुए कर्म का फल भोगो ॥६६॥ पहले भी महात्मागण अपने कर्मों के सहारे स्वर्ग में आये। जब उनके पुण्य कर्मों का नाश हो गया तो वे भूलोक में चले गये ॥६७॥ हे राजन्! नल, भगीरथ, विश्वामित्र, युधिष्ठिर ये सभी अपने समय में किए गये कर्म के द्वारा ही स्वर्ग में आये ॥६८॥ पूर्वजन्म में किया गया कर्म ही भाग्य होता है, उसी के कारण सुख और दुःख की प्राप्ति होती है। हे राजन्! उसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता है ॥६९॥ अतएव हे नृपश्रेष्ठ! स्वर्ग में आने पर भी आपको इसीलिए भूख और प्यास लगते हैं। इसका कारण तुम्हारा कर्म ही है ॥७०॥ यदि आप अपने भूख-प्यास का प्रतिकार करना चाहते हैं तो आप अपने शरीर को ही खाइये वह आनन्द वन में पड़ा हुआ है ॥७१॥ तुम्हारी महारानी भी अत्यन्त भूखी प्यासी दिखती है। **सुबाहु ने**

तद्गत्वा भुङ्क्ष्वकायं स्वमानंदारण्यसंस्थितम् ।
तव चेयं महाराज्ञी क्षुत्क्षामातीव दृश्यते ॥७२॥

सुबाहुरुवाच

कियत्कालमिदं कर्म कर्तव्यं प्रियया सह। तन्मे ब्रूहि महाभागानुग्रहो दृश्यते कदा॥७३॥
कस्य दानेन किं पुण्यं द्रव्यस्य मुनिसत्तम। तत्प्रब्रूहि महाप्राज्ञ यदि तुष्टोऽसि साम्प्रतम् ॥७४॥

वामदेव उवाच

अन्नदानान्महासौख्यमुदकस्य महामते। भुञ्जन्ति मर्त्याःस्वर्गं वै पीड्यन्ते नैव पातकैः ॥७५॥
यदादानं न दत्तं तु भवेदपि हि मानवैः। मृत्युकालेऽपि सम्प्राप्ते दानं सर्वे ददन्ति च ॥७६॥
आदावेव प्रदातव्यमन्नं चोदकसंयुतम्। सुच्छत्रोपानहौ दद्याज्ज्लपात्रं सुशोभनम् ॥७७॥
भूमिं सुकाञ्चनं धेनुमष्टौदानानि योऽर्पयेत्। स्वर्गे न जायते तस्य क्षुधातृष्णादिसम्भवः ॥७८॥
क्षुधा न बाधते राजन्नान्नदानात्स तृप्तिमान्। तृष्णातीव्रा न हि स्याद्वै तृप्तो भवति सर्वदा ॥७९॥
उदकस्य प्रदानेन च्छत्रदानेन भूपते। छायामाप्नोति दाता वै वाहनं च नृपोत्तम॥८०॥
उपानहःप्रदानेन अन्यदेवं वदाम्यहम्। भूमिदानान्महाभाग सर्वकामानवाप्नुयात् ॥८१॥
गोदानेन महाराज रसैःपुष्टोभवेत्सदा। सर्वान्भोगान्प्रभुञ्जानःस्वर्गलोके वसेन्नरः ॥८२॥
तृप्तो भवति वै दाता गोदानेन न संशयः। नीरुजःसुखसम्पन्नःसन्तुष्टस्तु धनान्वितः॥८३॥
काञ्चनेन सुवर्णस्तु जायते नात्र संशयः। श्रीमांश्च रूपवांस्त्यागी रत्नभोक्ता भवेन्नरः ॥८४॥
मृत्युकाले तु सम्प्राप्ते तिलदानं प्रयच्छति। सर्वभोगपतिर्भूत्वा विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥८५॥

कहा— मुझको यह कर्म अपनी पत्नी के साथ कब तक करना पड़ेगा ?॥७२॥ हे महाभाग ! मुझे यह बतलायें कि मेरे इस कर्म का अनुग्रह कब होगा ? हे मुनि श्रेष्ठ ! आप बतलायें कि किस वस्तु का दान करने से कौन सा फल होता है ?॥७३॥ हे महाप्राज्ञ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मुझे यही बतलाये ।
वामदेव महर्षि ने कहा— हे महामते ! अन्न तथा जल का दान करने से महान् सुख मिलता है ॥७४॥ उसके कारण मनुष्य स्वर्ग सुख का भोग करते हैं और उन्हें पाप नहीं लगता है । जो मनुष्य अपने जीवन में दान नहीं किए रहता है, उसकी मृत्यु के समय लोग उसके लिए दान देते हैं । इसीलिए मृत्यु से पहले ही अन्न और जल का दान कर लेना चाहिए ॥७५-७६॥ सुन्दर छत्र, उपानह, जलपात्र, भूमि, सुवर्ण, तथा गौ इन आठ दानों को जो देते हैं ॥७७॥ उस व्यक्ति को कभी स्वर्ग में भूख-प्यास नहीं सताते हैं । अन्नदान करने के कारण उसे भूख नहीं दुःख देती है । वह सदा तृप्त बना रहता है ॥७८॥ जलदान के कारण उसे प्यास नहीं लगती है । हे राजन् ! पादुका तथा छत्र का दान करने से दाता छाया तथा वाहन को प्राप्त करता है । उपानह प्रदान करने का भी यही फल होता है ॥७९-८०॥ हे महाभाग ! भूमिदान करने वाले की सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । हे महाराज ! गौ का दान करने वाला सदा रसों से पुष्ट बना रहता है ॥८१॥ वह मनुष्य सभी भोगों को भोगता हुआ, स्वर्गलोक में निवास करता है । गोदान करने वाला दाता सदा तृप्त रहता है ॥८२॥ वही नीरोग, सुखी, सन्तुष्ट तथा धनी होता है । सुवर्ण दान करने वाले का रूप सुन्दर होता है ॥८३॥ वह श्रीमान् रूपवान, त्यागी तथा रत्नों को भोगने वाला होता है । मृत्यु के समय तिलदान करना चाहिए ॥८४॥ ऐसा करने वाला सभी भोगों का स्वामी होता है तथा भगवान् विष्णु के लोक

एवं दानविशेषेण प्राप्यते परमं सुखम् । गोदानं भूमिदानं तु अन्नोदके च वै त्वया॥८६॥
जीवमानेन राजेन्द्र न दत्तं ब्राह्मणाय वै। मृत्युकालेऽपि नो दत्तं तस्मात्क्षुधा प्रवर्तते ॥८७॥
एतत्तेकारणं प्रोक्तं जातं कर्मवशानुगम्। यादृशं तु कृतं कर्म तादृशं परिभुज्यते॥८८॥

सुबाहुरुवाच

कथं क्षुधा प्रशान्तिं मे प्रयाति मुनिसत्तम। अनया शोषितःकायो ह्यतीव परिदूयते ॥८९॥
क्षुधां प्रति द्विजश्रेष्ठ प्रायश्चितं वदस्व नौ। कर्मणश्चास्य घोरस्य यथा शान्तिर्भवेन्मम॥९०॥

वामदेव उवाच

प्रायश्चित्तं न चैवास्ति ऋते भोगान्नृपोत्तम । कर्मणोऽस्य फलं सर्वं भवान्स्वस्थःप्रभोक्ष्यति॥९१॥
यत्र ते पतितःकायःप्रियायाश्चैव भूपते । युवाभ्यां हि प्रगन्तव्यमितश्चैव न संशयः ॥९२॥
उभाभ्यामपि भोक्तव्यं कायमक्षयमेव तत् । स्वं स्वं राजन्नसन्देहस्त्वया वै प्रियया सह ॥९३॥

राजोवाच

कियत्कालं प्रभोक्तव्यं मयैवं प्रियया सह। तदादिश महाभाग प्रमाणं तद्वचो मम॥९४॥

वामदेव उवाच

वासुदेव महास्तोत्रं महापातकनाशनम्। यदा त्वं श्रोष्यसे पुण्यं तदामोक्षं प्रयास्यसि ॥९५॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं गच्छराजन्प्रभुङ्क्ष्व हि। एवं श्रुत्वा ततो राजा भार्यया सह वै पुनः॥९६॥
स्वशरीरस्य वै मांसं भक्षते प्रियया सह । नित्यमेव महाप्राज्ञ तद्वत्पूर्णं भवेद्वपुः ॥९७॥
नित्यं प्रभक्षते राजा राज्ञी तस्य च पुत्रक। यथायथा च राजा च भक्षते च कलेवरम्॥९८॥

में जाता है । इस तरह से विशेष रूप से दान करने वाला व्यक्ति परम सुख को प्राप्त करता है ॥८५॥ हे राजन् ! आपने अपने जीवन काल में गोदान, भूमिदान, अन्नदान और जलदान कभी नहीं किया ॥८६॥ तुमने मृत्यु के समय भी इन सबों को नहीं दिया इसीलिए तुम्हें भूख लगती है । यह मैंने तुम्हें कारण बतला दिया । तुम्हे भूख तुम्हारे कर्म के कारण सताती है ॥८७॥ मनुष्य जैसा कर्म करता है, वह वैसा ही फल भोगता है । **सुबाहु ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे भूख की शान्ति कैसे होगी ?॥८८॥ लगता है कि इस भूख ने मेरे शरीर को बहुत अधिक सुखा दिया है । आप इस भूख के विषय में आप मुझे प्रायश्चित बतलायें॥८९॥ जिससे कि मेरे इस भयङ्कर कर्म की शान्ति हो जाय । **वामदेव महर्षि ने कहा—** हे राजन्! भोग को छोड़कर इस कर्म का कोई दूसरा प्रायश्चित नहीं है ॥९०॥ आप इस कर्म का फल स्वरूप रहकर भोगेंगे । हे राजन् ! आपका तथा आपकी पत्नी का शरीर जहाँ पड़ा हुआ है ॥९१॥ वहाँ पर आप दोनों और दोनों का शरीर अक्षय है, उसे ही खायें ॥९२॥ आप दोनों अपने-अपने ही शरीर को खायें । **राजा ने कहा—** मुझे अपनी पत्नी के साथ कितने समय तक इसको खाना होगा ?॥९३॥ हे महाभाग ! उसे आप बतलायें आपकी वाणी ही मेरे लिए प्रणाम होगी । **वामदेव महर्षि ने कहा—** वासुदेव का महास्तोत महापातक को विनष्ट करने वाला है ॥९४॥ जब तुम उस स्तोत्र को सुनोगे तब तुम्हारी मुक्ति होगी । हे राजन् ! मैंने आपकी सारी बातें बता दी आप दोनों जायँ और उसे ही खायँ ॥९५॥ महर्षि की बातें सुनकर राजा अपनी पत्नी के साथ जाकर अपने ही शरीर का मांस खाते हैं ॥९६॥ हे महाप्राज्ञ ! वह शव सदा पहले के ही समान पूर्ण हो जाता है । हे पुत्र ! राजा और रानी उसी को प्रतिदिन खाते हैं ॥९७॥ राजा

हसेते वै सदानार्यौ तयोर्भावं वदाम्यहम्। प्रज्ञासार्द्धं महासाध्वी चरित्रं तस्य भूपतेः॥९९॥
हास्यं हि कुरुते नित्यं तस्य श्रद्धानपायिनी। प्रज्ञयाप्रेर्यमाणेन न दत्तं श्रद्धयान्वितम्॥१००॥
ब्राह्मणेभ्यःसुसङ्कल्प्य अन्नमुद्दिश्य वैष्णवे ।
एवं स भक्षते मांसं स्व स्व कायस्य नित्यशः ॥१०१॥
योषिदप्यात्मकायं च रसैश्चामृतसन्निभैः। ततो वर्षशतान्ते तु वामदेवं महामुनिम्॥१०२॥
स्मृत्वा स गर्हयामास आत्मानं प्रति सुव्रत । न दत्तं पितृदेवेभ्योब्राह्मणेभ्यो कदा मया॥१०३॥
न दत्तमतिथिभ्यो हि वृद्धेभ्यश्च विशेषतः । दीनेभ्यो हि न दत्तं च कृपया चातुराय च ॥१०४॥
एवं सभुङ्क्ते स्वंमासं गर्हयन्स्वीयकर्म च। एवं स्वमासं भुञ्जानं सुबाहुं प्रियया सह ॥१०५॥
हसेते च ततोदृष्ट्वा प्रज्ञा श्रद्धा च द्वे स्त्रियौ ।
तस्य कर्म विपाकस्य शुभात्मा हसते नृप ॥१०६॥
ममसङ्ग प्रसङ्गेन न दत्तं पापचेतन । प्रज्ञा च वचनैस्तैस्तु राजानं हसते पुनः॥१०७॥
क्वगतोऽसौ महामोहो येन त्वं मोहितो नृप ।
लोभेन मोहयुक्तेन तमोगर्ते निपात्यते ॥१०८॥
तत्रापतित्वा मामैव पतितं दुःखसङ्कटे। दानमार्गं परित्यज्य लोभमार्गं गतो नृप॥१०९॥
भार्यया सह भुङ्क्ष्व त्वं व्यापितःक्षुधया भृशम् ।
एवं तं हसते प्रज्ञा सुबाहुं प्रिययान्वितम् ॥११०॥
एतद्धि कारणं सर्वं तयोर्हासस्य पुत्रक । भक्ष्यमाणस्य भूपस्य देहं स्वंदुःखिते तदा॥१११॥

जैसे-जैसे अपने शरीर को खाते हैं उसको देखकर जो नारियाँ हैं वो हँसती हैं उन दोनों का भाव बतलाता हूँ॥९८॥ प्रज्ञा के साथ उसकी साध्वी श्रद्धा राजा के चरित्र का प्रतिदिन उपहास करती है ॥९९॥ प्रज्ञा के द्वारा प्रेरित होने पर भी राजा ने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों को अन्न का दान नहीं किया था ॥१००॥ उसके बाद सौ वर्ष ऐसे ही करते हुए जब बीत गया तो राजा ने महर्षि वामदेव का स्मरण करके अपने आत्मा की निन्दा की ॥१०१-१०२॥ मैंने पितृगण, देवता और ब्राह्मणों को कभी भी दान नहीं दिया । मैंने अतिथियों और वृद्धों को भी कभी दान नहीं दिया ॥१०३॥ मैंने दया करके कभी दीनों तथा आतुर जीवों को भी अन्न दान नहीं दिया । इस तरह वह अपनी आत्मा और अपने कर्म की निन्दा करते हुए अपने ही मांसों को खाता है ॥१०४॥ इस तरह से अपने मांस को खाते हुए राजा को देखकर उसकी प्रज्ञा तथा श्रद्धारूप नारियाँ हंसती हैं । उसके कर्म के परिणाम का आत्मा परिहास करता है कि यह पापी मेरी संगत में रहकर भी कभी दान नहीं दिया ॥१०५-१०६॥ प्रज्ञा विभिन्न प्रकार की बातों को कहकर हँसती है । वह कहती है कि तुम्हारा वह महामोह कहाँ गया जिससे तुम मोहित हो गये थे ॥१०७॥ मनुष्य मोह युक्त लोभ के द्वारा जीव अन्धकार मय गर्त में डाल दिया जाता है । वहाँ पर गिरकर मुझको दुःखमय सङ्कट में डाल दिया ॥१०८॥ उसके कारण राजा दान मार्ग का परित्याग करके लोभ मार्ग को पकड़ लिया था । अब तुम भूख के कारण उसे खूब खाओ ॥१०९॥ इस प्रकार से प्रज्ञा पत्नी सहित सुबाहु राजा पर हँसती है । हे पुत्र ! उन दोनों के हँसने का कारण यही है । अपने शरीर को खाते हुए राजा को सदा दुःखी होकर हे महाप्राज्ञ ! क्षुधा और तृष्णा कहती हैं, दो दो उन दोनों का रूप भयानक है । वे दोनों जल मिश्रित

ऊचतुर्देहिदेहीति याच्यमानःसदैव हि। क्षुधातृष्णा महाप्राज्ञ भीमरूपे भयानके ॥११२॥
पयसा मिश्रितं भक्ष्ये याचेते नृपतीश्वरम्। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥११३॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तद्वदस्व महामते ॥११४॥

विज्वल उवाच

वासुदेवाभिधानं तत्स्तोत्रं कथय मे पितः। येन मोक्षं व्रजेद्राजा तद्विष्णोः परमं पदम् ॥११५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमहात्म्ये च्यवनचरित्रे सप्तवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अठानबेवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

एवमुक्ते शुभे वाक्ये विज्वलेन महात्मना। कुञ्जलो वदतां श्रेष्ठ स्तोत्रं पुण्यमुदैरयत्॥१॥
ध्यात्वा नत्वा हृषीकेशं सर्वक्लेश विनाशनम् ।
सर्वश्रेयःप्रदातारं हरेःस्तोत्रमुदीरितम् ॥२॥
वासुदेवाभिधानं तत्सर्वश्रेयःप्रदायकम्। मोक्षद्वारं सुखोपेतं शान्तिदं पुष्टिवर्द्धनम् ॥३॥
सर्वकामप्रदातारं ज्ञानदं ज्ञानवर्द्धनम् । वासुदेवस्य यत्स्तोत्रं विज्वलाय प्रकाशितम् ॥४॥
वासुदेवाभिधानं च प्रमेयं पुण्यवर्द्धनम् । सोऽवगम्य पितुःसर्वं विज्वलःपक्षिणांवरः ॥५॥

भक्ष्य को राजा से माँगती हैं ॥११०-११२॥ इस तरह से तुमने जो पूछा था उसे मैंने वतला दिया । हे महामते ! बतलाओ अब मैं तुमको क्या बतलाऊँ ?॥११३-११४॥ **विज्ज्वल ने कहा—** हे पितः ! आप मुझे वासुदेव महास्त्रोत को बतलायें जिससे कि राजा भगवान् विष्णु के परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे॥११५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में ययाति चरित्रान्तर्गत सत्तानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९७।।

विज्ज्वल का सपत्नीक राजा सुबाहु को वासुदेव महास्तोत्र को सुनाना

सूतजी ने कहा— इसतरह विज्ज्वल के द्वारा शुभ वाक्य के कहे जाने पर बोलने वालों में श्रेष्ठ कुञ्जल ने उस श्रेष्ठ स्तोत्र को बतलाया ॥१॥ सभी क्लेशों को विनष्ट करने वाले भगवान् हृषीकेश का ध्यान और नमस्कार करके सभी प्रकार के कल्याण को प्रदान करने वाले श्रीहरि के स्तोत्र को कुञ्जल ने कहा ॥२॥ भगवान् का वासुदेव नाम सभी प्रकार के कल्याणों को देने वाला है । वह सुख से युक्त मोक्ष का द्वार है, शान्ति प्रदान करने वाला और पुष्टि को बढ़ाने वाला है । उसी स्तोत्र को कुञ्जल ने विज्ज्वल को सुनाया ॥३-४॥ श्रीभगवान् का वासुदेव नाम अप्रमेय तथा पुण्य को बढ़ाने वाला है । उसको अपने पिता से जानकर पक्षियों में श्रेष्ठ विज्ज्वल ॥५॥ वहाँ जाने के लिए जब तैयार हुआ तो पिता ने पूछा जाने के

तत्र गन्तुंप्रचक्राम पितुःपृष्टं तदा नृप। एवं गन्तुं कृतमतिं विज्वलं ज्ञानपारगम् ॥६॥
उवाच पुत्रं धर्मात्मा उपकारसमुद्यतम् ॥७॥

कुञ्जल उवाच

पुत्र तस्य महज्जाने पातकं भूपतेःशृणु। यतो गत्वा पठस्व त्वं सुबाहोश्चोपशृण्वतः ॥८॥
यथा यथा श्रोष्यति स्तोत्रमुत्तमं तथा तथा ज्ञानमयो भविष्यति ।
श्रीवासुदेवस्य न संशयो वै तस्य प्रसादात्सुशिवं मयोक्तम् ॥९॥
आमन्त्र्य सगुरुं पश्चादुड्डीय लघुविक्रमः। आन्दकाननं पुण्यं सम्प्राप्तो विज्वलस्तदा॥१०॥
वृक्षच्छायां समाश्रित्य उपविष्टो मुदान्वितः। समालोक्य सराजानं विमानेनागतं पुनः ॥११॥
एष्यत्यसौ कदा राजा सुबाहुःप्रियया सह। पातकान्मोचयिष्यामि स्तोत्रेणानेन वै कदा ॥१२॥
तावद्विमानःसम्प्राप्तःकिङ्किणीजालमण्डितः । घण्टारवसमाकीर्णोवीणावेणुसमन्वितः ॥१३॥
गन्धर्वस्वरसङ्घुष्टश्चाप्सरोभिःसमन्वितः । सर्वकामसमृद्धस्तु अन्नोदकविवर्जितः ॥१४॥
तस्मिन्याने स्थितो राजा सुबाहुःप्रियया सह ।
समुत्तीर्णो विमानात्स सुताक्ष्र्य प्रियया सह ॥१५॥
शस्त्रमादाय तीक्ष्णं तु यावत्कृन्तति तच्छवम् ।
तावद्धि विज्वलेनापि समाह्वानं कृतं तदा ॥१६॥
भोभोः पुरुषशार्दूल देवोपम भवानिदम्। करोति निर्घृणं कर्म नृशंसैर्न च शक्यते ॥१७॥
कर्तुं पुरुषार्दूल कोऽयं विधिविपर्ययः। दुष्कृतं साहसं कर्म निन्द्यं लोकेषु सर्वदा॥१८॥
वेदाचारविहीनं तु कस्मात्प्रारब्धवानिह। तन्मे त्वं कारणं सर्वं कथयस्व यथा तदा ॥१९॥

लिए उद्यत ज्ञान पारंगत तथा उपकार करने के लिए उद्यत विज्ज्वल नामक पुत्र से पिता ने पूछा ॥६-७॥ **कुञ्जल ने कहा—** हे पुत्र ! सुनो उस राजा का बहुत बड़ा पाप है । अतएव तुम जाकर उसे ऐसा पढ़ो कि उस राजा को यह सुनायी दे ॥८॥ वह जैसे-जैसे इस उत्तम स्तोत्र को सुनेगा वैसे ही वैसे वह ज्ञानवान् हो जायेगा । श्रीवासुदेव का यह स्तोत्र ऐसा है, इसमें किसी भी प्रकार संशय नहीं है । उस पर कृपा करके ही मैंने यह कल्याणकारी स्तोत्र कहा है ॥९॥ उसके बाद अपने पिता से विदा लेकर पराक्रमी विज्ज्वल आनन्दकानन में गया ॥१०॥ वह प्रेमपूर्वक वृक्ष की छाया में बैठ गया उसके बाद विमान से आये हुए राजा को देखकर ॥११॥ वह सोच रहा था कि राजा सुबाहु अपनी पत्नी के साथ कब आयेंगे और मैं इस स्तोत्र के द्वारा उसको पातकों से मुक्त करूँगा ॥१२॥ उसी समय किंकिणी समूह से मण्डित वह विमान आ गया। उस विमान में घंटा ध्वनि तथा वीणा की ध्वनि हो रही थी ॥१३॥ अप्सराओं के साथ गन्धर्वों का स्वर सुनायी पड़ता था । उसमें समस्त काम्य वस्तुएँ भरी थीं किन्तु उसमें अन्न और जल नहीं थे ॥१४॥ उसी में राजा अपनी पत्नी के साथ बैठे थे । सुताक्ष्र्य सुबाहु अपनी पत्नी के साथ उससे बाहर निकले ॥१५॥ शस्त्र लेकर जब राजा उस शव को काट रहे थे उसी समय विज्ज्वल ने राजा से कहा ॥१६॥ ऐ पुरुष श्रेष्ठ! आप तो देवता के समान हैं, किन्तु आप यह अत्यन्त घृणित कर्म करते हैं आपको इस नृशंस कर्म को नहीं करना चाहिए । हे पुरुष शार्दूल ! यह तो विधि का विपर्यय है । साहसिक पाप कर्म सभी लोकों में निन्दित है ॥१७-१८॥ आप वेदाचार से रहित कर्म क्यों करते हैं ? आप इसका कारण ठीक-ठीक

इत्येवं भाषितं तस्य विज्वलस्य महात्मनः। समाकर्ण्य महाराजःस्वप्रियां वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥
प्रिये वर्षशतं भुक्तं मयेदं पापकर्मणा। कदा न भाषितं केन यथाऽयं परिभाषते ॥२१॥
ममैवं पीड्यमानस्य क्षुधया हृदयं प्रिये। निर्गतं चोत्सुकं कान्ते शान्तिश्चित्ते प्रवर्त्तते ॥२२॥
यावदस्य श्रुतं वाक्यं सर्वदुःखस्य शान्तिदम्।
तावच्चित्ते समाह्लादो वर्तते चारुहासिनि ॥२३॥
कोऽयं देवोऽनुगन्धर्वःसहस्राक्षो भविष्यति। मुनीनां स्याद्वचःसत्यं यदुक्तं मुनिना पुरा॥२४॥
एवमाभाषितं श्रुत्वा प्रियस्यानन्तरं प्रिया। राजानं प्रत्युवाचाथ भार्या पतिपरायणा॥२५॥
सत्यमुक्तंत्वया नाथ इदमाश्चर्यमुत्तमम्। यथा ते वर्तते कान्त मम चित्ते तथा पुनः ॥२६॥
पक्षिरूपधरःकोऽयं पृच्छते हितकारिवत्। एवमाभाषितं श्रुत्वा प्रियायाःपृथिवीपतिः ॥२७॥
वद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा पक्षिणं वाक्यमब्रवीत्। स्वागतं ते महाप्राज्ञ पक्षिरूपधर प्रभो ॥२८॥
शिरसा भार्यया सार्द्धं तव पादाम्बुजद्वयम्। नमस्करोम्यहं पुण्यमस्तु नस्त्वत्प्रसादतः ॥२९॥
भवान्कःपक्षिरूपेण पुण्यमेव प्रभाषते। यादृशं क्रियते कर्म पूर्वदेहेन सत्तम॥३०॥
सुकृतं दुष्कृतं वापि तत्तदिहैव प्रभुज्यते। अथ तेनात्मकं वृत्तं तस्याग्रे च निवेदितम् ॥३१॥
यथोक्तं कुञ्जलेनापि पित्रापूर्वं श्रुतं तथा। कथय स्वात्मवृत्तान्तं भवान्को मां प्रभाषते॥३२॥
सुबाहु प्रत्युवाचेदं वाक्यं पक्षिवरस्तदा ॥३३॥

विज्वल उवाच

शुकजात्यां समुत्पन्नःकुञ्जलो नाम मे पिता। तस्याहं विज्वलो नाम तृतीयस्तु सुतेष्वहम् ॥३४॥

बतलाइये ॥१९॥ इस तरह से विज्ज्वल के वाक्य को सुनकर राजा ने अपनी पत्नी से कहा ॥२०॥ हे प्रिये! मैंने अपने पाप कर्म के कारण इसको सौ वर्षों तक खाया, किन्तु अब तक किसी ने इस तरह की बात नहीं कही जिस तरह से यह कह रहा है ॥२१॥ हे प्रिये ! भूख के कारण मेरा हृदय पीड़ित हो रहा है । वह उत्सुकता पूर्वक निकल रहा है और मेरे चित्त में शान्ति हो रही है ॥२२॥ मैंने सभी दुःखों को शान्त करने वाले इसके वाक्य को सुना है । हे चारुहासिनि ! उसी समय मेरे चित्त में आनन्द हो रहा है॥२३॥ यह देवता, गन्धर्व अथवा इन्द्र में से कौन हैं ? मुनियों की वाणी सत्य हैं, मुनि ने जो पहले कहा॥२४॥ इस तरह से अपने पति की वाणी को सुनकर पतिपरायणा रानी ने अपने पति से कहा ॥२५॥ हे नाथ ! आपने सत्य ही कहा है, यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है । हे कान्त ! आपके ही समान मेरे भी चित्त में शान्ति मिल रही है ॥२६॥ यह पक्षी का रूप धारण करने वाला कौन है ? जो हितकारी व्यक्ति के समान पूछ रहा है । अपनी पत्नी की वाणी को सुनकर पृथिवीपति ॥२७॥ सुबाहु हाथ जोड़कर उस पक्षी से कहे । **सुबाहु ने कहा—** हे पक्षिरूपधारी महाप्राज्ञ प्रभो ! आपका स्वागत है ॥२८॥ मैं आपके दोनों चरणों में अपनी पत्नी के साथ शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ, आपकी कृपा से मुझे पुण्य की प्राप्ति हो रही है ॥२९॥ आप पक्षिरूप में कौन है ? जो इस तरह की पवित्र बातें कर रहे हैं । हे श्रेष्ठ ! जीव जैसा कर्म करता है, उसी तरह का फल प्राप्त करता है ॥३०॥ जीव अपने पाप तथा पुण्य का फल इस लोक में ही भोगता है । उसके बाद राजा ने अपना सारा वृत्तान्त उसी तरह का सुनाया जैसा कुञ्जल ने कहा था । **राजा ने कहा—** आप अपना वृत्तान्त बतलायें जो पक्षी के रूप में मुझे कह रहे हैं ॥३१-३२॥ उसके बाद पक्षि

नाहं देवो न गन्धर्वो न च सिद्धो महाभुज। नित्यमेव प्रपश्यामि कर्म चैवं सुदारुणम् ॥३५॥
कियत्कालं महत्कर्म साहसाकारसंयुतम्। करिष्यसि महाराज ! तन्मे कथय साम्प्रतम् ॥३६॥

सुबाहुरुवाच

वासुदेवाभिधानं य त्पूर्वमुक्तं हि ब्राह्मणैः। श्रोष्याम्यहं यदा भद्र गतिं स्वां प्राप्नुयां तदा ॥३७॥
पुण्यात्मनाभाषितं वै मुनिना संयतात्मना। तदाहं पातकान्मुक्तो भविष्यामि न संशयः ॥३८॥

विज्वल उवाच

तवार्थे पृच्छितस्तातस्तेन मे कथितं च यत्। तत्तेऽद्याहं प्रवक्ष्यामि शाश्वतं शृणु सत्तम॥३९॥
ॐ अस्य श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः ॐकारो देवता सर्वपातकनाशनार्थे चतुर्वर्गसाधनार्थे च जपे विनियोगः । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इति मन्त्रः ।
पावनं परमं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम् । विद्याधरं भवाधारं प्रणवं वै नमाम्यहम् ॥४०॥
निरावासं निराकारं सुप्रकाशं महोदयम्। निर्गुणं गुणसम्बद्धं नमामि प्रणवं परम्॥४१॥
महाकान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम् । आचिन्वन्तं जगत्सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम् ॥४२॥
भाति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्द्धनः। अभयं भिक्षुसम्बद्धं नमामि प्रणवं शिवम्॥४३॥
गायत्री सामगायन्तं गीतं गीतप्रियं शुभम्। गन्धर्वगीतभोक्तारं प्रणवं प्रणमाम्यहम् ॥४४॥
विचारं वेदरूपं तं यज्ञस्थं भक्तवत्सलम्। योनिं सर्वस्य लोकस्य ओंकारं प्रणमाम्यहम् ॥४५॥

ने राजा सुबाहु से कहा । **विज्वल ने कहा—** मेरी पक्षी की जाति में जन्म हुआ है । मेरे पिता नाम कुञ्जल है ॥३३॥ मैं उनका तीसरा पुत्र हूँ । हे महाभुज ! न तो मैं देवता हूँ, न गन्धर्व हूँ और न सिद्ध हूँ ॥३४॥ मैं आपके इस भयङ्कर कर्म को प्रतिदिन देखता हूँ । हे महाराज ! आप यह बतलायें कि आप इस दारुण कर्म को कब तक करेंगे ? **सुबाहु ने कहा—** हे भद्र ! पहले ब्राह्मणों ने मुझे कहा है कि जब मैं वासुदेव नामक स्तोत्र को सुनूगाँ तब मैं अपनी गति को प्राप्त करूँगा इस बात को पुण्यात्मा तथा संयमी मुनि ने कहा है ॥३५-३७॥ उसी समय मैं पाप मुक्त होऊँगा, इसमें कोई संशय नहीं है । **विज्ज्वल ने कहा—** हे तात ! मैंने आपके ही लिए इस बात को पूछा है ॥३८॥ उस शाश्वत स्तोत्र को आपको आज मैं सुना रहा हूँ उसे आप सुनें ॥३९॥ वासुदेवाभिधान स्तोत्र के ऋषि नारदजी हैं, इसका अनुष्टुप छन्द है, इसके देवता ओङ्कार हैं, सभी पापों का विनाश करने लिए तथा चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति में इसका विनियोग है । इस स्तोत्र का मन्त्र **'ओं नमो भगवते वासुदेवाय'** है । पवित्र बनाने वाले, अत्यन्त पुण्य स्वरूप, वेदों के ज्ञाता, वेद के आश्रय तथा विद्या (ज्ञान) के आधार प्रणव (ओङ्कार) को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥ मैं, वास रहित, आकार रहित, प्रकाश स्वरूप, प्रहान् कल्याण स्वरूप, निर्गुण, (प्राकृतिक गुणों से रहित) दिव्य गुणों से युक्त प्रणव को नमस्कार करता हूँ ॥४१॥ महती कान्ति से सम्पन्न, अत्यन्त उत्साहमय, महामोह (अज्ञान) को विनष्ट करने वाले, सम्पूर्ण जगत् का चयन करने वाले गुणातीत (प्रकृति से परे) प्रणव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४२॥ जो सर्वत्र जीवों के ऐश्वर्य की समृद्धि करने वाले होकर सर्वत्र प्रकाशित होते हैं, उन अभय तथा भिक्षु (संन्यासी) से संबद्ध प्रणव को नमस्कार करता हूँ ॥४३॥ गायत्री साम का गान करने वाले, गीत स्वरूप गीतों के प्रिय मङ्गलमय, गन्धर्व गीत का भोग करने वाले प्रणव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४४॥ वेदों के विचार स्वरूप यज्ञों में स्थिर रहने वाले, भक्त वत्सल, सम्पूर्ण

तारकं सर्वभूतानां नौरूपेण विराजितम् । संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम् ॥४६॥
सर्वतोकेषु वसते एकरूपेण नैकधा । धामकैवल्यरूपेण नमामि प्रणवं शिवम् ॥४७॥
सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम् । वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदस्थानं नमाम्यहम् ॥४८॥
देवदैत्यवियोगैश्च वर्जितं तुष्टिभिःसदा । देवैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोङ्कारं नमाम्यहम् ॥४९॥
व्यापकं विश्ववेत्तारं विज्ञानं परमं शुभम् । शिवं शिवगुणं शान्तं वन्दे प्रणवमीश्वरम् ॥५०॥
यस्य मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुराः । न विन्दन्ति परं शुद्धं मोक्षद्वारं नमाम्यहम् ॥५१॥

आनन्दकन्दाय विशुद्धबुद्धये शुद्धाय हंसाय परावराय ।
नमोऽस्तु तस्मै गणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय ॥५२॥
श्रीपाञ्चजन्येन विराजमानं रविप्रभेणापि सुदर्शनेन ।
गदाब्जकेनापि विराजमानं प्रभुं सदैनं शरणं प्रपद्ये ॥५३॥
यं वेदगुह्यं सगुणं गुणानामाधारभूतं सचराचरस्य ।
यं सूर्यवैश्वानरतुल्यतेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५४॥
क्षुधानिधानं विमलं सुरूपमानन्दमानेन विराजमानम् ।
यं प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५५॥
तमोघनानां स्वकरैर्विनाशं करोति नित्यं यतिधर्महेतुः ।
उद्द्योतमानं रविदीप्ततेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५६॥

जगत् के कारण स्वरूप ओङ्कार को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४५॥ सभी जीवों को संसार सागर से पार उतारने वाले नौका रूप से स्थित प्रणव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४६॥ सम्पूर्ण संसार में जो एकरूप से तथा अनेक रूप हैं कैवल्य धाम रूप से निवास करते हैं, इस प्रकार के कल्याणकारी प्रणव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४७॥ सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, शुद्ध, निर्गुण, गुणों के नायक तथा प्रकृत भावों से रहित वेद स्थान प्रणव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४८॥ देवताओं तथा दैत्यों के वियोग तथा तुष्टि से सदा रहित रहने वाले, एवं देवों तथा योगियों के लिए ध्येय ओङ्कार को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४९॥ व्यापक, सम्पूर्ण जगत् को जानने वाले तथा सर्वज्ञ, परम कल्याणमय विज्ञान स्वरूप, शिव स्वरूप, कल्याणकारी गुणों से युक्त तथा शान्त प्रणव स्वरूप ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५०॥ जिसकी माया के ही अन्तर्गत ब्रह्मा आदि देवता तथा दूसरे देव एवं असुर हैं और उसी के कारण परं शुद्ध मोक्ष के द्वार को नहीं प्राप्त कर पाते हैं, ऐसे प्रणव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ आनन्दकन्द, विशुद्धबुद्धि सम्पन्न शुद्ध स्वरूप, हंस स्वरूप, परावर तत्त्व स्वरूप, महाकान्ति सम्पन्न गणनायक भगवान् श्रीवासुदेव को मेरा नमस्कार है ॥५२॥ जो भगवान् वासुदेव पाञ्चजन्य शङ्ख तथा सूर्य के समान कान्ति वाले चक्र के द्वारा सुशोभित हैं । गदा तथा कमल के द्वारा भी शोभायमान श्रीप्रभु की मैं सदा शरणागति करता हूँ ॥५३॥ जो गोपनीय तत्त्व दिव्य गुणों से युक्त, तथा चराचर के गुणों के आधार स्वरूप, सूर्य तथा अग्नि के समान तेज वाले भगवान् वासुदेव की शरणागति करता हूँ ॥५४॥ भूख के आकार निर्दोष, सुन्दर रूप वाले, तथा आनन्द के द्वारा सुशोभित होने वाले जिन श्रीभगवान् को प्राप्त करके देवता आदि जीव जीवित रहते हैं, उन श्रीवासुदेव भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥५५॥ जो अज्ञानान्धकार रूपी मेघ को अपने किरणों से विनष्ट करते हैं जो समस्त कर्मों के कारण हैं । जो सूर्य के तेज के समान प्रकाशित होते है, उन वासुदेव भगवान् की मैं शरणागति करता

यो भाति सर्वत्र रविप्रभावैःकरोति शोषं च रसं ददाति ।
यः प्राणिनामन्तरगःस वायुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५७॥
स्वेच्छानुरूपेण स देवदेवो बिभर्ति लोकान्सकलान्महात्मा ।
सन्तारणे नौरिव वर्तते यस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५८॥
अन्तर्गतोलोकमयःसदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम् ।
स्वाहामुखो देवगणस्य हेतुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥५९॥
रसैःसुगुण्यैःसकलैःसहैव पुष्णाति सौम्यो गुणदश्च लोके ।
अन्नानि यो निर्मलतेजसैव तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६०॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतुःसर्वाश्रयःसर्वमयःस सर्वः ।
विना हृषीकैर्विषयान्प्रभुङ्क्ते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६१॥
जीवस्वरूपेण बिभर्ति लोकांस्ततःस्वमूर्त्तान्सचराचरांश्च ।
निष्केवलो ज्ञानमयःसुशुद्धस्तंवासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६२॥
दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम् ।
यं प्राप्य देवा विनयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६३॥
सुखं सुखान्तं सुखदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं मुनिपं सुरेशाम् ।
सत्याश्रमं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६४॥

हूँ॥५६॥ जो सर्वत्र सूर्य के प्रभाव से प्रकाशित होते हैं जो शोषण करने का तथा रस प्रदान करने का काम करते हैं जो प्राणियों के भीतर वायुरूप से विद्यमान हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ॥५७॥ वे देवदेव ! अपनी इच्छा के अनुसार सम्पूर्ण लोकों तथा राजाओं का धारण पोषण करते हैं । जो संसार सागर से पार उतारने के लिए नौका के समान हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ। लोकस्वरूप जो भगवान् स्थावर और जंगमों के भीतर रहकर खाये-पिये हुए अन्न और जल को पचाने का काम करते हैं, जो देवताओं के लिए स्वाहा रूपी मुख बन जाते हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥५९॥ लोक में जो गुण प्रदान करने वाले श्रीभगवान् सोम रूप से अनुकूल रसों के द्वारा सबों का एक साथ पोषण करने का काम करते हैं तथा जो अपने निर्मल तेज से अन्नों का पोषण करते हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥६०॥ जो श्रीभगवान् सर्वत्र विनाश का कारण बनते हैं, जो सबों के आश्रय हैं, सर्वमय हैं, तथा सर्वस्वरूप हैं, जो इन्द्रियों से रहित हैं किन्तु विषयों का उपभोग करते हैं, मैं उन भगवान् वासुदेव की शरणागति करता हूँ ॥६१॥ जो भगवान् जीव रूप से लोकों को धारण करते हैं और उसी से वे अपने शरीरभूत चराचरों को धारण करते हैं । जो निष्केवल, ज्ञान स्वरूप तथा अत्यन्त शुद्ध हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥६२॥ जो भगवान् दैत्यों का विनाश करने वाले हैं, दुःखों का विनाश करते हैं, शान्त, परमशक्ति स्वरूप तथा विशाल हैं, जिन श्रीभगवान् को प्राप्त करके देवता उनकी स्तुति करते हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥६३॥ जो भगवान् सुख स्वरूप हैं, सुखान्त हैं, सुख देने वाले हैं, देवताओं के स्वामी हैं, ज्ञान के सागर हैं तथा मुनियों की रक्षा करने वाले हैं, सत्य के आश्रय स्वरूप हैं, सत्य नामक गुण पर प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान्

यज्ञाङ्गरूपं परमार्थरूपं मायान्वितं मापतिमुग्रपुण्यम् ।
विज्ञानमेकं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥६५॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि तस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले ।
श्रीपादपद्मद्वयमेव तस्य तद्वासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥६६॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम् ।
तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य अघापहं तत् ॥६७॥
पादाम्बुजं रक्तमहोत्पलाभमम्भोजसल्लिलङ्गजयोपमुक्तम् ।
अलङ्कृतं नूपुरमुद्रिकाभिःश्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥६८॥
देवैः सुसिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या उरगाधिपैश्च ।
तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥६९॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाःपूता दिवं यान्ति विकल्मषास्ते ।
मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं पप्रद्ये ॥७०॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र ।
पिबन्ति येऽद्यापि सपापदेहास्ते यान्ति शुद्धाःसुगृहं मुरारेः ॥७१॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना उग्रैश्च पापैः परिलिप्तदेहाः ।
ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि ॥७२॥
नैवेद्यमात्रेण सुभिक्षितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनस्तु ।
श्रीवाजपेयस्य फलं लभन्ते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति ॥७३॥

वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥६४॥ जिन भगवान् का अङ्ग यज्ञ है, जो परमार्थ स्वरूप हैं, माया से युक्त हैं, लक्ष्मीजी के पति हैं तथा उग्रपुण्य स्वरूप हैं, विज्ञान स्वरूप हैं, सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र आश्रय स्वरूप हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥६५॥ वे ही भगवान् सागर के बीच में शयन करते हैं जो विशाल नाग (शेषनाग) के शरीर पर शयन करते हैं, उन्हीं भगवान् वासुदेव के दोनों चरणों को मैं नित्य ही प्रणाम करता हूँ ॥६६॥ पुण्य से युक्त, कल्याणकारी तथा अनेक तीर्थों से सुसेवित ही भगवान् वासुदेव के दोनों चरण कमल पापों का विनाश करने वाले हैं ॥६७॥ श्रीभगवान् के वे दोनों महान् चरण रक्त कमल के समान कान्ति वाले हैं, तथा कमल की सुन्दर कान्ति को तिरस्कृत करने वाले हैं, भगवान् वासुदेव के जो चरण नूपुर तथा मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से अलंकृत हैं, उनको मैं नित्य ही प्रणाम करता हूँ॥६८॥ देवता, सिद्ध तथा मुनिगण तथा सर्पाधिपतिगण, जिनकी भक्तिपूर्वक सदा स्तुति करते रहते हैं उन भगवान् वासुदेव के उन परमपवित्र दोनों चरण को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ ॥६९॥ जिन श्रीभगवान् के चरणोदक में स्नान करके पवित्र होकर निष्पाप बने हुए जीव स्वर्गलोक में चले जाते हैं और सन्तुष्ट मुनिगण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥७०॥ जहाँ पर श्रीभगवान् का चरणोदक रहता है, वहीं पर गङ्गा आदि तीर्थों का निवास होता है । पापी जीव भी यदि भगवान् के चरणोदक का पान करते हैं, तो वे पवित्र होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं ॥७१॥ श्रीभगवान् के चरणोदक के द्वारा जो जीव अभिषिक्त होते हैं, ऐसे घोर पापी जीव भी मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । उन्हीं

नारायणं तं नरकाधिनाशनं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम् ।
यं ध्यायमानाः सुगतिं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥७४॥

यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते,
यो विश्वस्य विसृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः ।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सल-
स्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ पावनौ ॥७५॥

यो दृष्टो मखमण्डपे सुरगणैः श्रीवामनः सामगः-
सामोद्गीतकुतूहलः सुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः ।
कुर्वन्तं नयनेक्षणैः शुभकरैर्निष्पापतां तद्बले-
स्तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम् ॥७६॥

राजन्तं द्विजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया शोभितं-
दिव्येनापि सुतेजसा करमयं यं चेन्द्रनीलोपमम् ।
देवानां हितकाम्यया सुतनिजं वैरोचनस्यापि तं-
याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे प्रभुं वामनम् ॥७७॥

श्रीभगवान् के चरणों को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥७२॥ चक्रधारी महात्मा श्रीभगवान् के केवल नैवेद्य का ही भोजन करने वाले जीव सभी अर्थों से सम्पन्न होकर वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त करते हैं ॥७३॥ नारकीय यातना का नाश करने वाले माया के संश्लेष से रहित, तथा समस्त गुणों को जानने वाले जिन भगवान् नारायण का ध्यान करने वाले जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, उन भगवान् वासुदेव की मैं शरणागति करता हूँ ॥७४॥ जिन भगवान् के वंदनीय सुन्दर चरणद्वय की पूजा ऋषिगण, सिद्धगण, चारणगण तथा देवताओं से की जाती है जो जगत् की विशेष रूप से सृष्टि करने में कारण बनते हैं, जो ब्रह्मा आदि देवताओं के स्वामी हैं, जो वात्सल्य गुण सम्पन्न भगवान् इस संसार सागर में गिरे हुए जीवों का उद्धार करते हैं, उन्हीं श्रीभगवान् के श्रेष्ठ तथा पवित्र चरणों की मैं भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ ॥७५॥ जिन सामगान करने वाले, तथा सामवेद के द्वारा गाये गये कुतूहल से युक्त श्रीभगवान् का देवताओं ने यज्ञमण्डल में दर्शन किया, जो त्रैलोक्य के एकमात्र स्वामी हैं, जिन्होंने अपने कल्याणकारी नेत्रों द्वारा देखकर राजा बलि के यज्ञ को निष्पाप बना दिये मैं उन्हीं वामन भगवान् के परम पुनीत चरण युगल की वन्दना करता हूँ॥७६॥ यज्ञ मण्डल में ब्रह्मण मण्डली में सुशोभित होने वाले, ब्रह्मा की शोभा से सम्पन्न, इन्द्र नीलमणि के समान सुन्दर तथा अपने तेज के द्वारा किरण स्वरूप जो वामन भगवान् देवताओं का कल्याण करने के लिए विरोचन के पुत्र बलि से याचना किए उन वामन भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ कि वे मुझे वैकुण्ठ प्रदान करें ॥७७॥ मैं भगवान् वामन के उस विक्रम को नमस्कार करता हूँ जिसको सूर्यमण्डलों में देखने के लिए एकत्रित मुनियों ने द्युलोक तथा सूर्य एवं चन्द्रमा के अस्तमन गिरि के अन्तराल आच्छादित करते हुए

तं द्रष्टुं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं
चन्द्रार्कास्तमयान्तरे किल पदा संछादयन्तं तदा ।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं-
काये विश्वविकोशकेतमतुलं नौमि प्रभोर्विक्रमम् ॥७८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

स्तोत्रं पवित्रं परमं पुराणं पापापहं पुण्यमयं शिवं च ।
धन्यं सुसूक्तं परमं सुजाप्यं निशम्य राजा च सुखी बभूव ॥१॥
गता सुतृष्णा क्षुधया समेता देवोपमो भूमिपतिर्बभूव ।
भार्या च तस्यापि विभाति रूपैर्युक्तावुभौ पापविमुक्तदेहौ ॥२॥
देवः सुदेवैः परिवारितोऽसौ विप्रैः सुसिद्धैर्हरिभक्तियुक्तैः ।
आगत्य भूपं गतकल्मषं तं श्रीशङ्खचक्राब्जगदासिधर्ता ॥३॥
श्रीनारदो भार्गवव्यासुपुण्याः समागतस्तत्र मृकण्डसूनुः ।
वाल्मीकिनामा मुनिर्विष्णुभक्तः समागतो ब्रह्मसुतो वसिष्ठः ॥४॥

देखा, उन्हीं चक्रधारी के शरीर में सभी देवतालीन हो गये, मैं उसी विश्वकोश को प्रकाशित करने वाले भगवान् के विक्रम को नमस्कार करता हूँ ॥७८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवनचरित्रान्तर्गत अन्ठानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९८।।

सविधि वासुदेव स्तोत्र का वर्णन और उसके फल का वर्णन

श्रीविष्णु भगवान् ने कहा— उस परम पवित्र तथा अत्यन्त प्राचीन, पापों को विनष्ट करने वाले, पुण्य स्वरूप तथा कल्याणकारी, धन्य तथा सुन्दर सूक्त स्वरूप एवं जप करने योग्य स्तोत्र को सुनकर राजा सुखी हो गये ॥१॥ उनके भूख और प्यास मिट गये और राजा देवता के समान हो गये । उनकी रूपवती पत्नी भी सुशोभित हो गयी । दोनों के पाप के बंधन समाप्त हो गये ॥२॥ देवताओं तथा श्रीहरि की भक्ति से युक्त विप्रों तथा सिद्ध पुरुषों के साथ राजा के पास शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले श्रीभगवान् उस निष्पाप राजा के पास आये ॥३॥ वहाँ पर नारदजी, व्यासजी तथा महर्षि मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि आये, महर्षि वाल्मीकि तथा भगवान् विष्णु के भक्त महर्षि वसिष्ठ वहाँ आये ॥४॥ गर्ग

गर्गो महात्मा हरिभक्तियुक्तो जाबालिरैभ्यावथ कश्यपश्च ।
आजग्मुरेते हरिणासमेता विष्णुप्रिया भागवता वरिष्ठाः ॥५॥
पुण्याः सुधन्या गतकल्मषास्ते हरेः सुपादाम्बुजभक्तियुक्ताः ।
श्रीवासुदेवं परिवार्य तस्थुः स्तुवन्ति भूपं विविधप्रकारैः ॥६॥
देवाश्च सर्वे हुतभुङ्मुखाश्च ब्रह्माहरिश्चापि सुदव्यिदेव्यः ।
गायन्ति दिव्यं मधुरं मनोहरं गन्धर्वराजादिसुगायनाश्च ॥७॥
सुवेदयुक्तैः परमार्थसंमितैः स्तवैः सुपुण्यैर्मुनयः स्तुवन्ति ।
दृष्ट्वा पतिं भूपतिमेव देवो हरिर्बभाषे वचनं मनोहरम् ॥८॥
वरं यथेष्टं वरयस्व भूपते ददाम्यहं ते परितोषितो यतः ।
हरेस्तु वाक्यं स निशम्य राजा दृष्ट्वा मुरारिं वदमानमग्रे ॥९॥
नीलोत्पलाभं मुरघातिनं प्रभुं तं शङ्खचक्रासिगदाप्रधारिणम् ।
श्रिया समेतं परमेश्वरं तं रत्नोज्वलं कङ्कणहारभूषितम् ॥१०॥
रविप्रभं देवगणैः सुसेवितं महार्घहाराभरणैः सुभूषितम् ।
सुदिव्यगन्धैर्वरलेपनैर्हरिं सुभक्तिभावैरवनीं गतो नृपः ॥११॥
दण्डप्रणामैः सततं ननाम जयेत्युवाचाथ महामुदं गतः ।
दासोऽस्मि भृत्योऽस्मि पुरः स ते सदा भक्तिं न जाने न च भावमुत्तमम् ॥१२॥
जायान्वितं मामिह चागतं हरे प्रपाहि वै त्वां शरणं प्रपन्नम् ।
धन्यास्तु मे माधव ! मानवा द्विजाःसदैव ते ध्यानमनोविलीनाः ॥१३॥

महर्षि, श्रीहरि की भक्ति से सम्पन्न जाबालि, रैभ्य तथा कश्यप महर्षि वहाँ श्रीहरि के साथ आये । ये सभी भगवान् विष्णु के वरिष्ठ भक्त थे ॥५॥ ये सभी पुण्यवान्, धन्य, निष्पाप तथा श्रीहरि की भक्ति से युक्त थे। वे सब श्रीहरि को घेर कर खड़े हो गये और सब राजा की अनेक प्रकार से स्तुति कर रहे थे ॥६॥ अग्नि आदि सभी देवता, ब्रह्माजी, श्रीहरि की दिव्य देवियाँ भी आयीं । उस समय गन्धर्व राज इत्यादि मधुर स्वर से दिव्य गीत गा रहे थे ॥७॥ मुनिजन वेदों के परमार्थ से परिपूर्ण अत्यन्त पवित्र स्तोत्रों से स्तुति कर रहे थे । उसके वाद राजा को देखकर श्रीहरि ने मनोहर शब्दों में कहा ॥८॥ राजन् ! अपनी इच्छा के अनुसार तुम वरदान माँग लो, मैं उसे तुम्हें देना चाहता हूँ, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ श्रीहरि के वाक्यों को सुनकर दैत्यों के शत्रु श्रीभगवान् को अपने समक्ष राजा ने देखा ॥९॥ मुर नामक दैत्य को मारने वाले, नीलकमल के समान कान्ति वाले, शङ्ख, चक्र, खड्ग तथा गदा को धारण करने वाले श्रीलक्ष्मीजी के साथ विद्यमान परमेश्वर रत्नों से देदीप्यमान कङ्कण तथा हार को धारण करने वाले, ॥१०॥ सूर्य के समान कान्ति से सम्पन्न, देव समूह से सुसेवित, अत्यन्त मूल्यवान् हारों तथा भूषणों से सुशोभित, दिव्य गन्धों तथा दिव्य चन्दन आदि को धारण करने वाले श्रीहरि को देखकर राजा ने पृथिवी पर पड़कर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया । तथा श्रीभगवान् का जयकार मनाया । **राजा ने कहा—** भगवान् मैं आपका दास हूँ, अनुचर हूँ, आपके समक्ष रहने वाला हूँ । मैं न तो भक्ति को जानता हूँ और न तो उत्तम भावों को ही जानता हूँ ॥११-१२॥ हे हरे ! अपनी पत्नी के साथ यहाँ आये हुए मेरी आप रक्षा करें, मैं आपके शरण में आया

समुच्चरन्तो भव माधवेति प्रयान्ति वैकुण्ठमितः सुनिर्मलाः ।
तवैव पादाम्बुजनिर्गतं पयः पुण्यं तथा ये शिरसा बहन्ति ॥१४॥
समस्ततीर्थोद्भवतो य आप्लुतास्ते मानवा यान्ति हरेः सुधाम ॥१५॥
नास्ति योगो न मे भक्तिर्ज्ञानं नास्ति न मे क्रिया ।
कस्य पुण्यस्य सङ्गेन वरं मह्यं प्रयच्छसि ॥१६॥

हरिरुवाच

वासुदेवाभिधानं यन्महापातकनाशनम् ।
भवताविज्वलात्पुण्याच्छ्रुतं राजन् विकल्मषम् ॥१७॥
तेन त्वं मुक्तिभागी च सञ्जातो नात्र संशयः ।
मम लोके प्रभुङ्क्ष्व त्वं दिव्यान्भोगान्मनोऽनुगान् ॥१८॥
यदि देव वरो देयो मम दीनस्य वै त्वया। विज्वलाय प्रयच्छ त्वं प्रथमं वरमुत्तमम् ॥१९॥

हरिरुवाच

विज्वलस्य पिता पुण्यः कुञ्जलो ज्ञानपण्डितः ।
वासुदेवमहास्तोत्रं नित्यं पठति भूपते ॥२०॥
पुत्रैः प्रियासमेतोऽसौ मम गेहं प्रयास्यति । एत्ततु जपते स्तोत्रं सदा दास्याम्यहं फलम् ॥२१॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये राजा केशवमब्रवीत् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं सफलं कुरु केशव ॥२२॥

हरिरुवाच

कृते युगे महाराज यदा स्तोष्यन्ति मानवाः। तदा मोक्षं प्रयास्यन्ति तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥२३॥

हूँ । हे माधव ! वे मनुष्य तथा ब्राह्मण धन्य हैं, जिनका मन सदैव आपके ध्यान में लगा रहता है ॥१३॥ आपके माधव नाम का उच्चारण करते हुए, अत्यन्त निर्मल हुए, वे वैकुण्ठ लोक में जाते हैं । आपके पवित्र चरणोदक को जो लोग प्रतिदिन अपने शिर पर धारण करते हैं ॥१४॥ समस्त तीर्थों से उद्भूत उस जल से आप्लुत (भींगे हुए) वे मनुष्य आपके धाम में जाते हैं ॥१५॥ मैं न तो योग जानता हूँ, न भक्ति मुझमें है, न मुझे ज्ञान है, और न तो कोई मुझमें क्रिया है, मुझमें कौन सा पुण्य है कि आप मुझे वरदान दे रहे हैं ॥१६॥ **श्रीहरि ने कहा—** हे राजन् ! आपने जो निर्दोष विज्वल के मुख से वासुदेव नामक महापातकों को विनष्ट करने वाले स्तोत्र का श्रवण किया है ॥१७॥ उसी के कारण तुम मुक्ति के पात्र बन गये हो, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । मेरे लोक में जाकर तुम अपने मन के अनुसार दिव्य भोगों को भोगो ॥१८॥ **राजा ने कहा—** हे देव ! यदि आप मुझ दीन जीव को वरदान देना चाहते है तो सबसे पहले आप विज्वल को उत्तम वरदान प्रदान करें ॥१९॥ **श्रीहरि ने कहा—** राजन् ! विज्वल के पिता कुञ्जल हैं, वे ज्ञानी है तथा प्रतिदिन वासुदेव महास्तोत्र का पाठ करते हैं ॥२०॥ वे अपने पुत्रों तथा पत्नी के साथ मेरे लोक में जायेंगे । इस स्तोत्र का पाठ करने वालों को मैं सदा फल प्रदान करूँगा ॥२१॥ इस तरह के वाक्य कहने पर राजा ने भगवान् केशव से कहा— हे केशव ! इस महापुण्यवान् स्तोत्र को आप सफल वनायें ॥२२॥ **श्रीहरि ने कहा—** हे महाराज ! सत्य युग में जब मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करेंगे, तो वे सद्यः मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२३॥ त्रेतायुग में एक

त्रेतायां मासमात्रेण षड्भिर्मासैस्तुद्वापरे। वर्षेणैकेन च कलौ ये जपन्ति च मानवाः ॥२४॥
स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्र वैष्णवं गतिदायकम्। त्रिकालमेककालं वा स्नातो जपति ब्राह्मणः ॥२५॥
यं यं तु वाञ्छते कामं स स तस्य भविष्यति।
क्षत्रियो जयमाप्नोति धनधान्यैरलङ्कृतः ॥२६॥
वैश्यो भविष्यति श्रीमान्सुखी शूद्रो भविष्यति।
अन्त्यजं श्रावयेद्योऽयं पापन्मुक्तो भविष्यति ॥२७॥
श्रावको नरकं घोरं कदाचिन्नैव पश्यति। मम स्तोत्रप्रसादाच्च सर्वसिद्धो भविष्यति ॥२८॥
भुञ्जानेषु च विप्रेषु श्राद्धकाले तु यः पठेत्।
पितरो वैष्णवं लोकं तृप्ता यास्यन्ति भूपते ॥२९॥
तर्पणान्ते जपं कुर्याद्ब्राह्मणो वाऽथक्षत्रियः। पिबन्ति चामृतं तस्य पितरो हृष्टमानसाः॥३०॥
होमेषु यज्ञमध्ये च भावाज्जपति मानवः। तत्र विघ्ना न जायन्ते सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥३१॥
विषमे दुर्गसंस्थाने हिंस्रव्याघ्रस्य सङ्कटे। चौराणां सङ्कटे प्राप्ते तत्र स्तोत्रमुदीरयेत् ॥३२॥
तत्र शान्तिर्महाराज भविष्यति न संशयः। अन्येष्वेव सुभव्येषु राजद्वारे गते नरे ॥३३॥
वासुदेवाभिधानस्य अयुतं जपते नरः। ब्रह्मचर्येण संस्नातः क्रोधलोभविवर्जित ॥३४॥
तिलतण्डुलकैहोमं दशांशमाज्यमिश्रितम्। वासुदेवं प्रपूज्यैव दद्यात्प्रयतमानसः ॥३५॥
श्लोकं प्रति ततो देयं होमं ध्यानेन मानवैः। तेषां सुभृत्यवन्नित्यं पार्श्वं नैव त्यजाम्यहम्॥३६॥

मास तक इसका पाठ करने से, द्वापर में छह मास तक पाठ करने से तथा कलियुग में एक वर्ष तक इस स्तोत्र का पाठ करने से मानव, स्वर्ग में जायेंगे। यह स्तोत्र वैष्णव गति प्रदान करने वाला है। जो ब्राह्मण स्नान करके तीनों काल में अथवा एक ही बार इसका पाठ करता है ॥२४-२५॥ वह जो-जो कामना करता है, वह उस-उस को प्राप्त करता है। इस स्तोत्र का पाठ करने वाला क्षत्रिय धन-धान्य से समृद्ध होकर विजय प्राप्त करता है ॥२६॥ वैश्य धनवान हो जाता है तथा इसका पाठ करने वाला शूद्र सुखी होता है। जो इस स्तोत्र को सुनता है वह पापों से मुक्त होता है ॥२७॥ इसको सुनने वाला कभी भी भयङ्कर नरक में नहीं जायेगा। वह मेरे स्तोत्र की कृपा को प्राप्त करके सर्वसिद्ध हो जायेगा ॥२८॥ श्राद्ध के समय ब्राह्मणों के भोजन करते वक्त जो इस स्तोत्र का पाठ करेगा हे राजन्! उसके पितृगण तृप्त होकर विष्णुलोक में जायेंगे। तर्पण करने के अन्त में जो ब्राह्मण या क्षत्रिय इस स्तोत्र का जप करे उसके पितृगण प्रसन्न मन से अमृत का पान करते हैं ॥२९-३०॥ जो मनुष्य होम करते समय अथवा यज्ञ के बीच में जो इस स्तोत्र का भावपूर्वक जप करता है, उसको किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं होता है उसको सब प्रकार की सिद्धि हो जाती है ॥३१॥ विषमस्थल में, दुर्गमस्थल में, हिंसक व्याघ्र आदि का सङ्कट उपस्थित हो जाने पर, चोरों का सङ्कट उपस्थित हो जाने पर इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये ॥३२॥ हे महाराज! ऐसा करने पर वहाँ शान्ति अवश्य होगी। दूसरे भी भव्य राजद्वार इत्यादि स्थलों में मनुष्य के जाने पर ॥३३॥ जो मनुष्य स्नान करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए क्रोध तथा लोभ से रहित होकर इस वासुदेव स्तोत्र का दश हजार पाठ करता है ॥३४॥ घी मिश्रित तिल और चावल से उसके दशंश होम ध्यान पूर्वक प्रत्येक श्लोक से करता है तो मैं उसकी सन्निधि में उसी तरह से रहता हूँ जिस तरह अच्छा भृत्य अपने स्वामी का सान्निध्य नहीं

कलौयुगे सुसम्प्राप्ते स्तोत्रे दास्यं प्रयास्यति। वेदभङ्गप्रसङ्गेन यस्य कस्य न दीयते ॥३७॥
सर्वकामसमृद्धार्थः स चैव हि भविष्यति। एव हि सफलं स्तोत्रं मया भूपकृतं शृणु॥३८॥
ब्रह्मणा निर्मितं तेन जप्तं रुद्रेण वै पुरा। ब्रह्महत्याविनिर्मुक्त इन्द्रोमुक्तश्च किल्विषात् ॥३९॥
देवाश्च ऋषयो गुह्याःसिद्धविद्याधरामराः। नागैस्तु पूजितं स्तोत्रमापुः सिद्धिं यथेप्सिताम् ॥४०॥

पुण्यो धन्यः स वै दाता पुत्रवान्हि भविष्यति ।
जपिष्यति मम स्तोत्रं नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
आगच्छ त्वं स्त्रिया सार्धं मम स्थानं नृपोत्तम ।
हस्तावलम्बनं दत्तं हरिणा तस्य भूपतेः ॥४२॥

नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र गन्धर्वा ललितं जगुः। ननृतुश्चाप्सरःश्रेष्ठाः पुष्पवृष्टिं प्रचक्रिरे ॥४३॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे वेदस्तोत्रैः स्तुवन्ति ते। ततो दयितया सार्द्धं जगाम नृपतिर्हरिम् ॥४४॥

तं स्तूयमानं सुरसिद्धसङ्घैः सविज्वलः पश्यति हृष्टमानसः ।
समागतस्तिष्ठति यत्र वै पिता माता च वेगेन महाप्रभावः ॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

त्यागता है ॥३५-३६॥ कलियुग के आने पर यह स्तोत्र दास्य प्रदान करेगा । इसको जिस किसी को भी नहीं बतलाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से भेद का भङ्ग होता है ॥३७॥ सभी कामनाओं की पूर्ति का साधन वहीं हो जायेगा । हे भूप ! आप सुनें इस प्रकार से मैंने इस स्तोत्र को सफल बनाया ॥३८॥ इस स्तोत्र का निर्माण ब्रह्माजी ने किया । इसका सर्वप्रथम जप शङ्करजी ने किया इसका जप करके इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो गये ॥३९॥ देवता, ऋषिगण, गुह्यक, सिद्ध, विद्याधर तथा नागों से पूजित यह स्तोत्र है । इससे सबने अपने मनोऽनुकूल सिद्धि प्राप्त की ॥४०॥ जो मेरे इस स्तोत्र का जप करेगा वह पुण्यवान्, धन्य तथा दान करने वाला होगा, इसमें किसी प्रकार का विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥४१॥ हे राजन् ! तुम अपनी पत्नी के साथ मेरे लोक में आओ इस तरह से कहकर श्रीहरि ने राजा सुबाहु को अपने हाथों का सहारा दिया ॥४२॥ उस समय दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व ललित गीत गाने लगे, श्रेष्ठ अप्सराओं ने नृत्य करते हुए पुष्पों की वृष्टि की ॥४३॥ देवता और ऋषिगणों ने वेद के स्तोत्रों से स्तुति की । उसी समय राजा अपनी पत्नी के साथ श्रीहरि के लोक में चले गये ॥४४॥ विज्वल ने प्रसन्नमन से देखा कि उस राजा की स्तुति देवता तथा सिद्ध समूह कर रहे हैं । उसके बाद विज्ज्वल वहाँ आये जहाँ उनके माता-पिता रहते थे ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत निन्यानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९९॥

सौवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

नर्मदायास्तटे रम्ये वटे तिष्ठति वै पिता। विज्वलोऽपि समायातः पितरं प्रणिपत्य सः ॥१॥
वासुदेवाभिधानस्य स्तोत्रस्याऽपि महामतिः। समाचष्टे स धर्मात्मा महिमानं पितुः पुरः ॥२॥
यथा विष्णुः समागत्य ददौ तस्मै वरं शुभम्।
तत्सर्वं कथयामास सुप्रसन्नेन चेतसा ॥३॥
कुञ्जलोऽपि च वृत्तान्तं समाकर्ण्य स भूपतेः।
हर्षेण महताऽऽविष्टः पुत्रमालिङ्ग्य विज्वलम् ॥४॥
आह पुण्यं कृतं वत्स त्वया राज्ञे महात्मने। उपकारं महापुण्यं वासुदेवस्य कीर्तनात्॥५॥
एवमाभाष्य तं पुत्रमाशीर्भिरभिनन्द्य च। पुत्रं देवसमोपेतं स्तुत्वा चैव पुनः पुनः ॥६॥
स्थितः सरित्तटे रम्ये च्यवनस्योपपश्यतः। एत्तते सर्वमाख्यातं तेषां वृत्तं महात्मनाम् ॥७॥
वैष्णवानां महाराज अन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥८॥

वेन उवाच

अमृतं शङ्खपात्रेण पानार्थंमम चार्पितम्। तस्मात्कस्य न च श्रद्धा पातुं मर्त्यस्य भूतले ॥९॥
उत्तमं वैष्णवं ज्ञानं पानानामिह सर्वदा। त्वयैवं कथ्यमानस्य पाने तृप्तिर्न जायते ॥१०॥
श्रोतुं हि देवदेवेश मम श्रद्धा विवर्द्धते। कथयस्व प्रसादान्मे कुञ्जलस्यापि चेष्टितम् ॥११॥
महात्मना किमुक्तं च चतुर्थं तनयं प्रति। तत्त्व सुविस्तरादेव कृपया कथयस्व मे॥१२॥

वासुदेव स्तोत्र की महिमा का वर्णन

भगवान् विष्णु ने कहा— नर्मदा नदी के मनोहर तट पर जहाँ उसके पिता रहते थे वहाँ विज्ज्वल आया उसने अपने माता-पिता को प्रणाम किया ॥१॥ उसके बाद उसने वासुदेव स्तोत्र की महिमा का वर्णन अपने पिता के समक्ष किया ॥२॥ उसने प्रसन्न मन से अपने पिता को बतलाया कि किस प्रकार श्रीभगवान् आकर राजा को वरदान दिये ॥३॥ कुञ्जल ने भी राजा सुबाहु के वृतान्त को सुनकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक अपने विज्ज्वल नामक पुत्र का आलिङ्गन किया ॥४॥ और कहा— वत्स ! तुमने इस वासुदेव स्तोत्र के द्वारा राजा का उपकार करके अत्यन्त पुण्यकर्म किया है ॥५॥ इस तरह से अपने उस पुत्र को कहकर कुञ्जल ने उसे अपने आशीवर्चनों से अभिनंदित किया और अपने देवता के समान उस पुत्र की उन्होंने बार-बार प्रशंसा की ॥६॥ वह नदी के तट पर बना रहा और महर्षि च्यवन इन सबों को देख रहे थे । भगवान् विष्णु ने कहा— राजन् ! मैंने आपको उन सभी महात्माओं का वृत्तान्त सुनाया; अब मैं आपको क्या सुनाऊँ? **वेन ने कहा**— भगवान् ! आपने मनो शङ्ख रूपी पात्र से मुझे अमृत प्रदान कर दिया है ॥७-८॥ अतएव इस लोक में किसको वैष्णव ज्ञान रूपी अमृत पान करने की श्रद्धा नहीं होगी ॥९॥ इस तरह से आपके द्वारा कहे जाते हुए आख्यानों को सुनने से मुझे तृप्ति ही नहीं होती है । हे देवदेवेश ! मेरी सुनने की श्रद्धा बढ़ती ही जाती है ॥१०॥ कृपा करके कुञ्जल की भी चेष्टाओं (कर्मों) को आप सुनायें । उन्होंने अपने चतुर्थ पुत्र से क्या कहा ?॥११॥ उसको आप विस्तार पूर्वक मुझे सुनायें । **श्रीभगवान् ने कहा**—

श्रीभगवानुवाच

श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं कुञ्जलस्य च । बहुश्रेयः समायुक्तं चरित्रं च्यवनस्य च ॥१३॥
इदं पुण्यं नरःश्रेष्ठ आख्यानं पापनाशनम् । यः शृणोति नरोभक्त्या गोसहस्रफलं लभेत्॥१४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे शततमोऽध्यायः ॥१००॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

सूत उवाच

देवदेवो हृषीकेशस्त्वङ्गपुत्रं नृपोत्तमम् । समाचष्ट महाश्रेय आख्यानं पापनाशनम् ॥१॥
श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं क्षेमदायकम् । द्विजस्यापि च वृत्तान्तं कुञ्जलस्य महात्मनः ॥२॥

विष्णुरुवाच

कुञ्जलश्चापि धर्मात्मा चतुर्थं पुत्रमेव च । समाहूय मुदा युक्त उवाचैनं कपिञ्जलम् ॥३॥
किंतु पुत्र त्वया दृष्टमपूर्वं कथयस्व मे । भोजनार्थं तु यासि त्वमितः कस्मिन्सुतोत्तम ॥४॥
तदाचक्ष्व महाभाग यदि दृष्टं सुपुण्यदम् ॥५॥

कपिञ्जल उवाच

यच्च तात त्वया पृष्टमपूर्वं प्रवदाम्यहम् । यन्न दृष्टं श्रुतं केन कस्मान्नैव श्रुतं मया ॥६॥

आप सुनें, मैं कुञ्जल के भी चरित्र को सुनाता हूँ ॥१२॥ अत्यन्त कल्याणकारी महर्षि च्यवन का भी चरित्र सुनाता हूँ । हे नरश्रेष्ठ ! यह पवित्र आख्यान पापों को विनष्ट करने वाला है ॥१३॥ इस आख्यान को जो भक्तिपूर्वक सुनता है उसको हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त होता है ॥१४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवनचरित्रान्तर्गत सौवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१००॥

कैलास पर्वत की शोभा का वर्णन मुनि वेषधारी पुरुष के द्वारा शिवार्चन का वर्णन

सूतजी ने कहा— देवदेव भगवान् हृषीकेश ने महाराज अङ्ग के पुत्र राजश्रेष्ठ वेन के पापों को विनष्ट करने वाले अत्यन्त कल्याणकारी आख्यान को सुनाया ॥१॥ मैं आपको पाप विनाशक कुञ्जल नामक पक्षी की भी कथा सुनाता हूँ । उसे आप सुनें ॥२॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** धर्मात्मा कुञ्जल ने भी अपने चतुर्थ पुत्र कपिञ्जल को बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त कल्याणकारी पापनाशक आख्यान को कहा ॥३॥ हे पुत्र ! तुम यहाँ से प्रतिदिन भोजन के लिए कहाँ जाते हो और वहाँ पर तुमने कौन सी अपूर्व वस्तु को देखा? मुझे बतलाओ ॥४॥ हे महाभाग ! यदि तुमने पुण्यप्रद किसी वस्तु को देखा है तो हमें सुनाओ । **कपिंजल ने कहा—** हे तात ! आपने जो पूछा है तो मैं अपूर्व बतलाता हूँ ॥५॥ जिसको मैंने न तो कभी

तदिहैव प्रवक्ष्यामि श्रूयतामधुना पितः । शृण्वन्तु भ्रातरः सर्वे मातस्त्वं शृणु साम्प्रतम् ॥७॥
कैलासः पर्वतश्रेष्ठो धवलश्चन्द्रसन्निभः । नानाधातुसमाकीर्णो नानावृक्षोपशोभितः ॥८॥
गङ्गाजलैः शुभैः पुण्यैः क्षालितः सर्वतः पितः ।
नदीनां तु सहस्राणि दिव्यानि विविधानि च ॥९॥
यस्मात्तात प्रसूतानि जलानि विविधानि च । तडागानि सहस्राणि सोदकानि महागिरौ ॥१०॥
नद्यः सन्ति विशालिन्यो हंससारससेविताः । तस्मिञ्छिखरिणां श्रेष्ठे पुण्यदाः पापनाशनाः ॥११॥
वनानि विविधान्येव पुष्पितानि फलानि च । नानावृक्षोपयुक्तानि हरितानि शुभानि च ॥१२॥
किन्नराणां गणैर्युक्तश्चाप्सरोभिः समाकुलः । गन्धर्वचारणैः सिद्धैर्देववृन्दैः सुशोभितः ॥१३॥
दिव्यवृक्षवनोपेतो दिव्यभावैः समाकुलः । दिव्यगन्धैः सुशोभाढ्यैर्नानारत्नसमन्वितः ॥१४॥
शिलाभिः स्फटिकस्यापि शुक्लाभिस्तु सुशोभनः ।
सूर्यतेजोमयो राजंस्तेजोभिस्तुसमाकुलः ॥१५॥
चन्दनैश्चारुगन्धैश्च बकुलैर्नीलपुष्पकैः । नानापुष्पमयैर्वृक्षैः सर्वत्र समलङ्कृतः ॥१६॥
पक्षिणां सुनिनादैश्च दिव्यानां मधुरायते। षट्पदानां निनादैश्च वृक्षौघैर्मधुरायते ॥१७॥
रुतैश्चकोकिलानां तु शोभते सवनो गिरिः । गणकोटिसमाकीर्णं तत्रास्ति शिवमन्दिरम् ॥१८॥
अंशुभिर्धवलं पुण्यं पुण्यराशिशिलोच्चयम् । सिंहैश्च गर्जमानैश्च सैरिभैः कुञ्जरैस्ततः ॥१९॥
दिग्गजानां सुघोषैश्च शब्दितं च समन्ततः । नानामृगैः समाकीर्णं शाखामृगगणाकुलम् ॥२०॥

देखा है और न तो किसी से भी सुना है । उसको मैं बतलाता हूँ । हे पिताजी ! उसे सुनें ॥६॥ ऐ माँ तथा भाइयों ! आपलोग भी उसे सुनें । कैलास पर्वत चन्द्रमा के समान धवल है ॥७॥ वह अनेक धातुओं से भरा है तथा अनेक वृक्षों से सुशोभित है । हे पिताजी ! वह पूर्णरूप से पवित्र तथा मङ्गलमय गङ्गाजल से प्रक्षालित है ॥८॥ हे तात ! उस पर्वत से दिव्य तथा अनेकों हजार नदियाँ निकलती हैं । उससे अनेक प्रकार के जल भी प्रवाहित होते हैं ॥९॥ उस महापर्वत पर जल से परिपूर्ण हजारों जलाशय हैं तथा हंसों तथा सारसों से सेवित बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं ॥१०॥ उस पर्वत श्रेष्ठ पर पुण्यप्रद तथा पाप विनाशक अनेक फलों तथा पुष्पों से भरे हुए वन हैं ॥११॥ वे वन अनेक वृक्षों के लिए उपर्युक्त तथा हरे-भरे हैं । वह पर्वत किन्नरों तथा अप्सराओं से परिपूर्ण है ॥१२॥ वह गन्धर्वों, चारणों, सिद्धों तथा देव समूहों से सुशोभित है। वह दिव्य वृक्षों के वनों तथा दिव्य भावों से युक्त है ॥१३॥ दिव्य गन्धों तथा शोभाओं से परिपूर्ण तथा अनेक रत्नों से युक्त हैं । वह स्फटिक की धवल शिलाओं से सुशोभित है ॥१४॥ हे राजन् ! वह सूर्य के तेज से युक्त तेजों से सुशोभित है । सुन्दर गन्ध वाले चन्दनों, बकुलों तथा नीले पुष्पों आदि ॥१५॥ अनेक पुष्प से भरे वृक्षों से सर्वत्र समलंकृत है । वह दिव्य पक्षियों की ध्वनियों से मधुर बना रहता है ॥१६॥ तथा भ्रमरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष समूह मधुर प्रतीत होता है । कोयलों की ध्वनि से तथा वन से युक्त वह पर्वत सुशोभित होता है ॥१७॥ वहाँ पर करोड़ों गणों से युक्त शिव का मन्दिर है । वह किरणों से धवल बना हुआ पुण्य राशि स्वरूप शिला समूह रूप है ॥१८॥ वहाँ चारों ओर गरजने वाले सिंहो, भैसों तथा हाथियों तथा दिग्गजों की ध्वनि से शब्दायमान होता रहता है ॥१९॥ वह अनेक प्रकार के मृगों तथा शाखा मृगों (बन्दरों) से भरा है । उस पर्वत की गुफाओं में मयूरों की केका ध्वनि सुनायी पड़ती है ॥२०॥ वह

मयूरकेकाघोषैश्च गुहासु च विनादितम्। कन्दरैर्लेपनैः कूटैः सानुभिश्च विराजितम् ॥२१॥
नानाप्रस्रवणोपेतमोषधीभिर्विराजितम् । दिव्यं दिव्यगुणं पुण्यं पुण्यधामसमाकुलम् ॥२२॥
सेवितं पुण्यलोकैश्च पुण्यराशिं महागिरिम्। पुलिन्दभिल्लकोलैश्च सेवितं पर्वतोत्तमम् ॥२३॥
विकटैः शिखरैः कोटैरद्रिराजः प्रकाशते । अन्यैर्नानाविधैः पुण्यैः कौतुकैर्मङ्गलैः शुभैः ॥२४॥
गङ्गोदकप्रवाहैश्च महाशब्दं प्रसुस्रवे। शङ्करस्य गृहं तत्र कैलासं गतवानहम् ॥२५॥
तत्राश्चर्यं मया दृष्टं यत्र दृष्टं कदा श्रुतम् । श्रूयतामभिधास्यामि तात सर्वं मयोदितम् ॥२६॥
शिखराद्गिरिराजस्य मेरोः पुण्यान्महोदयात्। हिमक्षीरसुवर्णस्तु प्रवाहः पतते भुवि ॥२७॥
गङ्गायाश्च महाभाग रंहसा घोषभूषितः। कैलासस्य शिरः प्राप्य तत्र विस्तरतां गतः ॥२८॥
दशयोजनमानेन तत्र गङ्गाह्रदो महान्। महातोयेन पुण्येन विमलेन विराजते॥२९॥
सर्वतोभद्रतां प्राप्तो महाहंसैः प्रशोभते। समोच्चारेण पुण्येन दिव्येन मधुरेण च ॥३०॥
हंसास्तत्र प्रकूजन्ति सरस्तेन विराजते। तस्य तीरे शिलायां वै हिमकन्या महामते ॥३१॥
आसीना मुक्तकेशान्ता रूपद्रविणशालिनी। दिव्यरूपसुसम्पन्ना सगुणा दिव्यलक्षणा ॥३२॥
दिव्यालङ्कारभूषा च तस्यास्तीरे विराजते। न जाने गिरिराजस्य तनया वा महोदधेः ॥३३॥
नो वास्ति ब्रह्मणः पत्नी नो वा स्वाहा भविष्यति ।
इन्द्राणी वा महाभागा रोहिणी वा भविष्यति ॥३४॥
ईदृशी रूपसम्पत्तिर्युवतीनां न दृश्यते । अन्यासां च सुदिव्यानां नारीणां तात सर्वथा॥३५॥

कन्दराओं, लेपनों, कूटों तथा शिखरों से सुशोभित है । वह अनेक झरनों से युक्त तथा औषधियों से सुशोभित है ॥२१॥ वह दिव्य पर्वत दिव्यगुणों से युक्त तथा पवित्र धामों (कान्तियों) से परिपूर्ण है । पुण्य राशि रूप वह महापर्वत पुण्य पुरुषों से सेवित है ॥२२॥ उस उत्तम पर्वत पर पुलिन्द, भिल तथा कोलों का निवास है । विकट शिखरों के द्वारा वह पर्वतराज प्रकाशित होता है ॥२३॥ दूसरे भी अनेक प्रकार के पवित्र कौतुकों तथा शुभ मङ्गलों से तथा गङ्गाजल के प्रवाहों से महाशब्द सुनायी पड़ता रहता है ॥२४॥ वहीं पर भगवान् शङ्कर का गृह है उसी कैलास पर्वत पर मैं गया । वहाँ पर मैंने ऐसा आश्चर्य देखा जिसको मैंने कभी न तो देखा है और न सुना है ॥२५॥ हे तात ! उसे आप सुनें, मैं पूर्ण रूप से उसे कहता हूँ । गिरिराज सुमेरु पर्वत के महोदय के शिखर से ॥२६॥ हिम (बर्फ), दुग्ध तथा सुवर्ण का प्रवाह पृथिवी पर गिरता है। हे महाभाग ! वह गङ्गा के वेग जन्य घोष (ध्वनि) से भूषित है ॥२७॥ वह कैलास के ऊपर गिरकर फैल जाता है । वहाँ पर दश योजन विस्तृत गङ्गा का महान् ह्रद है ॥२८॥ वह उस स्वच्छ तथा पवित्र महाजल से सुशोभित होता है । सब प्रकार से कल्याणमय वह हंसों से सुशोभित होता है ॥२९॥ दिव्य, मधुर तथा पवित्र सामोच्चारण के द्वारा वहाँ पर हंस कूजन करते हैं, उसके कारण वह सरोवर सुशोभित होता है॥३०॥ हे महामते ! उसके तट पर शिला के ऊपर केशों को खोली हुयी तथा रूप सम्पत्ति से सम्पन्न हिम कन्या बैठी हुयी है ॥३१॥ वह दिव्य रूप से सम्पन्न गुणों तथा दिव्य लक्षणों से युक्त दिव्य अलङ्कारों तथा भूषणों से भूषित वह उस सरोवर के तट पर विराजती है ॥३२॥ न जाने वह पर्वत की पुत्री पार्वती हैं, या समुद्र तनया (लक्ष्मीजी) है, या ब्रह्माजी की पत्नी है, अथवा वे स्वाहा देवी हैं ॥३३॥ वे महाभागा इन्द्राणी या रोहिणी देवी भी हो सकती है । इस तरह की रूप सम्पत्ति किन्ही भी युवतियों में नहीं दिखती है ॥३४॥

यादृशं रूपसम्भावं गुणशीलं प्रदृश्यते। अप्सरसां कदा नास्ति तादृशं रूपलक्षणम् ॥३६॥
यादृशं तु मया दृष्टं तदङ्गे विश्वमोहनम्। शिलापदे समासीना दुःखेनाऽपि समाकुला ॥३७॥
रुदते सुस्वरैर्बाला अनेकै स्वजनैर्विना। अश्रूणि मुञ्चमाना सा मुक्ताभानि बहूनि च ॥३८॥
निर्मलानि सरस्यत्र पतन्त्येव महामते। बिन्दवो मौक्तिकाभास्ते निपतन्ति महोदके ॥३९॥
तेभ्यो भवन्ति पद्मानि हृद्यानि सुरभीणि तु। पद्मानि जज्ञिरे तेभ्यो नेत्राश्रुभ्यो महामते ॥४०॥

गङ्गाम्भसि तरन्त्येव असङ्ख्यातानि तानि तु ।
पतितानि सुहृद्यानि रंहसा यानि तानि तु ॥४१॥

गङ्गाप्रवाहमध्ये तु हंसवृन्दैः सुसेविते। भागीरथ्याः प्रवाहस्तु तस्मात्स्थानाद्विनिर्गतः ॥४२॥
कैलासशिखरं प्राप्य रत्नाख्यं चारुकन्दरम्। वर्तते तोयपूर्णस्तु योजनद्वयविस्तृतः ॥४३॥
हंसवृन्दसमाकीर्णो जलपक्षिसमाकुलः । नानावर्णविशेषाणि सन्ति पद्मानि तत्र च ॥४४॥
प्रवाहे निर्मले तात मुनिवृन्दनिषेविते। अश्रुभ्यो यानि जातानि प्रभाते कमलानि तु ॥४५॥
गङ्गोदकप्लुतान्येव सौरभाणि महान्ति च । प्रतरन्ति प्रवाहे तु निर्मले जलपूरिते ॥४६॥
मध्ये मध्ये सुहंसैश्च जलपक्षिनिनादिते । रत्नाख्ये तु गिरौ तस्मिन्रत्नेश्वरमहेश्वरः ॥४७॥
देवदैत्यसुपूज्योऽपि तिष्ठते तात सर्वदा। तत्र दृष्टो मया तात ! कश्चित्पुण्यमयो मुनिः ॥४८॥
जटाभारसमाक्रान्तो निर्वासा दण्डधारकः । निराधारो निराहारस्तपसातीव दुर्बलः ॥४९॥

कृशाङ्गोऽप्यस्थिसङ्घातस्त्वचामात्रेण वेष्टितः ।
भस्मोद्धूलितमात्राणि सर्वाङ्गानि महात्मनः ॥५०॥

हे तात ! जिस प्रकार का रूप, गुण तथा शील उसका है, वैसा अन्य दिव्य नारियों तथा अप्सराओं में भी नहीं दिखता है ॥३५॥ अप्सराओं का वैसा रूप लक्षण कभी नहीं हुआ जैसा कि मैंने उसके विश्वमोहक अङ्गों को देखा है ॥३६॥ शिला के ऊपर बैठी हुयी वह दुःख से व्याकुल है । स्वजनों से रहित बाला अनेक प्रकार के सुन्दर स्वरों से रोती है ॥३७॥ वह मोती के समान आँसुओं को बहुत अधिक बहाती है। हे महामते ! वे निर्मल आँसू इस सरोवर में ही गिरते हैं ॥३८॥ मोती के समान कान्ति वाले वे विन्दु उस महान् जल में गिरते हैं, उन सबों से मनोहर तथा सुगन्धित मनोहर कमल उत्पन्न हो जाते हैं ॥३९॥ हे महामते ! उन आंसुओं से कमल उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसे असंख्य कमल गङ्गा जल में तैरते हैं ॥४०॥ वे मनोहर कमल हंस समूह से सेवित गङ्गा जल के प्रवाह में गिरते हैं ॥४१॥ उस स्थान से निकला हुआ गङ्गा का प्रवाह कैलास के शिखर पर आकर रत्न नामक कन्दरा में एकत्रित होता है । जल से भरा हुआ वह कन्दरा दो योजन विस्तृत है । उसमें हंस समूह तथा जल के पक्षी रहते हैं ॥४२-४३॥ वहाँ पर वे कमल अनेक वर्ण के हैं । हे तात ! मुनि समूह से सुसेवित निर्मल प्रवाह में अनेक वर्णों के पद्म हैं ॥४४॥ आसुओं से उत्पन्न जो कमल हैं, वे प्रातःकाल गङ्गा जल से धुलकर अत्यधिक सुगन्धित हो जाते हैं ॥४५॥ वे निर्मल जल से भरे हुए तथा हंसों एवं जल पक्षियों से ध्वनित जल में वे तैरते हैं उनके बीच में पक्षिगण भी रहते हैं ॥४६॥ **सूतजी ने कहा—** हे तात ! उस रत्नगिरि पर देवों तथा दैत्यों से पूजित महेश्वर सदैव रहते हैं ॥४७॥ हे तात ! मैंने वहाँ पर एक पुण्य स्वरूप मुनि को देखा । वे विशाल जटा को धारण करने वाले, वस्त्र तथा दण्ड धारण किए थे ॥४८॥ आधार तथा आहार रहित वे तपस्या के कारण अत्यन्त दुर्बल

शुष्कपत्राणि भक्षेत शीर्णानि पतितानि च। शिवभक्तिसमासीनो दुराधारो महातपाः ॥५१॥
अश्रुभ्यो यानि जातानि पद्मानि सुरभीणि च।
गङ्गातोयात्समानीय देवदेवं प्रपूजयेत् ॥५२॥
रत्नेश्वरं महाभागो गीतनृत्यविशारदः। गायते नृत्यते तस्य द्वारस्थस्त्रिपुरद्विषः ॥५३॥
मठमागत्य धर्मात्मा रोदते सुस्वरैरपि। एतद्दृष्टं मया तात अपूर्वं वदतांवर ॥५४॥
कथयस्व प्रसादान्मे यदि त्वं वेत्सि कारणम्।
सा का नारी महाभाग कस्मात्तात प्ररोदिति ॥५५॥
कस्मात्स देवपुष्पो देवमर्चेन्महेश्वरम्। तन्मे त्वं विस्तराद् ब्रूहि सर्वसन्देहकारणम्॥५६॥
एवमुक्तो महाप्राज्ञः कुञ्जलोऽपि सुतेन हि। कपिञ्जलेन प्रोवाच विस्तराच्छृण्वतो मुनेः॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

एक सौ दूसरा अध्याय

कुञ्जल उवाच

सर्वं वत्स प्रवक्ष्यामि यत्त्वयोक्तं ममाऽधुना। उभयोर्देवनं यत्तु यस्माज्जातं द्विजोत्तम॥१॥

हो गये थे। दुबले शरीर वाले उनमें केवल अस्थि समूह तथा त्वचा बचे हुए थे ॥४९॥ वे अपने सम्पूर्ण अङ्गों में भस्म लगाये थे। वे सूखे हुए तथा गिरे हुए पत्तों को खाते थे ॥५०॥ शिवजी की भक्ति से परिपूर्ण वे निराधार तथा महातपस्वी थे। आसुँओं से जो सुगन्धित कमल उत्पन्न हुए रहते हैं ॥५१॥ उन सबों को वे गङ्गा जल से निकालकर भगवान् शिव की पूजा करते थे। नृत्य तथा गीत में निपुण महाभाग रत्नेश्वर त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी के द्वार पर नाचते और गाते थे। वे महाभाग मठ में आकर सुन्दर स्थल से रोते भी थे ॥५२-५३॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! मैंने इसी अद्भुत वस्तु को देखा। यदि आप उसका कारण जानते हों तो आप मुझे बतलायें ॥५४॥ हे तात ! वह महाभाग नारी कौन है ? वह क्यों रोती हैं ? वे देव पुरुष किस कारण से महेश्वर की अर्चा करते हैं ॥५५॥ आप सभी सन्देहों के कारण भूत इस बात को विस्तार पूर्वक बतलाएँ, अपने पुत्र के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर कुञ्जल भी ॥५६॥ कपिञ्जल को विस्तार पूर्वक कहे उसे महर्षि च्यवन भी सुन रहे थे ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यान के अन्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तगर्त एक सौ एकवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०१॥

पार्वतीजी के दोहद को पूरा करने के लिए गणों तथा पार्वतीजी के साथ शङ्करजी का नन्दन वन में जाना

कुञ्जल ने कहा— हे वत्स ! तुमने जो कहा है मैं उन सारी बातों को बतलाता हूँ। मैं बतला रहा

एकदा तु महादेवी पार्वती प्रमदोत्तमा। क्रीडमाना महात्मानमीश्वरं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥
ममोरसि महादेव जातं महत्सुदोहदम् । दर्शयस्व ममाग्रे त्वं काननं काननोत्तमम्॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमस्तु महादेवि नन्दनं देवसङ्कुलम् । दर्शयिष्यामि मे पुण्यं द्विजसिद्धनिषेवितम्॥४॥
एवमाभाष्य तां देवीं तया सहगणैस्ततः । जग्मतुर्वत्स तौ देवौ नन्दनं वनमेव तु ॥५॥
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यपृष्ठमाभरणैर्युतम् । घण्टामालाभिसंयुक्तं किङ्किणीजालमालिनम्॥६॥
चामरैः पट्टसूत्रैश्च मुक्तामालासुशोभितम्। हंसचन्द्रप्रतीकाशं वृषभं चारुलक्षणम् ॥७॥
समारूढो महादेवो गणकोटिसमावृतः। नन्दिभृङ्गिमहाकालस्कन्दचण्डमनोहराः ॥८॥
वीरभद्रो गणेशश्च पुष्पदन्तो गणेश्वरः। अतिबलः सुबलो नाम मेघनादो घटावहः ॥९॥
घण्टाकर्णश्च कालिन्दः पुलिन्दो वीरबाहुकः ।
केशरी किङ्करो नाम चन्द्रहासः प्रजापतिः ॥१०॥
एते चान्ये च बहवः सनकाद्यास्तपोबलाः । गणैश्च कोटिसङ्ख्यातैः सशिवः परिवारितः ॥११॥
नन्दनं वनमेवापि सेवितं देवकिन्नरैः। प्रविवेश महादेवो गणैर्देव्या समन्वितः ॥१२॥
दर्शयामास देवेशो गिरिजायै सुशोभनम्। नानापादपसम्पन्नं बहुपुष्पसमाकुलम् ॥१३॥
दिव्यरम्भावनाकीर्णं पुष्पवद्भिस्तु चम्पकैः। मल्लिकाभिः सुपुष्पाभिर्मालतीजालसङ्कुलम् ॥१४॥
नित्यं पुष्पितशाखाभिः पाटलानां वनोत्तमैः। राजमानं महावृक्षैश्चन्दनैश्चारुगन्धिभिः ॥१५॥
देवदारुवनैर्जुष्टं तुङ्गवृक्षैः समाकुलम् । सरलैर्नारिकेलैश्च तद्वत्पूगीफलद्रुमैः ॥१६॥

हूँ कि दोनों किस कारण से रो रहे थे ॥१॥ एक बार प्रमदाओं (युवतियों) में उत्तम पार्वती देवी क्रीड़ा करती हुयी श्रीशङ्करजी से कही ॥२॥ हे महादेव ! मेरे ह्रदय में महान् दोहद उत्पन्न हो गया हैं, अतएव आप मुझको कोई सर्वोत्तंम कानन (वन) दिखलायें ॥३॥ **श्रीमहादेव ने कहा**— ठीक है, हे देवि ! देवताओं से परिपूर्ण मैं आपको नन्दन वन दिखलाऊँगा । वह पवित्र वन सिद्ध पुरुषों से सेवित है ॥४॥ इस तरह से पार्वती देवी को कहकर उनके साथ तथा गणों के साथ शङ्करजी नन्दन वन में जाने के लिए तैयार हो गये॥५॥ इसके बाद महादेव सर्वत्र जाने वाले सुन्दर, आभरणों से अलंकृत घण्टा तथा माला से सुशोभित किंकिणी समूह की माला धारण किए हुए, चामर, पट्ट सूत्र तथा मोती की माला से सुशोभित, हंस या चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले वृषभ नंदी के पीठ पर ॥६-७॥ करोड़ों गणों से घिरे हुए शङ्करजी बैठ गये। वे नंदी, भृङ्गीं, महाकाल, स्कन्द, तथा मनोहर चण्ड ॥८॥ वीरभद्र, गणेशजी, पुष्पदन्त, मणीश्वर, अतिबल, सुबल, मेघनाद, घटावह ॥९॥ घण्टाकर्ण, कालिन्द, पुलिन्द, वीर बाहु, केशरी, चण्डहासनामक किङ्कर, प्रजापति ॥१०॥ ये सभी तथा सनकादिक तपस्वीगण तथा करोड़ों की संख्या में विद्यमान गणों के साथ तथा देवी पार्वती के साथ शिवजी ॥११॥ देवों तथा किन्नरों से सेवित नन्दन वन में प्रवेश किए॥१२॥ देवताओं के स्वामी शिवजी ने पार्वती देवी को अनेक वृक्षों से भरे हुए, तथा अनेक प्रकार के पुरुषों से भरे हुए दिव्य रम्भा (केला) के वनों से भरे हुए तथा चम्पा के पुष्पों से भरे हुए, नन्दन वन को दिखाया विकसित मालती समूह से युक्त ॥१३-१४॥ सदा विकसित शाखाओं वाले गुलाब के वनों से तथा सुगन्धित चन्दन के वृक्षों से ॥१५॥ देवदारु के विशाल वृक्षों से भरे हुए, सरल, नारियल, सुपारी, के वृक्षों ॥१६॥

खर्जूरपनसैर्दिव्यैः फलभारावनामितैः । परिमलोद्गारसंयुक्तैर्गुरुवृक्षसमाकुलम् ॥१७॥
अग्नितेजः समाभासैः सप्तवर्णैः सुशोभितम् ।
राजवृक्षैः कदम्बैश्च पुष्पशोभान्वितं सदा ॥१८॥
जम्बूनिम्बमहावृक्षैर्मातुलिङ्गैः समाकुलम् । नारङ्गैः सिन्धुवारैश्च प्रियालैः शालतिन्दुकैः ॥१९॥
उदुम्बरैः कपित्थैश्च जम्बूपादपशोभितम् । लकुचैः पुष्पसौगन्धैः स्फुटनागैः समाकुलम्॥२०॥
चूतैश्च फलराजाद्यैर्नीलैश्चैव घनोपमैः । नीलैः शालवनैर्दिव्यैर्जालानां तु वनैस्ततः॥२१॥
तमालैस्तु विशालैश्च सेवितं तपनोपमैः । शोभितं नन्दनं पुण्यं शिवेन परिदर्शितम्॥२२॥
शोभितं च द्रुमश्चान्यैः सर्वैनीलवनोपमैः । सर्वकामफलोपेतैः कल्याणफलदायकः ॥२३॥
कल्पद्रुमैर्महापुण्यैः शोभितं नन्दनं वनम् । नानापक्षिनिनादैश्च सङ्कुलं मधुरस्वरैः ॥२४॥
कोकिलानां रुतैः पुण्यैरुद्घुष्टं मधुकारिभिः ।
मकरन्दविलुब्धानां पक्षिणां रुतनादितम् ॥२५॥
नानावृक्षैः समाकीर्णं नानागृगगणायुतम् । वृक्षेभ्यो विविधैः पुष्पैस्सौगन्धैः पतितैर्भुवि ॥२६॥
सा च भू राजते पुत्र पूजितेव सुगन्धिभिः । तत्र वाप्यो महापुण्याः पद्मसौगन्धनिर्मलाः ॥२७॥
तोयैस्ताः पूरिताः पुत्रहंसकरण्डसेविताः । तडागैः सागरःप्रख्यैस्तोयसौगन्ध्यपूजितैः ॥२८॥
नन्दनं भाति सर्वत्र गणैरप्सरसां महत् । विमानैः कलशैः शुभ्रै हेमदण्डैः सुशोभनैः ॥२९॥
नन्दनो वनराजस्तु प्रासादैस्तु सुधान्वितैः। यत्र तत्र प्रभात्येव किन्नराणां महागणैः ॥३०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुरूपाभिर्द्विजोत्तम । देवतानां विनोदैश्च मुनिवृन्दैः सुयोगिभिः ॥३१॥

फलों के भार से झुके हुए खजूर तथा कटहल के वृक्षों के सुगन्धि से परिपूर्ण अगरु के वृक्षों से परिपूर्ण उस नन्दन वन को दिखाया ॥१७॥ वह वन अग्नि के तेज के समान तेज से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष से सुशोभित था । वह राजकदम्व वृक्ष के पुष्पों की शोभा से समन्वित था ॥१८॥ उसमें जामुन तथा निम्ब के बड़े-बड़े वृक्षों तथा मातुलिङ्ग भरे थे । नारङ्गी, सिन्धुवार, प्रियाल, शाल तथा तिन्दुक, उदुंबर (गूलर) कैंथ तथा जामुन के वृक्षों से वह वन सुशोभित था । लकुच, तथा विकसित नाग पुष्पों की सुगन्धि से वह वन भरा था ॥१९-२०॥ फलों के राजा आम तथा मेघ के समान नीलों से, नील दिव्य शाल, वनों से सुशोभित॥२१॥ सूर्य के समान विशाल तमाल वृक्षों से सुशोभित नन्दन वन को शिवजी ने पार्वतीदेवी को दिखाया ॥२२॥ अत्यन्त पवित्र कल्पवृक्षों से सुशोभित उस नंदन वन में अनेक प्रकार के पक्षी मधुर स्वर से बोल रहे थे॥२३-२४॥ उसमें कोकिलों तथा भ्रमरों की ध्वनि सुनायी पड़ रही थी । मकरन्द (पराग) के लोभी पक्षीगण बोल रहे थे ॥२५॥ उसमें अनेक प्रकार के वृक्ष तथा अनेक प्रकार के मृगों का समूह विद्यमान था। अनेक प्रकार के वृक्षों से सुगन्धित पुष्प पृथिवी पर गिरे हुए थे ॥२६॥ हे पुत्र ! वह भूमि पूजा की गयी के समान सुशोभित हो रही थी । हे पुत्र ! वहाँ पर अत्यन्त पवित्र कमल की सुगन्धि से युक्त ॥२७॥ जल से भरे हुए एवं हंसों तथा कारण्डवों से सेवित सागर के समान जलाशयों से वह नन्दन वन सुगन्धि से परिपूर्ण था ॥२८॥ वह नन्दन वन सर्वत्र अप्सराओं के समूह से सुशोभित था । वनों का राजा नन्दन भवनों से युक्त था उन भवनों में सुवर्ण दण्डों से मण्डित अनेक विमान विद्यमान थे । उन भवनों के शुभ्र कलश चमक रहे थे । यत्र-तत्र किन्नरों का गण विद्यमान था ॥२९-३०॥ हे द्विजोत्तम ! सुन्दर रूप वाली अप्सराओं,

सर्वत्र शुशुभे पुण्यसंस्थानं नन्दनस्य च ॥३२॥

एवं समालोक्य महानुभावो भवः सुदेव्या सहितो महात्मा ।
श्रीनन्दनं पुण्यवतां निवासं सुखाकरं शान्तिगुणोपपन्नम् ॥३३॥
आदित्यतेजःसमतेजसां गणैः प्रभाति वै रश्मिभिर्जानरूपः ।
पुष्पैः फलैः कामगुणोपपन्नः कल्पद्रुमो नन्दनकाननेऽपि ॥३४॥
एवं विधं पादपराजमेव संवीक्ष्य देवी च शिवं बभाषे ।
अस्याभिधानं कथयस्व नाथ सर्वस्व पुण्यस्य नगस्य पुण्यम् ॥३५॥
तेजस्विनां सूर्यवरः समन्तात्सदेवदेवीं च शिवो बभाषे ॥३६॥

शिव उवाच

अस्य प्रतिष्ठा महती शुभाख्या देवेषु मुख्यो मधुसूदनश्च ।
नदीषु मुख्या सुरनिम्नगाऽपि विसृष्टिकर्ताऽपि यथैव धाता ॥३७॥
सुखवहानां च यथा सुचन्द्रो भूतेषु मुख्या च यथैव पृथ्वी ।
नगेन्द्रराजो हि यथा नगानां जलाशयेष्वेव यथा समुद्रः ॥३८॥
महौषधीनामिव देवि चान्नं महीधराणां हिमवान्यथैव ।
विद्यासु मध्ये च यथात्मविद्या लोकेषु सर्वेषु यथा नरेन्द्रः ।
तथैव मुख्यस्तरुराज एष सर्वातिथिर्देवपतेः प्रियोऽयम् ॥३९॥

श्रीपार्वत्युवाच

गुणान्नु शम्भो मम कीर्त्तयस्व वृक्षाधिपस्यास्य शुभान्सुपुण्यान् ।
आकर्ण्य देवो वचनं बभाषे देव्यास्तु सर्वं सुतरोर्हि तस्य ॥४०॥

गन्धर्वों से देवता मनो विनोद कर रहे थे । सर्वत्र मुनि समूहों तथा योगियों से सुशोभित उस नंदन वन का वह स्थान सुशोभित हो रहा था ॥३१-३२॥ इस तरह से देवी पार्वती के साथ विद्यमान शिवजी ने नन्दन वन को देखा, उसमें पुण्यवान् जीवों का निवास था, वह सुख का आकार शान्तिगुण से सम्पन्न वन था। सूर्य के समान तेज समूह तथा किरणों से सुशोभित उस नन्दन वन में पुष्पों तथा फलों के द्वारा मनोनुकूल गुणों युक्त कल्प वृक्ष विद्यमान था ॥३३॥ इस प्रकार के वृक्षराज को देखकर पार्वतीजी ने भगवान् शिव से कहा— हे नाथ ! सम्पूर्ण पर्वतों में अधिक पुण्यवान् पर्वत तथा इस वन का नाम आप बतलायें ॥३४-३५॥ तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य के समान देदीप्यमान शिवजी ने पार्वतीजी से कहा । **शिवजी ने कहा—** इस वृक्ष की प्रतिष्ठा अत्यन्त पवित्र है । जिस तरह देवताओं में भगवान् मधुसूदन श्रेष्ठ हैं नदियों में मुखा गङ्गा नदी हैं, तथा सृष्टि करने वालों में श्रेष्ठ जैसे ब्रह्माजी हैं, सुख प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ चन्द्रमा हैं, पञ्च महाभूतों में जैसे पृथिवी प्रधान है ॥३६-३७॥ जिस तरह पर्वतों में महान् पर्वतराज हैं, जलाशयों में जैसे सागर प्रधान है, तथा महौषधियों में अन्न जैसे प्रधान है, तथा पर्वतों में जैसे हिमालय पर्वत प्रधान है ॥३८॥ जिस तरह सभी विद्याओं में आत्मा विद्या प्रधान है, जैसे सभी मनुष्यों में राजा प्रधान होता है, उसी तरह यह वृक्षों में प्रधान तरुराज कल्पवृक्ष है, यह देवराज इन्द्र को अत्यन्त प्रिय है ॥३९॥ **श्रीपार्वतीजी ने कहा—** हे शम्भो ! आप इस वृक्षराज के पवित्र गुणों को मुझे बतलाइये । पार्वतीजी की वाणी को सुनकर शिवजी

यं यं कल्पयन्ति सुपुण्यदेवा देवोपमा देववराश्च कान्ते ।
तं तं हि तेभ्यः प्रददाति वृक्षः कल्पद्रुमो नाम वरिष्ठ एषः ॥४१॥
अस्माच्च सर्वे प्रभवन्ति पुण्या दुष्प्राप्यमत्रैव तपोऽधिकास्ते ।
जीवाधिकं रत्नमयं सुदिव्यं देवास्तु भुञ्जन्ति महाप्रधानाः ॥४२॥
शुश्राव देवी वचनं शिवस्य आश्चर्यभूतं मनसा विचिन्त्य ।
तस्यानुमत्या परिकल्पितं च स्त्रीरत्नमेकं सुगुणं सुरूपम् ॥४३॥
सर्वाङ्गरूपां सगुणां सुरूपां तस्मात्सुवृक्षाद्गिरिजा प्रलेभे ।
विश्वस्य मोदाय यथोपविष्टा साहाय्यरूपा मकरध्वजस्य ॥४४॥
क्रीडानिधानं सुखसिद्धरूपं सर्वोपपन्ना कमलायताक्षी ।
पद्मानना पद्मकरा सुपद्मा चामीकरस्यापि यथा सुमूर्तिः ॥४५॥
प्रभासु तद्वद्विमलासु तेजोलीलासु तेजाश्च सुकुञ्चितास्ते ।
प्रलम्बकेशाः परिसूक्ष्मबद्धा पुष्पैः सुगन्धैः परिलेपिताश्च ॥४६॥
प्रबद्धकुन्ता दृढकेशबन्धैर्विभाति सा रूपवरेण बाला ।
सीमन्तमार्गे च मुक्ताफलानां माला विभात्येव यथा तरूणाम् ॥४७॥
सीमन्तमूले तिलकं सुदेव्या यथोदितो दैत्यगुरुः सतेजाः ।
भालेषु पद्मे मृगनाभिपद्मसमुत्थतेजःप्रकरैर्विभाति ॥४८॥
सीमन्तमूले तिलकस्य तेजः प्रकाशयेद्रूपश्रियं सुलोके ।
केशेषु मुक्ताफलके च भाले तस्याः सुशोभां विकरोति नित्यम् ॥४९॥

ने उस कल्पवृक्ष के गुणों को बतलाना प्रारम्भ किया ॥४०॥ हे प्रिये ! इस वृक्ष के सन्निकट में देवगण जिन-जिन अच्छी वस्तुओं की कामना करते हैं देवता के समान यह श्रेष्ठ कल्प वृक्ष उन सबों की सारी काम्य वस्तुओं को प्रदान करता है ॥४१॥ इस वृक्ष से यहीं पर दुष्प्राप्य वस्तुएँ भी उत्पन्न हो जाती है और तपस्वी जन तथा प्रधान देवता रत्न स्वरूप उन वस्तुओं का उपभोग करते हैं ॥४२॥ देवी ने शिवजी की वाणी को सुना और मन से विचार करके उन्होंने शङ्करजी की अनुमति प्राप्त करके सुन्दर गुणों तथा रूप से युक्त आश्चर्यमय स्त्री रत्न की कल्पना की ॥४३॥ और पार्वतीजी ने उस वृक्ष से सुन्दर रूप तथा गुणों से युक्त सर्वाङ्ग सुन्दरी एक नारी को प्राप्त किया । जैसी कि वह बैठी हुयी थी विश्व को मोहित करने वाली तथा कामदेव की सहायिका थी ॥४४॥ वह क्रीड़ा के आश्रय तथा सुखों की सिद्धि रूप समस्त अङ्गों से युक्त, कमल के समान विशाल नेत्रों वाली थी कमल के समान उसका मनोहर मुख था, वह अपने हाथ में कमल लिए हुयी थी । पद्म रमणी शरीर मानो सुवर्ण निर्मित था ॥४५॥ स्वच्छ कान्तिओं से वह तेजस्विनी थी तथा लीलाओं में भी तेजस्विनी थी । उसके केश लम्बे, घुंघराले और अत्यन्त सूक्ष्म थे । उन केशों में सुगन्धित पुष्प लगे थे ॥४६॥ वह बाला अपने श्रेष्ठ रूप के माध्यम से तथा सुदृढ़ केश बन्ध के माध्यम से मानों युवकों के लिए भाले को बाँधी थी । उसकी माँग में लगी हुयी मोती की माला वृक्षों की माला के समान शोभती थी ॥४७॥ मांग के मूल भाग में बना हुआ तिलक का तेज उसके शुक्राचार्य के तेज के समान प्रकाशित होता था । सुन्दर ललाट पर विराजमान कस्तूरी का तिलक कमल के तेज समूह से

यथा सुचन्द्रः परिभाति भासा सा रम्यचेष्टेव विभाति तद्वत् ।
सम्पूर्णचन्द्रोऽपि यथा विभाति ज्योत्स्नावितानेन हिमांशुजालः ॥५०॥
तस्यास्तु वक्त्रं परिभाति तद्वच्छोभाकरं विश्वविशारदं च ।
हिमांशुरेवापि कलङ्कयुक्तः संक्षीयते नित्यकलाविहीनः ॥५१॥
सम्पूर्णमस्त्येव सदैव हृष्टं तस्यास्तु वक्त्रं परिनिष्कलङ्कम् ।
गन्धं विकाशं कमले स्वकीय ततः समालोक्यं सुखं न लेभे ॥५२॥
पद्मानना सर्वगुणोपपन्ना मदीयभावैः परिनिर्मितेयम् ।
गन्धं स्वकीयं तु विपस्य पद्मं तस्या मुखाद्वाति जगत्समीरः ॥५३॥
लज्जाभियुक्तः सहसा बभूव जलं समाश्रित्य सदैव तिष्ठति ॥५४॥
कति मतिनियतबुद्ध्या सुधियो वदन्ति, सुमदननृपतेः कोशं समुद्रकलाभिः ॥५५॥
सुवरदशनरत्नैर्हास्यलीलाभियुक्ता, अरुण अधरबिम्बं शोभमानस्तु आस्यः ॥५६॥
सुभ्रूः सुनासिका तस्याः सुकर्णौ रत्नभूषितौ ।
हेमकान्तिसमोपेतौ कपोलौ दीप्तिसंयुतौ ॥५७॥
रेखात्रयं प्रशोभेत ग्रीवायां परिसंस्थितम्। सौभाग्यशीलशृङ्गारैस्तिस्रो रेखा इहैव हि॥५८॥
सुस्तनौ कठिनौ पीनौ वर्तुलाकारसन्निभौ । तस्याः कन्दर्पकलशाभिषेकायकल्पितौ ॥५९॥
अंसावतीव शोभेते सुसमौ मानसान्वितौ। सुभुजौ वर्तुलौ श्लक्ष्णौ सुवर्णौ लक्षणान्वितौ॥६०॥

सुशोभित होता था ॥४८॥ सीमन्त के मूल भाग में विद्यमान तिलक का तेज उसकी रूप सम्पत्ति को प्रकाशित करता था । केशों तथा ललाट पर मोती की माला सदा शोभा को बिखेरती रहती थी ॥४९॥ जिस तरह चन्द्रमा अपनी कान्ति से सुशोभित होते हैं उसी तरह वह अपनी मनोज्ञ चेष्टाओं से सुशोभित होती थी। जिस तरह हिमांशुजाल से पूर्ण चन्द्रमा अपनी चाँदनी के प्रसार से सुशोभित होते हैं ॥५०॥ उसी तरह सम्पूर्ण कार्यों में दक्ष उसका मुख मण्डल सुशोभित होता था । केवल चन्द्रमा ही कलंक युक्त था कलाओं से विहीन होकर प्रतिदिन क्षीण होता है ॥५१॥ किन्तु उसका मुख चन्द्र तो कलङ्कहीन तथा सदा प्रसन्न रहता था । कमल अपने गन्ध तथा विकाश को उसके मुखड़े में देखकर दुखी हो गया ॥५२॥ वह सोचता था कि यह पद्मानना सभी गुणों से युक्त है । लगता है, यह मेरे ही भावों से निर्मित है । कमल अपनी सुगन्धि को उसके मुख में देखा और वायु उसी की सुगन्धि को लेकर बहती है ॥५३॥ जिस जल के सन्निकट में वह बैठती थी वह जल भी उसको देखकर लज्जित हो गया । बुद्धिमान लोग कहते हैं कि इसकी न जाने कितनी बुद्धि है यह तो अपनी मुद्राओं तथा कलाओं से कामदेव रूपी राजा का कोश बनी हुयी हैं।॥५४॥ श्रेष्ठ दाँत रूपी रत्नों से यह हास्य लीला करती है और इसका मुख लाल ओष्ठों से सुशोभित॥५५॥ उसकी दोनों भौहें तथा नाक सुन्दर हैं । उसके दोनों कान रत्नों से अलंकृत है । देदीप्यमान उसके दोनों गाल मानो सुवर्ण की कान्ति से युक्त हैं ॥५६॥ उसकी ग्रीवाँ में तीन रेखायें सुशोभित हो रही हैं उसकी ग्रीवा में ही सौभाग्य, शील तथा शृङ्गार से युक्त ये तीनों रेखाएँ हैं । उसके दोनों स्तन कठोर, मोटे तथा गोल-गोल आकार के हैं । ये दोनों मानों कामदेव के दो घड़े हैं और उसका अभिषेक करने के लिए कल्वित हैं ॥५७-५८॥ उसके मानस से युक्त एक समान आकार वाले दोनों कन्धे अत्यन्त सुशोभित होते हैं।

सुसमौ करपद्मौ तु पद्मवर्णौ सुशीतलौ। दिव्यलक्षणसम्पन्नौ पद्मस्वस्तिकसंयुतौ ॥६१॥
सरलाः पद्मसंयुक्ता अङ्गुल्यस्तु नखान्विताः। नखानि च सुतीक्ष्णानि जलबिन्दुनिभानि च ॥६२॥
पद्मगर्भप्रतीकाशो वर्णस्तदङ्गसम्भवः । पद्मगन्धा च सर्वाङ्गे पद्मेति भाति भामिनी ॥६३॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना नगकन्या सुशोभना । रक्तोत्पलनिभौ पादौ सुश्लक्ष्णौ चातिशोभनौ ॥६४॥
रत्नज्योतिःसमाकारा नखाः पादाग्रसम्भवाः ।
यथोद्दिष्टं च शास्त्रेषु तथा चाङ्गेषु दृश्यते ॥६५॥
सर्वाभरणशोभाङ्गी हारकङ्कणनूपुरा । मेखलाकटिसूत्रेण काञ्चीनादेन राजते ॥६६॥
नीलेन पट्टवस्त्रेण परां शोभां गताशुभा । कञ्चुकेनापि दिव्येन सुरक्तेन गुणान्विता ॥६७॥
पार्वती कल्पिताद्भावाद् गुणं प्राप्ता महोदयम् ।
कल्पद्रुमान्मुदं लेभे शङ्करं वाक्यमब्रवीत् ॥६८॥
यथोक्तं तु त्वया देव तथा दृष्टो मया द्रुमः। यादृशं कल्प्यते भावस्तादृशं परिदृश्यते ॥६९॥

सूत उवाच

अथ सा चारुसर्वाङ्गी तयोः पार्श्वं समेत्य च । पादाम्बुजं ननामाथ सा भक्त्या भवयोस्तदा॥७०॥
उवाच वचनं स्निग्धं हृद्यं हारि च सा तदा ।
कस्मात्सृष्टा त्वया मातः कथयस्वात्र कारणम् ॥७१॥

उसकी दोनों भुजाएँ गोल, चिकने, देखने में सुन्दर और लक्षण से युक्त हैं ॥५९॥ उसके दोनों कर कमल के समान लाल-लाल हैं तथा शीतल हैं । पद्म तथा स्वास्तिक के चिह्न से सम्पन्न दोनों हथेली दिव्य लक्षण से सम्पन्न हैं ॥६०॥ उसकी अङ्गुलियाँ सीधी तथा पद्मचिह्न से युक्त हैं तथा नख से युक्त हैं । उसके तीक्ष्ण नख जल की विन्दु के समान हैं ॥६१॥ उसके शरीर के वर्ण कमल के भीतरी भाग के समान मनोहर हैं। वह पद्म गन्धा नायिका पद्म के समान सुशोभित होती है ॥६२॥ वह सुन्दरी पर्वत पुत्री सभी लक्षणों से युक्त है । उसके लाल कमल के समान दोनों पैर, चिकने तथा सुन्दर हैं ॥६३॥ पैर के अग्रभाग में उत्पन्न नख रत्नों की कान्ति से युक्त हैं । शास्त्रों में पद्मगन्धा नायिका के जैसे लक्षण वतलाये गये हैं, उसी तरह के सारे लक्षण उसके अङ्गों में विद्यमान हैं ॥६४॥ सभी आभरणों की शोभा से युक्त अङ्गों वाली वह हार, कंकण, नूपुर मेखला (करधनी) कटि सूत्र तथा काँची की ध्वनि से सुशोभित होती है ॥६५॥ नीले पट्ट वस्त्र से उसके अङ्गों की शोभा और अधिक बढ़ जाती है । दिव्य लाल रङ्ग की कंचुकी के द्वारा उसके गुण और बढ़ जाते हैं ॥६६॥ पार्वतीजी के द्वारा कल्पित होने के कारण गुणों में अत्यन्त उत्कृष्टता आ गयी है । कल्पद्रुम से उसको प्राप्त करके प्रसन्न पार्वतीजी ने शङ्करजी से कहा । हे देव ! आपने जैसा कहा मैंने देखा कि यह वृक्ष वैसा ही है । जिस तरह के भाव की कल्पना की जाती है, उसी तरह का भाव दिखता है ॥६७-६८॥ **सूतजी ने कहा—** उसके बाद वह सर्वाङ्ग सुन्दरी, पार्वती और शङ्करजी के पास आकर पार्वती और शङ्करजी के चरण कमलों की भक्ति पूर्वक वन्दना की ॥६९॥ उसके बाद उसने स्निग्ध तथा मनोहर वचनों से कहा— हे नाथ ! हे मातः ! आपने मेरी सृष्टि किसलिए की है उसे आप बतलायें ॥७०॥ **श्रीदेवी ने कहा—** इस वृक्ष के विषय में कौतुकमय भाव के कारण मैंने विश्वास प्राप्त करने के लिए यह कल्पना की है । हे भद्रे ! तुमने शीघ्र ही रूप सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया ॥७१॥ तुम संसार में अशोक

श्रीदेव्युवाच

वृक्षस्य कौतुकाद्भावान्मया वै प्रत्ययः कृतः ।
सद्यः प्राप्तं फलं भद्रे भवती रूपसम्पदा ॥७२॥
अशोकसुन्दरीनाम्ना लोके ख्यातिं प्रयास्यसि ।
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना मम पुत्री न संशयः ॥७३॥
सोमवंशेषु विख्यातो यथा देवः पुरन्दरः । नहुषो नामराजेन्द्रस्तव नाथो भविष्यति॥७४॥
एवं दत्त्वा वरं तस्यै जगाम गिरिजा गिरिम् ।
कैलासं शङ्करेणापि मुदा परमया युता ॥७५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

एक सौ तीसरा अध्याय

कुञ्जल उवाच

अशोकसुन्दरी जाता सर्वयोषिद्वरा तदा । रेमे सुनन्दने पुण्ये सर्वकामगुणान्विते ॥१॥
सुरूपाभिः सुकन्याभिर्देवानां चारुहासिनी । सर्वान्भोगान्प्रभुञ्जाना गीतनृत्यविचक्षणा ॥२॥
विप्रचित्तेः सुतो हुण्डो रौद्रस्तीव्रश्च सर्वदा । स्वेच्छाचारो महाकामी नन्दनं प्रविवेश ह ॥३॥

सुन्दरी के नाम से विख्यात होओगी । मेरी पुत्री सभी प्रकार के सौभाग्य से सम्पन्न है इसमें कोई संशय नहीं है ॥७२॥ जिस तरह सोमवंश में नहुष नामक इन्द्र विख्यात हैं, वे ही तुम्हारे पति होंगे ॥७३॥ इस प्रकार से उसको वरदान देकर पार्वतीजी भगवान् शिव के साथ कैलास पर्वत पर चली गयीं ॥७४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ दोवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०२॥

अशोक सुन्दरी का उपाख्यान, हुंड का अशोक सुन्दरी को देखकर कामर्त होना हुंड के वध के लिए अशोक सुन्दरी की तपस्या, राजा आयु को दत्तात्रेय का वरदान

कुञ्जल ने कहा— उस समय अशोक सुन्दरी सभी नारियों में श्रेष्ठ हो गयी । वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले मनोहर नन्दन वन मे रमण करती थी ॥१॥ सुन्दर रूप वाली कन्याओं तथा देवताओं के साथ वह चारुहासिनी गीत तथा नृत्य में निपुण वह सभी भोगों का उपभोग करती हुयी वहाँ विहार करती थी ॥२॥ विप्रचित्तिका हुंड नामक पुत्र स्वभाव से भयङ्कर और तीव्र स्वभाव का था । वह स्वेच्छाचारी, महाकामी था । वह नंदन वन में आया ॥३॥ सभी अलङ्कारों से सम्पन्न अशोक सुन्दरी को देखा और उसको

अशोकसुन्दरीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारसंयुताम् । तस्यास्तु दर्शनाद्दैत्यो विद्धःकामस्य मार्गणैः ॥४॥

तामुवाच महाकायः का त्वं कस्यासि वा शुभे ।

कस्मात्त्वं कारणाच्चात्र आगताऽसि वनोत्तमम् ॥५॥

अशोकसुन्दर्युवाच

शिवस्यापि सुपुण्यस्य सुताहं श्रृणु साम्प्रतम् ।

स्वसाहं कार्तिकेयस्य जननी गोत्रजापि मे ॥६॥

बालभावेन सम्प्राप्ता लीलया नन्दनं वनम् । भवान्को हि किमर्थं तु मामेवं परिपृच्छति ॥७॥

हुण्ड उवाच

विप्रवित्तेः सुतश्चाहं गुणलक्षणसंयुतः । हुण्डेति नाम्ना विख्यातो बलवीर्यामदोद्धतः ॥८॥

दैत्यानामप्यहं श्रेष्ठो मत्समो नास्ति राक्षसः। देवेषु मर्त्यलोकेषु तपसा यशसा कुले ॥९॥

अन्येषु नागलोकेषु धनभौगैर्वरानने । दर्शनात्ते विशालाक्षि हतःकन्दर्पमार्गणैः ॥१०॥

शरणं ते ह्यहं प्राप्तः प्रसादसुमुखी भव । भवस्व वल्लभा भार्या मम प्राणसमा प्रिया ॥११॥

अशोकसुन्दर्युवाच

श्रूयतामभिधास्यामि सर्वसम्बन्धकारणम् । भवितव्या सुजातस्य लोके स्त्री पुरुषस्यहि ॥१२॥

भवितव्यस्तथा भर्ता स्त्रिया यः सदृशो गुणैः ।

संसारे लोकमार्गोऽयं श्रृणु हुण्ड यथाविधि ॥१३॥

अस्त्येव कारणं चात्र यथा ते न भवाम्यहम् ।

सुभार्या दैत्यराजेन्द्र श्रृणुष्व यतमानसः ॥१४॥

वृक्षराजादहं जाता यदा काले महामते । शम्भोर्भावं सुसङ्गृह्य पार्वत्या कल्पिता ह्यहम् ॥१५॥

देखते ही वह कामार्त हो गया ॥४॥ विशालकाय वाले उसने अशोक सुन्दरी से कहा तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो ? तुम किस कारण से इस उत्तम वन में आयी हो ?॥५॥ **अशोक सुन्दरी ने कहा—** सुनो ! मैं महापुण्यवान् भगवान् शिव की पुत्री हूँ और मेरी माता कार्तिकेय की माता है ॥६॥ मैं अपने बाल भाव के कारण इस नन्दन वन में लीला पूर्वक आयी हूँ । आप कौन हैं ? और मुझसे किसलिए पूछते हैं?॥७॥ **हुंड ने कहा—** मैं विप्रचित्ति का पुत्र हूँ और उनके ही गुण तथा लक्षण से युक्त हूँ मेरा नाम हुंड है । मैं वल एवं पराक्रम के कारण उद्धत हूँ ॥८॥ मैं दैत्यों में श्रेष्ठ हूँ, मेरे समान कोई राक्षस नहीं है । हे वरानने ! देवलोक में तथा मर्त्य लोक में एवं नाग लोक में भी कोई मेरे समान, तपस्वी,यशस्वी, धनी तथा भोग सम्पन्न नहीं है । हे विशालाक्षी ! तुमको देखते ही काम ने मेरे ऊपर बाण से प्रहार कर दिया है ॥९-१०॥ मैं तुम्हारे शरण में हूँ तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ । तुम मेरी प्राण के समान प्रियतमा बन जाओ ॥११॥ **अशोक सुन्दरी ने कहा—** तुम सुनो मैं तुम्हें समस्त बन्धों का कारण बतलाती हूँ संसार में स्त्री अथवा पुरुष को सुजात (सद्वंश में उत्पन्न) होना चाहिए ॥१२॥ किसी भी स्त्री का पति उसी को होना चाहिए जो उसके योग्य हो । हे हुंड ! संसार में यही मार्ग है, उसे विधि पूर्वक होना चाहिए ॥१३॥ मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हो सकती हूँ, उसका कारण तुम सुनो । हे दैत्यराज ! आप सावधानी पूर्वक सुनों ॥१४॥ हे महामते! जब मैं इस वृक्षराज से उत्पन्न हुयी तो उस समस पार्वतीजी ने इस वृक्षराज में शम्भु की भावना करके मेरी

देवस्यानुमते देव्या सृष्टो भर्ता ममैव हि। सोमवंशे महाप्राज्ञ च धर्मात्मा भविष्यति ॥१६॥
जिष्णुर्जिष्णुसमो वीर्ये तेजसा पावकोपमः। सर्वज्ञः सत्यसन्धश्च त्यागे वैश्रवणोपमः ॥१७॥
यज्वा दानपतिः सोऽपि रूपेण मन्मथोपमः। नहुषो नाम धर्मात्मा गुणशीलमहानिधिः ॥१८॥
देव्या देवेन मे दत्तः ख्यातो भर्ता भविष्यति।
तस्मात्सर्वगुणोपेतं पुत्रमाप्स्यामि सुन्दरम् ॥१९॥
इन्द्रोपेन्द्रसमं लोके ययातिं जनवल्लभम्। लप्स्याम्यहं रणे धीरं तस्माच्छम्भोःप्रसादतः ॥२०॥
अहं पतिव्रता वीर परभार्याविशेषतः। अतस्त्वं सर्वथा हुण्ड त्यज भ्रान्तिमितो व्रज ॥२१॥
प्रहस्यैव वचो ब्रूते अशोकसुन्दरीं प्रति ॥२२॥

हुण्ड उवाच

नैव युक्तं त्वया प्रोक्तं देव्या देवेन चैव हि। नहुषो नाम धर्मात्मा सोमवंशे भविष्यति ॥२३॥
भवती वयसा श्रेष्ठा कनिष्ठो न स युज्यते। कनिष्ठा स्त्री प्रशस्ता तु पुरुषो न प्रशस्यते ॥२४॥
कदा स पुरुषो भद्रे तव भर्ता भविष्यति। तारुण्यं यौवनं चापि नाशमेवं प्रयास्यति ॥२५॥
यौवनस्य बलेनापि रूपवत्यः सदा स्त्रियः। पुरुषाणां वल्लभत्वं प्रयान्ति वरवर्णिनि ॥२६॥
तारुण्यं हि महामूलं युवतीनां वरानने।
तस्याऽऽधारेणभुञ्जन्ति भोगान्कामान्मनोऽनुगान् ॥२७॥
कदा सोऽभ्येष्यते भद्रे आयोः पुत्रः शृणुष्व मे।
यौवनं वर्ततेऽद्यैव वृथा चैव भविष्यति ॥२८॥

कल्पना की ॥१५॥ शङ्करजी की अनुमति से देवी पार्वती ने मेरे पति की भी कल्पना की। वे धर्मात्मा महाप्राज्ञ सोमवंश में उत्पन्न होंगे ॥१६॥ जगत् पर विजय प्राप्त करने वाले तथा भगवान् विष्णु के समान पराक्रम वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, सर्वज्ञ, सत्य वक्ता, वैश्रवण (कुबेर) के समान त्यागी ॥१७॥ यज्ञ करने वाले, दानी शिरोमणि तथा कामदेव के समान सुन्दर, शीलगुण के महासागर धर्मात्मा नहुष को॥१८॥ पार्वती देवी तथा शङ्करजी ने मुझे पति रूप से प्रदान किया है। मेरे पति प्रख्यात पुरुष होंगे; उनसे मैं समस्त गुणों से युक्त सुन्दर पुत्र को प्राप्त करूँगी ॥१९॥ इन्द्र तथा उपेन्द्र के समान, प्रजाओं के प्रिय ययाति नामक पुत्र को मैं प्राप्त करूँगी। वह भगवान् शिव की कृपा से युद्ध में धैर्य सम्पन्न होगा ॥२०॥ हे वीर ! मैं पतिव्रता हूँ और विशेष रूप से दूसरे की पत्नी हूँ। अतएव हे हुंड ! आप अपने भ्रम को त्याग कर यहाँ से चले जायँ ॥२१॥ हुंड ने जोर से हँसकर अशोक सुन्दरी से कहा। **हुंड ने कहा—** तुमने तथा पार्वती एवं शिवजी ने उचित नहीं कहा है ॥२२॥ नहुष नामक धर्मात्मा सोमवंश में उत्पन्न होंगे। तुम उम्र में बड़ी हो और वह तुमसे छोटे उम्र का तुम्हारा पति होगा। अतएव तुम दोनों का विवाह उचित नहीं है॥२३॥ छोटी उम्र की स्त्री प्रशस्त होती है, पुरुष नहीं। हे भद्रे ! वह पुरुष तुम्हारा पति कब होगा?॥२४॥ इस तरह से तुम्हारी जवानी ही नष्ट हो जायेगी। जवानी के ही बल पर स्त्रियाँ सुन्दर लगती हैं ॥२५॥ हे सुन्दरि ! जवानी में ही वे पुरुषों की बल्लभा होती हैं। हे वरानने ! जवानी ही युवतियों का महामूल होता है ॥२६॥ जवानी के ही आधार पर वे मनोनुकूल भोगों को भोगती हैं। हे भद्रे ! वह महाराज आयु का पुत्र कब तुम्हारे पास आयेगा ?॥२७॥ तुम्हारी जवानी तो इस समय है वह व्यर्थ ही बीत जायेगी। तुम

गर्भत्वं शिशुत्वं च कौमारं च निशामय। कदाऽसौ यौवनोपेतस्तव योग्यो भविष्यति ॥२९॥
यौवनस्य प्रभावेण पिबस्व मधु माधवी। मया सह विशालाक्षि रमस्व त्वं सुखेन वै ॥३०॥
हुण्डस्य वचनं श्रुत्वा शिवस्य तनया पुनः। उवाच दानवेन्द्रं तं साध्वसेन समन्विता ॥३१॥
अष्टाविंशतिके प्राप्ते द्वापराख्ये युगे तदा। शेषावतारो धर्मात्मा वसुदेवसुतो बलः ॥३२॥
रेवतस्य सुतां दिव्यां भार्यां स च करिष्यति।
सापि जाता महाभाग कृताख्ये हि युगोत्तमे ॥३३॥
युगत्रयप्रमाणेन सा हि ज्येष्ठा बलादपि। बलस्य सा प्रिया जाता रेवती प्राणसंमिता ॥३४॥
भविष्यद्वापरे प्राप्त इह सा तु भविष्यति। मायावती पुरा जाता गन्धर्वतनया वरा ॥३५॥
अपहृत्य नियम्यैव शम्बरो दानवोत्तमः। तस्या भर्ता समाख्यातो माधवस्य सुतो बली ॥३६॥
प्रद्युम्नो नाम वीरेशो यादवेश्वरनन्दनः। तस्मिन्युगे भविष्ये तु भाव्यं दृष्टं पुरातनैः ॥३७॥
व्यासादिभिर्महाभागैर्ज्ञानवद्भिर्महात्मभिः। एवं हि दृश्यते दैत्य वाक्यं देव्या तदोदितम् ॥३८॥
मां प्रति हि जगद्धात्र्या पुत्र्या हिमवतस्तदा। त्वं तु लोभेन कामेन लुब्धो वदसि दुष्कृतम् ॥३९॥
किल्बिषेण समाजुष्टं वेदशास्त्रविवर्जितम्। यद्यस्य दिष्टमेवास्ति शुभं वाप्यशुभं दृढम् ॥४०॥
पूर्वकर्मानुसारेण तत्तस्य परिजायते। देवानां ब्राह्मणानां च वदने यत्सुभाषितम् ॥४१॥
निःसरेद्यदि सत्यं तदन्यथा नैव जायते। मद्भाग्यादेवमाज्ञातं नहुषस्यापि तस्य च ॥४२॥
समायोगं विचार्यैवं देव्या प्रोक्तं शिवेन च।
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ त्यज भ्रान्तिं मनः स्थिताम् ॥४३॥

गर्भत्व, शिशुत्व तथा कौमारावस्था का विचार करो ॥२८॥ वह कब जवान होकर तुम्हारे योग्य होयेगा ? तुम जवानी के प्रभाव से मधुमाधवी का पान करो ॥२९॥ हे विशालाक्षि ! तुम मेरे साथ सुख पूर्वक रमण करो। हुंड की वाणी को सुनकर वह शिव पुत्री फिर ॥३०॥ उस दानवेन्द्र से लज्जा पूर्वक कहीं, जब अठाइसवाँ द्वापर युग आयेगा उसी समय ॥३१॥ वसुदेव के धर्मात्मा पुत्र शेषावतार बलराम रेवत की दिव्य पुत्री को अपनी पत्नी बनायेंगे ॥३२॥ हे महाभाग ! वह सत्ययुग में उत्पन्न हुयी थी, इस तरह वह बलराम से तीन युग बड़ी है ॥३३॥ वह रेवती बलरामजी की प्राणों के समान प्रिया पत्नी हुयी। वह इस संसार में भविष्यत् कालिक द्वापर युग में उनकी पत्नी होगी ॥३४॥ प्राचीन काल में मायावती नाम की गन्धर्व की पुत्री उत्पन्न हुयी। शम्बर नामक दानव श्रेष्ठ उसके जिस पति को चुरा लिया वे भगवान् के बलवान् पुत्र यादवेश्वर उसके पति होंगे ॥३५-३६॥ उस युग में भविष्य का प्राचीन ज्ञानी महात्मा व्यास आदि ने साक्षात्कार किया है ॥३७॥ हे दैत्य ! इसी प्रकार का देवी पार्वती का कहा हुआ वाक्य प्रतीत होता है। जगन्माता हिमवान् की पुत्री ने इसी तरह से मुझसे कहा है ॥३८॥ तुम तो लोभ तथा काम के कारण मोहित होकर इस तरह की बातें करते हो, वह वेदशास्त्र के प्रतिकूल तथा पाप मय है ॥३९॥ जो जिसका शुभ तथा अशुभ दिष्ट (भाग्य) होता है वह पूर्वजन्मों के अनुसार उसको प्राप्त ही होता है ॥४०॥ देवताओं और ब्राह्मणों के मुख में जो सुभाषित होता है, वह सत्य यदि उनके मुख से निकल जाय तो वह बदल नहीं सकता है ॥४१॥ मेरे भाग्य के ही कारण मुझको तथा नहुष को जानकर दोनों के संयोग का विचार करके ही देवी तथा शिव ने कहा है ॥४२॥ इस बात को जानकर तुम शान्त हो जाओ और अपनी भ्रान्ति को

नैव शक्तो भवान्दैत्य मे मनश्चालितुं ध्रुवम्। पतिव्रता दृढं वित्तं स को मे चालितुं क्षमः ॥४४॥
महाशापेन धक्ष्यामि इतो गच्छ महासुर। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं हुण्डो वै दानवो बली ॥४५॥
मनसा चिन्तयामास कथं भार्या भवेदियम्। विचिन्त्य हुण्डो मायावी अन्तर्धानं समागतः ॥४६॥
अन्यस्मिन्दिवसे प्राप्ते भार्यां कृत्वा तमोमयीम् ।
दिव्यं मायामयं रूपं कृत्वा नार्यास्तु दानवः ॥४७॥
मायया कन्यकारूपो बभूव मम नन्दन। सा कन्याऽपि वरारोहा मायारूपाऽऽगमतत्तः ॥४८॥
हास्यलीलासमायुक्तं यत्राऽऽस्ते भवनन्दिनी। उवाच वाक्यं स्निग्धेव अशोकसुन्दरीं प्रति ॥४९॥
कासि कस्यासि सुभगे तिष्ठसि त्वं तपोवने ।
किमर्थं क्रियते बाले कामशोषणकं तपः ॥५०॥
तन्ममाचक्ष्व सुभगे किन्निमित्तं सुदुष्करम्। तन्निशम्य शुभं वाक्यं दानवेनापि भाषितम् ॥५१॥
मायारूपेण छन्नेन साभिलाषेण सत्वरम्। आत्मसृष्टिसुवृत्तान्तं प्रवृत्तं तु यथा पुरा ॥५२॥
तपसः कारणं सर्वं समाचष्ट सुदुःखिता। उपप्लवं तु तस्यापि दानवस्य दुरात्मनः ॥
मायारूपं न जानाति सौहृदात्कथितं तया ॥५३॥

हुण्ड उवाच

पतिव्रतासि हे देवि साधुव्रतपरायणा। साधुशीलसमाचारा साधुचारा महासती ॥५४॥
अहं पतिव्रता भद्रे पतिव्रतपरायणा। तपश्चरामि सुभगे भर्तुरर्थे महासती ॥५५॥
मम भर्त्ता हतस्तेन हुण्डेनापि दुरात्मना। तस्य नाशाय वै घोरं तपस्यामि महत्तपः ॥५६॥

त्याग दो। हे दैत्य ! यह निश्चित है कि तुम मेरे निश्चल मन को चंचल नहीं बना सकते हो ॥४३॥ मैं पतिव्रता हूँ। मेरा चित्त दृढ है, मुझको कौन चंचल बना सकता है ? हे महासुर ! तुम यहाँ से चले जाओ अन्यथा मैं तुम्हें भस्म कर दूँगी ॥४४॥ उसके वाक्य को सुनकर महाबलवान् हुंड ने सोचा कि यह किस प्रकार मेरी पत्नी बनेगी ॥४५॥ वह वहाँ से वेग पूर्वक निकलकर तथा उसको छोड़कर चला गया दूसरे दिन तमोमयी माया करके ॥४६॥ उस दानव ने अपना मायामय दिव्य रूप बनाकर अपनी माया से कन्या का रूप बना लिया ॥४७॥ वह माया रूपी सुन्दरी कन्या भी वहाँ गयी जहाँ पर हास्य तथा लीला से युक्त शिवपुत्री रहती थी ॥४८॥ उसने स्निग्धा के समान अशोक सुन्दरी से कहा हे सुभगे ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो ? इस तपोवन में क्यों रहती हो ?॥४९॥ हे बाले ! तुम किसलिए काम को सुखाने वाली तपस्या करती हो ? हे सुभगे ! उसे तुम मुझे बतलाओ। इस दुष्कर तप किसलिए करती हो ?॥५०॥ छल पूर्वक माया का रूप बनाकर तथा अभिलाषा पूर्वक उस दानव के द्वारा कहे गये वाक्य को सुनकर शिवपुत्री अशोक सुन्दरी शीघ्र ही ॥५१॥ अपनी उत्पत्ति से संबद्ध सम्पूर्ण वृत्तान्त जो पहले हुआ था; उसको तथा तपस्या के कारण को कहा। दुखिता उसने उस दुष्ट दानव के द्वारा किए गये उत्पात को भी बतलाया। उसके द्वारा सौहार्द पूर्वक कही गयी बात को वह माया रूप से नहीं जानती थी ॥५२-५३॥ **हुंड ने कहा—** हे देवि ! तुम पतिव्रता हो, सुन्दर व्रत करती हो, तुम्हारा शील तथा आचरण अच्छा है। तुम महासती हो ॥५४॥ हे भद्रे ! मैं भी पतिव्रता हूँ, पतिव्रता का पालन करती हूँ। हे भद्रे ! महासती मैं पति को प्राप्त करने के लिए तपस्या करती हूँ ॥५५॥ उस दुष्ट हुंड ने मेरे पति को मार दिया उसी का नाश

एहि मे स्वाश्रमे पुण्ये गङ्गातीरे वसाम्यहम्। अन्यैर्मनोहरैर्वाक्यैरुक्ता प्रत्ययकारकैः ॥५७॥
हुण्डेन सखि भावेन मोहिता शिवनन्दिनी। समाकृष्टा सुवेगेन महामोहेन मोहिता ॥५८॥
आनीताऽऽत्मगृहं दिव्यमनौपम्यं सुशोभनम्। मेरोस्तु शिखरे पुत्र वैडूर्य्याख्यं पुरोत्तमम्॥५९॥
अस्ति सर्वगुणोपेतं काञ्चनाख्यं महाशिवम्। तुङ्गप्रसादसम्बाधैः कलशैर्दण्डचामरैः ॥६०॥
नानावृक्षसमोपेतैर्वनैर्नीलैर्घनोपमः । वापीकूपतडागैश्च नदीभिस्तु जलाशयैः ॥६१॥
शोभमानं महारत्नैः प्राकारैर्हेमसंयुतैः। सर्वकामसमृद्धार्थं सम्पूर्णं दानवस्य हि ॥६२॥
ददृशे सा पुरं रम्यमशोकसुन्दरी तदा। कस्य देवस्य संस्थानं कथयस्व सखे मम॥६३॥
सोवाच दानवेन्द्रस्य दृष्टपूर्वस्य वै त्वया। तस्य स्थानं महाभागे सोऽहं दानवपुङ्गवः ॥६४॥
मया त्वं तु समानीता मायया वरवर्णिनी। तामाभाष्य गृहं नीता शातकौम्भं सुशोभनम्॥६५॥
नानावेश्मैः समाजुष्टं कैलासशिखरोपमम्। निवेश्य सुन्दरीं तत्र दोलायां कामपीडितः ॥६६॥
पुनः स्वरूपी दैत्येन्द्रः कामबाणप्रपीडितः। करसम्पुटमाबध्य उवाच वचनं सदा॥६७॥

यं यं त्वं वाञ्छसे भद्रे तं तं दद्मि न संशयः ।
भज मां त्वं विशालाक्षि भजन्तं कामपीडितम् ॥६८॥

अशोकसुन्दर्युवाच

नैव चालयितुं शक्तो भवान्मां दानवेश्वर। मनसापि न वै धार्यं मम मोहं समागतम्॥६९॥
भवादृशैर्महापापैर्देवैर्वा दानवाधमैः। दुष्प्राप्याहं न सन्देहो मा वदस्व पुनः पुनः॥७०॥

करने के लिए मैं घोर तपस्या करती हूँ ॥५६॥ मैं पवित्र गङ्गा के तट पर सुन्दर आश्रम में निवास करती हूँ। उसने दूसरी भी विश्वास दिलाने वाली बातों को उससे कहा ॥५७॥ शिव नन्दिनी को हुंड ने सखी भाव से मोहित किया ॥५८॥ उसको वह माया अपने अत्यन्त सुन्दर भवन में लायी वह सुमेरु पर्वत के सुन्दर शिखर पर स्थित वैडूर्य नामक उत्तम नगर है ॥५९॥ वहाँ पर सभी गुणों से युक्त काञ्चन नामक शिव हैं। वह उन्नत भवनों से भरा हुआ तथा कलशों तथा दण्डों एवं चमरों से युक्त भवन है ॥६०॥ अनेक वृक्ष से युक्त तथा मेघ के समान नीले वनों से, वापी, कूप, तड़ाग तथा नदियों आदि जलाशय से सुशोभित ॥६१॥ महारत्नों से युक्त सुवर्ण निर्मित चाहारदिवारियों, तभी सभी काम्य पदार्थो से परिपूर्ण, उस दानव की नगरी को उसने (अशोक सुन्दरी ने) देखा। वह नगर अत्यन्त मनोहर था। उसने पूछा— हे सखि ! बतलाओ यह किस देवता का स्थान है ?॥६२-६३॥ उसने (हुंड ने) कहा कि जिस दानवेन्द्र को तुमने पहले देखा है, उसी की यह नगरी है और मैं वही दानवेन्द्र हूँ ॥६४॥ हे सुन्दरि ! मैं तुमको माया के सहारे यहाँ लाया हूँ। इस तरह से उसको कहकर वह अशोक सुन्दरी को अपने सुवर्ण निर्मित सुन्दर भवन में लाया ॥६५॥ वह भवन अनेक गृहों से युक्त तथा कैलास पर्वत के शिखर के समान था। कामार्त वह उसको झूले पर बैठाकर ॥६६॥ काम के बाणों से पीड़ित होकर दैत्येन्द्र का रूप धारण करके, हाथ जोड़कर उसने कहा॥६७॥ हे भद्रे ! तुम जो-जो चाहोगी मैं तुम्हें उन सभी वस्तुओं को प्रदान करूगाँ। काम से पीड़ित मैं तुम्हें प्राप्त करना चाहता हूँ, तुम मेरी बन जाओ। श्रीदेवी अशोक सुन्दरी ने कहा— हे दानवेश्वर ! तुम मुझको विचलित नहीं कर सकते हो। तुम मेरे विषय में होने वाले मोह को मन से भी छोड़ दो ॥६८-६९॥ तुम्हारे जैसे महापापी देवताओं अथवा दानवाधमों के लिए मैं दुष्प्राप्य हूँ, अब वार-वार न कहो ॥७०॥

स्कन्दानुजा सा तपसाभियुक्ता जाज्वल्यमाना महता रुषा च ।
संहर्तुकामा परिदानवं तं कालस्य जिह्वेव यथा स्फुरन्ति ॥७१॥
पुनरुवाच सा देवी तमेवं दानवाधमम् । उग्रं कर्म कृतं पाप ! चात्मनाशनहेतवे ॥७२॥
आत्मवंशस्य नाशाय स्वजनस्यास्य वै त्वया ।
दीप्ता स्वगृहमानीता सुशिखा कृष्णवर्त्मनः ॥७३॥
यथाऽशुभः कूटपक्षी सर्वशोकैः समुद्गतः । गृहं तु विशते यस्य तस्य नाशं प्रयच्छति ॥७४॥
स्वजनस्य च सर्वस्य सधनस्य कुलस्य च । सद्विजो नाशमिच्छेत विशत्येव यदा गृहम् ॥७५॥
तथा तेऽहं गृहं प्राप्ता तव नाशं समीहती । पुत्राणां धनधान्यस्य तव वंशस्य साम्प्रतम् ॥७६॥
जीवं कुलं धनं धान्यं पुत्रपौत्रादिकं तव । सर्वं ते नाशयित्वाऽहं यास्यामि च न संशयः ॥७७॥
यथा त्वयाऽहमानीता चरन्ती परमं तपः । पतिकामा प्रवाञ्छन्ती नहुषं चायुनन्दनम् ॥७८॥
तथा त्वां मम भर्त्ता च नाशयिष्यति दानव। मन्निमित्त उपायोऽयं दृष्टो देवेन वै पुरा ॥७९॥
सत्येयं लौकिकी गाथा यां गायन्ति विदो जनाः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके न विन्दन्ति कुबुद्धयः ॥८०॥
येन यत्र प्रभोक्तव्यं यस्माद्दुःखसुखादिकम् । स एव भुञ्जते तत्र तस्मादेव न संशयः ॥८१॥
कर्मणोऽस्य फलं भुङ्क्ष्व स्वकीयस्य महीतले ।
यास्यसे निरयस्थानं परदाराभिमर्शनात् ॥८२॥
सुतीक्ष्णं हि सुधारं तु सुखङ्गं च विघट्टति । अङ्गुल्यग्रेण कोपाय तथा मां विद्धि साम्प्रतम् ॥८३॥

स्कन्द की वह तपस्विनी छोटी बहन महान् क्रोध से जलने लगी, उस दानवेन्द्र का विनाश कर देने की इच्छा से जैसे काल की जिह्वा जैसी चंचल बन गयी ॥७१॥ अरे पापी ! तुमने अपना नाश करने के लिए यह उग्र पाप किया है । इस तरह से उस देवी ने हुंड से कहा ॥७२॥ तुम अपने वंश तथा स्वजनों का नाश करने के लिए अपने घर में जलती हुयी अग्नि की ज्वाला को लाये हो ॥७३॥ जिस तरह से अशुभ कूट पक्षी सभी शोकों से युक्त होता है तथा वह जिसके घर में चला जाता है उसका नाश कर देता है॥७४॥ जिसके घर में वह पक्षी घुस जाय उसको जानना चाहिए कि धन, स्वजन तथा सम्पूर्ण वंश के साथ उसका नाश होने वाला है ॥७५॥ इसीतरह तुम्हारा नाश करने के लिए मैं तुम्हारे घर में प्रवेश कर गयी हूँ । इस समय मैं तुम्हारे पुत्रों, धन-धान्य तथा वंश का नाश करने वाली हूँ ॥७६॥ मैं तुम्हारे जीवन, धन, धान्य, तुम्हारे पुत्र-पौत्र इत्यादि का नाश करके चली जाऊँगी इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥७७॥ जिस तरह से तुमने आयुष के पुत्र ! नहुष को पति रूप से प्राप्त करने के लिए परम तपस्या करने वाली मुझको यहाँ लाया है ॥७८॥ हे दानव ! मेरे पति उसी प्रकार से तुम्हारा नाश कर देंगे । मुझको ही निमित्त बनाकर देवताओं ने तुम्हारे नाश के इस उपाय को रचा है ॥७९॥ ज्ञानी पुरुष इस सत्य गाथा को गाते हैं, तथा लोक में उसको प्रत्यक्षतः देखा भी जाता है, किन्तु कुबुद्धि पुरुष उसको नहीं जान पाते हैं ॥८०॥ जिसको जहाँ पर जिसके द्वारा सुख अथवा दुख भोगना होता है, वह वहीं पर जाकर उसके द्वारा उसको भोगता है॥८१॥ तुम अपने इस पाप कर्म का फल पृथिवी पर ही भोगो । तुम दूसरे की पत्नी के स्पर्श जन्य पाप के कारण नरक में जाओगे ॥८२॥ जैसे कोई अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले खड्ग को अपनी अङ्गुली पर रगड़े

सिंहस्य संमुखं गत्वा क्रुद्धस्य गर्जितस्य च ।
को लुनाति मुखात्केशान्साहसाकारसंयुतः ॥८४॥
सत्याचारां दमोपेतां नियतां तपसि स्थिताम् ।
निधनं चेच्छते यो वै सवै मां भोक्तुमिच्छति ॥८५॥

समणिं कृष्णसर्पस्य जीवमानस्य साम्प्रतम्। ग्रहीतुमिच्छते सो हि यथा कालेन प्रेषितः ॥८६॥
भवांस्तु प्रेषितो मूढ कालेन कालमोहितः। तदा ते ईदृशी जाता कुमतिः किं न पश्यसि ॥८७॥
ऋते तु आयुपुत्रेण समालोकयते हि कः। अन्यो हि निधनं याति मम रूपावलोकनात् ॥८८॥
एवमाभाषयित्वा तं गङ्गातीरं गता सती। सशोका दुःखसंविग्ना नियता नियमान्विता ॥८९॥
पूर्वमाचरितं घोरं पतिकामनया तपः। तव नाशार्थमिच्छन्ती चरिष्ये दारुणं पुनः ॥९०॥
यदा त्वां निहतं दुष्टं नहुषेण महात्मना। निशितैर्वज्रसङ्काशैर्बाणैराशीविषोपमैः ॥९१॥
रणे निपतितं पापमुक्तकेशं सलोहितम्। गतासुं च प्रपश्यामि तदा यास्याम्यहं पतिम्॥९२॥
एवं सुनियमं कृत्वा गङ्गातीरमनुत्तमम्। संस्थिता हुण्डनाशाय निश्चला शिवनन्दिनी ॥९३॥

वह्नेर्यथा दीप्तिमती शिखोज्ज्वला तेजोऽभियुक्ता प्रदहेत्सुलोकान् ।
क्रोधेन दीप्ता विबुधेशपुत्री गङ्गातटे दुश्चरमाचरत्तपः ॥९४॥

कुञ्जल उवाच

एवमुक्त्वा महाभाग शिवस्य तनया गता। गङ्गाम्भसि ततः स्नात्वा स्वपुरे काञ्चनाह्वये ॥९५॥
तपश्चचार तन्वङ्गी हुण्डस्य वधहेतवे। अशोकसुन्दरी बाला सत्येन च समन्विता ॥९६॥

उसी तरह से तुम मुझको जानो ॥८३॥ कौन ऐसा साहसी होगा जो भयङ्कर तथा गरजते हुए सिंह के पास जाकर उसके मुख के केशों को नोचने की कोशिश करेगा ॥८४॥ सत्याचरण करने वाली दमगुण से युक्त नियम पूर्वक तपस्या करने वाली मेरा उपयोग करने की इच्छा वही करेगा जो मरना चाहता है । जिस तरह से कोई काल से प्रेरित होकर मरने वाला व्यक्ति मणि वाले भयङ्कर काले सांप की मणि को लेना चाहता है ॥८५-८६॥ अरे मूर्ख ! तुम को तो काल ने प्रेरित करके मेरे पास भेजा है क्या तुमको इस बात का पता नहीं चलता है कि इसी कारण तुम्हारी ऐसी बुद्धि हो गयी है ॥८७॥ आयुष के पुत्र को छोड़कर दूसरा जो कोई मेरे रूप को देखेगा वह मर जायेगा ॥८८॥ इस तरह से कहकर वह सती गङ्गा के तट पर चली गयी उस समय वह शोक तथा दुःख से उद्विग्न थी । वह नियत रूप से नियम का पालन करने वाली थी॥८९॥ उसने कहा कि मैंने पहले पति की प्राप्ति की इच्छा से घोर तपस्या की थी अब मैं तुम्हारे नाश के लिए कठोर तपस्या करूँगी ॥९०॥ अरे दुष्ट ! जब महात्मा नहुष के वज्र के सदृश बाणों द्वारा युद्ध के मैदान में गिरे हुए, केशों वाले तुमको मरा खून से लथपथ मैं देख लूँगी तब ही मैं अपना विवाह करूँगी ॥९१-९२॥ इस तरह से नियम करके गङ्गा के तट पर हुंड का नाश करने के लिए निश्चल होकर वह शिव पुत्री बैठ गयी ॥९३॥ अपने तेजों के द्वारा जलती हुयी अग्नि के समान वह लोकों को मानो जला देने के लिए क्रोध से जलती हुयी वह देवेश की पुत्री गङ्गा के तट पर कठोर तपस्या करने लगी ॥९४॥ **कुञ्जल ने कहा—** हे महाभाग ! इस प्रकार से कहकर वह शिवपुत्री गङ्गा तट पर चली गयी । गङ्गा के जल में स्नान करके अपने काञ्चन पुरी में वह प्रवेश कर गयी ॥९५॥ हुंड का नाश करने के लिए तन्वंगी

हुण्डोऽपि दुःखितो भूतः शापदग्धेन चेतसा ।
चिन्तयामास सन्तप्त अतीव वचनानलैः ॥९७॥

समाहूय अमात्यं तं कम्पनाख्यमथाब्रवीत् । समाचष्ट स वृत्तान्तं तस्याः शापोद्भवं महत् ॥९८॥

शप्तोऽस्म्यशोकसुन्दर्या शिवस्यापि सुकन्यया ।
नहुषस्यापि मे भर्तुस्त्वं तु हस्तान्मरिष्यसि ॥९९॥
नैव जातस्त्वसौ गर्भ आयोर्भार्या च गुर्विणी ।
यथासस्याद्व्यलीकस्तु तस्याः शापस्तथा कुरु ॥१००॥

कम्पन उवाच

अपहृत्य प्रियां तस्य आयोश्चापि समानय । अनेनापि प्रकारेण तव शत्रुर्न जायते ॥१०१॥

नो वा प्रपातयस्व त्वं गर्भं तस्याः प्रभीषणैः ।
अनेनापि प्रकारेण तव शत्रुर्न जायते ॥१०२॥

जन्मकालं प्रतीक्षस्व नहुषस्य दुरात्मनः । अपहृत्य समानीय जहि त्वं पापचेतनम् ॥१०३॥
एवं संमन्त्र्य तेनापि कम्पनेन स दानवः । अभूत्स उद्यमोपेतो नहुषस्य प्रणाशने ॥१०४॥
पेलपुत्रो महाभाग आयुर्नाम क्षितीश्वरः । सार्वभौमः स धर्मात्मा सत्यव्रतपरायणः ॥१०५॥
इन्द्रोपेन्द्रसमो राजा तपसा यशसा बलैः । दानयज्ञैः सुपुण्यैश्च सत्येन नियमेन च ॥१०६॥
एकच्छत्रेण वै राज्यं चक्रे भूपतिसत्तमः । पृथिव्यां सर्वधर्मज्ञः सोमवंशस्य भूषणम् ॥१०७॥
पुत्रं न विन्दते राजा तेन दुःखी व्यजायत । चिन्तयामास धर्मात्मा कथं मे जायते सुतः ॥१०८॥
इति चिन्तां समापेदे आयुश्च पृथिवीपतिः । पुत्रार्थं परमं यत्नमकरोत्सुसमाहितः ॥१०९॥

अशोक सुन्दरी सत्य का पालन करती हुयी तपस्या करने लगी ॥९६॥ शाप के कारण दग्ध अन्तःकरण वाला हुंड भी दुःखी होकर चिन्ता की अग्नि से सन्तप्त होकर विचार किया ॥९७॥ उसने अपने कम्पन नामक आमात्य को बुलाकर शिवपुत्री को शाप के वृतान्त को बतलाया ॥९८॥ उसने कहा— शिव की पुत्री अशोक सुन्दरी ने मुझे शाप दिया है कि तुम मेरे पति नहुष के हाथों मारे जाओगे ॥९९॥ आयु की पत्नी इस समय गर्भिणी है, किन्तु वह गर्भ जन्म नहीं लिया है, अतएव तुम ऐसा करो कि उसका शाप व्यर्थ हो जाय ॥१००॥ **कम्पन्न ने कहा**— तुम आयु की पत्नी का भी अपहरण करके उसे लाओ, ऐसा करने से तुम्हारा शत्रु जन्म ही नहीं लेगा ॥१०१॥ अथवा तुम उसके गर्भ को गङ्गा के भीषण प्रवाह में फेंक दो ऐसा करने से भी तुम्हारा शत्रु उत्पन्न नहीं होगा ॥१०२॥ तुम दुष्ट नहुष के जन्म के समय की प्रतीक्षा करो उसके बाद उसका अपहरण करके तुम उसे मार दो ॥१०३॥ इस प्रकार से उस कम्पन से विचार करके हुंड नहुष को मारने के प्रयास में लग गया ॥१०४॥ **भगवान् विष्णु ने वेन से कहा**— ऐल के पुत्र महाभाग राजा आयुष सत्यवक्ता, सार्वभौम पृथिवी पति थे ॥१०५॥ दान, यज्ञ, पुण्य तथा नियमों का पालन करने वाले राजा आयुष तपस्या, यश और बल के विषय में इन्द्र और उपेन्द्र के समान थे ॥१०६॥ वे राजा पृथिवी पर एक छत्र राज्य करते थे । वे पृथिवी पर सभी धर्मो के ज्ञाता और सोमवंश के भूषण थे॥१०७॥ उन राजा को पुत्र नहीं था इसीलिये वे दुःखी हो गये । राजा चिन्ता करते थे कि मुझको पुत्र कैसे हो ?॥१०८॥ इस तरह से विचार करके पृथिवी पति आयुष चिन्तित हो गये । वे अत्यन्त सावधानी

अत्रिपुत्रोमहात्मा वै दत्तात्रेयो महामुनिः । क्रीडमानः स्त्रिया सार्द्धं मदिरारुणलोचनः ॥११०॥
वारुण्या मत्तधर्मात्मा स्त्रीवृन्दैश्च समावृतः । अङ्के युवतिमाधाय सर्वयोषिद्वरां शुभाम् ॥१११॥
गायते नृत्यते विप्रः सुरां च पिबते भृशम् । बिना यज्ञोपवीतेन महायोगीश्वरोत्तमः ॥११२॥
पुष्पमालाभिर्दिव्याभिर्मुक्ताहारपरिच्छदैः । चन्दनागुरुदिग्धाङ्गो राजमानो मुनीश्वरः ॥११३॥

तस्याश्रमं नृपो गत्वा तं दृष्ट्वा द्विजसत्तमम् ।
प्रणाममकरोन्मूर्ध्ना दण्डवत्सुसमाहितः ॥११४॥
अत्रिपुत्रः स धर्मात्मा समालोक्य नृपोत्तमम् ।
आगतं पुरतो भक्त्या अथ ध्यानं समास्थितः ॥११५॥

एवं वर्षशतं प्राप्तं तस्य भूपस्य सत्तम । निश्चलं शान्तिमपन्नं मानसं भक्तितत्परम् ॥११६॥

समाहूय उवाचेदं किमर्थं क्लिश्यसे नृप ।
ब्रह्माचारेण हीनोऽस्मि ब्रह्मत्वं नास्ति मे कदा ॥११७॥
सुरामांसप्रलुब्धोऽस्मि स्त्रिया सक्तः सदैव हि ।
वरदाने न मे शक्तिरन्यं शुश्रूष ब्राह्मणम् ॥११८॥

आयुरुवाच

भवादृशो महाभाग नास्ति ब्राह्मणसत्तमः । सर्वकामप्रदाता वै त्रैलोक्ये परमेश्वरः ॥११९॥
अत्रिवंशे महाभाग गोविन्दः परमेश्वरः । ब्राह्मणस्य स्वरूपेण भवान्वै गरुडध्वजः ॥१२०॥
नमोऽस्तु देवदेवेश नमोऽस्तु परमेश्वर । त्वामहं शरणं प्राप्तः शरणागतवत्सल ॥१२१॥
उद्धरस्व हृषीकेश मायां कृत्वा प्रतिष्ठिसि । विश्वस्थानां प्रजानां तु विद्वांसं विश्वनायकम् ॥१२२॥

पूर्वक पुत्र प्राप्ति के लिए बहुत प्रयास किये ॥१०९॥ महर्षि अत्रि के पुत्र महामुनि महात्मा दत्तात्रेय मदिरा पीकर लाल-लाल आँखें किए हुए स्त्री के साथ क्रीड़ा कर रहे थे ॥११०॥ मदिरा पीकर मत्त बने हुए वे धर्मात्मा स्त्री समूह से घिरे हुए थे । वे सबसे सुन्दर रमणी को अपनी गोद में लेकर गाते, नाचते थे और बहुत अधिक सुरापान करते थे । वे महायोगीश्वर थे किन्तु यज्ञोपवित नहीं धारण किए थे ॥१११-११२॥ वे मुनीश्वर दिव्य पुष्प मालाओं तथा मोतियों के हार आदि परिच्छदों से चन्दन अगुरु आदि से संलिप्त अङ्गों वाले सुशोभित होते थे ॥११३॥ राजा उनके आश्रम में जाकर उन द्विजश्रेष्ठ का दर्शन किए । और अत्यन्त सावधानी पूर्वक दण्डवत् प्रणाम किए ॥११४॥ धर्मात्मा अत्रि पुत्र ने राजा को भक्ति पूर्वक आये हुए देखे। इसके बाद वे ध्यान मग्न हो गये ॥११५॥ इस तरह राजा के सौ वर्ष बीत गये किन्तु राजा निश्चल, शान्त तथा भक्तिपूर्ण मन वाले थे ॥११६॥ महर्षि ने राजा को बुलाकर कहा तुम क्यों कष्ट उठा रहे हो मैं ब्राह्मण के आचार से हीन हूँ । इस समय मुझको ब्राह्मणत्व नहीं है ॥११७॥ मैं मदिरा मांस का सेवन करता हूँ तथा सदा स्त्रियों में आसक्त रहता हूँ । मुझमें वरदान देने की शक्ति नहीं है तुम किसी दूसरे ब्राह्मण की सेवा करो ॥११८॥ **आयुष ने कहा—** हे महाभाग ! आपके समान कोई भी श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं है । आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा त्रैलोक्य में परमेश्वर हैं ॥११९॥ हे महाभाग ! आप अत्रिवंश में परमेश्वर गोविन्द हैं । आप ब्राह्मण के रूप में गरुड़ध्वज हैं ॥१२०॥ हे देव देवेश ! आपको नमस्कार है । हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है । हे शरणागत वत्सल ! मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥१२१॥ हे हृषीकेश!

जानाम्यहं जगन्नाथं भवन्तं मधुसूदनम्। मामेव रक्ष गोविन्द विश्वरूप नमोऽस्तुते ॥१२३॥

कुञ्जल उवाच

गते बहुतिथे काले दत्तात्रेयो नृपोत्तमम्। उवाच मत्तरूपेण कुरुष्व वचनं मम ॥१२४॥

कपाले मे सुरां देहि पाचितं मांसभोजनम् ।

एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं स चायुः पृथिवीपतिः ॥१२५॥

उत्सुकस्तु कपालेन सुरामाहत्य वेगवान्। पलं सुपाचितं चैव छित्त्वा हस्तेन सत्वरम् ॥१२६॥

नृपेन्द्रः प्रददौ चापि दत्तात्रेयाय सत्तम । अथ प्रसन्नचेताः स सञ्जातो मुनिपुङ्गवः॥१२७॥

दृष्ट्वा भक्तिं प्रभावं च गुरुशुश्रूषणं परम् । समुवाच नृपेन्द्रं तमायुं प्रणतमानसम् ॥१२८॥

वरं वरय भद्रं ते दुर्लभं भुवि भूपते। सर्वमेव प्रदास्यामि यं यमिच्छसि साम्प्रतम्॥१२९॥

राजोवाच

भवान्दाता वरं सत्यं कृपया मुनिसत्तम। पुत्रं देहि गुणोपेतं सर्वज्ञं गुणसंयुतम् ॥१३०॥

देवतीर्थार्चनकरमजेयं देवदानवैः । क्षत्रियैराक्षसैर्घोरैर्दानवैः किन्नरैस्तथा ॥१३१॥

देवब्राह्मणसम्भक्तः प्रजापालो विशेषतः। यज्वा दानपतिः शूरः शरणागतवत्सलः॥१३२॥

दाता भोक्ता महात्मा च वेदशास्त्रेषु पण्डितः ।

धनुर्वेदेषु निपुणः शास्त्रेषु च परायणः ॥१३३॥

अनाहतमतिर्धीरः सङ्ग्रामेष्वपराजितः । एवं गुणः सुरूपश्च यस्माद्वंशः प्रसूयते ॥१३४॥

देहि पुत्रं महाभाग मम वंशप्रधारकम् । यदि चापि वरो देयस्त्वया मे कृपया विभो॥१३५॥

आप तो इस समय माया किए हुए हैं, आप मेरा उद्धार करें । आप सम्पूर्ण जगत् की प्रजाओं को जानने वाले तथा विश्व के नायक हैं ॥१२२॥ मैं आपको जगत् के स्वामी मधुसूदन जानता हूँ । हे गोविन्द ! हे विश्वरूप ! आप मेरी रक्षा करें आप को नमस्कार है ॥१२३॥ **कुञ्जल ने कहा—** बहुत समय बीत जाने पर दत्तात्रेय ने मत्तरूप से राजा आयुष से कहा— तुम मेरी बात मानो ॥१२४॥ तुम मुझे कपाल में मदिरा प्रदान करो और मांस पकाकर भोजन दो । इस तरह से सुनकर राजा आयुष शीघ्रता पूर्वक ॥१२५॥ उत्सुक होकर वेग पूर्वक सुरा लाकर अपने हाथ से काटकर पके हुए मांस को ॥१२६॥ महर्षि दत्तात्रेय को दिये । उसके कारण महर्षि दत्रात्रेय प्रसन्न हो गये ॥१२७॥ राजा की भक्ति प्रभाव तथा श्रेष्ठ गुरुशुश्रूषा को देखकर प्रणत मन वाले आयुष को उन्होंने कहा— हे राजन् ! पृथिवी पर दुर्लभ वरदान मुझसे माँगों । इस समय तुम जो कुछ चाहोगे वह सबकुछ मैं तुम्हें दूँगा ॥१२८-१२९॥ **राजा ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सत्य वरदान देने वाले हैं । आप मुझे सर्वज्ञ तथा सभी गुणों से युक्त पुत्र प्रदान कीजिये ॥१३०॥ उसका पराक्रम देवता के समान हो, वह देवताओं और दानवों के लिए अजेय हो । उसको क्षत्रिय, घोर राक्षस, दानव तथा किन्नर भी न जीत सकें ॥१३१॥ वह देवताओं और ब्राह्मणों का भक्त हो तथा विशेष रूप से प्रजाओं का पालन करने वाला हो । वह यज्ञ करने वाला वीर तथा शरणागत वत्सल हो ॥१३२॥ वह दाता, भोक्ता, महात्मा तथा वेद शास्त्रों का ज्ञाता हो । वह धनुर्वेद में निष्णात तथा शास्त्र पारङ्गत हो ॥१३३॥ वह घबराने वाला न हो, धैर्य सम्पन्न हो तथा वह कभी संग्राम में पराजित न हो । इस प्रकार का सुन्दर रूप वाला पुत्र जिससे उत्पन्न हो हे महाभाग ! आप मुझे इस प्रकार का मेरे वंश को चलाने वाला पुत्र प्रदान कीजिए । हे

दत्तात्रेय उवाच

एवमस्तुमहाभाग तव पुत्रो भविष्यति। गृहे वंशकरः पुण्यः सर्वजीवदयाकरः ॥१३६॥
एभिर्गुणैस्तु संयुक्तो वैष्णवांशेन संयुतः। राजा च सार्वभौमश्च इन्द्रतुल्यो नरेश्वरः॥१३७॥
एवं खलु वरं दत्त्वा ददौ फलमनुत्तमम्। भूपमाह महायोगी सुभार्यायै प्रदीयताम् ॥१३८॥
एवमुक्त्वा विसृज्यैव तमायुं प्रणतं पुरः। आशीर्भिरभिनन्द्यैव अन्तर्धानमधीयत ॥१३९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

एक सौ चौथा अध्याय

कुञ्जल उवाच

गते तस्मिन्महाभागे दत्तात्रेये महामुनौ। आजगाम महाराज आयुश्च स्वपुरं प्रति॥१॥
इन्दुमत्या गृहं हृष्टः प्रविवेश श्रियान्वितम्। सर्वकामसमृद्धार्थमिन्द्रस्य सदनोपमम् ॥२॥
राज्यं चक्रे स मेधावी यथा स्वर्गे पुरन्दरः। स्वर्भानुसुतया सार्द्धमिन्दुमत्या द्विजोत्तम॥३॥
सा च इन्दुमती राज्ञी गर्भमाप फलाशनात्। दत्तात्रेयस्य वचनाद्दिव्यतेजःसमन्वितम् ॥४॥

विभो ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो इसी प्रकार का वरदान दें ॥१३४-१३५॥ **दत्तात्रेय ने कहा—** ठीक है; महाभाग आपका पुत्र ऐसा ही होगा । वह घर में वंश चलाने वाला तथा सभी जीवों पर दया करने वाला होगा ॥१३६॥ इन्हीं गुणों से युक्त वह विष्णु के अंश से युक्त होगा वह सार्वभौम्य राजा होगा तथा इन्द्र के समान पराक्रमी होगा ॥१३७॥ इस तरह से वरदान देकर दत्तात्रेय महर्षि ने राजा को सर्वोत्तम फल प्रदान किया । उन महायोगी ने कहा कि तुम इसे अपनी पत्नी को प्रदान करो ॥१३८॥ इस तरह से कहकर प्रणत राजा आयुष को छोड़कर उन्होंने राजा को अपने आशीर्वचनों से अभिनंदित किया और अन्तर्धान हो गये ॥१३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमि खण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०३।।

इन्दुमती के गर्भ का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— उन महाभाग महामुनि दत्तात्रेय के चले जाने पर महाराज आयुष अपनी नगरी में आये ॥१॥ वे प्रसन्नता पूर्वक इन्दुमती के सुन्दर गृह में प्रवेश किये । वह गृह सभी काम्य पदार्थों से परिपूर्ण इन्द्र के गृह के समान था ॥२॥ जिस तरह स्वर्ग में इन्द्र राज्य करते हैं उसी तरह स्वर्भानु (राहु) की पुत्री इन्दुमती के साथ वे राज्य करने लगे ॥३॥ उस इन्दुमती ने फल के खाने तथा महर्षि दत्तात्रेय के आशीर्वाद

इन्दुमत्या महाभागा स्वप्नं दृष्टमनुत्तमम्। रात्रौ दिवान्वितं तात बहुमङ्गलदायकम् ॥५॥
गृहान्तरे विशन्तं च पुरुषं सूर्यसन्निभम्। मुक्तामालान्वितं विप्रं श्वेतवस्त्रेण शोभितम् ॥६॥
श्वेतपुष्पकृता माला तस्य कण्ठे विराजते। सर्वाभरणशोभाङ्गो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥७॥
चतुर्भुजः शङ्खपाणिर्गदाचक्रासिधारकः। छत्रेण ध्रियमाणेन चन्द्रबिम्बानुकारिणा ॥८॥
शोभमानो महातेजा दिव्याभरणभूषितः। हारकङ्कणकेयूरैर्नूपुराभ्यां विराजितः ॥९॥
चन्द्रबिम्बानुकाराभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः।
एवं विधो महाप्राज्ञो नरः कश्चित्समागतः ॥१०॥
इन्दुमती समाहूय स्नापिता पयसा तदा। शङ्खेन क्षीरपूर्णेन शशिवर्णेन भामिनी॥११॥
रत्नकाञ्चनबद्धेन सम्पूर्णेन पुनःपुनः। श्वेतं नागं सुरूपं च सहस्रशिरसं वरम् ॥१२॥
महामणियुतं दीप्तं धामज्वालासमाकुलम्। क्षिप्तं तेन मुखप्रान्ते दत्तं मुक्ताफलं पुनः ॥१३॥
कण्ठे तस्याः स देवेश इन्दुमत्या महायशाः।
पद्मं हस्ते ततो दत्त्वा स्वस्थानं प्रतिजग्मिवान् ॥१४॥
एवं विधं महास्वप्नं तया दृष्टं सुतोत्तमम्। समाचष्ट महाभागा आयुं भूमिपतीश्वरम् ॥१५॥
समाकर्ण्य महाराजाश्चिन्तयामास वै पुनः। समाहूय गुरुं पश्चात्कथितं स्वप्नमुत्तमम्॥१६॥
शौनकं सुमहाभागं सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम् ॥१७॥

राजोवाच

अद्यरात्रौ महाभाग मम पत्न्या द्विजोत्तम। विप्रो गेहं विशन्दृष्टः किमिदं स्वप्नकारणम्॥१८॥

के कारण तेज से युक्त गर्भ को धारण किया ॥४॥ हे महाभाग ! इन्दुमती रात-दिन बहुत मङ्गल प्रदान करने वाले स्वप्न को देखती रहती थी ॥५॥ वह स्वप्न देखती थी कि उसके घर में सूर्य के समान कोई पुरुष प्रवेश कर रहा है। मोती की माला धारण किए हुए वह श्वेत वस्त्र से सुशोभित है ॥६॥ श्वेत पुष्प से निर्मित माला उसके गले में सुशोभित हो रही है, उसके सभी अङ्ग आभूषणों से भूषित हैं तथा वह दिव्य चन्दन को लगाये हुए है ॥७॥ उसकी चार भुजाएँ हैं, हाथ में शङ्ख लिए हुए है तथा गदा, चक्र एवं कृपाण धारण किए हुए है। चन्द्र विम्ब के समान सुन्दर छत्र उसके ऊपर लगा हुआ है, और वह उससे सुशोभित हो रहा है ॥८॥ वह महातेजस्वी दिव्य आभरणों से भूषित है। वह हार, कङ्कण, केयूर तथा नूपुर से सुशोभित है॥९॥ वह चन्द्र बिम्ब के समान प्रतीत होने वाले दोनों कुण्डलों से सुशोभित है, इस प्रकार का कोई महाप्राज्ञ मनुष्य आया है ॥१०॥ इन्दुमती ने उसको बुलाकर दुग्ध के समान धवल शङ्ख में दुग्ध भरकर उस पुरुष को दूध से बार-बार स्नान कराया ॥११॥ वह शङ्ख, रत्न तथा सुवर्ण से जटित है। उसके बाद उस पुरुष ने इन्दुमती को सुन्दर हजार शिर वाले श्रेष्ठ श्वेत वर्ण के नाग को प्रदान किया ॥१२॥ वह नाग महामणि से युक्त तथा देदीप्यमान कान्ति की ज्वाला से युक्त है। उसके बाद उसने इन्दुमती के मुख के पास मोती प्रदान किया ॥१३॥ वह महायशस्वी इन्दुमती के गले में तथा हाथ में कमल देकर अपने स्थान पर चला गया ॥१४॥ इस प्रकार से इन्दुमती ने उत्तम पुत्र विषयक स्वप्न को देखा। उसने इस स्वप्न को राज राजेश्वर आयुष को बतलाया ॥१५॥ उसे सुनकर राजा ने विचार किया उन्होंने अपने गुरु को वह स्वप्न सुनाया ॥१६॥ राजा के गुरु सर्वज्ञ महाभाग शौनक थे, वे ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे। **राजा ने कहा**— हे

शौनक उवाच

वरो दत्तस्तु ते पूर्वं दत्तात्रेयेण धीमता । आदिष्टं च फलं राज्ञा सुगुणं सुतहेतवे ॥१९॥

तत्फलं किंकृतं राजन्कस्मै त्वया निवेदितम् ।

सुभार्यायै मया दत्तमिति राज्ञोदितं वचः ॥२०॥

श्रुत्वोवाच महाप्राज्ञ शौनको द्विजसत्तमः । दत्तात्रेयप्रसादेन तव गेहे सुतोत्तमः ॥२१॥

वैष्णवांशेन संयुक्तो भविष्यति न संशयः। स्वप्नस्य कारणं राजन्नेतत्ते कथितं मया ॥२२॥

इन्द्रोपेन्द्रसमः पुत्रो दिव्यवीर्यो भविष्यति । पुत्रस्ते सर्वधर्मात्मा सोमवंशस्य वर्द्धनः ॥२३॥

धनुर्वेदे च वेदे च सगुणोऽसौ भविष्यति । एवमुक्त्वा स राजानं शौनको गतवान्गृहम् ॥२४॥

हर्षेण महताविष्टो राजाभूत्प्रियया सह ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

गता सा नन्दनवनं सखीभिः सह क्रीडितुम् ।

तत्राकर्ण्य महद्वाक्यमप्रियं तु तदा पितुः ॥१॥

द्विजोत्तम महाभाग ! आज मेरी पत्नी ने अपने घर में प्रवेश करते हुए पुरुष को देखा उसका क्या कारण है? **शौनक महर्षि ने कहा—** पहले तुमको बुद्धिमान दत्तात्रेय ने वरदान दिया है ॥१७-१८॥ उन्होंने राजाओं के सुन्दर गुण प्राप्ति के लिए फल प्रदान किया । हे राजन् ! उस फल को आपने क्या किया ? और उसको किसे प्रदान किया ?॥१९॥ राजा ने कहा उसे मैंने अपनी पत्नी को दिया है । इस बात को सुनकर महाप्राज्ञ द्विजश्रेष्ठ शौनक महर्षि ने कहा ॥२०॥ महर्शि दत्तात्रेय की कृपा से तुम्हारे घर में भगवान् विष्णु के अंश से उत्तम पुत्र होगा इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२१॥ हे राजन् ! आपके स्वप्न का कारण मैंने सुना दिया । तुम्हारा पुत्र दिव्य पराक्रम वाला तथा इन्द्र एवं उपेन्द्र के समान होगा ॥२२॥ आपका पुत्र धर्मात्मा तथा सोमवंश को बढ़ाने वाला होगा । वह धनुर्वेद और वेद में निपुण होगा ॥२३॥ इस तरह से कहकर महर्षि शौनक अपने घर चले गये और राजा भी अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त हर्षित हुए ॥२४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०४॥

हुण्ड द्वारा नवप्रसूत बालक नहुष का अपहरण

कुञ्जल ने कहा— रानी सखियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए नन्दन वन में गयी वहाँ पर उसने

चारणानां सुसिद्धानां भाषतां हर्षणेन तु । आयोर्गेहे महावीर्यो विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥२॥
भविष्यति सुतश्रेष्ठो हुण्डस्यान्तं करिष्यति । एवं विधं महद्वाक्यमप्रियं दुःखदायकम् ॥३॥
समाकर्ण्य समायाता पितुरग्रे निवेदितम् । समासेन तया तस्य पुरतो दुःखदायकम् ॥४॥
पितुरग्रे जगादाऽथ पिता श्रुत्वा स विस्मितः ।
शापमशोकसुन्दर्याः सस्मार च पुरा कृतम् ॥५॥
एतस्यार्थे तपस्तेपे सेयं चाशोकसुन्दरी । गर्भस्य नाशनायैव इन्दुमत्याः स दानवः ॥६॥
विचक्रे उद्यमं दुष्टः कालाकृष्टो दुरात्मवान् । छिद्रान्वेषी ततो भूत्वा इन्दुमत्यास्तु नित्यशः ॥७॥
यदा पश्यति तां राज्ञीं रूपौदार्यगुणान्विताम् ।
दिव्यतेजःसमायुक्तां रक्षितां विष्णुतेजसा ॥८॥
दिव्येन तेजसा युक्तां सूर्यबिम्बोपमां तु ताम् ।
तस्याः पार्श्वे महाभाग रक्षणार्थं स्थितः सदा ॥९॥
दूरात्स दानवो दुष्टस्तस्याश्च बहु दर्शयन् । नानाविद्यां महोग्रां च भीषिकां सुविभीषिकाम् ॥१०॥
गर्भस्य तेजसा युक्ता रक्षिता विष्णुतेजसा । भयं न जायते तस्या मनस्येव कदा पुनः ॥११॥
विफलो दानवो जात उद्यमश्च निरर्थकः । मनीषितं नैव जातं हुण्डस्यापि दुरात्मनः ॥१२॥
एवं वर्षशतं पूर्णं पश्यमानस्य तस्य च । प्रसूता सा हि पुत्रं च स्वर्भानोस्तनया तदा ॥१३॥
रात्रावेव सुतश्रेष्ठ तस्याःपुत्रो व्यजायत । तेजसातीव भात्येष यथासूर्यो नभस्तले ॥१४॥
अथ दासी महादुष्टा काचित्सूतिगृहागता । अशौचाचारसंयुक्ता महामङ्गलवादिनी ॥१५॥

अपने पिता राहु के अप्रिय वाक्य को सुना ॥१॥ वहाँ पर चारण तथा सिद्धगण हर्ष पूर्वक बातें कर रहे थे कि आयुष के घर में विष्णु के समान पराक्रम वाला महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होगा वह हुंड का विनाश करेगा। इस प्रकार का अत्यन्त अप्रिय तथा दुखदायक वाक्य ॥२-३॥ सुनकर वह आयी और अपने पिता से कही उसने संक्षेप में उस दुःखदायक वाक्य को बतलाया ॥४॥ उसने अपने पिता के समक्ष कहा और उसको सुनकर उसके पिता आश्चर्यित हो गये । उन्होंने अशोक सुन्दरी के शाप का स्मरण किया ॥५॥ इसी के लिए अशोक सुन्दरी तपस्या की थी । वह दानव हुंड इन्दुमती के गर्भ का नाश करने के लिए ॥६॥ प्रयास किया क्योंकि काल उसको अपनी ओर खींच रहा था । वह सदा देखता रहता था कि इन्दुमती कोई गलती करे ॥७॥ जब उसने रूप की उदारता तथा गुणों से युक्त तथा भगवान् विष्णु के तेज से रक्षित तथा दिव्य तेज से युक्त रानी को देखा कि ॥८॥ वह दिव्य तेज से युक्त है तथा वह सूर्य मण्डल के समान तेज से युक्त है । हे महाभाग ! उस रानी के सन्निकट रक्षा करने के लिए सदा स्थित रहता था ॥९॥ वह दुष्ट दानव उसको भयभीत करने के लिए अनेक भयभीत करने वाली महाविद्याओं को प्रदर्शित करता था ॥१०॥ किन्तु गर्भ के तेज से तथा विष्णु के तेज से युक्त रानी को कोई भय होता ही नहीं था ॥११॥ इस तरह वह दानव विफल हो गया और उसका प्रयास भी निरर्थक सिद्ध हुआ । दुष्ट हुंड के मनोनुकूल कोई भी कार्य नहीं हुआ॥१२॥ इस तरह हुंड को देखते हुए सौ वर्ष वीत गये और उस स्वर्भानु (राहु) की पुत्री ने पुत्र को जन्म दिया ॥१३॥ वह श्रेष्ठ पुत्र रात्रि में ही उत्पन्न हुआ । वह अपने तेज से ऐसे प्रकाशित होता था जैसे आकाश में सूर्य प्रकाशित होते हैं ॥१४॥ **सूतजी ने कहा—** उसके बाद कोई दुष्टा दासी उस सूतिका गृह

तस्याः सर्वं समाज्ञाय स हुण्डो दानवाधमः ।
दास्या अङ्गं प्रविश्यैव प्रविष्टाश्चायुमन्दिरे ॥१६॥
महाजने प्रसुप्ते च निद्रयाऽतीव मोहिते । तं पुत्रं देवगर्भाभमपहृत्य बहिर्गतः ॥१७॥
काञ्चनाख्यं पुरं प्राप्तः स्वकीयं दानवाधमः ।
समाहूयप्रियां भार्या विपुलां वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
वधस्वैनं महापापं बालरूपं रिपुं मम् । पश्चात्सूदस्य वै हस्ते भोजनार्थं प्रदीयताम् ॥१९॥
नानाभेदैर्विभेदैश्च पाचयस्व हि निर्घृणम् । सूदहस्तान्महाभागे पश्चाद्भोक्ष्ये न संशयः ॥२०॥
वाक्यमाकर्ण्य तद्भर्तुर्विपुला विस्मिताऽभवत् ।
कस्मान्निर्घृणतां याति भर्त्ता मम सुनिष्ठुरः ॥२१॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं देवगर्भोपमं सुतम् । कस्य कस्मात्प्रभक्ष्येत क्षमाहीनः सुनिर्घृणः ॥२२॥
इत्येवं चिन्तयामास कारुण्येन समन्विता । पुनः पप्रच्छ भर्तारं कस्माद्भक्ष्यसि बालकम् ॥२३॥
कस्माद्भवसि सङ्क्रुद्धो अतीव निरपत्रपः । सर्वं मे कारणं ब्रूहि तत्त्वेन दनुजेश्वर ॥२४॥
आत्मदोषं च वृत्तान्तं समासेन निवेदितम् । शापमशोकसुन्दर्या हुण्डेनापि दुरात्मना ॥२५॥
तया ज्ञातं तु तत्सर्वं कारणं दानवस्य वै ।
वध्योऽयं बालकः सत्यं नो वा भर्ता मरिष्यति ॥२६॥
इत्येवं प्रविचार्यैव विपुला क्रोधमूर्च्छिता । मेकलां तु समाहूय सैरन्ध्रीं वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥
जह्येन बालकं दुष्टं मेकलेऽद्य महानसे । सूदहस्ते प्रदेहि त्वं हुण्डभोजनहेतवे ॥२८॥

में आयी, महामङ्गल को कहने वाली वह अपवित्र आचरण करने वाली थी ॥१५॥ उसकी सारी बातों को जानकर दानवाधम हुंड उसके अङ्गों में प्रवेश कर गया और उसी के साथ आयुष के घर में प्रवेश कर गया॥१६॥ जव सभी बड़े लोग निद्रा से मोहित होकर सो गये तो उसने देवता के समान कान्ति वाले उस पुत्र को चुराकर बाहर निकल गया ॥१७॥ वह उसको लेकर अपने काञ्चन पुर में चला आया । उसने अपनी पत्नी विपुला को बुलाकर कहा ॥१८॥ यह बालक मेरा शत्रु हैं, इसको तुम मार दो । उसके बाद तुम इसको रसोइये के हाथ में भोजन बनाने के लिए दे देना । इसको निष्ठुरता पूर्वक अनेक प्रकार से पकवाना। उसके बाद हे महाभाग ! मैं रसोइयें के हाथ से पाकर इसे खा जाऊँगा ॥१९-२०॥ अपने पति की वातों को सुनकर विपुला आश्चर्यित हो गयी । मेरे पति किस कारण से इतना निष्ठुर हो गये हैं ॥२१॥ यह देवता के समान कान्ति वाला तथा सभी लक्षणों से युक्त बालक किसका है । किस कारण क्षमा रहित मेरे निष्ठुर पति इसको खायेगे ?॥२२॥ इस तरह से करुणाक्रान्त होकर वह विचार करने लगी । उसके वाद उसने अपने पति से पूछा इस बालक को क्यों खाना चाहते हो ?॥२३॥ किस कारण से निर्लज्ज आप क्रुद्ध हैं। हे दनुजेश्वर ! इन सारी बातों को आप मुझे बतलाइये ॥२४॥ इसके बाद हुंड ने अपने दोष को संक्षेप में उसे बतलाया । उसने अशोक सुन्दरी के शाप को भी बतलाया ॥२५॥ इस तरह से उसने उस दानव की सारी बातों को जान लिया और उसने सोचा इस बालक को अवश्य मार देना चाहिए नहीं तो मेरे पति मर जायेंगे ॥२६॥ इस तरह से विचार करके विपुला अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी । उसने मेकला नामक अपनी सैरन्ध्री को बुलाकर कहा ॥२७॥ हे मेकले ! इस बालक को रसोइ घर में ले जाकर तुम इसे मार दो और

मेकला बालकं गृह्य सूदमाहूय चाब्रवीत्। राजाऽऽदेशं कुरुष्वाद्य पचस्वैनं हि बालकम् ॥२९॥
एवमाकर्णितं तेन सूदेनापि महात्मना। आदाय बालकं हस्ताच्छस्त्रमुद्यम्य चोद्यतः ॥३०॥
एष वै देवदेवस्य दत्तात्रेयस्य तेजसा। रक्षितस्त्वायुपुत्रश्च स जहास पुनः पुनः ॥३१॥
हसन्तं तं समालोक्य ससूदः कृपयान्वितः। सैरन्ध्री च कृपायुक्ता सूदं तं प्रत्यभाषत ॥३२॥
नैष वध्यस्त्वया सूद शिशुरेव महामते। दिव्यलक्षणसम्पन्नः कस्य जातः सुसत्कुले ॥३३॥

सूद उवाच

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे वाक्यं वै कृपयान्वितम् ।
राजलक्षणसम्पन्नो रूपवान्कस्य बालकः ॥३४॥
कस्माद्भोक्ष्यति दुष्टात्मा हुण्डोऽयं दानवाधमः ।
येन वै रक्षितो वंशः पूर्वमेव सुकर्मणा ॥३५॥

आपत्स्वपि स जीवेत दुर्गेषु नान्यथा भवेत्। सिन्धुवेगेन नीतस्तु वह्निमध्ये गतोऽथवा ॥३६॥
जीवते नात्र सन्देहो यश्च कर्मसहायवान्। तस्माद्धि क्रियते कर्म धर्मपुण्यसमन्वितम् ॥३७॥
आयुष्मन्तो नरास्तेन प्रवदन्ति सुखं ततः। तारकं पालकं कर्म रक्षते जाग्रते हि तत् ॥३८॥
मुक्तिदं जायते नित्यं मैत्रस्थानप्रदायकम्। दानपुण्यान्वितं कर्म प्रियवाक्यसमन्वितम् ॥३९॥
उपकारयुतं यश्च करोति शुभकृत्तदा। तमेव रक्षते कर्म सर्वदैव न संशयः ॥४०॥

अन्ययोनिं प्रयाति स्म प्रेरितः स्वेन कर्मणा ।
किं करोति पिता माता अन्ये स्वजनबान्धवाः ।
कर्मणा निहतो यस्तु नस्युस्तस्य च रक्षणे ॥४१॥

इसको रसोइये को दे दो कि वह हुंड के लिए इसी को भोजन बनाये ॥२८॥ मेकला उस बालक को लेकर रसोइये से कही तुम राजा के आदेश का पालन करो और इसी बालक को पकाओ ॥२९॥ उस रसोइये ने भी इस बात को सुना । उसने उसके हाथ से बालक को ले लिया और शस्त्र लेकर उसको मारने के लिए तैयार हो गया ॥३०॥ वह आयुष का पुत्र दत्तात्रेय के तेज से रक्षित था, वह बार-बार जोर से हंसा ॥३१॥ हंसते हुए बालक को देखकर रसोइया करुणा से युक्त हो गया सैरन्ध्री ने भी करुणा से युक्त होकर उस सूद से कहा ॥३२॥ हे महामते ! आप इस बालक को न मारें । यह दिव्य लक्षण से युक्त है न जाने किसके वंश में उत्पन्न हुआ है ॥३३॥ **सूद ने कहा**— हे भद्रे ! तुमने करुणा से युक्त सत्य वाक्य कहा है । यह न जाने किसका बालक है, रूपवान है तथा राजा के लक्षण से युक्त है ॥३४॥ दुष्ट दानवाधम हुंड इसको क्यों खाना चाहता है ? अपने सुन्दर कर्म के द्वारा यह बालक रक्षित है ॥३५॥ यह विपत्ति में भी जीवित रहेगा इसमें कोई संशय नहीं है । समुद्र के वेग से बहाया गया तथा आग के बीच में भी पड़ा हुआ ॥३६॥ वह व्यक्ति जीवित रहता है जिसकी सहायता उसका कर्म करता है इसीलिए धर्म और पुण्य से युक्त कर्म करना चाहिए ॥३७॥ इसीलिए सुखी मनुष्य आयुष्मान् कहते हैं । कर्म ही तारक और पालक है, वह रक्षा करता है तथा सदा जागते रहता है ॥३८॥ वह मुक्तिप्रदान करने वाला होता है तथा अनुकूल स्थान प्रदान करता है । दान और पुण्य से युक्त, प्रिय वाक्य से युक्त तथा उपकार युक्त कर्म को जो करता है, तो वह शुभप्रद होता है । उस व्यक्ति का कर्म ही उसकी सदा रक्षा करता है ॥३९-४०॥ मनुष्य अपने कर्म से ही

कुञ्जल उवाच

येनैव कर्मणा चैव रक्षितश्चायुनन्दनः ॥४२॥

तस्मात्कृपान्वितो जातः सूदः कर्मवशानुगः ।
सैरन्ध्री च तथा जाता प्रेरिता तस्य कर्मणा ॥४३॥

द्वाभ्यामेव सुतश्चायो रक्षितश्चारुलक्षणः। रात्रावेव प्रणीतोऽसौ तस्माद्गेहान्महाश्रमे ॥४४॥
वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये सैरन्ध्या पुण्यकर्मणा। शुभे पर्णकुटिद्वारे तस्मिन्नेव महाश्रमे ॥४५॥

गता सा स्वगृहं पश्चान्निक्षिप्य बालकोत्तमम् ।
एवं निपात्य सूदेन पाचितं मांसमेव हि ॥४६॥

भोजयित्वा सुदैत्येन्द्रो हुण्डो हृष्टोऽभवत्तदा। शापमशोकसुन्दर्या मोघं मेने तदासुरः ॥४७॥
हर्षेण महताविष्टः सहुण्डो दानवेश्वरः। प्रभाते विमले जाते वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥४८॥
वहिर्गतो हि धर्मात्मा कुटीद्वारात्प्रपश्यति । सम्पूर्णं बालकं दृष्ट्वा दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥४९॥
सम्पूर्णेन्दुप्रतीकाशं सुन्दरं चारुलोचनम् ॥५०॥

वशिष्ठ उवाच

पश्यन्तु मुनयः सर्वे यूयमागत्य बालकम्। कस्य केन समानीतं रात्रौ द्वाराङ्गणे मम॥५१॥
नैवगन्धर्वगर्भाभं राजलक्षणसंयुतम्। कन्दर्पकोटिसङ्काशं पश्यन्तु मुनयोऽमलम्॥५२॥
महाकौतुकसंयुक्ता हृष्टा द्विजवरास्ततः। सम पश्यन्सुतं तेतु आयोश्चैव महात्मनः ॥५३॥

वसिष्ठः स तु धर्मात्मा ज्ञानेनालोक्य बालकम् ।
आयुपुत्रं समाज्ञातं चरित्रेण समन्वितम् ॥५४॥

प्रेरित होकर दूसरी योनियों में चला जाता है, उस समय उसके माता-पिता तथा स्वजन तथा बान्धव उसको नहीं वचा पाते हैं ॥४१॥ जिसको कर्म मार देता है उसको कोई भी नहीं बचा पाता है । **सूतजी ने कहा—** चूकि आयुष के पुत्र अपने कर्म से रक्षित था ॥४२॥ उसके कारण रसोइया भी कृपालु वन गया, वह कर्म के वश में पड़ गया था । उस बालक के कर्म से प्रेरित होकर सैरन्ध्री भी कृपालु बन गयी ॥४३॥ उनदोनों ने सुन्दर लक्षणों से युक्त आयुषु के पुत्र की रक्षा कर ली । उन दोनों ने रात्रि में ही उस वालक को महान् आश्रम में भेज दिया ॥४४॥ सैरन्ध्री उस बालक को वशिष्ट महर्षि के आश्रम में वालक के पुण्य कर्म के ही कारण सुन्दर पर्णकुटी के द्वार पर रखकर ॥४५॥ उसके पश्चात् अपने घर चली गयी । सूद ने मृग को मारकर मांस पकाया ॥४६॥ उसको खाकर दैत्येन्द्र हुंड प्रसन्न हो गया । उस समय उस असुर ने जान लिया कि अशोक सुन्दरी का शाप व्यर्थ हो गया ॥४७॥ दानवेश्वर हुंड अत्यन्त हर्षित हुआ **कुञ्जल ने कहा—** मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने सबेरा होने पर ॥४८॥ कुटी के द्वार के बाहर निकलकर दिव्य लक्षण से युक्त उस बालक को पूर्ण रूप से देखा ॥४९॥ वह बालक पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाला तथा मनोहर नेत्रों वाला था । **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे मुनियों ! आपलोग आकर इस बालक को देखें ॥५०॥ यह किसका पुत्र है ? इसको मेरे द्वार पर रात्रि में कौन लाया है ? इसकी कान्ति देव गन्धर्वों के समान है तथा यह राजा के लक्षण से युक्त है ॥५१॥ यह करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर है, हे मुनियों ! इसे आपलोग देखें उसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने उस बालक को अत्यन्त कौतुक से युक्त होकर देखा ॥५२॥ उन लोगों

वृत्तान्तं तस्य दुष्टस्य हुण्डस्यापि दुरात्मनः । कृपया ब्रह्मपुत्रस्तु समुत्थाय सुबालकम् ॥५५॥
कराभ्यामथ गृह्णाति यावद्द्विजवरोत्तमः । तावत्पुष्पसुवृष्टिं च चक्रुर्देवाः सुतोपरि ॥५६॥
लपितं सुस्वरं गीतं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। ऋषयो वेदमन्त्रैस्तु स्तुवन्ति नृपनन्दनम् ॥५७॥
वसिष्ठस्तं समालोक्य वरं वै दत्तवाँस्तदा। नहुषेत्येव ते नाम ख्यातं लोके भविष्यति ॥५८॥
हुषितो नैव तेनापि बालभावैर्नराधिप। तस्मान्नहुष ते नाम देवपूज्यो भविष्यसि॥५९॥
जातकर्मादिकं कर्म तस्य चक्रे द्विजोत्तमः। व्रतदात्रं विसर्गं च गुरुशिष्यादिलक्षणम् ॥६०॥
वेदं चाधीत्यसम्पूर्णं षडङ्गं सपदक्रमम् ।
सर्वाण्येव च शास्त्राणि अधीत्य द्विजसत्तमात् ॥६१॥
वसिष्ठाच्च धनुर्वेदं सरहस्यं महामतिः। शस्त्राण्यस्त्राणि दिव्यानि ग्राहमोक्षयुतानि च ॥६२॥
ज्ञानशास्त्रादिकं न्यायराजनीतिगुणादिकान्। वशिष्ठादायुपुत्रश्च शिष्यरूपेण भक्तिमान् ॥६३॥
एवं स सर्वनिष्पन्नो नहुषश्चातिसुन्दरः। वशिष्ठस्य प्रसादाच्च चापबाणधरोऽभवत् ॥६४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

ने आयुष के पुत्र को देखा । धर्मात्मा वशिष्ठ ने अपने ज्ञान के वल से बालक को देखकर ॥५३॥ जान लिया कि यह आयुष का पुत्र है और चरित्र से युक्त है । उन्होंने दुष्ट हुंड के चरित्र को भी जान लिया॥५४॥ कृपा करके महर्षि वशिष्ठ ने ज्यों ही उस बालक को अपने दोनों हाथों से उठाया ॥५५॥ उसी समय उस पर देवताओं ने फूलों की वृष्टि की और गन्धर्व तथा किन्नरों ने ललित स्वर में गीत गाया ॥५६॥ ऋषियों ने वेद मन्त्रों के द्वारा उस राजकुमार की स्तुति की यह देखकर महर्षि वसिष्ठ ने वरदान दिया ॥५७॥ कि तुम्हारी लोक में नहुष नाम प्रख्यात होगा । हे राजन् ! उस बालक ने बाल भाव के द्वारा हुषित नहीं हुआ अतएव उसका नाम नहुष हुआ । महर्षि वशिष्ठ ने उस बालक के जातकर्म इत्यादि संस्कारों को सम्पन्न किया ॥५८-५९॥ व्रत, दान उसका विसर्ग, गुरु-शिष्य आदि संस्कार सम्पन्न हुआ । उसने पद क्रम के साथ षडङ्ग वेद का अध्ययन किया ॥६०॥ सम्पूर्ण शास्त्रों को उसने द्विजाश्रेष्ठ वशिष्ठ से पढ़ा । उन महामति बालक ने महर्षि वशिष्ठ से ही रहस्य के साथ धनुर्वेद, ॥६१॥ शस्त्रों, अस्त्रों को उनसे ग्रहण किया तथा मोक्ष के प्रकार को भी साथ में पढ़ा । ज्ञान शास्त्र आदि, न्याय, राजनीति के गुण आदि को ॥६२॥ आयुष के पुत्र ने शिष्य बनाकर महर्षि वशिष्ठ से ही न्याय तथा राजनीति का अध्ययन किया । इस तरह सबसे सम्पन्न नहुष अत्यन्त सुन्दर थे । महर्षि वशिष्ठ की कृपा से वे धनुष बाण धारी हो गया ॥६३-६४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तगर्त एक सौ पाँचवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधरचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०५।।

एक सौ छठा अध्याय

कुञ्जल उवाच

आयुभार्या महाभागा स्वर्भानोस्तनया सुतम् ।
अपश्यन्ती सुबालं तं देवोपममनौपमम् ॥१॥

हाहाकारं महत्कृत्वा रुरोद वरवर्णिनी। केन मे लक्षणोपेतो हृतो बालः सुलक्षणः॥२॥
तपसा दानयज्ञैश्च नियमैर्दुष्करैः सुतः । सम्प्राप्तो हि मया वत्स कष्टैश्च दारुणैः पुनः ॥३॥
दत्तात्रेयेण पुण्येन सन्तुष्टेन महात्मना। दत्तःपुत्रो हृतः केन रुरोद करुणान्विता ॥४॥
हा पुत्र वत्स मे तात हा बाल गुणमन्दिर । क्वाऽसि केनापनीतोऽसि मम शब्दः प्रदीयताम्॥५॥
सोमवंशस्य सर्वस्य भूषणोऽसि न संशयः। केन त्वमपनीतोऽसि मम प्राणैः समन्वितः ॥६॥

राजसुलक्षणैर्दिव्यैः सम्पूर्णः कमलेक्षणः ।
केनाद्याऽपहृतो वत्सः किं करोमि क्व याम्यहम् ॥७॥
स्फुटं जानाम्यहं कर्म ह्यन्यजन्मनि यत्कृतम् ।
न्यासनाशः कृतः कस्य तस्मात्पुत्रो हृतो मम ॥८॥
किं वा छलं कृतं कस्य पूर्वजन्मनि पापया ।
कर्मणस्तस्य वै दुःखमनुभुञ्जामि नान्यथा ॥९॥

रत्नापहारिणीजाता पुत्ररत्नं हृतं मम। तस्माद्दैवेन मे दिव्य अनौपम्यगुणाकरः ॥१०॥

किं वा वितर्कितो विप्रः कर्मणस्तस्य वै फलम् ।
प्राप्तं मया न सन्देहःपुत्रशोकान्वितं भृशम् ॥११॥

राजा आयुष का इन्दुमती के साथ अपने पुत्र के वियोग में विलाप

कुञ्जल ने कहा— राहु की पुत्री तथा आयुष् की पत्नी महाभागा इन्दुमती उस देवोपम उत्तम बालक को नहीं देखकर बहुत अधिक हाय ! हाय !! की और रोने लगी । वह कह रही थी सुन्दर लक्षणों से युक्त मेरे बालक का किसने अपहरण किया है ॥१॥ मैंने तपस्या, दान तथा दुष्कर नियमों को पालन करके पुत्र को प्राप्त किया था । उसके लिए भयङ्कर कष्ट भी उठाया ॥२-३॥ पवित्र महर्षि दत्तात्रेय ने प्रसन्न मन से मुझे इस पुत्र को प्रदान किया उसका किसने अपहरण कर लिया इस तरह से कहकर वह करुण कन्दन करती थी ॥४॥ अरे पुत्र ! हे वत्स ! हे गुणाकर ! बालक तुम कहाँ हो, किसने तुम्हें चुरा लिया, मुझे तुम उत्तर दो ॥५॥ तुम सम्पूर्ण सोमवंश के भूषण हो । किसने मेरे प्राणों के साथ तुम्हारा अपहरण कर लिया ॥६॥ राजा की सम्पूर्ण सुन्दर लक्षणों से युक्त कमल के समान नेत्रों वाले हे वत्स ! किसने आज तुम्हारा अपहरण कर लिया है ? मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?॥७॥ मैं जानती हूँ कि पूर्वजन्म में जो कर्म किया गया है उसी का फल मिलता है । मैंने किसके न्यास का अपहरण किया कि मेरा पुत्र अपहृत हो गया ॥८॥ पापिनी मैंने किसके साथ छल किया कि उसके फलस्वरूप इस कष्ट को मैं भोग रही हूँ ॥९॥ मैंने किसका रत्न चुराया जो देव ने मेरे गुणों के आकार पुत्र रत्न को चुरा लिया ॥१०॥ ब्राह्मण ने उसके कर्मों के फल का किस तरह से विचार किया था । निःसन्देह मैने बहुत अधिक पुत्र शोक को प्राप्त किया है ॥११॥ मैंने पूर्व जन्म

किं वा शिशुविरोधश्च कृतो जन्मान्तरे मया ।
तस्य पापस्य भुञ्जामि कर्मणः फलमीदृशम् ॥१२॥

याचमानस्य चैवाग्रे वैश्वदेवस्य कर्मणः। किंवाऽपि नार्पितं चान्नं व्याहृतीभिर्हुतं द्विजैः ॥१३॥
एवं सुदेवमानाच्च स्वर्भानोस्तनया तदा । इन्दुमती महाभागा शोकेन करुणाकुला॥१४॥
पतिता मूर्च्छिता शोकाद्विह्वलत्वं गता सती। निःश्वासान्मुञ्चमाना सा वत्सहीना यथा हि गौः ॥१५॥

आयू राजा स शोकेन दुःखेन महतान्वितः ।
बालं श्रुत्वा हृतं तं तु धैर्यं तत्याज पार्थिवः ॥१६॥
तपसश्च फलं नास्ति नास्ति दानस्य वै फलम् ।
यस्मादेवं हृतः पुत्रस्तस्मान्नास्ति न संशयः ॥१७॥

दत्तात्रेयः प्रसादेन वरं मे दत्तवान्पुरा । अजेयं च जयोपेतं पुत्रं सर्वगुणान्वितम् ॥१८॥
तस्य वरप्रदानस्य कथं विघ्नो ह्यजायत । इति चिन्तापरो राजा दुःखितः प्रारुदद्भृशम् ॥१९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

में बालक का विरोध किया था क्या कि, उस पाप का मैं इस तरह से फल भोग रही हूँ ॥१२॥ याचना करने वाले के समक्ष वैश्वदेव कर्म के व्याहतियों के द्वारा ब्राह्मणों द्वारा होम किए गये अन्न को मैंने नहीं समर्पित किया है क्या ?॥१३॥ इस तरह से राहु की पुत्री इन्दुमती शोक संबिग्न होकर रो रही थी ॥१४॥ वह गिरकर मूर्छित हो गयी तथा शोक से विह्वल बन गयी । वह वत्स रहित गौ के समान गर्म-गर्म लम्बी श्वास ले रही थी ॥१५॥ राजा आयुष् अत्यन्त शोक सन्तप्त और दुःखी हो गये । उन्होंने बालक के अपहरण को सुनकर अपना धैर्य त्याग दिया ॥१६॥ वे सोचने लगे, चूकि इस तरह से मेरा पुत्र अपहृत हो गया, इससे लगता है कि तपस्या तथा दान का कोई फल नहीं होता है ॥१७॥ महर्षि दत्तात्रेय ने मुझे वर दिया कि अजेय, विजयी तथा गुणवान् पुत्र होगा ॥१८॥ उस वर प्रदान में विघ्न कैसे हो गया ? इस तरह से चिन्ता करते हुए राजा ने बहुत अधिक रोया ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

अथासौ नारदः स्वर्गादायुराजानमागतः । आगत्य कथायामास कस्माद्राजन्प्रशोचसे ॥१॥
पुत्रापहरणं तेऽद्य क्षेमं जातं महामते । देवादीनां महाराज ! एवं ज्ञात्वा तु मा शुचः॥२॥
सर्वज्ञः सगुणो भूत्वा सर्वविज्ञानसंयुतः । सर्वकलाभिसम्पूर्ण आगमिष्यति ते सुतः ॥३॥
येनाप्यपहृतस्तेऽद्य बालो देवगुणोपमः । आत्मगेहे महाराज कालो नीतो न संशयः॥४॥
तस्याप्यन्तं स वै कर्त्ता महावीर्यो महाबलः। स त्वामभ्येष्यते भूप शिवस्य सुतया सह ॥५॥
इन्द्रोपेन्द्रसमःपुत्रो भविष्यति स्वतेजसा। इन्द्रत्वं भोक्ष्यते सोऽपि निजैश्च पुण्यकर्मभिः॥६॥
एवमाभाष्य राजानमायुं देवर्षिसत्तमः। जगाम सहसा तस्य पश्यतः सानुगस्य ह ॥७॥
गते तस्मिन्महाभागे नारदे देवसंमिते। आयुरागत्य तां राज्ञीं तत्सर्वं विन्यवेदयत् ॥८॥
दत्तात्रेयेण यो दत्तः पुत्रो देववरोत्तमः। स वै राज्ञि कुशल्यास्ते विष्णोश्चैव प्रसादतः ॥९॥
येनाऽप्यसौ हृतः पुत्रः सगुणो मे वरानने । शिरस्तस्य गृहीत्वा तु पुनरेवाऽऽगमिष्यति ॥१०॥
इत्याह नारदो भद्रे मा कृथाःशोकमेव च । त्यज चैनं महामोहं कार्यधर्मविनाशनम्॥११॥
भर्तुर्वाक्यं निशम्यैवं राज्ञी इन्दुमती ततः । हर्षेणाऽपि समाविष्टा पुत्रस्याऽऽगमनं प्रति ॥१२॥
यथोक्तं देवऋषिणा तत्तथैव भविष्यति। दत्तात्रेयेण मे दत्तस्तनयो ह्यजरामरः॥१३॥

नारदजी का आयुष को नहुष की स्थिति का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— उसके वाद देवर्षि नारद स्वर्ग से राजा आयु के पास आये । उन्होंने आयुष् से पूछा, राजन् क्यों रो रहे हो ?॥१॥ हे राजन् ! पुत्र हरण रूपी तुम्हारा कल्याण हो गया । हे महाराज ! देवताओं आदि के द्वारा आपका कल्याण हुआ है अतएव रोइये मत ॥२॥ आपका पुत्र, सर्वज्ञ, सभी गुणों से सम्पन्न, सभी प्रकार के विज्ञानों से युक्त तथा सभी कलाओं से परिपूर्ण होकर आयेगा ॥३॥ हे देव ! जिसने आपके देवता के समान बालक का अपहरण किया है, उसने अपने घर में काल को लाकर वसा लिया है ॥४॥ वह महापराक्रमी, महावलवान् वालक इस अपहरण करने वाले का नाश करने वाला है । राजन् ! वह आपके पास शिवजी की पुत्री के साथ आयेगा ॥५॥ आपका वह पुत्र अपने तेज से इन्द्र तथा उपेन्द्र के समान होगा वह अपने पुण्य कर्मों के द्वारा इन्द्रत्व का भी भोग करेगा ॥६॥ इस तरह से राजा आयुष् को वतलाकर देवर्षि वर्य अपने अनुचरों के साथ चले गये ॥७॥ देव तुल्य महाभाग नारदजी के चले जाने पर महाराज आयुष् रानी के पास जाकर सारी बातों को वतलायें ॥८॥ हे रानी ! महर्षि दत्तात्रेय ने जो तुम्हें वरदान दिया था वह आपका पुत्र भगवान् विष्णु की कृपा से कुशल पूर्वक है ॥९॥ हे वरानने ! जिसने तुम्हारे पुत्र का अपहरण किया है उसका शिर लेकर तुम्हारा गुणवान् पुत्र आयेगा ॥१०॥ हे भद्रे ! इस तरह से नारदजी ने कहा है । अतएव शोक न करो । तुम इस कार्य तथा धर्म का विनाश करने वाले महामोह का परित्याग कर दो ॥११॥ अपने पति के इस प्रकार के वाक्य को सुनकर रानी इन्दुमती अपने पुत्र के आगमन के विषय में अत्यन्त हर्षित हो गयी ॥१२॥ देवर्शि ने जैसा कहा है वैसा ही होगा । दत्तात्रेय महर्षि ने मुझे अजर-अमर पुत्र प्रदान किया है ॥१३॥ यह निःसन्देह रूप से होगा ऐसा ही प्रतीत होता हे । इस

भविष्यति न सन्देहः प्रतिभात्येवमेव हि। इत्येवं चिन्तयित्वा तु ननाम द्विजपुङ्गवम्॥१४॥
नमोऽस्तु तस्मै परिसिद्धिदाय अत्रेः सुपुत्राय महात्मने च ।
यस्य प्रसादेन मया सुपुत्रः प्राप्तः सुधीरः सुगुणः सुपुण्यः ॥१५॥
एवमुक्त्वा तु सा देवी विरराम सुहर्षिता। आगमिष्यन्तमाज्ञाय नहुषं तनयं पुनः ॥१६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नाहुषाख्याने सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा वसिष्ठस्तपतांवरः। नहुषं तं समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥
वनं गच्छस्व शीघ्रेण वन्यमानयपुष्कलम् । समाकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नहुषो वनमाययौ ॥२॥
तत्र किंचित्सुवृत्तान्तं शुश्राव नहुषो बलः । अयमेष स धर्मात्मा नहुषो नाम वीर्यवान् ॥३॥
आयोः पुत्रो महाप्राज्ञो बाल्यान्मात्रा वियोजितः ।
अस्यैवाऽतिवियोगेन आयुभार्या प्ररोदिति ॥४॥
अशोकसुन्दरी तेपे तपः परमदुष्करम्। कदा पश्यति सा देवी पुत्रमिन्दुमती शुभा ॥५॥

तरह से सोचकर उन्होंने द्विजश्रेष्ठ को प्रणाम किया ॥१४॥ उन सिद्धि प्रदान करने वाले अत्रि महर्षि के सुपुत्र महात्मा दत्तात्रेय को नमस्कार है । उन्हीं के कृपा से सुगुण, पुण्यवान्, धैर्य सम्पन्न सुपुत्र को मैंने प्राप्त किया ॥१५॥ इस तरह से कहकर देवी इन्दुमती चुप हो गयीं । वे जान गयीं कि उनका नहुष नामक पुत्र अवश्य आयेगा ॥१६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन केप्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत नहुषाख्यान के एक सौ सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०७।।

महर्षि वसिष्ठ द्वारा अशोकसुन्दरी की तपस्या का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— महातेजस्वी ब्रह्माजी के पुत्र तपस्वियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ महर्षि नहुष को बुलाकर कहे ॥१॥ तुम शीघ्र वन में जाकर वन्य पदार्थों को पुष्कल मात्रा में लाओ । महर्षि वशिष्ठ की बातें सुनकर नहुष वन में गये ॥२॥ वहाँ पर बलवान् नहुष ने कुछ वृत्तान्त सुना । यह धर्मात्मा तथा पराक्रमी नहुष आयुष का पुत्र है । यह बाल्यकाल में अपनी माता से अलग कर दिया गया । इसके वियोग में आयुष की पत्नी रोती रहती है ॥३-४॥ अशोक सुन्दरी दुष्कर तपस्या की, इन्दुमती देवी अपने पुत्र को न जाने कब देखेगी ॥५॥ पूर्वकाल में नहुष नामक धर्मज्ञ का दानवों ने अपहरण कर लिया आयुष के पुत्र को प्राप्त करने

नहुषं नाम धर्मज्ञं हृतं पूर्वं तु दानवैः। तपस्तेपे निरालम्बा शिवस्य तनया वरा ॥६॥
अशोकसुन्दरी बाला आयुपुत्रस्य कारणात्। अनेनापि कदा सा हि सङ्गता तु भविष्यति ॥७॥
एवं सांसारिकं वाक्यं दिवि चारणभाषितम् ।
शुश्राव स हि धर्मात्मा नहुषो विभ्रमान्वितः ॥८॥
स गत्वा वन्यमादाय वसिष्ठस्याश्रमं प्रति। वन्यं निवेद्य धर्मात्मा वसिष्ठाय महात्मने ॥९॥
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या नमितकन्धरः। तमुवाच महाप्राज्ञं वसिष्ठं तपतां वरम् ॥१०॥
भगवञ्छ्रूयतां वाक्यमपूर्वं चारणेरितम्। एष वै नहुषो नाम्ना आयुपुत्रो वियोजितः ॥११॥
मात्रा सह सुदुःखैस्तु इन्दुमत्या हि दानवैः। शिवस्य तनया बाला तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥१२॥
निमित्तमस्य धीरस्य नहुषस्येति वै गुरो। एवमाभाषितं तैस्तु तत्सर्वं हि मया श्रुतम् ॥१३॥
कोऽसावायुः स धर्मात्मा का सा त्विन्दुमती शुभा ।
अशोकसुन्दरी का सा नहुषेति क उच्यते ॥१४॥
एतन्मे संशयं जातं तद्भवांश्छेत्तुमर्हति। अन्यः कोऽपि महाप्राज्ञः कुत्राऽसौ नहुषेति च ॥१५॥
तत्सर्वं तात मे ब्रूहि कारणान्तरमेव हि ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

आयू राजा स धर्मात्मा सप्तद्वीपाधिपो बली ।
भार्या इन्दुमती तस्य सत्यरूपा यशस्विनी ॥१७॥
तस्यामुत्पादितः पुत्रो भवान्वै गुणमन्दिरम्। आयुना राजराजेन सोमवंशस्य भूषणम् ॥१८॥
हरस्य कन्या सुश्रोणी गुणरूपैरलङ्कृता। अशोकसुन्दरी नाम्ना सुभगा चारुहासिनी ॥१९॥

के लिए शिव की पुत्री अशोक सुन्दरी निरालम्ब रहकर तपस्या की । न जाने कब नहुष के साथ वह होयेगी॥६-७॥ इस तरह से आकाश में चारणों ने सांसारिक वाक्य को कहा । उसके विभ्रम से युक्त धर्मात्मा नहुष ने सुना ॥८॥ वह वन्य पदार्थों को लेकर महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में नहुष गये । धर्मात्मा नहुष ने महात्मा वशिष्ठ को वन्य पदार्थ देकर ॥९॥ हाथ जोड़कर तथा भक्ति से कन्धें को झुकाकर तपस्वियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ महर्षि से कहा ॥१०॥ हे भगवन्! चारणों के द्वारा कहे गय अपूर्व वाक्य को आप सुनें, यह आयुष् का पुत्र नहुष आयुष तथा उसकी माता इन्दुमती से दानवों द्वारा अलग कर दिया गया । उसके कारण इन्दुमती और राजा दुखी हैं । शिव की पुत्री बाला अशोक सुन्दरी नहुष को प्राप्त करने के लिए दुष्कर तपस्या की, इस तरह से उन चारणों ने कहा और उन सारी बातों को मैंने सुना है ॥११-१३॥ वे आयुष कौन है ? इन्दुमती कौन है ? अशोक सुन्दरी कौन है ? और वे नहुष कौन हैं ?॥१४॥ यह मुझको संशय है कि यहाँ कोई दूसरा नहुष है ? आप मेरे संशय को दूर करें । वह महाप्राज्ञ नहुष कहाँ हैं ॥१५॥ हे तात! इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें । **वशिष्ठ महर्षि ने कहा**— आयुष् सातों द्वीपों के बलवान् राजा हैं ॥१६॥ उनकी सत्य स्वरूपा यशस्विनी पत्नी का नाम इन्दुमती है । आप इन्दुमती के ही गर्भ से बलवान् तथा गुणाकर पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥१७॥ आप राजराजेश्वर आयुष् के पुत्र हैं तथा सोमवंश के भूषण हैं । शिवजी की पुत्री सुन्दर श्रोणी प्रदेश वाली गुण तथा रूप से अलंकृत है ॥१८॥ उसका नाम अशोक सुन्दरी हैं, वह सुन्दर और मनोज्ञ हँसी वाली है । उसने तपोवन में निरालम्ब रहकर नहुष के लिए तपस्या

तस्य हेतोस्तपस्तेपे निरालम्बा तपोवने। तस्या भर्ता भवान्सृष्टो धात्रा योगेन निश्चितः ॥२०॥
गङ्गायास्तीरमाश्रित्य ध्यानयोगसमन्वितम्। हुण्डश्च दानवेन्द्रो यो दृष्ट्वा चैकाकिनीं सतीम् ॥२१॥
तपसा प्रज्वलन्तीं च सुभगां कमलेक्षणाम्। रूपौदार्यगुणोपेतां कामबाणैः प्रपीडितः ॥२२॥

तां बभाषेऽन्तिकं गत्वा मम भार्या भवेति च।
एवं सा तद्वचः श्रुत्वा तमुवाच तपस्विनी ॥२३॥
मा हुण्ड साहसं कार्षीर्मा जल्पस्व पुनः पुनः।
अप्राप्याऽहं त्वया वीर परभार्या विशेषतः ॥२४॥

दैवेन मे पुरा सृष्ट आयुपुत्रो महाबलः। नहुषो नाम मेधावी भविष्यति न संशयः ॥२५॥
देवदत्तो महातेजा अन्यथा त्वं करिष्यसि। ततः शापं प्रदास्यामि येन भस्मीभविष्यसि॥२६॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं कामबाणैः प्रपीडितः। व्याजेनापि हृता तेन प्रणीता निजमन्दिरे ॥२७॥

ज्ञात्वा तया महाभाग शप्तोऽसौ दानवाधमः।
नहुषस्यैव हस्तेन तव मृत्युर्भविष्यति ॥२८॥
अजाते त्वयि सञ्जाता वदसि त्वं यथैव तत्।
स त्वमायुसुतो वीर हृतो हुण्डेन पापिना ॥२९॥

सूदेन रक्षितो दास्या प्रेषितो मम चाश्रमम्। भवन्तं वनमध्ये च दृष्ट्वा चारणकिन्नरैः ॥३०॥
यत्तु वै श्रावितं वत्स मया ते कथितं पुनः। जहि तं पापकर्तारं हुण्डाख्यं दानवाधमम्॥३१॥
नेत्राभ्यां हि प्रमुञ्चन्तीमश्रूणि परिमार्जय। इतो गत्वा प्रपश्य त्वं गङ्गातीरं महाबलम् ॥३२॥
निपात्य दानवेन्द्रं तं कारागृहात्समानय। अशोकसुन्दरी या हि तस्या भर्ता भवस्य हि ॥३३॥

की ॥१९॥ ब्रह्माजी ने योग के द्वारा निश्चित करके आपको उसके पति के रूप में सृष्टि की है। वह गङ्गाजी के तट पर ध्यानयोग में लगी हुयी है ॥२०॥ कमल नयनी तथा तपस्या के द्वारा देदीप्यमान तथा रूप की उदारता और गुण युक्त उस सती को अकेले देखकर दानवेन्द्र हुंड कामार्त हो गया। वह उसके सन्निकट जाकर कहा कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ ॥२१-२२॥ उसकी वाणी सुनकर उस तपस्विनी ने उससे कहा— हे हुंड दुःसाहस न करो बार-बार बोलो मत ॥२३॥ हे वीर ! मैं विशेष रूप से दूसरे की पत्नी हूँ; अतएव तुम्हारे लिए अप्राप्य हूँ भाग्य ने मेरे लिए नहुष नामक मेधावी महाबलवान् आयुष के पुत्र को मेरे पति के रूप में सृष्टि की है। देवता के द्वारा प्रदत्त महातेज को तुम अन्यथा कैसे कर सकते हो ?॥२४-२५॥ मैं तुम्हें ऐसा शाप दूँगी कि तुम भस्म हो जाओगे। उसकी इस तरह से बातों को सुनकर काम के बाणों से पीड़ित हुंड ॥२६॥ उसे बहाने से अपने घर ले गया। उसके उस छल को जानकर अशोक सुन्दरी ने उसको शाप दे दिया ॥२७॥ कि तुम्हारी मृत्यु नहुष के ही हाथों होगी। यह सबकुछ तुम्हारे जन्म लेने से पहले ही हो गया जो तुम कह रहे हो ॥२८॥ हे वीर ! तुम आयुष् के पुत्र हो तुम्हारा पापी हुंड ने अपहरण कर लिया था। उसके रसोइये ने तुम्हारी रक्षा की और दासी के हाथों उसने तुमको मेरे आश्रम में भेज दिया॥२९॥ तुमको वन में देखकर चारणों और किन्नरों ने कहा— उसे मैंने तुम्हें सुना दिया ॥३०॥ तुम उस पापी हुंड नामक दैत्य को तुम मार दो और आँखों से आँसू बहाती हुयी अशोक सुन्दरी की आँसुओं को तुम पोंछो ॥३१॥ यहाँ से तुम गङ्गा तट पर जाकर उस महाबलवान् हुंड को देखों और उस दानवेन्द्र

एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रश्नस्यास्य हि कारणम् ।
आभाष्य नहुषं विप्रो विरराम महामतिः ॥३४॥
आकर्ण्य सर्वं मुनिना प्रयुक्तामाश्चर्यभूतं स हि चिन्त्यमानः ।
तस्यान्तमेकः परिकर्तुकाम आयोः सुतः कोपमथो चकार ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नाहुषाख्यानेऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

एक सौ नवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

प्रणिपत्य प्रसाद्यैव वशिष्टं तपतां वरम्। आमन्त्र्य निर्जगामाऽथ बाणपाणिर्धनुर्धरः ॥१॥
एणस्य मांसं सुविपाच्य भोजितं बालस्तया रक्षित एव बुद्ध्या ।
आयोः सुपुत्रः सगुणः सुरूपो देवोपमो देवगुणैश्च युक्तः ॥२॥
तेनैव मांसेन सुसंस्कृतेन मृष्टेन पक्वेन रसानुगेन ।
तमेव दैत्यं परिभाष्य सूदो दुष्टं सुहर्षेण व्यभोजयत्तदा ॥३॥
बुभुजे दानवो मांसं रसस्वादुसमन्वितम् । हर्षेणापि समाविष्टो जगामाशोकसुन्दरीम् ॥४॥

को मारकर अशोक सुन्दरी को उसके कारागृह से लाओ ॥३२॥ तुम अशोक सुन्दरी के पास जाकर उसके पति बनो । तुम्हारे सारे प्रश्नों का मैंने उत्तर दे दिया ॥३३॥ इस तरह से कहकर महर्षि वशिष्ठ चुप हो गये॥३४॥ महर्षि के द्वारा कहे गये और नियुक्त नहुष आश्चर्यमय बातों का चिन्तन करते हुए अकेले उस हुंड का वध करने की इच्छा से क्रोध किए ॥३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०८।।

विद्रुर नामक किन्नर का अशोक सुन्दरी को नहुष की स्थित को बतलाना

कुञ्जल ने कहा— तपस्वियों में श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ को प्रणाम करके तथा प्रसन्न करके और उनसे आज्ञा लेकर नहुष अपने हाथ में धनुष बाण धारण करके निकल पड़े ॥१॥ मेखला नामक दासी ने हिरण का मांस पकाकर हुंड को खिला दिया और अपनी सुन्दर बुद्धि के द्वरा उसने आयुष् के गुणवान् सुन्दर देवता के समान तथा देवताओं के गुणों से युक्त पुत्र की रक्षा की ॥२॥ अच्छी तरह से पकाये गये मधुर पक्वरस से युक्त मांस से सुद ने उसको नहुष का मांस बतलाकर उस दुष्ट हुंड को अच्छी तरह से भोजन कराया था ॥३॥ उस दानव ने सरस और स्वादिष्ट मांस को खाया और हर्ष से भरा हुआ वह अशोक

तामुवाच ततस्तूर्णं कामोपहतचेतनः । आयुपुत्रो मया भद्रे भक्षितः पतिरेव ते ॥५॥
मामेव भज चार्वङ्गि भुङ्क्ष्व भोगान्मनोऽनुगान् ।
किं करिष्यसि तेन त्वं मानुषेण गतायुषा ॥६॥
प्रत्युवाच समाकर्ण्य शिवकन्या तपस्विनी । भर्ता मे दैवतैर्दत्तो अजरो दोषवर्जितः ॥७॥
तस्य मृत्युर्न वै दृष्टो देवैरपि महात्मभिः । एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं दानवो दुष्टचेष्टितः ॥८॥
तामुवाच विशालाक्षीं प्रहस्यैव पुनःपुनः । अद्यैव भाक्षितं मांसमायुपुत्रस्य सुन्दरि ॥९॥
जातमात्रस्य बालस्य नहुषस्य दुरात्मनः । एवमाकर्ण्य सा वाक्यं कोपं चक्रे सुदारुणम् ॥१०॥
प्रोवाच सत्यसंस्था सा तपसा भाविता पुनः। तप एव मया तप्तं मनसा नियमेन वै ॥
आयुसुतश्चिरायुश्च सत्येनैव भविष्यति ॥११॥
इतो गच्छ दुराचार यदि जीवितुमिच्छसि। अन्यथा त्वामहं शप्स्ये पुनरेव न संशयः ॥१२॥
एवमाकर्णितं तस्याः सूदेन नृपतिं प्रति। परित्यज्य महाराज एतामन्यां समाश्रय ॥१३॥
सूदेन प्रेषितो दैत्यः स हुण्डः पापचेतनः । निर्जगाम त्वरायुक्तः स स्वां भार्यांप्रियां प्रति ॥१४॥
चेष्टितं नैव जानाति दास्या सूदेन यत्कृतम्। तस्यै निवेदितं सर्वं प्रियायै वृत्तमेव च ॥१५॥
अशोकसुन्दरी सा च महता तपसा किल । दुःखशोकेन सन्तप्ता कृशीभूता तपस्विनी ॥१६॥
चिन्तयन्ती प्रियं कान्तं तं ध्यायति पुनःपुनः ।
किं न कुर्वन्ति वै दैत्या उपायैर्विविधैरपि ॥१७॥

सुन्दरी के पास गया ॥४॥ उसके बाद कामार्त बना हुआ वह अशोक सुन्दरी से कहा— हे भद्रे ! मैंने तुम्हारे पति को खा लिया है ॥५॥ हे सुन्दरि ! तुम मेरी पत्नी बनकर अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगो। उस मरे हुए मनुष्य से तुम्हारा कौन सा लाभ होगा ?॥६॥ उसकी बात को सुनकर तपस्विनी शिव कन्या ने कहा— देवताओं ने मुझे अजर अमर और निर्दोष पति प्रदान किया है ॥७॥ उसकी मृत्यु को देवता भी नहीं देख सकते हैं । इस तरह से सुनकर दुष्ट कर्मों को करने वाले उस दानव ने ॥८॥ बार-बार जोर से हंस कर उस विशालाक्षी से कहा हे सुन्दरि ! मैंने आयुष के पुत्र नवजात शिशु दुष्ट नहुष का आज ही मांस खाया है । इसतरह से सुनकर दुष्ट कर्मों को करने वाले उस दानव ने ॥९॥ बार-बार जोर से हंसकर उस विशालाक्षी से कहा— हे सुन्दरि ! मैंने आयुष के पुत्र नवजात शिशु दुष्ट नहुष का आज ही मांस खाया है । इस तरह के वाक्य को सुनकर अशोक सुन्दरी ने भयङ्कर क्रोध किया ॥१०॥ सत्य पर स्थित तथा तपस्विनी ने कहा— मैंने मन से तथा नियम पूर्वक तपस्या की है, उस सत्य के द्वारा आयुष के पुत्र चिरायु होंगे ॥११॥ अरे दुराचारी यदि जीना चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ अन्यथा मैं तुमको पुनः शाप दूँगी॥१२॥ उसकी इस तरह की वाणी को अपने राजा के प्रति सूद ने सुना । उसने हुंड से कहा— महाराज ! इसको छोड़कर किसी दूसरी स्त्री को आप अपनाएँ ॥१३॥ सूद ने उस पापी हुंड को भेजा तो वहाँ से वह शीघ्रता पूर्वक चला गया और अपनी पत्नी के पास गया ॥१४॥ वह उस कर्म को जानता नहीं था जिस कर्म को दासी और सूद ने मिलकर किया था । उसने अपनी पत्नी को सारा वृत्तान्त बतलाया॥१५॥ **सूतजी ने कहा—** अत्यधिक तपस्या करने वाली अशोक सुन्दरी दुःख और शोक से सन्तप्त है । वह तपस्विनी अत्यन्त कमजोर हो गयी है ॥१६॥ वह अपने प्रिय पति का ही चिन्तन बार-बार करती रहती है।

उपायज्ञः सदा बुद्ध्या उद्यमेनाऽपि सर्वदा। वर्तन्ते दनुजश्रेष्ठा नानाभावैश्च सर्वदा ॥१८॥
मायोपायेन योगेन हृताऽहं पापिना पुरा। तथा स घातितः पुत्र आयोश्चैव भविष्यति ॥१९॥
यं दृष्ट्वा दैवयोगेन भवितारमनामयम्। उद्यमेनापि पश्येत किं वा नश्यति वा न वा ॥२०॥

किं वा स उद्यमः श्रेष्ठः किं वा तत्कर्मजं फलम्।
भाविर्भावः कथं नश्येत्ततो वेदः प्रतिष्ठति ॥२१॥
विशेषो भावितो देवैः स कथं चान्यथा भवेत्।
एवमेवं महाभागा चिन्तयन्ती पुनःपुनः ॥२२॥
किन्नरो विद्वरो नाम बृहद्वंशो महातनुः।
सनाभ्योऽर्धनरः कायः पक्षाभ्यां हि विवर्जितः ॥२३॥

द्विभुजो वंशहस्तस्तु हारकङ्कणशोभितः। दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो भार्यया सह चागतः ॥२४॥
तामुवाच निरानन्दां स सुतां शङ्करस्य हि। किमर्थं चिन्तसे देवि विद्वरं विद्धि चागतम् ॥२५॥
किन्नरं विष्णुभक्तं मां प्रेषितं देवसत्तमैः। दुःखमेवं न कर्तव्यं भवत्या नहुषं प्रति ॥२६॥
हुण्डेन पापचारेण वधार्थं तस्य धीमतः। कृतमेवाखिलं कर्म हृतश्चायुसुतः शुभे ॥२७॥
स तु वै रक्षितो देवैरुपायैर्विविधैरपि। हुण्ड एवं विजानाति आयुपुत्रो हतो मया ॥२८॥

भक्षितस्तु विशालाक्षी इति जानाति वै शुभे।
भवतीं श्रावयित्वा हि गतोऽसौ दानवोऽधमः ॥२९॥

स्वेन कर्मविपाकेन पुण्यस्यापि महायशः। पूर्वजन्मार्जितेनैव तव भर्त्ता स जीवति ॥३०॥

दैत्य अपने अनेक उपायों द्वरा क्या नहीं करते हैं ॥१७॥ वे अपनी बुद्धि के द्वारा उपाय को जानते हैं तथा सदा प्रयासरत भी रहते हैं। इसीलिए अनेक प्रकार के भावों के द्वारा दानव श्रेष्ठ हैं ॥१८॥ इस पापी ने माया जन्य उपाय के द्वारा पहले मेरा अपहरण किया था। उसी तरह से हो सकता हो कि यह माया द्वारा आयुष् के पुत्र को मार दिया हो। जिसको देखकर यह दैत्य योग से सुरक्षित हो जाय। उद्यम के द्वारा कौन सी वस्तु नष्ट नहीं हो सकती है ॥१९-२०॥ वह श्रेष्ठ प्रयास कौन है, उस कर्म का फल क्या हुआ ? होने वाली भावी कैसे नष्ट हो जा सकती है ? उसी पर तो वेद प्रतिष्ठत है। देवताओं द्वारा विशेष रूप से जो निश्चित किया गया है वह कैसे व्यर्थ हो सकता है ? इस तरह से वह महाभागा अशोक सुन्दरी बार-बार सोच रही थी ॥२१-२२॥ विद्वर नामक किंनर, जो विशालकाय तथा महान् वंश में उत्पन्न था उसका नाभि पर्यन्त आधा शरीर मनुष्य का था उसके पंख नहीं थे ॥२३॥ वह दो भुजाओं वाला अपने हाथ में बास लिए हुए हार तथा कंकण से सुशोभित अपने अङ्गों में दिव्य चन्दन लगाये था। अपनी पत्नी के साथ आया ॥२४॥ उसने दुःखिनी शिव की पुत्री से कहा— हे देवि ! चिन्ता क्यों करती हो ? मैं विद्वर नामक चारण हूँ ॥२५॥ मैं भगवान् विष्णु का भक्त किन्नर हूँ। मुझे श्रेष्ठ देवताओं ने भेजा है। आपको नहुष के विषय में इस प्रकार का दुःख नहीं करना चाहिए ॥२६॥ पापी हुंड का वध करने के लिए उस बुद्धिमान् आयुष् के पुत्र का सारा काम कर दिया गया है। हे शुभे ! आयुष् के पुत्र का अपहरण हो गया था ॥२७॥ देवताओं ने उसकी रक्षा अनेक उपायों से कर ली है। हुंड जनता है कि मैंने आयुष् के पुत्र का अपहरण कर लिया है ॥२८॥ वह यह जानता है कि मैंने उसे खा लिया है। आपको सुनाकर वह अधम दानव चला

पुण्यस्यापि बलेनैव येषामायुर्विनिर्मितम् । स्वार्जितस्य महाभागे नाशमिच्छन्ति घातकाः ॥३१॥
दुष्टात्मानो महापापाःपरतेजोविदूषकाः । तेषां यशोविनाशार्थंप्रपञ्चन्ति दिने दिने ॥३२॥
नानाविधैरुपायैस्ते विषशास्त्रादिभिस्ततः । हन्तुमिच्छन्ति तं पुण्यं पुण्यकर्माभिरक्षितम् ॥३३॥
पापिनश्चैवहुण्डाद्या मोहनस्तम्भनादिभिः । पीडयन्ति महापापा नानाभेदैर्बलाविलैः ॥३४॥
सुकृतस्य प्रयोगेण पूर्वजन्मार्जितेन हि । पुण्यस्यापि महाभागे पुण्यवन्तं सुरक्षितम् ॥३५॥

वैफल्यं यान्ति तेषां वै उपायाः पापिनां शुभे ।
यन्त्रतन्त्राणि मन्त्राश्च शस्त्राग्निविषबन्धनाः ॥३६॥
रक्षयन्ति महात्मानं देवपुण्यैः सुरक्षितम् ।
कर्तारो भस्मतां यान्ति स वै तिष्ठति पुण्यभाक ॥३७॥

आयुपुत्रस्य वीरस्य रक्षका देवताः शुभे । पुण्यस्य सञ्चयं सर्वे तपसां निधिमेव तु ॥३८॥
तस्माच्च रक्षितो वीरो नहुषो बलिनां वरः । सत्येन तपसा तेन पुण्यैश्च संयमैर्दमैः ॥३९॥

मा कृथा दारुणं दुःखं मुञ्च शोकमकारणम् ।
स हि जीवति धर्मात्मा मात्रा पित्रा बिना वने ॥४०॥

तपोवने वसत्येकस्तपस्विपरिपालितः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदस्य पारगः ॥४१॥

यथा शशी विराजेत स्वकलाभिः स्वतेजसा ।
तथा विराजत सोऽपि स्वकलाभिः सुमध्यमे ॥४२॥

विद्याभिस्तु महापुण्यैस्तपोभिर्यशसा तथा । राजते परवीरघ्नो रिपुहा सुरवल्लभः ॥४३॥

गया ॥२९॥ अपने पूर्वजन्म के कर्मों के परिणाम जन्य पुण्य से तुम्हारे महायशस्वी पति जीवित हैं ॥३०॥ पुण्य के बल से जिनकी आयु निर्मित है उस स्वार्जित आयु का घातक जीव नाश करना चाहते हैं ॥३१॥ वे दुष्ट महापापी और दूसरे के तेज को दूषित करते हैं ऐसे लोगों के यश का विनाश करने के लिए वे प्रतिदिन प्रपंच करते रहते हैं ॥३२॥ वे अनेक प्रकार के उपायों तथा विषय एवं शस्त्र इत्यादि के द्वारा पुण्य कर्म के द्वारा सरक्षित उस पुण्यवान् व्यक्ति को मारना चाहते हैं ॥३३॥ हुंड आदि पापी मोहन तथा स्तम्भन आदि के द्वारा बल के घमण्ड में अनेक प्रकार के उपायों के द्वारा दुःख देते हैं ॥३४॥ पुण्यकर्म करने के कारण पूर्वजन्म में अर्जित पुण्य से सुरक्षित पुण्यवान् पुरुषों के पुण्य उन महापापियों के उपायों को विफल बना देते हैं । उनके यंत्र, तंत्र, मंत्र, शस्त्र तथा अग्नि के प्रयोग तथा विष बन्धन सबों को विफल बना देते हैं ॥३५-३६॥ देवताओं के पुण्य से सुरक्षित पुरुष की वे रक्षा करते हैं । वे ऐसा कर्म करने वाले पापी भस्म हो जाते हैं, और पुण्य करने वाला व्यक्ति बचा रहता है ॥३७॥ हे शुभे ! आयुष् के वीर पुत्र की रक्षा देवता करते हैं । सभी तपस्वियों की निधि पुण्यों का संचय है ॥३८॥ इसीलिए बलवानों में श्रेष्ठ वीर नहुष सुरक्षित हैं । वे सत्य, तपस्या, दम तथा संयम से संरक्षित है ॥३९॥ तुम इस कठोर दुःख को मत करो अकारण शोक का परित्याग कर दो । अपने माता-पिता के बिना भी वन में जीवित हैं ॥४०॥ उनका पालन तपस्वी पुरुषों ने किया है, वे अनेक वन में रहते हैं । वे वेद तथा वेदान्तों के तत्त्व के ज्ञाता तथा धनुर्वेद में पारङ्गत हैं ॥४१॥ जिस तरह चन्द्रमा अपने तेज से ही अपनी कलाओं के द्वारा सुशोभित होते हैं । हे सुमध्यमे ! उसी प्रकार नहुष अपने तेज से सुशोभित होते हैं ॥४२॥ अपने शत्रुओं को मारने वाले तथा

हुण्डं निहत्य दैत्येन्द्रं त्वामेवं हि प्रलप्स्यते। त्वया सार्द्धं स्त्रिया चैव पृथिव्यामेकभूपतिः ॥४४॥
भविष्यति महायोगी यथा स्वर्गे तु वासवः। त्वं तस्मात्प्राप्स्यसे भद्रे सुपुत्रं वासवोपमम् ॥४५॥
ययातिं नाम धर्मज्ञं प्रजापालनतत्परम्। तथा कन्याशतं चापि रूपौदार्यगुणान्वितम् ॥४६॥
यासां पुण्यैर्महाराज इन्द्रलोकं प्रयास्यति। इन्द्रत्वं भोक्ष्यते देवि नहुषः पुण्यविक्रमः ॥४७॥
ययातिर्नाम धर्मात्मा आत्मजस्ते भविष्यति। प्रजापालो महाराजः सर्वजीवदयापरः ॥४८॥
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति महौजसः। बलवीर्यसमोपेता धनुर्वेदस्य पारगाः ॥४९॥
प्रथमश्च तुरुर्नाम पुरुर्नाम द्वितीयकः। कुरुर्नाम तृतीयश्च चतुर्थो वीर्यवान्यदुः ॥५०॥
एवं पुत्रा महावीर्यास्तेजस्विनो महाबलाः। भविष्यन्ति महात्मानः सर्वतेजः समन्विताः ॥५१॥
यदोश्चैव सुता वीराः सिंहतुल्यपराक्रमाः। तेषां नामानि भद्रं ते गदतः शृणु साम्प्रतम् ॥५२॥

भोजश्च भीमकश्चापि अन्धकः कुञ्जरस्तथा।
वृष्णिर्नाम सुधर्मात्मा सत्याधारो भविष्यति ॥५३॥

षष्ठस्तु श्रुतसेनश्च श्रुताधारस्तु सप्तमः। कालदंष्ट्रो महावीर्यः समरे कालजिद्बली ॥५४॥
यदोः पुत्रा महावीर्या यादवाख्या वरानने। तेषां तु पुत्राः पौत्रास्ते भविष्यन्ति सहस्रशः ॥५५॥
एवं नहुषवंशो वै तव देवि भविष्यति। दुःखमेव परित्यज्य सुखेनाऽनुप्रवर्तय ॥५६॥
समेष्यति महाप्राज्ञस्तव भर्ता शुभानने। निहत्य दानवं हुण्डं त्वामेवं परिणेष्यति ॥५७॥

दुःखजातानि सोष्णानि नेत्राभ्यां हि पतन्ति च।
अश्रूणि चेन्दुमत्याश्च संमार्जयति मानदः ॥५८॥

देवताओं के प्रिय नहुष, विद्याओं, महापुण्यों, तपस्याओं तथा यश के द्वारा सुशोभित होते हैं ॥४३॥ वे दैत्येन्द्र हुंड को मारकर तुमको प्राप्त करेंगे। वे तुम्हारे साथ पृथिवी के अकेले सम्राट होंगे ॥४४॥ वे महायोगी उसी तरह से सम्राट होंगे जिस तरह स्वर्ग में अकेले सम्राट हैं। हे भद्रे ! उनसे तुम इन्द्र के समान पुत्र को प्राप्त करोगी ॥४५॥ उसका नाम ययाति होगा, वह प्रजा का पालन करने में तत्पर रहेगा इस प्रकार उनसे तुम्हारी रूपवती तथा गुणवती सौ पुत्रियाँ होंगी ॥४६॥ उन सबों के पुण्य से तुम इन्द्रलोक जाओगी। पवित्र पराक्रम सम्पन्न महाराज नहुष इन्द्रत्व का भोग करेंगे ॥४७॥ तुम्हारा ययाति नाम का धार्मिक पुत्र होगा वह प्रजाओं का पालन करने वाला और सबों के प्रति दयालु होगा ॥४८॥ उसके महा ओजस्वी चार पुत्र होंगे। वे सब बल एवं वीर्य से सम्पन्न तथा धनुर्वेद में पारङ्गत होंगे ॥४९॥ उनमें पहले का नाम तुरु, दूसरे का नाम पुरु, तीसरे का नाम कुरु और चौथे का नाम यदु होगा ॥५०॥ इस तरह वे सभी महापराक्रमी, तेजस्वी तथा महाबलवान् तथा समस्त तेजों से सम्पन्न होंगे ॥५१॥ यदु के पुत्र वीर, तथा सिंह के समान पराक्रम वाले होंगे। उनका नाम मैं बतलाता हूँ सुनो ॥५२॥ भोज, भीम, अन्धक, कुञ्जर तथा वृष्णि। धर्मात्मा वृष्णि सत्य पर अडिग रहने वाले होंगे ॥५३॥ छठे पुत्र का नाम श्रुतसेन, सातवें का नाम श्रुतायु तथा आठवें का नाम कालदंष्ट्र होगा वे महापराक्रमी तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले होंगे ॥५४॥ हे वरानने ! यदु के पुत्र यादव कहलायेंगे। वे महापराक्रमी होंगे। उन सबों के पुत्र तथा पौत्र हजारों होंगे ॥५५॥ हे देवि ! इसतरह से तुम्हारे नहुष का वंश होगा। अतएव तुम दुःख का परित्याग करके सुखी हो जाओ ॥५६॥ हे शुभानने ! तुम्हारे महाप्राज्ञ पति आयेंगे। वे हुंड दानव को मारकर तुम्हारे

आयोश्च दुःखमुद्धृत्य स्वकुलं तारयिष्यति। सुखिनं पितरं कृत्वा प्रजापालो भविष्यति ॥५९॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं देवानां कथनं शुभे। दुःखं शोकं परित्यज्य सुखेन परिवर्त्तय॥६०॥

अशोकसुन्दर्युवाच

कदा ह्येष्यति मे भर्त्ता विहितो दैवतैर्यदि । सत्यं वदस्व धर्मज्ञ मम सौख्यं विवर्द्धय ॥६१॥

विद्वर उवाच

अचिराद् द्रक्ष्यसि भर्तारं त्वमेवं शृणु सुन्दरि ।
एवमुक्त्वा जगामाऽथ गन्धर्वो विबुधालयम् ॥६२॥
अशोकसुन्दरी सा च तपस्तेपे हि तत्र वै। कामं क्रोधं परित्यज्य लोभं चापि शिवात्मजा॥६३॥

इति श्रीपद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

आमन्त्र समुनीन्सर्वान्वसिष्ठं तपतां वरम्। समुत्सुको गन्तुकामो नहुषो दानवं प्रति ॥१॥
ततस्ते मुनयः सर्वे वसिष्ठाद्यास्तपोधनाः । आशीर्भिरभिनन्द्यैनमायुपुत्रं महाबलम्॥२॥

साथ विवाह करेंगे ॥५७॥ वे इन्दुमती के दुःख से जो गर्म-गर्म आंसू गिरते हैं उन सबों को पोंछेंगे ॥५८॥ वे आयुष् के भी दुःख को दूर करके अपने वंश का उद्धार करेंगे । वे अपने पिता को सुखी बनाकर प्रजापाल होंगे ॥५९॥ हे शुभे ! मैंने इस तरह से तुम्हे देवताओं की वाणी को पूर्ण रूप से सुना दिया । अतएव दुःख तथा शोक का परित्याग करके तुम सुख पूर्वक रहो ॥६०॥ **अशोक सुन्दरी ने कहा**— यदि देवताओं द्वारा निश्चित हो तो बतलाओ कि मेरे पति कब आयेंगे ? हे धर्मज्ञ ! आप सत्य बात बतलायें और मेरे सुख को बढ़ाये ॥६१॥ **विद्वर ने कहा**— हे सुन्दरि ! तुम सुनो । तुम शीघ्र ही अपने पति को देखोगी । इस तरह से कहकर वह गन्धर्व देवलोक में चला गया ॥६२॥ अशोक सुन्दरी वहीं पर तपस्या करती रही उस शिवपुत्री ने काम, क्रोध और लोभ का परित्याग कर दिया था ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ महात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०९।।

नहुष का हुंड को मारने के लिए हुंड के नगर में जाना

कुञ्जल ने कहा— सभी मुनियों तथा तपस्वियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ महर्षि से विदा लेकर नहुष उस दानव के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गये ॥१॥ उस समय वशिष्ठ आदि तपस्वियों ने इस महाबलवान्

आकाशे देवताः सर्वा जघ्नुर्वै दुन्दुभीमुदा। पुष्पवृष्टिं प्रचक्रुस्ते नहुषस्य च मूर्धनि ॥३॥

अथ देवः सहस्राक्षः सुरैः सार्द्धं समागतः ।
ददौ शस्त्राणि चास्त्राणि सूर्यतेजोपमानि च ॥४॥
देवेभ्यो नृप शार्दूलो जगृहे नृपसत्तम ।
तानि दिव्यानि चास्त्राणि दिव्यरूपोपमोऽभवम् ॥५॥

अथ ता देवताः सर्वाः सहस्राक्षमथाब्रुवन् । स्यन्दनो दीयतामस्मै नहुषाय सुरेश्वर ॥६॥
देवानां मतमाज्ञाय वज्रपाणिः स्वसारथिम् । आहूय मातलिं तं तु आदिदेश ततो द्विज ॥७॥
एनं गच्छ महात्मानमुद्यतां स्यन्दनेन वै। सध्वजेन महाप्राज्ञमायुजं समरोद्यतम् ॥८॥
स चोवाच सहस्राक्षं करिष्ये तव शासनम्। एवमुक्त्वा जगामाशु ह्यायुपुत्रं रणोद्यतम्॥९॥
राजानं प्रत्युवाचैवं देवराजस्य भाषितम्। विजयी भव धर्मज्ञ रथेनाऽनेन सङ्गरे॥१०॥
इत्युवाच सहस्राक्षस्त्वामेव नृपतीश्वर । जहि त्वं दानवं सङ्ख्ये तं हुण्डं पापचेतनम् ॥११॥
समाकर्ण्य स राजेन्द्रः सानन्दपुलकोद्गमः। प्रसादाद्देवदेवस्य वशिष्ठस्य महात्मनः ॥१२॥
दानवं सूदयिष्यामि समरे पापचेतनम् । देवानां च विशेषेण मम मायापचारितम्॥१३॥
एवमुक्ते महावाक्ये नहुषेण महात्मना । अथाऽऽयातः स्वयं देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥१४॥

चक्राच्चक्रं समुत्पाट्य सूर्य्यबिम्बोपमं महत् ।
ज्वलता तेजसा दीप्तं सुवृत्तारं शुभावहम् ॥१५॥
नहुषाय ददौ देवो हर्षेण महता किल ।
तस्मै शूलं ददौ शम्भुः सुतीक्ष्णं तेजसाऽन्वितम् ॥१६॥

आयुष् के पुत्र को अपने आशीर्वचनों से अभिनंदित किया ॥२॥ आकाश में देवताओं ने दुन्दुभि बजायी । उन सबों ने नहुष के शिर पर पुष्पों की वृष्टि की ॥३॥ उसके बाद देवताओं के साथ इन्द्र आये उन्होंने नहुष को सूर्य के तेज के समान अस्त्रों और शस्त्रों को प्रदान किया ॥४॥ राजश्रेष्ठ देवताओं से उन दिव्य अस्त्रों एवं शस्त्रों को नहुष ग्रहण किए और वे दिव्य रूप वाले हो गये ॥५॥ उसके बाद उन सभी देवताओं ने इन्द्र से कहा— हे सुरेश्वर ! इस नहुष को आप रथ प्रदान करें ॥६॥ देवताओं के अभिमत अर्थ को जानकर इन्द्र ने अपने सारथि मातलि को बुलाकर आदेश दिया ॥७॥ इन महात्मा को तुम ध्वज से युक्त रथ से ले जाओ, ये महाराज आयुष् के पुत्र हैं तथा युद्ध करने के लिए उद्यत हैं ॥८॥ मातलि ने कहा— मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, ऐसा कहकर मातलि शीघ्र युद्ध के लिए तैयार नहुष के पास गये॥९॥ मातलि ने नहुश को बतलाया कि इन्द्र कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! इस रथ के द्वारा आप युद्ध में विजय प्राप्त करें ॥१०॥ हे राजराजेश्वर ! इस तरह से आपको इन्द्र ने कहा है । आप युद्ध में हुंड नामक पापी दैत्य को मार दें ॥११॥ इस बात को सुनकर नहुष देवदेव की विशेष कृपा से आनन्द के मारे रोमाञ्चित हो गये॥१२॥ मैं युद्ध में जिसने विशेष रूप से देवताओं का और माया के द्वारा मेरा अपचार किया है, उस पापी दैत्य को अवश्य मारूँगा ॥१३॥ इस तरह से नहुष के द्वारा कहे जाने पर वहाँ पर स्वयं शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए श्रीभगवान् आये ॥१४॥ वे अपने चक्र से सूर्य मण्डल के समान ज्वाला से देदीप्यमान कल्याणकारी चक्र को निकाल कर नहुष को प्रदान किये । भगवान् शिव ने नहुष को अत्यन्त तीक्ष्ण तथा

तेन शूलवरेणासौ शोभते समरोद्यतः। द्वितीयः शङ्करश्चासौ त्रिपुरघ्नो यथा प्रभुः ॥१७॥
ब्रह्मास्त्रं दत्तवान्ब्रह्मा वरुणः पाशमुत्तमम्। चन्द्रतेजः प्रतीकाशं शङ्खं च नादमङ्गलम् ॥१८॥
वज्रमिन्द्रस्तथा शक्तिं वायुश्चापं समार्गणम्। आग्नेयास्त्रं तथा वह्निर्ददौ तस्मै महात्मने ॥१९॥
शस्त्राण्यस्त्राणि दिव्यानि बहूनि विविधानि च ।
ददुर्देवा महात्मानस्तस्मै राज्ञे महौजसे ॥२०॥
अथ आयुसुतो वीरो दैवतैः परिमानितः। आशीर्भिर्नन्दितश्चापि मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥२१॥
आरुरोह रथं दिव्यं भास्वरं रत्नमालिनम्। घण्टारवैः प्रणदन्तं क्षुद्रघण्टासमाकुलम् ॥२२॥
रथेन तेन दिव्येन शुशुभे नृपनन्दनः। दिवि मार्गे यथा सूर्यस्तेजसा स्वेन वै किल ॥२३॥
प्रतपंस्तेजसा तद्वद्दैत्यानां मस्तकेषु सः। जगाम शीघ्रं वेगेन यथा वायुः सदागतिः ॥२४॥
यत्रासौ दानवः पापस्तिष्ठते स्वबलैर्युतः। तेन मातलिना सार्द्धं वाहकेन महात्मना ॥२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

तेज से युक्त त्रिशूल प्रदान किया। उस त्रिशूल के द्वारा नहुष त्रिपराशुर को मारने वाले दूसरे शङ्कर के समान सुशोभित हुए ॥१५-१७॥ ब्रह्माजी ने उनको ब्रह्मास्त्र प्रदान किया और वरुण ने पाश प्रदान किया तथा चन्द्रमा के समान तेजोमय तथा मङ्गलमय ध्वनि करने वाले शंङ्ख को प्रदान किया ॥१८॥ इन्द्र ने वज्र तथा शक्ति प्रदान की, वायु ने धनुष और बाण प्रदान किया। उनको अग्निदेव ने आग्नेयास्त्र दिया ॥१९॥ तत्त्वज्ञ मुनियों ने नहुष को अपने आशीर्वर्चनों से अभिनंदित किया ॥२०-२१॥ इसके बाद नहुष रत्नों की माला से अलंकृत रथ पर सवार हुए। उस रथ में घण्टे की तथा छोटी-छोटी घंण्टियों की ध्वनि हो रही थी॥२२॥ उस दिव्य रथ से नहुष सुशोभित हुए। जिस तरह सूर्य आकाश में अपने तेज से प्रकाशित होते हैं ॥२३॥ इस तरह से नहुष दैत्यों के मस्तक पर प्रकाशित हुए। वे वायु के समान तीव्र गति से प्रस्थान किए ॥२४॥ जहाँ पर वह दानव अपनी सेना के साथ रहता था। वहाँ पर वे मातलि नामक सारथि के द्वारा पहुँचा दिए गये ॥२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

निर्गच्छमाने समराय वीरे नहुषे हि तस्मिन्सुरराजतुल्ये ।
सकौतुकामङ्गलगीययुक्ताः स्त्रियस्तु सर्वाः परिजग्मुरत्र ॥१॥

देवतानां वरा नार्यो रम्भाद्यप्सरसस्तथा । किन्नर्यः कौतुकोत्सुक्यो जगुःस्वरेणसत्तम ॥२॥
गन्धर्वाणां तथा नार्यो रूपालङ्कारसंयुताः । कौतुकाय गतास्तत्र यत्र राजा स तिष्ठति ॥३॥
पुरं महोदयं नाम हुण्डस्यापि दुरात्मनः । नन्दनोपवनैर्दिव्यैः सर्वत्र समलङ्कृतम् ॥४॥
सप्तकक्षान्वितैर्गेहैः कलशैरूपशोभितम् । सपताकैर्महादण्डैः शोभमानं पुरोत्तमम् ॥५॥
कैलासशिखराकारैः सोन्नतैर्दिवमास्थितैः । सर्वश्रियान्वितैर्दिव्यैर्भ्राजमानं पुरोत्तमम् ॥६॥
वनैश्चोपवनैर्दिव्यैस्तडागैः सागरोपमैः । जलपूर्णैः सुशोभैस्तु पद्मै रक्तोत्पलान्वितैः ॥७॥
प्राकारैश्च महारत्नैरट्टालकशतैरपि । परिखाभिः सुपूर्णाभिर्जलैः स्वच्छैः प्रशोभितम् ॥८॥
अन्यैश्चैव महारत्नैर्गजैश्चैव विराजितम् । सुनारीभिः समाकीर्णं पुरुषैश्च महाप्रभैः ॥९॥
नानाप्रभावैर्दिव्यैश्च शोभमानं महोदयम् । राजश्रेष्ठो महावीरो नहुषो ददृशे पुरम् ॥१०॥
पुरप्रान्ते वनं दिव्यं दिव्यवृक्षैरलङ्कृतम् । तद्विवेश महावीरो नन्दनं हि यथाऽमरः ॥११॥
रथेन सह धर्मात्मा तेन मातलिना सह । प्रविष्टः स तु राजेन्द्रो वनमध्ये सरित्तटे ॥१२॥
तत्र ता रूपसंयुक्ता दिव्या नार्यः समागताः । गन्धर्वा गीततत्त्वज्ञा जगुर्गीतैर्नृपोत्तमम् ॥१३॥

युद्ध के लिए उद्यत नहुष का देव स्त्रियों द्वारा सम्मान

कुञ्जल ने कहा— जिस समय इन्द्र के समान वीर नहुष युद्ध करने के लिए निकल रहे थे उस समय वहाँ मङ्गलमय गीत गाती हुयी स्त्रियाँ आयीं ॥१॥ देवताओं की रम्भा आदि अप्सराओं तथा किन्नरों की स्त्रियों ने सुन्दर स्वर से गीत को गाया ॥२॥ रत्नों तथा अलंकारों से अलंकृत गन्धर्वों की नारियाँ वहाँ गयीं जहाँ पर राजा नहुष थे ॥३॥ हुंड का वह महोदय नामक नगर सर्वत्र नन्दन वन के ही समान वन से सुशोभित था ॥४॥ सात कक्षाओं वाले गृहों तथा कलशों से तथा दण्ड युक्त पताकाओं से वह नगर सुशोभित था ॥५॥ वह उत्तम नगर कैलास पर्वत के शिखर के समान आकाश में उठी हुयी तथा सभी प्रकार की श्री से सम्पन्न पताकाओं से सुशोभित था ॥६॥ दिव्य वनों, उपवनों तथा सागर के समान जल भरे तड़ागों से जो रक्त कमलों की शोभा से युक्त थे, उन सबों के द्वारा ॥७॥ प्रकारों एवं महारत्न जटित सैकड़ों अट्टालिकाओं तथा स्वच्छ जल से परिपूर्ण परिखाओं से वह नगर सुशोभित था ॥८॥ वह दूसरे महारत्नों हाथियों तथा घोड़ों से सुशोभित था । अत्यन्त कान्ति सम्पन्न पुरुषों और नारियों से वह नगर सुशोभित था ॥९॥ अनेक प्रकार के दिव्य प्रभावों से सुशोभित महोदय नगर को श्रेष्ठ वीर राजा नहुष ने देखा ॥१०॥ देवताओं के नन्दन वन के ही समान वह दिव्य वन उस नगर के सन्निकट में विद्यमान था । उसमें महावीर नहुष ने प्रवेश किया ॥११॥ धर्मात्मा राजा नहुष मातलि तथा रथ के साथ उस वन में नदी के तट पर पहुँचे ॥१२॥ वहाँ पर वे रूपवती दिव्य नारियाँ आयीं । गीत तत्त्व के ज्ञाता गन्धर्वों ने गीतों के द्वारा राजा नहुष की प्रशंसा की ॥१३॥ सूत तथा मागध उस राजा की स्तुति करने लगे उस समय

सूताश्च मागधाः सर्वे तं स्तुवंति नृपोत्तमम्। राजानमायुपुत्रं तं भ्राजमानं यथा रविम् ॥१४॥
शुश्राव गीतमधुरं नहुषः किन्नरेरितम् ॥१५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

तदेव गानं च सुराङ्गनाभिर्गीतं समाकर्ण्य च गीतकैर्ध्रुवैः ।
समाकुला चापि बभूव तत्र सा शम्भुपुत्री परिचिन्तयाना ॥१॥
आसनात्तूर्णमुत्थाय महोत्साहेन संयुता। तूर्णं गता वरारोहा तपोभावसमन्विता॥२॥
तं दृष्ट्वा देवसङ्काशं दिव्यरूपसमप्रभम्। दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यमालाभिशोभितम् ॥३॥
दिव्यैरावरणैर्वस्त्रैः शोभितं नृपनन्दनम्। दीप्तिमन्तं यथासूर्य्यं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥४॥
किं वा देवो महाप्राज्ञो गन्धर्वो वा भविष्यति ।
किं वा नागसुतः सोऽयं किं वा विद्याधरो भवेत् ॥५॥
देवेषु नैव पश्यामि कुतो यक्षेषु जायते। अनया लीलया वीरः सहस्राक्षोऽपि जायते॥६॥

आयुष् के पुत्र नहुष सूर्य के समान प्रकाशित होते थे ॥१४॥ किन्नरों के द्वारा गाये गये गीत को राजा नहुष ने सुना ॥१५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१११॥

नहुष के प्रति अशोक सुन्दरी का आकृष्ट होकर उनको देखना

कुञ्जल ने कहा— उसी गीत को देवांगनाओं ने ध्रुव गीतों के द्वारा सुनकर गाया और उसका चिन्तन करती हुयी वह शंभु पुत्री आकुल हो गयी ॥१॥ अत्यधिक उत्साह से युक्त वह अपने आसन से शीघ्र उठकर तपोभाव से युक्त शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ नहुष थे ॥२॥ उनको देवता के समान तथा दिव्य रूप तथा कान्ति से युक्त दिव्य चन्दन से लिप्त अङ्गों वाले, दिव्य माला से सुशोभित ॥३॥ दिव्य भूषणों से सुशोभित सूर्य के समान दिव्य कान्ति से सम्पन्न एवं राजा के लक्षणों से युक्त नहुष को देखकर ॥४॥ विचार करने लगी कि ये महाप्राज्ञ कोई देवता हैं या गन्धर्व है अथवा किसी नाग के पुत्र हैं अथवा कोई विद्याधर हैं ॥५॥ देवताओं में मैंने किसी को ऐसा नहीं देखा है तो फिर ये यक्ष कैसे हो सकते हैं ? इस लीला से युक्त तो वीर इन्द्र भी रहते हैं ॥६॥ ये स्वयं शम्भु हैं क्या ? या कामदेव हैं ? अथवा ये मेरे पिता के मित्र

शम्भुरेष भवेत्किं वा किं वा चायं मनोभवः ।
किं वा पितुः सखा मे स्यात्पौलस्त्योऽयं धनाधिपः ॥७॥
एवं समाचिन्तयती च यावत्तवत्त्वरं रूपगुणाधिपा सा ।
समेत्य रम्भा सुमहासखीभिरुवाच तां शम्भुसुतां प्रहस्य ॥८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

रम्भोवाच

तप एतत्परित्यज्य किं वाऽऽलोकयसे शुभे ।
तपसः क्षरणं स्याद्वै पुरुषस्यापि चिन्तनात् ॥१॥

अशोकसुन्दर्युवाच

तपसि मे मनो लीनं नहुषस्यापि काम्यया । न मां चालयितुं शक्ता देवासुरमहोरगाः ॥२॥
एनं दृष्ट्वामहाभागे मे मनश्चलते भृशम् । रन्तुमिच्छाम्यहं गत्वा एवमुत्सुकतां गतम् ॥३॥
एवं विपर्ययश्चासीन्मनसो मे वरानने । तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि यद्यस्ति ज्ञानमुत्तमम् ॥४॥
आयुपुत्रस्य भार्याऽहं देवैः सृष्टा महात्मभिः ।
कस्मान्मे धावते चेत उत्सुकं रन्तुमेव च ॥५॥

है ? अथवा ये कुबेर हैं ॥७॥ इस प्रकार से जब श्रेष्ठ रूप और गुणों से युक्त अशोक सुन्दरी सोच रही थी उसी समय अपनी सखियों के साथ आकर रम्भा ने जोर से हँसकर उस शम्भु पुत्री से कहा ॥८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११२।।

रम्भा और अशोक सुन्दरी का नहुष के विषय में वार्तालाप

रम्भा ने कहा— हे शुभे ! तपस्या करना छोड़कर तुम यह क्या देख रही हो ? पुरुष का चिन्तन करने से तपस्या क्षीण होती हैं । **अशोक सुन्दरी ने कहा—** नहुष की कामना से मेरा मन तपस्या में लीन था । मुझे देवता, असुर और नाग भी विचलित नहीं कर सकते हैं ॥१-२॥ हे महाभागे ! इन पुरुष को देखकर मेरा मन अत्यन्त चंचल हो गया । ऐसी उत्सुकता हुयी के मेरा मन इनके पास रमण करना चाहता है ॥३॥ हे वरानने ! मेरे मन में इस प्रकार का दोष उत्पन्न हो गया । अतएव यदि तुमको इसका ज्ञान हो तो तुम मुझे इस विपर्यास का कारण बतलाओ ॥४॥ महान् देवताओं ने मेरी सृष्टि आयुष पुत्र की पत्नी के

रम्भोवाच

सर्वेष्वेव महाभागे देहरूपेषु भामिनि। वसत्यात्मा स्वयं ब्रह्म ज्ञानरूपः सनातनः ॥६॥
यद्यपि प्रक्रियाबद्धैरिन्द्रियैरूपकारिभिः। मोहपाशमयैर्बद्धस्तथा सिद्धस्तु सर्वदा ॥७॥
प्रकृतिं नैव जानाति ज्ञानविज्ञानकीं कलाम्। अयं शुद्धश्च धर्मज्ञ आत्मा वेत्ति च सुन्दरि ॥८॥
गच्छन्त्यपि मनस्तापमेनं दृष्ट्वा महामतिम्। पापमेवं परित्यज्य सत्यमेवं प्रधावति॥९॥
भर्तायमायुपुत्रस्ते एतत्सत्यं न संशयः। अन्यं दृष्ट्वा विशङ्केत पुरुषं पापलक्षणम्॥१०॥
एवं विधिः कृतो देवैः सत्यपाशेन बन्धितः।
यदस्या आयुपुत्रोऽपि भर्तृत्वमुपयास्यति ॥११॥
एवमाकर्णितं भद्रे आत्मना तं च सुन्दरि। तद्भावसत्यसम्बन्धं परिगृह्य स्थितः स्वयम् ॥१२॥
अन्यं भावं न जानाति आयुपुत्रंच विन्दति। प्रकृतिर्नैव ते देवि पतिं जानाति चागतम् ॥१३॥
एवं ज्ञात्वा प्रधानाऽऽत्मा तवाद्यैव प्रधावति। आत्मा सर्वं प्रजानाति आत्मा देवः सनातनः॥१४॥
अयमेष स वीरेन्द्रो नहुषो नाम वीर्यवान्। तस्माद्गच्छति चेतस्ते सत्यं सम्बन्धमिच्छते॥१५॥
ज्ञात्वा चायोः सुतं भद्रे अन्यं चैव न गच्छति।
एतत्ते सर्वमाख्यातं शाश्वतं त्वन्मनोगतम् ॥१६॥
हुण्डं हत्वा महाघोरं समरे दानवाधमम्। त्वां नयिष्यति स्वस्थानमायोश्च गृहमुत्तमम् ॥१७॥
हतो दैत्येन वीरेन्द्रो निजपुण्ये न शेषितः। बाल्यात्प्रभृति वीरेन्द्रो वियुक्तः स्वजनेन वै ॥१८॥
पितृमातृविहीनस्तु गतो वृद्धिं महावने। यास्यत्येव पितुर्गेहं त्वयैव सह साम्प्रतम्॥१९॥

रूप में की है किस कारण से मेरा मन इनकी ओर आकृष्ट होता है और रमण करना चाहता है ॥५॥ **रम्भा ने कहा—** हे महाभागे ! सभी शरीरों में ब्रह्मरूप से आत्मा का निवास होता है। सनातन ज्ञान स्वरूप होता है ॥६॥ यद्यपि वह प्रक्रिया, वह उपकारक तथा मोह पाश रूप इन्द्रियों से बद्ध होता है, किन्तु वह ज्ञान रूप से तो सदैव रहता है ॥७॥ प्रकृति तो ज्ञान-विज्ञान की कला को जानती नहीं है, किन्तु हे सुन्दरि ! शुद्ध तथा धर्मज्ञ आत्मा उसको जानता है ॥८॥ इन महामति को देखकर उसके कारण पाप को त्यागकर ये इन्द्रियाँ मनस्ताप को प्राप्त करती हैं ॥९॥ ये आयुष् के पुत्र तुम्हारे पति हैं, यही सत्य है, दूसरे पाप स्वरूप पुरुष को देखकर तुम्हारे मन में शङ्का अवश्य होती है ॥१०॥ देवताओं ने यह विधान बनाया है कि जो सत्य के पाश से बंधा हुआ है, वह विधि यह है कि आयुष् के पुत्र इसके पति होंगे ॥११॥ हे सुन्दरि ! इस तरह से तुम्हारी आत्मा ने सुना है उस सत्य संबन्ध रूप भाव को अपनाकर तुम्हारा आत्मा स्थित है॥१२॥ वह दूसरे भाव को नहीं जानता वह आयुष् के पुत्र को जानता है। हे देवि ! प्रकृति नहीं जानती है। तुम्हारी पति आये हुए हैं ॥१३॥ इस तरह से जानकर तुम्हारा आत्मा आज ही इनकी ओर दौड़ रहा है। आत्मा सबकुछ जानता है। आत्मा सनातन देव है ॥१४॥ ये वीरों में श्रेष्ठ पराक्रमी नहुष हैं। इसीलिए तुम्हारा मन इनकी ओर आकृष्ट होता है, वह सत्य सम्बन्ध को चाहता है ॥१५॥ हे भ्रदे ! वह आयुष् के पुत्र को जानकर दूसरे की ओर नहीं प्रवृत्त होता है। इस तरह से तुम्हारे मन में विद्यमान शाश्वत सारी बातों को मैंने बतला दिया ॥१६॥ ये युद्ध में भयङ्कर दानवाधम हुंड को मारकर तुमको आयुष के उत्तम गृह में ले जायेंगे ॥१७॥ इनका तो हुंड ने अपहरण कर लिया था, ये अपने पुण्य से बचे रहे। ये वीर बाल्यकाल

एवमाभाषितं श्रुत्वा रम्भायाः शिवनन्दिनी । हर्षेण महताऽऽविष्टा तामुवाच समुद्रजाम् ॥२०॥
अयमेव स सत्यात्मा मम भर्ता सुवीर्यवान् । मनो मे धावतेऽत्यर्थं शोकाकुलितविह्वलम् ॥२१॥
नास्ति चित्तसमो देवो जानाति सुविनिश्चतम् ।
सत्यमेतन्मया दृष्टं सुचित्रं चारुहासिनि ॥२२॥
मनोभवसमानं तु पुरुषं दिव्यलक्षणम् । न धावति महाचेत एनं दृष्ट्वा यथा सखि ॥२३॥
तथा न धावते भद्रे पुंसमन्यं न मन्यते । एनं गन्तव्यमावाभ्यां सखीभिर्गृहमेव हि ॥२४॥
एवमाभाष्य सा रम्भा गमनायोपचक्रमे । गमनायोत्सुकां ज्ञात्वा नहुषस्यान्तिकं प्रति ॥२५॥
तामुवाच ततो रम्भा कस्माद्देवि न गम्यते ॥२६॥

कुञ्जल उवाच

सख्या च रम्भया सार्द्धं नहुषं वीरलक्षणम् ।
तस्यान्तिकं सुसम्प्राप्य प्रेषयामास तां सखीम् ॥२७॥
एनं गच्छ महाभागे नहुषं देवरूपिणम् । कथयस्व कथामेतां तवार्थे आगता यतः ॥२८॥

रम्भोवाच

एवं सखि करिष्यामि सुप्रियं तव सुव्रते । एवमुक्त्वा गता रम्भा नहुषं राजनन्दनम् ॥२९॥
चापबाणधरं वीरं द्वितीयमिव वासवम् । प्रत्युवाच गता रम्भा सख्या वचनमुत्तमम् ॥३०॥
आयुपुत्र ! महाभाग ! रम्भाऽहं समुपागता ।
शिवस्य कन्यया वीर तयाहं परिप्रेषिता ॥३१॥

से ही अपने स्वजनों से वियुक्त रहे ॥१८॥ माता-पिता से रहित होकर ये वन में बड़े हुए, अब ये तुम्हारे साथ ही अपने पिता के घर जायेंगे ॥१९॥ इस तरह से रम्भा की बातों को सुनकर शिवपुत्री ने अत्यन्त हर्ष से आविष्ट होकर उस समुद्र पुत्री को कहा ॥२०॥ सत्य है कि ही मेरे पति है, शोक से व्याकुल मेरा मन इनकी ओर अत्यधिक दौड़ रहा है ॥२१॥ चित्त के समान सुनिश्चित वस्तु को जानने वाला कोई देवता नहीं है । हे चारुहासिनि ! मैंने इस विचित्र सत्य को देखा है ॥२२॥ कामदेव के समान दिव्य लक्षण से सम्पन्न पुरुष को भी देखकर मेरा मन उसकी ओर नहीं आकृष्ट होता है, जैसा कि इनकी ओर आकृष्ट होता है॥२३-२४॥ इस तरह सारभाग को बतलाकर वह रम्भा अशोक सुन्दरी को नहुष के पास जाने के लिए उत्सुक जानकर जाने लगी ॥२५॥ रम्भा ने अशोक सुन्दरी को कहा— हे देवि ! क्यों नहीं जाती हो । **सूतजी ने कहा—** अपनी सखी रम्भा के साथ वीर नहुष के पास जाकर अशोक सुन्दरी ने रम्भा को उनके पास भेजा । उसने कहा— हे महाभागे ! तुम देवता के समान रूप वाले इनके पास जाओ ॥२६-२७॥ उनको सारी बातो को बतलाओं कि मैं उनके पास आयी हूँ । **रम्भा ने कहा—** हे सखि ! हे सुव्रते ! मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगी ॥२८॥ इस तरह से कहकर रम्भा, राजकुमार नहुष के पास गयी । उस समय धनुष बाण धारण किए हुए नहुष दूसरे इन्द्र के समान प्रतीत होते थे ॥२९॥ वहाँ जाकर रम्भा ने अपनी सखी की बातों को बतलाया । हे महाभाग ! आयुष् पुत्र ! मैं रम्भा आपके पास आयी हूँ ॥३०॥ हे वीर! आपके पास मुझे शिव की पुत्री ने प्रेषित किया है । पूर्वकाल में देवाराध्य भगवान् शिव और पार्वती ने आपके लिए पत्नी रूपी श्रेष्ठ वरदान की सृष्टि की, वह संसार में दुर्लभ है । वह श्रेष्ठ मनुष्यों, इन्द्र आदि

तवार्थं देवदेवेन देव्या देवेन वै पुरा। भार्यारूपं वरं श्रेष्ठ सृष्टं लोकेषु दुर्लभम् ॥३२॥
दुष्प्राप्यं तु नरश्रेष्ठैर्देवैस्सेन्द्रैस्तपोधनैः। गन्धर्वैः पन्नगैः सिद्धैश्चारणैः पुण्यलक्षणैः॥३३॥
स्वयमेव समायातं तवार्थे शृणु साम्प्रतम्। स्त्रीरत्नं तन्महाप्राज्ञ सम्पूर्णं पुण्यनिर्मितम्॥३४॥
अशोकसुन्दरीनाम तवार्थं तपसि स्थिता। अत्यर्थं तु तपस्तप्तं भवन्तमिच्छते सदा॥३५॥
एवं ज्ञात्वा महाभाग भजमानां भजस्व हि। त्वामृते सा वरारोहा पुरुषं नैव याचते॥३६॥
नहुषेण तयोक्तं तु श्रुत्वाऽवधारितं वचः। प्रत्युत्तरं ददौ चाथ रम्भे मे श्रूयतां वचः॥३७॥
तत्तु सर्वं विजानामि यत्त्वयोक्तं ममाग्रतः। ममाग्रे कथितं पूर्वं वसिष्ठेन महात्मना॥३८॥
सर्वमेव विजानामि अस्यास्तु तप उत्तमम्। श्रूयतां कारणं भद्रे यथा सौख्यं भविष्यति॥३९॥
अहत्वा दानवं हुण्डं न गच्छामि वराङ्गनाम्। सर्वमेतत्सुवृत्तान्तमहं जाने तथैव हि॥४०॥
ममार्थे तवसम्भूतिस्तपश्च चरितं त्वया। मम भार्या न सन्देहो भवती विधिना कृता॥४१॥
ममार्थे निश्चयं कृत्वा तप आचरितं त्वया। हृता तस्मात्सुपापेन भवती नियमान्विता॥४२॥
सूतिगृहादहं तेन दानवेनाऽधमेन वै। बालभावस्थितो देवि पितृमातृविना कृतः॥४३॥
तस्मात्तं तु हनिष्यामि हुण्डं वै दानवाधमम्। पश्चात्त्वामुपनेष्येऽहं वशिष्ठस्याश्रमं प्रति॥४४॥
एवं कथय भद्रं ते रम्भे मत्प्रियकारिणीम्। एवं विसर्जिता तेन सत्वरं सा गता पुनः॥४५॥
अशोकसन्दरीं देवीं कथयामास तस्य च। समासेन तथा सर्वं रम्भा सा द्विजसत्तम॥४६॥

देवताओं, तपस्वियों, गन्धर्वों, पन्नगों, सिद्धों तथा चारणों के लिए भी दुष्प्राय है। वह आपके पास स्वयं ही आयी हैं। हे महाप्राज्ञ! वह सम्पूर्ण पुण्यों से निर्मित स्त्री रत्न है। उसका नाम अशोक सुन्दरी है, और आपके लिए तपस्या करती है ॥३१-३४॥ वह सदा आपको प्राप्त करना चाहती है, उसने अत्यधिक तपस्या की है। इस बात को जानकर हे महाभाग! आपको चाहने वाली उसको आप अपनाएँ ॥३५॥ वह सुन्दरी आपको छोड़कर किसी दूसरे पुरुष की कामना नहीं करती है। नहुष ने उस वाणी को सुनकर निश्चय किया ॥३६॥ उत्तर देते हुए नहुष ने कहा— रम्भे! मेरी बात सुनो। तुमने जो कहा है उन सारी बातों को मैं जानता हूँ ॥३७॥ इस बात को मुझे महर्षि वशिष्ठ ने बतलाया है। उसकी उत्तम तपस्या के विषय में मैं सारी बातों को जातना हूँ ॥३८॥ हे भद्रे! जिस तरह से कल्याण हो उन सारी बातों को तुम सुनो। मैं हुंड को मारे बिना उस सुन्दरी के समक्ष नहीं जा सकता हूँ ॥३९॥ इस सारे वृत्तान्त को मैं उसी तरह से जानता हूँ जैसा कि तुमने कहा है। मेरे लिए तुमने तपस्या की है, तुम्हारी मेरे लिए संभूति है ॥४०॥ निश्चित है कि ब्रह्माजी ने तुम्हें मेरी पत्नी बनाया है और मेरे लिए ही निश्चय करके तुमने तपस्या की है॥४१॥ नियम से युक्त तुम्हारा पापी हुंड ने हरण किया था। उस अधम दानव ने प्रसूती गृह से ही मेरा भी अपहरण कर लिया था ॥४२॥ हे देवि! बचपन मैंने माता-पिता के बिना ही वन में बिताया। अतएव उस दानवाधम हुंड का वध मैं करूँगा ॥४३॥ उसके बाद मैं आपको महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में ले चलूँगा। हे रम्भे! इस तरह से तुम मेरी प्रियतमा को जाकर बतला दो ॥४४॥ इस तरह से भेजी गयी रम्भा शीघ्र ही अशोक सुन्दरी के पास चली गयी। और सारी बातों को उसने बतलाया ॥४५॥ रम्भा ने सारी बातों को संक्षेप में बतलाया। अशोक सुन्दरी वीर नहुष की उस सुभाषित को निश्चित करके ॥४६॥ अत्यन्त हर्ष हुयी

अशोकसुन्दरी सा तु अवधार्य सुभाषितम्। नहुषस्य सुवीरस्य हर्षेण च समन्विता ॥४७॥
तस्थौ तत्र तया सार्द्धं सुसख्या रम्भया तदा ।
भर्तुश्च कीदृशं वीर्यमिति पश्यामि वै सदा ॥४८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

अथ ते दानवाः सर्वे हुण्डस्य परिचारकाः। नहुषस्यापि संवादं रम्भया तु यथाश्रुतम् ॥१॥
आचचक्षुश्च दैत्येन्द्रं हुण्डं सर्वं सुभाषितम्। तमाकर्ण्य स चुक्रोध दूतं वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥२॥
गच्छ वीर ममादेशाज्जानीहि पुरुषं हितम्। सम्भाषते तया सार्द्धं पुरुषः शिवकन्यया॥३॥
स्वामिनिर्देशमाकर्ण्य जगाम लघुदानवः। विविक्ते नहुषं वीरमिदं वचनमब्रवीत्॥४॥
रथेन साश्वसूतेन दिव्येन परितिष्ठसि। धनुषा दिव्यबाणैस्तु सभायां हि भयङ्करः ॥५॥
कस्य केन तु कार्येण प्रेषितः केन वै भवान् ।
अनया रम्भया तेऽद्य अन्यथा शिवकन्यया ॥६॥
किमुक्तं तत्स्फुटं सर्वं कथयस्व ममाऽग्रतः। हुण्डस्य देवमर्दस्य न बिभेति भवान्कथम्॥७॥

वह वहीं पर अपनी सखी रम्भा के साथ स्थित रहीं ॥४७॥ इस अभिलाषा से वह वहाँ स्थित थी कि मैं देखूँ कि मेरे पतिदेव का पराक्रम किस प्रकार का है ॥४८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवनचरित्रान्तर्गत एक सौ तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११३॥

हुण्ड के दूत का नहुष के साथ वार्तालाप

कुञ्जल ने कहा— हुंड के परिचारकों ने रम्भा तथा नहुष के संवाद को पूर्णरूप से सुना था ॥१॥ वे सब जाकर सारी बातों को हुंड को बतलाये। उसको सुनकर हुंड अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२॥ उसने कहा— हे वीर ! जाओ और पता लगाओ कि जो पुरुष शिव कन्या के साथ बातें करता है वह पुरुष कौन है ?॥३॥ अपने स्वामी का आदेश पाकर वह दानव शीघ्र गया और उसने एकान्त में वीर नहुष से कहा॥४॥ आप दिव्य रथ तथा घोड़े के साथ यहाँ पर विद्यमान हैं। आप भयङ्कर दिव्य धनुष बाण धारण किए हुए हैं ॥५॥ आपको यहाँ पर किसने किस कार्य से भेजा है ? आपने इस रम्भा तथा शिवकन्या के साथ ॥६॥ कौन सी बात की है ? इसे स्पष्ट रूप से बतलायें। आप देवताओं का मर्दन करने वाले हुंड

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यदि जीवितुमिच्छसि। सत्वरं गच्छ मा तिष्ठ दुःसहो दानवाधिपः ॥८॥

नहुष उवाच

योऽसावायुर्बली राजा सप्तद्वीपाधिपः प्रभुः। तस्य मां तनयं विद्धि सर्वदैत्यविनाशनम् ॥९॥
नहुषं नाम विख्यातं देवब्राह्मणपूजकम्। हुण्डेनापहृतं बाल्ये स्वामिना तव दानव॥१०॥
सेयं कन्या शिवस्यापि दैत्येनापहृता पुरा। घोरं तपश्चरत्येषा हुण्डस्यापि वधाय च ॥११॥

योऽहमादौ हृतो बालस्त्वया यः सूतिका गृहात् ।
दास्या अपि करे दत्तः सूदस्यापि दुरात्मना ॥१२॥

वधार्थं श्रूयतां पाप सोऽहमद्य समागतः। अस्यापि हुण्डदैत्यस्य दुष्टस्य पापकर्मणः॥१३॥
अन्यांश्च दानवान्घोरान्नयिष्ये यमसादनम् । मामेवंविद्धि पापिष्ठ ! एवं कथयदानवम् ॥१४॥
एवमाकर्ण्य तत्सर्वं नहुषास्यमहात्मनः । गत्वा हुण्डंस दुष्टात्मा आचचक्षेऽस्यभाषितम् ॥१५॥
निशम्य तन्मुखात्तूर्णं चुक्रोध दितिजेश्वरः । कस्मात्सूदेन पापेन यदा दास्या न घातितः ॥१६॥

सोऽयं वृद्धिं समायातो मया व्याधिरूपेक्षितः ।
अथैनं घातयिष्यामि अनया शिवकन्यया ॥१७॥
आयोः पुत्रं खलं युद्धे बाणैरेभिः शिलाशितैः ।
एवं सचिन्तयित्वा तु सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
स्यन्दनं योजयस्व त्वं तुरगैः साधुभिः शिवैः ।
सेनाध्यक्षं समाहूय इत्युवाचसमातुरः ॥१९॥

सज्जतां मम सैन्यं त्वं शूरान्नागान्प्रकल्पय । सारोहैस्तुरगान्योधान्पताकाच्छत्रचामरैः ॥२०॥

से क्यों नहीं डरते हैं ?॥७॥ आप यदि जीवित रहना चाहते हैं तो इन सारी बातों को मुझे बतलायें आप शीघ्र यहाँ ये चले जायँ दानवेन्द्र बहुत बड़े वीर हैं ॥८॥ **नहुष ने कहा—** जो महाबलवान् महाराज आयुष् सातों द्वीपों के स्वामी हैं, मैं उनका पुत्र नहुष हूँ तथा सभी दैत्यों का विनाश करने वाला हूँ ॥९॥ मैं देवता और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला नहुष के नाम से विख्यात हूँ । तुम्हारे स्वामी हुंड ने बाल्यावस्था में मेरा अपहरण कर लिया था ॥१०॥ उसने पहले इस शिवकन्या का भी अपहरण किया था । हुंड का नाश करने के लिए इसने घोर तपस्या की है ॥११॥ तुमने जो मुझ बालक का प्रसूतीगृह से अपहरण किया था उसको इस दुष्ट ने दासी और रसोइये के हाथ में मेरा वध करने के लिए दिया था । वही मैं आज आया हूँ । पापी दुष्ट दैत्य हुंड को तथा जो दूसरे घोर दैत्य हैं उन सबों को मैं मारूँगा । अरे पापी ! मुझे इसी तरह का जानो और उस दानवाधम को जाकर बतला दो ॥१२-१४॥ इस तरह से नहुष की बातों को सुनकर उसने सारी बातें जाकर हुंड को बतलाया ॥१५॥ इस बात को सुनकर दानवेश्वर हुंड ने क्रोध किया कि उस दासी तथा रसोइये ने उसको क्यों नहीं मारा ?॥१६॥ मैंने उसकी अपेक्षा कर दी और वह अब रोग के समान बढ़ गया है । अब मैं इस शिवकन्या के साथ इसको मारूँगा ॥१७॥ दुष्ट आयुष् के पुत्र को मैं शिला के समान तीक्ष्ण बाणों से मारूँगा । इस तरह से विचार करके उसने सारथि से कहा ॥१८॥ तुम अच्छे घोड़ों से मेरे रथ को तैयार करो । उसने सेनापति को बुलाकर आतुर होकर कहा ॥१९॥ तुम मेरी सेना को तैयार करो और वीर हाथियों को एवं घुड़सवार वीरों को पताका तथा छत्र के साथ तैयार करो ॥२०॥ तुम शीघ्र

चतुरङ्गबलं मेऽद्य योजयस्व हि सत्वरम्। एवमाकर्ण्य तत्तस्य हुण्डस्यापि ततो लघुः ॥२१॥
सेनाध्यक्षो महाप्राज्ञः सर्वं चक्रे यथाविधि । चतुरङ्गेन तेनाऽसौ बलेन महताऽऽवृतः ॥२२॥
जगाम नहुषं वीरं चापबाणधरं रणे। इन्द्रस्य स्यन्दने युक्तं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥२३॥
उद्यन्तं समरे वीरं दुरापं देवदानवैः । पश्यन्ति गगने देवा विमानस्था महौजसः॥२४॥
तेजोज्वालासमाकीर्णं द्वितीयमिव भास्करम्। अथ ते दानवाः सर्वे ववृषुस्तं शरोत्तमैः॥२५॥
खड्गैः पाशैर्महाशूलैःशक्तिभिस्तु पाश्वधैः । युयुधुः संयुगे तेन नहुषेण महात्मना॥२६॥
संरब्धा गर्जमानास्ते सथा मेधा गिरौ तथा। तद्विक्रमं समालोक्य आयुपुत्रः प्रतापवान् ॥२७॥
इन्द्रायुधसमं चापं विस्फार्य सगुणस्वरम् । वज्रस्फोटसमः शब्दश्चापस्यापि महात्मनः ॥२८॥
नहुषेण कृतो विप्रा दानवानां भयप्रदः । महता तेन घोषेण दानवाः प्रचकम्पिरे ॥२९॥
कश्मलाविष्टहृदया भग्नसत्वा महाहवे ॥३०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

मेरी चतुरङ्गिणी सेना को सजाओ । इस तरह से हुंड के आदेश को सुनकर उसी के अनुसार शीघ्र सबकुछ कर दिया । उस चतुरङ्गिणी सेना के साथ हुंड ॥२१-२२॥ युद्ध में धनुष बाण धारण करने वाले इन्द्र के रथ पर बैठे हुए सभी शस्त्रों को धारण करने वाले ॥२३॥ युद्ध करने के लिए तैयार तथा देवों तथा दानवों के लिए दुष्प्राय वीर नहुष के पास गया उस समय आकाश में स्थित देवगण नहुष को देख रहे थे ॥२४॥ नहुष तेज की ज्वाला से परिपूर्ण थे । वे दूसरे सूर्य के समान प्रतीत होते थे । **सूतजी ने कहा—** इसके बाद वे सभी दानव नहुष के ऊपर श्रेष्ठ बाणों की वर्षा किए । खड्ग, पाश, शूल, शक्ति तथा फरसा से उन सबों ने नहुष से युद्ध किया ॥२५-२६॥ वे सबके सब गर्जना कर रहे थे और उसी तरह से नहुष के ऊपर बाणों की वर्षा कर रहे थे जिस तरह मेघ पर्वत पर वर्षा करते हैं । उस पराक्रम को देखकर प्रतापी नहुष ने ॥२७॥ इन्द्र धनुष के समान धनुष का टंकोर किया । उनके धनुष का शब्द वज्रस्फोट के समान होता था ॥२८॥ वे दानवों को भयभीत करने वाले उस धनुष के टंकोर किए । उससे सभी दानव भयभीत हो गये ॥२९॥ उस महायुद्ध में उन सबों का हृदय काँप गया ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।११४।।

एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

ततस्त्वसौ संयति राजमानः समुद्यतश्चापधरो महात्मा ।
यथैव कालः कुपितः सलोकान्संहर्तुमैच्छत्तु तथा सुदानवान् ॥१॥
महास्त्रजालै रवितेजतुल्यैः सुदीप्तिमद्भिर्निजघान दानवान् ।
वायुर्यथोन्मूलयतीह पादपांस्तथैव राजा निजघान दानवान् ॥२॥
वायुर्यथा मेघचयं च दिव्यं सञ्चालयेत्स्वेन बलेन तेजसा ।
तथा स राजा असुरान्मदोत्कटाननाशयद्बाणवरैः सुतीक्ष्णैः ॥३॥
न शेकुर्दानवाः सर्वे बाणवर्षं महात्मनः। मृताः केचिद्द्रुताः केचित्केचिन्नष्टा महाहवात् ॥४॥
महातेजं महाप्राज्ञं महादानवनाशनम्। चुक्रोध हुण्डो दुष्टात्मा दृष्ट्वा तं नृपनन्दनम् ॥५॥
स्थितो गत्वेदमाभाष्य तिष्ठ तिष्ठेति चाहवे ।
त्वामद्य च नयिष्यामि आयुपुत्र ! यमान्तिकम् ॥६॥

नहुष उवाच

स्थितोऽस्मि समरे पश्य त्वामहं हन्तुमागतः ।
अहं त्वां तु हनिष्यामि दानवं पापचेतनम् ॥७॥
इत्युक्त्वा धनुरादाय बाणानाग्निशिखोपमान्। छत्रेण ध्रियमाणेन शुशुभे सोऽपि संयुगे ॥८॥
इन्द्रस्य सारथिं दिव्यं मातलिं वाक्यमब्रवीत् ।
वाहयतु रथं मेऽद्य हुण्डस्य संमुखं भवान् ॥९॥
इत्युक्तस्तेन वीरेण मातलिर्लघुविक्रमः। तुरङ्गांश्चोदयामास महावातजवोपमान्॥१०॥

हुण्ड और नहुष का परस्पर में युद्ध

कुञ्जल ने कहा— उसके बाद युद्ध में सुशोभित होने वाले नहुष धनुष धारण करके तैयार हो गये। वे उसी तरह से दानवों पर कोप किए लगता था कि वे क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण लोगों को मारना चाहते हों॥१॥ सूर्य के समान तेज वाले देदीप्यमान महान् अस्त्र समूह से उन्होंने दानवों का वध किया जिस तरह से वायु वृक्षों को उखाड़ फेंकता है, उसी तरह से उन्होंने दानवों का वध किया ॥२॥ जिस तरह वायु दिव्य मेघ समूह को अपने तेज तथा बल से उड़ा देता है, उसी तरह से राजा नहुष अपने तीक्ष्ण धार वाले बाणों से दानवों का नाश किए ॥३॥ उनके बाणों की वर्षा को वर्दास्त करने में दानव समर्थ नहीं थे । कुछ मर गये, कुछ भाग गये और कुछ उस महायुद्ध में विनष्ट हो गये ॥४॥ **सूतजी ने कहा—** महातेजस्वी, दानवों का विनाश करने वाले महात्मा नहुष को देखकर हुंड ने भयङ्कर क्रोध किया ॥५॥ वह उनके समक्ष जाकर ठहरो-ठहरो कहकर वह स्थित हो गया । उसने कहा कि तुम आयुष् के पुत्र को आज मैं यमलोक भेज रहा हूँ ॥६॥ **नहुष ने कहा—** देखों मैं युद्ध में स्थित हूँ और आज मैं तुमको मारने के लिए आ गया हूँ । तुम पापी दानव को मैं आज मारूँगा ॥७॥ इस तरह से कहकर धनुष तथा अग्नि की ज्वाला के समान बाणों को लेकर तथा अपने ऊपर लगाये गये छत्र के द्वारा वे भी युद्ध में सुशोभित हुए । उन्होंने इन्द्र के दिव्य सारथि

उत्पेतुश्च ततो बाहा हंसा इव यथाम्बरे। छत्रेण इन्दुवर्णेन रथेनाऽपि पताकिना ॥११॥
नभस्तलं तु सम्प्राप्य यथा सूर्यो विराजते। आयुपुत्रस्तथा सङ्ख्ये तेजसा विक्रमेण तु ॥१२॥
अथ हुण्डो रथस्थोऽपि राजमानः स्वतेजसा ।
सर्वायुधैश्च संयुक्तस्तद्वद्वीरव्रते स्थितः ॥१३॥
उभयोर्वीरयोर्युद्धं देवविस्मयकारकम् । तदा आसीन्महाप्राज्ञ दारुणं भीतिदायकम्॥१४॥
सुबाणैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलीमुखैः ।
हुण्डेन ताडितो राजा सुबाह्वोरन्तरे तदा ॥१५॥
सुभाले पञ्चभिर्बाणैर्विद्धः क्रुद्धोऽभवत्तदा । स विद्धस्तु तदाबाणैरधिकं शुशुभे नृपः ॥१६॥
सारुणः करमालाभिरुदयश्च दिवाकरः । रुधिरेण तु दिग्धाङ्गो हेमबाणैस्तनुस्थितैः ॥१७॥
सूर्यवच्छोभते राजा पूर्वकालस्य चाम्बरे। दृष्ट्वा तु पौरुषं तस्य दानवं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षणं दैत्य पश्य मे लाघवं पुनः ।
इत्युक्त्वा तु रणे दैत्यं जघान दशभिः शरैः ॥१९॥
मुखे भाले हतस्तेन मूर्च्छितो निपपात ह । पश्यमानैः सुरैर्दिव्यै रथोपरि महाबलः ॥२०॥
देवैश्चचारणैः सिद्धैः कृतः शब्दः सुहर्षजः। जयजयेति राजेन्द्र ! शङ्खान्दध्मुः पुनः पुनः ॥२१॥
सकोलाहलशब्दस्तु तुमलो देवतेरितः। कर्णरन्ध्रमाविवेश हुण्डस्य मूर्छितस्य च ॥२२॥
श्रुत्वा स धनुरादाय बाणमाशीविषोपमम् ।
स्थीयतां स्थीयतां युद्धे न मृतोऽस्मि त्वयाःहतः ॥२३॥

मातलि से कहा आप मेरे रथ को हुंड के सामने ले चलें ॥८-९॥ इस तरह से नहुष के कहने पर मातलि ने महावायु के समान वेग वाले घोड़ों को हाँका ॥१०॥ जिस तरह आकाश में हंस उड़ रहे हो उसी तरह से वे घोड़े चन्द्रमा के समान कान्ति वाले तथा पताका से सुशोभित रथ के साथ आकाश में उड़ चले॥११॥ जिस तरह आकाश में सूर्य शोभित होते हैं उसी तरह नहुष भी युद्ध में तेज तथा पराक्रम से सुशोभित होते थे ॥१२॥ रथ पर बैठा हुआ हुंड भी अपने तेज से सुशोभित होता था । वह वीरव्रत में स्थित तथा सभी प्रकार के आयुधों को लिए हुए था ॥१३॥ हे महाप्राज्ञ ! उस समय का दोनों वीरों का भयङ्कर तथा भयभीत कर देने वाला युद्ध देवताओं को भी विस्मित कर देने वाला था ॥१४॥ हुण्ड ने राजा नहुष के भुजाओं के बीच में कंक पत्र से युक्त बाणों के द्वारा प्रहार किया ॥१५॥ उनके ललाट में उसने पाँच बाणों से प्रहार किया । उस समय नहुष क्रुद्ध हो गये । बाणों से विद्ध नहुष अत्यधिक शोभित होते थे ॥१६॥ शरीर में विद्यमान सुवर्ण बाणों के कारण खून से भिंगे हुए अङ्गों वाले नहुष अरुण वर्ण के किरण सहूह से युक्त आकाश में उदित होने वाले प्रातःकालीन सूर्य के समान सुशोभित होते थे । दानव के पौरुष को देखकर नहुष ने कहा ॥१७-१८॥ दैत्य ठहरो ! अब तुम मेरी क्षिप्रता को देखो । यह कहकर उन्होंने हुंड को दश बाणों से मारा । बाणों से मुख तथा ललाट में मारे जाने के कारण वह मूर्छित होकर गिर पड़ा । रथ पर विद्यमान महाबलवान् नहुष को देखकर दिव्य देवताओं ने हर्ष पूर्वक उनका जय-जयकार किया और बार-बार शंङ्खों को बजाया ॥१९-२१॥ देवताओं के द्वारा किऐ गये जयकार शब्द मूर्छित हुंड के कानों में गया॥२२॥ उसने हाथ में धनुष लेकर कहा युद्ध में ठहरे रहो मैं तुम्हारे मारने से मरा नहीं हूँ ॥२३॥ इस

इत्युक्त्वा पुनरुत्थाय लाघवेन समन्वितः । एकविंशतिभिर्बाणैर्नहुषं चाऽहनत्पुनः ॥२४॥
एकेन मुष्टिमध्ये तु चतुर्भिर्बाहुमध्यतः । चतुर्भिश्च महाश्वांश्च छत्रमेकेन तेन वै ॥२५॥
पञ्चभिर्मातलिं विद्ध्वा रथनीडं तु सप्तभिः ।
ध्वजदण्डं त्रिभिस्तीक्ष्णैर्दानवः शिखिपत्रिभिः ॥२६॥
आदानं तु निदानन्तुलक्ष्मोक्षं दुरात्मनः ।
लाघवं तस्य स (ते) दृष्ट्वा देवता विस्मयं गताः ॥२७॥
तस्य पौरुषमापश्य स राजा दानवोत्तमम् । शूरोऽसि कृतविद्योऽसि धीरोऽसि रणपण्डितः॥२८॥
इत्युक्त्वा दानवं तं तु धनुर्विस्फार्य भूपतिः। मार्गणैर्दशभिस्तं तु विव्याध लघुविक्रमः ॥२९॥
त्रिभिर्ध्वजं प्रचिच्छेद स पपात धरातले । तुरगान्पातयामास चतुर्भिस्तस्य सायकैः ॥३०॥
एकेन छत्रं तस्यापि चकर्त लघुविक्रमः । दशभिः सारथिस्तस्य प्रेषितो यममन्दिरम्॥३१॥
दशनं दशभिश्छित्त्वा शरैश्च विदलीकृतः । सर्वाङ्गेषु च त्रिंशद्भिर्विव्याध दनुजेश्वरम्॥३२॥
हताश्वो विरथो जातो बाणपाणिर्धनुर्धरः । अभ्यधावत्स वेगेन वर्षयन्निशितैः शरैः ॥३३॥
खड्ग चर्मधरो दैत्यो राजानं तमधावत । धावमानस्य हुण्डस्य खड्गं चिच्छेद भूपतिः॥३४॥
क्षुरपैर्निशितैर्बाणैश्चर्म चिच्छेद भूपतिः । अथ हुण्डः स दुष्टात्मा समालोक्य समन्ततः ॥३५॥
जग्राह मुद्गरं तूर्णं मुमोच लघुविक्रमः । वज्रवेगं समायान्तं ददृशे नृपतिस्तदा ॥३६॥
मुद्गरं स्वनवन्तं चापातयदम्बरात्ततः । दशभिर्निशितैर्बाणैः क्षुरप्रैश्च स्वविक्रमात् ॥३७॥
मुद्गरं पतितं दृष्ट्वा दशखण्डमयं भुवि । गदामुद्यम्य वेगेन राजानमभ्यधावत ॥३८॥

तरह से कहकर शीघ्रता पूर्वक वह नहुष को इक्कीस बाणों से मारा ॥२४॥ एक बाण मुट्ठी में, चार बाण भुजाओं के बीच में चार बाणों से अश्वों को एक बाण से छत्र को पाँच बाणों से मातलि को मारकर सात बाणों से रथ के घूरे में मारा तथा उस दानव ने तीन बाणों से नहुष के ध्वजा के दण्ड पर प्रहार किया ॥२५-२६॥ बाणों को लेकर लक्ष्य परी प्रहार करने में वह दानव जो शीघ्रता कर रहा था उसको देखकर देवता भी आश्चर्यति हो गये ॥२७॥ उसके पौरुष को देखकर राजा नहुष ने उस दानव को कहा तुम धनुर्विद्या में निपुण तथा धैर्य सम्पन्न युद्ध करने में दंक्ष वीर हो ॥२८॥ इस तरह से उस दैत्य को कहकर नहुष ने अपने धनुष को विस्फारित किया और उन्होंने उस दानव को दश बाणों से छेद दिया । तीन बाणों से उसके ध्वजा को काट कर वे पृथिवी पर गिरा दिये, चार बाणों के प्रहार से उसके घोड़ों को मारकर उन्होंने गिरा दिया । अत्यन्त शीघ्रता से उन्होंने एक बाण से उसके छत्र को काट दिया । और दश बाणों के प्रहार से उसके सारथि को मार दिया ॥२९-३१॥ दश बाणों के प्रहार से उन दानव के दाँतों को उन्होंने तोड़ दिया । उसके बाद उसके सम्पूर्ण अङ्गों को बीस बाणों से छेदा ॥३२॥ घोड़ों के मर जाने से वह रथहीन हो गया । वह हाथ में धनुषबाण धारण किए हुए था । इसके बाद तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए वह वेग से नहुष की ओर दौड़ा ॥३३॥ वह दैत्य खड्ग तथा चर्म धारण करके राजा नहुष के प्रति दौड़ा। दौड़ते हुए हुंड के खड्ग को नहुष ने काट दिया और तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणों से उसके चर्म को भी उन्होंने काट दिया । इसके बाद दुष्ट हुंड चारों ओर देखकर ॥३४-३५॥ उसने मुद्गर उठाया और उसे नहुष के ऊपर फेंका । व्रज के वेग के समान वेग पूर्वक आते हुए मुद्गर को राजा ने देखा ॥३६॥ उन्होंने अपने पराक्रम

खड्गेन तीक्ष्णधारेण तस्य बाहुं विचिच्छिदे ।
सगदं पतितं भूमौ साङ्गदं कटकान्वितम् ॥३९॥
महारावं ततः कृत्वा वज्रस्फोटसमं तदा। रुधिरेणापि दिग्धाङ्गो धावमानो महाहवे॥४०॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो ग्रस्तुमिच्छति भूपतिम् ।
दुर्निवार्यः समायातः पार्श्वं तस्य च भूपते ॥४१॥
नहुषेण महाशक्त्या ताडितो हृदि दानवः । पातितः सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥४२॥
तस्मिन्दैत्ये गते भूमावितरे दानवा गताः । विवशुः कति दुर्गेषु कति पातालमाश्रिताः॥४३॥
देवाः प्रहर्षमाजग्मुर्गन्धर्वाः सिद्धचारणाः। हते तस्मिन्महापापे नहुषेण महात्मना ॥४४॥
तस्मिन्हते दैत्यवरे महाहवे देवाश्च सर्वे प्रमुदं प्रलेभिरे ।
तां देवरूपां तपसा प्रवर्द्धिता स आयुपुत्रः प्रतिलभ्य हर्षितः ॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
नहुषाख्याने पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

पूर्वक दश बाणों के प्रहार से उसे पृथिवी पर गिरा दिया ॥३७॥ दश खण्डमय तारे हुए मुद्गर को देखकर हुंड गदा को उठाकर वेग से राजा के प्रति दौड़ा ॥३८॥ राजा ने तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से हुंड की भुजाओं को काट दिया गदा के साथ तथा अङ्गद और कटक के साथ उसकी भुजाएँ पृथिवी पर गिर पड़ी॥३९॥ उसके बाद वज्रस्फोट के समान घोर ध्वनि करके क्रोध से भरा हुआ, खून से भींगे अङ्गों वाला वह हुंड उस महायुद्ध में दौड़ रहा था ॥४०॥ वह राजा को निगल जाना चाहता था । वह दुर्निवार्य हुंड राजा के सन्निकट आ गया ॥४१॥ नहुष ने उसके हृदय में महाशक्ति से प्रहार किया और वज्र से मारे गये पर्वत के समान वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४२॥ उस दैत्य के मरते ही दूसरे दानव भाग चले । कुछ तो दुर्ग में प्रवेश कर गये और कुछ पाताल में प्रवेश कर गये ॥४३॥ नहुष के द्वारा उस महापापी के मारे जाने से देवता, गन्धर्व तथा किन्नरगण प्रसन्न हो गये ॥४४॥ उस महायुद्ध में दैत्य श्रेष्ठ हुंड के मारे जाने पर सभी देवता अत्यन्त आनन्द का अनुभव किए उसके पश्चात् तपस्या से बढ़ी हुयी देवस्वरूपिणी अशोक सुन्दरी को प्राप्त करके आयुष के पुत्र नहुष प्रसन्न हो गये ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११५।।

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

अशोकसुन्दरी पुण्या रम्भया सह हर्षिता। नहुषं प्राप्य विक्रान्तं तमुवाच तपस्विनी ॥१॥
अहं ते धर्मतः पत्नी देवैर्दिष्टा तपस्विनी। उद्वाहयस्व मां वीर यदि धर्ममिहेच्छसि॥२॥
सदैव चिन्त्यमाना च त्वामहं तपसि स्थिता। भवान्धर्मप्रसादेन मया प्राप्तो नृपोत्तम ॥३॥

नहुष उवाच

मदर्थे नियता भद्रे यदि त्वं तपसि स्थिता। गुरोर्वाक्यान्मुहूर्तेन तव भर्ता भवाम्यहम् ॥४॥
अनया रम्भया सार्द्धमावां गच्छाव भामिनी। समारोप्य रथे तां तु तां रम्भां मनोरमाम् ॥५॥
तेनैव रथवर्येण वसिष्ठस्याश्रमं प्रति। जगाम लघुवेगेन ताभ्यां सह महायशाः ॥६॥
तमाश्रमगतं विप्रं समालोक्य प्रणम्य च। तया सार्द्धं महातेजा हर्षेण महताऽन्वितः॥७॥
यथा युद्धं रणे जातं निहतो दानवाधमः। निवेदयामास सर्वं वसिष्ठाय महात्मने॥८॥
वसिष्ठोऽपि समाकर्ण्य नहुषस्य विचेष्टितम्। हर्षेण महताऽऽविष्ट आशीर्भिरभिनन्द्य तम् ॥९॥
तिथौ लग्ने शुभे प्राप्ते तयोस्तु मुनिपुङ्गवः। विवाहं कारयामास अग्निब्राह्मणसन्निधौ॥१०॥
आशीर्भिरभिनन्द्यैव मिथुनं प्रेषितं पुनः। मातरं पितरं पश्य द्रुतं गत्वा महामते॥११॥
त्वां च दृष्ट्वा हि ते माता पिताऽसौ तव सुव्रत !।
हर्षेण वृद्धिमाप्नोतु पर्वणीव तु सागरः ॥१२॥

रम्भा के साथ अशोक सुन्दरी का नहुष के पास आना, अशोक सुन्दरी और नहुष का विवाह, मेनिका का रानी इन्दुमती को सपत्नीक नहुष के आने की सूचना देना

कुञ्जल ने कहा— रम्भा के साथ अशोक सुन्दरी हर्षित हो गयी। पराक्रमी नहुष के पास आकर वह उनसे कहीं ॥१॥ देवताओं के द्वारा निर्दिष्ट मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। हे वीर ! यदि आप चाहें तो धर्मपूर्वक मेरे साथ विवाह करें ॥२॥ तपस्या करती हुयी मैं सदा आपका ही चिन्तन करती थीं। धर्म की कृपा से आप मुझे प्राप्त हो गये ॥३॥ **नहुष ने कहा—** हे भद्रे ! यदि तुम मेरे लिए नियम पूर्वक तपस्या करती थी, तो मैं मुहूर्त भर में अपने गुरु की आज्ञा प्राप्त करके तुम्हारा पति बनता हूँ ॥४॥ हे भामिनि ! इस रम्भा के साथ हमदोनों चलते हैं। उसको तथा सुन्दरी रम्भा के साथ रथ पर बैठकर ॥५॥ उस श्रेष्ठ रथ से महायशस्वी नहुष उन दोनों के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में चले गये ॥६॥ उस आश्रम में विद्यमान महर्षि वशिष्ठ का दर्शन करके तथा उनको प्रणाम करते अशोक सुन्दरी के साथ नहुष अत्यन्त हर्षित हुए॥७॥ रण में जैसे युद्ध हुआ और वह दानवधम जैसे मारा गया उन सारी बातों को उन्होंने महात्मा वशिष्ठ को बतलाया ॥८॥ महर्षि वशिष्ठ भी नहुष के कर्म को सुनकर अत्यन्त हर्षित होकर अपने आशीर्वचनों से नहुष को अभिनंदित किए ॥९॥ शुभ तिथि तथा लग्न के आने पर मुनिश्रेष्ठ ने उन दोनों का विवाह अग्नि और ब्राह्मण के सन्निधान में कर दिया ॥१०॥ हे महामते ! आप शीघ्र यहाँ से जाकर अपने माता-पिता का दर्शन करें। यह कहकर तथा आशीर्वाद प्रदान करके उन्होंने नहुष दम्पत्ति को भेज दिया ॥११॥ उन्होंने कहा तुमको देखकर तुम्हारी माता तथा पिता उसी तरह से प्रसन्न होएँ जिस तरह पूर्णिमा के दिन

एवं सम्प्रेषितो वीरो मुनिना ब्रह्मसूनुना। तेनैव रथवर्येण जगाम लघुविक्रमः ॥१३॥
नमस्कृत्य द्विजेन्द्रं तं गतो मातलिना तदा। स्वपुरं पितरं द्रष्टुं तथैव च स्वमातरम् ॥१४॥

सूत उवाच

अप्सरा मेनिका नाम प्रेषिता दैवतैस्ततः। आयोर्भार्यां सुदुःखेन पतितां शोकसागरे ॥१५॥
तामुवाच महाभागां देवीमिन्दुमतीं प्रति। मुञ्च शोकं महाभागे तनयं पश्य सस्नुषम् ॥१६॥
निहत्य दानवं पापं तव पुत्रापहारकम् । समायान्तं सभायां च वीर ! श्रिया समन्वितम् ॥१७॥
सुवृत्तं सङ्गरे तस्य नहुषेण यथा कृतम् । तस्यै निवेदयामास इन्दुमत्यै च मेनिका ॥१८॥
मेनिकाया वचः श्रुत्वा हर्षेण महताऽन्विता। सखि वचः ब्रवीषि त्वामित्युवाच स गद्गदम् ॥१९॥
सामृतं सुप्रियं प्रोक्तं मनःप्रोत्साहकारकम् । जीवादिकं मया देयं त्वयि सर्वस्वमेव हि ॥२०॥
एवमाभाष्यतां देवी राजानमिदमब्रवीत् । तव पुत्रो महाबाहुः समायातो हि साम्प्रतम् ॥२१॥
आख्याति च महाराज एषा मे वै वराप्सराः ।
भर्तारमेवमाभाष्य विरराम सुहर्षिता ॥२२॥
समाकर्ण्य नृपेन्द्रस्तु तामुवाच प्रियां प्रति । पुरा प्रोक्तं महाभागे मुनिना नारदेन हि ॥२३॥
पुत्रं प्रति न कर्त्तव्यं दुःखं राजंस्त्वया कदा ।
तं निहत्य सुवीर्येण दानवं चैष्यते सुतः ॥२४॥
सञ्जातं सत्यमेवं वै मुनिना भाषितां पुराः। अन्यथा वचनं तस्य कथं देवि ! भविष्यति ॥२५॥
दत्तात्रेयो मुनिश्रेष्ठः साक्षाद्देवो भविष्यति । शुश्रूषितस्त्वया देवि मया च तपसा पुरा ॥२६॥
पुत्ररत्नं तेन दत्तं वैष्णवांशप्रधारकम्। मदा हनिष्यति परं दानवं पापचेतनम् ॥२७॥

चन्द्रमा को देखकर सागर प्रसन्न होता है ॥१२॥ इसके बाद महर्षि वशिष्ठ को नमस्कार करके नहुष मातलि के साथ अपने माता-पिता का दर्शन करने के लिए अपने नगर में गये ॥१४॥ **सूतजी ने कहा**— उस समय देवताओं ने मेनिका नाम की अप्सरा को भेजा आयुष् की पत्नी दुःख सागर में पड़ी थी । उन महाभागा इन्दुमती को उसने कहा— हे महाभागे ! शोक का परित्याग करके अपनी पुत्रवधू के साथ अपने पुत्र को आप देखो ॥१५-१६॥ जिसने तुम्हारे पुत्र का अपहरण किया था उस दानव को मारकर वीर लक्ष्मी से सम्पन्न सभा में आते हुए अपने पुत्र को आप देखें ॥१७॥ नहुष के द्वारा किए गये सुन्दर कार्य को इन्दुमती को मेनिका ने सुनाया ॥१८॥ मेनिका की वाणी को सुनकर अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर इन्दुमती ने गद्गद वाणी में कहा— सखि ! तुम सत्य ही कह रही हो ॥१९॥ तुमने अमृत के समान अत्यन्त प्रिय तथा उत्साह कारक समाचार को सुनाया है । मुझे तो तुमको अपना जीवन तथा सर्वस्व प्रदान करना चाहिए॥२०॥ इस तरह से मेनिका को कहकर देवी ने राजा से कहा आपका महाबाहु पुत्र इस समय आ रहा है ॥२१॥ हे महाराज ! इस बात को मुझे इस श्रेष्ठ अप्सरा ने सुनाया है । इस तरह अत्यन्त हर्षित वह राजा से कहकर चुप हो गयी ॥२२॥ उसको सुनकर राजा ने अपनी प्रियतमा से कहा— हे महाभागे ! पहले देवर्षि नारद ने कहा था ॥२३॥ हे राजम् ! आपको अपने पुत्र के विषय में कभी दुःखी नहीं होना चाहिए, उस दानव को मारकर आपका पुत्र आयेगा ॥२४॥ मुनि ने जो पहले कहा था वह बात आज सत्य हो गयी । हे देवि ! उनकी वाणी मिथ्या कैसे हो सकती है ?॥२५॥ मुनि श्रेष्ठ दत्तात्रेय साक्षात् देवता हैं।

सर्वदैत्यप्रहर्ता च प्रजापालो महाबलः। दत्तात्रेयेण मे दत्तो वैष्णवांशः सुतोत्तमः ॥२८॥
एवं सम्भाष्य तां देवीं राजा चेन्दुमतीं तदा। महोत्सवं ततश्चक्रे पुत्रस्यागमनं प्रति॥२९॥
हर्षेण महताऽऽविष्टो विष्णुं सस्मार वै पुनः ॥३०॥

सर्वोपपन्नं सुरवर्गयुक्तमानन्दरूपं परमार्थमेकम् ।
क्लेशापहं सौख्यप्रदं नराणां सद्वैष्णवानामिह मोक्षदं परम् ॥३१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

नहुषः प्रियया सार्द्धं तया चैव सरम्भया। ऐन्द्रेणापि स दिव्येन स्यन्दनेन वरेण च ॥१॥
नागाह्वयं पुरं प्राप्तः सर्वशोभासमन्वितम् । दिव्यैर्मङ्गलकैर्युक्तं भवनैरुपशोभितम् ॥२॥
हेमतोरणसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम्। नानावादित्रनादैश्च बन्दिचारणशोभितम् ॥३॥
देवरूपोपमैः पुण्यैः पुरुषैः समलङ्कृतम्। नारीभिर्दिव्यरूपाभिर्गजाश्वैः स्यन्दनैस्तथा॥४॥

हे देवि ! तुमने और मैंने उनकी सेवा तपस्या के द्वारा की है ॥२६॥ उन्होंने वैष्णवांश को धारण करने वाले पुत्र रत्न को प्रदान किया है । वह सदैव पापी दानव का वध करेगा ॥२७॥ सभी दैत्यों को मारने वाला वह प्रजापालक होगा । दत्तात्रेय ने मुझे महाबलवान् तथा वैष्णव अंश से युक्त पुत्र प्रदान किया है ॥२८॥ राजा देवी इन्दुमती को इस प्रकार से कहकर पुत्र के आगमन को लेकर उत्सव किए ॥२९॥ उन्होंने अत्यन्त हर्ष पूर्वक भगवान् विष्णु का स्मरण किया ॥३०॥ उत्सवों से युक्त, देवसमूह से युक्त, आनन्द स्वरूप, एकमात्र परमार्थ तत्त्व, मनुष्यों के दुःख को दूर करने वाले, सुख प्रदान करने वाले तथा श्रीवैष्णवों को मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु का राजा ने स्मरण किया ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११६।।

नहुष को देखकर उनके माता-पिता का प्रसन्न होना

कुञ्जल ने कहा— नहुष अपनी पत्नी तथा रम्भा के साथ उस इन्द्रश्रेष्ठ रथ से ॥१॥ हस्तिनापुर नामक सभी प्रकार की शोभा से सम्पन्न दिव्य मङ्गलों से युक्त विशाल भवन से सुशोभित, सुवर्ण से निर्मित तोरणों तथा पताकाओं से अलंकृत अनेक प्रकार के वाद्यों वन्दिजनों एवं चरणों से सुशोभित ॥२-३॥ देवताओं के समान रूपवान् तथा पुण्यवान् पुरुषों से अलंकृत दिव्य रूपों वाली नारियों, हाथी, घोड़े तथा

नानामङ्गलशब्दैश्च वेदध्वनिसमाकुलम्। गीतवादित्रशब्दैश्च वीणावेणुस्वनैस्ततः ॥५॥
सर्वशोभासमाकीर्णं विवेश स पुरोत्तमम्। वेदमङ्गलघोषैश्च ब्राह्मणैश्चैव पूजितः ॥६॥
ददृशे पितरं वीरो मातरं च सपुण्यकम् । हर्षेण महताऽऽविष्टःपितुः पादौ ननाम सः॥७॥

अशोकसुन्दरी सा तु तयोः पादौ पुनः पुनः ।
ननाम भक्त्या भावेन उभयोः सा वरानना ॥८॥
रम्भा च सा ननामाथ प्रीतिं चैवाप्यदर्शयत् ।
नमस्कृत्वा समाभाष्य स्वगुरुं नृपनन्दनः ॥९॥

अनामयं च पप्रच्छ मातरं पितरं प्रति। एवमुक्तो महाभागः सानन्दपुलकोद्गमः ॥१०॥

आयुरुवाच

अद्यैव व्याधयो नष्टा दुःखशोकावुभौ गतौ। भवतो दर्शनात्पुत्र सुतुष्ट्या हृष्यते जगत्॥११॥

कृतकृत्योऽस्मि सञ्जातस्त्वयि जाते महौजसि ।
स्ववंशोद्धरणं कृत्वा अहमेव समुद्धृतः ॥१२॥

इन्दुमत्युवाच

पर्वणि प्राप्य इन्दोस्तु तेजो दृष्ट्वा महोदधिः ।
वृद्धिं याति महाभाग तथाऽहं तव दर्शनात् ॥१३॥

वर्द्धितास्मि सुहृष्टास्मि आनन्देनसमाकुला। दर्शनात्ते महाप्राज्ञ धन्या जाताऽस्मि मानद ॥१४॥
एवं सम्भाष्यं तं पुत्रमालिङ्ग्य तनयोत्तमम्। शिरश्चाघ्राय तस्यापि वत्सं धेनुर्यथा स्वकम् ॥१५॥
अभिनन्द्य सुतं प्राप्तं नहुषं देवरूपिणम् । आशीर्भिश्चायर्चययद्देवी पुण्या इन्दुमती तदा ॥१६॥

रथों से सुशोभित ॥४॥ अनेक प्रकार के मङ्गलों से युक्त, वेद ध्वनि से परिपूर्ण, गीतों तथा वाद्यों की ध्वनियों तथा वीणा एवं वेणु के ध्वनियों आदि ॥५॥ सभी प्रकार की शोभाओं से परिपूर्ण उस नगर में नहुष ने प्रवेश किया उस समय वेद के मङ्गलमय ध्वनियों तथा ब्राह्मणों से पूजित नहुष ने ॥६॥ अपने माता-पिता का दर्शन किया । उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर पिता के चरणों में नमस्कार किया ॥७॥ वरानना अशोक सुन्दरी ने भी अपने सासु तथा श्वसुर के चरणों में भक्तिभाव पूर्वक बार-बार नमस्कार किया ॥८॥ रम्भा ने भी उन्हें प्रणाम किया और प्रेम का प्रदर्शन किया नमस्कार करके तथा उनसे बातें करके नहुष ने अपने पिता से कुशल समाचार पूछा । इस तरह से कहने पर महाराज को आनन्द से युक्त रोमाञ्च हो गया ॥९-१०॥ **आयुष् ने कहा—** आज ही मेरी व्याधियाँ नष्ट हो गयीं तथा शोक तथा दुःख दोनों बीत गये । हे पुत्र! तुमको ही देखकर सारा संसार संतुष्ट हो गया है ॥११॥ तुम महाओजस्वी पुत्र के होने से मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ । मैंने अपने वंश का उद्धार करके स्वयं अपना भी उद्धार कर लिया है ॥१२॥ **इन्दुमती ने कहा—** पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा के तेज को देखकर जैसे सागर बढ़ जाता है, उसी तरह से तुमको देखकर मैं समृद्ध हो गयी हूँ ॥१३॥ मैं समृद्ध तथा आनन्द से अत्यन्त हर्षित हूँ । हे मानद ! तुम्हारे दर्शन से मैं धन्य हो गयी हूँ ॥१४॥ इस तरह से कहकर उन्होंने अपने पुत्र का अलिङ्गन किया । उन्होंने नहुष के शिर को उसी तरह सूंघा जैसे गौ अपने बछड़े का शिर सूंघती है ॥१५॥ देवरूपी अपने पुत्र नहुष का अभिनंदन करके पवित्र देवी इन्दुमती ने उसकी अपने आशीर्वचनों से पूजा की ॥१६॥ **सूतजी ने कहा—** इसके बाद नहुष

अथाऽसौ मातरं पुण्यां देवीमिन्दुमतीं सुतः। कथयामास वृत्तान्तं यथाहरणमात्मनः ॥१७॥
स्वभार्यायास्तथोत्पत्तिं प्राप्तिं चैव महायशाः ।
हुण्डेनाऽपि यथायुद्धं हुण्डस्यापि निपातनम् ॥१८॥
समासेन समस्तं तदाख्यातं स्वयमेव हि । मातापित्रोर्यथावृत्तं तयोरानन्ददायकम् ॥१९॥
मातापितरावाकर्ण्य पुत्रस्य विक्रमोद्यमम्। हर्षेण महताऽऽविष्टौ सञ्जातौ पूर्णमानसौ ॥२०॥
नहुषो धनुरादाय इन्द्रस्य स्यन्दने नवे। जिगाय पृथिवीं सर्वा सप्तद्वीपां सपत्तनाम् ॥२१॥
पित्रे समर्पयामास वसुपूर्णां वसुन्धराम्। पितरं हर्षयन्नित्यं दानधर्मैः सुकर्मभिः ॥२२॥
पितरं याजयामास राजसूयादिभिस्तदा। महायज्ञैश्च दानैश्च व्रतैर्नियमसंयमैः ॥२३॥
सुदानैर्यशसा पुण्यैर्यज्ञैः पुण्यमहोदयैः। सुसम्पूर्णौ कृतौ तौ तु पितरौ चायुसूनुना ॥२४॥
अथ देवाः समागत्य नागाह्वयं पुरोत्तमम्। अभ्यषिञ्चन्महात्मानं नहुषं वीरमर्दनम् ॥२५॥
मुनिभिश्च सुसिद्धैश्च आयुना तेन भूभुजा। अभिषिच्य स्वराज्ये तं समंतं शिवकन्यया ॥२६॥
भार्यायुक्तः स्वकायेन आयूराजा महायशः। दिवं जगाम धर्मात्मा देवैः सिद्धैः सुपूजितः ॥२७॥
ऐन्द्रं पदं परित्यज्य ब्रह्मलोकं गतः पुनः। हरलोंकं जगामाथ मुनिभिर्देवपूजितः ॥२८॥
स्वकर्मभिर्महाराजः पुत्रस्यापि सुतेजसा। हरेर्लोकं गतः पुण्यैर्निवसत्येष भूपतिः ॥२९॥
पुरुषैः पुण्यकर्माख्यैरीदृशं पुण्यमुत्तमम्। जनितव्यं महाभाग किमन्यैः शोककारकैः ॥३०॥
यथा जातः स धर्मात्मा नहुषः पितृतारकः। कुलस्य धर्त्ता सर्वस्य नहुषो ज्ञानपण्डितः ॥३१॥

ने अपनी माता इन्दुमती को अपने हरण सम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनाया ॥१७॥ उन्होंने अपनी पत्नी की उत्पत्ति तथा उसकी प्राप्ति सम्बन्धी बातों को बतलाया। जैसे उन्होंने हुंड के साथ युद्ध किया और जिस तरह से उसका वध किया ॥१८॥ स्वयं ही इन सारी बातों को संक्षेप में उन्होंने सुनाया। उन्होंने अपने माता-पिता को आनन्द देने वाले वृत्तान्त को सुनाया ॥१९॥ माता-पिता भी अपने पुत्र के पराक्रम और प्रयास को सुनकर हर्ष पूर्ण मानस वाले हो गये ॥२०॥ नहुष ने इन्द्र के धनुष तथा रथ को लेकर सप्तद्वीपा सम्पूर्ण पृथिवी को पर्वतों तथा नगरों के साथ जीत लिया ॥२१॥ उन्होंने अपने पिता को धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण पृथिवी को समर्पित किया। नहुष अपने दान तथा धर्म आदि सुन्दर कर्मों के द्वारा अपने पिता को प्रसन्न किये ॥२२॥ उन्होंने अपने पिता से राजसूय आदि यज्ञ करवाया नहुष ने महायज्ञ, दान, व्रत तथा संयम पूर्ण नियमों के द्वारा अपने माता-पिता को पूर्ण बना दिया ॥२३-२४॥ इसके बाद नगरों में श्रेष्ठ हस्तिनापुर में आकर वीरों का मर्दन करने वाले महात्मा नहुष को देवताओं ने अभिषिक्त किया ॥२५॥ मुनियों, सिद्धों तथा राजा आयुष् ने अशोक सुन्दरी के साथ नहुष को अपने राज्य पर अभिषिक्त किया॥२६॥ अपनी पत्नी के साथ राजा आयुष् अपने शरीर से ही स्वर्गलोक चले गये और देवताओं तथा सिद्धों से पूजित हुए ॥२७॥ उसके बाद राजा इन्द्र के पद का परित्याग करके ब्रह्मलोक में चले गये। उसके बाद वे मुनियों तथा देवताओं से पूजित होकर वे शिवलोक में चले गये ॥२८॥ महाराज अपने कर्मों तथा अपने पुत्र के तेज से श्रीहरि के लोक में चले गये और वहीं वे निवास करते हैं ॥२९॥ हे महाभाग ! पुण्य पुरुषों को इसी तरह का कर्म करना चाहिए। दूसरे शोक प्रदान करने वाले कर्मों के करने से कौन सा लाभ है?॥३०॥ जिस तरह अपने पिता के तारने वाले नहुष हुए। वे अपने सम्पूर्ण वंश को धारण करने वाले

एतत्ते सर्वमाख्यातं चरित्रं तस्य भूपतेः। अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि वद पुत्र कपिञ्जल ॥३२॥
एवं विधं पुण्यमयं पवित्रं चरित्रमेतद्यशसा समेतम् ।
आयोः सुतस्यापि शृणोति मर्त्यो भोगान्स भुक्त्वैति पदं मुरारेः ॥३३॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

कपिञ्जल उवाच

गङ्गामुखे पुरा तात रोदमाना वराङ्गना। नेत्राभ्यामश्रुविन्दूनि पतन्ति च महाजले ॥१॥
गङ्गामध्ये निमज्जन्ति भवन्ति कमलानि च। पुष्पाणि दिव्यरूपाणि सौगन्धानि महान्ति च ॥२॥
तस्यास्तात सुनेत्राभ्यां किमर्थं प्रपतन्ति च । गङ्गोदके महाभाग निर्मला अश्रुबिन्दवः ॥३॥
अस्थिचर्मावशेषस्तु जटाचीरधरः पुनः। तानि सौगन्ध्ययुक्तानि पद्मानि विचिनोति सः ॥४॥
हेमवर्णानि दिव्यानि नीत्वा शिवं समर्चयेत्। सा का नारी समाचक्ष्व स वा को हि महामते ॥५॥
अर्चयित्वा शिवं सोऽथ कस्मात्पश्चात्प्रदेवति ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यद्यहं वल्लभस्तव ॥६॥

नहुष ज्ञान के पण्डित हुए ॥३१॥ इस तरह से मैंने राजा नहुश के चरित्र का पूर्णरूप से वर्णन किया । हे पुत्र ! कपिंजल बतलाओ मैं तुमको दूसरी कौन सी बात बतलाऊँ ॥३२॥ इस प्रकार के पुण्यमय पवित्र तथा यश युक्त यह चरित्र है । इस नहुष के चरित्र को जो मनुष्य सुनता है वह संसार के समस्त भोगों को भोग कर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११७।।

हुण्ड के पुत्र विहण्ड की तपस्या

कपिञ्जल ने कहा— हे तात ! पहले के समय में एक सुन्दरी गो मुख में रो रही थी । उस महाजल में उसकी आँसुएँ गिरती थी ॥१॥ वे गङ्गा जल में डूब जाती थीं और कमल बन जाती थीं दिव्य रूप वाले वे पुष्प अत्यन्त मनोहर होते थे ॥२॥ हे तात ! उसके नेत्रों से वे आंसू क्यों गिरते थे । हे महाभाग ! गङ्गाजल में निर्मल अश्रुविन्दु क्यों गिरते थे ?॥३॥ अस्थि, चीर और जटा धारण किए हुए कोई पुरुष उन मनोहर कमलों को क्यों एकत्रित करता था और स्वर्णिम कमलों को लाकर उससे शिवजी की अर्चा क्यों करता था ? हे महामते ! वह नारी कौन थी ? और वह पुरुष कौन था ?॥४-५॥ वह शिवजी की पूजा

कुञ्जल उवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं देवनिर्मितम् । चरित्रं सर्वपापघ्नं विष्णोश्चैव महात्मनः ॥७॥
योऽसौ हुण्डो महावीर्यो नहुषेण हतो रणे । तस्य पुत्रस्तु विख्यातो विहुण्डस्तप आस्थितः ॥८॥
निहतं पितरं श्रुत्वा सामात्यं सपरिच्छदम् । आयुपुत्रेण वीरेण नहुषेण वलीयसा ॥९॥
तपस्तपति सक्रोधाद्देवान्हन्तुं समुद्यतः । पौरुषं तस्य दुष्टस्य तपसा वर्द्धितस्य च ॥१०॥
जानन्ति देवताः सर्वा दुःसहं समराङ्गणे । हुण्डात्मजो विहुण्डस्तु त्रैलोक्यं हन्तुमुद्यतः ॥११॥
पितुर्वैरं करिष्यामि हनिष्ये मानवान्सुरान् । एवं समुद्यतः पापी देवब्राह्मणकण्टकः ॥१२॥
उपद्रवं समारेभे प्रजाः पीडयते च सः । तस्यैव तेजसा दग्धा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥१३॥
शरणं देवदेवस्य जग्मुर्विष्णोर्महात्मनः । देवदेवं जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१४॥
ऊचुश्च पाहि नो नित्यं विहुण्डस्य महाभयात् ॥१५॥

श्रीविष्णुरुवाच

वर्द्धन्तु देवताः सर्वाः सुसुखेन महेश्वराः । विहुण्डं नाशयिष्यामि पापिष्ठं देवकण्टकम् ॥१६॥
एवभाष्य तान्देवान्मायां कृत्वा जनार्दनः । स्वयमेव स्थितस्तत्र नन्दने सुमहायशाः ॥१७॥
मायामयं चकाराऽथ स्त्रीरूपं च गुणान्वितम् ।
विष्णुमाया महाभागा सर्वविश्वप्रमोहिनी ॥१८॥
चकार रूपमतुलं विष्णोर्माया प्रमोहिनी । विहुण्डस्य वधार्थाय रूपलावण्यशालिनी ॥१९॥
सदेवानां वधार्थाय दिव्यमार्गं जगाम ह । नन्दनान्ते ततो मायामपश्यद्दितिजेश्वरः ॥२०॥

करके उसके वाद क्यों रोता था । यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥६॥ **कुञ्जल ने कहा—** हे वत्स ! सुनो मैं भगवान् विष्णु के सर्व पाप विनाशक चरित्र को सुनाता हूँ ॥७॥ जिसे हुंड को नहुष ने युद्ध में मारा था उसका विख्यात पुत्र विहुंड था, वह तपस्या करता था ॥८॥ उसने सुना कि आयुष् के वीर पुत्र नहुष ने मेरे पिता को उनके आमात्य तथा सम्पूर्ण परिच्छद के साथ मार दिया । वह देवताओं का वध करने के लिए क्रोध पूर्वक तपस्या करने लगा । उस दुष्ट का पौरुष तपस्या के द्वारा बढ़ गया था ॥९-१०॥ सभी देवता जानते थे कि युद्ध में उसको जीतना बड़ा कठिन है । हुंड़ का पुत्र विहुंड त्रैलोक्य का विनाश करने के लिए तैयार हो गया ॥११॥ वह सोचता था कि मैं पिता के वैर का बदला अवश्य लूंगा तथा देवताओं और मनुष्यों को मार दूँगा । इस तरह से वह देवताओं और ब्राह्मणों का पापी शत्रु तैयार था ॥१२॥ उसने उपद्रव करना प्रारम्भ किया और प्रजाओं को पीड़ित करता था । उसके तेज से इन्द्र आदि देवता जलने लगे ॥१३॥ वे सब देवाराध्य भगवान् विष्णु के शरण में गये शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले देवाराध्य जगन्नाथ ॥१४॥ श्रीभगवान् से कहे— हे भगवान् ! आप हमलोगों की रक्षा विहुंड से करें । **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे देवताओं ! आपलोगों की सुख पूर्वक वृद्ध हो । मैं पापिष्ठ, देवताओं के शत्रु, विहुंड का नाश करूँगा । इस तरह से देवताओं को कहकर भगवान् जनार्दन ने माया करके ॥१५-१६॥ स्वयं ही उस नन्दन वन में स्थित हो गये । उन्होंने मायामय गुणवती स्त्री का रूप बना लिया ॥१७॥ हे महाभाग ! भगवान् विष्णु की माया सम्पूर्ण विश्व को मोहित करने वाली है । भगवान् विष्णु ने अपना अत्यन्त मोहक रूप बनाया ॥१८॥ विहुंड को मारने के लिए वे रूप और लावण्य से युक्त रमणी

तया विमोहितो दैत्यः कामबाणकृतान्तरः। आत्मनाशं न जानाति कालरूपां वरस्त्रियम् ॥२१॥
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां रूपद्रविणशालिनीम् । लुब्धो विहुण्डः पापात्मा तामुवाच वराङ्गनाम् ॥२२॥
काऽसि कस्य वरारोहे मम चित्तप्रमाथिनी। सङ्गमं देहि मे भद्रे रक्ष रक्ष वरानने ॥२३॥
सङ्गमात्तव देवेशि यद्यदिच्छसि साम्प्रतम्। तत्तद्दद्मि महाभागे दुर्लभं देवदानवैः ॥२४॥

मायोवाच

मामेव भोक्तुमिच्छा चेद्दायं मे देहि दानव। सप्तकोटिमितैश्चैव पुण्पैः पूजय शङ्करम्॥२५॥
कामोदसम्भवैर्दिव्यैः सौगन्धैर्देवदुर्लभैः। तेषां पुष्पकृतां मालां मम कण्ठे तु दानव॥२६॥
आरोपय महाभाग एतद्दायं प्रदेहि मे । तदाहं सुप्रिया भार्या भविष्यामि न संशयः ॥२७॥

विहुण्ड उवाच

एवं देवि ! करिष्यामि वरं दद्मि प्रयाचितम् ।
वनानि यानि पुण्यानि दिव्यानि दितिजेश्वरः ॥२८॥
बभ्राम मन्मथाऽऽविष्टो न च पश्यति तं द्रुमम् ।
कामोदकाख्यं पप्रच्छ यत्र तत्र गतः स्वयम् ॥२९॥

कामोदाख्यद्रुमो नास्ति वदन्त्येवं महाजनाः। पृच्छमानः स दुष्टात्मा कामबाणैः प्रपीडितः ॥३०॥
पप्रच्छ भार्गवं गत्वा भक्त्या नमितकन्धरः। कामोदकं द्रुमं ब्रूहि कान्तपुष्पसमन्वितम्॥३१॥

शुक्र उवाच

कामोदः पादपो नास्ति योषिदेवाऽस्ति दानव ।
यदा सा हसते चैव प्रंसङ्गेन प्रहर्षिता ॥३२॥

बन गये । **कुञ्जल ने कहा—** वह देवताओं के लिए दिव्य मार्ग पर जा रहा था ॥१९॥ नन्दन वन के अन्त में उस दितिजेश्वर (दैत्य श्रेष्ठ) ने माया को देखा । उसके द्वारा मोहित होकर वह कामार्त हो गया ॥२०॥ वह उस काल रूपी श्रेष्ठ स्त्री से होने वाले अपने नाश को नहीं जानता था । नवीन सुवर्ण के समान कान्ति वाली उस नारी को देखकर ॥२१॥ विहुंड मोहित हो गया था । उसने उस सुन्दरी से कहा— हे मेरे चित्त को मथ देने वाली सुन्दरी ! तुम किसकी कौन हो ?॥२२॥ हे भद्रे ! तुम मेरे साथ संगम करके मेरी रक्षा करो । हे देवेशि । संगम कर लेने पर तुम जो-जो चाहोगी ॥२३॥ हे महाभागे ! देवताओं और दानवों के लिए भी दुर्लभ उनर वस्तुओं को मैं तुम्हें प्रदान करूँगा । **माया ने कहा—** दानव यदि तुम मेरा उपभोग करना चाहते हो तो मुझे दाय भाग (हिस्सा) प्रदान करो ॥२४॥ सात करोड़ पुष्पों से शङ्करजी की पूजा करो। कामोद से उत्पन्न पुष्पों से दिव्य सुगन्धि से युक्त पुष्पों से पूजा करो । उन पुष्पों से माला बनाकर तुम उस माला को मेरे गले में पहनाओ । यही दायभाग मुझे प्रदान करो ॥२५-२६॥ ऐसा करने पर मैं तुम्हारी प्रियतमा पत्नी बन जाऊँगी । **विहुण्ड ने कहा—** हे देवि ! मैं ऐसा ही करूँगा, तुमने जो माँगा है उसे मैं प्रदान करूँगा ॥२७॥ जितने पवित्र वन थे उनमें वह दैत्येश्वर गया, किन्तु उसने कहीं भी कामोदक वन को नहीं देखा ॥२८॥ वह जहाँ कहीं भी जाता था कामोदक को पूछता था लोग बतलाते थे कि यहाँ कामोदक नामक कोई वृक्ष नहीं है ॥२९॥ कामार्त बना हुआ वह दुष्ट पूछता हुआ भार्गव महर्शि से भक्ति पूर्वक पूछा॥३०॥ आप मुझे कामोदक नामक मनोहर पुष्प वाले वृक्ष को बतलाएँ । **शुक्राचार्य ने कहा—** हे

तद्धासाज्जज्ञिरे दैत्यसुगन्धानि वराण्यपि। सुमान्येतानि दिव्यानि कामोदाया न संशयः ॥३३॥
हृद्यानि पीतपुष्पाणि सौरभेण युतानि च। तेनाप्येकेन पुष्पेण यः समर्चति शङ्करम् ॥३४॥
तस्येप्सितं महाकामं सम्पूरयति शङ्करः। अस्याश्च रोदनाद्दैत्य प्रभवन्ति न संशयः ॥३५॥
तादृशान्येव पुष्पाणि लोहितानि महान्ति च। सौरभेण बिना दैत्य तेषां स्पर्शं न कारयेत् ॥३६॥
एवमाकर्णितं तेन वाक्यं शुक्रस्य भाषितम्।
उवाच सा तु कुत्राऽस्ति कामोदा भृगुनन्दनम् ॥३७॥

शुक उवाच

गङ्गाद्वारे महापुण्ये महापातकनाशने। कामोदाख्यं पुरं तत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३८॥
कामोदपत्तने नारी दिव्यभोगैरलङ्कृता। तथाचाभरणैर्भाति सर्वदेवैः सुपूजिता ॥३९॥
त्वया तत्रैव गन्तव्यं पूजितव्या वराप्सराः। उपायेनाऽपि पुण्येन तां प्रहासय दानव ॥४०॥
एवमुक्त्वा तु योगीन्द्रः स शुक्रो दानवं प्रति।
विरराम महातेजाः स्वकार्यायोद्यतोऽभवत् ॥४१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे कामोदाख्यानेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

दानव ! कामोद नामक वृक्ष नहीं है, अपितु वह नारी है ॥३१॥ यदि वह किसी प्रसंगवशात् प्रसन्न होकर हंसती है तो हे दैत्य ! उसकी हंसी से सुगन्धित युक्त श्रेष्ठ पुष्प उत्पन्न होते हैं। वे कामोद को प्रदान करने वाले होते हैं। वे अत्यन्त मनोहर पीले पुष्प होते हैं और सुगन्धि से युक्त होते हैं ॥३२-३३॥ उस एक पुष्प से जो शङ्करजी की पूजा करता है, उसके अभिप्रेत बड़ी-से-बड़ी कामना को शिव पूरा करते हैं।॥३४॥ हे दैत्य ! उस नारी के रोने से भी वे उत्पन्न होते हैं। उसी तरह के अत्यन्त लाल पुष्प ॥३५॥ सुगन्धित से रहित होते हैं। उन पुष्पों को छूना भी नहीं चाहिए। उसने इस प्रकार से शुक्राचार्य के वचनों को सुना॥३६॥ उसने शुक्राचार्य से पूछा कि हे भृगुनंदन वह कामोदा कहाँ है ? शुक्राचार्य ने कहा— अत्यन्त पवित्र तथा पाप विनाशक गङ्गाद्वार में ॥३७॥ कामोद नामक नगर है, उसको विश्वकर्मा ने बनाया है। उस नगर में एक नारी दिव्यभोगों से अलंकृत है ॥३८॥ उसके आभरणों से लगता है कि वह सभी देवताओं से पूजित है। तुम वहीं पर जाकर उस श्रेष्ठ अप्सरा की पूजा करो ॥३९॥ हे दानव ! उसको दिव्य उपायों से हँसाओ। इस तरह से उस दानव को कहकर शुक्राचार्य चुप हो गये और वह महातेजस्वी अपना कार्य के लिए उद्यत हो गया ॥४०-४१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

कपिञ्जल उवाच

यस्याः प्रहसनात्तात सुहृद्यानि भवन्ति वै । पुष्पाणि दिव्यगन्धीनि दुर्लभानि सुरासुरैः ॥१॥
कस्मात्तु देवताः सर्वाः प्रवाञ्छन्ति महामते। शङ्करः सुखमायाति हास्यपुष्पैः सुपूजितः ॥२॥
को गुणस्तस्य पुष्पस्य तन्मे कथय विस्तरात् ।
कामोदा सा भवेत्का तु कस्य पुत्री वराङ्गना ॥३॥
हास्यात्तस्या महाभाग सुपुष्पाणि भवन्ति च ।
को गुणस्तत्कथां ब्रूहि सकलां विस्तरेण च ॥४॥

कुञ्जल उवाच

पुरा देवै र्महादैत्यैः कृत्वा सौहार्दमुत्तमम । ममन्थुः सागरं क्षीरममृतार्थ समुद्यताः ॥५॥
मथनाद्देवदैत्यानां कन्यारत्नचतुष्टयम्। वरुणेन दर्शितं पूर्वं सोमेनैव तथा पुनः ॥६॥
पश्चात्सन्दर्शितं पुण्यममृतं कलशे स्थितम् । कन्याचतुष्टयं पूर्वदेवानां हितमिच्छति॥७॥
सुलक्ष्मीर्नाम सा चैका द्वितीया वारुणी तथा ।
ज्येष्ठा नाम तथा ख्याता कामोदाऽन्या प्रचक्षते ॥८॥
तासां मध्ये वरा श्रेष्ठा पूर्वं जाता महामते। तस्माज्ज्येष्ठेति विख्याता लोके पूज्या सदैव हि॥९॥
वारुणी पानरूपा च पयःफेनसमुद्भवा। अमृतस्य तरङ्गाच्च कामोदाख्या बभूव ह॥१०॥
सोमो राजा तथा लक्ष्मीर्जज्ञाते अमृतादपि । त्रैलोक्यभूषणः सोमः सञ्जातः शङ्करप्रियः ॥११॥
मृत्युरोगहरा जाता सुराणां वारुणी तथा ।
ज्येष्ठा सुपुण्यदा जाता लोकानां हितमिच्छताम् ॥१२॥

कामोदा कथानक का वर्णन, नारदजी का विहुण्ड को भ्रमित करना

कपिञ्जल ने कहा— जिसके हँसने से देवताओं और असुरों के लिए दुर्लभ सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्प उत्पन्न होते हैं ॥१॥ हे महामते ! उस पुष्प को सभी देवता किस कारण से प्राप्त करना चाहते हैं ? उस हास्य पुष्पों से पूजित होकर शङ्करजी क्यों प्रसन्न होते हैं ?॥२॥ उस पुष्प का कौन सा गुण है ? उसे आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें । कामोदा नाम की वह वराङ्गना कौन है ? वह किसकी पुत्री हैं ?॥३॥ उसकी हँसी से सुन्दर पुष्प क्यों उत्पन्न होते हैं उसके कौन से गुण है ? इस बात को आप मुझे विस्तार से बतलायें ॥४॥ **कुञ्जल ने कहा**— प्राचीन काल में देवताओं और असुरों में उत्तम मैत्री हुयी और सबों ने अमृत प्राप्त करने के लिए क्षीरर्णव का मन्थन किया ॥५॥ देवताओं और दैत्यों द्वारा मंथन किए जाने पर उससे चार कन्यायें उत्पन्न हुयीं । सर्वप्रथम कलश में विद्यमान अमृत को वरुण ने देखा उसके बाद सोम ने उसे देखा चारों कन्याओं ने पहले देवताओं का कल्याण करना चाहा ॥६-७॥ एक कन्या का नाम लक्ष्मी था, दूसरी का नाम वारुणी देवी था । तीसरी का नाम ज्येष्ठा और चौथी का नाम कामोदा था ॥८॥ उनमें पहले श्रेष्ठ ज्येष्ठा उत्पन्न हुयी, इसीलिए लोक में वह ज्येष्ठा कहलाती हैं तथा पूजित हैं ॥९॥ वारुणी देवी पान स्वरूपिणी हुयी और वे दुग्ध के फेन से उत्पन्न हुयीं । अमृत के तरङ्ग से कामोदा उत्पन्न हुयी ॥१०॥

अमृतादुत्थिता देवी कामोदा नाम पुण्यदा। विष्णोः प्रीत्यै भविष्ये तु वृक्षरूपं प्रयास्यति ॥१३॥
विष्णुप्रीतिकरी सा तु भविष्यति सदैव हि। तुलसी नाम सा पुण्या भविष्यति न संशयः ॥१४॥
तया सह जगन्नाथो रमिष्यति न संशयः। तुलस्याः पत्रमेकं यो नीत्वा कृष्णाय दास्यति॥१५॥
मेने तस्योपकाराणां किमस्मै च ददाम्यहम्।
इत्येवं चिन्तयेन्नित्यं तस्य प्रीतिकरो भवेत् ॥१६॥
एवं कामोदनामासौ पूर्वं जाता समुद्रजा। यदा सा हसते देवी हर्षगद्गदभाषिणी॥१७॥
सौहृद्यानि सुगन्धीनि सुखात्तस्याः पतन्ति वै।
अम्लानानि सुपुष्पापि यो गृह्णाति समुद्यतः ॥१८॥
पूजयेच्छङ्करं देवं ब्रह्माणं माधवं तथा। तस्य देवाः प्रतुष्यन्ति यदिच्छति ददन्ति तत् ॥१९॥
रोदित्येषा यदा सा च केन दुःखेन दुःखिता।
नेत्राश्रुभ्यो हि तस्यास्तु प्रभवन्ति पतन्ति च ॥२०॥
तानि चैव महाभाग ! हृद्यानि सुमहानि च। सौरभेण बिना तैस्तु यः पूजयति शङ्करम् ॥२१॥
तस्य दुःखं च सन्तापो जायते नात्र संशयः।
पुष्पैस्तु तादृशैर्देवान्सकृदर्चति पापधीः ॥२२॥
तस्य दुःखं प्रकुर्वन्ति देवास्तत्र न संशयः। एतत्ते सर्वमाख्यातं कामोदाख्यानमुत्तमम्॥२३॥
अथ कृष्णो विचिन्त्यैव दृष्ट्वा विक्रमसाहसम्।
विहुण्डस्यापि पापस्य उद्यमं साहसं तदा ॥२४॥

सोमराज तथा लक्ष्मी ये दोनों अमृत से उत्पन्न हुयी। सोम त्रैलोक्य का भूषण और शङ्करजी को प्रिय हुआ॥११॥ वारुणी देवी देवताओं की मृत्यु तथा रोग को दूर करने वाली हुयी। ज्येष्ठा कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को पुण्य प्रदान करने वाली हुयीं ॥१२॥ अमृत से उत्पन्न कामोदा नाम की देवी वह पुण्य प्रदान करने वाली थीं। भविष्यत् काल में वे भगवान् विष्णु को प्रसन्नता देने वाली वृक्ष हो गयी ॥१३॥ वे सदा विष्णु को प्रसन्न करने वाली हैं। उस पवित्र वृक्ष का नाम तुलसी होगा ॥१४॥ उसके साथ भगवान् विष्णु रमण करेंगे जो व्यक्ति तुलसी का एक पत्ता भी लाकर भगवान् को प्रदान करेगा ॥१५॥ भगवान् मानते हैं कि उसके द्वारा किये गये उपकार का मैं कौन सा फल प्रदान करूँ। इस तरह से चिन्तन करते हुए भगवान् उस व्यक्ति को कल्याण प्रदान करने वाले होते हैं ॥१६॥ इस तरह से वह कामोदा पहले समुद्र से उत्पन्न हुयी। इसतरह से गद्गद स्वर से बोलने वाली वह देवी जब हँसती है ॥१७॥ सुन्दर सुगन्धित उसके मुख से निकलती है। जो सावधान होकर उन स्वच्छ पुष्पों को लेता है ॥१८॥ तथा उससे भगवान् शिव, ब्रह्माजी तथा भगवान् माधव की पूजा करता है, उसके ऊपर वे देवता प्रसन्न हो जाते हैं, और वह जो चाहता है, उसको वही वस्तु प्रदान करते हैं ॥१९॥ यदि वह किसी दुःख से दुःखी होकर रोती है, उस समय उसके नेत्रों की आँसुओं से वें निकलते हैं ॥२०॥ हे महाभाग ! वे भी अत्यन्त मनोहर पुष्प होते हैं किन्तु उसमें सुगन्धि नहीं होती है। उन पुष्पों से जो शङ्करजी की पूजा करता है उसको दुःख सन्ताप ही प्राप्त होते हैं। वह पापी उसी तरह के पुष्पों से देवताओं की पूजा करता है ॥२१-२२॥ उसके कारण उसे वे देवता उसको दुःख देते हैं। इस तरह से मैंने तुम्हें सम्पूर्ण कामोदा की कथा को सुनाया ॥२३॥ उसके

नारदं प्रेषयामास मोहयैनं दुरासदम्। नारदस्त्वथ संश्रुत्य वाक्यं विष्णोर्महात्मनः ॥२५॥
गच्छमानं दुरात्मानं कामोदां प्रति दानवम्। गत्वा तमाह दैत्येन्द्रं नारदः प्रहसन्निव ॥२६॥

क्व यासि त्वं च दैत्येन्द्र ! सत्वरं च समातुरः ।
साम्प्रतं केन कार्येण कस्यार्थं केन नोदितः ॥२७॥

ब्रह्मात्मजं नमस्कृत्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिः । कामोदपुष्पार्थमहं प्रस्थितो द्विजसत्तम ॥२८॥

तमुवाच स धर्मात्मा पुष्पैः किं ते प्रयोजनम् ।
विप्रवर्यं पुनः प्राह कार्यकारणमात्मनः ॥२९॥

नन्दनस्य वनोद्देशे काचिन्नारी वरानना। तस्या दर्शनमात्रेण गतोऽहं कामवश्यताम् ॥३०॥

तया प्रोक्तोऽस्मि विप्रेन्द्र पुष्पैः कामोदसम्भवैः ।
पूजयस्व महादेवं पुष्पैस्तु सप्तकोटिभिः ॥३१॥
ततस्ते सुप्रिया भार्या भविष्यामि न संशयः ।
तदर्थे प्रस्थितोऽस्मद्य कामोदाख्यं पुरं प्रति ॥३२॥
तामहं कामयिष्यामि सिन्धुजां शृणु साम्प्रतम् ।
मनोल्लासैर्महाहासैर्हासयिष्याम्यहं पुनः ॥३३॥

प्रीता सती महाभागा हसिष्यति पुनःपुनः। तद्धास्यं गद्गदं विप्र मम कार्यप्रवर्द्धनम्॥३४॥

तस्माद्धास्यात्पतिष्यन्ति दिव्यानि कुसुमानि च ।
तैस्तु देवमुमाकान्तं पूजयिष्यामि साम्प्रतम् ॥३५॥

तेन पूजाप्रदानेन तुष्टो दास्यति मे फलम्। ईश्वरः सर्वभूतेशः शङ्करो लोकभावनः ॥३६॥

नारद उवाच

तत्र दैत्य न गन्तव्यं कामोदाख्ये पुरोत्तमे। विष्णुरस्ति सुमेधावी स वै दैत्यक्षयावहः ॥३७॥

बाद श्रीभगवान् ने इस तरह से विचार करके तथा विहुंड के साहस तथा पराक्रम को देखकर ॥२४॥ नारदजी को यह कहकर भेजा कि जाकर विहुंड को मोहित करो । भगवान् विष्णु के वाक्य को सुनकर नारदजी ॥२५॥ कामोदा के पास जाते हुए दुष्ट दानव के पास जाकर हँसते हुए पूछे, दैत्येन्द्र इतनी आतुरता पूर्वक कहाँ जाते हो ? किसने तुम्हें भेजा है ? किस कार्य से जाते हो ?॥२६-२७॥ उसने नारदजी को देखकर हाथ जोड़कर कहा— द्विजश्रेष्ठ ! मैं कामोदा पुष्प को लाने के लिए जा रहा हूँ ॥२८॥ धर्मात्मा नारदजी ने उससे पूछा कि पुष्पों को लाकर क्या करोगे ? उसके बाद विहुंड ने नारदजी से अपने कार्य तथा कारण को बतलाते हुए कहा ॥२९॥ नन्दन वन में एक सुन्दर नारी है, उसको देखने मात्र से मैं कामार्त हो गया ॥३०॥ हे विपेन्द्र ! उसने मुझसे कहा कि कामोदा के सात करोड़ पुष्पों से तुम शङ्कर की पूजा करो ॥३१॥ उसके बाद मैं निश्चित रूप से तुम्हारी प्रियतमा पत्नी बन जाऊँगी उसी के लिए मैं कामोद नगर में जा रहा हूँ ॥३२॥ मैं उस सिन्धु पुत्री को प्रसन्न करूँगा और मन से उल्लास भरने वाले महापुरुषों के द्वारा उसको मैं हँसाऊँगा ॥३३॥ उससे प्रसन्न होकर वह बार-वार हँसेगी । हे विप्र ! उसकी हँसी से मेरे कार्य की सिद्धि होगी ॥३४॥ उसकी हँसी से दिव्य पुष्प गिरेंगे । उन पुष्पों से पार्वती पति शङ्करजी की मैं पूजा करूँगा ॥३५॥ उस पूजा करने से प्रसन्न होकर शिवजी मुझे अनुकूल फल प्रदान करेंगे।

येनोपायेन पुष्पाणि कामोदाख्यानि दानवः । तव हस्ते प्रयास्यन्ति तमुपायं वदाम्यहम्॥३८॥
गङ्गातोयेषु दिव्यानि पतिष्यन्ति न संशयः। वाहितानि जलैर्दिव्यैरागमिष्यन्ति साम्प्रतम्॥३९॥
तानि त्वं तु प्रति गृहाण सुहृद्यानि महान्ति च ।
गृहीत्वा तानि पुष्पाणि साधयस्व मनीषितम् ॥४०॥
नारदो दानवश्रेष्ठो मोहयित्वा ततः पुनः । ततश्च स तु धर्मात्मा चिन्तयामास वै पुनः ॥४१॥
कथमश्रूणि सामुञ्चेत्केनोपायेन दुःखिता । चिन्तमानस्य तस्यैवं क्षणं वै नारदस्य च ॥४२॥
ततो बुद्धिः समुत्पन्ना कामोदाख्यपुरं गतः ॥४३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे कामोदाख्याने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय

कुञ्जल उवाच

कामोदाख्यं पुरं दिव्यं सर्वदेवसमाकुलम् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थमपश्यन्नारदस्ततः ॥१॥
कामोदाया गृहं प्राप्य प्रविवेश द्विजोत्तमः। कामोदां तु ततो दृष्ट्वा सर्वकामसमाकुलम्॥२॥

वे ईश्वर हैं, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं तथा लोकों का कल्याण करने वाले शिवजी हैं ॥३६॥ **नारदजी ने कहा—** हे दैत्य ! उस कामोद नामक उत्तम नगर में आप न जायँ । वहाँ पर सभी दैत्यों का विनाश करने वाले मेधावी विष्णु का निवास है ॥३७॥ जिस उपाय से कामोद पुष्प तुम्हारे हाथ लगेंगे उस उपाय को मैं बतलाता हूँ ॥३८॥ गङ्गा जल के दिव्य जल में गिरे हुए वे दिव्य पुष्प बहकर निश्चित रूप से आयेंगे ही॥३९॥ उन अत्यन्त मनोहर महान् पुष्पों को आप ले लें । उन पुष्पों को तुम लेकर अपने अभिप्रेत कार्य को सिद्ध करो ॥४०॥ उस दानव श्रेष्ठ को मोहित करके नारदजी ने पुनः विचार किया कि ॥४१॥ वह दुःखी होकर अपने आँसुओं को कैसे बहायेगी ? इस तरह से नारदजी ने क्षणभर विचार किया ॥४२॥ उसके मन में बुद्धि आ गयी और वे कामोद नगर में चले गये ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११९।।

नारदजी द्वारा कामोदा के स्वप्न का विचार शरीरात्मा तत्त्व का वर्णन

कुञ्जल ने कहा— सभी देवताओं से भरा हुआ कामोद नामक दिव्य गनर है । वह सभी काम्य पदार्थों से समृद्ध है । उस नगर में नारदजी गये ॥१॥ कामोदा के घर आकर उसके घर में वे गये । वहाँ उन्होंने सभी काम्य पदार्थों से परिपूर्ण कामोदा को देखा ॥२॥ कामोदा ने नारदजी की स्वागतमय सुन्दर

तया सम्पूजितो विप्रः सुवाक्यैः स्वागतादिभिः ।
दिव्यासने समारूढस्तां पप्रच्छ द्विजोत्तमः ॥३॥
सुखेन स्थीयते भद्रे विष्णुतेजः समुद्भवे। अनामयं च पप्रच्छ आशीर्भिरभिनन्द्य ताम् ॥४॥

कामोदोवाच

प्रसादाद्भवतां विष्णोः सुखेन वर्तयाम्यहम् । कथयस्व महाप्राज्ञ त्वं प्रश्नोत्तरकारणम् ॥५॥
महामोहः समुत्पन्नो ममाङ्गे मुनिपुङ्गव । व्यापकः सर्वलोकानां ममाङ्गे मतिनाशकः ॥६॥
तस्मान्निद्रासमुत्पन्ना यथा मर्त्येषु वर्तते। सुप्तया तु मया दृष्टः स्वप्नो वै दारुणो मुने ॥७॥
केनाप्युक्तं समेत्यैव पुरतो द्विजसत्तम। अव्यक्तोऽसौ हृषीकेशः संसारं स गमिष्यति॥८॥
तदा प्रभृतिः दुःखेन व्यापिताऽहं महामते। तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि भवाञ्ज्ञानवतांवरः॥९॥

नारद उवाच

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ।
स्वप्नः प्रवर्तते भद्रे ! मानवेषु न संशयः ॥१०॥
न जायते च देवेषु स्वप्नो निद्रा च सुन्दरी। आदित्योदयवेलायां दृश्यते स्वप्न उत्तमः॥११॥
सत्स्वप्नो मानवानां हि पुण्यस्य फलदायकः ।
अन्यदेव प्रवक्ष्यामि स्वप्नस्य कारणं शुभे ॥१२॥
महावातान्दोलनैश्च चलन्त्यापो वरानने । त्रुटन्त्यम्बुकणाः सूक्ष्मास्तस्मादुदकसञ्चयात् ॥१३॥
बहिरेव पतत्येते निर्मलाम्बुकणाः शुभे । पुनर्लयं प्रयान्त्येते दृश्यादृश्या भवन्ति वै॥१४॥
तद्वत्स्वप्नस्य वै भावः कथ्यते शृणु भामिनि !।
आत्मा शुद्धो विरक्तस्तु रागद्वेषविवर्जितः ॥१५॥

वाक्यों द्वारा पूजा की । दिव्य आसन पर बैठ जाने के बाद नारदजी ने उससे पूछा ॥३॥ हे भद्रे ! हे भगवान् विष्णु के तेज से उत्पन्न देवि ! तुम सुख पूर्वक तो हो । इसके बाद उन्होंने अपने आशीर्वचनों से अभिनंदित करके उसके स्वास्थ्य के विषय में पूछा ॥४॥ **कामोदा ने कहा—** आपकी तथा भगवान् विष्णु की कृपा से मैं सुखी हूँ । हे महाप्राज्ञ ! आपने इस तरह का प्रश्न क्यों पूछा हैं ?॥५॥ हे महामुने ! मुझको तो महामोह हो रहा है। महामोह तो सम्पूर्ण लोकों में व्यापक है और मेरे अङ्ग में भी गया है । उससे बुद्धि का नाश होता है । जैसे मनुष्यों में होती है उसी तरह से मुझको नींद लगने लग गयी है । हे मुने ! सोयी हुयी मैंने भयङ्कर स्वप्न देखा है । हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे समक्ष आकर किसी ने कहा अव्यक्त हृषीकेश संसार में चले जायेंगे ॥६-८॥ हे महामते ! उसी समय से मैं दुःखी हूँ । आप तो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, आप उसका मुझे कारण बतलाइये ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** हे भद्रे ! मनुष्यों में तीन प्रकार के स्वप्न होते हैं, वातजन्य, पित्त जन्य तथा कफजन्य ॥१०॥ हे सुन्दरि ! देवताओं को स्वप्न तथा नींद नहीं होते हैं । सूर्योदय की बेला में दिखने वाला स्वप्न उत्तम होता है ॥११॥ मनुष्यों को सत्स्वप्न का पुण्य फल मिलता है । हे शुभे ! स्वप्न के दूसरे कारणों को भी बतलाता हूँ ॥१२॥ जैसे महावात्या के चलने से हे वरानने! जल चंचल हो जाते हैं उस जल समूह से छोटे-छोटे जल के कण टूटते रहते हैं ॥१३॥ ये शुभ जल कण बाहर ही गिरते हैं । फिर ये विनष्ट होकर दृश्य तथा अदृश्य दोनों प्रकार के हो जाते हैं ॥१४॥ हे भामिनि!

पञ्चभूतात्मकानां च मुषित्वैव सुनिश्चलः। षड्विंशतिसुतत्त्वानां मध्ये चैष विराजते ॥१६॥
शुद्धात्मा केवलो नित्यः प्रकृतेः सङ्गतिं गतः ।
तद्भावैर्वायुरूपैश्च चलते स्थानतो यदा ॥१७॥
आत्मनस्तेजसश्चैव प्रतितेजः प्रजायते। अन्तरात्मा शुभं नाम तस्य एव प्रकथ्यते ॥१८॥
पयसश्च यथा भिन्ना भवन्त्यम्बुकणाः शुभे। आत्मनस्तु तथा तेज अन्तरात्मा प्रकथ्यते ॥१९॥
स हि पृथ्वी स वै वायुः सचाऽप्याऽऽकाश एव हि ।
स वै तोयं स दीप्येत एते पञ्च पुरा कृताः ॥२०॥
आत्मनस्तेजसो भूता मलरूपा महात्मनः। तस्यापि सङ्गतिं प्राप्ता एकत्वं हि प्रयान्ति ते ॥२१॥
स्वात्मभावप्रदोषेण नाशयन्ति वरानने। तत्पिण्डमन्यमिच्छन्ति बारं बारं वरानने ॥२२॥
तेषां क्रीडाविहारोऽयं सृष्टिसम्बन्धकारणम्। उदकस्य तरङ्गस्तु जायते च विलीयते ॥२३॥
पुनर्भूतिः पुनर्हानिस्तादृशस्य पुनःपुनः । अपां रूपस्य दृष्टान्तं तद्वदेषां न संशयः ॥२४॥
आत्मा न नश्यते देवि तेजो वायुर्न नश्यति। न नश्यतो धराकाशौ न नश्यन्त्याप एव च ॥२५॥
पञ्चैव आत्मना सार्द्धं प्रभवन्ति प्रयान्ति च। आत्मादयो ह्यमी भद्रे नित्यरूपा न संशयः॥२६॥
पिण्ड एव प्रणश्येत तेषां सञ्जात एव च। विषयाणां सुदोषैः स रागद्वेषादिभिर्हतः ॥२७॥
प्राणाः प्रयान्ति वै पिण्डात्पञ्चपञ्चात्मका द्विज ! ।
पिण्डान्ते वसते आत्मा प्रतिरूपस्तु तस्य च ॥२८॥
अतरात्मा यथा चाग्नेः स्फुल्लिङ्गस्तु प्रकाशते ।
तथा प्रकाशमायाति दृश्यादृश्यः प्रजायते ॥२९॥

उसी तरह के स्वप्न के भाव को बतलाया गया है । आत्मा शुद्ध, राग एवं द्वेष से रहित तथा विरक्त है॥१५॥ पञ्चभूतात्मक तत्त्व (शरीर) ही निश्चल होकर सोता है । छब्बीस तत्त्वों में ही आत्मा रहता है॥१६॥ केवल तथा शुद्ध आत्मा ही प्रकृति के संसर्ग को प्राप्त करके उसी प्रकार के वायु से जब अपने स्थान से चलता है ॥१७॥ तो आत्मा और तेज के प्रति तेज उत्पन्न होता है । उसी को शुभ नामक अन्तरात्मा कहा जाता है ॥१८॥ हे शुभे ! जिस तरह जल से जल कण भिन्न होते हैं उसी तरह आत्मा का तेज अन्तरात्मा कहलाता है ॥१९॥ वही पृथिवी, वही वायु तथा वही आकाश है । वही जल है और वही तेज है, ये पाँच पहले ही निर्मित हुए ॥२०॥ ये आत्मा के तेज से उत्पन्न उसके मल स्वरूप हैं । वे भी आत की सङ्गति को प्राप्त करके एक हो जाते हैं ॥२१॥ हे वरानने ! वे अपने आत्मा के दोष से उसको नष्ट कर देते हैं। उसके कारण वे बार-बार शरीर को प्राप्त करना चाहते हैं ॥२२॥ उन सबों का जो यह क्रीड़ा विहार ही सृष्टि के सम्बन्ध का कारण है । जल का तरङ्ग तो उत्पन्न होता है और लीन होता है ॥२३॥ उसकी बार-बार उत्पत्ति और नाश होता रहता है । जिस तरह जल का उदाहरण है, उसी तरह से इन सबों की (पञ्चभूतों की) स्थिति क्षणिक है ॥२६॥ पञ्च भूतों के संघात स्वरूप शरीर का ही नाश होता है । वह विषयों के प्रति होने वाले राग द्वेष के कारण विनष्ट होता है ॥२७॥ पञ्चभूतात्मक पाँचों प्राण शरीर से बाहर निकल जाता है । पिण्ड के भीतर परमात्मा का प्रतिभूत आत्मा निवास करता है ॥२८॥ जिस तरह अग्नि का स्फुलिङ्ग प्रकाशित होता है उसी तरह से अन्तरात्मा भी दृश्य तथा अदृश्य रूप से प्रकाशित होता

शुद्धात्मा च परं ब्रह्म सदा जागर्ति नित्यशः ।
अन्तरात्मा प्रबद्धस्तु प्रकृतेश्च महागुणैः ॥३०॥
अन्नाहारेण सम्पुष्टैरन्तरात्मा सुखं व्रजेत् । सुसुखाज्जायते मोहस्तस्मान्मनः प्रमुह्यति ॥३१॥
पश्चात्सञ्जायते निद्रा तामसी लयवर्द्धिनी । नाडीमार्गेण यः सूर्यो मेरुमुल्लङ्घ्य गच्छति॥३२॥
तदा रात्रिः प्रजायेत यावन्नोदयते रविः । विषयान्धकारैर्मुक्तस्तु अन्तरात्मा प्रकाशते॥३३॥
भावैस्तत्त्वात्मकानां तु पञ्चतत्त्वैः प्रपोषितैः ।
पूर्वजन्मास्थितैः पिण्डैरन्तरात्मा प्रगृह्यते ॥३४॥
स यास्यति च वै स्थानमुच्चावचं महामते । संसार अन्तरात्मा वै दोषैर्बद्धः प्रणीयते॥३५॥
कायं रक्षति जीवात्मा पश्चात्तिष्ठति मध्यगः ।
उदानः स्फुरते तीव्रस्तस्माच्छब्दः प्रजायते ॥३६॥
शुष्का भस्त्रा यथा श्वासं कुरुते वायुपूरिता। तद्वच्छब्दवशाच्छ्वासमुदानः कुरुते बलात्॥३७॥
आत्मनस्तु प्रभावेण उदानो बलवान्भवेत् । एवं कायः प्रमुग्धस्तु मृतकल्पः प्रजायते॥३८॥
ततो निद्रा महामाया तस्याङ्गेषु प्रयाति सा । हृदि कण्ठे तथा चास्ये नासिकाग्रे प्रतिष्ठति॥३९॥
बाहू सङ्कुच्य सन्तिष्ठेद्धृद्गतो नाभिमण्डले । आत्मनस्तु प्रभावाच्च उदानो नाम मारुतः ॥४०॥
प्रजायते महातीव्रो बलरोधं करोति सः । यथा रज्ज्वा प्रबद्धस्तु दारुकीलधरः स्थितः ॥४१॥
तथा चात्मसु संलग्नः प्राणवायुर्न संशयः । अन्तरात्मप्रसक्तस्तु प्राणवायुः शुभानने ! ॥४२॥
बुद्धिवद्रोहितो भद्रे अन्तरात्मा प्रधावति । पूर्वजन्मार्जितान्वासान्स्मृत्वा तत्र प्रधावति॥४३॥
तत्र संस्थो महाप्राज्ञः स्वेच्छया रमते पुनः । एवं नानाविधान्स्वप्नानन्तरात्मा प्रपश्यति॥४४॥

उत्पन्न होता है । उसी से मन मोहित होता है ॥३१॥ उसके बाद निद्रा उत्पन्न हो जाती है । वह तमोगुणी तथा लय को बढ़ाने वाला है । जब वह सूर्य नाड़ी के मार्ग से मेरु को पार कर जाता है ॥३२॥ उस समय रात्रि हो जाती है और वह सूर्योदय काल पर्यन्त रहती है । अन्तरात्मा तो विषयान्धकार से रहित है अतएव वह सदा प्रकाशित होता रहता है ॥३३॥ वह पञ्च तत्त्वात्मकों के पञ्च तत्त्वों से पोषित होता है । पूर्वजन्म में विद्यमान शरीरों से का सम्बन्ध होता है ॥३४॥ हे महामते ! वह अच्छे बुरे स्थानों में जाता है । संसार में अन्तरात्मा दोषों के कारण बद्ध हो जाता है । जीवात्मा शरीर की रक्षा करता है, उसके बाद मध्य में संचरण करने वाला उदान वायु बना रहता है । उससे शब्द होता है ॥३५-३६॥ जिस तरह से सुखी हुयी भस्त्रा (भाथी) वायु के भर जाने पर शब्द करती है, उसी तरह शब्द के कारण उदान वायु शब्द करता है॥३७॥ आत्मा के प्रभाव से उदान वायु बलवान् हो जाता है इस तरह से मोहित शरीर मृत के समान हो जाता है ॥३८॥ उसके बाद महामाया निद्रा, उसके अङ्गों में प्रवेश कर जाती है । वह हृदय, कण्ठ, मुख तथा नासिका के अग्रभाग में रहती है ॥३९॥ आत्मा के प्रभाव से उदान नामक वायु भुजाओं को सङ्कुचित करके हृदय में रहने वले नाभि मण्डल में चला जाता है ॥४०॥ वह सोते समय अत्यन्त तीव्र हो जाता है और बल का रोध (रोकने का काम) करता है । जैसे रस्सी से बँधी हुयी लकड़ी कील से लगी रहती है, उसी तरह प्राणवायु आत्मा से संलग्न रहता है । हे शुभानने ! आत्मा से लगा हुआ प्राणवायु बुद्धि के साथ रोहित (मछली) के समान दौड़ता रहता है । वह पूर्वजन्म में अर्जित वासों का स्मरण करके वहीं पर जाता

उत्तमांश्च विरुद्धांश्च कर्मयुक्तान्प्रपश्यति। गिरींस्तथा सुदुर्गांश्च उच्चावचान्प्रपश्यति ॥४५॥
तदेव वातिकं विद्धि कफवत्तद्वदाम्यहम्। जलं नदीं तडागं च पय:स्थानानि पश्यति ॥४६॥
अग्निं च पश्यते देवि बहुकाञ्चनमुत्तमम्। तदेव पैत्तिकं विद्धि भाव्यं चैव वदाम्यहम् ॥४७॥
प्रभाते दृश्यते स्वप्नो भव्यो वाऽभव्य एव च ।
कर्मयुक्तो वरारोहे लाभालाभप्रकाशकः ॥४८॥
स्वप्नस्याऽपि अवस्था ते कथिता वरवर्णिनि ।
तद्भाव्यं च वरारोहे विष्णोश्चैव भविष्यति ॥४९॥
तन्निमित्तं त्वया दृष्टो दुःस्वप्नः स तु प्रेक्षितः ॥५०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे कामोदाख्याने विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

कामोदोवाच

न विदुर्देवताः सर्वा यस्यान्तं रूपमेव च। यस्मिँल्लीनस्तु सर्वोऽयं स चैकात्मा प्रकथ्यते ॥१॥

है ॥४१-४३॥ वहीं पर रहने वाला वह महाप्राज्ञ अपनी इच्छा के अनुसार रमण करता है। इसी तरह से अन्तरात्मा अनेक प्रकार के स्वप्नों को देखता है ॥४४॥ वह उत्तम तथा विरुद्ध कर्मों से युक्त स्वप्नों को देखता है। वह पर्वतों, अत्यन्त कठिन दुर्गम स्थानों तथा ऊँचे-नीचे स्थानों को देखता है ॥४५॥ इस प्रकार का स्वप्न वातिक स्वप्न होता है। मैं कफज श्वप्न को भी बतलाता हूँ। कफज स्वप्न में जीव नदियों, जलों, जलाशयों आदि जल स्थानों को देखता है ॥४६॥ हे देवि ! पैत्तिक स्वप्न में जीव अग्नि तथा अनेक प्रकार के कांचन द्रव्यों को देखता है। यही पैत्तिक स्वप्न है। अब मैं इन सबों के फलों को बतलाता हूँ॥४७॥ प्रातः काल में जो भव्य (शुभ) अथवा अशुभ स्वप्न दिखता है, वही लाभ अथवा अलाभ को सूचित करता है ॥४८॥ अतएव हे वरारोहे ! स्वप्न का फल तो विष्णु को भी होगा ॥४९॥ उनके ही विषय में तो तुमने दुःस्वप्न देखा है ॥५०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२०॥

नारदजी को कामोदा को शोकन्वित करना, कामोदा की आँसुओं से निर्गन्ध पुष्पों की उत्पत्ति

कामोदा ने कहा— जिनके रूप तथा अन्त को कोई देवता भी नहीं जान सकता है, जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् लीन है, वही केवल आत्मा कहलाते हैं ॥१॥ हे नारदजी ! जिनकी माया का विस्तार यह

यस्य मायाप्रपञ्चस्तु संसारः शृणु नारद। कस्मात्प्रयाति संसारं मम स्वामी जगत्पतिः ॥२॥
पापैश्चापि सुपुण्यैश्च नरो बद्धस्तु कर्मभिः । संसारं सरते विप्र हरिः कस्माद्व्रजेद्वद॥३॥

नारद उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्कृतं तेन चक्रिणा। भृगोरग्रे प्रतिज्ञातं यज्ञरक्षां करोम्यहम् ॥४॥
इन्द्रस्य वचनात्सद्यो गतोऽसौ दानवैः सह । योद्धुं विहाय गोविन्दो भृगोश्चैव मखोत्तमम् ॥५॥
मखं त्यक्त्वा गते देवे पश्चात्तैर्दानवोत्तमैः। आगत्य ध्वंसितः सर्वः स यज्ञः पापचेतनैः॥६॥

हरिं क्रुद्धः स योगीन्द्रः शशाप भृगुरेव तम् ।
दशजन्मानि भुङ्क्ष्व त्वं मच्छापकलुषीकृतः ॥७॥
कर्मणः स्वस्य सम्भोगं सम्भोक्ष्यति जनार्दनः ।
तन्निमित्तं त्वया देवि दुःस्वप्नः परिवीक्षितः ॥८॥
इत्युक्त्वा तां गतो विप्रो ब्रह्मलोकं स नारदः ।
कृष्णस्यापि सुदुःखेन दुःखिता सा भवत्तदा ॥९॥

रुरोद करुणं बाला हाहेति रुदती मुहुः। गङ्गातीरोपविष्टा सा जलान्ते शृणु नन्दन ॥१०॥
सुनेत्राभ्यां तथाऽश्रूणि दुःखेनापि प्रमुञ्चति । तान्यश्रूणि प्रमुक्तानि गङ्गातोये पतन्त्यपि ॥११॥
जले चैवनिमज्जन्ति तस्याश्चाप्यश्रुबिन्दवः। सम्भवन्तिपुनस्तात पद्मरूपाणि तानि च ॥१२॥
गङ्गातोये प्रफुल्लानि वाहितानि प्रयान्ति वै। ददृशे दानवश्रेष्ठो विष्णुमायाप्रमोहितः ॥१३॥
दुःखजानि न जानाति मुनिना कथितान्यपि। हर्षेण महताऽऽविष्टः परिजग्राह सोऽसुरः ॥१४॥
पद्मैस्तु पुष्पितैः सोऽपि पूजयेद्गिरिजाप्रियम्। सप्तकोटिभिर्दैत्येन्द्रो विष्णुमायाप्रमोहितः ॥१५॥

सारा संसार है, वे मेरे स्वामी संसार में क्यों जायेंगे ॥२॥ मनुष्य तो पाप-पुण्य रूप कर्मों से बंधा रहता है, आप बतलायें कि श्रीहरि संसार में क्यों संसरण करेंगे ॥३॥ **नारदजी ने कहा**— हे देवि ! श्रीभगवान् ने जिन कर्मों को किया उन्हें मैं तुम्हें बतलाता हूँ । उन्होंने भृगु महर्षि के सामने प्रतिज्ञा किया कि मैं यज्ञ की रक्षा करूँगा ॥४॥ और वे भृगु महर्षि के उत्तम यज्ञ को छोड़कर दैत्यों से युद्ध करने के लिए इन्द्र के साथ चले गये ॥५॥ यज्ञ को छोड़ कर चले जाने के बाद बड़े-बड़े दानव आये और आकर उन पापियों ने उस यज्ञ को विध्वस्त कर दिया ॥६॥ उसके कारण क्रुद्ध होकर योगीन्द्र भृगु महर्षि ने श्रीहरि को शाप दिया कि मेरे शाप से दूषित होकर तुम उसका फल दश जन्मों तक भोगो । अतएव अपने कर्मों का फल तो भगवान् जनार्दन भोगेंगे ही । हे देवि ! उसी के कारण तुमने दुःस्वप्न को देखा है ॥७-८॥ यह कहकर देवर्षि नारद ब्रह्मलोक में चले गये । भगवान् के दुख से दुखित होकर ॥९॥ हे पुत्र ! गङ्गा के तट पर जल के सन्निकट बैठकर वह बाला बार-बार हाय-हाय करती हुयी करुण क्रन्दन करती रही ॥१०॥ दुःख के कारण उसके नेत्रों से आंसू बह रहे थे, वे आंसू गङ्गा के जल में गिरते थे ॥११॥ उसकी आंसुओं के बिन्दुएँ जल में डूब जाती थी । उसके बाद हे तात ! वे आँसू पद्मरूप हो जाते थे ॥१२॥ वे विकसित पुष्प गङ्गा के जल मे बहकर जाते थे । उन सबों को विष्णु की माया से मोहित विहुंड दानव ने देखा ॥१३॥ शुक्रमुनि के द्वारा कहने पर भी वह नहीं जानता था कि वे पुष्प दुःख देने वाले हैं । उसने अत्यन्त हर्षित होकर उन सबों को पकड़ लिया ॥१४॥ उन विकसित कमलों से वह शङ्करजी की पूजा करता था । विष्णु की माया से मोहित

अथ क्रुद्धा जगद्धात्री शङ्करं वाक्यमब्रवीत्। पश्यैतस्य विकर्मत्वं दानवस्य महामते ॥१६॥
शोकोत्पन्नैः प्रफुल्लैश्च भवन्तं परिपूजयेत्। प्राप्यते दुःखसंतापं मुदं प्राप्तं न चार्हति ॥१७॥

ईश्वर उवाच

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे अनेन पापकारिणा। सत्योद्यमः परित्यक्तः कामोदार्थः कृतः पुरा॥१८॥
शोकोत्पन्नानि पद्मानि गङ्गातोयगतानि वै । अयमेष प्रगृह्णाति कामाकुलितचेतनः ॥१९॥
पूजयेच्चापि दुष्टात्मा शोकसन्तापकारकैः। दुःखजैःशोकजैःपुष्पैस्तैः सुश्रेयः कथं भवेत् ॥२०॥
यादृशेनापि भावेन मामेव परिपूजयेत्। तादृशेनाऽपि भावेन अस्य सिद्धिर्भविष्यति ॥२१॥
सत्यध्यानविहीनोऽयं कामोदान्यस्तमानसः। सञ्जातः पापचारित्रो जहि देवि ! स्वतेजसा ॥२२॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं शम्भोश्चैव महात्मनः । अस्यैव संक्षयं शम्भो करिष्ये तव शासनात् ॥२३॥

एवमुक्त्वा ततो देवी तस्यापि वधकाङ्क्षया ।
वर्त्तते हि विहुण्डस्य वधोपायं व्यचिन्तयन् ॥२४॥

कृत्वा मायामयं रूपं ब्राह्मणस्य महात्मनः । पूजयेच्छङ्करं नाथं सुपुष्पै पारिजातजैः ॥२५॥

समेत्य दानवः पापो दिव्यां पूजां विनाशयेत् ।
कामाकुलः सुदुःखार्तस्तद्गतो भावतत्परः ॥२६॥

विष्णोश्चैव महामायां पूर्वदृष्टां च दानवः । सस्मार दानवः पापः कामबाणैः प्रपीडितः ॥२७॥
तस्याः स्मरणमात्रेण कन्दर्पेण बलीयसा । विरहाकुलदुःखार्तो रोदते हि मुहुर्मुहुः ॥२८॥

कालाकृष्टः स दुष्टात्मा शोकजातानि तानि सः ।
परिगृह्य समायातः पूजनार्थी महेश्वरम् ॥२९॥

उस दैत्येन्द्र ने सात करोड़ पुष्पों से पूजा की ॥१५॥ उसके कारण क्रुद्ध होकर जगन्माता ने शङ्करजी से कहा— हे महामते ! इस दानव के दुषित कर्म को आप देखें ॥१६॥ शोक से उत्पन्न तथा विकसित फुलों से जो आपकी पूजा करता है वह दुःख एवं सन्ताप प्राप्त करता है, उसको सुख नहीं मिल सकता है॥१७॥ **ईश्वर ने कहा—** हे भद्रे ! तुमने सत्य कहा है, यह पापी है, इसने सत्य के प्रयास का परित्याग किया है और कामोदा के लिए प्रयास कर रहा है ॥१८॥ शोक से उत्पत्र तथा गङ्गाजल में गिरे हुए फूलों को ही कामार्त बना हुआ वह लाता है ॥१९॥ यह दुष्ट शोक तथा सन्ताप कारक पुष्पों से पूजा करता है । इन दुःख तथा शोक जन्य पुष्पों से इसका कल्याण कैसे हो सकता है ?॥२०॥ जिस प्रकार की भावना से कोई मेरी पूजा करते हैं उस प्रकार के भाव से उसकी सिद्धि होगी ॥२१॥ यह सत्य तथा ध्यान से रहित है तथा इसका मन कामोदा में लगा हुआ है । यह पापी हो गया है अतएव हे देवि ! इसको तुम अपने तेज से मार दो ॥२२॥ इस प्रकार से शङ्करजी की बातों को सुनकर देवी ने कहा— हे शम्भो ! मैं आपकी आज्ञा से इसका ही विनाश कर दूँगी ॥२३॥ इस तरह से कहने के बाद देवी उस विहुंड का वध करने की इच्छा से उसका वध करने के उपाय को सोचीं ॥२४॥ वे अपनी माया से ब्राह्मण का रूप बनाकर पारिजात पुष्पों से शङ्करजी की पूजा करने लगीं । वह विहुंड आकर उस दिव्य पूजा को विनष्ट कर देता था। वह कमाकुल तथा दुःखार्त था । उसका मन सदा उस नारी में लगा रहता था ॥२५-२६॥ जिसको उसने पहले देखा था। उस भगवान् विष्णु की महामाया को वह काम पीड़ित दानव सदा स्मरण करता था ॥२७॥ उसका स्मरण करते ही काम से व्याकुल होकर दुःखी वह बार-बार रोता था ॥२८॥ काल के द्वारा आकृष्ट वह पापी शोक से उत्पत्र उन पुष्पों को लेकर महेश्वर की पूजा करने के लिए आया ॥२९॥ देवी ने पारिजात पुष्पों से जो

देव्या कृतां हि पूजां च सुपुष्पैः पारिजातजैः ।
तां निर्णाश्य सुलोभेन शोकजैः परिपूजयेत् ॥३०॥
नेत्राभ्यां तस्य दुष्टस्य बिन्दवस्तेऽश्रुसम्भवाः ।
अविरलास्ततो वत्स पतन्ति लिङ्गमस्तके ॥३१॥

देवी ब्राह्मणरूपेण तमुवाच महामते। को भवान्पूजयेद्देवं शोकाकुलमनाः सदा ॥३२॥
पतन्त्यश्रूणि देवस्य मस्तके शोकजानि ते । अपवित्राणि मे ब्रूहि एतमर्थं ममाग्रतः ॥३३॥

विहुण्ड उवाच

पूर्वं दृष्टा मया नारी सर्वसौभाग्यसम्पदा। सर्वलक्षणसम्पन्ना कामस्यायतनं महत् ॥३४॥
तस्या मोहेन सन्दग्धः कामेनाकुलतां गतः। तया प्रोक्तं हि सम्भोगे देहि मे दायमुत्तमम्॥३५॥
कामोदसम्भवैः पुण्यैः पूजयस्व महेश्वरम् । तेषां पुष्पकृतां मालां मम कण्ठे परिक्षिप॥३६॥

कोटिभिः सप्तसङ्ख्यातैः पूजयस्व महेश्वरम् ।
तदर्थं पूजयाम्येव ईश्वरं फलदायकम् ॥३७॥

कामोदसम्भवैः पुष्पैःदुलभैर्देवदानवैः ॥३८॥

श्रीदेव्युवाच

क्व ते भावः क्व ते ध्यानं क्व ते ज्ञानं दुरात्मनः ।
ईश्वरस्यापि सम्बन्धो नास्ति किंचित्त्वयैव हि ॥३९॥

कामोदाया वरं रूपं कीदृशं वद साम्प्रतम्। क्व लब्धानि सुपुष्पाणि तस्या हास्योद्भवानि च॥४०॥

विहुण्ड उवाच

भवं ध्यानं न जानामि न दृष्टा सा मया कदा ।
गङ्गातोयगतान्येव परिगृह्णामि नित्यशः ॥४१॥

पूजा की थी, उसको विनष्ट करके लोभ के कारण शोक जन्य पुष्पों से शिवजी की पूजा करने लगा ॥३०॥ उस दुष्ट के दोनों नेत्रों से अश्रुजन्य विन्दु उस समय अविरल रूप से शिवलिङ्ग के मस्तक पर गिरते थे॥३१॥ हे महामते ! ब्राह्मण का रूप धारण करके देवी ने उससे कहा— तुम कौन हो और शोकार्त मन से सदा पूजा करते हो ॥३२॥ तुम्हारे शोक जन्य अपवित्र आंसू शिवजी के मस्तक पर गिरते हैं, उसका कारण बतलाओ ॥३३॥ **विहुंड ने कहा**— मैंने पहले एक सभी प्रकार के सौभाग्य सम्पत्ति से सम्पन्न नारी को देखा। वह सभी लक्षणों से सम्पन्न मानो काम का आश्रय ही थी ॥३४॥ उसके मोह में पड़कर मेरा मन कामाकुल हो गया। उसने कहा कि मेरा सम्भोग करने के लिए तुम मुझे उत्तम दाय दो॥३५॥ उसने कहा कि कामोदाजन्य पुष्पों से तुम महेश्वर की पूजा करो और उन पुष्पों से वनी माला को मेरे गले में पहना दो॥३६॥ तुम सात करोड़ पुष्पों से महेश्वर की पूजा करो, उसी के कारण मैं फल प्रदान करने वाले महेश्वर की पूजा करता हूँ ॥३७॥ कामोद पुष्प तो देवताओं और दानवों के लिए दुर्लभ हैं। **श्रीदेवी ने कहा**— तुम्हारा भाव कहाँ है ? तुम्हारा ध्यान कहाँ है ? तथा तुम्हारा ज्ञान कहाँ है ? तुम्हारा ईश्वर से बिल्कुल ही सम्बन्ध नहीं है। बतलाओ कामोद का श्रेष्ठ रूप कैसा है ? तुमने कहाँ पर उसकी हंसी से उद्भूत इन पुष्पों को पाया ॥३८-४०॥ **विहुंड ने कहा**— मैं भाव तथा ध्यान को नहीं जानता हूँ। मैंने कभी भी कामोदा

तैरहं पूजयाम्येकं शङ्करं प्रवदाम्यहम्। ममाग्रे कथितं विप्र शुक्रेणापि महात्मना॥४२॥
वचनात्तस्य देवेशमर्चयामि दिने दिने। एतत्ते सर्वमाख्यातं यच्च पृष्टोऽस्मि साम्प्रतम् ॥४३॥

श्रीदेव्युवाच

कामोदारोदनाज्जातैः पुष्पैस्तैर्दुःखसम्भवैः। लिङ्गमर्चयसे दुष्ट ! प्रभाते नित्यमेव च ॥४४॥
यादृशेनापि भावेन पुष्पैश्च यादृशैस्त्वया। अर्चितो देवदेवेशस्तादृशं फलमाप्नुहि ॥४५॥
दिव्यपूजां विनाश्यैवं शोकपुष्पैः प्रपूजसि। असौ दोषस्तवैवाद्यं समुत्पन्नः सुदारुणः ॥४६॥
तस्माद्दण्डं प्रदास्यामि भुङ्क्ष्व स्वकर्मजं फलम् ।
तस्या वाक्यं समाकर्ण्य कालकृष्टो बभाष ताम् ॥४७॥
रे रे दुष्ट ! दुराचार ! मम कर्मप्रदूषक !। हन्मि त्वामिह खड्गेनण अनेनापि न संशयः ॥४८॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणं तं स निशितं खड्गमाददे ।
हन्तुकामः स दुष्टात्मा अभ्यधावत दानवः ॥४९॥
सा देवी विप्ररूपेण सङ्क्रुद्धा परमेश्वरी। स्वस्थानमागतं दृष्ट्वा हुङ्कारं विससर्ज ह ॥५०॥
तेन हुङ्कारनादेन पतितो दानवाधमः। निश्चेष्टः कामरूपेण वज्राहत इवाचलः॥५१॥
पतिते दानवे तस्मिन्सर्वलोकविनाशके ।
लोकाः स्वास्थ्यं गताः सर्वे दुःखतापविवर्जिताः ॥५२॥
एतस्मात्कारणाद्वत्स सा स्त्री वै परिदेवति। गङ्गातीरे वरारोहा दुःखव्याकुलमानसा॥५३॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥५४॥

को नहीं देखा है ॥४१॥ गङ्गा के जल में बहने वाले इन पुष्पों को मैं पकड़ लेता हूँ। उन पुष्पों से केवल शिव की पूजा करता हूँ ॥४२॥ हे विप्र महात्मा ! शुक्र ने मुझे बतलाया था, उनके ही कथनानुसार मैं प्रतिदिन शिवजी की पूजा करता हूँ ॥४३॥ आपने जो पूछा उन सारी बातों को मैंने बतला दिया । **श्रीदेवी ने कहा—** अरे दुष्ट ! कामोदा के रोने से उत्पन्न पुष्पों के ही द्वारा तुम प्रतिदिन प्रातःकाल लिङ्ग की पूजा करते हो । हे दुष्ट ! जिस तरह के भाव तथा जिस तरह के पुष्पों से तुमने ॥४४-४५॥ देव देवेश की पूजा की है, उसी तरह का तुम फल भोगो । तुम दिव्य पूजा को विनष्ट करके शोक पुष्पों से पूजा करते हो॥४६॥ यह तुम्हारे लिए आज अत्यन्त भयङ्कर दोष उत्पन्न हो गया है । इसीलिए मैं तुम्हें दण्ड दूँगा तुम अपने कर्म जन्य फल को भोगो ॥४७॥ उसके वाक्य को सुनकर काल से प्रेरित होकर उसने कहा। अरे दुराचारी दुष्ट ! मेरे कर्म की निन्दा करने वाले ॥४८॥ मैं तुम्हें इस खड्ग से यहाँ मार देता हूँ । इस तरह से उसने ब्राह्मण को कहकर तीक्ष्ण खड्ग को उठा लिया ॥४९॥ उस ब्राह्मण को मारने के लिए वह दुष्ट दौड़ पड़ा । विप्र रूप में विद्यमान परमेश्वरी देवी क्रुद्ध हो गयी ॥५०॥ अपने स्थान पर आये हुए उसको देखकर उन्होंने हुंकार किया । उस हुंकार की ध्वनि से वह अधम दानव गिर पड़ा । वह काम रूप से उसी तरह चेष्टा विहीन हो गया जिस तरह वज्र से मारा गया कोई पर्वत चेष्टा विहीन हो गया हो ॥५१॥ उस सर्व लोक विनाशक दैत्य के मर जाने पर सभी लोग दुःख एवं ताप से रहित होकर स्वस्थ हो गये ॥५२॥ हे वत्स! इसी कारण से वह स्त्री गङ्गा के तट पर दुःख से व्याकुल मन से रोती थी । इस तरह से तुमने जो पूछा था उन

विष्णुरुवाच

एवमुक्त्वा सुपुत्रं तं कुञ्जलस्य (।) अण्डजेश्वरः ।
विरराम महाप्राज्ञः किञ्चिन्नोवाच भूपते ! ॥५५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे कामोदाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

एक सौ बाइसवाँ अध्याय

विष्णुरुवाच

कुञ्जलो धर्मपक्षी स इत्युक्त्वा तान्सुतान्प्रति ।
विरराम महाप्राज्ञः किंचिन्नोवाच तान्प्रति ॥१॥
वटाधःस्थो द्विजश्रेष्ठस्तमुवाच महाशुकम्। को भवान्धर्मवक्ता हि पक्षिरूपेण वर्तते ॥२॥
किं वा देवोऽथ गन्धर्वः कि वा विद्याधरो भवान् ।
कस्य शापादिमां प्राप्तो योनिं कीरस्य पातकीम् ॥३॥
कस्मात्ते ईदृशं ज्ञानं वर्ततेऽतीन्द्रियं शुक !। सुपुण्यस्य तु कस्यापि कस्य वै तपसः फलम् ॥४॥
किं वा च्छन्नेन रूपेण अनेनापि महामते ।
कस्त्वं सिद्धोऽसि देवो वा तन्मे कथय कारणम् ॥५॥

सारी बातों को मैंने कह दिया इस तरह से अपने पुत्र को कहकर वह कुंजल नामक महाप्राज्ञ पक्षी चुप हो गया । आगे उसने कुछ भी नहीं कहा ॥५३-५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत, गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२१।।

कुञ्जल द्वारा विद्याधर के वंश का वर्णन

भगवान् विष्णु ने कहा— महाप्राज्ञ, धर्म पक्षी, कुञ्जल इस प्रकार से अपने पुत्रों से कहकर चुप हो गये उन सबों से वे कुछ भी नहीं कहें ॥१॥ वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए विप्र च्यवन महर्षि ने उस शुक से पूछा, धर्म का प्रवचन करने वाले पक्षी रूप में विद्यमान आप कौन हैं ?॥२॥ कोई देवता, गन्धर्व अथवा विद्याधर हैं ? आप किसके शाप से इस पापमयी शुक की योनि को प्राप्त किए हैं ?॥३॥ हे शुक ! अपको किस कारण से इस प्रकार का अतीन्द्रिय ज्ञान है ? यह किसी पुण्य का फल है अथवा किसी तपस्या का फल है ?॥४॥ अथवा आप इस रूप में छिपे हुए कोई सिद्ध अथवा देवता हैं ? यह आप मुझे बतलायें॥५॥ **कुञ्जल ने कहा—** हे सिद्ध ! मैं आपको और आपके वंश को जानता हूँ । आपके उत्तम गोत्र को भी मैं

कुञ्जल उवाच

भोः सिद्ध त्वामहं जाने कुलं ते गोत्रमुत्तमम् ।
विद्यां तपःप्रभावं च यस्माद् भ्रमसि मेदिनीम् ॥६॥

सर्वं विप्र ! प्रवक्ष्यामि स्वागतं तवसुव्रत । उपविश्याऽऽसने पुण्ये छायामाश्रय शीतलाम् ॥७॥

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा तस्माज्जज्ञे प्रजापतिः। ब्राह्मणस्तु गुणैर्युक्तो भृगुर्ब्रह्मसमो द्विजः ॥८॥

भार्गवो नाम तस्याऽऽसीत्सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।
तस्याऽन्वये भवान्विप्रश्च्यवनः ख्यातिमान्भुवि ॥९॥

नाहं देवो न गन्धर्वो नाहं विद्याधरः पुनः । योऽहं विप्र ! प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु॥१०॥

कश्यपस्य कुले जातः कश्चिद्ब्राह्मणसत्तमः ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वकर्मप्रकाशकः ॥११॥

विद्याधरेति विख्यातः कुलशीलगुणैर्युतः । राजमानः श्रिया विप्र ! आचारैस्तपसा तदा ॥१२॥

सम्बभुवुः सुतास्तस्य विद्याधरस्य ते त्रयः । वसुशर्मा नामशर्मा धर्मशर्मा च ते त्रयः ॥१३॥

तेषामहं धर्मशर्मा कनिष्ठो गुणवर्जितः। वसुशर्मा मम भ्राता वेदशास्त्रार्थकोविदः॥१४॥

आचारेण सुसम्पन्नो विद्यादिसुगुणैः पुनः । नामशर्मा महाप्राज्ञस्तद्वच्चासीद्गुणाधिकः ॥१५॥

अहमेको महामूर्खः सञ्जातः शृणु सत्तम !। विद्यानामुत्तमं विप्र ! भावमर्थं शुभं कदा॥१६॥

न शृणोमि न वै यामि गुरुगेहमनुत्तमम्। ततस्तु जनको मे तु मामेवं परिचिन्तयेत् ॥१७॥

धर्मशर्मेति पुत्रस्य नामाऽस्य तु निरर्थकम् । सञ्जातः क्षितिमध्ये तु न विद्वान्मे गुणाकरः ॥१८॥

जानता हूँ । जिसके कारण आप पृथिवी पर भ्रमण कर रहे हैं आपकी उस विद्या तथा तप के प्रभाव को भी मैं जानता हूँ ॥६॥ हे विप्र ! आपका स्वागत है । मैं आपको इन सारी बातों को पवित्र आसन पर तथा शीतल छाया में बैठकर बतलाता हूँ ॥७॥ अव्यक्त से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी । उनसे भृगु प्रजापति की उत्पत्ति हुयी । वे ब्राह्मण के गुणों से युक्त हैं । हे द्विज ! वे ब्रह्माजी के ही सामने प्रभावशाली हैं ॥८॥ उनके पुत्र भार्गव मुनि हुए । वे सभी धर्मों के अर्थों के ज्ञाता थे । हे विप्र ! उन्हीं के वंश में आप च्यवन नामक विप्र उद्भूत हैं । आप पृथिवी पर ख्याति प्राप्त हैं ॥९॥ मैं न तो देवता हूँ, न गन्धर्व हूँ और न विद्याधर हूँ । हे विप्र ! मैं जो हूँ उसे बतला रहा हूँ । उसे आप सुनें ॥१०॥ कश्यप महर्षि के वंश में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए । वे वेदों तथा वेदाङ्गों के ज्ञाता तथा सभी कर्मों के प्रकाशक थे ॥११॥ उनका विख्यात नाम विद्याधर था । वे कुल, शील तथा गुणों से युक्त थे । वे विप्र आचार और तपस्या के ऐश्वर्य से सम्पन्न थे ॥१२॥ उन विद्याधर के तीन पुत्र हुए, वसुशर्मा, नाम शर्मा और धर्मशर्मा ॥१३॥ उन तीनों में मैं छोटा था । मेरा नाम धर्मशर्मा मुझमें कोई गुण नहीं था । मेरे बड़े भाई वसुशर्मा वेदों तथा शास्त्रों के अर्थ के विषय में पारङ्गत थे ॥१४॥ वे सदाचार तथा विद्या आदि गुणों से युक्त थे । उन्हीं के समान गुणों से सम्पन्न महाप्राज्ञ नाम शर्मा भी थे ॥१५॥ हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं ही केवल महामूर्ख था । हे विप्र ! विद्यमान का उत्तम और कल्याणकारी गुण मुझ में कभी नहीं था ॥१६॥ मैं न तो श्रवण करता था और न गुरुकुल में ही जाता था । उसके बाद मेरे पिता मेरे विषय में सोचने लगे ॥१७॥ कि इसका धर्म शर्मा यह नाम पृथिवी में निरर्थक ही है । यह विद्वान् तो हैं नहीं ॥१८॥ इस तरह से विचार करके मेरे पिता दुःखी होकर मुझसे कहे।

इति सञ्चिन्त्य धर्मात्मा मामुवाच सुदुःखितः ।
व्रज पुत्र गुरोर्गेहं विद्यार्थं परिसाधय ॥१९॥
एवमाकर्ण्य तत्तस्य पितुर्वाक्यं मया शुभम्। नाहं तात गमिष्यामि गुरोर्गेहं सुदुःखदम् ॥२०॥
यत्र वै ताडनं नित्यं भ्रूभङ्गादि च क्रोशनम् ।
अन्नं न दृश्यते तत्र कर्मणा शृणु सत्तम ! ॥२१॥
दिवारात्रौ न निद्रास्ति नास्ति सुखस्य साधनम् ।
तस्माद्दुःखमयं तात न यास्ये गुरुमन्दिरम् ॥२२॥
विद्याकार्यं करिष्ये न क्रीडार्थमहमुत्सुकः। भोक्ष्ये स्वप्स्ये प्रसादात्ते करिष्ये क्रीडनं पितः !॥२३॥
डिम्भैः सार्द्धं सुखेनापि दिवारात्रमतन्द्रितः । मामुवाच स धर्मात्मा मूढं ज्ञात्वा सुदुःखितः ॥२४॥
मा पुत्र साहसं कार्षीर्विद्यार्थमुद्यमं कुरु । विद्यया प्राप्यते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथाऽतुला ॥२५॥
ज्ञानं स्वर्गश्च मोक्षश्च तस्माद्विद्यां प्रसाधय। पूर्वं सुदुःखमूला तु पश्चाद्विद्या सुखप्रदा ॥२६॥
तस्मात्साधय पुत्र त्वं विद्यां गुरुगृहं व्रज। पितुर्वाक्यमकुर्वाण अहमेवं दिने दिने ॥२७॥
यत्र यत्र स्थितो नित्यमर्थहानिं करोम्यहम्। उपहासः कृतो लोकैर्मम विप्र ! प्रकुत्सनम् ॥२८॥
मम लज्जा समुत्पन्ना जीवनाशकरी तदा। विद्यार्थमुद्यतो विप्र ! कं गुरुं प्रार्थयाम्यहम् ॥२९॥
इति चिन्तापरो जातो दुःखशोकसमाकुलः। कथं विद्यामहं जाने कथं विन्दाम्यहं गुणान् ॥३०॥
कथं मे जायते स्वर्गः कथं मोक्षं व्रजाम्यहम् ।
इत्येवं चिन्तयन्विप्र वार्द्धक्यमगमं पुनः ॥३१॥

हे पुत्र ! गुरुकुल में जाकर विद्याऽध्ययन करो ॥१९॥ पिता के इस प्रकार के शुभ वाक्य को सुनकर मैंने कहा— हे पितः ! मैं दुःखप्रद गुरुकुल में नहीं जाऊँगा ॥२०॥ वहाँ प्रतिदिन मार खाना पड़ता है, लोग भौंहें को टेढी करके डाँटते हैं। वहाँ अन्न भी नहीं मिलता है। रात-दिन काम में लगे रहना पड़ता है। सोने को नहीं मिलता है। वहाँ कोई भी सुख का साधन नहीं है। अतएव हे तात ! मैं दुःखमय गुरुकुल में नहीं जाऊँगा ॥२१-२२॥ मैं विद्यार्जन नहीं करूँगा । मैं खेलने का काम करूँगा । हे पितः ! मैं खाऊँगा, सोऊँगा और आपके गृह में खेलने का काम करूँगा ॥२३॥ मैं बच्चों के साथ रात-दिन विना किसी आलस्य के खेलता रहूँगा। मुझको मूर्ख जानकर मेरे पिता अत्यन्त दुःखी होकर मुझे कहे ॥२४॥ **विद्याधर ने कहा—** हे पुत्र ! साहस मत करो, विद्या प्राप्त करने का प्रयास करो । विद्या से सुख, यश तथा अतुलनीय कीर्ति प्राप्त होती है ॥२५॥ उससे ज्ञान, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है । अतएव विद्या प्राप्त करो। विद्या तो पहले दुःख से प्राप्त होती है; किन्तु बाद में सुख देती है ॥२६॥ अतएव पुत्र ! विद्या प्राप्त करो। गुरुकुल में जाओ। मैं प्रतिदिन पिता के बातों की अवहेलना करता रहा ॥२७॥ मैं जहाँ कही भी जाता था वहाँ अर्थ की हानि ही करता था। लोग मेरा उपहास करते थे और मेरे ब्राह्मणत्व की निन्दा करते थे ॥२८॥ उस समय मेरे मन में ऐसी लज्जा उत्पन्न हुयी की मैं मर जाना चाहता था। मैं विद्या प्राप्त करने के लिए तैयार हो गया। सोचने लगा किस गुरु से प्रार्थना करूँ ॥२९॥ दुःख और शोक से व्याकुल बना हुआ मैं चिन्तित हो गया। मैं सोचता था कि किस प्रकार विद्या और गुणों को मैं प्राप्त करूँ ॥३०॥ मुझे कैसे स्वर्ग प्राप्त होगा, मेरी मुक्ति कैसे होगी ? हे विप्र ! इस तरह से सोचता हुआ मैं बूढ़ा हो

देवतायतने दुःखी उपविष्टस्त्वहं कदा। मद्भाग्यैः प्रेरितः कश्चित्सिद्ध एकः समागतः ॥३२॥
निराश्रयो जिताहारः सदाऽऽनन्दस्तु निःस्पृहः ।
एकान्तमास्थितो विप्रो योगयुक्तो जितेन्द्रियः ॥३३॥
परब्रह्मणि संलीनो ज्ञानध्यानसमाधिमान्। तमहं संश्रितो विप्र ज्ञानरूपं महामतिम् ॥३४॥
अहं शुद्धेन भावेन भक्त्या नमितकन्धरः। नमस्कृत्य महात्मानं पुरतस्तस्य संस्थितः ॥३५॥
दीनरूपो ह्यहं जातो मन्दभाग्यस्तथा पुनः। तेनाऽहंपृच्छितो विप्र कस्माद्भवान्प्रशोचति॥३६॥
केनाधभिप्रायभावेन दुःखमेव भुनक्ति वै ।
तेनेत्युक्तोऽस्मि विप्रेन्द्र ! ज्ञानिना योगिना तदा ॥३७॥
सुमूढेन मया तस्य पूर्ववृत्तान्तमेवहि। तमेवं श्रावितं सर्वं सर्वज्ञत्वं कथं व्रजेत् ॥३८॥
एतदर्थं महादुःखी भवान्मम गतिः सदा। सचोवाच महात्मा मे सर्वं ज्ञानस्य कारणम् ॥३९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

गया॥३१॥ एक बार मैं दुःखी होकर एक मन्दिर में बैठा था मेरे भाग्य से प्रेरित होकर एक सिद्ध पुरुष वहाँ आ गये ॥३२॥ वे निराश्रय, आहार को जित लेने वाले, सदा आनन्दमय और निःस्पृह थे । वे योगी तथा जितेन्द्रिय पुरुष आकर एकान्त में बैठ गये ॥३३॥ ज्ञान, ध्यान तथा समाधि से युक्त परब्रह्म में लीन थे । हे विप्र ! ज्ञान स्वरूप, महाबुद्धिमान् उनके पास मैं आया ॥३४॥ शुद्ध भाव से भक्तिपूर्वक अपने कन्धे को झुकाकार उन महापुरुष को नमस्कार करके मैं उनके सामने बैठ गया ॥३५॥ मैं दीन हो गया था और मैं मन्दभाग्य तो था ही । उन्होंने मुझसे पूछा— तुम किसलिए इतना चिन्तित हो ?॥३६॥ किस अभिप्राय के भाव से केवल दुःख का ही भोग करते हो ? हे विप्र ! उन ज्ञानी योगी के द्वारा इस प्रकार से पूछने पर॥३७॥ अत्यन्त मूर्ख मैंने अपना पूर्वकालिक वृत्तान्त बतलाया । मैंने अपने वृतान्त को बतलाकर पूछा कि मैं सर्वज्ञ कैसे हो सकता हूँ ?॥३८॥ इसीलिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । आप ही मेरे रक्षक हैं । उसके पश्चात् उन महात्मा ने मुझे सम्पूर्ण ज्ञान के साधन को बतलाया ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यनान्तर्गत गुरुतीर्थ माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में च्यवन चरित्रान्तर्गत एक सौ बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२२॥

एक सौ तेइसवाँ अध्याय

सिद्ध उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि ज्ञानरूपं तवाऽग्रतः। ज्ञानस्य नास्ति वै देहो हस्तौ पादौ च चक्षुषी ॥१॥
नासा कर्णौ न ज्ञानस्य नास्ति चैवास्थिसङ्ग्रहः ।
केन दृष्टं तु वै ज्ञानं कानि लिङ्गानि तस्य वै ॥२॥
आकारैर्वर्जितं नित्यं सर्वं वेत्ति स सर्ववित्। दिवाप्रकाशकः सूर्यो रात्रौ प्रकाशयेच्छशी ॥३॥
गृहं प्रकाशयेद्दीपो लोकमध्ये स्थिता अमी। तत्पदं केन वै धाम्ना दृश्यते शृणु सत्तम ॥४॥
न विन्दति हि मूढास्ते मोहिता विष्णुमायया ।
कायमध्ये स्थितं ज्ञानं ध्यानदीप्तमनौपमम् ॥५॥
तत्पदं तेन दृश्यते चन्द्रसूर्यादिभिर्न च । हस्तपादौ विना ज्ञानमचक्षुः कर्णवर्जितम् ॥६॥
सर्वत्र गतिमच्चास्ते सर्वं गृह्णाति पश्यति । सर्वमाघ्राति विप्रेन्द्र शृणोत्येवं न संशयः ॥७॥
नास्ति ज्ञानसमो दीपः सर्वान्धिकारनाशने । स्वर्गे भूमौ च पाताले स्थाने स्थाने च दृश्यते॥८॥
कायमध्ये स्थितं ज्ञानं न विन्दन्ति कुबुद्धयः ।
ज्ञानस्थानं प्रवक्ष्यामि यस्माज्ज्ञानं प्रजायते ॥९॥
प्राणिनां हृदये नित्यं निहितं सर्वदा द्विज !। कामादीन्सुमहाभोगान्महामोहादिकांस्तथा ॥१०॥
विवेकवह्निना सर्वान्दिधक्षति सदैव यः । सर्वशान्तिमयो भूत्वा इन्द्रियार्थं प्रमर्दयेत्॥११॥
ततस्तु जायते ज्ञानं सर्वतत्त्वार्थदर्शकम् । तत्त्वमूलमिदं ज्ञानं निर्मलं सर्वदर्शकम् ॥१२॥

धर्मशर्मा को सिद्ध से ज्ञान की प्राप्ति, धर्मशर्मा के शुक योनि की प्राप्ति का वर्णन

सिद्ध ने कहा— तुम सुनो मैं तुम्हें ज्ञान का स्वरूप बतलाता हूँ ज्ञान का न तो कोई शरीर है, न उसके हाथ हैं, न पैर हैं, न नेत्र हैं ॥१॥ उसके न नाक हैं, न कान हैं, न उसकी हड्डियाँ हैं । ज्ञान को किसने देखा है ? ज्ञान के कौन से चिह्न हैं ?॥२॥ वह सदा आकार से रहित रहता है । सूर्य दिन में प्रकाश करते हैं, रात्रि में चन्द्रमा प्रकाश करते हैं ॥३॥ दीपक घर को प्रकाशित करता है । ये तीनों लोक में स्थित हैं । हे विप्र ! परंब्रह्म के पद को किस प्रकाश से देखा जा सकता है ॥४॥ भगवान् विष्णु की माया से मोहित अज्ञानी जीव उस परंपद को नहीं प्राप्त कर पाते हैं । ज्ञान शरीर के भीतर स्थित है, वह ध्यान के द्वारा प्रकाशित होता है । वह अनुपम पदार्थ है ॥५॥ उस ज्ञान के ही द्वारा ब्रह्म पद का ज्ञान होता है, सूर्य तथा चन्द्रमा आदि के द्वारा परम पद नहीं प्रकाशित होता है । ज्ञान हाथ, पैर, कान तथ चक्षु से रहित है ॥६॥ उसकी सर्वत्र गति है, वह सबको ग्रहण करता है । हे विप्र ! वह सब को सूंघता है तथा सबकुछ सुनता है, इसमें कोई संशय नहीं है । सभी प्रकार के अन्धकार को विनष्ट करने वाले ज्ञान के समान कोई दीपक नहीं है । वह स्वर्ग, भूमि तथा पाताल सर्वत्र देखा जाता है ॥७-८॥ मूर्ख व्यक्ति शरीर के भीतर विद्यमान ज्ञान को नहीं देख पाते हैं । जिससे ज्ञान की उत्पत्ति होती है, मैं उस ज्ञान के स्थान को बतलाता हूँ ॥९॥ हे द्विज ! वह सदा प्राणियों के हृदय में स्थित है । जो पुरुष काम आदि महाभोगों तथा महामोह इत्यादि को अपनी विवेक रूपी वह्नि के द्वारा सदैव जलाता रहता है और सभी प्रकार से शान्तिमय

तस्माच्छान्तिं कुरुष्व त्वं सर्वसौख्यप्रवर्द्धिनीम् ।
समः शत्रौ च मित्रे च यथाऽऽत्मनि तथापरे ॥१३॥
भवस्व नियतो नित्यं जिताहारो जितेन्द्रियः। मैत्रं नैव प्रकर्तव्यं वैरं दूरे परित्यजेत्॥१४॥
निःसङ्गो निःस्पृहो भूत्वा एकान्तस्थानमाश्रितः ।
सर्वप्रकाशको ज्ञानी सर्वदर्शी भविष्यसि ॥१५॥
एकस्थानस्थितो वत्स त्रैलोक्ये यद्भविष्यति ।
वृत्तान्तं वेत्स्यसि त्वं तु मत्प्रसादान्न संशय; ॥१६॥

कुञ्जल उवाच

सिद्धेन तेन मे विप्र ! ज्ञानरूपं प्रकाशितम् ।
तस्य वाक्ये स्थितो नित्यं तद्भावेनाऽपि भावितः ॥१७॥
त्रैलोक्ये वर्त्तते यद्यदेकस्थाने स्थितो ह्यहम्। तत्तदेव प्रजानामि प्रसादात्तस्य सद्गुरोः ॥१८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तान्तमेव हि। अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तद्ब्रुहि द्विजसत्तम ॥१९॥

च्यवन उवाच

कीरयोनिं कथं प्राप्तो भवाञ्ज्ञानवतां वरः। तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि सर्वसन्देहनाशनम्॥२०॥

कुञ्जल उवाच

संसर्गाज्जायते पापं संसर्गात्पुण्यमेव हि। तस्माद्विवर्जयेच्छुद्धो भव्यं विरुद्धमेव च ॥२१॥
लुब्धकेनापि पापेन केनाप्येकः शुकःशिशुः ।
बन्धयित्वा समानीतो विक्रयार्थं समुद्यतः ॥२२॥

होकर अहङ्कार तथा इन्द्रियों के विषयों का मर्दन करता है ॥१०-११॥ उसको ही सभी तत्वार्थों को दिखाने वाला, ज्ञान उत्पन्न होता है । ज्ञान का मूल तत्त्व है, वह निर्मल तथा सब कुछ प्रकाशित करने वाला है॥१२॥ इसलिए सभी प्रकार के सुख को प्रदान करने वाली शान्ति को तुम अपनाओ शत्रु तथा मित्र के प्रति एक समान बन जाओ । अपने ही समान दूसरों के भी प्रति व्यवहार करो ॥१३॥ तुम सदा आहार पर विजय प्राप्त करके जितेन्द्रिय बनो । किसी को मित्रता न करो और वैर का दूर से ही त्याग कर दो ॥१४॥ सङ्ग तथा स्पृहा से रहित होकर एकान्त स्थान में रहो ऐसा करके तुम सर्व प्रकाशक ज्ञानी तथा सर्वदर्शी हो जाओगे ॥१५॥ हे वत्स ! तुम मेरी कृपा से एक स्थान पर स्थित रहकर त्रैलोक्य में होने वाली सारी बातों को जान जाओगे । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१६॥ **कुंजल ने कहा**— हे विप्र ! उस सिद्ध ने मेरे ज्ञान के रूप को प्रकाशित कर दिया । मैं उनके वाक्य पर अडिग हूँ और उसी की भावना से भरा रहता हूँ ॥१७॥ एक ही स्थान पर स्थित मैं त्रैलोक्य में जो कुछ भी है, उस गुरु की कृपा से जानता हूँ ॥१८॥ इस तरह से मैंने अपना वृत्तान्त बतलाया, अब मैं आपको कौन सी दूसरी बात बतलाऊँ, उसे आप कहें ॥१९॥ **च्यवन ने कहा**— आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, शुक योनि को आप कैसे प्राप्त किए । सभी सन्देहों को विनष्ट करने वाले इस बात को आप बतलाएँ ॥२०॥ **कुञ्जल ने कहा**— सम्बन्ध से ही पुण्य तथा पाप दोनों होते हैं, इसलिए शुद्ध को भावी विरुद्ध वस्तु का परित्याग कर देना चाहिए ॥२१॥ एक पापी बहेलिया शुक के शिशु को बाँधकर बेंचने के लिए लाया ॥२२॥ उसको चाटुकार देखने में सुन्दर

चाटुकारं सुरूपं तं पटुवाक्यं समीक्ष्य च। गृहीतो ब्राह्मणैकेन मम प्रीत्या समर्पितः ॥२३॥
ज्ञानध्यानस्थितो नित्यमहमेव द्विजोत्तम !। स मे बालस्वभावेन कौतुकात्करसंस्थितः ॥२४॥
तस्यकौतुकवाक्यैर्वा मुग्धोऽहं द्विजसत्तम। शुकस्य पुत्ररूपस्य नित्यं तत्परमानसः ॥२५॥

मामेवं वदते सोऽपि तात तातेति आस्यताम् ।
स्नातुं गच्छ महाभाग ! देवमर्चय साम्प्रतम् ॥२६॥

इत्यादिचाटुकैवाक्यैर्मामेवं परिभाषयेत्। तस्यवाक्यविनोदेन विस्मृतं ज्ञानमुत्तमम् ॥२७॥
पुष्पार्थ फलभोगार्थं गतोऽहं वनमेव च। नीतः शुको विडालेन मम दुःखस्य हेतवे॥२८॥
मम संसर्गिभिः सर्वैर्वयस्यैः साधुचारिभिः। बिडालेन हतः पक्षी तेनैव भक्षितो हि सः ॥२९॥

श्रुत्वा मृत्युं गतं विप्र ! शुक्रं तं चाटुकारकम् ।
महतादुःखभावेन असुखेनाऽतिदुःखितः ॥३०॥
तस्य दुःखेन मुग्धोऽस्मि तीबेणापि सुपीडितः ।
महता मोहजालेन बद्धोऽहं द्विजपुङ्गव ॥३१॥

प्रालपं रामचन्द्रेति शुकराजेतिपण्डित !। श्लोकराजेति तं विप्र ! मोहाच्चलितमानसः ॥३२॥

ततोऽहं दुःखसन्तप्तः सञ्जातः स्वेन कर्मणा ।
वियोगेनापि विप्रेन्द्र शुकस्य श्रुणु साम्प्रतम् ॥३३॥
विस्मृतं तन्मया ज्ञानं सिद्धेनाऽपि प्रकाशितम् ।
संस्मरञ्छोकसन्तप्तस्तं शुक्रं चाटुकारकम् ॥३४॥

वत्स वत्सेति नित्यं वै प्रलपञ्छृणु भार्गवे। गद्यपद्यमयैर्वाक्यैः संस्कृताऽक्षरसंयुतैः ॥३५॥

तथा बोलने में चतुर देखकर, एक ब्राह्मण ने खरीद लिया और मुझे प्रेम पूर्वक समर्पित कर दिया ॥२३॥ हे द्विजोत्तम ! मैं सदा ज्ञान तथा ध्यान में लगा रहता था और वह शुक पक्षी अपने बाल स्वभाव के कारण मेरे हाथ पर बैठा रहता था ॥२४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! उसके कौतुकमय वाक्य से मैं मोहित था। उस पुत्र रूपी शुक में मेरा मन सदैव लगा रहता था ॥२५॥ वह मुझे कहा करता था तात बैठ जाइये ! हे तात ! स्नान करने के लिए जाइये, हे तात ! अब आप भगवान् की पूजा करें ॥२६॥ इस तरह से चाटुकारिता पूर्ण वाक्यों से वह मेरे साथ बातें करता था। उसके वाक्य विनोद से मेरा उत्तम ज्ञान भूल गया ॥२७॥ पुष्प तथा फल लाने के लिए जब मैं वन में गया था उसी समय एक विडाल उस शुक को पकड़कर ले गया। उसके कारण मुझको अधिक कष्ट हुआ ॥२८॥ मेरे साथ रहने वाले सभी साधु आचरण करने वाले मित्रों ने मुझे बतलाया कि विडाल ही शुक को ले गया और खा गया ॥२९॥ उस चाटुकारी शुक को मरा हुआ सुनकर, मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ और मैं दुःख से दुःखी हो गया ॥३०॥ उसके दुःख से मोहित मैं अत्यन्त पीड़ित हो गया। हे द्विज पुंगव ! मैं बहुत अधिक मोहजाल से मोहित हो गया ॥३१॥ हे विप्र ! मैं हे राज चन्द्र ! हे शुकराज ! हे पण्डित ! हे श्लोकराज ! इसतरह कहकर मोह से क्षुब्ध मन वाला मैं रोने लगा॥३२॥ उसके बाद मैं अपने कर्म के करण दुःख संतप्त हो गया। यह सबकुछ उस शुक पक्षी के वियोग में मैंने किया ॥३३॥ उसके कारण जिसे सिद्ध ने प्रकाशित किया था वह मेरा ज्ञान लुप्त हो गया और शोक संतप्त मैं उस चाटुकार शुक पक्षी को ही स्मरण करता रहा ॥३४॥ हे भार्गव ! मैं उसके लिए

त्वां विना कश्च मां वत्स बोधयिष्यति साम्प्रतम् ।
कथाभिस्तु विचित्राभिः पक्षिराज प्रसाद्य माम् ॥३६॥
अस्मिन्सुनिर्जनोद्याने विहाय क्व गतो भवान् ।
केन दोषेण लिप्तोऽस्मि तन्मे कथय साम्प्रतम् ॥३७॥

एवं विधैरहं वाक्यैः करुणैस्तैस्तु मोहितः । एवमादि प्रलप्याऽहं शोकेनापि सुपीडितः ॥३८॥
मृतोऽहं तेन मोहेन तद्भावेनाऽपि मोहितः । मरणे यादृशो भावोमतिश्चासीच्च यादृशी ॥३९॥
तादृशेनापि भावेन जातोऽहं द्विजसत्तम ! । गर्भवासो मया प्राप्तो ज्ञानस्मृतिविधायकः ॥४०॥
स्मृतं पूर्वकृतं कर्म स्वयमेव विचेष्टितम् । मया पापेन मूढेन किं कृतं ह्यकृतात्मना ॥४१॥
गर्भयोगसमारूढः पुनस्तं चिन्तयाम्यहम् । तेन मे निर्मलं ज्ञानं जातं वै सर्वदर्शकम् ॥४२॥

गुरोस्तस्य प्रसादाच्च प्राप्तं वै ज्ञानमुत्तमम् ।
तस्य वाक्योदकैः स्वच्छैः कायस्य मलमेव च ॥४३॥

सबाह्यभ्यन्तरं विप्र क्षालितं निर्मलं कृतम् । तिर्यक्त्वं च मया प्राप्तं शुकजातिसमुद्भवम् ॥४४॥

शुकस्य ध्यानभावेन मरणे समुपस्थिते ।
तस्मिन्काले मृतो विप्र ! तद्भावेनापि भावितः ॥४५॥

तादृशोऽस्मि पुनर्जातः शुकरूपो महीतले । मरणे यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते ॥४६॥

तादृशाः स्युस्तु सत्त्वास्तेत तद्रूपास्तत्परायणाः ।
तद्गुणास्तत्स्वरूपास्ते भावभूता भवन्ति हि ॥४७॥
मृत्युकालस्य विप्रेन्द्र भावेनाऽपि न संशयः ।
अतुलं प्राप्तवाञ्ज्ञानमहमत्रमहामते ॥४८॥

वत्स-दत्स कहकर मैं रोता रहा । मैं कहता था तुम्हारे बिना गद्य-पद्य मय संस्कृत अक्षरों से युक्त वाक्यों से मुझे कौन बुलायेगा ? हे पक्षिराज ! विचित्र कथाओं से मुझको प्रसन्न करके ॥३५-३६॥ इस निर्जन उद्यान में छोड़कर तुम कहाँ चले गये । मैंने कौन सा अपराध किया था ? वह मेरा अपराध बतला दो ॥३७॥ इस प्रकार के करुणामय वाक्यों से मोहित हुआ मैं शोक से संतप्त होकर विलाप करके ॥३८॥ मैं मर गया । उस भाव तथा उस मोह से मोहित मृत्यु के समय मेरा जैसा भाव तथा जैसी मेरी बुद्धि थी ॥३९॥ उसी तरह के भाव से मैं उत्पन्न हुआ । उसके बाद ज्ञान तथा स्मृति को उत्पन्न करने वाले गर्भवास को मैंने प्रप्त किया ॥४०॥ मैंने पूर्वजन्म में जिन कर्मों को किया था उन कर्मों की मुझे याद आयी । मैंने सोचा मैं पापी और मूढ हूँ, मैंने यह सब क्या किया ?॥४१॥ अब गर्भ में आकर मैं उसी का चिन्तन करता था उससे मेरा तथा सर्वप्रकाशक ज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४२॥ उस गुरु की कृपा से मैंने उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। उनके वाक्य रूपी स्वच्छ जल से शरीर का मल भी समाप्त हो गया । हे विप्र ! बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रक्षालन से मैं निर्मल हो गया ॥४३॥ मैंने तिर्यक्त्व को प्राप्त करके शुक योनि को प्राप्त किया ॥४४॥ मृत्यु काल के समय शुकभाव का स्मरण करने तथा उसी का ध्यान के कारण उसी समय मरकर मैं उसकी भावना से भावित होकर ॥४५॥ उसी प्रकार का शुकरूप हो गया हूँ । मरण के समय प्राणियों का जैसा भाव होता है ॥४६॥ वे प्राणी उसी प्रकार के हो जाते हैं, और उसके जो गुण होते हैं, वे गुण भी उन

तेन सर्वं विपश्यामि यद्भूतं यद्भविष्यति। वर्तमानं महाप्राज्ञ ! ज्ञानेनापि महामते॥४९॥
सर्वं विदाम्यहं ह्यत्र संस्थितोऽपि न संशयः ।
तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम् ॥५०॥
नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज। एतत्ते सर्वमाख्यातं शृणु भार्गवनन्दन ! ॥५१॥
यत्त्वया पृच्छितं विप्र तत्ते सर्वं प्रकाशितम्। स्थलजाच्चोदकात्सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति॥५२॥
जन्मान्तरकृतान्पापान्गुरुतीर्थं प्रणाशयेत्। संसारतारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम्॥५३॥

विष्णुरुवाच

शुक एवं महाप्राज्ञश्च्यवनाय महात्मने। तत्त्वं प्रकाशयित्वा तु विरराम नृपोत्तम॥५४॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं जङ्गमं तीर्थमुत्तमम्। वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते॥५५॥

वेन उवाच

नाहं राज्यस्य कामार्थी नान्यत्किंचित्प्रकामये ।
सदेहो गन्तुमिच्छामि तव कायं जनार्दन ! ॥५६॥
एवं वरमहं मन्ये यदि दातुमिहेच्छसि ॥५७॥

विष्णुरुवाच

यज त्वमश्वमेधेन राजसूयेन भूपते !। गोभूस्वर्णाम्बुधान्यानां कुरु दानं महामते॥५८॥
दानान्नश्यति वै पापं ब्रह्मवध्यादिघोरकम्। चतुर्वर्गस्तु दानेन सिद्ध्यत्येव न संशयः॥५९॥
तस्माद्दानं प्रकर्तव्यं मामुद्दिश्य च भूपते। यादृशेनाऽपि भावेन मामुद्दिश्य ददाति यः॥६०॥

प्राणियों में आ जाते हैं उनका स्वरूप भी उसी भाव के अनुसार हो जाता है ॥४७॥ हे विप्रेन्द्र ! मृत्यु कालीन भाव के भी द्वारा मैंने अतुलनीय ज्ञान इस योनि में भी प्राप्त किया ॥४८॥ हे महामते ! उसी ज्ञान के द्वारा हे महाप्राज्ञ ! मैं भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान को जानता हूँ ॥४९॥ यहाँ पर रहकर मैं संसार के मनुष्यों के तारणोपयोगी सारी बातों को जानता हूँ ॥५०॥ हे द्विज ! गुरु के समान संसार के बन्धन को काटने वाला कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है । हे भार्गव नन्दन ! मैंने इन सारी बातों को कह दिया । जिन बातों को आपने मुझसे पूछा था मैंने उन सारी बातों का प्रकाशन कर दिया है । पृथिवी पर पाये जाने वाले जल से तो सारा बाहरी मल विनष्ट होता है ॥५१-५२॥ गुरु रूपी जल ऐसा है कि वह तो जन्मजन्मान्तर में किए गये पाप रूपी मल का विनाश कर देता है । संसार सागर से पार करने के लिए गुरु रूपी जङ्गम तीर्थ उत्तम है । **विष्णु भगवान् ने कहा**— महाप्राज्ञ शुक इस प्रकार से महर्षि च्यवन से कहकर चुप हो गया तथा उसने उनके लिए तत्त्व का प्रकाशन कर दिया ॥५३-५४॥ मैंने भी उत्तम जङ्गम तीर्थ के विषय में सारी बातें आपको बतला दिया । अब आप अपने मनोऽनुकूल वरदान माँगें ॥५५॥ **वेन ने कहा**— हे जनार्दन ! मैं राज्य नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं कोई दूसरी वस्तु भी नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं यही चाहता हूँ कि मैं अपने देह के साथ आपके शरीर में विलीन हो जाऊँ ॥५६॥ यदि आप देना चाहें तो मैं इसी प्रकार का वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ । **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे राजन् ! आप अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ करें ॥५७॥ हे महामते ! आप गौ, पृथिवी, स्वर्ग, जल, तथा अन्न का दान करें । दान करने से ब्रह्म हत्या आदि घोर पापों का नाश होता है ॥५८॥ दान से चतुर्वर्ग की भी प्राप्ति होती है । हे राजन्!

तादृशं तस्य वै भावं सत्यमेवं करोम्यहम् । ऋषीणां दर्शनात्स्पर्शाद्भ्रष्टस्ते पापसञ्चयः ॥६१॥
आगमिष्यसि यज्ञान्ते मम देहं न संशयः । एवमाभाष्य तं वेनमन्तर्द्धानं गतो हरिः ॥६२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्यसम्पूर्तिवर्णने च्यवनचरित्रसमाप्तौ च त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

अन्तर्द्धानं गते विष्णौ वेन राजा महामतिः । क्व गतो देवदेवेश इति चिन्तापरोऽभवत् ॥१॥
हर्षेण महताऽऽविष्टाश्चिन्तयित्वा नृपोत्तमः । समाहूय नृपश्रेष्ठं तं पृथुं मधुराक्षरैः ॥२॥
तमुवाच महात्मानं हर्षेण महता तदा । त्वया पुत्रेण भूलोके तारितोऽस्मि सुपातकात् ॥३॥
नीत उज्ज्वलतां वत्स वंशो मे साम्प्रतं पृथो ! ।
मया विनाशितो दोषैस्त्वया गुणैः प्रकाशितः ॥४॥
यजेऽहमश्वमेधेन दास्ये दानान्यनेकशः । विष्णुलोकं व्रजाम्यद्य सकायस्ते प्रसादतः ॥५॥
सम्भरस्व महाभाग सम्भारांस्त्वं नृपोत्तम । आमन्त्रय महाभाग ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥६॥
एवं पृथुः समादिष्टो वेनेनापि महात्मना। प्रत्युवाच महात्मा स वेनं पितरमादरात्॥७॥

इसीलिए मेरी प्रसन्नता के लिए दान करना चाहिए ॥५९॥ जो मनुष्य मुझको उद्दिष्ट करके दान देता है, उसके उसी प्रकार के भाव को मैं सत्य बना देता हूँ । इस तरह से राजा वेन को कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥६०-६२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत गुरुतीर्थ वर्णन की पूर्ति नामक तथा च्यवन चरित्र की सम्पूर्ति नामक एक सौ तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२३॥

महाराज वेन की आज्ञा स्वीकार करके पृथु का तपस्या करने के लिए वन जाना

सूतजी ने कहा— भगवान् विष्णु के अन्तर्धान हो जाने पर महामति राजा वेन श्रीभगवान् कहाँ चले गये ? इस प्रकार से सोचने लगे ॥१॥ अत्यन्त हर्ष पूर्वक विचार करके वे राजा पृथु को बुलाकर मधुर शब्दों में ॥२॥ अत्यन्त हर्ष पूर्वक उनसे कहे— पुत्र ! तुम्हारे द्वारा मैं इस भूलोक में घोर तपस्या से मुक्त हो गया ॥३॥ हे पृथो ! तुमने मेरे वंश को उज्ज्वल बना दिया । मैंने अपने दोषों से वंश का विनाश कर दिया था उसको तुमने प्रकाशित कर दिया ॥४॥ मैं अश्वमेघ याग करना चाहता हूँ और अनेक प्रकार का दान करना चाहता हूँ । आज मैं तुम्हारी कृपा से सशरीर विष्णुलोक में जा रहा हूँ ॥५॥ हे नृपोत्तम ! तुम समस्त सामग्रियों को उपस्थित करो । हे महाभाग ! वेद पारङ्गत ब्राह्मणों को आमन्त्रित करो ॥६॥ इस तरह

कुरु राज्यं महाराज ! भुङ्क्ष्व भोगान्मनोऽनुगान् ।
दिव्यान्वा मानुषान्पुण्यान्यज्ञैर्यज जनार्दनम् ॥८॥
एवमुक्त्वा प्रणम्यैव पितरं ज्ञानतत्परम्। धनुरादाय पृथ्वीशः सबाणं यत्नपूर्वकम् ॥९॥
आदिदेश भटान्सर्वान्घोषध्वं भूतले मम। पापमेव न कर्तव्यं कर्मणा त्रिविधेन वै ॥१०॥
करिष्यन्ति च यत्पापं आज्ञा वेनस्य भूपतेः ।
उल्लङ्घ्य वध्यतां सो हि यास्यते नात्र संशयः ॥११॥
दानमेव प्रदातव्यं यज्ञैश्चैव जनार्दनम्। यजध्वं मानवाः सर्वे तन्मनस्का विमत्सराः॥१२॥
एवं शिक्षां प्रदत्त्वाऽसौ राज्यं भृत्येषु वेनजः ।
निक्षिप्य च गतो विप्रास्तपोऽर्थे (तपस्यार्थे) चा तपोवनम् ॥१३॥
सर्वान्दोषान्परित्यज्य संयम्य विषयेन्द्रियान्। शतवर्षप्रमाणं वै निराहारो बभूव ह॥१४॥
तपसा तस्य वै तुष्टो ब्रह्मा पृथुमुवाच ह। तपस्तपसि कस्मात्त्वं तन्मे त्वं कारणं वद ॥१५॥

पृथुरुवाच

वेन एषमहाप्राज्ञः पिता मे कीर्तिवर्द्धनः। समाचरति यः पापमस्य राज्ये नराधमः ॥१६॥
शिरश्छेत्ता भवत्वेष तस्य देवो जनार्दनः। अदृष्टैश्च महाचक्रैर्हरिः शास्ता भवेत्स्वयम् ॥१७॥
मनसा कर्मणा वाचा कर्तुं वाञ्छन्ति पातकम् ।
तेषां शिरांसि त्रुट्यन्तु फलं पक्कं यथा द्रुमात् ॥१८॥
एतदेव वरं मन्ये त्वत्तः शृणु सुरेश्वर !। प्रजानां दोषभावेन न लिप्यति पिता मम ॥१९॥
तथा कुरुष्व देवेश ! वरं दातुं यदीच्छसि। ददस्व उत्तमं कामं चतुर्मुख ! नमोऽस्तु ते॥२०॥

से अपने पिता वेन का आदेश प्राप्त करके, उन्होंने अपने पिता वेन से आदर पूर्वक कहा ॥७॥ हे महाराज! आप राज्य करें और अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगें । आप दिव्य तथा मानुष भोगों को भोंगे तथा भगवान् जनार्दन की आराधना करें ॥८॥ इस प्रकार से अपने पिता को कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके वे ज्ञान परायण पृथु अपने हाथ में यत्न पूर्वक धनुष बाण धारण कर लिए ॥९॥ उन्होंने अपने सभी भटों को आदेश दिया कि तुमलोग इस बात की घोषणा कर दो कि पृथिवी पर कोई भी पाप कर्म न करे ॥१०॥ महाराज वेन की आज्ञा का उल्लंघन करके यदि कोई पाप कर्म करेगा, वह मृत्युदण्ड प्राप्त करेगा ॥११॥ सबलोग दान करें तथा यज्ञों के द्वारा भगवान् जनार्दन की आराधना करें, वे मत्सर रहित होकर श्रीभगवान् में ही अपने मन को लगायें ॥१२॥ महाराज पृथु इस प्रकार से शिक्षा देकर तथा राज्य का भार भृत्यों पर सौंप कर हे विप्रो ! तपस्या करने के लिए तपोवन में चले गये ॥१३॥ सभी दोषों का परित्याग करके तथा विषयों से इन्द्रियों से संयमित करके वे सौ वर्ष तक निराहार रहे ॥१४॥ उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने पृथु से कहा, आप किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए तपस्या करते हैं, यह मुझे बतलायें ॥१५॥ **पृथु ने कहा—** कीर्ति को बढ़ाने वाले मेरे पिता महाप्राज्ञ वेन हैं । इनके राज्य में जो कोई भी नराधम पाप करें ॥१६॥ उसके शिर को भगवान् जनार्दन काट दें । अपने अदृष्ट चक्रों के द्वारा स्वयं श्रीहरि प्रशासक हो जायँ ॥१७॥ हे सुरेश्वर ! मैं आपसे यही वरदान चाहता हूँ । जिससे कि प्रजाओं के दोषों की भावना से मेरे पिता का सम्बन्ध न हो ॥१८-१९॥ हे देवेश ! यदि आप वर देना चाहते हैं तो आप ऐसा ही वर दें ।

ब्रह्मोवाच

एवमस्तु महाभाग पिता ते पूततां गतः ।
विष्णुना शासितो वत्स ! पुत्रेणापि त्वया पृथो ! ॥२१॥
एवं पृथुं समुद्दिश्य वरं दत्त्वा गतो विभुः ।
पृथुरेव समायातो राज्यकर्मणि संस्थितः ॥२२॥
वैन्यस्य राज्ये विप्रेन्द्राः पापं कश्चिन्न चाचरेत् ।
यस्तु चिन्तयते पापं त्रिविधेनाऽपि कर्मणा ॥२३॥

शिरश्छेदो भवेत्तस्य यथा चक्रैनिकृन्तितः। तदाप्रभृति वै पापं नैव कोऽपि समाचरेत्॥२४॥
इत्याज्ञा वर्तते तस्य वैन्यस्यापि महात्मनः। सर्वलोकाः समाचारैः परिवर्तन्ति नित्यशः ॥२५॥
दानभोगैः प्रवर्तन्ते सर्वधर्मपरायणाः । सर्वसौख्यैः प्रवर्द्धन्ते प्रसादात्तस्य भूपतेः॥२६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय

सूत उवाच

वेनस्याज्ञां सुसम्प्राप्य पृथुः परमधार्मिकः। सम्बभ्रे सर्वसम्भारान्नानापुण्यान्नृपात्मजः ॥१॥
निमन्त्र्य ब्राह्मणान्सर्वान्नानादेशोद्भवानपि। अथ वेन इयाजासावश्वमेधेन भूपतिः ॥२॥

हे चतुर्मुख ! आपको नमस्कार है, आप मेरे लिए यही उत्तम वरदान दें ॥२०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे महाभाग ! ऐसा ही हो आपके पिता पवित्र हो गये हैं । हे वत्स ! विष्णु स्वरूप तुम पुत्र से वे शासित हैं॥२१॥ इस प्रकार से पृथु को उद्दिष्ट करके तथा वरदान देकर ब्रह्माजी चले गये । इसके बाद पृथु आकर राज्य के कार्यों में लग गये ॥२२॥ हे विप्रो ! पृथु के राज्य में कोई भी पाप नहीं करता था । जो मन, वाणी अथवा शरीर से पाप करना सोचता था ॥२३॥ उसका शिर उसी प्रकार से कट जाता था जैसे चक्र से उसका शिर काट दिया गया हो । उस समय से उनके राज्य में कोई भी पाप नहीं करता था ॥२४॥ यही आज्ञा उस वैन्य की भी है । सभी लोग सदैव शुद्ध कर्म करते थे ॥२५॥ सभी धार्मिक हो गये थे, सब दान तथा धर्म करते थे । उस राजा की कृपा से सर्वलोक सुख से समृद्ध थे ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत एक सौ चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२४।।

वेन का विष्णुलोक में जाना तथा भूमिखण्ड का फलश्रुति

सूतजी ने कहा— वेन की आज्ञा प्राप्त करके परमधार्मिक पृथु ने सभी सामग्रियों को एकत्रित किया॥१॥ अनेक देशों में उत्पन्न ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया । उसके बाद वेन ने अश्वमेध यज्ञ किया ॥२॥

दानान्यदादब्राह्मणेभ्यो नानारूपाण्यनेकशः। जगाम वैष्णवं लोकं सकायो जगतीपतिः ॥३॥
विष्णुना सह धर्मात्मा नित्यमेव प्रवर्तते। एतद्वः सर्वमाख्यातं चरित्रं तस्य भूपतेः ॥४॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखविनाशनम्। पृथुरेव स धर्मात्मा राजा पृथ्वीं प्रशासति ॥५॥
त्रैलोक्ये न समं पृथ्वीं दुदोह नृपसत्तमः। प्रजास्तु रञ्जितास्तेन पुण्यधर्मानुकर्मभिः ॥६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं भूमिखण्डमनुत्तमम्। प्रथमं सृष्टिखण्डं तु द्वितीयं भूमिखण्डकम्॥७॥

भूमिखण्डस्य माहात्म्यं कथयिष्याम्यहं पुनः ।
अस्य खण्डस्य वै श्लोकं यः शृणोति नरोत्तमः ॥८॥
दिनस्यैकस्य वै पापं तस्य चैव प्रणश्यति ।
यो नरो भावसंयुक्तोऽध्यायं संश्रृणुते सुधीः ॥९॥

तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः। दत्तस्य गोसहस्रस्य ब्राह्मणेभ्यः सुपर्वणि ॥१०॥
यत्फलं तत्प्रजायेत विष्णुस्तस्य प्रसीदति। अस्य पद्मपुराणस्य पठमानस्य नित्यशः ॥११॥
कलौ युगे तु विघ्नाश्च न जायन्ते नरस्य वै ॥१२॥

व्यास उवाच

कस्मात्कलौ न जायन्ते श्रृण्वानस्य च पद्मज ! ।
नरस्य पुण्ययुक्तस्य नानाविघ्नाः सुदारुणाः ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

मखस्याप्यश्वमेघस्य यत्फलं परिकथ्यते। तत्फलं दृश्यते तात ! पुराणे पद्मसंज्ञके॥१४॥
अश्वमेधमखः पुण्यः कलौ नैब प्रवर्तते। पुराणं चापि यत्तद्वदश्वमेघसमं किल॥१५॥

उन्होंने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का दान अनेक बार दिया और वे सशरीर भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥३॥ वे धर्मात्मा सदैव भगवान् विष्णु के साथ निवास करते हैं। इस तरह से मैंने राजा वेन के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन किया ॥४॥ यह सभी पापों तथा दुःखों का विनाश करने वाला चरित्र है। उसके बाद राजा पृथु पृथिवी का प्रशासन करने लगे ॥५॥ उन्होंने त्रैलोक्य के साथ पृथिवी का दोहन किया। उन्होंने पुण्यमय धर्म कर्म के द्वारा प्रजाओं का अनुरंजन किया ॥६॥ इस तरह से मैंने आपको सर्वोत्तम भूमिखण्ड को पूर्ण रूप से सुनाया। इस महापुराण का पहला खण्ड सृष्टि खण्ड है और दूसरा भूमिखण्ड है। मैं भूमिखण्ड का माहात्म्य बतलाता हूँ। जो मनुष्य श्रेष्ठ इस खण्ड का एक भी श्लोक सुनता है ॥७-८॥ उसके एक दिन का पाप विनष्ट हो जाता है। जो मनुष्य भाव पूर्वक इसके एक अध्ययन का श्रवण करता है, हे द्विजोत्तमों मैं उसका पुण्य बतलाता हूँ सुन्दर पर्व के अवसर पर एक हजार गौ का दान करने का जो फल होता है ॥९-१०॥ उस फल की प्राप्ति उसे होती है और उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। इस पद्मपुराण को जो प्रतिदिन पढ़ता है ॥११॥ उस मनुष्य को कलियुग में विघ्न बाधित नहीं करते हैं। **व्यासजी ने कहा—** हे ब्रह्माजी ! इस पुराण को सुनने वाले मनुष्य को कलियुग के अनेक प्रकार के भयङ्कर विघ्न क्यों नहीं होते हैं ? **ब्रह्माजी ने कहा—** हे तात ! अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल बतलाया गया है, वही फल पद्मपुराण के श्रवण का होता है। पवित्र अश्वमेध याग कलियुग में नहीं होता है ॥१२-१४॥ यह पुराण भी अश्वमेध के ही समान है। अश्वमेध का फल स्वर्ग तथा मोक्ष रूपी फल को प्रदान करने वाला

अश्वमेधस्य यत्पुण्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
न भुञ्जन्ति नराः पापाः पापमार्गेषु संस्थिताः ॥१६॥

पुराणस्यास्य पुण्यस्य पद्मसंज्ञस्य सत्तम ! । अश्वमेधसमं पुण्यं न भुञ्जन्ति कलौ नराः ॥१७॥
कलौ युगे नरैःपापैर्गन्तव्यं नरकार्णवम् । कस्माच्छ्रोष्यन्ति तत्पुण्यं चतुर्वर्गप्रसाधनम्॥१८॥
येन श्रुतमिदं पुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञकम् । सर्वं हि साधितं तेन चतुर्वर्गस्य साधनम् ॥१९॥
अश्वमेधादयो यज्ञास्तस्मान्नष्टा महामते । कलौ युगे गताः स्वर्गे सवेदाः साङ्गसस्वराः॥२०॥
यःकोऽपि सत्त्वसम्पनः श्रद्धावान्भगवत्परः । श्रोतुमिच्छति धर्मात्मा सपुत्रो भार्यया सह ॥२१॥
श्रवणार्थं महाश्रद्धा पूर्वं तस्य प्रजायते । शृण्वानस्य नरस्यापि महाविघ्नो न सञ्चरेत् ॥२२॥
अश्रद्धा जायते पूर्वं पाठकस्य नरस्य च । लोभश्च जायते तस्य शृण्वानस्य द्विजोत्तम !॥२३॥
प्रेषितो विष्णुदेवेन महामोहः सदारुणः । अकरोत्स विनाशं तु शृण्वतश्चास्य नित्यशः ॥२४॥

दूषकाः कुत्सकाः पापाः सम्भवन्ति दिने दिने ।
ज्ञातव्यं तु सुबुद्धेन विघ्नरूपं ममाधुना ॥२५॥
सञ्जातं दृश्यते व्यास ! तथा होमं समाचरेत् ।
वैष्णवैश्च महामन्त्रैर्विष्णुसूक्तैः सुपुण्यदैः ॥२६॥

विष्णोरराट मन्त्रेण सहस्रशीर्षकेन च । इदं विष्णु सुमन्त्रेण आब्रह्मेण पुनः पुनः ॥२७॥
त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण होममेवं समाचरेत् । बृहत्साम्ना सुमन्त्रेण द्वादशाक्षरकेण च॥२८॥

यस्य देवस्य यो होमस्तस्य मन्त्रेण होमयेत् ।
अष्टोत्तरतिलाज्यैश्च पालाशैः समिधैरपि ॥२९॥

है ॥१५॥ उसका भोग पापी जन नहीं कर सकते हैं । हे श्रेष्ठ ! इस पुराण के पुण्य का भी भोग पापी जीव नहीं भोग सकते हैं ॥१६॥ अश्वमेध के समान पुण्य का भोग कलियुग में मनुष्य नहीं भोगते हैं । कलियुग में पापी मनुष्य नरक सागर में जाते हैं ॥१७॥ अतएव वे चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाले पुराण का श्रवण कैसे कर सकते हैं ? जिस व्यक्ति ने इस पवित्र पद्म पुराण का श्रवण कर लिया है ॥१८॥ उसने चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) प्राप्ति के सम्पूर्ण साधनों को प्राप्त कर लिया है । हे महामते ! इसीलिए अश्वमेघ इत्यादि यज्ञ नष्ट हो गये ॥१९॥ कलियुग में सभी वेद अङ्गों और स्वरों के साथ स्वर्ग में चले गये। जो भी कोई सत्त्व गुण सम्पन्न, श्रद्धा से युक्त तथा भगवत्परायण ॥२०॥ धर्मात्मा पुरुष अपने पुत्रों तथा पत्नी के साथ इस पुराण को सुनना चाहता है तो उसमें सुनने के लिए महाश्रद्ध उत्पन्न होती है ॥२१॥ सुनने वाले मनुष्य को कोई महाविघ्न नहीं होता है । पढ़ने वाले मनुष्य के मन में पहले अश्रद्धा उत्पन्न होती है ॥२२॥ हे द्विजोत्तम ! उस सुनने वाले के मन में लोभ उत्पन्न होता है । भगवान् विष्णु के द्वारा भेजे गए भयङ्कर मोह ने इसका नित्य श्रवण करने वाले का विनाश कर दिया । उसकी दूषित करने वाले, निन्दा करने वाले लोग प्रतिदिन उत्पन्न हो जाते हैं ॥२३-२४॥ सुबुद्ध व्यक्ति को जानना चाहिए कि यह मेरे लिए विघ्न उपस्थित हो गया है ऐसी स्थिति में हो व्यास उसको **वैष्णव महामन्त्रों** से तथा विष्णु सूक्त के मन्त्रों से **विष्णोरराटमसि** इस मन्त्र से तथा **सहस्रशीर्षा** इत्यादि मन्त्र से होम करना चाहिए ॥२५-२६॥ उसको **'इदं विष्णु विचक्रमे'** इस मन्त्र से **'आब्रह्मन ब्रह्मणो'** मन्त्र से **एवं त्र्यम्बक मन्त्र** से होम करना चाहिए॥२७॥

ग्रहाणामपि कर्तव्यं स्थापनं पूजनं द्विज। विघ्नेशं पूजयेत्तत्र शारदां च सुरेश्वरीम् ॥३०॥
जातवेदां महामायां चण्डिकां क्षेत्रनायकम्। तिलैश्च तण्डुलैराज्यैस्तेषां मन्त्रसमुद्यतैः ॥३१॥
एवं होमः प्रकर्त्तव्यो ब्राह्मणेभ्यो ददेद्धनम्। यथा सम्भविकां तात ! दक्षिणां धेनुसंयुताम् ॥३२॥
ततो विघ्नाः प्रणश्यन्ति पुराणं सिद्धिमाप्नुयात्।
एवं न कुरुते यो हि तस्य विघ्नं वदाम्यहम् ॥३३॥
तस्याङ्गे जायते रोगो बहुपीडाप्रदायकः। भार्याशोकः पुत्रशोको धनहानिः प्रजायते॥३४॥
नानाविधान्महान्रोगान् भुञ्जते नात्र संशयः। यस्य गेहे नास्ति वित्तमुपवासं समाचरेत् ॥३५॥
एकादशीं सुसम्प्राप्य पूजयेन्मधुसूदनम्। षोडशैश्चोपचारैश्च भावयुक्तेन चेतसा॥३६॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथावित्तानुसारतः। केशवाय ततो दत्त्वासङ्कल्पंहविषाऽन्वितम्॥३७॥
स्वयं कुर्य्यात्ततः प्राज्ञो भोजनं सह बान्धवैः।
पुत्रैस्तु भर्यया युक्तस्ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३८॥
पुराणसंहितापूर्णा श्रोतव्या धर्मतत्परैः। चतुर्वर्गस्य वै सिद्धिर्जायते तस्य नान्यथा ॥३९॥
सपादं लक्षमेकं तु ब्रह्माख्यं पुष्करं शृणु। कृते युगे तु निष्पापाः शृण्वन्ति मनुजा द्विज ! ॥४०॥
लक्षस्यार्द्धं ततः कृत्स्नं पुराणं पद्मसंज्ञकम्।
श्लोकानां तु सहस्राभ्यां द्वाभ्यामेव तथाधिकम् ॥४१॥
त्रेतायुगे तथा प्राप्ते यदा श्रोष्यन्ति मानवाः।
चतुर्वर्गफलं भुक्त्वा ते यास्यन्ति हरिं पुनः ॥४२॥

बृहत्साम के मन्त्रों से तथा **द्वादशाक्षर मन्त्र** से भी होम करे। जिस देवता का जो मन्त्र हो उसी मन्त्र से उसका होम करे ॥२८॥ हे द्विज ! तील तथा घी से एक सौ आठ आहुति दे तथा पलाश की समिधा से होम करे। ग्रहों की भी स्थापना तथा पूजन करना चाहिए ॥२९॥ विघ्नेश की पूजा करे, सुरेश्वरी शारदा की पूजा करे। जातवेदा, महामाया चण्डिका तथा क्षेत्रपाल के लिए भी ॥३०॥ तिल और घी से होम मन्त्रों से होम करें। इस तरह से होम करके ब्राह्मणों को धन दान दे ॥३१॥ यथा सम्भव दक्षिणा तथा गौ का दान करे। ऐसा करने से विघ्नों का नाश हो जाता है तथा पुराण भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ जो लोग ऐसा नहीं करते हैं, उनको होने वाले विघ्नों को मैं बतलाता हूँ। उसके शरीर में बहुत पीड़ा देने वाला रोग हो जाता है ॥३३॥ उसको पत्नी तथा पुत्र का शोक होता है तथा धन की हानि होती है। वह अनेक प्रकार के महारोगों को भोगता है ॥३४॥ जिसके घर में धन नहीं है उसको उपवास करना चाहिए। एकादशी के दिन भगवान् मधुमूदन की पूजा भक्ति पूर्वक षोडशोपचार से करे। उसके बाद अपने धन के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥३५-३६॥ उसके बाद भगवान् केशव की प्रसन्नता के लिए हविष्य लेकर होम करे। उसके बाद प्राज्ञ पुरुष को अपने बांधवों पुत्रों तथा पत्नी के साथ स्वयं भोजन कराना चाहिए ॥३७॥ धार्मिक पुरुषों को इस सम्पूर्ण पुराण संहिता को सुनना चाहिए। इससे चतुर्वर्ग की सिद्धि हो जाती है, अन्यथा नहीं। हे द्विज ! निष्पाप पुरुष सत्ययुग में इस पद्मपुराण के सवा लाख श्लोकों का श्रवण करते थे। उसके बाद यह सम्पूर्ण पद्म पुराण आधा लाख तथा दो हजार श्लोकों वाला हो गया। त्रेतायुग में इसका जब मनुष्य श्रवण करेंगे ॥३८-३९॥ वे चतुर्वर्गरूपी फल को भोगकर श्रीभगवान् को प्राप्त करेंगे।

द्वाविंशतिसहस्त्राणि संहिता पद्मसंज्ञिता। द्वापरे कथिता विप्र! ब्रह्मणा परमात्मना॥४३॥
द्वादशैव सहस्त्राणां पद्माख्या सा तु संहिता। कलौ युगे पठिष्यन्ति मानवा विष्णुतत्पराः॥४४॥
एकोऽर्थश्चैकभावाश्च चतुर्ष्वपि प्रवर्तितः। संहितास्वेव विप्रेन्द्र! शेषाख्यानप्रविस्तरः॥४५॥
द्वादशैव सहस्त्राणि नाशं यास्यन्ति सत्तम!। कलौ युगे तु सम्प्राप्ते प्रथमं हि भविष्यति॥४६॥
भूमिखण्डं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। मुच्यते सर्वदुःखेभ्यः सर्वरोगः प्रमुच्यते॥४७॥
अन्यत्सर्वं परित्यज्य जपं दानं तथा श्रुतम्। श्रोतव्यं हि प्रयत्नेन पद्माख्यं पापनाशनम्॥४८॥
प्रथमं सृष्टिखण्डं तु द्वितीयं भूमिखण्डकम्। तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम्॥४९॥
पञ्चमं चोतरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या पञ्चखण्डान्यनुक्रमात्॥५०॥
गोप्रदानसहस्त्रस्य मानवो लभते फलम्। महाभाग्येन लभ्यन्ते पञ्चखण्डानि भूसुराः॥५१॥
श्रुतानि मोक्षदानि स्युः सत्यं सत्यं न संशयः॥५२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पञ्चपञ्चशत्सहस्त्रसंहितायां वेनोपाख्याने
पञ्चविंश्यात्याधिकशततमोऽध्यायः॥१२५॥
समाप्तोऽयं भमिखण्डो द्वितीयः

इसकी पाद्म संहिता बाइस हजार की हो गयी॥४१-४२॥ हे विप्र! द्वापर युग में ब्रह्माजी ने पाद्म संहिता को बारह हजार कर दिया। उसी को विष्णु भक्ति रखने वाले मनुष्य पढ़ेंगे। इन चारों युगों में एक ही अर्थ और एक ही भाव है॥४३-४४॥ हे विप्रेन्द्र संहिताओं में ही शेष कथाओं का विस्तार किया गया है। हे श्रेष्ठ पुरुष! बारह हजार संहिताएँ नष्ट हो जायेंगी॥४५॥ कलियुग के आने पर तो प्रथम खण्ड ही रह जायेगा। इस भूमिखण्ड का श्रवण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥४६॥ वह सभी रोगों तथा दुखों से मुक्त हो जाता है। जप, दान तथा वेदाध्ययन इन सबों को छोड़कर॥४७॥ पापों को विनष्ट करने वाले पद्मपुराण का श्रवण करना चाहिए। इसका पहला खण्ड सृष्टि खण्ड है, दूसरा खण्ड भूमिखण्ड है, तीसरा स्वर्ग खण्ड है, चौथा पाताल खण्ड है और पाँचवा सभी पापों को विनष्ट करने वाला उत्तर खण्ड है॥४८-४९॥ जो मनुष्य भक्ति पूर्वक पाञ्चों खण्डों का क्रमशः श्रवण करता है, वह हजार गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है॥५०॥ ब्राह्मणों को इसके पाँचों खण्ड बड़े ही भाग्य से प्राप्त होते हैं। इन सबों का श्रवण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसमें कोई भी संशय नहीं है॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के द्वितीय भूमिखण्ड के वेनोपाख्यानान्तर्गत एक सौ पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।१२५।।

इस तरह पद्ममहापुराण का द्वितीय भूमिखण्ड सम्पूर्ण हुआ।।२।।